C-4

अनन्तो वै वेदाः
卐

डा॰, श्रीवका
दत्त शर्मा

वैदिकपुस्तकमाला—द्वितीय पुष्प

ऋग्वेद-संहिता

(हिन्दी-टीका-सहित)

रामगोविन्द त्रिवेदी
गौरीनाथ झा

वेद क्यों पढ़ना चाहिये ?

इसलिये कि—

(१) वेद हिन्दूधर्मकी मूल पुस्तक है।

(२) वेद मनुष्यजातिकी सबसे प्राचीन पुस्तक है।

(३) सदाचार, वीरता, परोपकार, देश-सेवा, सत्य, त्याग आ मनुष्यजातिकी जितनी उच्चतम गुणावली है, सबका वेदमें बड़ा सुन्दर विवरण है।

(४) वेद हमारी जातिके प्राचीन इतिहास, कला, विज्ञान, धर् प्रेम, समाज-व्यवस्था, राष्ट्र-धर्म, यज्ञ-रहस्य आदि-आदिको दर्प को तरह दिखाता है।

इसलिये जिस प्रकार हर एक ईसाई बाइबिलको और हर ए मुसलमान कुरानको, गाड और खुदाकी विमल वाणी जानक अपने पास रखता है, उसी प्रकार ईश्वरका पवित्र उपदेश सम कर वेदको अपने पास रखना हर एक हिन्दूका आवश्यक कर्त्तव्य

लज्जाकी बात है कि, जर्मनी, फ्रान्स, अमेरिका, इङ्गलैण्ड आ के विद्वानोंने तो वेदकी सारी पुस्तकोंको छपा डाला और हिन्दी एक भी ऋग्वेदका सरल अनुवाद नहीं। इसी अभावकी पूर्त्तिके लि हमने "वैदिकपुस्तकमाला" द्वारा सरस-सरल हिन्दीमें चारो वेदों अनुवाद कराना निश्चित किया है, जिसका द्वितीय पुष्प आप सामने है। इसका मूल्य केवल लागत भर २) रु० रखा गया क्योंकि इसके प्रधान संरक्षक भारतप्रसिद्ध बनैलीराज्यके अधीश्वर हैं

॥) देकर "वैदिक-पुस्तकमाला"के स्थायी ग्राहक बननेवालोंको आ कभी भी डाकखर्च नहीं देना होगा और पुस्तक निकलते सूचना देकर, वी० पी० से, भेज दी जायगी।

मैनेजर, वैदिक-पुस्तकमाला, कृष्णगढ़, सुलतानगंज, भागलपुर

वैदिकपुस्तकमाला—द्वितीय पुष्प

ऋग्वेद-संहिता

(सरल-हिन्दी-टीका-सहित)

द्वितीय अष्टक

टीकाकार

प० रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री

("दर्शनपरिचय", "हिन्दी-विष्णुपुराण", "राजर्षि प्रह्लाद", "महासती मदालसा" आदिके लेखक,
"सेनापति", "विश्वदूत" आदिके भूतपूर्व सम्पादक, "गीताप्रचारक-महामण्डल" (मोरिशस) के
जन्मदाता, "दक्षिण अफ्रीकन सनातनधर्म-महामण्डल" (डरबन, नेटाल) के आजीवन
सभापति, "गंगा" के प्रधान सम्पादक तथा सनातनधर्मके महोपदेशक)

— *और* —

प० गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ

(प्राइवेट सेक्रेटरी, बनैली-राज्याधिपति साहित्य-विभूषण कुमार कृष्णानन्द
सिंह बहादुर तथा "गङ्गा" और "वैदिकपुस्तकमाला" के
अन्यतम जन्मदाता और सम्पादक)

प्रकाशक

प० गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ,

संचालक, "वैदिकपुस्तकमाला", कृष्णगढ़, सुलतानगञ्ज, भागलपुर

मूल्य २)

ज्येष्ठ, १९८९ विक्रमीय

प्रथम संस्करण
५१००

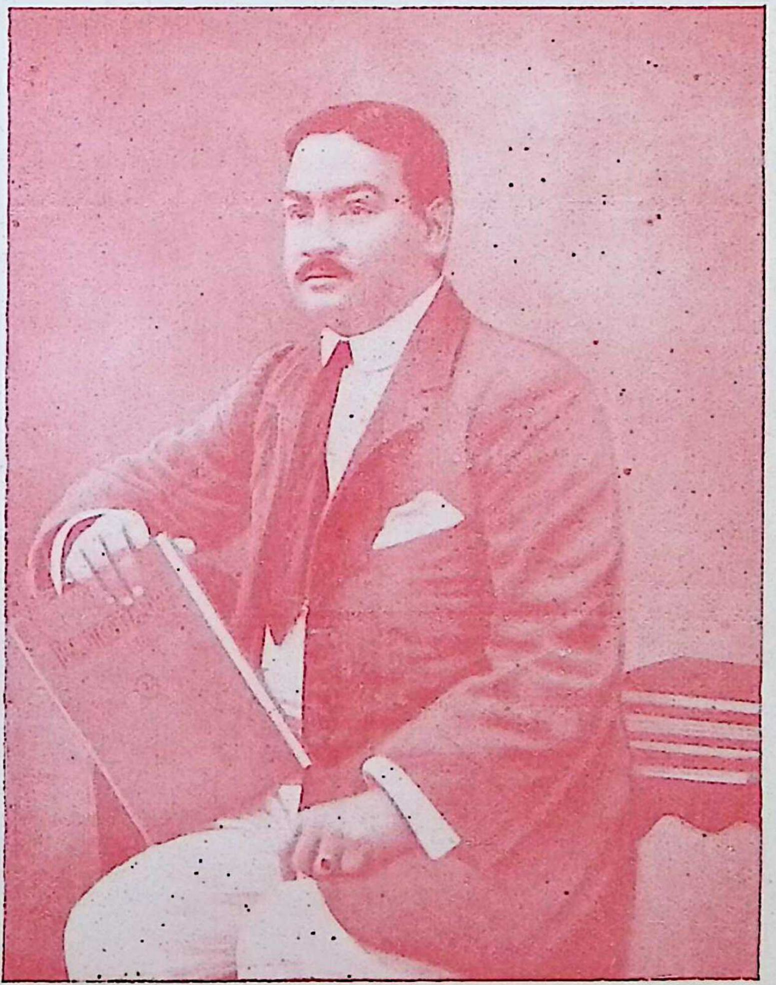

बनैली-नरेश

राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर बी० ए०

समर्पण

जिनका हिन्दी-साहित्य-प्रेम भारत-प्रसिद्ध है, जो वैदिक धर्मके अनन्य
भक्त हैं, जिनकी विद्वत्ता और लेखनकलाकी प्रशंसा
शत मुखसे की जाती है, जिनकी राजशासन-
निपुणता, सरलता, दानपरायणता और
मृगया-प्रवीणता आदर्श और
अनुकरणीय हैं, उन

बनैली-नरेश, ब्राह्मण-रत्न

राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर बी० ए०

—के—

कमनीय कर-कमलोंमें
सादर समर्पित

—रामगोविन्द त्रिवेदी
गौरीनाथ झा

प्रेमोपहार

प्राक् कथन

संसारके प्राचीनतम साहित्यिक ग्रन्थ तीन गिने जाते हैं—वेद, चीनियोंका शुकिंग और पारसियोंको गाथाएँ अथवा अवस्ता। प्रबल विद्याव्यसनी यूरोपियनोंने इन तीनोंका यथेष्ट मन्थन किया है। इनपर, उन्होंने, लाखों रुपये खर्च किये हैं, कितने ही आलोचनाएँ-प्रत्यालोचनाएँ और भाष्य-टीकाएँ लिखी हैं। कइयोंने तो एक-एक शब्दका विश्लेषण और निर्वचन करनेमें महीनों बिता डाले हैं! इन ग्रन्थोंके बलपर उन्होंने तुलनात्मक देवता-विज्ञान और भाषा-विज्ञान नामक नवीन शास्त्रोंको आविष्कृत अथवा पुष्पित किया है।

सबको तो नहीं; परन्तु अधिकांश विद्वानोंकी राय है कि, उक्त तीनोंमें वेद सबसे प्राचीन हैं। वेदोंमें भी ऋग्वेद प्राचीनतम है। मानवजातिके प्राथमिक समाजकी नाड़ी परखनेके लिये ऋग्वेदसे बढ़कर कोई वैद्य नहीं है। मनुष्यका क्रमिक-विकास-रहस्य जाननेके लिये ऋग्वेद कुञ्जी है। संसारकी सर्व-प्रथम विजेता जाति (आर्यजाति; जिसे यूरोपियन भी अपना पूर्वज कहते हैं) को तो सारी युद्धविद्या, निखिल धर्म-कर्म, आचार-विचार और सभ्यता-संस्कृतिका ऋग्वेद प्रामाणिक कोष ही माना जाता है। बल्कि संसारका सच्चा आदिम इतिहास जाननेके लिये ऋग्वेद दीप-स्तम्भ है।

ये ही सब कारण हैं, जिनसे प्रेरित होकर प्रचण्ड विद्याव्यसनी यूरोपियनोंने ऋग्वेदके लिये, उसका तत्त्व जाननेके लिये, समय, श्रम, शक्ति और द्रव्यका अपार और सार्थक व्यय किया है। राथ और ब्लूमफिल्ड जैसे कितने ही विद्वानोंने तो वेद-परिशीलनमें अपना जीवन ही खपा दिया था! यूरोपियनोंके सिवा संसारके अन्य देशों और भारतके भी कितने ही विद्वान्, उक्त कारणोंसे ही, ऋग्वेदके सामने सिर नवाते हैं। परन्तु हिन्दुओंके लिये इन कारणोंके सिवा एक और भी कारण है, जिसके लिये हिन्दू वेदोंको प्राणके समान मानते हैं। वेद हमारे धर्म-ग्रन्थ भी हैं। हमारे दर्शन, धर्मशास्त्र, पुराण आदि इन वेदोंकी व्याख्याएँ हैं—"वेदा मूलम्"—मूल धर्म-ग्रन्थ वेद ही हैं। इस नाते भी जो श्रद्धा ईसाइयों और मुसलमानोंकी बाइबिल और कुरानपर है, वेदोंपर वह प्रत्येक हिन्दूकी है। परन्तु वेदोंकी बराबरी अन्य ग्रन्थोंसे नहीं की जा सकती; क्योंकि वेद मूल धर्म-ग्रन्थ होनेके सिवा विश्वकी सर्व-श्रेष्ठ आर्यजातिका वास्तविक इतिहास भी हैं। यही कारण है कि, मीमांसा, सांख्य आदि जैसे अनीश्वरवादी शास्त्र भी, अपनी अच्छेद्य श्रद्धाके कारण, वेदोंको अपौरुषेय और नित्यतक मानते हैं। धर्म-शास्त्र-ग्रन्थोंमें तो वेदज्ञानशून्य हिन्दूका सामाजिक बहिष्कारतक लिखा हुआ है। प्रत्येक द्विजके लिये वेदाध्ययन अनिवार्य माना गया है।

शोक है कि, ऐसे अमूल्य ग्रन्थके ज्ञानसे हम वञ्चित हो रहे हैं। यही कारण है कि, हम हर तरहसे परावलम्बी, दरिद्र और दुःखी बन गये हैं। ध्यान रहे, वेदके अध्ययन और प्रचारकी ओरसे हमारी यह उदासीनता हमें रसातल भेज देगी।

परन्तु इस उदासीनताके सिवा वेद-प्रचारमें एक दूसरी जबर्दस्त बाधा भी है। वह है टीका-ग्रन्थोंकी महार्घता। सम्पूर्ण ऋग्वेदपर केवल सायणाचार्यका भाष्य मिलता है और उसका मूल्य १५०) रु०से कम कहीं भी नहीं है। भारतकी राष्ट्र-भाषा हिन्दीमें भी उसका आजतक अनुवाद नहीं हुआ है—यह और दुःखकी बात है। इसी मर्मान्तक अभावकी पूर्तिके लिये बनैलीराज्याधिपति साहित्य-विभूषण कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुरकी सहायतासे "वैदिकपुस्तकमाला" की स्थापना की गयी, जिसमें सर्व-प्रथम ऋग्वेदके सम्पूर्ण सायण-भाष्यका संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद निकालना निश्चय किया गया। इसी निश्चयके अनुसार, कई महीने हुए, ऋग्वेदके आठ अष्टकोंमेंसे प्रथम अष्टक प्रकाशित किया गया था। प्रसन्नताकी बात है कि, प्रथम अष्टकको देश और विदेशके विद्वानोंने खूब पसन्द किया। ब्रिटिश म्युजियम (लण्डन) के डा० बर्नेट, हरे (इंगलैण्ड) के डा० ग्रियर्सन, ओरियेण्टल स्कूल (लण्डन) के प्रो० रैप्सन आदि तथा चीनके "वर्ल्ड फिडरेशन" ने प्रथम अष्टककी बड़ी प्रशंसा की और "बाम्बे क्रानिकल", "हिन्दू," "न्यू इण्डिया" जैसे अँग्रेजीके विख्यात पत्रों तथा "प्रताप", "आज", "माधुरी" जैसी प्रतिष्ठित हिन्दी-पत्रपत्रिकाओंने बढ़ियासे बढ़िया समालोचनाएँ छापीं।

आज द्वितीय अष्टक भी आपके सामने है। यह भी प्रथम अष्टककी ही तरह, कई रंगीन चित्रों, टिप्पनियों, की ज्ञातव्य विषयों और हिन्दी-अनुवादसे सुसज्जित किया गया है। इसका भी मूल्य २) रु० ही रखा गया है। यदि यही ग्रन्थ विलायतमें छपता, तो कम-से-कम १०)रु० मूल्य रखा जाता। प्रो० मैक्डानलके द्वारा प्रकाशित, इससे भी छोटी, शौनककी सर्वानुक्रमणीका मूल्य १८) रु० है। जो हो, जहाँ सायण-भाष्य १५०) में मिलता है, वहाँ उसका, सम्पूर्ण आठो अष्टकोंका संक्षिप्त, हिन्दी-अनुवाद हमने सिर्फ १६) रु०में देना निश्चित किया है। यदि इतना समय और शक्तिका व्यय न होता, तो कदाचित् इससे कम मूल्यमें भी हम इस पुस्तकको देते। इसपर भी "वैदिकपुस्तकमाला" औ हमारे द्वारा सम्पादित "गंगा" मासिक पत्रिकाके ग्राहकोंसे डाक खर्च नहीं लिया जाता। इस पुस्तक-मालाका उद्देश्य व्यापार करना नहीं। अनुवाद-कार्यके लिये १०००) रु०से अधिककी तो हमें पुस्तकें ही मँगानी पड़ी हैं।

जिस "वेदरहस्य"के लिखे जानेकी सूचना प्रथम अष्टकमें दी गयी थी, वह बहुत कुछ लिखा जा चुक है। सम्पूर्ण होनेपर उसके प्रकाशनमें हाथ लगेगा। हमने जो "गंगा" का "वेदाङ्क" निकाला है, उसमें "वेदरहस्य" की अनेक बातें भी आयी हैं।

तृतीय अष्टक छप रहा है। छपाई-सफाईमें प्रथम और द्वितीय अष्टकोंसे यह अधिक सुन्दर होगा।

कृष्णगढ़, सुलतानगंज, भागलपुर
वटसावित्री, १९८९ विक्रमीय

—रामगोविन्द त्रिवेदी
गौरीनाथ झा

द्वितीय अष्टककी जानने योग्य बातें

प्रथम अष्टकमें यह शीर्षक नहीं था; परन्तु उसमें अत्यधिक टिप्पनियाँ देकर स्थल-स्थलपर ऐसी बातें लिखी गयी थीं, जिनका संग्रह भूमिकाके पास छापा गया था। इस अष्टकमें टिप्पनियाँ कम देकर जानने योग्य बातोंका, पाठकोंके सुभीतेके लिये, यहाँ संग्रह कर दिया गया है। इस अष्टकमें प्रथम मण्डलके शेष सूक्तोंके अतिरिक्त सम्पूर्ण द्वितीय मण्डल तथा तृतीय मपडलके छ सूक्तोंका भी समावेश है; इसलिये प्रत्येक जानने योग्य विषयके आगे मण्डल, सूक्त और मन्त्रकी संख्याएँ दी गयी हैं। प्रथम मण्डलके १२१ सूक्तोंमें प्रथम अष्टक समाप्त हुआ है। इसलिये १ (मण्डल)के १२१ सूक्तके पहलेकी संख्याओंका जहाँ उल्लेख है, वहाँ प्रथम अष्टक देखना चाहिये।

१।१२२।१—रुद्रके लिये असुर शब्द आया है सब मिलकर देव, राजा, ऋत्विक् और स्वर्गलोकके लिये द्वितीय अष्टकमें दस बार और प्रथम अष्टकमें सात बार असुर शब्दका प्रयोग हुआ है। प्रथम अष्टक (१।५४।३) देखिये।

१।१२२।५—घोषाके कोढ़की बात। १।११७।७ भी देखिये।

१।१२२।१२—इष्टाश्व राजाका उल्लेख है। के० एम० बनर्जीके मतसे यहां इष्टाश्व, विष्टास्प, गुष्टास्प वा कुष्टास्प जेन्द-धर्मके प्रचारक थे।

१।१२३।४—अहनाका विवरण है। १।३०।२२ भी देखिये।

१।१२३।८—सूर्यकी दैनिक गतिका विवरण।

१।१२६।७—गन्धारदेशकी स्त्रीका उल्लेख।

१।१२८।६—सूयका सुवर्ण-धन धारण करना। १।२२।५ भी देखिये।

१।१३०।७—दिवोदासके लिये इन्द्रका ९९ नगरोंका नष्ट करना।

१।१३०।८—इसमें सायणाचार्यने दस हजार अनुचरोंवाले कृष्ण नामके असुरका उल्लेख किया है।

१।१३१।३—पुरुषके साथ स्त्रीका यज्ञमें सम्मिलित होना। इसमें स्वर्गकी भी बात है।

१।१३२।२—स्वर्ग-निवास।

१।१३३।५—पिशाच और राक्षस।

१।१२९—१३३ तकके सूक्तोंमें यूरोपियन वेदाभ्यासी आर्यों के साथ कोलों (आदि द्रविड़ों) और द्रविड़ोंके युद्धका आभास पाते हैं।

१।१३८।४—सूर्यका वाहन छाग।

१।१३९।११—तैंतीस देवता।

१।१५४।१—वामनावतार।

१।१५५।६—चौरानवे कालावयव ये हैं—संवत्सर, दो अयन, पाँच ऋतु (हेमन्त और शिशिर एकमें), बारह मास, चौबीस पक्ष, तीस अहोरात्र, आठ पहर और बारह राशियाँ। म्योरके मतसे "चतुर्भिः नवतिं"का अथ है नब्बेका चौगुना अर्थात् वर्षके ३६० दिन।

१।१५८।३—तुग्र राजाके पुत्र भुज्युको समुद्र-यात्राका उल्लेख। १।११६।३ भी देखिये।

१।१६१।१—सुधन्वा नामक अङ्गिरा मनुष्यके पुत्र ऋभुओंका देवता बन जाना। छठे मंत्रमें और भी स्पष्ट उल्लेख है। १।२०।२—४ और १।११०।३—५ में भी ऋभुओंकी विशेष बातें हैं।

१।१६२—पूरे सूक्तमें अश्वमेध-यज्ञका विस्तृत विवरण है। अश्वमांसका विषय दर्शनीय है।

१।१६३।२—यमराजका उल्लेख। १।३५।६ में भी यमका उल्लेख है।

१।१६४।२—सूर्यके सात घोड़े और किरणें। १।५०।८—९ भी देखिये।

१।१६४।६—परमात्माका वर्णन।

१।१६४।११—बारह राशियों और ३६० दिनों तथा ३६० रात्रियोंका उल्लेख।

१।१६४।१२—बारह मास। इसमें दक्षिणायन और उत्तरायणकी भी कुछ चर्चा है।

१।१६४।२०—परमात्माका उल्लेख।

१।१६४।३०—जीवात्माका अमरत्व।

१।१६४।४४—क्षौरकर्मकर्त्ताकी चर्चा ।

१।१६४।४५—ब्राह्मणका उल्लेख ।

१।१६४—यह समस्त सूक्त पढ़ने योग्य है । यह सूक्त अथर्ववेदमें भी है । इस सूक्तकेसे विचार दशम मण्डलमें ही अधिक हैं ।

१।१९१।—१४ और १५ में मयूर और नकुलका उल्लेख ।

२।२।१०—चार वर्णोंका उल्लेख । १।७९ में भी चारो वर्णोंका उल्लेख है ।

२।३।६—स्त्रियोंका कपड़े बुनना । दो स्त्रियाँ ताना-बाना भी करती थीं ।

२।७।१—भारत शब्दका उल्लेख ।

२।११।१७—दाढ़ीमें लगे सोमरसको झाड़ना ।

२।१२।१२—सूर्यकी सात किरणों या रंगोंकी चर्चा ।

२।१५।५—परुष्णी, इन्द्रधुनि अथवा इरावती नदीका उल्लेख ।

२।१५।५—अन्धे और लँगड़े परावृज ऋषिका कई कन्याओंके साथ विवाह । १।११२।८ भी देखिये ।

२।१७।७—आजीवन अविवाहिता कन्याका पितृसम्पत्तिकी अधिकारिणी बनना ।

२।१९।५—एतश ऋषिकी चर्चा । १।६१।१५ भी देखिये ।

२।२०।७—काले रंगकी द्रविड़जातिका उल्लेख ।

२।२३।२—वृत्र असुरके लिये देव शब्दका प्रयोग । १।३२।१२ भी देखिये ।

२।२३।३—१७—कोलों (आदि द्रविड़ों) और द्रविड़ोंके उपद्रव तथा शत्रुताका उल्लेख ।

२।२७।१—छ सूर्योंका नाम—द्वादशका नहीं । १।१४।३ भी देखिये ।

२।२७।१०—सौ वर्षकी परमायु ।

२।२८।९—ऋण-ग्रस्तका परिताप ।

२।२७—२९—दोनों सूक्त भगवद्भक्तोंके लिये पठनीय हैं ।

२।२९।१—गुप्त-प्रसविनी स्त्रीका उल्लेख ।

२।३०।८—असुर-पुरोहित शण्डामर्कका उल्लेख ।

२।३२।४—कपड़ेपर बेल-बूटे काढ़ना ।

२।३४।३—सोनेके मुकुट या शिरस्त्राणका वर्णन ।

२।३४।१३—क्षोणी (वीणा-विशेष) नामके बाजेका उल्लेख ।

२।३५।६—इन्द्रके उच्चैःश्रवा नामक घोड़ेका उल्लेख ।

२।३८।४—कपड़े बुननेवाली स्त्रियाँ ।

२।३९।३—चक्रवाकका उल्लेख ।

२।३९।४—कवचका उल्लेख । १।२५।१३ भी देखिये ।

२।४१।५—सहस्र स्तम्भवाले भवनका उल्लेख ।

२।४२—४३—सूक्तोंके देवता शकुनि या कपिञ्जल-रूपी इन् हैं । पक्षियोंकी अशुभ ध्वनि सुननेपर इन दों सूक्तोंका जप किया जाता है ।

३।१।१०—स्वर्ग और पृथिवीके पति सूर्यदेव हैं ; इसलि द्यावापृथिवी सपत्नी कहे जाते हैं ।

३।४।८—भारती और सारस्वत शब्दोंका उल्लेख ।

३।६।९—तैंतीस देवोंका उल्लेख । १।३४।११ और १।४५। भी देखिये ।

सायणाचार्यके मतानुसार द्वितीय अष्टकमें पौराणिक कथाएँ

द्वितीय अष्टकमें प्रथम मण्डलके १२२ से १९१ सूक्त, द्वितीय मण्डलके सब (४३) सूक्त और तृतीय मण्डलके ६ सूक्ततक हैं। हर एक कथाके आगे मण्डल, सूक्त और मंत्रकी संख्याएँ दी गयी हैं।

१	कुष्ठरोग-ग्रस्ता घोषा	१।१२२।५
२	इष्टाश्व और इष्टरश्मि नामक राजाकी शत्रुतारक नेताओं (वरुणादि) से शत्रुता	१।१२२।१३
३	मशर्शार राजाके और अयवस राजाके पुत्रोंका उपद्रव	१।१२२।१५
४	कक्षीवान्‌का विवाह	१।१२५।१
५	स्वनय राजा द्वारा कक्षीवान्‌को प्रदत्त दहेज	१।१२६।३-५
६	लोमशाके साथ स्वनयका सम्भोग	१।१२६।६-७
७	शम्बरके विनाशके लिये इन्द्रका दिवोदासके लिये साहाय्य	१।१३०।७
८	अंशुमतीके तटपर इन्द्रने कृष्णासुरकी काली चमड़ी उधेड़ी	१।१३०।८
९	ऊँटपर चढ़कर युद्ध करना	१।१३८।२
१०	ऋषियोंका दीर्घ जीवन	१।१३९।९
११	गर्भिणी दीर्घतमाकी माताके साथ बृहस्पतिका सम्भोग	१।१४७।३
१२	रातहव्यकी दुग्धशून्या गौका दुग्धवती होना	१।१५३।३
१३	वामनावतार	१।१५४।१
१४	अश्विनीकुमारोंका औषध-ज्ञान	१।१५७।६
१५	आनार्यों द्वारा एक वृद्धकी बोटी-बोटी काटा जाना	१।१५८।५ और १।१५९।२
१६	सुधन्वाके पुत्रोंद्वारा चमसका बनाया जाना	१।१६१।१
१७	अश्वमांसका उपयोग	१।१६२ पूरा सूक्त
१८	इन्द्र और मरुद्गणका मनोरञ्जक संलाप	१।१६५ पूरा सूक्त
१९	मरुद्गणकी शृंगार-प्रियता	१।१६६।१०
२०	पृश्नि द्वारा महासंग्रामके लिये मरुद्गणका प्रसूत होना	१।१६८।९
२१	इन्द्र द्वारा अत्यन्त दृढ़ सात पुरियोंका तोड़ा जाना	१।१७४।२
२२	दुर्योणि राजाके लिये इन्द्र द्वारा कुयवका बध	१।१७४।७
२३	अगस्त्य और लोपामुद्राका कामपूर्ण सम्भाषण	१।१७९ पूरा सूक्त
२४	डूबते हुए तुग्रपुत्रके लिये अश्विनीकुमारोंने समुद्रमें नौका दौड़ायी थी	१।१८२।५-६
२५	विषाक्त सरिसृपगण	१।१९१ पूरा सूक्त
२६	इन्द्रने त्रितके बन्धुत्वमें त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपका बध किया	२।११।१९
२७	इन्द्रका दस सौ घोड़ोंपर प्रभुत्व। दभीति ऋषिका दस्युओं द्वारा त्राण पाना	२।१३।९
२८	निन्यानवे बाहुवाला उरण	२।१४।४
२९	शुष्णका स्कन्ध-हीन होकर मरना	२।१४।५
३०	वर्चीके सौ हजार पुत्र	२।१४।६
३१	इन्द्रने सिन्धुको उत्तरवाही किया	२।१५।६
३२	अन्धे और लँगड़े परावृजके विवाहके लिये कन्याएँ आयीं; पर परावृजको इस प्रकारका देखकर भाग गयीं; पीछे परावृज भी दौड़े— इसी क्षण इन्द्रकी कृपासे वे सुन्दर अङ्गवाले हो गये	२।१५।७
३३	इन्द्रने चुमुरि और धुनि असुरोंको दीर्घ-निद्रित करके विनष्ट किया	२।१५।९
३४	इन्द्र द्वारा पर्वतोंका परास्त होना	२।१७।५
३५	अनेकानेक घोड़ोंवाले इन्द्र	२।१८।५-६
३६	अँगिरा लोगोंको गो-प्राप्ति	२।२०।५
३७	गौओंका अन्वेषण करते समय अंगिरा लोगोंके विकट मार्ग	२।२४।६-७
६८	रुद्रदेवका दवा तैयार करना	२।३३।७
३९	रुद्र द्वारा पृश्नीके उदरसे मरुतोंका जन्म	२।३४।न
४०	रुद्र द्वारा पृथ्वीके अधोभागका दोहन	२।३४।१०
४१	समुद्रसे उच्चैःश्रवाका जन्म	२।३५।६
४२	स्त्री द्वारा वस्त्रका बुना जाना	२,३८।४
४३	पक्षियों द्वारा शकुन	२।४२–४३
४४	जन्मके साथ ही अग्निने भुवनोंको प्रकाशित किया	३।२।२-७

देव-विवरण

इळा (भू-देवी)	१।१२८।१ १।१४२।९ १।१८६।१ १।१८८।८ २।१।११ ३।१।२३ ३।४।८
आप्री देवता	१।१४२ सूक्त
त्रित और त्रैतन	१।१५८।४-५ । प्रथम अष्टक (१।५२।५) भी देखिये ।
रोदसी (विद्युद्देवता)	१।१६७।६
इन्द्रके साथ मरुद्गण	१।७१।४
अहिर्बुध्न [रुद्र] वा अहि	१।१८६।५ । रुद्रके सम्बन्धमें १४३ सूक्त देखिये । २।३१।६

ऋभुक्षा	१।१८६।१०
इन्द्र और त्वष्टाकी शत्रुता	२।११।१९। तैत्तिरीय संहिता (२।५।१) और शतपथ ब्राह्मण (१।६।३) में भी यह कथा है ।
राका, सिनीवाली, गुंगु	२।३२।५-८
मरुतोंका वाहन पृषती वा बिन्दु-चिह्नित मृग	२।३४।३ । प्रथम अष्टक (१।३७।२) भी देखिये ।
गरुत्मान् (गरुड़)	१।१६४।४६
असुर	१।१२२।१
३३ देवता	१।१३९ और ३।६।९

* * *

वैदिक-पुस्तकमालाकी नियमावली

(१) इस मालामें हिन्दी-अनुवाद-सहित चारो वेद और विशेषतः वैदिक ग्रन्थ ही गूँथे जायँगे ।

(२) ॥) भेजकर मालाके स्थायी ग्राहक बननेवालों और "गंगा" के ग्राहकोंको किसी भी पुस्तक पर डाकखर्च नहीं देना पड़ेगा ।

(३) स्थायी ग्राहकोंको मालामें प्रकाशित सभी पुस्तकोंको खरीदना होगा ।

(४) मालामें प्रकाशित पुस्तकें, सूचना देकर, वी० पी० से, भेजी जायँगी ।

मैनेजर, वैदिक-पुस्तकमाला, कृष्णगढ़, सुलतानगंज, भागलपुर

ऋग्वेद-संहिता

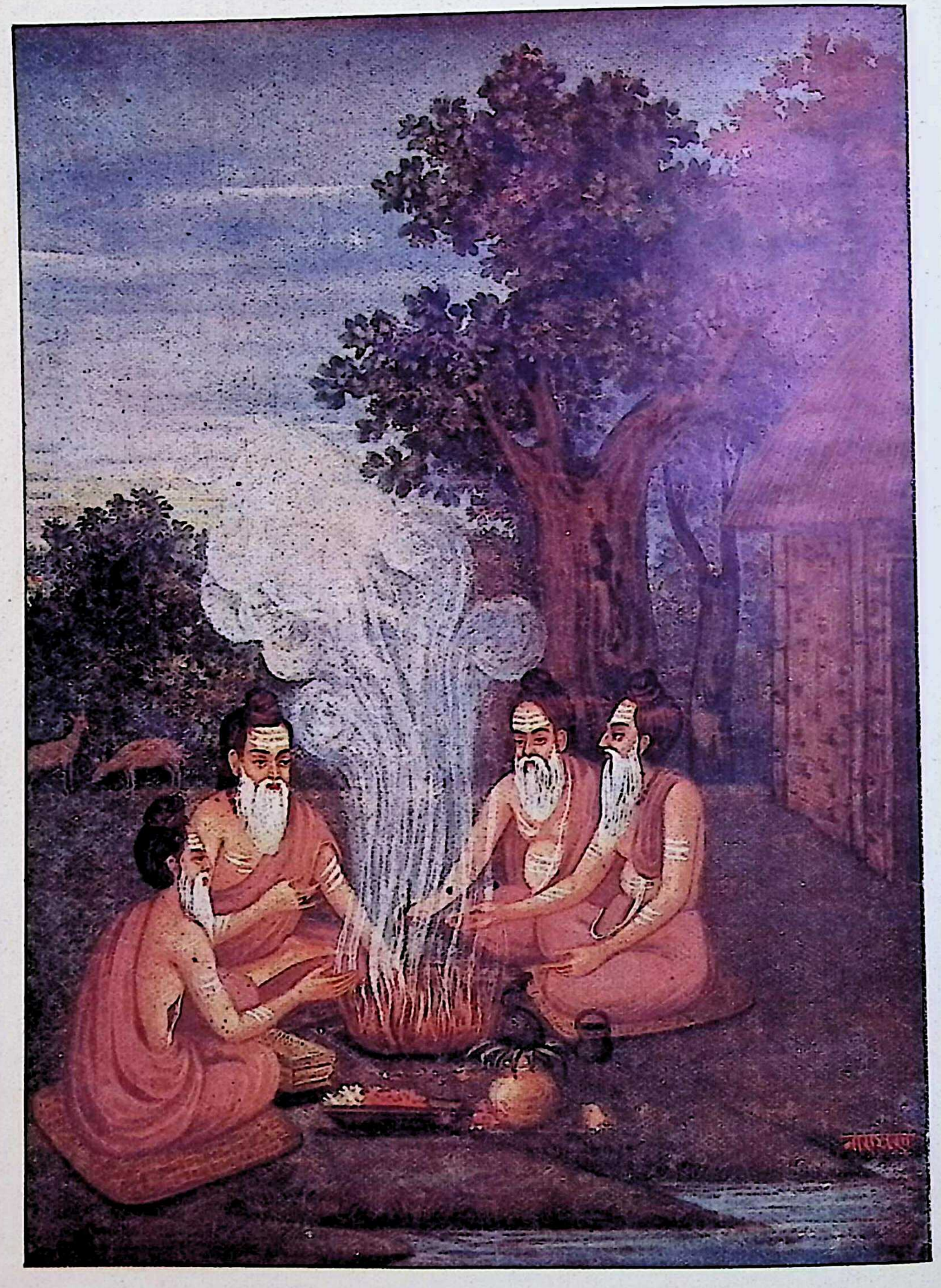

वेद-कालीन ऋष्याश्रम

अष्टमी

ओं तत्सत्

ऋग्वेद-संहिता

(हिन्दी टीका और टिप्पनियोंसे संयुक्त)

२ अष्टक । १ मण्डल । १ अध्याय । १८ अनुवाक ।

१२२ सूक्त । विश्वेदेव देवता । यहाँसे १२५ सूक्ततक कक्षीवान् ऋषि और त्रिष्टुप् छन्द है ।

प्रवः पान्तं रघुमन्यवोन्धो यज्ञं रुद्राय मीळ्हुषे भरध्वम् ।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥१॥

---

१ क्रोध-विरहित ऋत्विको, तुम लोग कर्म-फलदाता रुद्रदेवको पालनशील और यज्ञ-साधन अन्न अर्पण करो। मैं भी उन द्युलोकके असुर (देव) और उनके अनुचर एवं स्वर्ग और पृथिवीके मध्यस्थवासी मरुद्गणकी स्तुति करता हूं । जैसे तूणीर द्वारा शत्रुओंको निरस्त किया जाता है, वैसे ही रुद्र भी वीर मरुतोंके द्वारा शत्रुओंको निरस्त करते हैं।

पत्नीव पूर्वहूतिं वावृधध्या उषासानक्ता पुरुधा विदाने।
स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः ॥२॥
ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान्।
शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥३॥
उतत्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै।
प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः ॥४॥
आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे।
प्र वः पूष्णे दावन आँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः ॥५॥
श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमोत श्रुतं सदने विश्वतः सीम्।
श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ॥६॥
स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पज्रे।
श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अग्मन् ॥७॥

---

२ जैसे स्वामीके प्रथम आह्वानपर पत्नी शीघ्र आती है, वैसे ही अहोरात्र-देवता नानाविध स्तुतियों द्वारा स्तुत होकर हमारे प्रथम आह्वानपर शीघ्र आवें। अरि-मर्दन सूर्यकी तरह उषादेवी हिरण्यवर्ण किरणोंसे युक्त होकर और विशाल रूप धारण कर सूर्यकी शोभासे शोभन हों।

३ वसनयोग्य और सर्वतोगामी सूर्य हमारी प्रसन्नता बढ़ावें। वारि-वर्षक वायु हमारा आनन्द बढ़ावें। इन्द्र औ पर्वत (मेघ) हमारी बुद्धिको बढ़ावें। विश्वेदेवगण, हमें यथेष्ट अन्न देनेकी चेष्टा करो।

४ मैं उशिज्का पुत्र हूँ। ऋत्विको, मेरे लिये अन्न-भक्षक और स्तुति-भाजन अश्विनीकुमारोंको, संसारको प्रकाशित करनेवाली उषाके समय, बुलाओ। जलके नप्ता अग्निकी स्तुति करो तथा मेरे सदृश स्तोता मनुष्योंके मा स्थानीय अहोरात्र-देवताओंको भी स्तुति करो।

५ देवगण, मैं उशिज्का पुत्र कक्षीवान् हूँ। मैं तुम्हारे सम्बन्धमें कहने योग्य स्तोत्रका, आह्वानके लिये, पाठ करता हूँ। अश्विद्वय, जैसे अपने शरीरगत श्वेतवर्ण त्वचा-रोगके विनाशके लिये घोषा नामक ब्रह्मवादिनी महिलाने तुम्हारी स्तुति की, वैसे ही मैं भी स्तुति करता हूँ। देवो, फलदाता पूषा देवकी भी स्तुति करता हूँ और अग्नि-सम्बन्धी धनक भी स्तुति करता हूँ।

६ मित्र और वरुण, मेरा आह्वान सुनो। यज्ञ-गृहमें समस्त आह्वान सुनो। प्रसिद्ध धनशाली जलाभिमानी दे खेतोंमें जल बरसाकर हमारा आह्वान सुनें।

७ मित्र और वरुण, मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। जिस स्तोत्रसे अन्नका नियमन होता है, वही स्तोत्र पढ़ा जा है; इसलिये कक्षीवान् (ऋषि) को अपनी प्रसिद्ध गौ दो। प्रसिद्ध और सुन्दर रथसे युक्त कक्षीवान्‌के प्रति प्रसन्न हो तुम लोग आओ तथा आकर मुझे पोषण करो।

अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः सचा सनेम नहुषः सुवीराः ।
जनो यः पज्रेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः ॥८॥
जनो यो मित्रावरुणावभिध्रुगपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाध्रुक् ।
स्वयं स यक्ष्मं हृदये निधत्त आप यदीं होत्राभिर्ऋतावा ॥९॥
स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः ।
विसृष्टरातिर्याति बाळ्हसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः ॥१०॥
अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः ।
नभोजुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्तये महिना रथवते ॥११॥
एतं शर्धं धाम यस्य सूरेरित्यवोचन् दशतयस्य नंशे ।
द्युम्नानि येषु वसुताती रारन् विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम् ॥१२॥
मन्दामहे दशतयस्य धासेर्द्विर्यत् पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना ।
किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन् ॥१३॥

८ मैं महान् धनवाले देवोंके धनकी स्तुति करता हूँ। हम मनुष्य हैं; इसलिये शोभन पुत्र-पौत्र आदिसे संयुक्त होकर हम इस धनका संभोग करें। जो देव अङ्गिरा गोत्रमें उत्पन्न कक्षीवान्के लिये अन्न प्रदान करते हैं, अश्व और रथ देते हैं, उनकी स्तुति करता हूँ।

९ हे मित्र और वरुण, जो तुम्हारा द्रोही है, जो किसी तरह भी तुम्हारा द्रोह करता है, जो तुम्हारे लिये सोमरसका अभिषव नहीं करता, वह अपने हृदयमें यक्ष्मा रोग धारण करता है। जो व्यक्ति यज्ञ करता और स्तुति-वचनोंसे सोमरस तैयार करता है—

१० वह व्यक्ति शान्त अश्व प्राप्त करता, मनुष्योंको परास्त करता और समान मनुष्योंमें अन्नके लिये प्रसिद्ध होता है। अतिथियोंको धन देता है और सारे युद्धोंमें हिंसक मनुष्योंकी ओर निःशङ्क होकर सदा जाता है।

११ सर्वाधिपति, आनन्द-वर्द्धक, तुम मरण-रहित स्तोत्रकारी मनुष्यके (अर्थात् मेरे) आह्वानको सुनो और आओ। तुम आकाशव्यापी हो। तुम अन्य-रक्षक-रहित रथसे संयुक्त यजमानकी समृद्धिके साधन हव्यकी प्रशंसा करना पसन्द करते हो।

१२ "जिस यजमानके दसो इन्द्रियोंके बलकारक अन्नकी प्राप्तिके लिये हम आये हैं, उसे यह मनुष्य-विजेता बल दिया"—देवोंने ऐसा कहा। इन देवोंका प्रकाशमान अन्न और धन अत्यन्त शोभा पाता है। उत्तम यज्ञमें देवता लोग अन्न दान करें।

१३ चूँकि इन्द्रियाँ दस प्रकारकी हैं; इसलिये ऋत्विक् लोग, दस अवयवोंसे युक्त अन्न धारण करके गमन करते हैं। हम विश्वदेवोंकी स्तुति करते हैं। इष्टाश्व और इष्टरश्मि नामके राजा शत्रुतारक नेताओं (वरुणादि) का क्या कर सकते हैं।

हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ।
अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ॥१४॥
चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्वस्त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः ।
रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमगभस्तिः सूरो नाद्यौत् ॥१५॥

१२३ सूक्त । उषा देवता ।

पृथूरथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः ।
कृष्णादुदस्थादर्या विहायाश्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥१॥
पूर्वा विश्वस्माद्भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री ।
उच्चाव्यख्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अगन् प्रथमा पूर्वहूतौ ॥२॥
यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते ।
देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥३॥
गृहं गृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधिनामा दधाना ।
सिषासन्ती द्योतनाशश्वदागादग्रमग्रमिद्भजते वसूनाम् ॥४॥

१४ विश्वदेव हमें हिरण्यकर्ण, मणिग्रीव और रूपवान् पुत्र प्रदान करें। श्रेष्ठ विश्वदेवगण सद्योनिर्गत स्तुति और हव्यकी आकांक्षा करें।

१५ मशर्शार राजाके चार पुत्र और विजयी आयवस राजाके तीन पुत्र मुझे बाधा देते हैं। मित्रावरुण, तुम्हारा अति विस्तृत और शोभन दीप्तिशाली रथ सूर्यकी तरह कान्ति प्राप्त किये हुए है।

१ दक्षिणा या उषाका रथ अश्व-संयुक्त हुआ। अमर देव लोग उस रथपर सवार हुए। कृष्णवर्ण अन्धकारसे उत्थित, पूजनीय, विचित्र-गतिमती और मनुष्यके निवासस्थानोंका रोग दूर करनेवाली उषा उदित हुईं।

२ सब जीवोंके पहले ही उषा जागीं। उषा अन्नदायिनी, महती और संसारको सुख देनेवाली हैं। वह युवती हैं, बार बार आविर्भूत होती हैं। ऊर्द्ध्वस्थिता उषा देवी हमारे बुलानेपर पहले ही आती हैं।

३ सुजाता उषा देवी, तुम मनुष्योंकी पालिका हो। तुम अभी मनुष्योंको जो प्रकाशांश प्रदान करती हो, उसीको प्रदान कर दानशील सविता या प्रेरक देव, सूर्यके आगमनके लिये, हमें पाप-रहित कहकर स्वीकार करें।

४ अहना या उषा प्रतिदिन नम्र भावसे हर एक घरको ओर जाती हैं। भोगेच्छाशालिनी और द्युतिमती प्रतिदिन आगमन करतीं और हव्यरूप धनका श्रेष्ठ भाग ग्रहण करती हैं। ❀

❀ अहना ही कदाचित् ग्रीकोंकी Athena या Minerva हैं।

भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व ।
पश्चासदघ्या यो अघस्य धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन ॥५॥
उदीरतां सूनृता उत्पुरन्धीरुदग्नयः शुशुचानासो अस्थुः ।
स्पार्हा वसूनि तमसापगूह्ला विष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः ॥६॥
अपान्यदेत्यभ्यन्यदेति विषुरूपे अहनी सञ्चरेते ।
परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाकरद्यौदुषाः शोशुचता रथेन ॥७॥
सदृशीरद्य सदृशीरिदुश्वो दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम ।
अनवद्यास्त्रिंशतं योजनान्येकैका क्रतुं परियन्ति सद्यः ॥८॥
जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्राकृष्णादजनिष्ट श्वितीची ।
ऋतस्य योषा न मिनाति धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती ॥९॥
कन्येव तन्वा शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥१०॥

५ सूनृता उषा, तुम भग या सूर्यकी भगिनी और वरुण या प्रकाशदेवकी सहजाता हो। तुम श्रेष्ठ हो। सब देवता तुम्हारी स्तुति करें। इसके अनन्तर जो दुःखका उत्पादक है, वह आवे। तुम्हारी सहायता पाकर उसे रथ द्वारा हम जीतेंगे।

६ सच्ची बातें कही जायँ। प्रज्ञा प्रबुद्ध हो। अत्यन्त प्रकाशमान आगे प्रज्वलित हों। इससे विचित्र प्रभावती उषा अन्धकारावृत स्पृहणीय धन आविष्कार करती हैं।

७ विलक्षण रूपवान् दोनों अहोरात्र-देवता व्यवधान-रहित होकर चलते हैं। एक जाते हैं, एक आते हैं। पर्यायगामी दोनों देवताओंमें एक पदार्थोंको छिपाते हैं, दूसरे (उषा) अतीव दीप्तिमान् रथ द्वारा उसे प्रकाशित करते हैं।

८ उषा देवी जैसे आज हैं, वैसे ही कल भी वे विशुद्ध हैं। प्रतिदिन वे वरुण या सूर्यके अवस्थिति-स्थानसे तीस योजन आगे अवस्थित होती हैं। एक-एक उषा उदय-कालमें ही गमन-आगमनरूप कार्य सम्पादित करती हैं। ❀

९ उषा दिनके प्रथमांशके आगमनका काल जानती हैं। वह स्वयं ही दीप्त और श्वेतवर्ण हैं। कृष्णवर्णसे उनकी उत्पत्ति हुई है। वह सूर्य-लोकमें मिश्रित होती हैं; किन्तु उसको हानि नहीं पहुँचातीं; बल्कि उसकी शोभा बढ़ाती हैं।

१० देवि, कन्याकी तरह अपने अंगोंको विकसित करके तुम दानपरायण और दीप्तिमान् सूर्यके निकट जाओ। अनन्तर युवतीकी तरह अतीव प्रकाश-सम्पन्न होकर, कुछ हँसती हुई, सूर्यके सामने अपना हृदय-देश उघारो।

❀ सायणाचार्यके मतानुसार सूर्य प्रतिदिन ५०५९ योजन भ्रमण करते हैं। इस तरह सूर्य, प्रत्येक दण्डमें, ७९ योजन घूमते हैं। चूँकि उषा सूर्यसे ३० योजन पूर्व-गामिनी हैं; इसलिये सूर्योदयसे प्रायः आधा दण्ड ($\frac{३}{८}$) पहले उषाका उदय मानना चाहिये। कुछ यूरोपियनोंके मतसे सूर्य प्रतिदिन २०००० मील चलते हैं।

सुसङ्काशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशेकम् ।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उषसो नशन्त ॥११॥
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारायतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।
पराचयन्ति पुनराचयन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥१२॥
ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रं भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि ।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छास्मासु रायोमघवत्सु चस्युः ॥१३॥

१२४ सूक्त । उषा देवता ।

उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन् सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् ।
देवो नो अत्र सवितान्वर्थं प्रासावीद्द्विपत् प्र चतुष्पदित्यै ॥१॥
अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषाव्यद्यौत् ॥२॥
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥३॥

११ जैसे माताके देहको धो देनेपर कन्याका रूप उज्ज्वल हो जाता है, वैसे ही तुम भी होकर दर्शनके लिये अ शरीरको प्रकाशित करो। तुम कल्याणशीला हो। अन्धकारको दूर करो। अन्य उषाएँ तुम्हारे कार्यको नहीं व्याप्त करेंगी

१२ अश्व और गौसे सम्पन्न, सर्वकालीन और सूर्यरश्मियोंके साथ तमोनिवारणके लिये चेष्टा-विशिष्ट अ देवियाँ कल्याणकर नाम धारण करके जाती और आती हैं।

१३ उषा, ऋत या सूर्यकी रश्मिका अनुधावन करती हुई हमें कल्याणकारिणी प्रज्ञा प्रदान करो। हम तुम्हें बुला हैं। अन्धकार दूर करो। हम हविर्लक्षण धनसे युक्त हैं। हमारे पास धन हो।

१ अग्निके समिद्धमान होनेपर उषा, अन्धकारका निवारण करती हुई, सूर्योदयकी तरह प्रभूत ज्योति फैलाती हमारे व्यवहारके लिये सविता द्विपद और चतुष्पदके संयुक्त धन देते हैं।

२ उषा देव-सम्बन्धी व्रतोंमें विघ्न नहीं करती, मनुष्योंकी आयुका ह्रास करती, अतीत और नित्य उषाओं समान हैं और आगामिनी उषाओंकी प्रथमा हैं। उषा द्युति फैलाती हैं।

३ उषा स्वर्ग-पुत्री हैं। वह प्रकाश द्वारा आच्छादित होकर धीरे-धीरे पूर्व दिशाकी ओर दिखाई देती हैं। मानो सूर्यका अभिप्राय जानकर ही उनके मार्गपर अच्छी तरह भ्रमण करती हैं। वह कभी भी दिशाओंको नहीं मारती

उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधा इवाविरकृत प्रियाणि ।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात् पुनरेयुषीणाम् ॥४॥
पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवाँ जनित्र्यकृत प्रकेतुम् ।
व्युप्रथते वितरं वरीय ओभापृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥५॥
एवेदेषा पुरुतमा दृशेकं नाजामिं न परिवृणक्ति जामिम् ।
अरेपसा तन्वा शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥६॥
अभ्रातेव पुंस एतिप्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषाहस्रेव निरिणीते अप्सः ॥७॥
स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यंके समनगा इव व्राः ॥८॥
आसां पूर्वासामहसु स्वसॄणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥९॥
प्रबोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।
रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत् स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥१०॥

---

४ जैसे सूर्य अपना वक्षःस्थल प्रकटित करते हैं और नोधा ऋषिने जैसे अपनी प्रिय वस्तुका आविष्कार किया है, उसी प्रकार उषाने भी अपनेको आविष्कृत किया है। जैसे गृहिणी जागकर सबको जगाती है, वैसे ही उषा भी मनुष्योंको जगाती हैं। अभिसारिकाओंके बीच उषा सर्वापेक्षा अधिक आती हैं।

५ विस्तृत आकाशके पूर्व भागमें उत्पन्न होकर उषा दिशाओंको चेतनता-युक्त करती हैं। उषा पितृ-स्थानीय स्वर्ग और पृथिवीके अन्तरालमें रहकर अपने तेजसे देवोंको परिपूर्ण करके विस्तृत और विशिष्ट रूपसे प्रख्यात हुई हैं।

६ इस तरह अत्यन्त विस्तृत होकर उषा सरलतासे दर्शन-निमित्त मनुष्यादि और देवादिमेंसे किसीको भी नहीं छोड़तीं। प्रकाशशालिनी उषा विमल शरीरमें क्रमशः स्पष्ट होकर छोटे या बड़े किसीसे भी नहीं हटतीं।

७ भ्रातृ-हीना स्त्री जैसे पित्रादिके अभिमुख गमन करती है, गतभर्तृका जैसे धन-प्राप्तिके लिये घर आती है, उषा भी वैसा ही करती हैं। जैसे पत्नी पतिकी अभिलाषिणी होकर सुन्दर वस्त्र पहनती हुई हास्य द्वारा अपनी दन्त-राजि प्रकाशित करती है, उसी प्रकार उषा भी करती हैं।

८ भगिनी-रूपिणी रात्रिने बड़ी बहन (उषाको) अपर रात्रि-रूप उत्पत्ति-स्थान प्रदान किया है एवं उषाको जगाकर स्वयं चली जाती है। सूर्य-किरणोंसे अन्धकार हटाकर उषा विद्युद्राशिकी तरह जगत्‌को प्रकाशित करती हैं।

९ इन सब भगिनीभावापन्न प्राचीन उषाओंमें पहली दूसरीके पीछे प्रतिदिन गमन करती हैं। प्राचीन उषाओंकी तरह नयी उषा सुदिन पैदा करती हुई हमें प्रभूत-धन-विशिष्ट करके प्रकाशित करें।

१० धनवती उषा, हविर्दाताओंको जगाओ। पणिलोग न जागकर निद्रामें पड़ें। धनशालिनि, धनी यजमानोंको समृद्धि दो। सूनृते, तुम सारे प्राणियोंको क्षीण करती हुई यजमानको समृद्धि दो।

अवेयमश्वैद्युवतिः पुरस्ताद्युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम् ।
वि नूनमुच्छादसति प्रकेतुर्गृहं गृहमुपतिष्ठाते अग्निः ॥११॥
उत्तेवयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरिवाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ १२ ॥
अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेवीवृधध्वमुशतीरुषासः
युष्माकं देव रवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥ १३ ॥

◆

१२५ सूक्त। दान देवता।❀

प्रातारत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या निधत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयूरायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥ १ ॥

११ युवती उषा पूर्व दिशासे आती और सात घोड़ोंको रथमें जोतती हैं। वह दिनकी सूचना करके रूप-रहित अन्तरिक्षमें अन्धकारका निवारण करती हैं। घर-घरमें आग जलती है।

१२ उषा, तुम्हारा उदय होनेपर चिड़ियाँ अपने घोंसलेसे ऊपर उड़ती हैं। अन्न-प्राप्तिमें आसक्त होकर मनुष्य ऊपर मुँह करके जाते हैं। देवि, देव पूजन-गृहमें अवस्थित हव्य-दाता मनुष्यके लिये प्रभूत धन ले आओ।

१३ स्तुति-पात्र उषाएँ, मेरे मन्त्र द्वारा तुम स्तुत हो। मेरी समृद्धिकी इच्छा करके हमें वर्द्धित करो। देवियो, तुम्हारी रक्षा प्राप्त करके हम सहस्रसंख्यक और शतसंख्यक धन प्राप्त करें।

१ स्वनय राजाने, प्रातःकाल आकर, प्रातःकाल ही रत्न ला रखा। कक्षीवान्ने उठकर, रत्न ग्रहणकर, स्थापित किया। सुवीर दीर्घतमाने उस रत्नराजि द्वारा प्रजा और आयुकी वृद्धि करके धन लाभ किया।

❀ "गुरुकुलमें अध्ययन समाप्त कर रात्रिमें घर आते हुए कक्षीवान् ऋषि मार्गमें सो गये। स्वनय नामके राजा, अनुचरोंके साथ, घूमते हुए आये और कक्षीवान्का सौन्दर्य देखकर मुग्ध हो गये। राजा उन्हें घर लाये और अपनी दस कन्याओंके साथ उन्हें ब्याह दिया। राजाने ऋषिको १०० निष्क (तौल) सुवर्ण, १८० घोड़े, १०० वृषभ, १०६० गायें और ११ रथ, दहेजमें, प्रदान किये। इन सबको कक्षीवान्ने अपने पिता दीर्घतमाको अर्पण कर दिया।" —सायणाचार्यने यहाँ यह कथा लिखी है। स्वनय राजाका दान ही इस सूक्तका देवता है अर्थात् उस दानके सम्बन्धमें ही यह सू रचा गया है।

सुगुरसत् सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥ २ ॥
आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टः पुत्रं वसुमता रथेन ।
अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य क्षयद्वीरं वर्द्धय सूनृताभिः ॥ ३ ॥
उपक्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं चयक्ष्यमाणं च धेनवः ।
पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उपयन्ति विश्वतः ॥ ४ ॥
नाकस्य पृष्ठे अधितिष्ठति श्रितो यः पृणाति सहदेवेषु गच्छति ।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा ॥ ५ ॥
दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः ।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्रतिरन्त आयुः ॥ ६ ॥
मा पृणन्तो दुरितमेन आरन् मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः ।
अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभिसंयन्तु शोकाः ॥ ७ ॥

२ उन राजाके पास बहुत गो धन हो। उनके पास बहुत सुवर्ण और बहुत घोड़े हों। उन्हें इन्द्र बहुत अन्न दें। जैसे लोग रस्सीसे पशु, पक्षी आदिको बाँध देते हैं, उसी तरह उन्होंने भी प्रातःकाल पैदल ही आकर आगमनकारीको धन द्वारा आबद्ध किया।

३ मैं यज्ञके त्राता शोभनकर्माको देखनेकी इच्छा करके, सुसज्जित रथपर चढ़कर, आज उपस्थित हुआ हूँ। दीप्तिशाली मादक सोमके अभिषुत रसका पान करो। प्रभूत-वीर-पुत्रादि-विशिष्टको प्रिय और सत्य वाक्य द्वारा समृद्ध करो।

४ दुग्धवती और कल्याण-दायिनी गायें, यजमान और यज्ञ-संकल्पकारीके पास जाकर, दुग्ध प्रदान करती हैं। समृद्धिके कारणभूत घृतधारा, तर्पणकारी और हितकारी पुरुषोंके पास, चारो ओरसे उपस्थित होती है।

५ जो व्यक्ति देवोंको प्रसन्न करता है, वह स्वर्गके पृष्ठदेशमें अवस्थान करता तथा देवोंके बीच गमन करता है। प्रवहमान जल, उसके पास, तेजोविशिष्ट सार प्रदान करता है। पृथिवी शस्य आदिसे सफल होकर उसे सन्तोष प्रदान करती है।

६ जो व्यक्ति दक्षिणा प्रदान करता है, उसीकी ये सारी मणि-मुक्तादि वस्तुएँ होती हैं। दक्षिणा दाताके लिये द्युलोकमें सूर्य रहते हैं। दक्षिणा-दाता ही जरा-मरण-शून्य स्थान प्राप्त करते हैं। दक्षिणा देनेवाले दीर्घ आयु प्राप्त करते हैं।

७ जो देवोंको प्रसन्न रखता है, उसे दुःख और पाप नहीं मिलते; शोभन-व्रतशाली स्तोता भी जराग्रस्त नहीं होते। देवोंके प्रीति-प्रदाता और स्तुतिकर्त्तासे भिन्न पुरुषोंको पाप आश्रित करे। जो देवोंको प्रसन्न नहीं करते, उन्हें शोक प्राप्त हो।

१२६ सूक्त। १ से ५ मंत्र राजा भावयव्यके लिये हैं और इनके ऋषि कक्षीवान् हैं। ६ठा मंत्र राजाकी स्त्रीके लिये है और इसके ऋषि उक्त राजा हैं। ७ वाँ मंत्र लोमशाके पतिके लिये है और इसके ऋषि लोमशा हैं। १ से ५ तक त्रिष्टुप् और अन्तके दो अनुष्टुप्में हैं।

अमन्दान् स्तोमान् प्रभरे मनीषा सिन्धावधिक्षियतो भाव्यस्य।
यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः॥ १॥
शतं राज्ञोनाधमानस्य निष्काञ्छतमश्वान् प्रयतान्त्सद्य आदम्।
शतं कक्षीवाँ असुरस्य गोनां दिवि श्रवो जरमाततान॥ २॥
उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दशरथासो अस्थुः।
षष्टिःसहस्रमनुगव्यमागात् सनत् कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम्॥ ३॥
चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान् कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः॥ ४॥
पूर्वामनुप्रयतिमाददे वस्त्रीन्युक्ताँ अष्टावरिधायसो गाः।
सुबन्धवो ये विश्या इव व्राः अनस्वन्तः श्रव ऐषन्त पज्राः॥ ५॥
आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता॥ ६॥

---

१ सिन्धुनिवासी भावयव्य-पुत्र स्वनयके लिये, अपने बुद्धि-बलसे, बहुसंख्यक स्तोत्र सम्पादन (प्रणयन) का हूँ। हिंसा-विरहित राजाने कीर्त्ति-प्राप्तिकी इच्छासे मेरे लिये हजार सोम-यज्ञोंका अनुष्ठान किया है।

२ असुर-राजाके ग्रहणके लिये मुझसे याचना करनेपर मैं (कक्षीवान्) ने इनसे १०० निष्क (आभरण या स्वर्णमा १०० घोड़े और १०० बैल ले लिये। स्वर्ग-लोकमें राजा नित्य कीर्त्ति-विस्तार करेंगे।

३ स्वनय द्वारा भूरे रंगके अश्ववाले दस रथ मेरे पास आये, जिनपर वधुएँ आरूढ़ थीं। १०६० गायें भी पी आयीं। मैं (कक्षीवान्) ने ग्रहण करनेके पश्चात् ही सब अपने पिताको दे दिया।

४ हजार गायोंके सामने, दसों रथोंमें चालीस (१-१में ४-४) लोहितवर्ण अश्व पंक्ति-बद्ध होकर चलने कक्षीवान्के अनुचर उनके लिये घास आदि जुटाकर मदमत्त और स्वर्णाभरण-विशिष्ट एवं सतत गमनशील अश्वों मलने लगे।

५ बन्धुगण, पहलेके दानका स्मरण करके तुम्हारे लिये तीन और आठ—सब ग्यारह रथ मैंने किये हैं। बहुमूल्य गायोंको लिया है। प्रजाओंकी तरह परस्पर-अनुराग-सम्पन्न होकर संकटापन्न अङ्गिरा कीर्त्ति प्राप्त करनेकी चेष्टा करें।

६ यह सम्भोग-योग्य रमणी (लोमशा) अच्छी तरह आलिङ्गित होकर, सूतवत्सा नकुलीकी तरह, चिर काल रमण करती है। बहुरेतोयुक्ता होकर रमणी मुझे (स्वनय राजाको) बहु बार भोग प्रदान करती है।

उपोप मे परामृशमामेदभ्राणि मन्यथाः ।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥ ७ ॥

९ अनुवाक । १२७ सूक्त । अग्नि देवता । यहाँसे १३९ सूक्तोंतकके ऋषि दिवोदासके पुत्र परुच्छेद हैं । छन्द अतिधृति ।

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्द्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनुवष्टि शोचिषा जुह्वानस्य सर्पिषः ॥ १ ॥
यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमाविशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥ २ ॥
स हि पुरुचिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ।
वीलुचिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत् स्थिरम् ।
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥

---

७ (स्वनय राजाके लिये वचन—) मेरे पास आकर मुझे अच्छी तरह स्पर्श करो । यह नहीं जानना कि, मेरे शरीरमें म लोम हैं । मैं गान्धारी मेषी या गर्भधारिणी रमणीकी तरह लोमपूर्ण और पूर्णावयवा हूँ ।

१ विद्वान् विप्र या ब्राह्मणकी तरह प्रज्ञावान्, बलके पुत्र-स्वरूप, सबके निवास-भूमि-रूप और अत्यन्त दानशील ग्निको मैं होता कहकर सम्मान-युक्त करता हूँ । यज्ञ-निर्वाहकारी अग्नि उत्कृष्ट-देव-पूजा-समर्थ होकर चारों ओर फैली ई घृतकी दीप्तिका अनुसरण करके अपनी शिखा द्वारा उस घृतको स्वीकृत करते हैं ।

२ मेधावी शुभ्रदीप्ति अग्निदेव, हम यजमान हैं । हम मनुष्योंके उपकारके लिये मननशील और अत्यन्त प्रस- ता-दायक मन्त्र द्वारा अङ्गिरा लोगोंमें महान् तुम्हें बुलाते हैं । सर्वतोगामी सूर्यकी तरह तुम यजमानोंके लिये देवोंको ाते हो । केशकी तरह विस्तृत ज्वाला-विशिष्ट और अभीष्टवर्षी हो । यजमान लोग अभिमत फल पानेके लिये तुम्हें न्न करें ।

३ अग्निदेव अतीव दीप्तिसे संयुक्त ज्वाला द्वारा भली भाँति दीप्यमान हैं । वह विद्रोहियोंके छेदनार्थ परशुकी तरह ाशमें अमूल्य हैं । उनके साथ मिलनेपर दृढ़ और स्थिर वस्तु भी जलकी तरह शीर्ण हो जाती है । शत्रुओंका विनाश ेवाला धनुर्धर जैसे नहीं भागता, वैसे ही अग्नि भी शत्रुओंको परास्त करनेसे बाज नहीं आते ।

दृह्लाचिदस्मा अनुदुर्यथा विदे तेजिष्ठाभिररणिभिर्दाष्ट्यवसेग्नये दाष्ट्यवसे ।
प्रयः पुरूणि गाहते तक्षद्वनेव शोचिषा ।
स्थिरा चिदन्ना निरिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥ ४ ॥
तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरादप्रायुषे दिवातरात् ।
आदस्यायुर्ग्रभणवद्वीलु शर्म न सूनवे ।
भक्तमभक्तमवोव्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः ॥ ५ ॥
स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिरप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः ।
आदद्धव्यान्याददिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा ।
अधस्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् ॥ ६ ॥
द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्त उपवोचन्त भृगवो मथ्नन्तो दाशा भृगवः
अग्निरीशे वसूनां शुचिय धर्णिरेषाम् ।
प्रियाँ अपिधीँर्वनिषीष्ट मेधिर आवनिषीष्ट मेधिरः ॥ ७ ॥

४ जैसे विद्वान् पुरुषको द्रव्य दान किया जाता है, उसी प्रकार अग्निको सारवान् हव्य, मन्त्रानुक्रमसे, प्रदान किया जाता है। तेजोविशिष्ट यज्ञादि द्वारा अग्नि हमारी रक्षाके लिये स्वर्गादि प्रदान करते हैं। यजमान भी रक्षार्थ अग्निको हव्य देते हैं। यजमानके द्वारा प्रदत्त हव्यमें प्रवेश करके अग्नि, अपनी ज्योतिःशिखा द्वारा, उसे वनकी तरह जला डालते हैं। अग्निदेव अपनी ज्योति द्वारा अन्नादिका परिपाक करते और तेजके द्वारा दृढ़ द्रव्यको विनष्ट करते हैं।

५ रातमें अग्निदेव दिनसे भी अधिक दर्शनीय हो जाते हैं। दिनमें अग्नि पूरी आयु या तेजस्वितासे शून्य रहते हैं। हम अग्निके उद्देश्यसे वेदीके पास हव्य दान करते हैं। जैसे पिताके पास पुत्र दृढ़ और सुखकर गृह प्राप्त करता है, उसी प्रकार अग्नि भी अन्न ग्रहण करता है। भक्त और अभक्तको समझकर भी अग्नि दोनोंकी रक्षा करते हैं। हव्य-भक्षण करके अग्नि अजर हो जाते हैं।

६ मरुत्के बलकी तरह स्तवनीय अग्नि यथेष्ट ध्वनिसे युक्त हैं। कर्मकारिणी उर्वरा अर्थात् श्रेष्ठ भूमिपर अग्नि-यज्ञ करना उचित है। सेना-विजय करनेके लिये अग्निका याग करना उचित है। अग्नि हव्य भक्षण करते हैं। वह सर्व दानशील और यज्ञकी पताका हैं। वह सर्वत्र पूजनीय हैं। यजमानोंके लिये हर्षदाता और प्रसन्न अग्निके मार्गकी, निर्वाध राजपथकी तरह, सुख-लाभके लिये, सब लोग सेवा करते हैं।

७ श्रौत और स्मार्त्त—उभय प्रकारके अग्निका गुण कहनेवाले, दीप्तिशाली, नमस्कार-प्रवीण और हव्यदाता भृगुगोत्रज महर्षि लोग, हवि देनेके लिये, अरणि द्वारा अग्निका मन्थन करके स्तुति करते हैं। प्रदीप्त अग्नि सारे धनों अधीश्वर हैं। अग्नि यज्ञवाले हैं और भली भाँति प्रिय हव्य भोगनेवाले हैं। अग्नि मेधावी हैं और वह अन्य देवताको भाग देते हैं।

विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दम्पतिं भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे ।
अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया ।
अमी च विश्वे अमृतास आवयो हव्या देवेष्वावयः ॥ ८ ॥
त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे देवतातये रयिर्न देवतातये ।
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
अधस्माते परिचरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर ॥ ९ ॥
प्र वो महे सहसा सहस्वत उषर्बुध पशुषे नाग्नये स्तोमो बभूत्वग्नये ।
प्रति यदीं हविष्मान्विश्वासु क्षासु जोगुवे ।
अग्रे रेभो न जरत ऋषूणां जूर्णिर्होत ऋषूणाम् ॥ १० ॥
स नो नेदिष्ठं ददृशान आभराग्ने देवेभिः सचनाः सुचेतुना महो रायः सुचेतुना ।
महि शविष्ठ नस्कृधि सञ्चक्षे भुजे अस्यै ।
महि स्तोतृभ्यो मघवन्त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा ॥ ११ ॥

* * *

८ सारे यजमानोंके रक्षक, सारे मनुष्योंके एकसे गृह-पालक, सर्व-सम्मत-फल-विशिष्ट, स्तुति-वाहक और मनुष्य आदिके लिये अतिथिकी तरह पूज्य अग्निको, भोगके लिये, हम बुलाते हैं। जैसे पुत्र लोग पिताके पास जाते हैं, वैसे ही हव्यके लिये ये सारे देवता अग्निके पास आते हैं। ऋत्विक् लोग भी देवोंके यज्ञ-कालमें, अग्निको हव्य प्रदान करते हैं।

९ जैसे देवोंके यजनके लिये धन पैदा होता है, उसी प्रकार हे अग्नि, तुम भी देवोंके यज्ञार्थ उत्पन्न होते हो। अपने बलसे तुम शत्रुओंके अभिभवकर्त्ता और अतीव तेजस्वी हो। तुम्हारा आनन्द अत्यन्त बल-दाता है। तुम्हारा यज्ञ अत्यन्त फल-प्रद है। हे अजर और हे भक्तोंके जरा-निवारक अग्नि, इसीलिये यजमान लोग, दूतोंकी तरह, तुम्हारी पूजा करते हैं।

१० हे स्तोता लोग, चूँकि हविवाले यजमान इन अग्निके लिये सारी वेदी-भूमिपर बार-बार गमन करते हैं; इस लिये तुम्हारा स्तोत्र उस पूज्य, शत्रु-पराभवकारी, प्रातःकालमें जागरणशील और पशु-दाता अग्निकी प्रीति उत्पन्न करनेमें समर्थ हो। धनवान्के पास जैसे बन्दी स्तव करता है, वैसे ही होता लोग पहले, देवोंमें श्रेष्ठ, अग्निकी स्तुति करते हैं।

११ हे अग्नि, यद्यपि तुम्हें पासमें ही हम प्रदीप्त देखते हैं; तथापि तुम देवोंके साथ आहार करते हो। तुम अपने शोभन अन्तःकरणसे अपने अधीनके लिये अनुग्रह करके पूजनीय धन लाते हो। बलवान् अग्निदेव, हमारे लिये यथेष्ट अन्न प्रदान करो, जिससे हम पृथिवीको देख और भोग सकें। मघवन् अग्नि, स्तोताओंके लिये वीर्यशाली धन प्रदान करो। यथेष्ट बल-सम्पन्न होकर क्रूर व्यक्ति जैसे शत्रु-विनाश करता है, वैसे ही हमारे शत्रुका विनाश करो।

१२८ सूक्त । अतिधृति छन्द ।

अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनुव्रतमग्निः स्वमनुव्रतम् ।
विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते ।
अदब्धो होता निषददिड़स्पदे परिवीत इड़स्पदे ॥ १ ॥
तं यज्ञसाधमपि वातयामस्यृतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता ।
स न ऊर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति ।
यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः ॥ २ ॥
एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिक्रदद्दधद्रेतः कनिक्रदत् ।
शतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः ।
सदो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु ॥ ३ ॥
स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमेग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति
क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे ।
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ॥ ४ ॥

१ देवोंको बुलानेवाले और अतीव यज्ञशील यह अग्नि फल-प्रार्थियोंके और अपने व्रत या हविर्भोजनके उद्देश्यसे मनुष्यसे ही उत्पन्न होते हैं। सारे विषयोंके कर्त्ता अग्निदेव बन्धुकामी और अन्नाभिलाषी यजमानके धन-स्थानीय हैं। पृथिवीमें सार-भूत वेदीपर, यज्ञ-स्थानमें, अहिंसित, होम-निष्पादक तथा ऋत्विगुवेष्टित अग्नि बैठे हैं।

२ हम लोग यज्ञानुष्ठान और घृत आदिसे युक्त तथा नम्रतासे सम्पन्न स्तोत्र द्वारा बहु हव्यवाले और देव-यज्ञमें साधक अग्निकी, परितोषके साथ, सेवा करते हैं। वह अग्नि हमारे हव्यरूप अन्नको लेनेमें समर्थ होकर नाशको नहीं प्राप्त होंगे। मनुके लिये मातरिश्वाने अग्निको, दूरसे लाकर, प्रदीप्त किया था। इसी प्रकार, दूरसे, हमारी यज्ञशालामें अग्नि आवें। *

३ सदा गाये या स्तुति किये जानेवाले, हविः-सम्पन्न, अभीष्ट-फलदाता और सामर्थ्यशाली अग्नि शब्द करके जाते हुए तुरत पार्थिव वेदीकी चारो ओर शब्द करके आते हैं। अग्निदेव स्तोत्र ग्रहण करके अग्रस्थानीय शिखा द्वारा चारो ओर प्रकाशित हो रहे हैं। उच्च-स्थानीय अग्नि उत्तम यज्ञमें तुरत आते हैं।

४ शोभनकर्मा और पुरोहित अग्नि हर एक यजमानके घरमें नाश-रहित यज्ञको जान सकते हैं। अग्नि कर्म द्वारा यज्ञ जान सकते हैं। वह कर्मोंके विविध फलदाता बनकर यजमानके लिये अन्नकी इच्छा करते हैं। अग्नि हव्य आदिको ग्रहण करते हैं; क्योंकि वह घृत-भक्षी अतिथिके रूपमें उत्पन्न हुए हैं। अग्निके प्रवृद्ध होनेपर हव्यदाता विविध फल प्राप्त करते हैं।

---

* १ मण्डल, ६० सूक्त, १ मंत्रसे विदित होता है कि, भृगुके लिये भी मातरिश्वा ही अग्निको लाये थे।

क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चतेऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्येषिराय न भोज्या।
सहि ष्मादानमिन्वति वसूनां च मज्मना।
स नस्त्रासते दुरितादभिह्रुतः शंसादघादभिह्रुतः॥ ५॥
विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न शिश्रथच्छ्रवस्यया न शिश्रथत्।
विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे।
विश्वस्मा इत् सुकृते वारमृण्वत्यग्निर्द्वारा व्यृण्वति॥ ६॥
स मानुषे वृजने शन्तमो हितोऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्पतिः प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः।
स हव्या मानुषाणामिड़ाकृतानि पत्यते।
स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्तेर्महो देवस्य धूर्तेः॥ ७॥
अग्निं होतारमीड़ते वसुधितिं प्रियं चेतिष्ठमरतिं न्येरिरे हव्यवाहं न्येरिरे।
विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम्।
देवासो रण्वमवसे वसूयवो गीर्भिरण्वं वसूयवः॥ ८॥

* * *

५ जैसे मरुत् लोग भक्षणीय द्रव्यको एकमें मिलाते हैं, इन अग्निको जैसे भक्ष्य द्रव्य दिया जाता है, वैसे ही यजमान लोग कर्म द्वारा अग्निकी प्रबल शिखामें, तृप्तिके लिये, भक्षणीय द्रव्य मिलाते हैं। अपने धनके अनुसार यजमान हव्य दान करता है। जो पाप हमारा हरण करता है, उस हरणकारी दुःख और हिंसक पापसे अग्नि हमें बचावें।

६ विश्वात्मक, महान् और विरामरहित अग्नि सूर्यकी तरह दक्षिण हाथमें धन रखते हैं। उनका वह हाथ यज्ञकारीके लिये श्लथ होता है, खुला रहता है। केवल हवि पानेको आशासे अग्नि उसे नहीं छोड़ते। अग्निदेव, सारे हविःकामी देवोंके लिये तुम हवि वहन करते हो। सब सुकृत पुरुषोंके लिये अग्नि वरणीय धन प्रदान करते और स्वर्गका द्वार उन्मुक्त करते हैं।

७ मनुष्यके पाप-निमित्तक यज्ञमें अग्नि विशेष हितकारी हैं। विजयी राजाकी तरह यज्ञ-स्थलमें अग्नि मनुष्यके पालक और प्रिय हैं। यजमानोंकी यज्ञवेदीमें रखे हव्यके लिये अग्नि आते हैं। हिंसक यज्ञ-बाधकके भयसे और उन महान् पापदेवकी हिंसासे अग्निदेव हमारा उद्धार करें।

८ धनधारक, सर्व-प्रिय, सुबुद्धिदाता और विरामरहित अग्निकी, ऋत्विक् लोग, स्तुति करते और इन्हें भली-भाँति प्राप्त किये हुए हैं। हव्यवाही, प्राणियोंके प्राण-रूप, सर्वप्रज्ञा-समन्वित, देवोंके बुलानेवाले, यजनीय और मेधावी अग्निको ऋत्विकोंने अच्छी तरह प्राप्त कर लिया है। अर्थाभिलाषी होकर ऋत्विक् लोग, अग्निको हव्य-रूप अन्न देनेको इच्छा करते हुए, आश्रय-प्राप्तिके लिये, रमणीय और शब्दकारी अग्निको प्राप्त हुए हैं।

१२९ सूक्त । इन्द्र देवता ।

यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातये पाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि ।
सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम् ।
सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम् ॥ १ ॥
सः श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासुचिद्दक्षाय्य इन्द्र भरहूतये नृभिरसि प्रतूर्तये नृभिः ।
यः शूरैः स्वः सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता ।
तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥ २ ॥
दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कञ्चिद्यावीररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम् ।
इन्द्रोत तुभ्यं तद्दिवे तद्रुद्राय स्वयशसे ।
मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृलीकाय सप्रथः ॥ ३ ॥
अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम् ।
अस्माकं ब्रह्मोतये वा पृत्सुषु कासुचित् ।
नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥ ४ ॥
निषूनमातिमतिं कयस्यचित्तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभिरुग्राभिरुग्रोतिभिः ।
नेषिणो यथा पुरानेनाः शूर मन्यसे ।
विश्वानि पूरोरपपर्षि वह्निरासा वह्निर्नो अच्छ ॥ ५ ॥

---

१ हर्ष-सम्पन्न यज्ञगामी इन्द्र, यज्ञ-लाभके लिये रथपर चढ़कर जिस प्रभूत ज्ञान-युक्त यजमानके पास जाते और जिसे धन और विद्यामें उन्नत करते हो, उसे तुरत सफल-मनोरथ और हव्यशाली कर दो । हर्ष-युक्त इन्द्र, हम पु हितोंमें भी पुरोहित हैं; हमारे स्तव करनेपर तुम शीघ्रतासे हमारी स्तुति और हव्य ग्रहण करते हो ।

२ इन्द्र, तुम युद्धके नेता हो । तुम मरुतोंके साथ प्रधान-प्रधान युद्धोंमें स्पर्द्धाके साथ शत्रु-संहारमें समर्थ हो वीरोंके साथ तुम स्वयं संग्राम-सुख अनुभव करते हो । ऋत्विकोंकी स्तुति करनेपर तुम उन्हें अन्न दो । हमारी सुनो । प्रार्थनापरायण ऋत्विक् लोग गमनशील अन्नवान् इन्द्रकी, अश्वकी तरह, सेवा करते हैं ।

३ इन्द्र, तुम शत्रुओंका नाश करनेवाले हो । वृष्टिपूर्ण त्वचारूप मेघका भेदन करके जल गिराते हो और मर्त्य तरह गमनशील मेघको पकड़कर और उसे वृष्टि-रहित करके छोड़ देते हो । इन्द्र, तुम्हारे इस कार्यको हम तुमसे द्यु, यशोयुक्त रुद्र, प्रजाओंके सुखदायी मित्र तथा वरुणसे कहेंगे ।

४ ऋत्विको, अपने यज्ञमें हम इन्द्रको चाहते हैं । इन्द्र हमारे सखा, सर्व-यज्ञगामी, शत्रुओंके अभिभवकारी हमारे सहायक हैं । वह यज्ञ-विघ्नकारियोंको पराभूत करते और मल्लोंमें सम्मिलित हैं । इन्द्र, तुम हमारे पालनके हमारी रक्षा करो । लड़ाईके क्षेत्रमें तुम्हारे विरुद्ध शत्रु नहीं खड़ा हो सकता । तुम्हीं सारे शत्रुओंका निवारण करते हो ।

५ उग्र इन्द्र, अपने भक्त यजमानके विरुद्धाचारीको, उग्र-रक्षणकार्य-रूप तेजोमय उपायोंसे, अवनत कर देते हो । तुम पहले हमारे पूर्वजोंको मार्ग दिखाकर ले गये थे, वैसे ही हमें भी ले जाओ । तुम्हें संसार निष्पाप जानता है । तुम जगत्पालक होकर मनुष्यके सारे पापोंको दूर करते हो । हमारे सामने यज्ञ-फल लाकर अनिष्टोंका विनाश करो ।

प्रतद्वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान् मन्मरेजति रक्षोहा मन्म रेजति।
स्वयं सो अस्मदानिदो वधैरजेत दुर्मतिम्।
अवस्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत्॥ ६॥
वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम्।
दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृचीमहि।
आसत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिर्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः॥ ७॥
प्रप्रावो अस्मे स्वयशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन्दुर्मतीनाम्।
स्वयं सारिषयध्यै यान उपेषे अत्रैः। हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति॥ ८॥
त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथाँ अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा।
सचस्व नः पराक आसचस्वास्तमीक आ।
पाहि नो दूरादारादभिष्टिभिः सदा पाह्यभिष्टिभिः॥९॥
त्वं न इन्द्र राया तरूषसोग्रं चित्वा महिमा सक्षदवसे महे मित्रं नावसे।
ओजिष्ठ त्रातरविता रथं कञ्चिदमर्त्य।
अन्यमस्मद्रिरिषेः कञ्चिदद्रिवो रिरिक्षन्तं चिदद्रिवः॥ १०॥

---

६ भवनशील चन्द्रके लिये हम इस स्तोत्रको पढ़ते हैं। चन्द्र, आग्रहके साथ, हमारे कर्मके उद्देशसे, राक्षस-विनाशी और बुलाने योग्य इन्द्रकी तरह आते हैं। वह स्वयं हमारे निन्दक दुर्बुद्धिके वधका उपाय उद्भूत करके उसे ूर कर देंगे। चोर, क्षुद्र जलकी तरह, अतीव निकृष्टतासे, अधःपतित हो।

७ इन्द्र, हम स्तोत्र द्वारा तुम्हारा गुण-कीर्त्तन करके तुम्हें भजते हैं। धनवान् इन्द्र, हम सामर्थ्यवान्, रमणीय, सद् र्त्तमान और पुत्र-भृत्यादि-विशिष्ट धनका उपभोग करें। इन्द्र, तुम्हारी महिमा अज्ञेय है। हम उत्तम स्तोत्र और न्न प्राप्त करें। हम यज्ञ-निष्पादक इन्द्रको यज्ञाभिलाष फल देनेवाले और यशोवर्द्धक आह्वान द्वारा प्राप्त हों।

८ ऋत्विको, तुम्हारे और हमारे लिये इन्द्र यशस्कर आश्रयदान द्वारा दुर्बुद्धि लोगोंके विनाशक संग्राममें प्रवृद्ध हों ौर उन्हें विदीर्ण करें। हमारे भक्षक शत्रुओंने हमारे विरुद्ध, हमारे नाशके लिये, जो वेगवती सेना भेजी थी, वह सेना वयं हत हो गयी है; हमारे पास पहुँची भी नहीं; शत्रुओंके पास भी नहीं लौटी।

९ इन्द्र, राक्षस-शून्य और पाप-रहित मार्गसे प्रचुर धन लेकर हमारे पास आओ। इन्द्र, तुम दूर देश और निकटसे ाकर हमारे साथ मिलो। तुम दूर और निकट प्रदेशसे, यज्ञ-निर्वाहके लिये, हमरी रक्षा करो। यज्ञ-निर्वाह करके दा हमें पालित करो।

१० इन्द्र, जिस धनसे हमारी आपदाका उद्धार हो सकता है, उसी धनसे हमारा उद्धार करो। तुम उग्र-रूप हो। सो मित्रकी महिमा है, हमारी रक्षाके लिये तुम्हारी भी वैसी ही महिमा हो। हे बलवान्, हमारे रक्षक, त्राता ौर अमर इन्द्र, किसी भी रथपर चढ़कर आओ। शत्रुनाशक इन्द्र, हमें छोड़कर सबको बाधा दो। शत्रु-भक्षक, अतीव कर्मी शत्रुको बाधा दो।

पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्रिधोऽवयाता सदमिद्दुर्मतीनां देवः सन्दुर्मतीनाम् ।
हन्ता पापस्य रक्षसस्त्राता विप्रस्य मावतः ।
अधाहि त्वा जनिता जीजनद्वसो रक्षोऽहणं त्वा जीजनद्वसो ॥ ११ ॥

* * *

१३० सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् और अत्यष्टि छन्द ।

एन्द्रयाह्यु प नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पतिरस्तं राजेव सत्पतिः ।
हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुते सचा ।
पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥ १ ॥
पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन सिक्तमवतं न वंसगस्ततृषाणो न वंसगः ।
मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे ।
आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहाविश्वेव सूर्यम् ॥२॥
अविन्दद्दिवो निहितं गुहानिधिं वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि ।
व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः ।
अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृताद्वार इषः परीवृताः ॥३॥

---

११ शोभन स्तुतिसे युक्त इन्द्र, दुःखसे हमें बचाओ; क्योंकि तुम सदा दुष्टोंको नीचा दिखाते हो । हमारी स्तु प्रसन्न होकर यज्ञ-विघ्नकारियोंको दमन करो । तुम पाप-राक्षसके हन्ता और हमारे समान बुद्धिमानोंके रक्षक हो । अ निवास इन्द्र, इसीलिये परमेश्वरने तुम्हें उत्पन्न किया है । निवास-प्रद इन्द्र, राक्षसोंके विनाशके लिये तुम्हारी उत हुई है ।

---

१ जैसे यज्ञशालामें ऋत्विकोंके पति यजमान हैं और जैसे नक्षत्रोंके पति चन्द्र अस्ताचल जाते हैं, वैसे ही तुम पुरोवर्त्ती सोमकी तरह, स्वर्गसे हमारे पास आओ । जैसे पुत्र लोग अन्न-भक्षणके लिये पिताको बुलाते हैं, वैसे ही हम सोमाभिषवमें बुलाते हैं । ऋत्विकोंके साथ हव्य ग्रहणके लिये महान् इन्द्रको हम बुलाते हैं ।

२ जैसे शोभनगति वृषभ पिपासित होकर कूप-जलका पान करता है, हे रमणीयगति इन्द्र, वैसे ही पराक्रम, महत्त्व और आनन्दोत्पत्तिके लिये प्रस्तर द्वारा अभिषुत और जल-सिक्त अथवा दशापवित्र द्वारा सोमरस पान करो । जैसे हरि नामक अश्व सूर्यको लाते हैं, वैसे ही तुम्हारे अश्वगण प्रतिदिन तुम्हें ले आवें ।

३ जैसे चिड़ियाँ दुर्गम स्थानमें अपने बच्चोंकी रक्षा करके उन्हें प्राप्त करती वा बच्चोंवाली होती हैं, वैसे ही भी अत्यन्त गोपनीय स्थानमें स्थापित और अनन्त तथा महान् प्रस्तर-राशिमें परिवेष्टित सोमरसको स्वर्गसे प्राप्त कि अङ्गिरा लोगोंमें अग्रगण्य वज्रधारी इन्द्रने जैसे पहले, सोमपानकी इच्छासे, गोशालाको प्राप्त किया था, वैसे ही सोमर भी पाया । इन्द्रने चारो ओर मेघावृत और अन्नके कारण जलके द्वारोंको खोलते हुए पृथिवीमें चारो ओर विस्तार किया ।

दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षद्मेव तिग्ममसनाय संश्यदहिहत्याय संश्यत्।
संविव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना।
तष्टेव वृक्षं वनिनो निवृश्चसि परश्वेव निवृश्चसि ॥४॥
त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवेच्छा समुद्रमसृजो रथाँ इव वाजयतो रथाँ इव।
इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम्।
धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥५॥
इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वा मतक्षिषुः।
शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम्।
अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वाधनानि सातये ॥६॥
भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो।
अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत्।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥७॥

४ इन्द्र दोनों हाथोंमें अच्छी तरह वज्र धारण करके, शत्रुके प्रति फेंकनेके लिये, वज्रके तीक्ष्ण होनेपर भी, जैसे मंत्रों द्वारा जलको तीक्ष्ण किया जाता है, वैसे ही उसे और भी तीक्ष्ण करते हैं; वृत्र-विनाशके लिये और भी तीक्ष्ण करते हैं। इन्द्र, जैसे वृक्ष काटनेवाले वृक्षको काटते हैं, वैसे ही तुम अपनी शक्ति, तेज और शरीर-बलसे वर्द्धित होकर हमारे शत्रुओंका छेदन करते हो, मानों फरसेसे काटते हो।

५ इन्द्र, तुमने, समुद्रकी ओर गमन करनेके लिये, रथकी तरह, नदियोंको अनायास बनाया है। जैसे योद्धा रथको बनाते हैं, वैसे ही तुमने भी बनाया है। जैसे मनुके लिये गायें सर्वार्थदाता हैं और जैसे समर्थ मनुष्यके लिये गायें सर्वसुख-प्रद हैं, वैसे ही हमारी अभिमुखिनी नदियाँ एक ही प्रयोजनसे जल संग्रह करती हैं।

६ जैसे कर्म-कुशल और धीर मनुष्य रथ बनाता है, वैसे ही धनाभिलाषी मनुष्योंने तुम्हारी यह स्तुति की है। उन्होंने अपने कल्याणके लिये तुम्हें प्रसन्न किया है। जैसे संसारमें दिग्विजयीकी प्रशंसा की जाती है, वैसे ही हे मेधावी और दुर्द्धर्ष इन्द्र, उन्होंने तुम्हारी प्रशंसा की है। जैसे संग्राममें अश्वकी प्रशंसा होती है, वैसे ही बल, धनरक्षण और सारे मंगलोंकी प्राप्तिके लिये तुम्हारी प्रशंसा होती है।

७ संग्राम-कालमें नृत्यकर्त्ता इन्द्र, तुमने हविःप्रद और अभीष्ट-दाता दिवोदास राजाके लिये नब्बे नगरोंको नष्ट किया था। नृत्यशील इन्द्र, तुमने वज्र द्वारा नष्ट किया था। उग्र इन्द्र, तुमने अतिथिसेवक दिवोदास राजाके लिये पर्वतसे शम्बर असुरको नीचे पटका था और दिवोदास राजाके लिये अपनी शक्तिसे अगाध धन दिया था—और क्या, सारा धन दिया था।

इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीह्ळेष्वाजिषु ।
मनवे शासद्व्रतान् त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।
दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥८॥
सूरश्चक्रं प्रवृहज्जात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो मुषायतीशान आमुषायति
उशनायत् परावतो जगन्नूतये कवे ।
सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः ॥९॥
स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
दिवोदासेभिरिन्द्रस्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ॥१०॥

* * *

१३१ सूक्त । इन्द्र देवता । अत्यष्टि छन्द ।

इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेन्द्राय मही पृथिवी वरीमभिर्द्युम्नसाता वरीमभिः ।
इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः ।
इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा ॥१॥

८ युद्धमें इन्द्र आर्य यजमानकी रक्षा करते हैं। असंख्य बार रक्षा करनेवाले इन्द्र सारे युद्धोंमें उसकी रक्षा क हैं। सुखकारी युद्धमें उसकी रक्षा करते हैं। इन्द्र मनुष्यके लिये व्रत-शून्य व्यक्तियोंका शासन करते हैं। इन्द्रने कृष्ण ना असुरकी काली त्वचा उखाड़कर उसका (अंशुमती नदीके तटपर) वध किया। इन्द्रने उसे जला डाला। इन्द्रने स हिंसकोंको जला डाला। उन्होंने समस्त निष्ठुर व्यक्तियोंको भस्मसात् किया।

९ सूर्यका रथ-चक्र ग्रहण करनेपर इन्द्रके शरीरमें बलकी वृद्धि हुई। इन्द्रने उस चक्रको फेंका और अरुण रूप धारण करके, शत्रुओंके पास जाते हुए, उनके वाक्यका हरण कर लिया। तमोनिवारक इन्द्रने उनके वाक्यका हरण लिया। वीरकर्मा इन्द्र, उशनाकी रक्षाके लिये, जैसे तुम दूरस्थित स्वर्गसे आये थे, वैसे ही हमारे समस्त सुख-सा धनके साथ हमारे पास शीघ्र आओ। दूसरोंके पास भी तुम इसी प्रकार आते हो। हमारे पास प्रतिदिन आते हो।

१० जल-वर्षक और नगर-विदारक इन्द्र, हमारे नये मन्त्रसे संतुष्ट होकर विविध प्रकारकी रक्षा और सुख देते हमें प्रतिपालित करो। हम दिवोदासके गोत्रज हैं; तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम दिनमें, सूर्यकी तरह, प्रवृद्ध हो जाओ।

---

१ विशाल द्युलोक स्वयं इन्द्रके पास नत हुआ है। विस्तृता पृथिवी वरणीय या स्वीकरणीय स्तुति द्वारा इ पास नत हुई है। अन्नके लिये यजमान लोग वरणीय हव्य द्वारा नत हुए हैं। सारे देवोंने एक मतसे इन्द्रको अग्रणी है। मनुष्योंके सारे यज्ञ और मनुष्योंके सारे दान आदि इन्द्रके सुखके निमित्त हों।

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।
तं त्वा नावं नपर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि ।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥२॥
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद्गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद्वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥३॥
विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः ।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥४॥
आदित्ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णतः श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ५ ॥

---

२ इन्द्र, तुम्हारे पास अभिमत फलकी प्राप्तिकी आशामें प्रत्येक सवनमें यजमान लोग तुम्हें हव्य प्रदान करते हैं। तुम सबके लिये समान हो। स्वर्ग-प्राप्तिके लिये केवल तुम्हें ही हव्य दिया जाता है। जैसे नदी पार होनेके समय नौका खड़ी की जाती है, वैसे ही हम सेनाके आगे तुम्हें खड़ा करते हैं। यज्ञ द्वारा मनुष्य इन्द्रको ही चिन्ता करते हैं। मनुष्य स्तुति द्वारा इन्द्रकी चिन्ता करता है।

३ इन्द्र, तुम्हारे सेवक और निष्पाप यजमान स्त्री-पुरुष, तुम्हारी तृप्तिकी इच्छासे, बहुसंख्यक गोधनकी प्राप्तिके लिये, बहुत हव्य दान करते हुए तुम्हारे उद्देश्यसे यज्ञ-विस्तार करते हैं। वे गोधन चाहते हैं और स्वर्ग-गमनके लिये उत्सुक हैं। तुम उनको अभीष्ट प्रदान करो। इन्द्र, तुम अभीष्ट-वर्धक हो। तुमने अपने सहजन्मा और चिर-सहचर वज्रका आविष्कार किया है।

४ इन्द्र, मनुष्य तुम्हारी महिमा जानते हैं। तुमने जिन शत्रुओंकी संवत्सर पर्यन्त खाई या परिखा आदिसे दृढ़ीकृत नगरियोंको नष्ट किया था, उन्हें पराजित कर विनष्ट किया था—वह कथा मनुष्य जानते हैं। दलपति इन्द्र, तुमने यज्ञ-विघातक मनुष्यका शासन किया था। तुमने विशाल पृथ्वी और जलराशिको जीता था। तुमने आनन्दसे जल निकाल लिया था।

५ इन्द्र, सोमपान कर प्रसन्न होनेपर मनोरथ-दाता बनो। चूँकि तुम यजमानोंकी रक्षा किया करते हो; अपने बन्धुताकामी यजमानोंकी रक्षा किया करते हो; इसलिये वे, तुम्हारी वृद्धिके निमित्त, बार-बार हव्य प्रदान करते हैं। युद्ध-सुखके भोगके लिये तुमने सिंहनाद किया था। यजमान लोग तुमसे नाना प्रकारकी भोग्य वस्तु पाते हैं; अन्नार्थी होकर तुम्हारे पास प्राप्त होते हैं।

उतो नो अस्या उषसो जुषेतह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः॥ ६॥
त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूरमर्त्यम्।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः।
रिष्टं न यामन्नपभूतु दुर्मतिर्विश्वापभूतु दुर्मतिः॥ ७॥

१३२ सूक्त। इन्द्र देवता। अत्यष्टि छन्द।

त्वया वयं मघवन् पूर्व्ये धन इन्द्रत्वोताः सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतः।
नेदिष्ठे अस्मिन्नहन्यधिवोचानु सुन्वते।
अस्मिन् यज्ञे विचयेमाभरेकृतं वाजयन्तो भरे कृतम्॥ १॥
स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्मन्युषर्बुधः स्वस्मिन्नञ्जसि क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि।
अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णा शीर्ष्णोपवाच्यः।
अस्मत्राते सध्र्यक् सन्तु रातयो भद्राभद्रस्य रातयः॥ २॥

६ इन्द्र, तुम हमारे प्रातःकालीन यज्ञको आश्रित करोगे क्या? इन्द्र, आह्वान-मंत्र द्वारा प्रदत्त, पूजाके लिये, हव्यको जानो। आह्वान मंत्र द्वारा आहूत होकर सुख-भोगके स्थानपर उपस्थित हो जाओ। वज्रयुक्त इन्द्र, निन्दकोंके विनाशके लिये अभीष्टवर्षी होकर जागो। इन्द्र, मैं मेधावी और नया मनुष्य हूँ; मैं स्तुतिवाला हूँ; मेरा मनोहर स्तोत्र सुनो।

७ अनेक गुण-विशिष्ट इन्द्र, हे शूर, तुमने हमारी स्तुतिसे वृद्धि पायी है और हमारे प्रति सन्तुष्ट हो। जो व्यक्ति हमारे प्रति शत्रुताका आचरण करता है और जो हमें दुःख पहुँचाना चाहता है, उसे वज्र द्वारा विनष्ट करो। हे सुननेके लिये उत्कण्ठित इन्द्र, सुनो। इन्द्र, मार्गमें थके-माँदे व्यक्तिको जो दुर्बुद्धि मनुष्य पीड़ा पहुँचाते हैं, उस प्रकारके सारे दुर्मति मनुष्य हमारे पाससे दूर हो जायँ।

१ हे धन-संयुक्त इन्द्र, तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर हम प्रबल वाहिनीसे सम्पन्न शत्रुओंको परास्त करेंगे। प्रहारके लिये प्रस्तुत शत्रुपर प्रहार करेंगे। इन्द्र, पूर्व-धन-संयुक्त यह यज्ञ निकटवर्त्ती है; इसलिये आज हविर्दाता यजमानके उत्साहके लिये कथा कहो। इन्द्र, तुम युद्ध-जयी हो। तुम्हारे उद्देश्यसे हम हव्य लाते हैं। तुम युद्ध-विजेता हो।

२ शत्रुवधके लिये इधर-उधर दौड़नेवाले वीर पुरुषोंके स्वर्ग-साधन तथा कपटादि-रहित मार्ग-स्वरूप संग्रामके आगे इन्द्र, प्रातःकालमें जागे हुए याज्ञिकोंके, शत्रुओंका नाश करते हैं। सर्वज्ञकी तरह इन्द्रकी अवनत-मस्तक होकर स्तुति करना सबका कर्त्तव्य है। इन्द्र, तुम्हारा दिया धन केवल हमारे ही लिये हो। तुम भद्र हो, तुम्हारा दिया धन स्थिर हो।

तत्तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन् यज्ञे वारमकृण्वत क्षयमृतस्य वारसि क्षयम्।
वितद्वोचेरधद्वितान्तः पश्यन्ति रश्मिभिः।
सघा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः ॥ ३ ॥
नु इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योवृणोरपव्रजमिन्द्र शिक्षन्नपव्रजम्।
एभ्यः समान्यादिशास्मभ्यं जेषि योत्सि च।
सुन्वद्भ्योरन्धया कञ्चिदव्रतं हृणायन्तं चिदव्रतम् ॥ ४ ॥
सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर ईक्षयद्धने हिते तरुषन्त श्रवस्यवः प्रयक्षन्त श्रवस्यवः
तस्मा आयुः प्रजावदिद्बाधे अर्चन्त्योजसा।
इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छान धीतयः ॥ ५ ॥
युवन्तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादपतंतमिद्धतं वज्रेण तंतमिद्धतम्।
दूरे चत्तायच्छन्त्सद्गहनं यदिनक्षत्
अस्माकं शत्रून् परि शूर विश्वतो दर्मादर्षीष्ट विश्वतः ॥ ६ ॥

* * *

३ इन्द्र, पूर्वकी तरह इस समय भी अतीव दीप्त और प्रसिद्ध हव्य-रूप अन्न तुम्हारा ही होगा। तुम यज्ञके निवास-स्थान-स्वरूप हो। जिस अन्न द्वारा ऋत्विक् लोग स्थान सुशोभित करते हैं, वह अन्न तुम्हारा ही होगा। तुम यज्ञकी कथा कहो। ऐसा होनेपर संसार आकाश और पृथिवीके बीच सूर्य-किरण द्वारा देख सकेगा। इन्द्र जलकी गवेषणामें तत्पर हैं। वह अपने बन्धु यजमानोंके लिये गौ खोजते हैं। वह उक्त क्रमसे सारी कथाएँ जानते हैं।

४ इन्द्र, पूर्व कालकी तरह तुम्हारा कर्म इस समय भी सबकी प्रशंसाके योग्य है। तुमने अङ्गिरा लोगोंके लिये मेघका उद्घाटन किया था। तुमने अपहृत गो-धनका उद्धार करके उन लोगोंको दिया था। इन्द्र, तुम उक्त ऋषियोंकी तरह आर्योंके लिये युद्ध करते और विजयी बनते हो। जो अभिषव करते हैं, उनके लिये यज्ञ-विघ्नकारियोंको अवनत करते हो। जो यज्ञ-विघ्नकारी रोष प्रकाशित करते हैं, उन्हें अवनत करो।

५ चूँकि शूर इन्द्र, कर्म द्वारा मनुष्योंके विषयमें यथार्थ विचार करते हैं; इसलिये अन्नाभिलाषी यजमानगण अभिमत धन प्राप्त करके शत्रुओंका विनाश करते हैं। वे अन्नाभिलाषी होकर विशेष रूपसे यज्ञ करते हैं। इन्द्रके उद्देश्यसे प्रदत्त अन्न पुत्रादि प्राप्तिका कारण है। अपनी शक्तिसे शत्रुके निवारणके लिये लोग इन्द्रकी पूजा करते हैं। यज्ञकारी लोग इन्द्रके पास वास-स्थान प्राप्त करते हैं, मानों याज्ञिक लोग देवोंके पास ही रहते हैं।

६ हे इन्द्र और पर्वत या मेघके अभिमानी देव, तुम दोनों अग्रगामी होकर, जो शत्रु हमारे विरोधमें सेना-संग्रह करते हैं, उन सबको विनष्ट करो। वज्र-प्रहार द्वारा उन सबको विनष्ट करो। वह वज्र अत्यन्त दूरगामी शत्रुका भी विनाश करनेकी इच्छा करता और अति गहन स्थानपर भी व्याप्त होता है। शूर इन्द्र, तुम हमारे सारे शत्रुओंको त्रिविध उपायों द्वारा विदीर्ण करते हो। शत्रु-विदारक वज्र विविध उपायोंसे विदीर्ण करता है।

तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसुरश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु ।
तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते ।
अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आवक्षणाभ्यः ॥४॥
तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त भुर्वण्यपामिषन्त भुर्वणि ।
त्वांत्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये ।
त्वं विश्वस्माद्भुवनात् पासि धर्मणा सूर्यात् पासि धर्मणा ॥५॥
त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।
उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम् ।
विश्वा इत्ते धेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ॥६॥

१३५ सूक्त । वायु देवता । अत्यष्टि छन्द ।

स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते ।
तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे ।
प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥ १ ॥

---

४ दीप्तियुक्त उषाएँ, दूर देशमें, तुम्हारे ही लिये, घरोंको ढकनेवाली किरणोंसे कल्याणकर वस्त्रका विस्तार का हैं; नयी किरणोंसे विचित्र वस्त्रका विस्तार करती हैं। अमृत बरसानेवाली गायें तुम्हारे ही लिये समस्त धन दान का हैं। तुमने वर्षा और नदियोंके उत्पादनके लिये अन्तरीक्षसे मरुतोंको उत्पादित किया है।

५ दीप्त, शुद्ध, उग्र और प्रवाहशाली सोम, तुम्हारे आनन्दके लिये आहवनीय अग्निके पास जाता है और जल वाहक मेघकी आकांक्षा करता है। वायु, यजमान लोग, अत्यन्त भीत और क्षीणकाय होकर चोरोंके हटनेके लि तुम्हारी पूजा करते हैं। हमारे धार्मिक होनेसे हमें सारे भूतोंसे रक्षा करो। हमें, धर्म-संयुक्त होनेके कारण, भक्तों रक्षा करो।

६ वायु, तुमसे पहले किसीने सोमपान नहीं किया है। तुम्ही पहले हमारे इस सोमपानको करनेके यो हो; अभिषुत सोमपान करने योग्य हो। तुम हवनकर्त्ता और निष्पाप लोगोंका हव्य स्वीकार करते हो। सारी गा तुम्हारे लिये दूध देती हैं और तुम्हारे लिये घी भी देती हैं।

---

१ नियुत् अश्ववाले वायु, तुम कितने ही नियुतोंपर चढ़कर, अपने लिये प्रस्तुत हव्यके भक्षणके लिये, बिछाये कुशोंपर आओ। असंख्य नियुतोंपर चढ़कर आओ। तुम नियुतवाले हो। तुम्हारे पहले पान करनेके लिये देवता चुप हैं। अभिषुत मधुर सोम तुम्हारे आनन्दके लिये है; यज्ञ-सिद्धिके लिये है।

तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हावसानः परिकोशमर्षति शुक्रावसानो अर्षति ।
तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते ।
वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः ॥ २ ॥
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुपयाहि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।
तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा ।
अध्वर्यभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ॥ ३ ॥
आवां रथो नियुत्वान्वक्षदवसेभि प्रयांसि सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।
पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वांहितम् ।
वायवा चन्द्रेण राधसागतमिन्द्रश्च राधसागतम् ॥ ४ ॥
आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपेममिन्दुं मर्मृजन्त वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम् ।
तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।
इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ॥ ५ ॥
इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ।
एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः ।
युवायवोति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥

---

२ वायु, तुम्हारे लिये, पत्थरसे परिशोधित और आकांक्षणीय तथा तेजः-सम्पन्न सोम अपने पात्रमें जाता है; शुक्र तेजसे संयुक्त होकर तुम्हारे पास जाता है। मनुष्य लोग देवोंके मध्य तुम्हारे लिये यही सुन्दर सोम प्रदान करते हैं। वायु, तुम हमारे लिये नियुत् अश्वोंको जोतो और प्रस्थान करो। हमारे ऊपर अनुग्रह कर और प्रसन्न होकर प्रस्थान करो।

३ वायु, तुम सैकड़ो और हजारो नियुतोंपर सवार होकर अभिमत-सिद्धि और हव्य भक्षणके लिये हमारे यज्ञमें उपस्थित हो। यही तुम्हारा लेने योग्य हिस्सा है; यह सूर्यके तेजसे तेजस्वी है। ऋत्विक्के हाथका सोम तैयार है। वायु, पवित्र सोम तैयार है।

४ हमारी रक्षाके लिये, हमारे सुगृहीत अन्न-भक्षणके निमित्त और हमारे हव्यकी सेवाके लिये, हे वायु, नियुतसे युक्त रथ तुम दोनों (इन्द्र और वायु) को ले आवे। तुम दोनों मधुर सोमरस पान करो। पहले पान करना ही तुम लोगोंके लिये ठीक है। वायु, मनोहर धनके साथ आओ। इन्द्र भी धनके साथ आवें।

५ हे इन्द्र और वायु, हमारे स्तोत्र आदि तुम लोगोंके यज्ञमें आनेके लिये प्रेरित करते हैं। जैसे शीघ्रगामी अश्वको परिमार्जित किया जाता है, वैसे ही जलसे लाये हुए सोमको ऋत्विक् लोग परिमार्जित करते हैं। अध्वर्युओंका सोमपान करो। हमारी रक्षाके लिये यज्ञमें आओ। तुम दोनों अन्नदाता हो; इसलिये हमारे प्रति प्रपन्न होकर, आनन्दके लिये, पत्थरके टुकड़ेसे अभिषुत सोम पान करो।

६ हमारे इस यज्ञ-कार्यमें अभिषुत और अध्वर्युओं द्वारा गृहीत सोम निश्चय ही तुम्हीं दोनोंका है। यह तीव्र सोम निश्चय ही तुम लोगोंका है। यह यथेष्ट सोम निश्चय ही तुम्हारे लिये टेढ़े सोमाधार कुशमें परिष्कृत हुआ है। तुम्हारा सोम अविच्छिन्न लोगोंको लाँघकर प्रचुर परिमाणमें जाता है।

अति वायो ससतो याहि शश्वतो यत्र ग्रावा वदति तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
विसूनृता ददृशे रीयते घृतमापूर्णया नियुता याथो अध्वरमिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥ ७ ॥
अत्राह तद्वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त जायवोस्मेते सन्तु जायवः ।
साकं गावः सुवते पच्यते यवोनते वाय उपदस्यन्ति धेनवोः नापदस्यन्ति धेनवः ॥ ८ ॥
इमे ये ते सुवायो बाह्वोजसोन्तर्नदी ते पतयन्त्युक्षणो महि व्राधन्त उक्षणः ।
धन्वञ्चिद्ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः ।
सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥ ९ ॥

* * *

१३६ सूक्त । मित्रावरुण देवता । अत्यष्टि और त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रसुज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृड़यद्भ्यां स्वादिष्ठं मृड़यद्भ्याम् ।
ता सम्राजा घृतासुती यज्ञे यज्ञ उपस्तुता ।
अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नूचिदाधृषे ॥ १ ॥

---

७ वायु, तुम निद्रालु यजमानोंको अतिक्रम करके उस गृहमें जाओ, जिस गृहमें प्रस्तरका शब्द होता है। इन्द्र भी उसी गृहमें जायँ। जिस गृहमें प्रिय और सत्य स्तुतिका उच्चारण होता है, जिस घरमें घृत जाता है, उसी यज्ञस्थानमें मोटे नियुत् घोड़ोंके साथ जाओ। इन्द्र, वहीं जाओ।

८ हे इन्द्र और वायु, तुम इस यज्ञमें मधुके समान उस आहुतिको धारण करो, जिसके लिये विजेता यजमान पर्वत आदि प्रदेशोंमें जाते हैं। हमारे विजेता लोग यज्ञके निर्वाहके लिये समर्थ हों। इन्द्र और वायु, गायें एक साथ दूध देती हैं और यवसे बनाया हव्य तैयार होता है। ये गायें न तो कम होंगी, न नष्ट होंगी।

९ वायु, ये जो तुम्हारे बलशाली, नौजवान बैलोंके समान और अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट घोड़े हैं, वे तुम्हें स्वर्ग और पृथिवीमें ले जाते हैं; ये अन्तरीक्षमें भी देर नहीं करते; ये बहुत शीघ्रगामी हैं; काँटसे भी इनकी गति नहीं रुकती। सूर्य किरणोंकी तरह इनकी गतिका रोकना दुःसाध्य है। हाथोंसे इनकी गतिका रोकना कठिन है।

---

१ ऋत्विक्गण, चिरन्तन मित्रावरुणको लक्ष्य कर प्रशंसनीय और प्रवृद्ध सेवा करो। उन्हें हव्य देनेमें कृत-निश्च बनो। मित्रावरुण यजमानोंको सुख देनेमें कारण हैं। वे स्वादिष्ट हव्यका भक्षण करते हैं। वे सम्राट् हैं। उनके लिये घृ गृहीत होता है। प्रतियज्ञमें उनकी स्तुति होती है। उनकी शक्तिका कोई उल्लङ्घन नहीं कर सकता। उनके देवत्वमें किसीको सन्देह नहीं होता।

अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः।
द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च।
अथा दधाते बृहदुक्थ्यम् वय उपस्तुत्यं बृहद्वयः ॥ २ ॥
ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षिति स्वर्वतीमासचेते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे।
ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती।
मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोर्यमा यातयज्जनः॥ ३ ॥
अयं मित्राय वरुणाय शन्तमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः।
तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः।
तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥ ४ ॥
यो मित्राय वरुणायाविधज्जनोनर्वाणं तं परिपातो अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहसः।
तमर्यमाभिरक्षत्यृजूयन्तमनुव्रतम्।
उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् ॥ ५ ॥
नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे सुमृळीकाय मीळ्हुषे।
इन्द्रमग्निमुपस्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम्।
ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥ ६ ॥

---

२ श्रेष्ठ उषा विस्तृत यज्ञकी ओर जाती है—ऐसा देखा गया। शीघ्रगामी सूर्यका पथ व्याप्त हुआ। सूर्य-किरणोंमें मनुष्यकी आँखें खुलीं। मित्र, अर्यमा और वरुणके उज्ज्वल गृह प्रकाशसे परिपूर्ण हुए; इस लिये तुम दोनों प्रशंसनीय और बहुत अन्न धारण करो। प्रशंसनीय और प्रभूत अन्न धारण करो।

३ यजमानने ज्योतिष्मती, सम्पूर्ण-लक्षणा और स्वर्ग-प्रदायिनी वेदी तैयार की। तुम लोग सदा जागरूक रहकर और प्रतिदिन वहाँ उपस्थित होकर तेज और बल प्राप्त करो। तुम लोग अदितिके पुत्र और सर्व-प्रकार दानके कर्त्ता हो। मित्र और वरुण लोगोंको अच्छे व्यापारमें लगाते हैं। अर्यमा भी ऐसा करते हैं।

४ मित्र और वरुणके लिये यह सोम प्रसन्नता-दायक हो। वे दोनों नीचे मुँह करके इसे पान करें। दीप्यमान सोम देवोंकी सेवाके उपयुक्त हैं। सारे देवगण अतीव प्रसन्न होकर इसे पियें। प्रकाशशाली मित्र और वरुण, हम जैसी ार्थना करते हैं; वैसा ही करो। तुम लोग सत्यशाली हो; हम जिसके लिये प्रार्थना करते हैं, उसे करो।

५ जो व्यक्ति मित्र और वरुणकी सेवा करता है, उसे तुम पापसे बचाओ। द्वेष-शून्य और हव्यदाता मनुष्यको ारे पापोंसे बचाओ। उस सरल-स्वभाव व्यक्तिको, उसके व्रतको लक्ष्य कर, अर्यमा रक्षा करते हैं। वह यजमान ंत्र द्वारा मित्रावरुणका व्रत ग्रहण करता और स्तोत्र द्वारा उसकी रक्षा करता है।

६ मैं प्रकाशशाली और महान् सूर्यको नमस्कार करता हूँ। पृथिवी, आकाश, मित्र, वरुण और रुद्रको भी मस्कार करता हूँ। ये सब अभीष्ट फल और सुखके दाता हैं। इन्द्र, अग्नि, दीप्तिमान् अर्यमा और भगकी स्तुति करो। म बहुत दिनों जीकर निश्चयात्मिका बुद्धिसे घिरे रहेंगे। इसी प्रकार सोम द्वारा हम रक्षित होंगे।

ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः ।
अग्निर्मित्रो वरुणः शर्मयसन्तदश्याम मघवानो वयं च ॥ ७ ॥

* * *

७ हमने इन्द्रको प्राप्त किया है। हमारे ऊपर मरुद्गण कृपा करते हैं। देवता लोग हमें बचावें। इन्द्र, अ मित्र और वरुण हमारे लिये सुखदाता हों। हम अन्नसे संयुक्त होकर उसी सुखका भोग करें।

प्रथम अध्याय समाप्त

२ अध्याय

१३७ सूक्त। मित्रावरुण देवता। अतिशक्वरी छन्द।

सुषुमायातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे।
आ राजाना दिविस्पृशास्मत्रा गन्तमुप नः।
इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः॥ १॥
इम आयातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः।
उत वामुषसो बुधिसाकं सूर्यस्य रश्मिभिः।
सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुॠताय पीतये॥ २॥
तां वां धेनुं नवासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः।
अस्मत्रा गन्तमुप नोर्वाञ्चा सोमपीतये।
अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आपातये सुतः॥ ३॥

१३८ सूक्त। पूषा देवता। अत्यष्टि छन्द।

प्र प्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते।
अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम्।
विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः॥ १॥

---

१ हम पत्थरके टुकड़ेसे सोम चुआते हैं। मित्रावरुण, आओ। दूध-मिला और तृप्ति करनेवाला सोम यही सामने है। यह सोम तृप्ति देनेवाला है। तुम राजा, स्वर्गवासी और हमारे रक्षक हो। हमारे यज्ञमें आओ। तुम्हारे ही लिये यह सोम दूधके साथ मिलाया गया है। दूध-मिलाया सोम विशुद्ध होता है।

२ मित्रावरुण, आओ। यह तरल सोमरस दहीके साथ मिलाया हुआ है। अभिषुत सोमरस दहीके साथ मिलाया गया है। उषाके उदय-कालमें ही हो अथवा सूर्य-किरणोंके साथ ही हो—तुम्हारे लिये सोम अभिषुत है। यह सुन्दर सोमरस मित्र और वरुणके पानके लिये है—यज्ञ-स्थलमें उनके पीनेके लिये है।

३ तुम्हारे लिये बहुत रसवाली सोमलताको, दुग्धवती गायकी तरह, पत्थरके टुकड़ोंसे वे दूहते हैं। वे प्रस्तर-खण्ड द्वारा सोमको दूहते हैं। तुम हमारे रक्षक हो। सोम पानके लिये हमारे सामने हमारे पास तुम आओ। मित्र और वरुण, नेताओंने तुम्हारे लिये सोम चुआया है—अच्छी तरह पीनेके लिये अभिषव किया है।

१ अनेक मनुष्यों द्वारा पूजित पूषा (सूर्य) देवकी शक्तिकी महिमा सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त करती है। कोई उसे मारना नहीं चाहता। पूषाके स्तोत्रकी विश्रान्ति नहीं है। मैं सुख पानेकी इच्छासे पूषाकी पूजा करता हूं। वह तुरत सहारा देते और उत्पन्न करते हैं। पूषा यज्ञवाले हैं। वह सारे मनुष्योंके मनके साथ मिल जाते हैं।

प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः।
हुवे यत्त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः।
अस्माकमांगूषान्द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥ २ ॥
यस्य ते पूषन्त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित् सन्तावसा बुभुज्रिर इति क्रत्वा बुभुज्रिरे।
तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे।
अहेळमान उरुशंस सरीभव वाजेवाजे सरीभव ॥ ३ ॥
अस्या ऊषुण उप सातये भुवोहेळमानो ररिवाँ अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व।
ओषुत्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः।
नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे ॥ ४ ॥

* * *

१३९ सूक्त। विश्वेदेवगण देवता। त्रिष्टुप्, बृहती, अत्यष्टि आदि छन्द।

अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आनुतच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे।
यद्धक्राणा विवस्वति नाभा सन्दायि नव्यसी।
अध प्रसून उपयन्तु धीतयो देवाँ अच्छान धीतयः ॥ १ ॥

---

२ जैसे शीघ्रगामी घोड़ेकी प्रशंसा होती है, वैसे ही, हे पूषन्, मंत्रों द्वारा मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ। युद्ध जानेके लिये तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ। ऊँटकी तरह तुम हमें युद्धमें पार करते हो। तुम सुख उत्पन्न करनेवाले देवता और मैं मनुष्य हूँ; मैत्री पानेके लिये मैं तुम्हें बुलाता हूँ। मेरे बुलावेको शक्तिमान् करो और संग्राममें मुझे विज बनाओ।

३ पूषन्, तुम्हारी मित्रता प्राप्त करके विशेष यज्ञ द्वारा तुम्हें प्रसन्न करते हुए स्तोत्र-परायण यजमान तुम्हारे द्वा रक्षित होकर नाना प्रकारके भोग भोगते हैं। नया सहारा पाकर तुम्हारे पास असंख्य धन चाहते हैं। बहुतोंके स्तवनीय पूषा, हमारा अनादर न करके हमारे सामने आओ और युद्ध-कालमें हमारे अग्रगामी बनो।

४ अज वाहनवाले पूषन्, हमारे लाभके सम्बन्धमें अनादर न कर और दानशील होकर हमारे पास आओ अजाश्व पूषन्, हम अन्न चाहते हैं। हमारे पास आओ। शत्रु-हन्ता पूषा, मंत्र-पाठ करते हुए हम तुम्हारे चारो रहें। वृष्टिदाता पूषा, हम कभी न तो तुम्हारा अपमान करते और न तुम्हारी मित्रताका कभी अपलाप करते हैं।

———

१ मैंने, भक्तिके साथ, सामने अग्निकी स्थापना की है। अग्निकी स्वर्गीय शक्तिकी मैं प्रशंसा करता हूँ। इ और वायुकी प्रशंसा करता हूँ। चूँकि पृथिवीकी दीप्तिमान् नाभि या यज्ञस्थानको लक्ष्य कर नयी अर्थकरी स्तुति बन गयी है; इसलिये अग्नि उसे सुनें। पश्चात् जैसे हमारे क्रिया-कर्म अन्यान्य देवोंके पास जाते हैं, वैसे ही इन्द्र वायुके पास भी जायँ।

यद्धत्यन्मित्रावरुणावृतादध्याददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ।
युवोरित्थाधि सद्मस्वपश्याम हिरण्ययम् ।
धीभिश्चन मनसास्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः ॥ २ ॥
युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विना श्रावयन्त इव श्लोकमायवो युवां हव्याभ्यायवः ।
युवोर्विश्वा अधिश्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा ।
प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये ॥ ३ ॥
अचेति दस्राव्यु नाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु ।
अधिवांस्थाम बन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये ।
पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥ ४ ॥
शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तंदशस्यतम् ।
मा वां रातिरुपदसत् कदाचनास्मद्रातिः कदाचन ॥ ५ ॥
वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः ।
ते त्वामन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे ।
गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आगहि सुमृड़ीको न आगहि ॥ ६ ॥

---

२ कर्म-कुशल मित्र और वरुण, अपनी शक्ति द्वारा सूर्यके पाससे जो विनाशी जल पाते हो, वह हमें यथेष्ट परिमाणमें देते हो; इसलिये हम क्रिया, कर्म, ज्ञान और सोमरसमें आसक्त इन्द्रियोंकी सहायतासे, यज्ञशालामें, तुम लोगोंका ज्योतिर्मय रूप देखें।

३ अश्विनीकुमारो, स्तुति द्वारा तुम्हें अपना देवता बनानेकी इच्छासे यजमान लोग श्लोक सुनाते तथा हव्य लेकर तुम्हारे सामने जाते हैं। सर्वधन-सम्पन्न अश्विद्वय, वे लोग, तुम्हारी कृपासे, सब तरहके धनधान्य और अन्न प्राप्त करते हैं। तुम्हारे सोनेके रथकी नेमियाँ मधु गिराती हैं। उसी रथपर हव्य ग्रहण करो।

४ दस्रद्वय, तुम्हारे मनकी बात सब जानते हैं। तुम स्वर्गमें जाना चाहते हो। तुम्हारे सारथि लोग स्वर्ग-पथमें रथ योजित करते हैं। निरालम्ब होते हुए भी अश्वगण रथको नष्ट नहीं करते। अश्विद्वय, बन्धुर या बन्धनाधारभूत वस्तुसे युक्त हिरण्यमय रथपर हम तुम्हें बैठाते हैं। तुम लोग सरल मार्गसे स्वर्गको जाते हो। तुम लोग शत्रुओंको परास्त करते और विशेष रूपसे वृष्टिकी व्यवस्था करते हो।

५ हमारे क्रिया-कर्म ही तुम्हारा धन हैं। हमारे क्रिया-कर्मके लिये दिन-रात अभीष्ट प्रदान करो। न तो तुम्हारा दान बन्द हो और न हमारा।

६ अभीष्ट-वर्षक इन्द्र, अभीष्ट-वर्षीके पानके लिये यह सोम अभिषुत हुआ है। यह प्रस्तर-खण्ड द्वारा अभिषुत हुआ है। सोम पर्वतपर उत्पन्न हुआ है। वह तुम्हारे लिये अभिषुत हुआ है। विविध विचित्र लाभोंके लिये यथास्थान प्रदत्त सोम तुम्हारी तृप्तिका साधन करे। स्तुति-योग्य, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। आओ, हमारे ऊपर प्रसन्न होकर आओ।

ओषूणो अग्ने शृणुहि त्वमीड़ितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः।
यद्धत्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन।
वितां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एषतां वेद मे सचा ॥ ७ ॥
मो षु वो अस्मदभितानि पौंस्यासना भुवं द्युम्नानि मोतजारिषुरस्मत् पुरोत जारिषुः।
यद्वश्चित्रं युगे युगे नव्यं घोषादमर्त्यम्।
अस्मासुतन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ ८ ॥
दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः।
तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः।
तेषां पदेन मह्यानमे गिरेन्द्राग्नी आनमे गिरा ॥ ९ ॥
होता यक्षद्वनिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति वेन उक्षभिः पुरुवारेभिरुक्षभिः।
जगृभ्मादूर आदिशं श्लोकमद्रेरधत्मना।
अधारयदररिन्दानि सुक्रतुः पुरूसद्मानि सुक्रतुः ॥ १० ॥
ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ ११ ॥

---

७ अग्नि, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। हमारी स्तुति सुनो। दीप्यमान और यज्ञ-योग्य देवोंके पास यजमान बात कहना; क्योंकि देवोंने अङ्गिरा लोगोंको प्रसिद्ध धेनु दी थी। अर्यमा देवोंके साथ, सर्वोत्पादक अग्निके लिये, धेनुका दोहन करते हैं और वह जानते हैं कि, वह धेनु हमारे साथ समवेत है।

८ हे मरुतो, तुम्हारा नित्य और प्रसिद्ध बल हमें पराभूत नहीं करे। हमारा धन कम न हो। हमारा नगर न हो। तुम्हारा जो कुछ नूतन, विचित्र, मनुष्य-दुर्लभ और शब्द करनेवाला है, वह युग-युगमें हमारा हो। जो धन लोग नष्ट नहीं कर सकते, वह हमारा हो। तुम जो दुर्लभ धनको धारण करते हो, वह हमारा हो। जिस धनको नहीं नष्ट कर पाते, वह हमारा ही हो।

९ प्राचीन दधीचि, अङ्गिरा, प्रियमेध कण्व, अत्रि और मनु मेरे जन्मकी बात जानते हैं। ये पूर्व कालके और मनु मेरे पूर्व-पुरुषोंको जानते हैं; क्योंकि, महर्षियोंमें यह दीर्घायु हैं और मेरे जीवनके साथ उनका सम्बन्ध वे महान् हैं; इसलिये उनकी स्तुति तथा नमस्कार करता हूँ।

१० होता लोग यज्ञ करें, हव्यकी इच्छा करनेवाले देवता रमणीय सोम ग्रहण करें। स्वयं इच्छा करके प्रभूत और रमणीय सोम द्वारा याग करते हैं। हमने सुदूर देशमें प्रस्तर-खण्डकी ध्वनि सुनी। सुक्रतु यजमान स्वयं धारण करते हैं। वह बहु निवास-योग्य घर धारण करते हैं।

११ जो देवता स्वर्गमें ११ हैं, पृथिवीके ऊपर ११ हैं—जब अन्तरीक्षमें रहते हैं, तब भी ११ रहते हैं, वे महिमासे, यज्ञकी सेवा करते हैं।

२१ अनुवाक। १४० सूक्त। अग्नि देवता। यहाँसे १६४ सूक्ततक उकथ्यके पुत्र दीर्घतमा ऋषि हैं। त्रिष्टुप् छन्द।

वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्रभरायोनिमग्नये।
वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् ॥ १ ॥
अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषान्यन्येन वनिनो मृष्टवारणः ॥ २ ॥
कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभिमातरा शिशुम्।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमासाच्यं कुपयं वर्द्धनं पितुः ॥ ३ ॥
मुमुक्ष्वो मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊजुवः।
असमना अजिरासो रघुष्यदो वातजूता उपयुज्यन्त आशवः ॥ ४ ॥
आदस्यते ध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महिवर्पः करिक्रतः।
यत्सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशदभिश्वसन् स्तनयन्नेति नानदत् ॥ ५ ॥
भूषन्न योधिबभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत्।
ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः ॥ ६ ॥

---

१ अध्वर्यु, वेदीपर बैठे हुए, अपने प्रिय धाम उत्तर वेदीपर, प्रीति-सम्पन्न और प्रकाशशील अग्निके लिये तुम अन्नवान् स्थान या वेदी तैयार करो। उस पवित्र ज्योतिसे संयुक्त, दीप्त वर्ण और अन्धकार-विनाशी स्थानके ऊपर, वस्त्रकी तरह, मनोहर कुशको बिछाओ।

२ द्विजन्मा या दो काष्ठोंके मन्थन द्वारा उत्पन्न अग्नि आज्य, पुरोडाश और सोम नामके तीन अन्नोंको सम्मुख लाकर खाते हैं। अग्निके द्वारा भक्षित धन-धान्यादि, संवत्सरके बीच, फिर बढ़ जाते हैं। अभीष्टवर्षी अग्नि, एक ही रूप धारण कर, मुख और जिह्वाकी सहायतासे, बढ़ते हैं। अग्नि दूसरे प्रकारका रूप धारण करके, सबको दूर करके, वन-वृक्षोंको जलाते हैं।

३ अग्निके दोनों काष्ठ चलते हैं। कृष्णवर्ण होकर दोनों ही एक ही कार्य करते हैं और शिशु अग्निको प्राप्त होते हैं। शिशुकी शिखारूपिणी जिह्वा पूर्वाभिमुखिनी है। यह अन्धकारको दूर करते हैं। शीघ्र उत्पन्न होते हैं। धीरे-धीरे काष्ठ-चूर्णोंमें मिलते हैं। बहुत प्रयत्नसे इनको रक्षा करनी होती है। यह रक्षकको समृद्धि देते हैं।

४ अग्निकी शिखाएँ लघुगति, कृष्णमार्गी या शीघ्रकारिणी, अस्थिरचित्ता, गमनशीला, कम्पन-शीला, वायुचालिता, व्याप्ति-संयुक्ता, मोक्षप्रदा और मनस्वी यजमानकी उपयोगिनी हैं।

५ जिस समय अग्नि गर्जन करके श्वास फेंककर बार-बार विस्तीर्ण, पृथिवीको छूकर, शब्द करते हैं, उस समय अग्निके सारे स्फुलिङ्ग, एक साथ, चारो ओर जाते हैं। वे अन्धकारका विनाश कर चारो ओर जाते और कृष्णवर्ण मार्गमें उज्ज्वल रूप प्रकाशित करते हैं।

६ अग्नि, पीले औषधोंको भूषित करके, उनके बीच, उतरते हैं। जैसे वृषभ गायोंकी ओर दौड़ता है, वैसे ही, शब्द करते हुए, अग्नि दौड़ते हैं। क्रमशः अधिक तेजस्वी होकर अपने शरीरको प्रकाशित करते हैं। दुर्द्धर्ष रूप धारण करके भयंकर पशुकी तरह सींग घुमाते हैं।

स संस्तिरो विष्टिरः सङ्गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आशये ।
पुनर्वर्द्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद्वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा ॥ ७ ॥
तमग्रुवः केशिनीः संहिरेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्मम्रुषीः प्रायवे पुनः ।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानदद्वसुम्परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ॥ ८ ॥
अधीवासं परिमातूरिहन्नह तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति विज्रयः ।
वयो दधत् पद्वते रेरिहत् सदानु श्येनी सचते वर्तनीरह ॥ ९ ॥
अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिह्यध श्वसीवान् वृषभो दमूनाः ।
अवास्या शिशुमतीरदीदेर्वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः ॥ १० ॥
इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि प्रियादुचिन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते ।
यत्ते शुक्रं तन्वो रोचते शुचितेनास्मभ्यं वनसे रत्नमात्वम् ॥ ११ ॥
रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने ।
अस्माकं वीराँ उत नो मघोनो जनाँश्च या पारयाच्छर्म या च ॥ ॥ १२ ॥

---

७ अग्नि कभी छिपकर, कभी विराट् होकर औषधोंको व्याप्त करते हैं, मानों यजमानका अभिप्राय जानकर अपनी अभिप्राय जाननेवाली शिखाको आश्रित करते हैं। शिखाएँ, फिर बढ़कर, याग-योग्य अग्निको व्याप्त करती एवं सब मिलकर पृथिवी और स्वर्गका अपूर्व रूप विस्तृत करती हैं।

८ पौर्वस्थानीय और आगे स्थित शिखाएँ अग्निका आलिङ्गन करती हैं; मृतप्राय होनेपर भी अग्निका आग जानकर ऊर्द्ध्वमुख होकर, ऊपर उठती हैं। अग्नि, शिखाओंका बुढ़ापा छुड़ाकर उन्हें उत्कृष्ट सामर्थ्य और अखण्ड जी प्रदान करते हुए, गर्जन करते आते हैं।

९ पृथिवी माताके ऊपरके उन्नत या तृण-गुल्म आदिको चाटते-चाटते अग्नि प्रभूत शब्द-कर्त्ता प्राणियोंके साथ गमन करते हैं। पाद-विशिष्ट पशुओंको आहार देते हैं। अग्नि सदा चाटते हैं और क्रमशः जिस मार्गसे जाते हैं, उसे करते जाते हैं।

१० अग्नि, तुम अभीष्टवर्षी और दानशील होकर श्वास फेंकते हुए हमारे धनाढ्य गृहमें दीप्त हो। शिशु छोड़कर, युद्ध-समयमें वर्मकी तरह, बार-बार शत्रुओंको दूर करके जल उठो।

११ अग्नि, यह जो काठके ऊपर सावधानीसे हव्य रखा गया है, वह तुम्हारी मनोनुकूल प्रिय वस्तुसे भी हो। तुम्हारे शरीरकी शिखासे जो निर्मल और दीप्त तेज निकलता है, उसके साथ तुम हमें रत्न प्रदान करो।

१२ अग्नि, हमारे घर या यजमान और रथके लिये सुदृढ़ डाँड़ या ऋत्विक् और पाद या मंत्रसे संयुक्त या यज्ञ प्रदान करो। वह हमारे वीरों, धनवाहकों और अन्य लोगोंकी रक्षा करेगा और हमें सुखसे रखेगा।

अभीनो अग्न उक्थमिज्जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वगूर्ताः ।
गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहेषं वरमरुण्यो वरन्त ॥ १३ ॥

१४१ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

वड़ित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि ।
यदीमुपह्वरते साधते मतिर्ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ॥ १ ॥
पृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आशये द्वितीयमासप्तशिवासु मातृषु ।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ॥ २ ॥
निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्तसूरयः ।
यदीमनु प्रदीवो मध्व आधवे गुहासन्तं मातरिश्वा मथायति ॥ ३ ॥
प्र यत् पितुः परमान्नीयते पर्यँपृक्षुधो वीरुधो दंसुरोहति ।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद्यविष्ठो अभवद्घृणा शुचिः ॥ ४ ॥

१३ अग्नि, हमारे ऋङ्मंत्रोंके लिये उत्साह बढ़ाओ। द्यावापृथिवी और स्वयं गामिनी नदियाँ हमें गौ और शस्य प्रदान करके उत्साह वर्द्धित करें। अरुणवर्ण उषाएँ सदा पाने योग्य सुन्दर अन्न आदि दें।

१ प्रकाशमान अग्निका दर्शनीय तेज, सचमुच, इसी प्रकार लोग, शरीरके लिये, धारण करते हैं। वह तेज शारीर बल या अरणि-मन्थनसे उत्पन्न हुआ है। अग्निके तेजका आश्रय करके मेरा ज्ञान अपनी अभीष्ट-सिद्धि कर सकता है; इसलिये अग्निके लिये स्तुति और हव्य अर्पण किया जाता है।

२ प्रथम अन्न-साधक शरीरो और नित्य अग्नि रहते हैं, द्वितीय कल्याणवाहिनी सप्त-मातृकाओंमें रहते हैं, तृतीय इस अभीष्टवर्षीके दोहनके लिये रहते हैं। परस्पर संश्लिष्ट दसदिशाएँ दसो दिशाओंमें पूजनीय अग्निको उत्पन्न करती हैं।×

३ चूँकि महायज्ञके मूलसे सिद्धि करनेवाले ऋत्विक् बल-प्रयोग या अरणि-मन्थन द्वारा अग्निको उत्पन्न करते हैं, अनादि कालसे अच्छी तरह फैलानेके लिये गुहास्थित अग्निको वायु चालन करते हैं,—

४ अग्निकी उत्कृष्टताकी प्राप्तिके लिये अग्निका निर्माण किया जाता है, आहारके लिये वाञ्छित लताएँ अग्निकी शिखाओं (दाँतों) पर चढ़ जाती हैं और अध्वर्यु तथा यजमान दोनों ही अग्निको उत्पत्तिके लिये चेष्टा करते हैं; इसलिये पवित्र अग्निदेव, यजमानोंके लिये अनुग्रह करते हुए, युवा हुए।

×प्रथम अग्निका स्थान पृथिवी और द्वितीयका अन्तरीक्ष है, जहाँ मातृस्थानीय वृष्टि होती है। यही विद्युदग्नि और अभीष्टवर्षी हैं। इन्हें दूहनेके लिये सूर्यकिरणरूप स्थानमें जो अग्नि रहते हैं, वह तृतीयाग्नि हैं—इस मंत्रका यही तात्पर्य है।

आदिन्मातॄराविशद्यास्वा शुचिरहिंस्यमान उर्विया विवावृधे ।
अनु यत् पूर्वा अरुहत् सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ॥ ५ ॥
आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानास ऋञ्जते ।
देवान् यत् क्रत्वा मज्मना पुरुष्टुतो मर्त्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे ॥ ६ ॥
वियदस्थाद्यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः ।
तस्य पत्मन्दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आव्यध्वनः ॥ ७ ॥
रथो न यातः शिक्वभिः कृतो द्यामङ्गेभिररुषेभिरीयते ।
आदस्यते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः ॥८॥
त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः ।
यत्सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुररान्ननेमिः परिभूरजायथाः ॥९॥
त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि ।
तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन्वयं भगं नकारे महिरत्न धीमहि ॥ १०॥

५ मातृरूपिणी दिशाओंके बीच अग्नि, हिंसा-रहित होकर, बढ़े हैं; इस समय प्रदीप्त होकर उन्हींके मध्य हैं। स्थापन-समयमें, पहले, जो सब औषध प्रक्षिप्त हुए थे, उनके ऊपर अग्नि चढ़ गये थे। इस समय अभिनव निकृष्ट औषधोंके प्रति दौड़ते हैं।

६ हविका सम्पर्क करनेवाले यजमान, द्युलोक-निवासियोंकी प्रसन्नताके लिये, होम-सम्पादक अग्निका वरण और राजाकी तरह उनका आराधन करते हैं। अग्नि बहुतोंके स्तुति-योग्य और विश्व-रूप हैं। वह यज्ञ-सम्पन्न बलशाली हैं। वह देवों और स्तुति-योग्य मर्त्य यजमानों—दोनोंके लिये अन्नकी कामना करते हैं।

७ जैसे बकवादी विदूषक आदि बड़ी सरलतासे हँसा देते हैं, वैसे ही वायु द्वारा परिचालित यजनीय अग्नि ओर व्याप्त होते हैं। अग्नि दहन-कर्त्ता हैं, उनका जन्म पवित्र है, उनका मार्ग कृष्णवर्ण है और उनके मार्गमें कुछ स्थिरता नहीं है। इसीलिये उनके मार्गमें अन्तरीक्ष स्थित है।

८ रस्सीमें बँधे रथकी तरह अपने चञ्चल अंगकी सहायतासे अग्नि स्वर्गको जाते हैं। उनका मार्ग एकबारगी कृष्णवर्ण है, वह काठ जलाते हैं। वीरकी तरह अग्निके उद्दीप्त तेजके सामनेसे चिड़ियाँ भाग जाती हैं।

९ अग्निदेव तुम्हारी सहायतासे वरुण अपना व्रत धारण करते, मित्र अन्धकार नाश करते और अर्यमा दान होते हैं। जैसे रथका पहिया डाँड़ोंको व्याप्त करके रहता है, उसी प्रकार अग्निने यज्ञ-कार्य द्वारा विश्वात्मक, सर्व और सबके पराभवकारी होकर जन्म ग्रहण किया है।

१० युवा अग्नि, जो तुम्हारी स्तुति करते और तुम्हारे लिये अभिषव करते हैं, तुम उनका रमणीय हव्य देवोंके पास विस्तार करते हो। हे तरुण, महाधन और बल-पुत्र, तुम स्तवनीय और हविर्भोक्ता हो। स्तुति-कालमें राजाकी तरह तुम्हें स्थापित करते हैं।

अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनसं भगं दक्षं न पपृचासि धर्णसिम् ।
रश्मीँरिव यो यमति जन्मनी उभे देवानां शंसमृत आ च सुक्रतुः ॥११॥
उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो होता मन्द्रः शृणवच्चन्द्ररथः ।
स नो नेषन्नेषतमैरमूरोऽग्निर्वामं सुवितं वस्यो अच्छ ॥१२॥
अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिरर्कैः साम्राज्याय प्रतरं दधानः ।
अमी च ये मघवानो वयं च मिहं न सूरो अतिनिष्टतन्युः ॥१३॥

* * *

१४२ सूक्त । आप्री देवता ।* त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

समिद्धो अग्न आवह देवाँ अद्य यतस्रुचे ।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥१॥
घृतवन्तमुपमासि मधुमन्तं तनूनपात् ।
यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥२॥

११ अग्नि, तुम जैसे हमें अत्यन्त प्रयोजनीय और उपास्य धन देते हो, वैसे ही उत्साही, जन-प्रिय और विद्याध्ययनमें चतुर पुत्र दो । जैसे अग्नि अपनी किरणोंको विस्तृत करते हैं, वैसे ही अपने जन्माधार (आकाश और पृथिवी) का विस्तार करते हैं । हमारे यज्ञमें यज्ञ-कर्त्ता अग्नि देवोंकी स्तुतिका विस्तार करते हैं ।

१२ अग्निदेव प्रकाशशील, द्रुतगामी अश्वसे संयुक्त, होता, आनन्दमय, सोनेके रथवाले, अप्रतिहतशक्ति और प्रसन्न-स्वभाव हैं । क्या वह हमारा बुलाना सुनेंगे ? वह क्या हमें सिद्धिदाता कर्मद्वारा अनायास-लभ्य और अभिवांछित स्वर्गकी ओर ले जायँगे ?

१३ हव्य-प्रदान आदि कर्म और पूजा-साधक मन्त्र द्वारा हमने अग्निकी स्तुति की है । अग्नि अच्छी तरह दीप्तिसे युक्त हुए हैं । सारे उपस्थित लोग और हम, जैसे सूर्य मेघका शब्द उत्पन्न करते हैं, वैसे ही अग्निको लक्ष्य कर स्तुति करते हैं ।

---

१ हे समिद्ध नामके अग्नि, जो यजमान स्रुक् ऊँचा किये हुए है, उसके लिये आज तुम देवोंको बुलाओ । जिस हव्यदाता यजमानने होमका अभिषव किया है, उसकी भलाईके लिये पूर्वकालीन यज्ञ विस्तार करो ।

२ तनूनपात् नामके अग्नि, मेरे समान जो हव्यदाता और मेधावी यजमान तुम्हारी स्तुति करता है, उसके घृत और मधुसे संयुक्त यज्ञमें आकर यज्ञ-समाप्ति पर्यन्त रहो ।

---

* आप्री शब्दका अर्थ अग्निका रूप है; इसलिये एक तरहसे इस सूक्तके देवता भी अग्नि ही हैं ।

शुचिः पावको अद्भुतो मध्वायज्ञं मिमिक्षति ।
नराशंसस्त्रिरादिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥३॥
ईड़ितो अग्न आवहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।
इयं हित्वा मतिर्ममाच्छा सुजिह्व वच्यते ॥४॥
स्तृणानासो यतस्रुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे ।
वृञ्जे देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥५॥
विश्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः ।
पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवी रसश्चतः ॥ ६ ॥
आभन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा ।
यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरासुमत् ॥ ७ ॥
मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारादैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ॥ ८ ॥
शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती ।
इला सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥ ९ ॥

३ देवोंमें स्वच्छ, पवित्र, अद्भुत, द्युतिमान् और यज्ञ–सम्पादक नाराशंस नामक अग्नि द्युलोकसे आकर हमा यज्ञको मधुसे मिश्रित करें।

४ अग्नि, तुम्हारा नाम इलित है। तुम विचित्र और प्रिय इन्द्रको यहां ले आओ। सुजिह्व, तुम्हारे लिये स्तोत्र-पाठ करता हूँ।

५ स्रुक् धारण करनेवाले ऋत्विक् लोग इस यज्ञमें अग्नि-रूप कुशको फैलाते हुए इन्द्रके लिये विस्तीर्ण औ सुख–साधक गृह बनाते हैं। इस घरमें देवता लोग सदा गमनागमन करेंगे।

६ अग्निरूप यज्ञका दरवाजा खोल दो। देवोंके आनेके लिये यज्ञ-द्वार खोल दो। ये दरवाजे यज्ञ-वर्द्धक, यज्ञ-शोभ बहुत लोगोंके लिये श्लाघ्य और परस्पर असंलग्न हैं।

७ सबके स्तुति-पात्र, परस्पर संनिहित, सुन्दर, महान्, यज्ञ-निर्माता और अग्निरूप रात और उषा स्वयं आक विस्तृत कुशोंके ऊपर बैठें।

८ देवोंकी उन्मादक जिह्वासे युक्त, सदा स्तुतिशील यजमानोंके मित्र, अग्निरूप दिव्य दोनों होता हमारे इस सि प्रद और स्वर्गस्पर्शी यज्ञका अनुष्ठान करें।

९ शुद्ध, देवोंकी मध्यस्था, होम-सम्पादिका भारती (स्वर्गस्थ वाक्), इला (पृथिवीस्थ वाक्) और सरस्व (अन्तरीक्षस्थ वाक्)— ये अग्निकी तीनों मूर्त्तियां यज्ञके उपयुक्त होकर कुशोंपर बैठें।

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुवारं पुरुत्मना। त्वष्टा पोषाय विष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥ १० ॥
अवसृजन्नुपत्मना देवान् यक्षि वनस्पते। अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥ ११ ॥
पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे। स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन ॥ १२॥
स्वाहाकृतान्यागह्युप हव्यानि वीतये। इन्द्रागहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥ १३ ॥

* * *

१४३ सूक्त। अग्नि देवता। त्रिष्टुप् और जगती छन्द।

प्रतव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे।
अपान्नपाद्यो वसुभिः सहप्रियो होता पृथिव्यां न्यसीददृत्वियः ॥ १ ॥
सजायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥ २ ॥
अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसन्दृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते अससन्तो अजराः ॥ ३ ॥

---

१० त्वष्टा हमारे मित्र हैं। वह स्वयं, अच्छी तरह, हमारी पुष्टि और समृद्धिके लिये, मेघके नाभिस्थित, व्याप्त अद्भुत और असंख्य प्राणियोंकी भलाई करनेवाला जल बरसावें।

११ हे अग्निरूप वनस्पति, इच्छानुसार ऋत्विकोंको भेजकर, स्वयं देवोंका यज्ञ करो। द्युतिमान् और मेधावान् अग्नि देवोंके बीच हव्य भेजें।

१२ पूषा और मरुतोंसे युक्त विश्वदेवगण, वायु और गायत्री-शरीर इन्द्रको लक्ष्यकर, हव्य देनेके लिये, अग्निरूप स्वाहा शब्दका उच्चारण करो।

१३ इन्द्र, हमारा स्वाहाकार-युक्त हव्य खा के लिये आओ। ऋत्विक् लोग यज्ञमें तुम्हें बुलाते हैं।

---

१ अग्नि बलके पुत्र, जलके नप्ता, यजमानके प्रियतम और होमके सम्पादक हैं। वह, यथासमय, धनके साथ वेदीपर बैठते हैं। उनके लिये मैं यह नया और शुभफल वर्द्धक यज्ञ आरम्भ करता और स्तुति-पाठ करता हूँ।

२ परम आकाश-देशमें उत्पन्न होकर अग्नि सबसे पहले मातरिश्वा या वायुके पास प्रकट हुए। अनन्तर इन्धन द्वारा अग्नि बढ़े और प्रबल कर्म द्वारा उनकी दीप्तिसे द्यावापृथिवी प्रदीप्त हुई।

३ अग्निकी दीप्तिसे सबका नाश नहीं होता। सुदृश्य अग्निके सारे स्फुलिङ्ग चारो ओर प्रकाशमान और विलक्षण बलशाली हैं। रात्रिका अन्धकार नष्ट करके सदा जाग्रत् और अजर अग्नि-शिखाएँ कभी नहीं काँपती।

यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना ।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आदमे य एकोवस्वो वरुणो न राजति ॥ ४ ॥
न यो वराय मरुतामिवस्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।
अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून्त्स वनान्यृञ्जते ॥ ५ ॥
कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद्वसुष्कुविद्वसुभिः काममावरत् ।
चोदः कुवित्तुतुज्यात् सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ॥ ६ ॥
घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते ।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णा मुदुनो यंसते धियम् ॥ ७ ॥
अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेनिमिषद्भिः परिपाहि नोजाः ॥ ८ ॥

१४४ सूक्त । अग्नि देवता । जगती छन्द ।

एति प्रहोता व्रतमस्य माययोर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम् ।
अभिस्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते ॥ १ ॥

---

४ भृगुवंशोत्पन्न यजमानोंने, अपने सामने, जीवोंके बलके लिये, उत्तर वेदीपर जिन सर्वधनशाली अग्नि स्थापित किया है, उन्हें अपने घरमें ले जाकर स्तुति करो। अग्नि प्रधान हैं और वरुणकी तरह सारे धनोंके ईश्वर हैं।

५ जैसे वायुके शब्द, पराक्रमी राजाकी सेना और द्युलोकमें उत्पन्न वज्रका कोई निवारण नहीं कर सकता, उसी प्रकार जिन अग्निका कोई निवारण नहीं कर सकता, वही अग्नि, वीरोंकी तरह, तीखे दाँतोंसे शत्रुओंका भक्षण और विनाश तथा वनोंका दहन करते हैं।

६ अग्निदेव बार-बार हमारे उक्त स्तोत्रको सुननेकी इच्छा करें। धनशाली अग्नि, धन द्वारा बार-बार हमारी इच्छा पूरी करें। यज्ञ-प्रवर्त्तक अग्नि, यज्ञ-लाभके लिये, हमें बार-बार प्रेरित करें—मैं ऐसी स्तुति द्वारा सुदृश्य अग्नि स्तुति करता हूँ।

७ तुम्हारे यज्ञ-निर्वाहक और प्रदीप्त अग्निको, मित्रकी तरह, जलाकर विभूषित किया जाता है। अक्रो सा चमकती ज्वालावाले अग्नि, यज्ञ स्थलमें, प्रदीप्त होकर हमारी विशुद्ध यज्ञ-विषयक बुद्धिको प्रबुद्ध करते हैं।

८ अग्निदेव, हमारे ऊपर अनुग्रह करके सदा अवहित, माङ्गलिक और सुखकर आश्रय देकर, हमारी रक्षा करो। सबजनवाञ्छनीय अग्नि, उत्पन्न होकर तुम हिंसा-रहित अजेय और एकनिष्ठ भावसे हमारी रक्षा, भली भाँति, करो।

१ बहुदर्शी होता, अपनी उच्च और शोभन बुद्धिके बल, अग्निकी सेवा करनेके लिये, जा रहे हैं और प्रदक्षि करके स्रुक् धारण कर रहे हैं। ये स्रुक् अग्निमें प्रथम आहुति देते हैं।

अभीमृतस्य दोहना अनूषत योनौ देवस्य सदने परीवृताः ।
अपामुपस्थे विभृतो यदावसदधस्वधा अधयद्याभिरीयते ॥ २ ॥
युयूषतः सवयसा तदिद्वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः ।
आदीं भगो न हव्यः समस्मदावोह्लर्न रश्मीन्त्समयंस्त सारथिः ॥ ३ ॥
यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा ।
दिवानक्तं पलितो युवाजनि पुरूचरन्नजरोमानुषायुगा ॥ ४ ॥
तमीं हिन्वन्ति धीतयो दशव्रिशो देवं मर्तास ऊतये हवामहे ।
धनोरधि प्रवत आस ऋण्वत्यभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधित ॥ ५ ॥
त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना ।
एनीत एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते ॥ ६ ॥
अग्ने जुषस्व प्रतिहर्यतद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो ।
यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः सन्दृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः ॥ ७ ॥

* * *

२ सूर्य-किरणोंमें चारो ओर फैली जल-धारा, उनको उत्पत्तिके स्थान सूर्य-लोकमें, फिर नयी होकर, उत्पन्न होती है। जिस समय जिसकी गोदमें, आदरके साथ, अग्नि रहते हैं, उसी समय लोग अमृतमय जल पीते एवं अग्नि, विद्युत्-अग्निके रूपमें, मिलते हैं

३ समान अवस्थावाले होता और अध्वर्यु, एक ही प्रयोजनकी सिद्धिके लिये, परस्परको सहायता देकर अग्निके शरीरमें अपना-अपना कार्य सम्पादित करते हैं। अनन्तर जैसे सूर्य अपनी किरणें फैलाते हैं अथवा सारथि लगाम ग्रहण करता है, वैसे ही आहवनीय अग्नि हमारी दी हुई घृत-धारा ग्रहण करते हैं।

४ समान अवस्थावाले, एक यज्ञमें वर्त्तमान और एक कार्यमें नियुक्त दोनों मनुष्य जिन अग्निकी, दिन-रात, पूजा करते हैं, वह अग्नि चाहे बूढ़े हों, चाहे युवा, उन दोनों मनुष्योंका हव्य भक्षण करते हुए, अजर हुए हैं।

५ दसो अँगुलियाँ, आपसमें अलग होकर, उन प्रकाशशाली अग्निको प्रसन्न करती हैं। हम मनुष्य हैं; अपनी रक्षाके लिये अग्निको बुलाते हैं। जसे धनुषसे वाण निकलता है, वैसे ही अग्नि भी स्फुलिङ्ग भेजते हैं। चारो ओर अवस्थित यजमानोंको नयी स्तुतिको अग्निदेव धारण करते हैं।

६ अग्नि, पशु-रक्षकोंकी तरह, तुम, अपनी शक्तिसे, स्वर्गीय और पृथिवीस्थ लोगोंके ईश्वर हो; इसलिये महती ऐश्वर्यवती, हिरण्मयी मंगल-शब्द-कारिणी शुभ्रवर्णा और प्रसन्ना द्यावापृथिवी तुम्हारे यज्ञमें आती हैं।

७ अग्नि, तुम हव्यका उपभोग करो; अपना स्तोत्र सुननेकी इच्छा करो। हे स्तुत्य, अन्नवान् और यज्ञके लिये उत्पन्न तथा महाबली अग्नि, तुम सारे जगत्के अनुकूल, सबके दर्शनीय, आनन्दोत्पादक और यथेष्ट-अन्न-शाली व्यक्तिकी तरह सबके आश्रय-स्थान हो।

१४५ सूक्त। अग्नि देवता। त्रिष्टुप् और जगती छन्द।

तं पृच्छतास जगामासवेदस चिकित्वाँ ईयते सान्वीयते।
तस्मिन्त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥ १ ॥
तमित्पृच्छन्ति न सिमो विपृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत्।
न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोस्य क्रत्वा सचते अप्रदृपितः ॥ २ ॥
तमिद्गच्छन्ति जुह्वस्तमर्वतीर्विश्वान्येकः शृणवद्वचांसि मे।
पुरुप्रैषस्ततुरिर्यज्ञसाधनोच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त संरभः ॥ ३ ॥
उपस्थायं चरति यत् समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः।
अभिश्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ॥ ४ ॥
स ईं मृगो अप्योवनर्गुरुपत्वच्युपमस्यां निधायि।
न्यब्रवीद्वयुना मर्त्येभ्योग्निर्विद्वाँ ऋतचिद्धि सत्यः ॥ ५ ॥

* * *

१ अग्निसे पूछो। वही ज्ञाता हैं, वही गये हैं, उन्हींको चैतन्य है, वही यान हैं, वही शीघ्रगन्ता हैं, उन्हींके पास शासन-योग्यता है, अभीष्ट वस्तु भी उन्हींके पास है। वही अन्न, बल और बलवान्के पालक हैं।

२ अग्निको ही सारा संसार जानना चाहता है; यह जिज्ञासा अन्याय-पूर्ण नहीं है। अपने मनमें धीर व्यक्ति जो स्थिर करता है, उसके पूर्व और परकी बात नहीं सह सकता। इसीलिये दम्भ-विहीन मनुष्य अग्निका आश्रय प्रा करता है।

३. सब जुहू अग्निको लक्ष्य कर जाते हैं। स्तुतियाँ भी अग्निके लिये ही हैं। एक अग्नि मेरी समस्त स्तुतियाँ सुनते हैं। वह बहुतोंके प्रवर्त्तक, तारयिता और यज्ञके साधन हैं। उनकी रक्षा-शक्ति छिद्रशून्य है। वह शिशुकी तरह शान्त और यज्ञके अनुष्ठाता हैं।

४ जभी यजमान अग्निको उत्पन्न करनेकी चेष्टा करता है, तभी अग्नि प्रकट होते हैं। उत्पन्न होकर ही दुर योजनीय वस्तुके साथ मिल जाते हैं। अग्निका आनन्द-वर्द्धक कर्म श्रान्त यजमानके सन्तोषके लिये अभीष्ट फल देता है।

५ अन्वेषण-परायण और प्राप्तव्य वनके गामी अग्नि, त्वचाकी तरह, इन्धनके बीच स्थापित हुए हैं। विद्वान्, यज्ञ ज्ञाता और यथार्थवादी अग्निने मनुष्योंको, विशेष करके, यज्ञानुष्ठानके समय, ज्ञान प्रदान किया है।

१४६ सूक्त। अग्नि देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

त्रिमूर्द्धानं सप्तरश्मिं गृणीषेनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे।
निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचना पप्रिवांसम्॥ १॥
उक्षामहाँ अभिववक्ष एने अजरस्तस्थावित ऊतिर्ऋष्वः।
उर्व्याः पदो निदधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुषासो अस्य॥ २॥
समानं वत्समभिसञ्चरन्ती विष्वग्धेनू विचरतः सुमेके।
अनपवृज्याँ अध्वनो मिमाने विश्वान्केताँ अधि महो दधाने॥ ३॥
धीरासः पदं कवयो नयन्ति नानाहृदा रक्षमाणा अजुर्यम्।
सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुमाविरेभ्यो अभवत् सूर्यो नन्॥ ४॥
दिदृक्षेण्यः परिकाष्ठासु जेन्य ईड़ेन्यो महो अर्भाय जीवसे।
पुरुत्रा यदभवत् सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः॥ ५॥

---

१ पिता-माताकी गोदमें अवस्थित, सवन त्रय-रूप मस्तक-त्रयसे युक्त, सप्त छन्दोरूप सप्त रश्मियोंसे युक्त और विकलता-शून्य अग्निकी स्तुति करो। सर्वत्र गामी, अविचलित, प्रकाशमान और अभीष्टवर्षक अग्निका तेज चारो ओर व्याप्त हो रहा है।

२ फल-दाता अग्नि, अपनी महिमासे, द्यावा-पृथिवीको व्याप्त किये हुए हैं। अजर और पूज्य अग्निदेव हमारी रक्षा करके अवस्थित हैं। वह व्यापक पृथिवीके सानु प्रदेश या वेदीपर अपने पैर फैलाते हैं। उनकी उज्ज्वल ज्योति अन्तरीक्षको चाटती है।

३ सेवाकार्यमें चतुर दो (यजमान और उसकी पत्नीके स्वरूप) गायें एक बछड़े (अग्नि) के सामने जाती हैं। वह निन्दनीय विषयसे शून्य मार्गका निर्माण और सब तरहकी बुद्धि या प्रज्ञा, अधिक मात्रामें, धारण करती हैं।

४ विद्वान् और मेधावी लोग अज्ञेय अग्निको अपने स्थानपर स्थापित करते हैं; बुद्धि-बलसे, नाना उपायोंसे, उनकी रक्षा करते हैं। यज्ञ-फलका भोग करनेकी इच्छासे फलदाता अग्निकी शुश्रूषा करते हैं। उनके पास, सूर्यरूपमें, अग्नि प्रकट होते हैं।

५ अग्नि चाहते हैं कि, उन्हें दसों दिशाएँ देख सकें। वह सदा जयशील और स्तुति-योग्य हैं। वह क्षुद्र और महान्—सबके जीवन-स्वरूप हैं। धनदान् और सबके दर्शनीय अग्नि, अनेक स्थानोंमें, शिशु-समान यजमानोंके पितृतुल्य हैं।

१४७ सूक्त। अग्नि देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः।
उभे यत्तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन् रणयन्त देवाः ॥ १ ॥
बोधामे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः।
पीयति त्वो अनुत्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ॥ २ ॥
ये पायवो मामतेयन्ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन्।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदादिप्सन्त इद्रिपवो नाहदेभुः ॥ ३ ॥
यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन।
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनुमृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ॥ ४ ॥
उतवायः सहस्य प्रविद्वान्मर्तोमर्तं मर्चयति द्वयेन।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ॥ ५ ॥

* * *

१ अग्नि, तुम्हारी उज्ज्वल और शोषक शिखाएं कैसे अन्नके साथ आयु प्रदान करती हैं, जिससे पुत्र, पौत्र आदिके लिये अन्न और आयु प्राप्त कर यजमान लोग याज्ञिक साम-गायन कर सकते हैं ?

२ हे युवा और अन्नवान् अग्नि, मेरी अत्यन्त पूज्य और अच्छी तरह सम्पादित स्तुति ग्रहण करो। कोई तुम्हारी हिंसा करता और कोई तुम्हारी पूजा करता है। मैं तो तुम्हारा उपासक हूँ। मैं तुम्हारी मूर्तिकी पूजा करता हूँ।

३ अग्नि, तुम्हारी जिन प्रसिद्ध और पालक रश्मियोंने ममताके पुत्र और अन्धे दीर्घतमाको अन्धत्वसे बचाया था, उन सुखकर शिखाओंकी सर्वप्रज्ञायुक्त तुम रक्षा करो। विनाशेच्छु शत्रुगण हिंसा न करने पावें ×

४ अग्निदेव, जो हमारे लिये पाप चाहते हैं, स्वयं दान नहीं करते, मानसिक और वाचनिक, दो प्रकारके मंत्रों द्वारा हमारी निन्दा करते हैं, उन्हें एक मानस मंत्र गुरुभार हो और वे दुर्वाक्य द्वारा अपना ही शरीर नष्ट करें।

५ बलके पुत्र अग्नि, जो मनुष्य जान-बूझकर दोनों तरहके मंत्रोंसे मनुष्यकी निन्दा करता है, मैं विनय करता हूं, हे स्तूयमान अग्नि, उसके हाथसे मेरी रक्षा करो। हमें पापमें मत फेंको।

× सायणके मतसे दीर्घतमाकी माता ममताके साथ बृहस्पतिने उस समय रमण किया, जिस समय दीर्घतमा गर्भमें थे। दीर्घतमाने बृहस्पतिको, वर्ण-संकरताके भयसे, मना किया। बृहस्पतिने दीर्घतमाको अन्धा होनेका शाप दिया और अग्निने स्तुति करनेपर दीर्घतमाका अन्धत्व दूर किया।

१४८ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

मथीद्यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् ।
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षुस्वर्ण चित्रं वपुषे विभावम् ॥ १ ॥
ददानमिन्न ददभन्त मन्माग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन् ।
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मोपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥ २ ॥
नित्येचिन्नुयं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः ।
प्रसूनयन्तगृ भयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ॥ ३ ॥
पुरूणि दस्मो निरिणाति जम्भैराद्रोचते वन आविभावा ।
आदस्य वातो अनुवाति शोचिरस्तुर्न शर्यामसनामनुद्यून् ॥ ४ ॥
न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति ।
अन्धा अपश्यानदभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ॥ ५ ॥

* * *

१४९ सूक्त । अग्नि देवता । विराट् छन्द ।

महः सराय एषते पतिर्दन्निन इनस्य वसुनः पद आ । उपध्रजन्तमद्रयो विधन्नित् ॥ १ ॥

---

१ वायुने, काठके भीतर घुसकर, विविधरूपशाली, सारे देवोंके कार्यमें निपुण और देवोंको बुलानेवाले अग्निको बढ़ाया। पहले देवोंने अग्निको, विलक्षण प्रकाशवाले सूर्यकी तरह, मनुष्यों और ऋत्विकोंकी यज्ञ-सिद्धिके लिये, स्थापित किया था।

२ अग्निको सन्तोषदायक हव्य देनेसे ही शत्रु लोग मुझे नष्ट नहीं कर सकेंगे। अग्नि मेरे द्वारा प्रदत्त स्तोत्र आदिके अभिलाषी हैं। जिस समय स्तोता अग्निकी स्तुति करते हैं, उस समय सारे देवता उनके दिये हुए हव्यको ग्रहण करते हैं।

३ याज्ञिक लोग जिन अग्निको नित्य अग्नि-गृहमें ले जाते और स्तुतिके साथ स्थापित करते हैं, उन्हीं अग्निको ऋत्विकोंने, शीघ्रगामी और रथ-निबद्ध अश्वकी तरह, यज्ञके लिये बनाया।

४ विनाशक अग्नि सब प्रकारके वृक्षोंको अपनी शिखाओं या दाँतोंसे नष्ट करके विपिनमें चित्र-विचित्र शोभा प्राप्त करते हैं। इसके अनन्तर जैसे धनुर्द्धारीके पाससे, वेगके साथ, तीर जाता है, वैसे ही प्रतिदिन वायु शिखाके अनुकूल होकर बहते हैं।

५ अरणिके गर्भमें अवस्थित जिन अग्निको शत्रु या अन्य हिंसक दुःख नहीं दे सकते, अन्धा भी जिनका माहात्म्य हीं नष्ट कर सकता, उन्हींको, अविचल भक्तिवाले यजमान, विशेष रूपसे तृप्ति दे करके, रक्षा करते हैं

१ महाधनके स्वामी अग्नि अभीष्ट प्रदान करते हुए, हमारे देव-पूजनके सामने जा रहे हैं। प्रभुओंके भी प्रभु अग्नि वेदका आश्रय करते हैं। प्रस्तर-हस्त यजमान लोग आगत अग्निकी सेवा करते हैं।

स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः। प्रयः सस्राणः शिश्रीत योनौ ॥ २ ॥
आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्योनार्वा। सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥ ३ ॥
अभि द्विजन्मा त्रीरोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात्। होता यजिष्ठो अपांसधस्थे ॥४॥
अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वादधे वार्याणि श्रवस्या। मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥५॥

१५० सूक्त। अग्नि देवता। उष्णिक् छन्द।

पुरुत्वा दाश्वान्वोचेरिरग्ने तव स्विदा। तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥
व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः। कदाचन प्रजिगतो अदेवयोः ॥ २ ॥
स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि। प्रप्रेत्ते अग्ने वनुषः स्याम ॥ ३ ॥

२ मनुष्योंकी तरह, जो अग्नि, द्यावापृथिवीके भी उत्पादक हैं, वह यशःशाली होकर वर्त्तमान हैं एवं उन्हींसे जीव लोग सृष्टिका आस्वादन प्राप्त करते हैं। उन्होंने गर्भाशयमें पैठकर सारे जीवोंकी सृष्टि की है।

३ अग्निदेव मेधावी हैं; वह अन्तरीक्ष-विहारी वायुकी तरह विभिन्न स्थानोंमें जाते हैं। उन्होंने दस कुम्भ वेदियोंको प्रदीप्त किया है। नानारूप अग्नि, सूर्यकी तरह, सुशोभित होते हैं।

४ द्विजन्मा अग्नि दीप्यमान लोकत्रयका प्रकाश करते और सारे रञ्जनात्मक संसारका भी प्रकाश करते हैं। वह देवोंके आह्वान-कर्त्ता हैं। जहाँ जल संगृहीत होता है, वहाँ अग्नि वर्त्तमान हैं।

५ जो अग्नि द्विजन्मा हैं, वही होता हैं; वही हव्य-प्राप्तिकी अभिलाषासे सारा वरणीय धन धारण करते हैं। जो मनुष्य अग्निको हव्य देता है, वह उत्तम पुत्र प्राप्त करता है।

---

१ हे अग्निदेव, मैं हव्य दान करता हूँ; इसलिये तुम्हारे पास बहुविध प्रार्थनाएँ करता हूँ। अग्निदेव, मैं तुम्हारा ही सेवक हूँ। अग्निदेव, महान् स्वामीके घरमें जैसे सेवक हैं, वैसे ही तुम्हारे पास मैं हूँ।

२ अग्निदेव, जो धनी मनुष्य तुम्हें स्वामी नहीं मानता वा उत्तमरूप हवनके लिये दक्षिणा नहीं देता एवं जो व्यक्ति देवोंकी स्तुति नहीं करता, उन देवशून्य दोनों व्यक्तियोंको धन नहीं देना।

३ हे मेधावी अग्नि, जो मनुष्य तुम्हारा यज्ञ करता है, वह स्वर्गमें चन्द्रमाकी तरह सबका आनन्ददाता होता है; प्रधानोंमें भी प्रधान होता है। इस लिये हम विशेषतः तुम्हारे ही सेवक होंगे।

१५१ सूक्त । मित्रावरुण देवता । जगती छन्द ।

मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन् ।
अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रतिप्रियं यजतं जनुषामवः ॥ १ ॥
यद्धत्यद्वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः प्रमित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।
अधक्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः ॥ २ ॥
आ वां भूषन् क्षितयो जन्मरोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।
यदीमृताय भरथो यदर्वते प्रहोत्रया शिम्यावीथो अध्वरम् ॥ ३ ॥
प्र सा क्षितिरसुरयामहिप्रिय ऋतावानावृतमाघोषथो बृहत् ।
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युपयुञ्जाथे अपः ॥ ४ ॥
मही अत्र महिनावारमृण्वथो रेणवस्तुज आसद्मन्धेनवः ।
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमानिम्रुच उषसस्तक्ववीरिव ॥ ५ ॥
आवामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः ।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ॥ ६ ॥

---

१ गोधनाभिलाषी और स्वाध्याय-सम्पन्न यजामानों गोधनकी प्राप्ति और मनुष्योंकी रक्षाके लिये, मित्रकी तरह, प्रिय और यजनीय जिन अग्निको अन्तरीक्ष-भव जलके मध्यमें कर्म द्वारा उत्पन्न किया है, उनके बल और शब्दसे द्यावा-पृथिवी कम्पित होती है ।

२ चूँकि मित्रवत् ऋत्विकोंने तुम्हारे लिये अभीष्टदायी और अपने कर्ममें समर्थ सोमरस धारण किया है, इसलिये पूजकके घर आओ । तुम अभीष्टवर्षी हो । तुम गृहपतिका आह्वान सुनो।

३ अभीष्ट-वर्षक मित्रावरुण, मनुष्य लोग, महाबलकी प्राप्तिके लिये, द्यावा-पृथिवीसे तुम्हारे प्रशंसनीय जन्मका कीर्त्तन करते हैं; क्योंकि तुम यजमानके यज्ञफलरूप मनोरथको देते हो तथा स्तुति और हव्ययुक्त यज्ञ ग्रहण करते हो ।

४ हे पर्याप्त-बलशाली मित्रावरुण, जो यज्ञभूमि तुम्हारे लिये प्रियतमा है, वह उत्तम रूपसे सजायी गयी है । हे सत्यवादी मित्रावरुण, तुम हमारे महान् यज्ञकी प्रशंसा करो । दुग्ध आदिके द्वारा शरीरमें बल-दानके लिये, समर्थ धेनुकी तरह, तुम दोनों विशाल द्युलोकके अग्रभागमें देवोंके आनन्दोत्पादनमें समर्थ हो और विविध स्थानोंमें आरम्भ किये कर्मका उपभोग करते हो।

५ मित्रावरुण, तुम अपनी महिमासे जिन गायोंको वरणीय प्रदेशमें ले जाते हो, उन्हें कोई नष्ट नहीं कर सकता । वह दूध देती और गोशालामें लौट आती हैं । चौरधारी मनुष्योंकी तरह वह गायें प्रातःकाल और सायंकालको उपरिस्थित सूर्यको ओर देखकर चीत्कार करती हैं ।

६ मित्रावरुण, तुम जिस यज्ञमें यज्ञभूमिको सम्मान-युक्त करते हो, उसमें केशकी तरह अग्निकी शिखा, यज्ञके लिये, तुम्हारी पूजा करती है । तुम निम्न मुखसे वृष्टि प्रदान करो और हमारे कर्मको सम्पन्न करो । तुम्हीं मेधावी यजमानकी मनोहर स्तुतिके स्वामी हो ।

यो वां यज्ञैः शशमानोह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।
उपाहतं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छागिरः सुमति गन्तमस्मयू ॥ ७ ॥
युवां यज्ञैः प्रथमागोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ॥ ८ ॥
रेवद्वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरित ऊति माहिनम् ।
न वां द्यावोहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वम्पणयो नानशुर्मघम् ॥ ९ ॥

१५२ सूक्त । मित्रावरुण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवोह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्वऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥ १ ॥
एतच्चनत्वो विचिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान् ।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदोह प्रथमा ऽअजूर्यन् ॥ २ ॥

७ जो मेधावी, होमनिष्पादक और मनोहर यज्ञोंके साधनसे संयुक्त यजमान, यज्ञके लिये, तुम्हारे उद्देश्यसे, स्तुति करते हुए, हव्य प्रदान करता है, उसी बुद्धशाली यजमानके लिये गमन करो । यज्ञकी कामना करो । हमारे ऊपर अनुग्रह करनेकी अभिलाषासे हमारी स्तुति स्वीकार करो ।

८ हे सत्यवादी मित्रावरुण, जेसे इन्द्रियका प्रयोग करनेके लिये पहले मनका प्रयोग करना होता है, वैसे ही तुम्हें यजमानलोग अन्य देवोंके पहले गव्य द्वारा पूजन करते हैं । आसक्त चित्तसे यजमानलोग तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम मनमें दर्प न करके हमारे समृद्ध कार्यमें उपस्थित होओ ।

९ मित्रावरुण, तुम धन-विशिष्ट अन्न धारण करो, हमें धनयुक्त अन्न प्रदान करो । वह बहुत है और तुम्हारे बुद्धि-बलसे रक्षित है । दिन वा रात्रिको तुम्हारा देवत्व नहीं मिला है । नदियोंने भी तुम्हारा देवत्व नहीं प्राप्त किया, और न पणियोंने ही । पणियोंने तुम्हारा दान भी नहीं पाया ।

१ हे स्थूल मित्र और वरुण, तुम तेजोरूप वस्त्र धारण करो । तुम्हारी सृष्टि सुन्दर और दोषशून्य है । तुम सारे असत्यका विनाश करो और सत्यके साथ युक्त होओ ।

२ मित्र और वरुण—दोनों ही कर्मका अनुष्ठान करते हैं । दोनों सत्यवादी मंत्रित्व-निपुण, कवियोंके स्तवनीय और शत्रु-हिंसक हैं । वह प्रचण्ड रूपसे, चतुर्गुण अस्त्रोंसे संयुक्त होकर, त्रिगुण अस्त्रोंसे युक्तोंका विनाश करते हैं । उनके प्रभावसे देव-निन्दक पहले ही जीर्ण हो जाते हैं ।

अपादेति प्रथमापद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणाचिकेत ।
गर्भोभारं भरत्याचिदस्य ऋतंपिपर्त्य नृतं नितारीत् ।। ३ ।।
प्रयन्तमित् परिजारङ्कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ।। ४ ।।
अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत् पतयदूर्ध्वसानुः ।
अचित्तं ब्रह्मजुजुषुर्युवानः प्रमित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ।।५।।
आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ।।६।।
आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टि नमसा देवाववसा ववृत्यां ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ।।७।।

१५३ सूक्त । मित्रावरुण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।
घृतैर्घृतस्नू अधयद्वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ।।१।।

३ मित्रावरुण, पद-संयुक्त मनुष्योंके आगे पदशून्या उषा आती हैं—यह जो तुम्हारा ही कर्म है, यह कौन जानता है ? तुम्हारे या दिवारात्रिके पुत्र सूर्य सत्यकी पूर्त्ति और असत्यका विनाश करके सारे संसारका भार वहन करते हैं ।

४ हम देखते हैं कि, कन्या या उषाके जार सूर्य क्रमागत चलते ही हैं— कभी भी बैठते नहीं । विस्तृत तेजसे आच्छादित सूर्य मित्रावरुणके प्रियपात्र हैं ।

५ आदित्यके न तो अश्व हैं, न लगाम; परन्तु वह शीघ्र-गमन-शील और अतीव-शब्दकर्त्ता हैं । वह क्रमशः ही ऊपर चढ़ते हैं । संसार इन सब अचिन्तनीय और विशाल कर्मोंको मित्र और वरुणके मानकर उनकी स्तुति और सेवा करता है ।

६ प्रीति-प्रदायक गायें विशाल कर्म-प्रिय ममताके पुत्रको (मुझे) अपने स्तनसे उत्पन्न दूधसे प्रसन्न करें । वह यज्ञानुष्ठानो जानकर यज्ञमें बचे अन्नको, मुख द्वारा खानेके लिये, माँगें और मित्रावरुणकी सेवा करके यज्ञको अखण्डित रूपसे सम्पूर्ण करें ।

७ देव मित्रावरुण, मैं, रक्षाके लिये, नमस्कार और स्तोत्र करते हुए, तुम्हारे हव्य-सेवनके लिये उद्योग करूँगा । हमारा महान् कर्म, युद्धके समय, शत्रुओंको परास्त कर सके । स्वर्गीय वृष्टि हमारा उद्धार करे ।

---

१ हे घृतस्रावी और महान् मित्रावरुण, चूँकि हमारे अध्वर्यु लोग अपने कार्यसे तुम्हारा पोषण करते हैं; इस लिये हम समान-प्रीति-युक्त होकर हव्य, घृत और नमस्कार द्वारा तुम्हारी पूजा करते हैं ।

प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः ।
अनक्ति यद्वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् ॥२॥
पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।
हिनोति यद्वां विदथे सपर्यन्त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥३॥
उतवां विक्षमद्यास्वंधो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः ।
उतोनो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥४॥

१५४ सूक्त । विष्णु देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्क भायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥१॥
प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियंति भुवनानि विश्वा ॥२॥

---

२ हे मित्रावरुण, तुम्हारे उद्देश्यसे केवल यज्ञका प्रस्ताव या यज्ञ ही नहीं है; किन्तु उसके द्वारा मैं तुम्हारा ते प्राप्त करता हूं । जिस समय सुधीहोता तुम्हारे उद्देश्यसे यज्ञ करनेके लिये आते हैं, उस समय, हे अभीष्टवर्षक, वा सुख प्राप्त करते हैं ।

३ मित्रावरुण, रातहव्य नामके राजाके मनुष्य यजमानके होताकी तरह, यज्ञमें सेवा द्वारा तुम्हें प्रसन्न करनेप राजाकी धेनु जैसे दुग्धवती हुई थी, वैसे ही, तुम्हारे यज्ञमें जो यजमान हव्य देता है, उसकी गायें भी बहुत दूधवाल होकर आनन्द बढ़ावें ।

४ मित्र और वरुण, दिव्य धेनुएँ, अन्न और जल तुम्हारे भक्त यजमानोंके लिये तुम्हें प्रसन्न करें । हमा यजमानके पूर्व-पालक अग्नि दानशील हों और तुम क्षीरवर्षिणी धेनुका दूध पीओ ।

१ मैं विष्णुके वीर-कार्यका शीघ्र ही कीर्त्तन करूँगा । उन्होंने वामनावतारमें तीनों लोकोंको मापा था । उन्हों ऊपरके सत्यलोकको स्तम्भित किया था । उन्होंने तीन बार पाद-क्षेप किया था । संसार उनकी बहुत स्तुति करता है

२ चूंकि विष्णुके तीन पाद-क्षेपमें सारा संसार रहता है; इसलिये भयंकर, हिंस्र, गिरिशायी और वन्य जानव तरह, संसार विष्णुके विक्रमकी प्रशंसा करता है ।

प्रविष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः॥३॥
यस्य त्रीपूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणाः स्वधया मदन्ति।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुतद्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥४॥
तदस्य प्रियमभिपाथो अश्यां नरो यत्र देवयंवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बंधुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥५॥
ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिश्रृंगा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि ॥६॥

१५५ सूक्त। इन्द्र और विष्णु देवता। जगती छन्द।

प्रवः पान्तमंधसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चता।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्यामहस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥१॥

३ उन्मत्त प्रदेशमें रहनेवाले, अभीष्टवर्षक और सब लोकोंमें प्रशंसित विष्णुको महाबल और स्तोत्र आश्रित करें। उन्होंने अकेले ही एकत्र अवस्थित और अति विस्तीर्ण नियत लोक-त्रयको तीन बारके पद-क्रमण द्वारा मापा था।

४ (जिन) विष्णुका ह्रास-हीन, अमृतपूर्ण और त्रिसंख्यक पद-क्षेप अन्न द्वारा मनुष्योंको हर्ष देता है, (जिन्होंने) विष्णुने अकेले ही धातु-त्रय, पृथिवी' द्युलोक और समस्त भुवनोंको धारण कर रखा है।*

५ देवाकांक्षी मनुष्य जिस प्रिय मार्गको प्राप्त करके हृष्ट होते हैं, मैं भी उसीको प्राप्त करूँ। उस पराक्रमी विष्णुके परम पदमें मधुर (अमृत आदिका) क्षरण है। विष्णु वस्तुतः बन्धु हैं।

६ जिन सब स्थानोंमें उन्मत्त श्रृङ्गवाली और शीघ्रगामी गायें हैं, उन्हीं सब स्थानोंमें तुम दोनोंके जानेके लिये मैं विष्णुकी प्रार्थना करता हूँ। इन सब स्थानोंमें बहुत लोगोंके स्तवनीय और अभीष्टवर्षक विष्णुका परम पद यथेष्ट स्फूर्ति प्राप्त करता है।

१ अध्वर्युगण, तुम स्तुतिप्रिय और महावीर इन्द्र और विष्णुके लिये पीने योग्य सोमरस तैयार करो। वे दोनों दुर्द्धर्ष और महिमावाले हैं। वे मेघके ऊपर इस तरह भ्रमण करते हैं, मानों सुशिक्षित अश्वके ऊपर भ्रमण करते हैं।

---

* धातुत्रयसे कालत्रय अथवा गुण-त्रयका भी ग्रहण किया जा सकता है।

त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोरिन्द्राविष्णू सुतपावामुरुष्यति ।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित् कृशानोरस्तुरसन मुरुष्यथः ॥२॥
ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं निमातरा नयति रेतसे भुजे ।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधिरोचने दिवः ॥३॥
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीढुषः ।
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद्विगामभिरुरुक्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥४॥
द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।
तृतीयमस्य नकिरादधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥५॥
चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीं रवीविपत् ।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवं ॥६॥

२ इन्द्र और विष्णु, तुमलोग हृष्ट-पद हो; इसलिये यज्ञमें बचे हुए सोम पीनेवाले यजमान तुम्हारे दीप्ति आगमनकी प्रशंसा करते हैं। तुम लोग मनुष्योंके लिये, शत्रु-विमर्दक अग्निसे प्रदातव्य अन्न सदा प्री करते हो।

३ सारी प्रसिद्ध आहुतियाँ इन्द्रके महान् पौरुषको बढ़ाती हैं। इन्द्र, सबकी मातृभूता द्यावापृथिवीके रेत औ तेज और उपभोगके लिये, वही शक्ति प्रदान करते हैं। पुत्रका नाम निकृष्ट या निम्न है और पिताका नाम उत्कृष्ट उच्च है। द्युलोकके शोभिमान प्रदेशमें तृतीय नाम या पौत्रका नाम है अथवा वह द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र और विष्णु अधीन है।

४ हम सबके स्वामी, पालक, शत्रु-रहित और तरुण विष्णुके पौरुषकी स्तुति करते हैं। विष्णुने, प्रशंसनीय लोक रक्षाके लिये, तीन बार पाद-विक्षेप द्वारा सारे पार्थिव लोकोंकी, विस्तृत रूपसे, प्रदक्षिणा की है।

५ मनुष्यगण, कीर्त्तन करते हुऐ स्वर्गदर्शी विष्णुके दो पाद-क्षेप प्राप्त करते हैं। उनके तीसरे पाद-क्षेप मनुष्य नहीं पा सकते; आकाशमें उड़नेवाले पक्षी या मरुत् भी नहीं प्राप्त कर सकते।

६ विष्णुने, गति-विशेष द्वारा, विविध स्वभाववाली कालके ९४ अंशोंको, चक्रकी तरह वृत्ताकार, परिचालि कर रखा है। विष्णु विशाल स्फूर्तिसे युक्त और स्तुति द्वारा जानने योग्य हैं। वह नित्य, तरुण और अकुमार हैं। युद्धमें या आह्वानपर जाते हैं।

१५६ सूक्त। विष्णु देवता। जगती छन्द।

भवामित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया उसप्रथाः।
अधाते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥ १ ॥
यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति।
यो जातमस्य महतो महिब्रवत् सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् ॥ २ ॥
तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथाविद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।
आस्य जानन्तो नामचिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥ ३ ॥
तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ॥ ४ ॥
आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः।
वेधा अजिन्वत्त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥ ५ ॥

* * *

२२ अनुवाक। १५७ सूक्त। अश्विद्वय देवता। जगती और त्रिष्टुप् छन्द।

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युषाश्चन्द्रामह्यावो अर्चिषा।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत्पृथक् ॥ १ ॥

---

१ विष्णुदेव, मित्रकी तरह तुम हमारे सुखदाता, घृताहुति-भाजन, प्रकृत अन्नवान्, रक्षाशील और पृथुव्यापी बनो। विद्वान् यजमान द्वारा तुम्हारा स्तोत्र बार-बार कहने योग्य है; और, तुम्हारा यज्ञ हविवाले यजमानका आराधनीय है।

२ जो व्यक्ति प्रचीन, मेधावी, नित्य नवीन और स्वयं उत्पन्न या जगन्मादनशीला स्त्रीवाले विष्णुको हव्य प्रदान करता है; जो महानुभाव विष्णुके पूजनीय आदि कथा कहते हैं; वही समीप स्थान पाते हैं।

३ स्तोताओ, प्राचीन यज्ञके गर्भभूत विष्णुको जैसा जानते हो, वैसे ही स्तोत्र आदिके द्वारा उनको प्रसन्न करो। विष्णुका नाम जानकर कीर्त्तन करो। विष्णु, तुम महानुभाव हो, तुम्हारी बुद्धिकी हम उपासना करते हैं।

४ राजा वरुण और अश्विनीकुमार ऋत्विक्युक्त यजमानके यज्ञरूप विष्णुकी सेवा करते हैं। अश्विनीकुमार और विष्णु, मित्र होकर, उत्तम और दिनज्ञ बल धारण करते और मेघका आच्छादन हटाते हैं।

५ जो स्वर्गीय और अतिशय शोभनकर्मा विष्णु शोभनकर्मा इन्द्रके साथ मिलकर आते हैं, उन्हीं मेधावी तीनों लोकोंमें पराक्रमशाली विष्णुने आनेवाले यजमानको प्रसन्न किया है और यजमानको यज्ञ-भाग दिया है।

---

१ भूमिके ऊपर अग्नि जागे, सूर्य उगे। विराट् उषा तेज द्वारा सबको आह्लादित करके अन्धकारको दूर करती है। हे अश्विनीकुमारो, आनेके लिये अपना रथ तैयार करो। सारे संसारको अपने-अपने कर्मोंमें सविता देवता नियुक्त करें।

यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतं ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥
अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद्द्विपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतं ।
प्रायुस्तारिष्टं नीरपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ४ ॥
युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वंतः ।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पती रश्विनावैरयेथाम् ॥ ५ ॥
युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्थो रथ्या राथ्येभिः ।
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वां हविष्मान्मनसा ददाश ॥ ६ ॥

२ अश्विद्वय, जिस समय तुमलोग वृष्टिदाता रथको तैयार करते हो, उस समय मधुर जल द्वारा हमारा बल बढ़ाओ हमारे आदमियोंको अन्न द्वारा प्रसन्न करो। हम वीर संग्राममें धन प्राप्त करें।

३ अश्विनीकुमारोंका तीन पहियोंवाला, मधुयुक्त, तेज घोड़ोंसे संयुक्त, प्रशंसित, तीन बन्धनोंवाला धन और सर्व-सौभाग्य-सम्पन्न रथ हमारे सामने आवे और हमारे द्विपद (पुत्र आदि) तथा चतुष्पद (गौ आदि को सुख दे।

४ अश्विनीकुमारो, तुम दोनों हमें बल प्रदान करो। अपनी मधुमती कषा द्वारा हमें प्रसन्न करो। हमारा आ बढ़ाओ, पाप दूर करो, द्वेषियोंका विनाश करो और सारे कर्मोंमें हमारे साथी बनो।

५ अश्विद्वय, तुम दोनों गमनशील गौओं और सारे संसारके प्राणियोंमें अन्तःस्थित गर्भोंकी रक्षा करो अभीष्टवर्षकद्वय, अग्नि, जल और वनस्पतियोंको प्रवर्त्तित करो।

६ अश्विद्वय, तुम दोनों औषध-ज्ञान द्वारा वैद्य और रथवाहक अश्वों द्वारा रथवान् हुए हो। तुम्हारा बल ब अधिक है; इसलिये हे उग्र अश्विद्वय, तुम्हें जो, आसक्त चित्तसे, हव्य प्रदान करता है, उसकी रक्षा करो।

द्वितीय अध्याय समाप्त

तृतीय अध्याय।

१५८ सूक्त। अश्विद्वय देवता। त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द।

वसूरुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ।
दस्रा ह यद्रेक्ण औचथ्यो वां प्रयत्सस्राथे अकवाभिरूती ॥१॥
को वां दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्धेथे नमसा पदे गोः।
जिगृतमस्मे रेवतीः पुरन्धी कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥२॥
युक्तो हयद्वां तौग्र्याय पेरुर्विमध्ये अर्णसो धायि पज्रः।
उप वामवः शरण गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥३॥
उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मामामिमे पतत्रिणी विदुग्धाम्।
मामामेधो दशतयश्चितो धाक् प्रयद्वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ॥४॥
न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासायदीं सुसमुब्धमवाधुः।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत्स्वयं दास उरो अंसावपिग्ध ॥५॥

---

१ हे अभीष्टवर्षक, निवासदाता, पापहन्ता, बहुज्ञानी, स्तुति द्वारा वर्द्धमान और पूजित अश्विनीकुमारो, हमें अभीष्ट फल दो; क्योंकि उचथपुत्र दीर्घतमा तुम्हारी प्रार्थना करता है और तुम प्रशंसनीय रीतिसे आश्रय प्रदान करते हो।

२ निवासप्रद अश्विनीकुमारो, तुम्हारे इस अनुग्रहके सामने कौन तुम्हें हव्य प्रदान कर सकता है? अपने यज्ञीय स्थानपर हमारी स्तुति सुनकर, अन्नके साथ, तुम लोग बहुत धन देना चाहते हो। शरीरपुष्टिकरी, शब्दायमाना और बहुत दूधवाली गायें प्रदान करो। यजमानोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये तुम लोग कृत-संकल्प होकर विचरण करते हो।

३ अश्विनीकुमारो, तुम्हारे उद्धार-कुशल और अश्वयुक्त रथके, तुग्रपुत्र भुज्युके लिये, बल-प्रयोग द्वारा उत्तीर्ण होनेपर वह समुद्रमें स्थित हुआ था। अतएव जैसे युद्ध-जेता वीर द्रुतगामी अश्व द्वारा अपने घरमें आता है, वैसे ही हम तुम्हारे आश्रयके लिये शरणागत हुए हैं।

४ अश्विनीकुमारो, तुम्हारी स्तुति दीर्घतमाकी रक्षा करे। प्रतिदिन घूमनेवाले अहोरात्र हमें शीर्ण न करें। दस बार प्रज्वलित अग्नि मुझे जला न सके; क्योंकि तुम्हारे आश्रित यह व्यक्ति, पाश-बद्ध होकर, पृथिवीपर लेट रहा है।

५ मातृरूप नदी-जल मुझे डुबो न दे। दासों या अनार्योंने इन संकुलिताङ्ग वृद्धको नीचे मुँह कर फेंक दिया है। त्रैतनने इनका सिर काटा था। दासने स्वयं हृदय-देश और अंश-द्वयपर आघात किया था।

दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान्दशमे युगे ।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥६॥

१५९ सूक्त । द्यावापृथिवी देवता । जगती छन्द ।

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा महीस्तुषे विदथेषु प्रचेतसा ।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेत्था धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥१॥
उतमन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महिस्वतवस्तद्धवीमभीः ।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुरुरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥२॥
ते सूनवः स्वपसः सुदंससो मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये ।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥३॥
ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामीसयोनी मिथुना समोकसा ।
नव्य नव्यं तन्तुमातन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवय सुदीतयः ॥४॥

६ ममताके पुत्र दीर्घतमा, दसवें कालके बीतने पर, जीर्ण हुए थे। जो सब लोग कर्म-फल पानेकी इच्छा क हैं; वे अपने नेता और सारथि हैं।

१ यज्ञ-वर्द्धक, महान् और यज्ञकार्यमें चैतन्यकारी द्यावापृथिवीकी, मैं, विशेष रूपसे, स्तुति करता हूँ यजमान उनके पुत्र-स्वरूप हैं। उनके कर्म सुन्दर हैं। अनुग्रह करते हुए वे यजमानोंको वरणीय धन प्रदान करते हैं।

२ मैंने, आह्वान-मंत्र द्वारा, निर्द्रोह और पितृस्थानीय द्युलोकके उदार और सदय मनको जाना है। मा स्थानीय पृथिवीके मनको भी जाना है। पिता-माता (द्यावापृथिवी) अपनी शक्तिसे, पुत्रोंकी, भली भाँति, रक्षा क हुए बहुत और विस्तीर्ण अमृत देते हैं।†

३ तुम्हारी सन्तान, सुकर्मा और सुदर्शन प्रजाएँ, तुम्हारे पहलेके अनुग्रहको स्मरण करके, तुम्हें महान् और मा कहकर जानते हैं। पुत्र-स्वरूप स्थावर और जंगम पदार्थ द्यावा-पृथिवीके अतिरिक्त और किसीको नहीं जानते। तुम उन रक्षाका अबाध स्थान प्रदान करते हो।

४ द्यावापृथिवी सहोदरा भगिनी और एक स्थान रहनेवाले जोड़े हैं। वे प्रज्ञा-युक्त और चैतन्यकारी हैं। उनका विभाग करती हैं। अपने कार्यमें निरत और सुप्रकाशित रश्मियाँ द्योतमान अन्तरीक्षके बीच नये-नये फैलाती हैं।

---

† जराजीर्ण और जन्मान्ध दीर्घतमाके विनाशमें असमर्थ होकर अनार्यों या गर्भदासोंने उन्हें आ फेंक दिया था दीर्घतमाने स्तुति की और अश्विद्वयने उन्हें बचाया। फिर गर्भदासोंने उन्हें जलमें फेंका और कुमा ने रक्षा की। अनन्तर त्रैतन नामके दासने उनका मस्तक और सिर छेद दिया। तो भी कुमारोंने उनकी रक्षा की

तद्राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ॥ ५ ॥

* * *

१६० सूक्त । द्यावापृथिवी देवता । जगती छन्द ।

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥ १ ॥
उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः ।
सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत् ॥ २ ॥
स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥ ३ ॥
अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशम्भुवा ।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूयया जरेभिः स्कंभनेभिः समानृचे ॥ ४ ॥
ते नो गृणाने महिनी महिश्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत् ।
येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥ ५ ॥

---

५ आज हम सविता देवताकी अनुमतिके अनुसार उस वरणीय धनको चाहते हैं। हमारे ऊपर द्यावापृथिवी, अनुग्रह करके, गृह आदि और शत-शत गौओंसे युक्त धन दें।

१ द्यावापृथिवी संसारके लिये सुखदायिनी, यज्ञवती, जल उत्पन्न करनेके लिये चेष्टा-सम्पन्ना, सुजाता और अपने कार्यमें निपुणा हैं। द्योतमान और शुचि सूर्य द्यावापृथिवीके बीच, अपने कार्यसे, सदा गमन करते हैं।

२ विशाल, विस्तीर्ण और परस्पर-वियुक्त माता-पिता (द्यावापृथिवी) प्राणियोंकी रक्षा करते हैं। शरीरियोंके मंगलके लिये ही द्यावापृथिवी मानों सचेष्ट हैं; क्योंकि पिता सारे पदार्थोंको रूप प्रदान करते हैं।

३ पिता-माता (द्यावापृथिवी) के पुत्र सूर्य हैं। वह धीर और फलदाता हैं। अपनी बुद्धिसे वह सारे भूतोंको प्रकाशित करते हैं। वह शुक्लवर्ण धेनु (पृथिवी) और सेचन-कार्यमें समर्थ वृष (द्युलोक) को भी प्रकाशित करते हैं। वह द्युलोकसे निर्मल दूध दूहते हैं।

४ वह देवोंमें देवतम और कर्मियोंमें कर्मश्रेष्ठ हैं। उन्होंने सर्व-सुखदाता द्यावापृथिवीको प्रकट किया है और प्राणियोंके सुखके लिये द्यावापृथिवीको विभक्त करते हैं। उन्होंने सुदृढ़ शङ्कु या खूँटेमें इन्हें स्थिर कर रखा है।

५ द्यावापृथिवी, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम महान् हो, हमें प्रभूत अन्न और बल प्रदान करो, जिससे हम सदा पुत्र आदि प्रजाका विस्तार करें। हमारे शरीरमें प्रशंसनीय बलकी वृद्धि कर दो।

१६१ सूक्त । ऋभु देवता । जगती छन्द ।

किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठा न आजगन्किमीयते दूत्यं कद्यदूचिम ।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतिमूदिम ॥ १ ॥
एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद्वो देवा अब्रुवन्तद्व आगमम् ।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥ २ ॥
अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः ।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वाद्वातानि भ्रातरनुवः कृत्वेमसि ॥ ३ ॥
चकृवांस ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद्यः स्य दूतो न आजगन् ।
यदा वाख्यच्चमसां चतुरः कृतानादित्त्वष्टाग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥ ४ ॥
हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः ।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान् कन्या नामभिः स्परत् ॥ ५ ॥

१ जो हमारे पास आये हैं, वह क्या हमसे जेठ हैं या छोटे ? ये क्या देवोंके दूत-कार्यके लिये आये हैं ? इन क्या कहना होगा ? इन्हें कैसे पहचानेगें ? माता अग्नि, हम चमसकी निन्दा नहीं करेंगे; क्योंकि वह महाकुलमें उत्पन है। उस काष्ठमय चमसकी स्मृतिको हम व्याख्या करेंगे ।*

२ (अग्निने कहा)—सुधन्वाके पुत्र, एक चमसको चार बनाओ—देवोंने यह बात कहकर मुझे भेजा है। तुम्हें कहने आया हूं । तुम लोग यह कार्य कर सकते हो और ऐसा करनेपर तुम लोग देवोंके साथ यज्ञीयभा बनोगे ।

३ अग्निदेव, देवोंने अपने दूत अग्निके प्रति जो-जो कार्य बताये हैं, उनमेंसे अश्व बनाना होग रथका निर्माण करना होगा, गौका सृजन करना होगा अथवा माता-पिताको फिर तरुण करना होगा ? भ्रात तुम्हारे इन सब कार्योंको करके अन्तको, कर्म-फलके लिये, तुम्हारे पास आवेंगे ।

४ ऋभुगण, वह कार्य करके तुमने पूछा कि, जो दूत हमारे पास आया था, वह कहां गया ? जिस समय त्व या ब्रह्माने चमसके चार टुकड़े देखे, उसी समय वह स्त्रियोंमें छिप गया ।

५ जिस समय त्वष्टाने कहा कि, जिन्होंने देवोंके पानपात्र चमसका अपमान किया है, उनका वध करना हो उस समयसे ऋभुगणने, सोम तैयार होनेपर, दूसरा नाम ग्रहण किया और कन्या या उनकी माताने उसी नाम पुकारकर उन्हें प्रसन्न किया ।

---

* सुधन्वाके तीन पुत्रोंने देवत्वप्राप्त किया था । एक बार वे सोम पी रहे थे कि, देवोंने वहां अग्निको भेज दि अग्नि उन तीनोंके समान रूपोंको देखकर स्वयं भी वैसा ही रूप धारण करके सोम पीने लगे। अपने समान ही नये रूपको देखकर इस मंत्रमें ऋभु लोग पूछ रहे हैं।

इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥ ६ ॥
निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्याजरन्ता युवशाता कृणोतन ।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथ मुप देवाँ अयातन ॥७॥
इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वाघा पिबता मुञ्जने जनम् ।
सौधन्वना यदितन्नेव हर्यथ तृतीये घासवने मादयाध्वै ॥८॥
आपो भूयिष्ठ इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।
वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृतावदन्तश्चमसां अपिंशत ॥९॥
श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम् ।
आनिम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किंस्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥१०॥
उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः ।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहेतदद्येदमृभवो नानुगच्छथ ॥११॥

६ इन्द्रने अपने अश्वोंको सजाया, अश्विनीकुमारोंने रथ तैयार किया, बृहस्पतिने विश्वरूपा गौको स्वीकार किया। इसलिये हे ऋभु, विभु और बाज, तुम देवोंके पास गमन करो। हे पुण्यकर्त्ता लोग, म यज्ञ-भाग ग्रहण करो।

७ हे सुधन्वाके पुत्रो, तुमने आश्चर्यजनक कौशलसे मृत धेनुके शरीरसे चमड़ा लेकर उससे धेनु उत्पन्न की, जो पिता-माता बूढ़े थे, उन्हें फिर युवा किया, एक अश्वसे अन्य अश्व उत्पन्न किया; इस लिये रथ तैयार करके देवोंके सामने जाओ।

८ देवो, तुमने कहा था, "हे सुधन्वाके पुत्रो, तुम लोग यही सोमरस पान करो अथवा मुञ्ज-तृणसे शोधित सोमरस पान करो। यदि इन दोनोंमें तुम्हारी इच्छा न हो, तो तीसरे (सायं) सवनमें सोमरस पीकर अत्यन्त तृप्त हो जाओ।"

९ ऋभुओंमेंसे एकने कहा, "जल ही सबसे श्रेष्ठ है", एकने अग्निको श्रेष्ठ बताया और तीसरेने पृथ्वीको। सच्ची बात कहकर ही उन्होंने चारो चमसोंको तैयार किया।

१० एक लोहितवर्ण जल या रक्त, बाहर, भूमिपर रखते हैं, दूसरे छुरेसे कटे मांसको रखते हैं, तीसरे मांससे मल आदि अलग करते हैं। किस प्रकार पिता-माता (यजमान-दम्पती) पुत्रों (ऋभुओं) का उपकार कर सकते हैं?

११ प्रभूत दीप्तिशाली ऋभुओ, तुम नेता हो। प्राणियोंके भलेके लिये तुम ऊँचे स्थानपर व्रीहि, यव आदि तृण उत्पन्न करते और सत्कर्म करनेकी इच्छासे नीचेके प्रदेशमें जल उत्पन्न करते हो। सूर्यमण्डलमें अबतक तुम निहित थे; इस समय वैसा नहीं करना। अपना कार्य सिद्ध करो।

संमीलय यद्भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित्तात्या पितराव आसतुः ।
अशपतयः करस्नं व आददेयः प्राब्रवीत्प्रोतस्मा अब्रवीतन ॥१२॥
सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत् ।
श्वानं वस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्याव्यख्यत ॥१३॥
दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥१४॥

१६२ सूक्त । अश्व देवता । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परिख्यन् ।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥१॥
यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृत स्यरातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णः प्रियमप्येति पाथः ॥२॥
एषच्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥३॥

---

१२ ऋभुओ, जिस समय तुम जलधरमें भूतोंको मिलाकर चारो ओर जाते हो, उस समय संसारके पिता-मा कहाँ रहते हैं? जो लोग तुम्हारा हाथ पकड़ कर रोकते हैं, उन्हें नीचा दिखाओ। जो बचन द्वारा तुम्हें रोकता है, उस भर्त्सना करो।

१३ ऋभुओ, तुम सूर्य-मण्डलमें सोकर सूर्यसे पूछते हो कि, "हे सूर्य, किसने हमारे कर्मको जगाया।" कहते हैं, "वायुने तुम्हें जगाया।" वर्ष बीत चला, इस समय फिर तुम लोग संसारको प्रकाशित करो।

१४ बलके नप्ता ऋभुओ, तुम्हारे दर्शनकी इच्छासे मरुत् द्युलोकसे आ रहे हैं; अग्नि, पृथ्वीसे, आते हैं; आकाशसे, आते हैं; और, वरुण, समुद्र-जलके साथ, आते हैं।

१ चूँकि हम यज्ञमें देवजात और द्रुतगति अश्वके वीर कर्मका कीर्त्तन करतें हैं; इसलिये मित्र, वरुण, आयु, इन्द्र, ऋभुक्षा और वायु हमारी निन्दा न करें।

२ सुन्दर स्वर्णाभरणसे विभूषित अश्वके सामने ऋत्विक् लोग, उत्सर्गके लिये, छाग पकड़कर ले जाते विविध वर्णके छाग, शब्द करते हुए, सामने जाते हैं। वह इन्द्र और पूषाका प्रिय अन्न हो।

३ सब देवोंके लिये उपयुक्त छाग पूषाके ही अंशमें पड़ता है। उसे शीघ्रगामी अश्वके साथ सामने लाया है। अतएव त्वष्टा देवताके सुन्दर भोजनके लिये, अश्वके साथ, इस छागसे सुखाद्य पुरोडाश तैयार किया जाय।

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥४॥
होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उतशंस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरं कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आपृणध्वं ॥५॥
यूपव्रस्का उतये यूपवाहाश्चषालं ये अश्व यूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनं सं भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥६॥
उप प्रागात्सुमन्मेधायि मन्म देवा नामाशा उपवीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥७॥
यद्वाजिनो दामसन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वाघास्य प्रभृतमास्ये तृणं सर्वाताते अपि देवेष्वस्तु ॥८॥
यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वाताते अपि देवेष्वस्तु ॥९॥
यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृतातच्छमितारः कृण्वंतूत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥१०॥

---

४ जब ऋत्विक् लोग देवोंके लिये प्राप्त करने योग्य अश्वको, समय-समयपर, तीन बार अग्निके पास ले जाते हैं, तब पूषाके प्रथम भागका छाग देवोंके यज्ञकी बातका प्रचार करके आगे जाता है ।

५ होता (देवोंको बुलानेवाले), अध्वर्यु (यज्ञ-नेता), आवया (हव्यदाता), अग्निमिन्ध (अग्नि-प्रज्वलन-कर्त्ता), ग्रावग्राभ (प्रस्तरद्वारा सोमरस निकालनेवाले), शंस्ता (नियमानुसार कर्मका अनुष्ठान करनेवाले) और ब्रह्मा (सब यज्ञ-कार्योंके प्रधान सम्पादक) प्रसिद्ध, अलंकृत और सुन्दर यज्ञ द्वारा नदियोंको पूर्ण करें ।

६ जो यूपके योग्य वृक्ष काटते हैं, जो यूप वृक्ष ढोते हैं, जो अश्वको बाँधनेके यूपके लिये काष्ठ-मण्डप आदि तैयार करते हैं, जो अश्वके लिये पाक-पात्रका संग्रह करते हैं, हमारा संकल्प भी उन्हींका हो ।

७ हमारा मनोरथ स्वयं सिद्ध हो । मनोहर-पृष्ठ-विशिष्ट अश्व, देवोंकी आशा-पूर्तिके लिये, आवे । देवोंको पुष्टिके लिये हम उसे अच्छी तरह बाँधेंगे । मेधावी ऋत्विक् लोग आनन्दित हों ।

८ जिस रस्सीसे घोड़ेकी गर्दन बाँधी जाती है, जिससे उसके पैर बाँधे जाते हैं, जिस रस्सीसे उसका सिर बाँधा जाता है, वह सब रस्सियाँ और अश्वके मुखमें डाली जानेवाली घासें देवोंके पास आवें ।

९ अश्वका जो कच्चा हो मांस मक्खी खाती है, काटने या साफ करनेके समय हथियारमें जो लग जाता है और छेदकके हाथों तथा नखोंमें जो लग जाता है, वह सब देवोंके पास जाय ।

१० उदरका जो अजीर्ण अंश बाहर हो जाता है और अपक्व मांसका जो लेशमात्र रहता है, उसे छेदक निर्दोष करे और पवित्र मांस, देवोंके लिये, उपयोगी करके पकावे ।

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभिशूलं निहतस्याव धावति ।
मातद्भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥११॥
ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२॥
यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामंकाः सूनाः परिभूषन्त्यश्वम् ॥१३॥
निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः ॥
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वाताते अपि देवेष्वस्तु ॥१४॥
मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजंत्यभिविक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रतिगृभ्णन्त्यश्वम् ॥१५॥
यदश्वाय वास उपस्तृणंत्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
संदानमर्वतं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ १६ ॥
यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वाताते ब्रह्मणा सूदयामि ॥१७॥

---

११ अश्व, आगमें पकाते समय तुम्हारे शरीरसे जो रस निकलता और जो अंश शूलमें आबद्ध रहता है, मट्टीमें गिरकर तिनकोंमें मिल न जाय। देवता लोग लालायित हुए हैं, उन्हें सारा हवि प्रदान किया जाय।

१२ जो लोग चारो ओरसे अश्वका पकना देखते हैं, जो कहते हैं कि, गन्ध मनोहर है, देवोंको दो; तथा, मांस-भिक्षाकी अपेक्षा करते हैं, उनका संकल्प हमारा ही हो।

१३ मांस-पाचनकी परीक्षाके लिये जो काष्ठभानु लगाया जाता है, जिन पात्रोंमें रस रक्षित होता है, आच्छादनोंसे गर्मी रहती है, जिस वेतस-शाखासे अश्वका अवयव पहले चिन्हित किया जाता है और जिस छुरिका चिह्नानुसार. अवयव काटे जाते हैं, सो सब अश्वका मांस प्रस्तुत करते हैं।

१४ जहाँ अश्व गया था, जहाँ बैठा था, जहाँ लेटा था, जिससे उसके पैर बाँधे गये थे, जो उसने पिया था जो घास उसने खायी थी, सो सब देवोंके पास जाय।

१५ अश्वगण, धूमगन्ध अग्नि तुमसे शब्द न करा सकें, अतीव अग्नि-संयोगसे प्रतप्त सुगन्धि माँड़ कम्पित न यज्ञके लिये अभिप्रेत और हवनके लिये लाया हुआ, सम्मुखमें प्रवृत्त और वषट्कार द्वारा शोभित अश्व ग्रहण करें।

१६ जिस आच्छादन योग्य वस्त्रसे अश्वको आच्छादित किया जाता है, उसको जो सोनेके गहने दिये जाते जिससे उसका सिर और पैर बाँधे जाते हैं, सो सब देवोंके लिये प्रिय है। ऋत्विक् लोग देवोंको यह सब प्रदान करते हैं।

१७ अश्व, जोरसे नासाध्वनि करते हुए गमन करनेपर चाबुकके आघात अथवा बगलके आघातसे जो उत्पन्न हुई थी, सो सब व्यथाको, मैं, उसी प्रकार मन्त्र द्वारा आहुतिमें देता हूँ, जैसे स्रुक् द्वारा हव्य दिया जाता है।

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या विशस्त ॥ १८ ॥
एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथा ऋतुः ।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्रजुहोम्यग्नौ ॥ १९ ॥
मा त्वा तपत्प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आतिष्ठिपत्ते ।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रागात्राण्यसिना मिथुकः ॥ २० ॥
न वा उ एतन्म्रियसे नरिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥ २१ ॥
सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम् ।
अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् ॥ २२ ॥

१६३ सूक्त। अश्व देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महिजातं ते अर्वन् ॥ १ ॥

---

१८ देवोंके बन्धु-स्वरूप अश्वकी जो बगलकी टेढ़ी चौतीस हड्डियां हैं, उन्हें काटनेके लिये खड्ग जाता है। हे अश्वच्छेदक, ऐसा करना, जिससे अंग विच्छिन्न न हो जायँ। शब्द करके और देख-देखकर एक-एक हिस्सा काटो।

१९ ऋतु ही तेजःपुञ्ज अश्वका एक मात्र विकाशक हैं। उन्हें दो, दिन-रात, धारण करते हैं। अश्व, तुम्हारे शरीरके जिन अवयवोंको, यथासमय, काटता हूँ, उनका पिण्ड बनाकर अग्निको प्रदान करता हूँ।

२० अश्व, तुम जिस समय देवोंके पास जाते हो, उस समय तुम्हारी प्रिय देह तुम्हें क्लेश न दे। तुम्हारे शरीरमें खड्ग अधिक क्षत न करे। मांस-लोलुप और अनभिज्ञ छेदक, अस्त्र द्वारा, विभिन्न अंगोंको छोड़कर तुम्हारा गात्र वृथा न काटे।

२१ अश्व, तुम न तो मरते हो और न संसार तुम्हारी हिंसा करता है। तुम उत्तम मार्गसे, देवोंके पास, जाते हो। इन्द्रके हरि नामके दोनो घोड़े और मरुतोंके पृषती नामके दोनो वाहन तुम्हारे रथमें जोते जायँगे। अश्विनीकुमारोंके वाहन रासभके बदले, तुम्हारे रथमें, कोई शीघ्रगामी अश्व जोता जायगा।

२२ यह अश्व, हमें, गौ और अश्वसे युक्त तथा संसार-रक्षक धन प्रदान करे; हमें पुत्र प्रदान करे। तेजस्वी अश्व, हमें पापसे बचाओ। हविर्भूत अश्व, हमें शारीरिक बल प्रदान करो।

१ अश्व, तुम्हारा महान् जन्म सबकी स्तुतिके योग्य है। अन्तरीक्ष या जलसे प्रथम उत्पन्न होकर, यजमानके अनुग्रहके लिये, महान् शब्द करते हो। श्येन पक्षीके पक्षकी तरह तुम्हें पक्ष हैं तथा हरिणके पदकी तरह तुम्हें पैर हैं।

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ २ ॥
असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥ ३ ॥
त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥ ४ ॥
इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना ।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥ ५ ॥
आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ ६ ॥
अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।
यदा ते मर्तो अनुभोगमानडादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥ ७ ॥
अनु त्वा रथो अनुमर्यो अर्वन्ननु गावोनुभगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तवसख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥ ८ ॥

---

२ यम या अग्निने अश्व दिया था, त्रित या वायुने उसे रथमें जोड़ा। रथपर पहले इन्द्र चढ़े और गन्धर्वों सोमोंने उसकी लगामको धारण किया। वसुओंने सूर्यसे अश्वको बनाया।

३ अश्व, तुम यम, आदित्य और गोपनीय व्रतधारी त्रित हो। तुम सोमके साथ मिलित हो। पुरोहित कहते हैं कि, द्युलोकमें तुम्हारे तीन बन्धन-स्थान हैं।

४ अश्व, द्युलोकमें तुम्हारे तीन बन्धन (वसुगण, सूर्य और द्युस्थान) हैं। जल या पृथिवीमें तुम्हारे बन्धन (अन्न, स्थान और बीज) हैं। अन्तरीक्षमें तुम्हारे तीन बन्धन (मेघ, विद्युत् और स्तनित) हैं। तुम्हीं हो। पुरतत्त्वविदोंने जिन सब स्थानोंमें तुम्हारे परम जन्मका निर्देश किया है, वह तुम हमें बताते हो।

५ अश्व, मैंने देखा है, ये सब स्थान तुम्हारे अंग-शोधक हैं। जिस समय तुम यज्ञांशका भोजन करते हो, समय तुम्हारा पद-चिह्न यहाँ पड़ता है। तुम्हारी जो फलप्रद वल्गा (लगाम) सत्यभूत यज्ञकी रक्षा करती है, उसे भी देखा है।

६ अश्व, दूरसे ही, मनके द्वारा, मैंने तुम्हारे शरीरको पहचाना है। तुम नीचेसे, अन्तरीक्ष-मार्गमें, सूर्यमें, हो। मैंने देखा है, तुम्हारा सिर धूलि-शून्य, सुखकर, मार्गसे शीघ्र गतिसे, क्रमशः ऊपर उठता है।

७ मै देखता हूँ, तुम्हारा उत्कृष्ट रूप पृथिवीपर, चारो ओर, अन्नके लिये आता है। अश्व, जिस समय भोग लेकर तुम्हारे पास जाता है, उस समय तुम ग्रास-योग्य तृण आदिका भक्षण करते हो।

८ अश्व, तुम्हारे पीछे-पीछे अश्व जाता है, मनुष्य तुम्हारे पीछे जाता है, स्त्रियोंका सौभाग्य तुम्हारे जाता है। दूसरे अश्वोंने तुम्हारा अनुगमन करके मैत्री प्राप्त की है। देव लोग तुम्हारे वीर-कर्मकी प्रशंसा करते हैं।

हिरण्यशृङ्गो यो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत्।
देवा इदस्य हविरद्यमायन्यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥ ९ ॥
ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः।
हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥ १० ॥
तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्तव चित्तं वात इव ध्रजीमान्।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥ ११ ॥
उपप्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात् कवयो यन्तिरेभाः ॥ १२ ॥
उपप्रागात् परमं यत् सधस्थमर्वाँ अच्छापितरं मातरं च।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथाशास्ते दाशुषे वार्याणि ॥ १४ ॥

* * *

१६४ सूक्त। १ से ४१ तकके विश्वदेवगण, ४२ के प्रथमार्द्धके वाक् और द्वितीयार्द्धके अप्, ४३के प्रथमार्द्धके शकरूप और द्वितीयार्द्धके सोम, ४४के अग्नि, सूर्य और वायु, ४५के वाक्, ४६से ४७ तकके सूर्य, ४८ के संवत्सररूप काल, ४९ के सरस्वती, ५० के साध्याय, ५१ के अग्नि और ५२ के सूर्य देवता हैं।

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रा पश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥

---

९ अश्वका सिर सोनेका है और उसके पैर लोहेके तथा वेगशाली हैं। वेगके सम्बन्धमें तो इन्द्र भी निकृष्ट हैं। देवगण अश्वके हव्य-भक्षणके लिये आते हैं। पहले इन्द्र ही यहाँ बैठे हैं।

१० जिस समय अश्व स्वर्गीय पथसे जाता है, उस समय वह निविड़-जघन-विशिष्ट होता है। पतली कमरवाले, विक्रमशाली और स्वर्गीय अश्वगण, दलके-दल, हंसोंकी तरह, पंक्ति-बद्ध होकर, उसके साथ जाते हैं।

११ अश्व, तुम्हारा शरीर शीघ्रगामी है, तुम्हारा चित्त भी, वायुकी तरह, शीघ्रगन्ता है। तुम्हारे केसर नाना स्थानोंमें, नाना भावोंमें, अवस्थित तथा जंगलमें, विविध स्थानोंमें, भ्रमण करते हैं।

१२ वह द्रुतगामी अश्व, आसक्त चित्तसे, देवोंका ध्यान करते हुए, वध-स्थानमें जाता है। उसके मित्र छागको उसके आगे—आगे ले जाया जाता है। कवि स्तोता पीछे-पीछे जाते हैं।

१३ द्रुतगामी अश्व, पिता और माताको प्राप्त करनेके लिये, उत्कृष्ट और एक निवास-योग्य स्थानपर गमन करता है। अश्व, आज खूब प्रसन्न होकर देवोंके पास जाओ, ताकि हव्यदाता वरणीय धन प्राप्त करे।

१ सबके सेवनीय और जगत्पालक होता या सूर्यके मध्यम भ्राता या वायु सर्वत्र व्याप्त हैं। उनके तीसरे भ्राता या अग्नि आहुति धारण करते हैं। भाइयोंके बीच सात किरणोंसे युक्त विश्पतिको देखा गया।

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥
इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥ ३ ॥
को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित् को विद्वांसमुप गात् प्रष्टुमेतत् ॥ ४ ॥
पाकः पृच्छामि मनसाविजानन्देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥ ५ ॥
अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मने न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षळिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥ ६ ॥
इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥ ७ ॥
माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८ ॥

---

२ सूर्यके एकचक्र रथमें सात घोड़े जोते गये हैं। एक ही अश्व, सात नामोंसे, रथ ढोता है। चक्रको तीन नाभि हैं। वे न तो कभी शिथिल होतीं, न जीर्ण होतीं। सारा संसार उनका आश्रय करता है।

३ जो सात, सप्त-चक्र रथका, अधिष्ठान करते हैं, वे ही सात अश्व हैं; वे ही इस रथको ढोते हैं। सात भगिनि (किरणें) इस रथके सामने आती हैं। इसमें सात गायें (किरणें या स्वर) हैं।

४ प्रथम उत्पन्नको किसने देखा था—जिस समय अस्थि-रहिता (प्रकृति) ने अस्थि-युक्त (संसार) को धार किया? पृथिवीसे प्राण और रक्त उत्पन्न हुए; परन्तु आत्मा कहाँसे उत्पन्न हुई? विद्वान्के पास कौन इस विषय जिज्ञासा करने जायगा ?

५ मैं अनाड़ी हूँ; कुछ समझमें न आनेसे पूछ रहा हूँ। ये सब संदिग्ध बातें, देवोंके पास भी, रहस्यमयी हैं। एक वर्षके गोवत्स या सूर्यके वेष्टनके लिये मेधावियोंने जो सात सूत या सात सोम-यज्ञ प्रस्तुत किये, वह क्या हैं ?

६ मैं अज्ञानी हूँ। कुछ न जानकर ही ज्ञानियोंके पास जाननेकी इच्छासे पूछता हूँ। जिन्होंने इन छः लोकों रोक रखा है, जो जन्म-रहित रूपसे निवास करते हैं, वह क्या एक हैं ?

७ गमनशील और सुन्दर आदित्यका स्वरूप अतीव निगूढ़ है। वह सबके मस्तक-स्वरूप हैं। उनकी किरणें वृहती तथा अति विशाल तेजसे युक्त होकर उसी प्रकार पुनः जलपान करती हैं। जो यह सब कथाएँ जानते हैं, वे कहें।

८ माता (पृथिवी), वृष्टिके लिये, पिता या द्युलोकमें स्थित आदित्यको अनुष्ठान द्वारा, पूजती हैं। पहले ही पिता, भीतर-ही-भीतर, उसके साथ संगत हुए थे। गर्भ-धारणकी इच्छासे माता गर्भरससे निविद्ध हुई थी अनेक प्रकारके शस्य उत्पन्न करनेके लिये आपसमें बातचीत भी की थी।

युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः ।
अमीमेद्वत्सो अनुगामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९ ॥
तिस्रो मातस्त्रीन् पितन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥ १० ॥
द्वादशारं नहि तज्जराय ववर्ति चक्रं परिद्यामृतस्य ।
आपुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्तशतानिविंशतिश्च तस्थुः ॥ ११ ॥
पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथे मे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षड़र आहुरर्पितम् ॥ १२ ॥
पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥ १३ ॥
सनेमिचक्रमजरं विवावृत उत्तानायां दशयुक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षूरजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ १४ ॥

९ पिता (द्युलोक) अभिलाष-पूरणमें समर्थ पृथिवीका भार वहन करनेमें नियुक्त थे। गर्भभूत जलराशि मेघमालाके बीच थी। वत्स या वृष्टिजलने शब्द किया और तीन (मेघ, वायु और किरण)के योगसे विश्व-रूपिणी गौ (पृथिवी) हुई अर्थात् पृथिवी शस्याच्छादिता हुई।

१० एक मात्र आदित्य तीन माता (पृथिवी, अन्तरीक्ष और आकाश) और तीन पिता (अग्नि, वायु और सूर्य) को धारण करते हुए ऊपर अवस्थित हैं, उन्हें थकावट नहीं आती। द्युलोकको पीठपर देवता लोग सूर्यके सम्बन्धमें बातचीत करते हैं। उस बातचीतको कोई नहीं जानता; परन्तु उसमें सबकी बातें रहती हैं।

११ सत्यात्मक आदित्यका, बारह अरों खूँटों (राशियों) से युक्त, चक्र स्वर्गके चारो ओर बार-बार भ्रमण करता और कभी भी पुराना नहीं होता है। अग्नि, इस चक्रमें पुत्र-स्वरूप सात सौ बीस (३६० दिन और ३६० रात्रियाँ) निवास करते हैं।

१२ पाँच पैरों (ऋतुओं) और बारह रूपों (महीनों) से संयुक्त आदित्य जिस समय द्युलोकके पूर्वार्द्धमें रहते हैं, उस समय उन्हें कोई-कोई पुरीषी या जलदाता कहते हैं। दूसरे कोई-कोई छः अरों (ऋतुओं) और सात चक्रों (रश्मियों) से संयुक्त रथपर द्योतमान सूर्यको 'अर्पित' कहते हैं—जब कि, वह द्युलोकके दूसरे आधेमें रहते हैं। *

१३ नियत परिवर्त्तमान पाँच ऋतुओं या अरों (खूंटों)से युक्त चक्रपर सारे भुवन विलीन हैं। उसका अक्ष प्रभूत भार-वहनमें नहीं थकता। उसकी नाभि सदा समान रहती है—कभी शीर्ण नहीं होती।

१४ समान नेमिसे संयुक्त और अजीर्ण काल-चक्र निरन्तर घूम रहा है। एक साथ दस (पंच लोक-पाल और निषाद, ब्राह्मण आदि पंच वर्ण) ऊपर मिलकर पृथिवीको धारण करते हैं। सूर्यका नेत्र-रूप मण्डल, वृष्टिजलसे, छिप गया—सारे प्राणी और जगत् भी उसमें विलीन हुए।

---

* यद्यपि ऋतु छः हैं; परन्तु हेमन्त और शिशिरको एक करके, उन दिनों, "पञ्चऋतु" भी कहनेको परिपाटी थी। किसी-किसीके मतसे यहाँ 'पूर्वार्द्ध' और 'दूसरे आधे'का मतलब सूर्यके दक्षिणायन और उत्तरायणसे है।

साकञ्जानां सप्तथमाहुरेकजं षड़िद्यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १५ ॥
स्त्रियः सतीस्ताँ उमे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न विचेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमाचिकेत यस्ताविजानात् स पितुष्पितासत् ॥ १६ ॥
अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
साकद्रीचीक स्विदर्द्धं परागात् क्स्वित् सूते नहि यूथे अन्तः ॥१७॥
अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्रवोचद्देवं मनः कुतो अधिप्रजातम् ॥ १८ ॥
ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥ १९ ॥
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ २० ॥

१५ आदित्यकी सहजात ऋतुओंमें सातवीं (अधिक मासवाली) ऋतु अकेली है। अन्य छः ऋतुएँ जोड़ी गमनशील हैं और देवोंसे उत्पन्न हैं। ये ऋतुएँ सबकी इष्ट, स्थान-भेदसे पृथक्-पृथक् स्थापित और रूप-भेदसे विवि आकृतियोंसे संयुक्त हैं। वे अपने अधिष्ठाताके लिये बारबार घूमती हैं।

१६ किरणें स्त्री होकर भी पुरुष हैं। जिन्हें आँखें हैं, वे ही यह देख सकते हैं; जिनकी दृष्टि मोटी है, वे नहीं जो पुत्र मेधावी हैं, वही यह समझ सकते हैं। जो यह सब बातें समझ सकते हैं; वे ही पिताके पिता हैं। ✽

१७ वत्स, यजमान या अग्निका पिछला भाग सामनेके पैरसे और सम्मुख-भाग पीछेके पैरसे धारण करते गौ, आदित्य-रश्मि या आहुति ऊपरको ओर जाती है। वह कहाँ जाती है ? किसके लिये आधे रास्तेसे लौट आवे ? प्रसव करती है ? दलके बीच प्रसव नहीं करती।

१८ जो अधःस्थित (अग्नि) लोक-पालकको ऊर्द्ध्वस्थित (सूर्य) के साथ और ऊर्द्ध्वस्थितको अधःस्थि साथ उपासना करते हैं, वे ही मेधावीकी तरह आचरण करते हैं। किसने यह सब बातें कही हैं ? कहांसे यह अलौकिक उत्पन्न हुआ है ?

१९ जिन्हें विद्वान् लोग अधोमुख कहते हैं, उन्हींको ऊर्द्ध्वमुख भी कहते हैं और जिन्हें ऊर्द्ध्वमुख कहते उन्हें अधोमुख भी कहते हैं। सोम, तुमने और इन्द्रने जो मण्डलद्वय बनाया है, वह युग-युक्त अश्व आदिकी तरह विश्व भार वहन करता है। ✕

२० दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा), मित्रताके साथ, एक वृक्ष या शरीरमें रहते हैं। उनमें एक (जीवात्म स्वादु पिप्पलका भक्षण करता और दूसरा (परमात्मा) कुछ भी भक्षण (भोग) नहीं करता, केवल द्रष्टा है।

✽ सूर्य-किरणें, उदक-रूप गर्भ धारण करनेसे, स्त्री और वृष्टि-जलका सेचन करनेसे पुरुष, कहाती हैं। सू धानके कारण किरणें संसारके पिता हैं और सूर्य किरणोंके पिता हैं।

✕ दोनों मण्डल सूर्य और चन्द्र हैं। इनकी किरणें ऊर्द्ध्वमुख और अधोमुख होती हैं।

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः समाधीरः पाकमत्रा विवेश ॥ २१ ॥
यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥ २२ ॥
यद्गायत्रे अधिगायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।
यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥ २३ ॥
गायत्रेण प्रतिमिमीते अर्कमर्केण सामत्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदाचतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्तवाणीः ॥ २४ ॥
जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्ररिरिचे महित्वा ॥ २५ ॥
उपह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोभीद्धो घर्मस्तदुषु प्रवोचम् ॥ २६ ॥

२१ जिनमें (सूर्यरूप मण्डलमें) सुन्दरगति रश्मियाँ, कर्त्तव्य-ज्ञानसे, अमृतका अंश लेकर सदा जाती हैं और जो धीर भावसे, सारे भुवनोंकी रक्षा करते हैं, मेरी अपरिपक्व बुद्धि होनेपर भी मुझे, उन्होंने, स्थापित किया । ❀

२२ जिस (आदित्य)-वृक्षपर जलग्राही किरणें, रातको, बैठतीं और संसारके ऊपर, प्रातःकालमें, दीप्ति प्रकट करती हैं, विद्वान् लोग उनका फल प्रापणीय बताते हैं । जो व्यक्ति पिता (सूर्य या परमात्मा) को नहीं जानता, वह इस फलको नहीं प्राप्त करता ।

२३ जो पृथिवीपर अग्निका स्थान जानते हैं, जो जानते हैं कि, देवोंने, अन्तरीक्षसे, वायुको उत्पन्न किया है तथा जो ऊर्ध्वतन प्रदेशमें आदित्यका स्थान जानते हैं, वे अमृतत्व पाते हैं ।

२४ उन्होंने गायत्री छन्द द्वारा पूजन-मंत्रकी सृष्टि की, अर्चना-मंत्र द्वारा सामको बनाया, त्रिष्टुप् द्वारा द्वृच-तृच-रूप वाक्का निर्माण किया, द्विपाद और चतुष्पाद वचनके द्वारा अनुवाक-रचना की तथा अक्षर-योजना द्वारा सातों छन्दोंकी रचना की ।

२५ जगती छन्द द्वारा उन्होंने द्युलोकमें वृष्टिको स्तम्भित कर रखा है, रथन्तर साम या सूर्य-सम्बन्धीय मंत्रमें सूर्यको देखा है । पण्डित लोग कहते हैं कि, गायत्रीके तीन चरण हैं; इसलिये गायत्री, माहात्म्य और ओजस्वितामें, अन्य सबको लाँघ जाती है ।

२६ मैं इस दुग्धवती गौको बुलाता हूँ । दूध दुहनेमें निपुण व्यक्ति उसे दुहता है । हमारे सोमके श्रेष्ठ भागको सविता ग्रहण करें; क्योंकि उससे उनका तेज प्रवृद्ध होगा । इसलिये मैं उन्हें बुलाता हूँ ✤

❀ मतलब यह कि, आदित्यने मुझे अपने मण्डलमें स्थान दिया ।

✤ सायणने इस ऋचाका एक अन्य प्रकारका अर्थ किया है, जिसमें धेनुका अर्थ मेघ और गोधुक्का वायु या आदित्य कहा गया है ।

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात्
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ २७ ॥
गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्द्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ।
सृक्वाणं घर्ममभिवावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ २८ ॥
अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधिश्रिता ।
सा चित्तिभिर्निहि चकार मर्त्यं विद्युद्भवन्ती प्रतिवव्रिमौहत ॥ २९ ॥
अनच्छये तुरगातु जीवमेजद्ध्रुवं मध्य आपस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ३० ॥
अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ३१ ॥
य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्वहुप्रजानिर्ऋतिमाविवेश ॥ ३२ ॥
द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ ३३ ॥

---

२७ धनशाली धेनु, वत्सके लिये, मन ही मन, व्यग्र होकर “हम्बा” करती हुई, आती है। यह अश्विनीकुमारों लिये दूध दे और महासौभाग्य-लाभके लिये प्रवृद्ध हो।

२८ धेनु, नेत्र बन्द किये बछड़ेके लिये, “हम्बा” शब्द करती है। बछड़ेका मस्तक चाटनेके लिये “हम् रव करती है। बछड़ेके ओठोंपर गाज या फेन देखकर धेनु “हम्बा” रव करती तथा यथेष्ट दूध पिलाकर उसे परिपुष्ट करती

२९ बछड़ा, धेनुके चारो ओर घूमकर, अव्यक्त शब्द करता है और गोचर-भूमिपर गाय “हम्बा” करती है। पशु-ज्ञान द्वारा, मनुष्योंको लज्जित करती है और द्योतमान होकर अपना रूप प्रकट करती है।

३० चञ्चल, श्वास-प्रश्वास-शील और अपनी कार्य-सिद्धिमें व्यग्र जीव सोकर घरमें, अविचल भावसे, अव हुआ। मर्त्यके साथ उत्पन्न मर्त्यका अमर जीव स्वधा भक्षण करता हुआ सदा विहरण करता है।

३१ मैं इन रक्षक और प्रसन्न आदित्यको अन्तरीक्षमें आते-जाते देखता हूँ। सर्वत्रगामिनी और सहगा किरण-मालासे आच्छादित होकर भुवनोंमें बार-बार आते-जाते हैं।

३२ जिसने गर्भ किया है, वह भी उसका तत्त्व नहीं जानता। जिसने उसको देखा है, वह उसके पास भी है। मातृ-योनिके बीच वेष्टित होकर वह गर्भ बहुत सन्तानवान् होता और पाप-लिप्त होता है।

३३ स्वर्ग मेरा पालक और जनक है, पृथिवीकी नाभि मेरा मित्र है और यह विस्तृत पृथिवी मेरी माता उप पात्र-द्वय (आकाश और पृथिवी) के बीच योनि (अन्तरीक्ष) है। वहाँ पिता (द्यु) दूरस्थिता (पृथिवी) गर्भ उत्पादन करता है।

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ३४ ॥
इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ ३५ ॥
सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परिभवन्ति विश्वतः ॥ ३६ ॥
न विजानामि यदिवेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥ ३७ ॥
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्तान्यन्यं चिक्युर्न निचिक्युरन्यम् ॥३८॥
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥३९॥

---

३४ मैं तुमसे पूछता हूँ, पृथिवीका अन्त कहाँ है ? मैं तुमसे पूछता हूँ, संसारकी नाभि (उत्पत्ति-स्थान) कहाँ है ? मैं तुमसे पूछता हूँ, सेचन-समर्थ अश्वका रेत क्या है ? मैं तुमसे पूछता हूँ, समस्त वाक्योंका परम स्थान कहाँ है ?

३५ यह वेद ही पृथिवीका अन्त है, यह यज्ञ ही संसारकी नाभि है, यह सोम ही सेचन-समर्थ अश्वका रेत है और यह ब्रह्मा या ऋत्विक् वाक्यका परम स्थान है ।

३६ सात किरणें आधे वर्षतक गर्भ धारण या वृष्टिको उत्पन्न करके तथा संसारमें रेतः-स्वरूप या वृष्टि-दान द्वारा जगत्का सारभूत होकर विष्णु या आदित्यके कार्यमें नियुक्त हैं । वह ज्ञाता और सर्वतोगामी हैं । वह-प्रज्ञा द्वारा, भीतर-ही-भीतर, सारे जगत्को व्याप्त किये हुए हैं ।

३७ मैं यह हूँ कि, नहीं— मैं नहीं जानता; क्योंकि मैं मूढ़-चित्त हूँ, अच्छी तरह आबद्ध होकर विक्षिप्तचित्त रहता हूँ । जिस समय ज्ञानका प्रथम उन्मेष होता है, उसी समय मैं वाक्यका अर्थ समझ सकता हूँ ।

३८ नित्य, अनित्यके साथ, एक स्थानपर, रहता है; अन्नमय शरीर प्राप्त कर वह कभी अधोदेश और कभी ऊर्द्ध्वदेशमें जाता है । वह सदा एक साथ रहते हैं, इस संसारमें सर्वत्र एक साथ जाते हैं; परलोकमें भी, सब स्थानोंपर, एक साथ जाते हैं । संसार इनमें एकको (अनित्यको) पहचान सकता है—दूसरे (आत्मा) को नहीं ।

३९ सारे देवता महाकाशके समान मन्त्राक्षरोंपर उपवेशन किये हुए हैं—इस बातको जो नहीं जानता, वह ऋचासे क्या करेगा ? इस बातको जो जानता है, वह सुखसे रहता है ।

सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥४०॥
गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥४१॥
तस्याः समुद्रा अधिविक्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः।
ततः क्षरत्यक्षरन्तद्विश्वमुपजीवति ॥४२॥
शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एना वरेण।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥४३॥
त्रयः केशिन ऋतुथा विचक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्।
विश्वमेको अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥४४॥
चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥४५॥

४० अहननीया गौ ! शोभन शस्य, तृण आदिका भक्षण करो और यथेष्ट दुग्धवती बनो। ऐसा करनेपर हम प्रभूत धनवाले हो जायँगे। सदा तृण चरो और सर्वत्र घूमते हुए निर्मल जलका पान करो।

४१ मेघनिनाद-रूपिणी और अन्तरीक्ष-विहारिणी वाक्, वृष्टि-जलकी सृष्टि करते हुए, शब्द करती है। वह एकपदी, कभी द्विपदी, कभी चतुष्पदी, कभी अष्टपदी और कभी नवपदी होती है। कभी-कभी तो सहस्राक्षर-परिमि होकर, अन्तरीक्षके ऊपर स्थित होकर, शब्द करती है। ❀

४२ उसके पाससे सारे मेघ वर्षा करते हैं, उसीसे चारों दिशाओंमें आश्रित भूतोंकी रक्षा होती है। उसीसे उत्पन्न होता और जलसे सारे जीव प्राण धारण करते हैं।

४३ मैंने पास ही सूखे गोबरसे उत्पन्न धूमको देखा। चारों दिशाओंमें व्याप्त निकृष्ट धूमके बाद अग्निको देख वीर या ऋत्विक् लोग शुक्ल-वर्ण वृष या फलदाता सोमका पाक करते हैं। उनका यही प्रथम अनुष्ठान है।

४४ केश-युक्त तीन व्यक्ति (अग्नि, आदित्य, वायु) वर्षके बीच, यथासमय, भूमिका परिदर्शन करते हैं। एक जन पृथ्वीका क्षारकर्म करते हैं, दूसरे अपने कार्य द्वारा परिदर्शन करते हैं और तीसरेका रूप नहीं देखा जाता, के गति देखी जाती है।

४५ वाक् चार प्रकारकी है। मेधावी योगी उसे जानते हैं। उसमें तीन गुहामें निहित हैं, प्रकट नहीं हैं। चौथे प्र की वाक् मनुष्य बोलते हैं।×

❀ केवल मेघमें रहनेपर एकपदी, मेघ और अन्तरीक्षमें द्विपदी, चारों दिशाओंमें चतुष्पदी और चतुर्दिक् चतुष्कोणमें रहनेपर अष्टपदी एवं इनके साथ ऊर्द्ध्व दिशाको मिलानेपर नवपदी नाम पड़ता है।

× मंत्र, कल्प, ब्राह्मण, लौकिक या परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी आदि चार वाक् हैं।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥४६॥
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपोवसाना दिवमुत्पतन्ति।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद्घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥४७॥
द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उतच्चिकेत।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥४८॥
यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि।
यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥४९॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥५०॥
समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ॥५१॥

४६ मेधावी लोग इन आदित्यको इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहा करते हैं। यह स्वर्गीय, पक्षवाले (गरुड़) और सुन्दर गमनवाले हैं। यह एक हैं, तो भी इन्हें अनेक कहा गया है। इन्हें अग्नि, यम और मातरिश्वा कहा जाता है।

४७ सुन्दर गतिवाली और जल-हारिणी सूर्य किरणें कृष्णवर्ण और नियत-गति मेघको जलपूर्ण करते हुए द्युलोकमें गमन करती हैं। वह वृष्टिके स्थानसे नीचे आती हैं और पृथिवीको जलसे, अच्छी तरह, भिगोती हैं।

४८ बारह परिधियाँ (राशियाँ), एक चन्द्र (वर्ष) और तीन नाभियाँ हैं। यह बात कौन जानता है? इस चन्द्र (वर्ष) में तीन सौ साठ अर या खूटे हैं।

४९ सरस्वती, तुम्हारे शरीरमें रहनेवाला जो गुण संसारके सुखका कारण है, जिससे सारे वरणीय धनोंकी रक्षा करती हो, जो गुण बहुरत्नोंका आधार है, जो समस्त धन प्राप्त किये हुए है और जो कल्याणदायी है, इस समय हमारे पानके लिये उसे प्रकट करो।

५० देवों वा यजमानोंने यज्ञ या अग्नि द्वारा यज्ञ किया है; क्योंकि वही प्रथम धर्म है। वह माहात्म्य आकाशमें एकत्र है, जहाँ पहलेसे ही साधनीय देवता हैं।

५१ जल एक ही तरहका है; कभी ऊपर और कभी नीचे जाता-आता है। प्रसन्नता-दाता मेघ भूमिको प्रसन्न करते हैं। अग्नि द्युलोकको प्रसन्न करते हैं।

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्त सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥५२॥

* * *

२३ अनुवाक । १६५ सूक्त । इन्द्र देवता । यहाँसे १९१ सूक्तोंतकके ऋषि अगस्त्य हैं । त्रिष्टुप् छन्द ।

इस सूक्तमें इन्द्र, मरुत् और अगस्त्यकी बातचीत है । इसके तीसरे पाँचवें, सातवें और नवें मन्त्र मरुत्के वचन हैं; इसलिये उनके ऋषि मरुत् हैं । तीनके ऋषि अगस्त्य हैं । अवशिष्टके ऋषि इन्द्र हैं ।

कया शुभा सवयसः सनीळाः समान्या मरुतः संमिमिक्षुः ।
कया मती कुत एतास एतेर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया ॥१॥
कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुत आववर्त ।
श्येनाँ इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महामनसा रीरमाम ॥२॥
कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किन्त इत्था ।
संपृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे ॥३॥
ब्रह्माणि मे मतयः शंसुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः ।
आशासते प्रतिहर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्तानो अच्छ ॥४॥

---

५२ सूर्यदेव स्वर्गीय सुन्दर गतिवाले, गमनशील, प्रकाण्ड, जलके गर्भोत्पादक और ओषधियोंके प्रकाशक हैं । व वृष्टि द्वारा जलाशयको तृप्त और नदीको पालित करते हैं । रक्षाके लिये उन्हें बुलाता हूँ । ❋

१ (इन्द्र) समानवयस्क और एक स्थान-निवासी मरुत् लोग सर्व-साधारणकी दुर्ज्ञेय शोभासे युक्त होकर पृथिवीप सिञ्चन करते हैं । मनमें क्या सोचकर वे, किस देशसे, आये हैं ? आकर जलवर्षीय-गण, धन-लाभकी इच्छासे, क्या बलकी अर्चना करते हैं ?

२ तरुणवयस्क मरुद्गण किसका हव्य ग्रहण करते हैं ? वे अन्तरीक्षचारी श्येन पक्षीकी तरह हैं । यज्ञमें उन्हें कौ हटा सकता है ? कैसे महास्तोत्र द्वारा हम उन्हें आनन्दित करें ?

३ (मरुद्गण) हे साधुपालक और पूज्य इन्द्र, तुम अकेले कहाँ जा रहे हो ? तुम क्या ऐसे ही हो ? हमारे सा मिलकर तुमने ठीक ही पूछा है । हरि-वाहन, हमारे लिये जो वक्तव्य है, वह मीठे वचनोंसे कहो ।

४ (इन्द्र) सारा हव्य मेरा है; सारी स्तुतियाँ मेरे लिये सुखकर हैं; प्रस्तुत सोम मेरा है । मेरा मजबूत वज्र, फें जानेपर, अव्यर्थ होता है । यजमान लोग मेरी ही प्रार्थना करते हैं, ऋक्-मंत्र मुझे ही चाहते हैं । ये हरि नामके दोनों घोड़े, हव्य-लाभके लिये, मुझे ढोते हैं ।

❋ इस सूक्तके सारे मंत्र अथर्वमें भी पाये जाते हैं; इसलिये बहुतोंका मत है कि, यह सूक्त ऋग्वेदके बननेके अनन्त रचा गया है ।

अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्वः शुम्भमानाः ।
महोभिरेताँ उप युज्महे न्विन्द्र स्वधामनु हि नो बभूथ ॥५॥
क्व स्या वो मरुतः स्वधासीद्यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये ।
अहं ह्युग्रस्तविषस्तुविष्मान्विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥६॥
भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः ।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम ॥७॥
वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान् ।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥८॥
अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥९॥
एकस्य चिन्मे विभ्वस्त्वोजो या नु दधृष्वान् कृणवै मनीषा ।
अहं ह्युग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ॥१०॥
अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥११॥

५ (मरुद्गण) इसीलिये हम महातेजसे अपने शरीरको अलंकृत करके, निकटवर्त्ती और बली अश्वोंसे युक्त होकर, यज्ञस्थानमें जानेके लिये शीघ्र ही तयार हुए हैं । तुम तेज या बलके साथ हमारे साथ ही रहो ।

६ (इन्द्र) मरुतो, अहि या वृत्रासुरके वधके समय मेरे साथ रहनेका तुम्हारा ढंग कहाँ था ? मैं उग्र बलिष्ठ माहात्म्यवाला हूँ, इसलिये मैंने सारे शत्रुओंको, वध द्वारा, परास्त किया है ।

७ (मरुद्गण) अभीष्ट-वर्षी इन्द्र, हम समान पौरुषवाले हैं । हमारे साथ मिलकर तुमने बहुत कुछ किया है । बलवत्तम इन्द्र, हमने भी बहुत काम किया है । हम मरुत् हैं; इसलिये कार्य द्वारा हम वृष्टि आदिकी कामना करते हैं ।

८ (इन्द्र) मरुतो, क्रोधके समय विशाल-पराक्रमी बनकर, अपने बाहुबलसे, वृत्रको पराजित किया है । मैं वज्रबाहु हूँ । मैं मनुष्यके लिये सबकी प्रसन्नता-दायक सुन्दर वृष्टि किया करता हूँ ।

९ (मरुद्गण) इन्द्र, तुम्हारा सभी कुछ उत्तम है । तुम्हारे समान कोई देवता विद्वान् नहीं है । अतीव बलशाली इन्द्र, तुमने जो कर्त्तव्य कर्मोंको किया है, उन्हें न तो कोई पहले कर सका, न आगे कर सकता है ।

१० (इन्द्र) मैं अकेला हूँ । मेरा ही बल सर्वत्र व्याप्त हो; मैं जो चाहूँ, तुरत कर डालूँ; क्योंकि, मरुतो, मैं उग्र और विद्वान् हूँ एवं जिन धनोंका मुझे पता है, उनका मैं ही अधीश्वर हूँ ।

११ मरुतो, इस सम्बन्धमें तुमने मेरा जो प्रसिद्ध स्तोत्र किया है, वह मुझे आनन्दित करता है । मैं अभीष्टफलदाता, ऐश्वर्यशाली, विभिन्न रूपोंवाला और तुम्हारा योग्य मित्र हूँ ।

एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः।
संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥१२॥
कोन्वत्र मरुतो मामहे वः प्रायातन सखीँ रच्छा सखायः।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदाम ऋतानाम् ॥१३॥
आ यद्दु वस्याद्दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा।
ओषुवर्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥१४॥
एषः वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्टः तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१५॥

---

१२ मरुतो, तुम सोनेके रंगके हो। मेरे लिये प्रसन्न होकर दूरस्थ कीर्ति और अन्न धारण करते हुए मुझे अ
तरहसे प्रकाश और तेज द्वारा आच्छादित किया है। मुझे आच्छादित करो।

१३ (अगस्त्य) मरुतो, कौन मनुष्य तुम्हारी पूजा करता है? तुम सबके मित्र हो। तुम यजमानके सा
आओ। मरुतो, तुम मनोहर धनकी प्राप्तिके उपाय-भूत बनो और सत्य कर्मको जानो।

१४ मरुतो, स्तोत्र द्वारा परिचरण-समर्थ, स्तुति-कुशल और मान्य ऋत्विक्‌की बुद्धि, तुम्हारी सेवाके लिये, हम
सामने, आती है। मरुतो, मैं मेधावी हूँ। मेरे सामने आओ। तुम्हारे प्रसिद्ध कर्मको लक्ष्य कर स्तोता तुम्हारा पू
करता है।

१५ मरुतो, यह स्तोत्र और यह स्तुति माननीय और प्रसन्नतादायक है अथवा मान्य मान्दर्य कविकी है।
शरीर-पुष्टिके लिये तुम्हारे पास जाती है। हम अन्न, बल और दीर्घ आयु अथवा जय, शील और दान पावें।

तृतीय अध्याय समाप्त

चतुर्थ अध्याय

१६६ सूक्त। मरुद्गण देवता। अगस्त्य ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे।
ऐधेव यामन्मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन ॥१॥
नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उपक्रीडन्ति क्रीड़ा विदथेषु घृष्वयः।
नक्षन्ति रुद्राः अवसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ॥२॥
यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे।
उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता इव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ॥३॥
आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन्।
भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ॥४॥
यत्त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः।
विश्वो वो अज्मन्भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्रजिहीत ओषधिः ॥५॥

---

१ फल-वर्षक यज्ञके सुसम्पादनके लिये, मरुतोंके शीघ्र आकर उपस्थित होनेके लिये, उनके प्रसिद्ध पूर्वतन माहात्म्यको कहता हूँ। हे विशाल ध्वनिसे युक्त और सब कार्योंमें समर्थ मरुद्गण, तुम्हारे यज्ञ-स्थलमें जानेके लिये प्रस्तुत होनेपर जैसे समिधा तेजसे आवृत होती है, वैसे ही तुम लोग युद्धमें जानेके लिये प्रभूत बल धारण करो।

२ औरस पुत्रकी तरह प्रिय-मधुर हव्य धारण करके घर्षणकारी मरुद्गण, प्रसन्न चित्तसे, यज्ञोंमें क्रीड़ा करते हैं। विनीत यजमानकी रक्षाके लिये रुद्रगण मिलते हैं। उनके बल उनके अधीन हैं, वे कभी यजमानको क्लेश नहीं देते।

३ जिस हविर्दाता यजमानकी आहुतिसे प्रसन्न होकर सर्व-रक्षक, अमर और सुखोत्पादक मरुद्गण यथेष्ट धन देते हैं, उसी यजमानके हितकारी सखाकी तरह तुम लोग समस्त संसारको अच्छी तरह सींचते हो।

४ मरुतो, तुम्हारे अश्वगण, अपने बलसे, सारे संसारका भ्रमण करते हैं; वे अपने ही रथसे युक्त होकर जाते हैं। तुम्हारी यात्रा अत्यन्त आश्चर्यमयी है। हथियार उठानेपर जैसे लोग संहारमें डरते हैं, वैसे ही सारे भुवन और अट्टालिकाएँ, तुम्हारे यात्रा-कालमें, डरती हैं।

५ मरुतोंका गमन अत्यन्त प्रदीप्त है। वे जिस समय गिरि-गह्वरोंको ध्वनित करते हैं अथवा मनुष्योंके हितके लिये अन्तरिक्षके ऊपरी भागमें चढ़ते हैं, उस समय उनके पथके सारे वनस्पति, डरके मारे, व्याकुल हो जाते और रथारूढ़ा स्त्रीकी तरह ओषधियाँ एक स्थानसे दूसरे स्थानपर चली जाती हैं।

यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुनारिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।
यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा ॥६॥
प्रस्कम्भदेष्णा अनवभ्र राधसोऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः ।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥७॥
शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात् पूर्भीरक्षता मरुतो यमावत ।
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात्तनयस्य पुष्टिषु ॥८॥
विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता ।
अंसेष्वावः प्रपथेषु खादयोऽक्षोवश्चक्रा समया विवावृते ॥९॥
भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा रभसासो अञ्जयः ।
अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा अधिवयो न पक्षान्व्यनुश्रियो धिरे ॥१०॥
महान्तो मह्ना विभ्वो विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः ।
मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः संमिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः ॥११॥
तद्वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम् ।
इन्द्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥१२॥

---

६ उग्र मरुतो, सुबुद्धिके साथ, तुम लोग अहिंसक होकर, हमें सुबुद्धि प्रदान करो। जिस समय तुम्हारी क्षेपणशी
और दन्त-विशिष्ट विद्युत् दमन करती है, उस समय, सुलक्षित हेति (अस्त्र-विशेष) की तरह, पशुओंको नष्ट करती

७ जिनका दान अविरत है, जिनका धन अंश-रहित है, जिनका शत्रु-वध पर्याप्त है और जिनकी स्तुति यज्ञो
वे मरुद्गण, सोमके पानके लिये, स्तुति गाते हैं; क्योंकि वे ही लोग इन्द्रकी प्रथम वीर-कीर्ति जानते हैं।

८ मरुतो, तुमने जिस व्यक्तिको कुटिल-स्वभाव पापसे बचाया है, हे उग्र और बलवान् मरुद्गण, तुमने जि
मनुष्यको पुत्रादि-पुष्टि-साधन द्वारा, निन्दासे बचाया है, उसे अभिमत योग्य वस्तुओं द्वारा प्रतिपालित करो।

९ मरुतो, सारे कल्याणवाही पदार्थ तुम्हारे रथपर स्थापित हैं। तुम्हारे स्कन्धदेशमें परस्पर स्पर्द्धावाले आयुध
तुम्हारे लिये, विश्राम-स्थानपर, खाद्य तैयार है। तुम्हारे सारे चक्र अक्षके पास घूमते हैं।

१० मनुष्योंकी हितकारिणी भुजाओंपर मरुद्गण अनन्त कल्याण-साधक द्रव्य धारण करते हैं, वक्षःस्थलमें का
युक्त और सुन्दर-रूप-संयुक्त सोनेका भूषण धारण करते हैं। स्कन्ध-देशमें श्वेत वर्णकी माला धारण करते हैं। वज्र-सा
आयुधपर छुरा धारण करते हैं। जैसे पक्षियाँ पक्ष धारण करती हैं, वैसे ही मरुल्लोग श्री धारण करते हैं।

११ जो मरुद्गण महान्, महिमान्वित, विभूतिमान् और आकाशस्थ नक्षत्रोंकी तरह दूरमें प्रकाशित हैं, जो प्रस
हैं, जिनकी जीभ सुन्दर है, जिनके मुखसे शब्द होता है, जो इन्द्रके सहायक हैं और जो स्तुति-युक्त हैं, वे हमारे य
स्थलमें आवें।

१२ सुजात मरुद्गण, तुम्हारा माहात्म्य प्रसिद्ध है और तुम्हारा दान अदितिके व्रतकी तरह अविच्छिन्न है।
जिस पुण्यात्मा यजमानको दान देते हो, उसके प्रति इन्द्र कुटिलता नहीं करते।

तद्वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ॥१३॥
येन दीर्घं मरुतः शूशवाम युष्माकेन परीणसा तुरासः।
आयत्ततनन् वृजने जनास एभिर्यज्ञेभिस्तदभीष्टिमश्याम् ॥१४॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१५॥

◆

१६७ सूक्त। १ म मंत्रके देवता इन्द्र; अवशिष्टके मरुत्। त्रिष्टुप् छन्द।

सहस्रन्त इन्द्रोतयो नः सहस्रमिषो हरिवो गूर्ततमाः।
सहस्रं रायो मादयध्यै सहस्रिण उप नो यन्तु वाजाः ॥१॥
आ नोवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठभिर्वा बृहद्दिवैः सुमायाः।
अध यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे ॥२॥
मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः।
गुहाचरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक् ॥३॥

---

१३ मरुद्गण, तुम्हारी मित्रता प्रसिद्ध और चिरस्थायिनी है। अमर होकर तुम लोग हमारी स्तुतिकी भली भाँति रक्षा करते हो। अनुग्रह-पूर्वक, मनुष्योंकी स्तुतिकी रक्षा करते हुए, उनके साथ मिलकर तथा उनका नेतृत्व स्वीकार कर, कर्म द्वारा सब जान जाते हो।

१४ वेगवान् मरुतो, तुम्हारे महान् आगमनपर हम दीर्घ कर्म-यज्ञको वर्द्धित करते हैं। उसके द्वारा युद्धमें मनुष्य विजयी होता है। इन सब यज्ञों द्वारा मैं तुम्हारा शुभागमन प्राप्त कर सकूँ।

१५ मरुतो, कवि मान्य मान्दार्यका यह स्तोम तुम्हारे लिये है, यह स्तुति तुम्हारे लिये है; इच्छानुसार उसकी शरीर-पुष्टिके लिये तुम्हारे पास आती है। हम भी अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें।

---

१ इन्द्र, तुम हजारों तरहसे रक्षा करो। तुम्हारी रक्षाएँ हमारे पास आवें। हरि नामक अश्ववाले इन्द्र, तुम्हारे पास हजार तरहके प्रशंसनीय अन्न हैं; वह हमारे पास आवें। इन्द्र, तुम्हारे पास हजार तरहका धन है। हमारी तृप्तिके लिये वह हमारे पास आवे। हजार चौपाये हमारे पास आवें।

२ आश्रय देनेके लिये मरुद्गण हमारे पास आवें। सुबुद्ध मरुद्गण प्रशस्यतम और महादीप्ति-संयुक्त धनके साथ हमारे पास आवें; क्योंकि उनके नियुत् नामके उत्कृष्ट अश्व समुद्रके उस पार भी धन धारण करते हैं।

३ सुव्यवस्थित, जल-वर्षक और सुवर्ण-वर्ण विद्युत् मेघमालाकी तरह अथवा निगूढ़ स्थानमें अवस्थित मनुष्यकी भार्याकी तरह अथवा कही गयी यज्ञीय वाणीकी तरह इन मरुतोंके साथ मिलती है।

परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः ।
न रोदसी अपनुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥४॥
जोषद्यदीमसूर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः ।
आ सूर्येव विधतो रथंगात्त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या ॥५॥
आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् ।
अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान्गायद्गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥६॥
प्रतं विवक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।
सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ॥७॥
पान्ति मित्रावरुणाववद्याच्चयत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।
उतच्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवारः ॥ ८ ॥
नहीनुवो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः ।
ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसोर्णो न द्वेषो धृषता परिष्ठुः ॥ ९ ॥
वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।
वयं पुरा महि च नो अनुद्यून्तन्न ऋभुक्षा नरामनुष्यात् ॥ १० ॥

---

४ साधारण स्त्रीकी तरह आलिङ्गन-परायण बिजलीके साथ शुभ्रवर्ण, अतिगमनशील और उत्कृष्ट मरुद्गण मिल हैं। भयङ्कर मरुद्गण द्यावापृथिवीको नहीं हटाते। देवता लोग, मैत्रीके कारण, उनको समृद्धिका साधन करते हैं।

५ असुर (मरुतों) की अपनी पत्नी रोदसी या बिजली आलुलायित केश और अनुरक्त मनसे मरुतोंके संगम लिये उनकी सेवा करती है। जैसे सूर्या अश्विनीकुमारोंके रथपर चढ़ी, वैसे ही प्रदीप्तावयवा रोदसी चञ्चल मरुतोंके रथप चढ़कर शीघ्र आती है।

६ यज्ञ आरम्भ होनेपर, वृष्टिदानके लिये, तरुण वयस्क तरुणी रोदसीको रथपर बैठाते हैं। बलवती रोदस नियमानुरूप, उनके साथ मिलती है। उसी समय अर्चन-मन्त्र-युक्त, हव्यदाता और सोमाभिषवकारी यजमान मरुतों सेवा करते हुए स्तव-पाठ करता है।

७ मरुतोंकी महिमा सबकी प्रशंसनीय और अमोघ है। मैं उसका वर्णन करता हूँ। उनकी रोदसी वर्षणाभिलाषिणी, अहंकारिणी और अविनश्वरा है। यह सौभाग्यशालिनी और उत्पत्तिशील प्रजाको धारण करती है।

८ मित्र, वरुण और अर्यमा इस यज्ञको निन्दासे बचाते और उसके अयोग्य पदार्थका विनाश करते हैं। मरुतो तुम्हारे जल देनेका समय जब आता है, तब वह मेघोंके बीच संचित जलकी वर्षा करते हैं।

९ मरुतो, हमारे बीच किसीने भी, अत्यन्त दूरसे भी, तुम्हारे बलका अन्त नहीं पाया है। दूसरोंको परास्त कर वाले बलके द्वारा बढ़कर, जलराशिकी तरह, अपनी शक्तिसे शत्रुओंको विजित करते हैं।

१० आज हम इन्द्रके प्रियतम होंगे, यज्ञमें उनको महिमा गायेंगे। हमने पहले इन्द्रका माहात्म्य गाया और प्रतिदिन गाते हैं। इसलिये महान् इन्द्र मनुष्योंमें हमारे लिये अनुकूल हों।

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥

* * *

१६८ सूक्त। मरुद्गण देवता। त्रिष्टुप् और जगती छन्द।

यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियन्धियं वो देवयाउ दधिध्वे।
आ वोर्वाचः सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥
वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः।
सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥ २ ॥
सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते।
ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सन्दधे ॥ ३ ॥
अव स्वयुक्ता दिव आवृथा ययुरमर्त्याः कशया चोदत त्मना।
अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवुर्दृह्लानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ४ ॥
को वोन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया।
धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो नैतशः ॥ ५ ॥

---

११ मरुतो, कवि मान्दर्यकी यह स्तुति तुम्हारे लिये है। इच्छानुसार उसकी शरीर-पुष्टिके लिये तुम्हारे पास आती है। हम भी अन्न, बल और दीर्घायु पावें।

* * *

१ मरुतो, सारे यज्ञोंमें ही तुम्हारा समान आग्रह है। अपने सारे कर्मोंको, देवोंके पास ले आनेके लिये, धारण करते हो, इसलिये द्यावापृथिवीकी भली भाँति, रक्षा करनेके लिये, उत्कृष्ट स्तोत्र द्वारा, तुम्हें, अपनी ओर आनेके लिये, बुलाता हूँ।

२ स्वयं उत्पन्न, स्वाधीनबल और कम्पनशील मरुद्गण मानों मूर्तिमान् होकर, अन्न और स्वर्गके लिये, प्रकट होते हैं। असंख्य और प्रशंसनीय धेनु जसे दूध देती है, वैसे ही, जल-तरङ्गके समान, वे उपस्थित होकर जल-दान करते हैं।

३ सुसंस्कृत शाखावाली सोमलता, अभिषुत और पीत होकर, जैसे हृदयके बीच परिचारिकाकी तरह कार्य करती है, वैसे ही ध्यान किये जानेपर मरुद्गण भी करते हैं। उनके अंस-देशमें, स्त्रीकी तरह, आयुध-विशेष आलिङ्गन करता है। मरुतोंके हाथमें हस्तत्राण और कर्त्तन है।

४ परस्पर मिले हुए मरुद्गण, अनायास, स्वर्गसे आते हैं। अमर मरुतो, अपने ही वाक्योंसे हमारा उत्साह बढ़ाओ। निष्पाप, अनेक यज्ञोंमें प्रादुर्भूत और प्रदीप्त मरुद्गण दृढ़ पर्वतोंको भी कम्पित कर देते हैं।

५ आयुध-विशेष या भुज-लद से सुशोभित मरुद्गण, जैसे जीभ दोनों जबड़ोंको चालित करती है, वैसे ही तुम्हारे बीच रहकर कौन तुम्हें परिचालित करता है। तुम लोग स्वयं परिचालित होते हो। जैसे जलवर्षी मेघ परिचालित होता है, जैसे दिनमें मेघ चालित होता है, वैसे ही बहुफलेच्छु यजमान, अन्न-प्राप्तिके लिये, तुम्हें परिचालित करता है।

क्व स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय ।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥ ६ ॥
सातिर्न वोमवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती ।
भद्रा वोरातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुज्रयी असूर्येव जञ्जती ॥ ७ ॥
प्रतिष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति ।
अवस्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदीघृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति ॥ ८ ॥
असूत पृश्निर्महतेरणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।
ते सप्सरासो जनयन्ताभ्वमादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥ ९ ॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

* * *

१६९ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् और विराट् छन्द ।

महश्चित्त्वमिन्द्र यत एतान्महश्चिदसि त्यजसो वरूता ।
स नो वेधो मरुतां चिकित्वान्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा ॥ १ ॥

---

६ मरुतो, जिस जलके लिये तुम जाते हो, उस विशाल वृष्टि-जलका आदि और अन्त कहाँ है?
तृणकी तरह जिस समय तुम जलराशिको गिराते हो, उस समय वज्र द्वारा दीप्तिमान् मेघको विदीर्ण करते हो।

७ मरुतो, जैसा तुम्हारा धन है, वैसा ही दान भी है। दानके सम्बन्धमें तुम्हारे सहायक इन्द्र हैं। उसमें सुख
दीप्ति है। उसका फल परिपक्व है। उससे कृषि-कार्यका भी मंगल होता है। वह दाताकी दक्षिणाकी तरह शीघ्र
दाता है। वह असुरकी जयशील शक्तिकी तरह है।

८ जिस समय वज्र मेघ-प्रभूत शब्द उच्चारित करते हैं, उस समय उनसे क्षरणशील जल परिचालित
है। जिस समय मरुद्गण पृथिवीपर जल सेचन करते हैं, उस समय विद्युत् निम्नमुख पृथिवीपर प्रकट होती है।

९ पृश्निने महासंग्रामके लिये प्रदीप्त गमन-युक्त मरुद्गणको प्रसव किया है। समान रूपवाले मरुतोंने
उत्पन्न किया है। इसके पश्चात् संसारने अभिलषित अन्न आदि प्राप्त किया है।

१० मरुतो, कवि मान्य मान्दार्यका यह स्तोत्र तुम्हारे लिये है; यह स्तुति तुम्हारे लिये है। अपने
पुष्टिके लिये तुम्हारे पास आता है। हम भी अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें।

* * *

१ इन्द्र, तुम निश्चय ही महान् हो; क्योंकि तुम रक्षक और महान् मरुतोंका परित्याग नहीं करते। हे
विधाता, तुम हमारे प्रति कृपा करके हमें सुख प्रदान करो। वह सुख प्रियतम है।

अयुज्रन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा ।
मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीह्लस्य प्रधनस्य सातौ ॥ २ ॥
अम्यक्सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति ।
अग्निश्चिद्धिष्मातसे शुशुक्वानापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥ ३ ॥
त्वंतू न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।
स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥ ४ ॥
त्वे राय इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्यचिदृतायोः ।
तेषुणो मरुतो मृड़यन्तु येस्मा पुरा गातूयन्तीव देवाः ॥ ५ ॥
प्रतिप्रयाहीन्द्र मीह्लुषोनॄन्महः पार्थिवे सदने यतस्व ।
अध यदेषां पृथुवुध्नास एतास्तीर्थेनार्यः पौंस्यानि तस्थुः ॥ ६ ॥
प्रतिघोराणामेतानामयासां मरुतां शृण्व आयतामुपब्दिः ।
ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमैर्ऋणावानं न पतयन्त सर्गैः ॥ ७ ॥

२ इन्द्र, सब मनुष्योंवाले, मनुष्योंके लिये जल सिंचन करनेवाले और विद्वान् मरुद्गण तुम्हारे साथ मिलें मरुतोंकी सेना, सुखके उपायभूत युद्धमें, जय-प्राप्तिके लिये, सदा प्रसन्न हुई है।

३ इन्द्र, तुम्हारा प्रसिद्ध वज्रायुध-विशेष (ऋष्टि) हमारे लिये, मेघके पास जाता है। मरुद्गण चिर-सञ्चित जल गिरा रहे हैं। विस्तृत यज्ञके लिये अग्नि प्रदीप्त हुए हैं। जैसे जल द्वीपको धारण करता है, वैसे ही अग्नि हव्य धारण करते हैं।

४ इन्द्र, तुम अपने दान-योग्य धनका दान करो। तुम दाता हो। हम लोग प्रचुर दक्षिणा द्वारा तुम्हें प्रसन्न करेंगे। तुम वायु या शीघ्र वर-दाता हो। स्तोता लोग तुम्हारी स्तुति करना चाहते हैं। मधुर दूधके लिये जैसे लोग गौके स्तनको पुष्ट करते हैं, वैसे ही हम भी तुम्हें अन्न आदिके द्वारा पुष्ट करते हैं।

५ इन्द्र, तुम्हारा धन अत्यन्त प्रीति-दाता और यजमानका यज्ञ-निर्वाहकारी है। जो मरुद्गण पहले ही यज्ञमें जानेके लिये तैयार हो जाते हैं, वे ही हमें सुखी करें।

६ इन्द्र, जल-सेचक हो। दुर्धर्ष और विशाल मेघके सामने जाओ। अन्तरीक्ष-प्रदेशमें रहकर चेष्टा करो। युद्ध-क्षेत्रमें शत्रुओंके पराक्रमको तोड़ मरुतोंके विस्तीर्ण पद—अश्वगण—मेघोंपर आक्रमण करते हैं।

७ इन्द्र, भयंकर, कृष्णवर्ण और गमनशील मरुतोंके आनेका शब्द सुनाई देता है। जैसे अधम शत्रुका विनाश किया जाता है, वैसे ही मनुष्योंकी रक्षाके लिये मरुद्गण प्रहरण द्वारा सेना-बल-संयुक्त शत्रुओंका विनाश करते हैं

त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गो अग्राः ।
स्तवानेभिः स्तवसे देवदेवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

* * *

१७० सूक्त । इन्द्र देवता । प्रथम, तृतीय और चतुर्थ ऋचाओंके ऋषि इन्द्र हैं और शेषके अगस्त्य ।
त्रिष्टुप् और बृहती छन्द ।

न नूनमस्तिनोश्वः कस्तद्वेदयदद्भुतम् ।
अन्यस्य चित्तमभिसञ्चरेण्यमुताधीतं विनश्यति ॥१ ॥
किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।
तेभिः कल्पस्व साधुयामानः समरणे वधीः ॥ २ ॥
किं नो भ्रातरगस्त्य सखासन्नतिमन्यसे ।
विद्मा हिते यथा मनोऽस्मभ्यमिन्नदित्ससि ॥ ३ ॥
अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः ।
तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ॥ ४ ॥
त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः ।
इन्द्र त्वं मरुद्भिः संवदस्वाध प्राशान ऋतुथा हवींषि ॥ ५ ॥

---

८ इन्द्र, सारे प्राणी तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं। मरुतोंके साथ, अपने सम्मानके लिये, तुम दुःख-नाशिका जल-धर्षिणी मेघ-पंक्तिको विदीर्ण करो। देव, स्तूयमान देवगण तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हमें अन्न, बल दीर्घायु प्रदान करो।

---

१ (इन्द्र) अद्यतन या कल्यतन कुछ नहीं है। अद्भुत कार्यकी बात कौन कह सकता है? अन्य मनुष्योंका अत्यन्त चञ्चल होता है—जो अच्छी तरह पढ़ा जाता है, वह भी भूल जाता है।

२ (अगस्त्य) इन्द्र, तुम क्या मुझे मारना चाहते हो? मरुद्गण तुम्हारे भ्राता हैं। उनके साथ अच्छी तरह भाग भोगो। युद्ध-कालमें हमें न हीं विनष्ट करना।

३ (इन्द्र) भ्राता अगस्त्य, मित्र होकर तुम क्यों हमें अनादृत कर रहे हो? हम निश्चय ही तुम्हारे मनकी जानते हैं। तुम हमें नहीं देना चाहते।

४ ऋत्विक्गण, तुम वेदीको सजाओ और सामने अग्निको प्रज्वलित करो। अनन्तर उसमें तुम और हम सूचक यज्ञको करेंगे।

५ (अगस्त्य) हे धनके अधिपति, हे मित्रोंके मित्रपति, तुम ईश्वर हो, तुम सबके आश्रय-स्वरूप हो। मरुतोंसे कहो कि, हमारा यज्ञ सम्पन्न हुआ है। तुम यथासमय अर्पित हव्य भक्षण करो।

१७१ सूक्त । मरुद्गण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।
रराणता मरुतो वेद्याभिर्निहेलो धत्त विमुचध्वमश्वान् ॥ १ ॥
एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान् हृदातष्टो मनसा धायि देवाः ।
उपेमायात मनसा जुषाणा यूयं हिष्ठानमस इद्वृधासः ॥ २ ॥
स्तुतासो नो मरुतो मृड़यन्तुत स्तुतो मघवा शम्भविष्ठः ।
ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥ ३ ॥
अस्मादहन्तविषादीषमाण इन्द्राद्भिया मरुतो रेजमानः ।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्तान्यारे चकृमा मृड़ता नः ॥ ४ ॥
येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम् ।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवोधा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥ ५ ॥
त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नृन्भवा मरुद्भिरवयातहेलाः ।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजन जीरदानुम् ॥ ६ ॥

* * *

१ मरुतो, मैं नमस्कार और स्तुति करता हुआ तुम्हारे पास आता हूँ । हे वेगवान् मरुतो, तुम्हारी दया चाहता हूँ । मरुतो, स्तुति द्वारा आनन्दित चित्तसे क्रोध छोड़ो और रथसे अश्व छोड़ो अर्थात् ठहरनेकी कृपा करो ।

२ मरुतो, तुम्हारे इस स्तोममें अन्न है । देवगण, यह स्तोम, तुम्हारे उद्देश्यसे, हृदयसे सम्पादित हुआ है; कृपा करके इसे मनमें रखिये । सादर इसे स्वीकार करते हुए आओ । तुम हव्य-रूप अन्नके वर्द्धयिता हो ।

३ मरुद्गण, स्तुत होकर हमें सुखी करो । इन्द्र, स्तुत होकर हमें सर्वापेक्षा सुखी करें । मरुतो, हम लोग जितने दिन जीयें, वे सब दिन उत्कृष्ट, स्पृहणीय और भोग-योग्य हों ।

४ मरुतो, हम इस बलवान् इन्द्रके पाससे डरके मारे भागते हुए काँपने लगे । तुम्हारे लिये जिस हव्यको संस्कृत किया था, उसे दूर कर दिया । हमें सुखी करो ।

५ इन्द्र, तुम बल-स्वरूप हो । तुम्हारे माननीय अनुग्रहसे किरणें, प्रतिदिन, उषाके उदय-कालमें प्राणियोंको चैतन्य देती हैं । अभीष्टवर्षी, उग्र बल-प्रदायी और पुरातन इन्द्र, तुम उग्र मरुतोंके साथ अन्न धारण करो ।

६ इन्द्र, प्रभूत बलशाली मरुतोंकी रक्षा करो । उनके प्रति निष्क्रोध बनो । मरुद्गण उत्तम प्रज्ञावाले हैं । उनके साथ शत्रुओंके विनाशक बनो और हमारी रक्षा करो । हम अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें ।

१ ——

१७२ सूक्त । इन्द्र देवता । गायत्री छन्द ।

चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊती सुदानवः । मरुतो अहिभानवः ॥ १ ॥
आरेसावः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः । आरे अश्मायमस्यथ ॥ २ ॥
तृणस्कन्दस्य नु विशः परिवृङ्क सुदानवः । ऊर्ध्वान्नः कर्त जीवसे ॥ ३ ॥

१७३ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

गायत्सामनभन्यं यथावेरर्चाम तद्वावृधानं स्वर्वत् ।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा आयत्सद्मानं दिव्यं विवासान् ॥ १ ॥
अर्चद्वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैर्मृगो नाश्नो अतियज्जुगुर्यात् ।
प्रमन्दयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥ २ ॥
नक्षद्धोता परिसद्म मिता यन्भरद्गर्भमा शरदः पृथिव्याः ।
क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद्गौरन्तर्दूतो न रोदसी चरद्वाक् ॥ ३ ॥

---

१ मरुतो, यज्ञमें तुम्हारा आगमन विचित्र हो । दानशील और उत्कृष्ट दीप्तिवाले मरुतो, तुम्हारा आगमन हमा रक्षा करे ।

२ दानशील मरुतो, तुम्हारे दीप्यमान और प्राणिवधकुशल अस्त्र हमारे पाससे दूर हों । तुम जिस अश्म नाम स्त्रको फेंकते हो, वह भी हमारे पाससे दूर हो ।

३ दाता मरुतो, तिनकेके समान नीच होनेपर भी मेरी प्रजाओंको बचाना । हमें उन्नत करो, ताकि बच जायँ ।

१ इन्द्र, उद्गाता सामवेदका इस प्रकार आकाशव्यापी गान गाता है कि, तुम समझ सको । हम उस वर्द्ध और स्वर्ग-प्रदाता स्तोत्रकी पूजा करते हैं । स्वर्गीय इन्द्र, दुग्धवती और हिंसा-शून्या गायें जैसे कुशासनपर बैठ समय तुम्हारी सेवा करती हैं, वैसे ही मैं भी पूजा करता हूँ ।

२ हव्यदाता यजमान, हव्य-प्रदाता अध्वर्यु आदिके साथ अपने दिये हव्य द्वारा इन्द्रकी पूजा करते हैं । पि सित मृगकी तरह, इन्द्र, द्रुत वेगसे यज्ञ-स्थलमें उपस्थित होंगे । उग्र इन्द्र, स्तोत्राभिलाषी देवोंकी स्तुति करते मर्त्य होता, स्त्री-पुरुष, यज्ञ-सम्पादन करते हैं ।

३ होम-सम्पादक अग्नि, परिमित गार्हपत्यादि स्थानमें, चारो ओर, व्याप्त हैं तथा शरत्कालका और पृथि गर्भस्थानीय अन्नको ग्रहण करते हैं । अश्वकी तरह शब्द करके, वृषभकी तरह शब्द करके, अन्न लेकर, आकाश पृथिवीके बीच, दूत-स्वरूप, बातचीत करते हैं ।

ताकर्माषतरास्मै प्रच्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते ।
जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यां रथेष्ठाः ॥ ४ ॥
तमुष्टुहीन्द्रं योह सत्वायः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः ।
प्रतीचश्चिद्योधीयान् वृषण्वान्ववव्रुषश्चित्तमसो विहन्ता ॥ ५ ॥
प्रयदित्था महिना नृभ्यो अस्त्यरं रोदसीकक्ष्ये नास्मै ।
संविव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम् ॥ ६ ॥
समत्सु त्वा शूरसतामुराणं प्रपथिन्तमं परितं सयध्यै ।
सजोषस इन्द्रं मदेक्षोणीः सूरि चिद्ये अनुमदन्ति वाजैः ॥ ७ ॥
एवाहितेशं सवना समुद्र आपो यत्त आसुमदन्ति देवीः ।
निश्वा ते अनुजोष्याभृद्गौः सूरीँश्चिद्यदि धिषावेषि जनान् ॥ ८ ॥
असाम यथा सुसखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः ।
असद्यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठास्तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥ ९ ॥

---

४ हम, इन्द्रके उद्देश्यसे, अत्यन्त व्यापक हव्य प्रदान करेंगे । देवाभिलाषी यजमान दृढ़ स्तोत्र करते हैं । दर्शनीय तेजवाले अश्विनीकुमारोंकी तरह जानने योग्य और रथपर अवस्थित इन्द्र हमारे स्तोत्रका सेवन करें ।

५ हे होता, जो इन्द्र अनन्त बलवाले, शौर्य्यवान्, बलवान् रथपर स्थित, सामनेके योद्धाओंमें श्रेष्ठ योद्धा, वज्र आदिवाले और मेघ आदिके विनाशक हैं, उनकी स्तुति करो ।

६ इन्द्र, अपनी महिमासे, कर्म-निष्ठ यजमानोंको स्वर्ग आदि फल देनेमें समर्थ हैं । द्यावापृथिवी उनकी कक्षाकी पूर्त्तिके लिये पर्याप्त नहीं हैं । जैसे अन्तरीक्ष पृथिवीको वेष्टित कर रहता है, वैसे ही वे भी अपनी प्रतिभासे तीनों लोकोंको व्याप्त करते हैं । जैसे वृषभ अनायास शृङ्ग धारण करता है, वैसे ही अन्नवान् इन्द्र भी स्वर्गको अनायास धारण करते हैं ।

७ शूर इन्द्र, युद्ध-भूमिमें साधुओंके बलप्रद और उत्तम-मार्ग-रूप हो । मरुद्गण तुम्हें स्वामी कहकर आनन्दित होते हैं । वे तुम्हारे परिजन हैं । तुम्हारे आनन्दके लिये सब लोग समान आनन्दित होकर तुम्हें अलंकृत करनेकी चेष्टा कर रहे हैं ।

८ यदि अन्तरीक्ष-स्थित और प्रकाशमान जल प्रजाओंके लिये तुम्हें सुखी करे, यदि सारे स्तोत्र आदि तुम्हें प्रसन्न करें और यदि तुम वृष्टि-प्रदान आदि कर्म द्वारा स्तोताओंको कामना करो, तो तुम्हारा सवन सुखकर हो ।

९ प्रभु इन्द्र, जैसे हम तुम्हारे मित्र हो सकें और स्तुति द्वारा, राजाओंकी तरह, तुम्हारे पाससे अभीष्ट प्राप्त कर सकें, वैसा करो । इन्द्रदेव, हमारे स्तुति-कालमें उपस्थित होकर, शीघ्रताके साथ, हमारा यज्ञ, उक्त स्तुतिके साथ, ले जाओ ।

विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः।
मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उपशिक्षन्ति यज्ञैः ॥ १० ॥
यज्ञो हि ष्मेंद्रं कश्चिदृन्धञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन्।
तीर्थनाच्छातातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमाकृणोत्यध्वा ॥ ११ ॥
मोषूण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्माते शुष्मिन्नवयाः।
महश्चिद्यस्य मीळ्हुषो यव्या हविष्मतो मरुतोवन्दते गीः ॥ १२ ॥
एषः स्तोम इन्द्र स्तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः।
आनो ववृत्याः सुविताय देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १३ ॥

* * *

१७४ सूक्त। इन्द्र देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षानॄन् पाह्यसुर त्वमस्मान्।
त्वं सत्पतिर्मघवानस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ १ ॥

---

१० जैसे मनुष्योंमें प्रतिस्पर्द्धी व्यक्तियोंको, स्तुति द्वारा, सदय किया जाता है, वैसे ही हम भी इन्द्रको कों इन्द्र केवल हमारे ही होंगे। जैसे योग्य शासक नगरपतिकी, हितैषी लोग, पूजा, करते हैं, वैसे ही हमारे बीच अवस नाभिलाषी अध्वर्यु लोग, हव्य आदि द्वारा, इन्द्रकी पूजा करते हैं।

११ उसी प्रकार यज्ञपरायण व्यक्ति, यज्ञ द्वारा, इन्द्रकी वृद्धि करता है और कुटिलगति व्यक्ति, मन ही मन, सा चिन्ता-परायण रहता है, जिस प्रकार तीर्थ-मार्गमें सम्मुखस्थित जल तुरत लोगोंको प्रसन्न करता और दीर्घ-पथका तृषार्त व्यक्तिको निराश करता है।

१२ इन्द्र, युद्ध-वेलामें, मरुतोंके साथ, तुम हमें नहीं छोड़ना; क्योंकि हे बलवान् इन्द्र, तुम्हारे लिये यज्ञका भा स्वतन्त्र है। हमारी फल-समन्वित स्तुति महान्, हविष्मान् और जलदाता मरुतोंकी वन्दना करती है।

१३ इन्द्र, यह स्तोम तुम्हारा ही है। हरिवाहन, इस स्तुति द्वारा तुम हमारा देव-पूजन-मार्ग जान लो अनायास आनेके लिये हमारे पास पधारो।

---

१ इन्द्र, तुम संसार और सारे देवोंके राजा हो। तुम मनुष्योंकी रक्षा करो। असुर, तुम हमारी रक्षा क तुम साधुओंके पालक, धनवान् और हमारे उद्धार-कर्त्ता हो। तुम सत्य और बल-प्रदाता हो। तुमने अपने तेजसे स ढक लिया है।

दनोविश इन्द्रमृध्रवाचः सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दत् ।
ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २ ॥
अजावृत इन्द्र शूरपत्नीर्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् ।
रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥
शेषन्नुत इन्द्र सस्मिन्योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना ।
सृजदर्णांस्यव यद्युधा गास्तिष्ठद्धरी धृषतामृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥
वहकुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्त्स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा ।
प्रसूरश्चक्रं वृहतादभीकेभिस्पृधो यासिषद्वज्रबाहुः ॥ ५ ॥
जघन्वाँ इन्द्रमित्रेरूञ्चोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् ।
प्रयेपश्यन्नर्यमणं सचायोस्त्वया शूर्तावहमाना अपत्यम् ॥ ६ ॥
रपत् कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायोपबर्हणीङ्कः ।
करत्तिस्रो मघवा दानुचित्रा निदुर्योणे कुयवाचं मृधिश्रेत् ॥ ७ ॥

---

२ इन्द्र, जिस समय तुमने संवत्सर-पर्यन्त दृढ़ीकृत सात पुरियोंको भिन्न किया था, उस समय प्रजाओंको संयत-वाक्य करके अनायास दमन किया था। अनवद्य इन्द्र, तुमने गतिशील जल दिया था। तुमने तरुण-वयस्क पुरुकुत्स राजाके लिये वृत्रका वध किया था।

३ इन्द्र, तुम राक्षस-निवास सारी नगरियोंको जाते और वहाँसे, हे पुरुहूत, अनुचरोंके साथ स्वर्गमें जाते हो। वहाँ अशोषक और शीघ्रकारी अग्निको, सिंहकी तरह, बचाते हो, ताकि वह अपने गृहमें अपना कर्त्तव्य पूरा कर सके।

४ इन्द्र, तुम्हारे शत्रु या मेघ वज्रकी महिमासे तुम्हारी प्रशंसा करते हुए अपने जन्मस्थानमें शीघ्र शयन करें। जब तुम अस्त्र लेकर जाते हो, तब नीचे जल गिराते और हरियोंके ऊपर चढ़ते हो। अपनी शक्तिसे तुम शस्य आदि बढ़ाते हो।

५ इन्द्र, तुम जिस यज्ञमें कुत्स ऋषिकी कामना करते हो, उसमें अपने वशीभूत, सरलगामी और वायुके समान वेगशाली अश्वोंको परिचालित करते हो। उसके लिये सूर्य रथचक्रको पास ले आवें और वज्रबाहु इन्द्र संग्रामकर्त्ता शत्रुओंके सामने आवें।

६ हरिवाहन इन्द्र, तुमने, स्तोत्र द्वारा प्रवृद्ध होकर, दान-रहित और यजमानोंके विघ्नकारी लोगोंका विनाश किया है। जिन्होंने तुम्हें आश्रयदाता रूपसे देखा है और जो हव्य प्रदानके लिये मिलित हुए हैं, वे तुमसे सन्तान प्राप्त करते हैं।

७ इन्द्र, पूजनीय अन्नकी प्राप्तिके लिये कवि तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुमने पृथिवीको दासकी शय्या बना दिया है। इन्द्रने तीन भूमिके दान द्वारा विचित्र किया है एवं दुर्योणि राजाके लिये कुयवाचका वध किया है।

सनातात इन्द्र नव्या आगुः सहोनभो विरणाय पूर्वीः ।
भिनत्पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ८ ॥
त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्रयत् समुद्रमतिशूर पर्षि पारया तुर्वणं यदुं स्वस्ति ॥ ९ ॥
त्वमस्माकमिन्द्र विश्वधस्या अवृकतमो नरां नृपाता ।
स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

१७५ सूक्त । इन्द्र देवता । बृहती, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥
आनस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्रसानसिः पृतनाषाड़मर्त्यः ॥ २ ॥
त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥

८ इन्द्र, नये ऋषिगण तुम्हारे सनातन प्रसिद्ध वीर कर्मकी स्तुति करते हैं। तुमने अनेक हिंसकोंको, संग्रा निवारणके लिये, विनष्ट किया है। तुमने देवशून्य विपक्ष नगरोंको भिन्न किया है और देवरहित शत्रुका अस्त्र किया है।

९ इन्द्र, तुम शत्रुओंमें हृत्कम्प पैदा करनेवाले हो। इसीलिये तुम प्रवहमाना सिरा नामकी नदीकी तरह तां युक्त जल पृथिवीपर गिराते हो। हे शूर, जिस समय तुम समुद्रको परिपूर्ण करते हो, उस समय तुमने तुर्वश और यदु मंगलके लिये उनका पालन किया है।

१० इन्द्र, तुम सदा हमारे रक्षक-श्रेष्ठ बनो और प्रजाओंका पालन करो। हमारे सैन्योंको बल दो, ताकि ह अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें।

१ हरिवाहन इन्द्र, हर्षकर, अभीष्टवर्षी, आह्लादकारी, अन्नवान्, असीम दानवाले और महानुभाव सो जिस प्रकार पात्रमें स्थापित किया जाता है, उसी प्रकार तुम भी होकर और पानकर धारण करो और अतीव प्रसन्न ब

२ इन्द्र, हर्षकर, अभीष्टवर्षी, तर्पयिता, वरणीय, सहायवान्, शत्रु-सैन्य-विनाशक और अविनाशी सो तुम्हारे पास आवे।

३ इन्द्र, तुम शूर और दाता हो, मैं मनुष्य हूँ। मेरा मनोरथ पूर्ण करो। तुम सहायवान् हो। जैसे अग्नि, अप ज्वालासे, पात्रको जलाता है, वैसे ही तुम व्रत-रहित दस्युको जलाओ।

मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।
वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ४ ॥
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥ ५ ॥
यथा पूर्वभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

१७६ सूक्त। इन्द्र देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

मत्सि नो वस्य इष्टय इन्द्रमिन्दो वृषाविश ।
ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥ १ ॥
तस्मिन्नावेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम् ।
अनुस्वधायमुप्यते यवं न चर्कृषद्वृषा ॥ २ ॥
यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्चक्षितीनां वसु ।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग्दिव्येवाशनिर्जहि ॥ ३ ॥

४ मेधावी इन्द्र, तुम ईश्वर हो। अपनी सामर्थ्यसे तुमने सूर्यके दो चक्रोंमेंसे एक हरण कर लिया। शुष्णका वध करनेके लिये कर्त्तन-साधन वज्र लेकर वायुके समान वेगवाले अश्वके साथ आओ।

५ इन्द्र, तुम्हारी प्रसन्नता सर्वापेक्षा बल-संयुक्त है। तुम्हारा यज्ञ सर्वापेक्षा अन्नवान् है। हे अनेक-अश्व-दाता इन्द्र, अपने वृत्रघाती और धनदायी तथा क्रतुका समर्थन करो।

६ इन्द्र, तुम पुराने स्तोताओंके प्रति, तृषार्त्तके पास जलकी तरह हुए थे, इसलिये हम बार-बार तुम्हारी स्तुति करते हैं, ताकि अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें।

१ हे सोम, धन-लाभके लिये इन्द्रको आनन्दित करो। अभीष्टवर्षी इन्द्रके बीच प्रवेश करो। प्रसन्न होकर शत्रुओंका विनाश करते हुए क्रमशः व्याप्त होते हो; इसलिये किसी शत्रुको पासमें नहीं आने देते।

२ इन्द्र, मनुष्योंके अद्वितीय अधीश्वर हैं। वे यथा-रीति यव (जौ) की तरह हमारा अभीष्ट सार्थक करते हैं।

३ जिन इन्द्रके हाथोंमें पञ्च क्षिति अर्थात् ब्राह्मणादि चार वर्ण और निषादका सर्वप्रकार अन्न है, वही इन्द्र, जो हमारा द्रोह करता है, उसे दिव्य वज्रकी तरह विनष्ट करें।

असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं योनते मयः ।
अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥ ४ ॥
आवो यस्य द्विबर्हसोऽर्केषु सानुषगसत् ।
आजाविन्द्रस्येन्द्रो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ५ ॥
यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मय इवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनुत्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥

* * *

१७७ सूक्त। इन्द्र देवता । बृहती, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।

आचर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणायाह्यर्वाङ् ॥१॥
ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः ।
ताँ आतिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥ २ ॥
आतिष्ठ रथं वृषणं वृषाते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभक्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ॥ ३ ॥

४ इन्द्र, जो लोग सोमका अभिषव नहीं करते और जिनका विनाश करना दुःसाध्य है, उनका वध करो; क्यों वे तुम्हारे सुखके कारण नहीं हैं। उनका धन हमें दो। तुम्हारा स्तोता ही धन प्राप्त करता है ।

५ हे सोम, जिन स्तोत्र और हविके द्विविध कर्म करनेवाले यजमानके पूजा-साधक मंत्रमें तुम सदा अवस्थि करते हो, उसकी तुम रक्षा करो । हे सोम, इन्द्रके युद्धमें अन्नके लिये अन्नवान् इन्द्रकी रक्षा करो ।

६ इन्द्र, तुम प्राचीन स्तोताओंके प्रति, तृषार्त्तके पास, जलकी तरह हुए थे, इसलिये हम बार-बार तुम सुखकर और प्रसिद्ध स्तुति करते हैं, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें ।

१ मनुष्योंके प्रीति-दायक, सबके इच्छित-वर्षक, मनुष्योंके स्वामी और बहुतोंके द्वारा आहूत इन्द्र हमारे आवें। इन्द्र, हमारी स्तुति ग्रहण कर दोनों तरुण हरितोंको रथमें जोतकर, हव्य ग्रहण करने और रक्षाके लिये सामने आओ ।

२ इन्द्र, तुम्हारे जो तरुण, उत्तम, मंत्र द्वारा रथमें योजनीय, वर्षक और रथसे युक्त घोड़े हैं, उनपर चढ़ो उनके साथ हमारे सामने आओ ।

३ इन्द्र, तुम अभीष्टवर्षक रथपर चढ़ो; क्योंकि तुम्हारे लिये मनोरथ दाता सोम तैयार है—मधुर घृत भी तैयार है। अभीष्ट-वर्षक इन्द्र, अभीष्टदाता दोनों हरि नामके घोड़ोंको जोतकर यजमानोंके ऊपर कृपा करनेके वेगवान् रथसे हमारे सामने आओ ।

अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्रसोमः ।
स्तीर्णं बर्हिरातु शक्र प्रयाहि पिबा निषद्य विमुचा हरी इह ॥४॥
ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङुप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।
विद्या मवस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥५॥

१७८ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

यद्धस्यात इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बभूथ जरितृभ्य ऊती ।
मानः कामं महयन्तमा धग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ॥१॥
न घा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ ।
आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन्गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च ॥ ॥
जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।
प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥३॥
एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत् ।
समर्य इषः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥४॥

---

४ इन्द्र, देवोंके उद्देश्यसे यह यज्ञ जाता है। यह यज्ञीय पशु, ये मंत्र, यह प्रस्तुत सोम और यह बिछाया हुआ कुश तुम्हारे लिये तैयार हैं। तुम जल्दी आओ, बैठो, सोम पिओ और यज्ञ-स्थलमें हरि घोड़ोंको छोड़ो।

५ इन्द्र, हमारे द्वारा अच्छी तरह स्तुत होकर माननीय स्तोताके मंत्रको उपलक्ष्य करके हमारे सामने आओ। हम, स्तुति करते हुए, तुम्हारा आश्रय प्राप्त कर अनायास वास—स्थान प्राप्त करेंगे। साथ ही अन्न, बल और दीर्घ आयु भी लाभ करेंगे।

* * *

१ इन्द्र, जिस समृद्धिके द्वारा तुम स्तोताओंकी रक्षा करते हो, वह सर्वत्र प्रसिद्ध हो। तुम हमें महान् करनेकी अभिलाषाको नष्ट न करो। तुम्हारे लिये जो वस्तु प्राप्तव्य और भोग्य है, वह सब हम प्राप्त करें।

२ परस्पर भगिनी—स्वरूप अहोरात्र अपने जन्मस्थानमें जो वृष्टि-रूप कर्म करते हैं, राजा इन्द्र वह हमारा कर्म नष्ट न करें। बलका कारण हव्य इन्द्रके लिये व्याप्त होता है। इन्द्र हमें मैत्री और अन्न प्रदान करें।

३ विक्रमशाली इन्द्र, युद्ध-नेता मरुतोंके साथ युद्धमें जय-लाभ करते हुए अनुग्रहार्थी स्तोताका आह्वान सुनते हैं। जिस समय स्वयं स्तुति-वाक्यको वरण करनेको इच्छा करते हैं, उस समय हव्यदाता यजमानके पास रथ ले जाते हैं।

४ उत्तम धनके लाभकी इच्छासे यजमान द्वारा दिया हुआ अन्न, प्रचुर परिमाणमें, भक्षण करते तथा सहायता-वाले यजमानके शत्रुओंको पराजित करते हैं। विभिन्न आह्वानोंकी ध्वनियोंसे युक्त युद्धमें सत्यपालक इन्द्र यजमानके कर्मकी प्रसिद्धि करते हुए हव्यको स्वीकार करते हैं।

त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनभिष्याम महतो मन्यमानान् ।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥५॥

* * *

१७९ सूक्त। इस सूक्तमें अगस्त्य, उनकी स्त्री (लोपामुद्रा) और शिष्यमें सम्भोग-विषयक कथोपकथन है; इसलिये सम्भोग ही इसका देवता है। त्रिष्टुप् और बृहती छन्द।

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तोरुषसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥१॥
ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥२॥
न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव ।
जयावेदत्र शतनीथमाजिं यत्सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥३॥
नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥४॥
इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुप ब्रुवे ।
यत् सीमागश्चकृमा तत् सु मृळतु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥ ५ ॥

---

५ इन्द्र, तुम्हारी सहायता लेकर हम उन शत्रुओंका बध करेंगे, जो अपनेको अवध्य समझते हैं। तुम ह त्राता हो। तुम हमारे धनके वर्द्धक बनो, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त करें।

---

१ (लोपामुद्रा) अगस्त्य, अनेक वर्षोंसे मैं दिन-रात बुढ़ापा लानेवाली उषाओंमें, तुम्हारी सेवा करके, श्रा हुई हूँ। जरा शरीरके सौन्दर्यका नाश करती है। इस समय क्या ? पुरुष स्त्रीके पास गमन करे।

२ अगस्त्य, जो प्राचीन और सत्य-रक्षक ऋषि लोग देवताओंके साथ सच्ची बात कहते थे, उन्होंने भी का स्खलन किया है; परन्तु उन्हें भी अन्त नहीं मिला। पुरुष स्त्रीके साथ गमन करे।

३ (अगस्त्य) हम लोग वृथा नहीं श्रान्त हुए; क्योंकि देवता लोग रक्षा करते हैं। हम सारे भोगोंका उपभो कर सकते हैं। यदि हम दोनों चाहें, तो इस संसारमें हम सैकड़ो भोगोंके साधन प्राप्त कर सकते हैं।

४ यद्यपि मैं जप और संयममें नियुक्त हूँ; तथापि इसी कारण या किसी भी कारण, मुझे काम-भाव हो गया। सेचन करनेवाली लोपामुद्रा पतिके साथ संगत हो। अधीरा स्त्री धीर और महाप्राण पुरुषका उपभोग करे।

५ (शिष्य) हृदयमें पीत इस सोमसे मैं आन्तरिक प्रार्थना करता हूँ कि, सोम मुझे सुखी करे। मनुष्य कामनावाला होता है।

अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः।
उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥६॥

* * *

२४ अनुवाक । १८० सूक्त। अश्विद्वय देवता। त्रिष्टुप् छन्द ।

युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद्वां पर्यर्णांसि दीयत् ।
हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन्मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे ॥१॥
युवमत्यस्याव नक्षथो यद्विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः।
स्वसा यद्वां विश्वगूर्ति भराति वाजायेट्टे मधुपाविषे च॥२॥
युवं पय उस्रियायामधत्त पक्कमामायामव पूर्व्यङ्गोः।
अन्तर्यद्वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान्॥३॥
युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रयेपो न क्षोदावृणीतमेषे।
तद्वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥४॥

६ उग्र ऋषि अगस्त्यने अनेक उपायोंका उद्भावन करके, बहुत पुत्रों और बलकी इच्छा करके, काम और तप, दोनों वरणीय वस्तुओंका पालन किया था। अगस्त्यने देवोंके पास सत्य आशीर्वाद प्राप्त किया था।

१ अश्विनीकुमारो, जिस समय तुम्हारे शोभन गति घोड़े तुम्हें लेकर अभिमत प्रदेशमें जाते हैं, उस समय तुम्हारे हिरण्यमय रथकी नेमि अभिमत प्रदान करती है; इसलिये तुम उषाकालमें सोमपान करते हुए यज्ञमें आ मिलो।

२ सर्वस्तुत्य अश्विद्वय, जिस समय तुम्हारी भगिनी-स्थानीय उषा प्रस्तुत होती है, हे मधुपायी अश्विद्वय, जिस समय अन्न और बलके लिये यजमान तुम्हारी स्तुति करता है, उस समय तुम्हारा सतत-गन्ता, विचित्रगति-शील, मनुष्य-हितैषी और विशिष्ट रूपसे पूजनीय रथ निम्नाभिमुख जाता है।

३ अश्विद्वय, तुमने गायोंमें दुग्ध स्थापित किया है। तुमने गायोंके अधोदेशमें पूर्ववर्त्ती पक्व दुग्ध स्थापित किया है। सत्यरूप अश्विद्वय, वन-वृक्षावलीके बीच चोरकी तरह सदा जागरूक विशुद्ध-स्वभाव और हविवाला यजमान हविवाले यज्ञमें तुम्हारी स्तुति करता है।

४ अश्विद्वय, तुमने सहायताकी इच्छावाले अत्रि मुनिके लिये दीप्त दुग्ध और घृतको जल-प्रवाहकी तरह किया था; इसलिये हे नराकार अश्विद्वय, तुम्हारे लिये अग्निमें यज्ञ किया जाता है। निम्न देशमें रथ-चक्रकी तरह सोमरस तुम्हारे लिये आता है।

आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः ।
अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥५॥
नि यद्युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरन्धिम् ।
प्रेषद्वेषद्वातो न सूरिरामहे ददे सुव्रतो नवाजम् ॥६॥
वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान् ।
अधाचिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ॥ ७ ॥
युवां चिद्धिष्माश्विनावनु द्यून्विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ ।
अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत् सहस्रैः ॥८॥
प्र यद्वहेथे महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता ।
धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥९॥
तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् ।
अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥

* * *

५ अश्विनीकुमारो, बूढ़े तुग्र राजाके पुत्रकी तरह मैं स्तुति द्वारा अभिमत लाभके लिये तुम्हें यज्ञ-देश आऊँगा। तुम्हारी महिमासे द्यावापृथिवी परस्पर मिली है। यजनीय अश्विद्वय, यह जराजीर्ण ऋषि पापमुक्त दीर्घ जीवन लाभ करें।

६ शोभन दानवाले अश्विद्वय, जिस समय तुम नियुत नामके घोड़ोंको जोतते हो, उस समय अन्नसे पृथि भर देते हो; इसलिये वायुकी तरह स्तोता शीघ्र तुम दोनोंको तृप्त और व्याप्त करें। उत्तम कर्मवाले व्यक्तिकी तरह स्तो अपने महत्त्वके लिये, अन्न स्वीकार करते हैं।

७ हम भी तुम्हारे स्तोता और सत्यप्रतिज्ञ होकर विभिन्न स्तव करते हैं। द्रोण-कलश स्थापित हुआ है स्तुतिपात्र और अभीष्टवर्षी अश्विनीकुमारो, देवोंके पास सोमपान करो।

८ अश्विनीकुमारो, कर्मनिर्वाहक लोगोंमें श्रेष्ठ अगस्त्य ऋषि ग्रीष्मके दुःखनिवारक स्रोतकी प्राप्तिके शब्द उत्पन्न करनेवाले शङ्ख आदिकी तरह, हजार स्तुतियों द्वारा तुम्हें प्रतिदिन जगाते हैं।

९ अश्विनीकुमारो, तुम रथकी महिमासे यज्ञ धारण करो। गति-शील अश्विनीकुमारो, यजमानके होताकी तुम गमनागमन करो। स्तोताओंको बल दो, उत्तम घोड़े दो। फलतः हे नासत्यद्वय, हम धन प्राप्त करेंगे।

१० अश्विद्वय, तुम्हारे स्तुतिपात्र, नये आकाशविहारी अभग्न चक्रवाले रथकी प्राप्तिके लिये स्तोत्र द्वारा बुलाते हैं, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें।

१८१ सूक्त। अश्विद्वय देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

कदु प्रेष्ठा विषां रयीणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम्।
अयं वां यज्ञो अकृतप्रशस्ति वसुधितो अवितारा जनानाम् ॥१॥
आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा वातरंहसो दिव्यासो अत्याः।
मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना वहन्तु ॥२॥
आ वां रथो वनिर्न प्रवत्वान्त्सृप्रबन्धुरः सुविताय गम्याः।
वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहं पूर्वो यजतो धिष्ण्यायः ॥३॥
इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा नामभिः स्वैः।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥४॥
प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानिगम्याः।
हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्ना रजांस्यश्विना विघोषैः ॥५॥
प्र वां शरद्वान्वृषभो न निः षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन्।
एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः ॥६॥

---

१ प्रियतम अश्विद्वय, तुम कब अन्न और धनको ऊपरके देशमें ले जाओगे कि, यज्ञ समाप्त करनेकी इच्छा करते हुए जलको नीचे गिराया जा सकेगा ? हे धनधारोके और मनुष्योंके आश्रयदाता अश्विद्वय, इस यज्ञमें तुम्हारी ही प्रशंसा की जाती है।

२ अश्विद्वय, तुम्हारे दीप्तिशाली, वृष्टिपान करनेवाले, वायुकी तरह वेगवाले, स्वर्गीय गतिशील, मनकी तरह वेगवान् युवा और शोभन पृष्ठवाले अश्व तुम्हें इस यज्ञमें ले आवें।

३ हे ऊँचे स्थानके योग्य और रथासीन अश्विद्वय, भूमिकी तरह अत्यन्त विस्तृत, उत्तम बन्धुरवाले, वर्षणसमर्थ, मनकी तरह वेगवाले, अहंकारी और यजनीय रथ यज्ञमें ले आवे।

४ अश्विद्वय, तुमने सूर्य और चन्द्रके रूपसे जन्म ग्रहण किया था और पाप-शून्य हो। तुम्हारे शरीर-सौन्दर्य और नाम-महिमाके कारण मैं बार-बार तुम्हारी स्तुति करता हूँ। तुममें एक यज्ञ-प्रवर्त्तक होकर संसारको धारण करते हैं और दूसरे द्युलोकके पुत्र-रूप होकर विविध रश्मियोंको धारण करते हुए संसारको धारण किये हुए हैं।

५ अश्विद्वय, तुममेंसे एकका श्रेष्ठ और पीतवर्ण रथ, इच्छानुसार, हमारे यज्ञ-गृहमें जाय और एक जनके हरि नामके अश्वोंको मनुष्य लोग मथन-निष्पादित खाद्य और स्तुतिसे प्रसन्न करें।

६ अश्विद्वय, तुम्हारे बीच एक जन मेघोंको विशीर्ण करते हैं। वह इन्द्रकी तरह शत्रुओंको निकालते हुए हव्यकी अभिलाषासे, बहुत अन्न-दानके लिये, जाते हैं। दूसरेके गमनके लिये यजमान लोग हव्य द्वारा उन्हें प्रसन्न करते हैं। उनके द्वारा भेजी हुई व्यापक और तटलंघिनी नदियां हमारे पास आती हैं।

असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीर्बाह्ळे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।
उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥७॥
उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन् ।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥८॥
युवां पूषेवाश्विना पुरन्धिरग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।
हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥९॥

◆

१८२ सूक्त । अश्विद्वय देवता त्रिष्टुप् छन्द ।

अभूदिदं वयुनमोषु भूषता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिणः ।
धियञ्जिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥१॥
इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥२॥

---

७ विधाता अश्विद्वय, तुम्हारी स्थिरताकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त स्थिर स्तुतियाँ बनायी जाती हैं। वह ती तरहसे तुम्हारे पास जाती हैं। तुम प्रशंसित होकर याचमान यजमानकी रक्षा करो। जाकर या खड़े होकर हमा आह्वान सुनो।

८ अश्विद्वय, तुम्हारी प्रदीप्त स्तुति कुशत्रय-युक्त यज्ञ-साधन द्वारा यजमानोंको प्रसन्न करे। अभीष्ट-वर्षिद्व तुम्हारी मेघ जल-वर्षण करते हुए, जल-सेचनकी तरह, मनुष्योंको धन देकर प्रसन्न करे।

९ अश्विद्वय, पूषाकी तरह बहु प्रज्ञाशाली और हविष्मान् यजमान, अग्नि और उषाकी तरह, तुम्हारी स्तु करता है। जिस समय पूजा-परायण स्तोता स्तुति करता है, उस समय यजमान भी स्तुति करता है, जिससे हम अन बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें।

---

१ मनीषी ऋत्विको, हमारी ऐसी धारणा हो रही है कि, अश्विनीकुमारोंका अभीष्टवर्षी रथ उपस्थित उसके आगे जाकर उनकी प्रतीक्षा करो। वे पुण्यात्माओंके कर्मको करते हैं। वे स्तुतियोग्य हैं। उन्होंने विश्पला भला किया था। वे स्वर्गके नप्ता हैं। उनका कर्म शुचि है।

२ अश्विद्वय, तुम अवश्य ही इन्द्रश्रेष्ठ, स्तुति–योग्य, मरुत्श्रेष्ठ, शत्रुनाशक, उत्कृष्टकर्मकारी, रथवान् और रथि में उत्तम हो। तुम मधुपूर्ण हो। तुम चारो ओर सन्नद्ध रथको ले जाते हो। उसी रथपर कृपा करके हव्यदाता पास आओ।

किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥३॥
जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना ।
वाचं वाचं जरितूरत्निनीं कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥४॥
युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।
येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनीपेतथुः क्षोदसो महः ॥५॥
अवविद्धं तौग्र्यमप्स्वंतरणारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।
चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ।
कः स्विद्वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसोयं तौग्र्यो ना धितः पर्यषस्वजत् ।
पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥७॥
तद्वां नरा नासत्यावनुष्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन् ।
अस्मादद्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥

* * *

३ अश्विद्वय, यहाँ क्या करते हो ? यहाँ क्यों हो ? हव्य-शून्य जो कोई व्यक्ति पूजनीय हुआ हो, उसे परास्त करो। पणि या अयाज्ञिकका प्राण नाश करो। मैं मेधावीकी और तुम्हारी स्तुतिका अभिलाषी हूँ। मुझे ज्योति दो।

४ अश्विद्वय, जो कुत्तेकी तरह जघन्य शब्द करते हुए हमारे विनाशके लिये आते हैं, उन्हें नष्ट करो। वे लड़ाई करना चाहते हैं, उन्हें मार डालो। उन्हें मारनेका उपाय तुम जानते हो। जो तुम्हारी स्तुति करता है, उसकी प्रत्येक कथाको रत्नवती करो। नासत्यद्वय, तुम दोनों मेरी स्तुतिकी रक्षा करो।

५ अश्विद्वय, तुग्र राजाके पुत्रके लिये तुमने समुद्र-जलमें प्रसिद्ध, दृढ़ और पक्ष-विशिष्ट नौका बनायी थी। देवोंमें तुमने ही अनुग्रह करके नौका द्वारा उसको निकाला था। अनायास आकर तुमने महासमुद्रसे उसका उद्धार किया था।

६ जलके बीच, निम्नमुख गिराया हुआ तुग्रपुत्र अवलम्बनरहित अन्धकारके बीच अतीव पीड़ित हुए थे। अश्विद्वयकी प्रेरित जलके बीच प्रविष्ट चार नौकाएँ उसे मिली थीं।

७ तुग्रपुत्रने याचमान होकर जलके मध्य जिस निश्चल वृक्षका आलिङ्गन किया था, वह वृक्ष क्या है ? अश्विद्वय, तुमने उसे सुरक्षित उठाकर विपुल कीर्त्ति प्राप्त की है।

८ नराकर अश्विद्वय, तुम्हारे पूजकोंने जो स्तव किया है, उसे तुम ग्रहण करो। अश्विद्वय, आज यज्ञके सोम-याग-सम्पादक स्तोत्रमें व्रती बनो, जिससे हम अन्न, बल और धन प्राप्त करें।

१८३ सूक्त । अश्विद्वय देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान्त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥१॥
सुवृद्रथो वर्तते यन्नभिक्षां यत्तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।
वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥२॥
आतिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनुव्रतानि वर्तते हविष्मान् ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥३॥
मा वां वृको मा वृकीरादधर्षीन्मा परिवर्क्तमुत मातिधक्तम् ।
अयं वां भागा निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥४॥
युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेवसे हविष्मान् ।
दिशं न दिष्टा मृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योपयातम् ॥५॥
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥

---

१ अभीष्टवर्षी अश्विद्वय, जो रथ मनकी अपेक्षा भी वेगशाली है, जिसमें तीन सारथि-स्थान और चक्र हैं, जो अभीष्टवर्षी और धातुत्रय-विशिष्ट है, जिस रथपर चढ़कर जैसे पक्षी पक्षोंके बल जाता है, वैसे तुम सुकृतकारीके घर जाते हो, उसी रथको तैयार करो ।

२ अश्विनीकुमारो, तुम संकल्पवान् होकर हव्यके लिये जिस रथपर चढ़ते हो, वही तुम्हारा भली आवर्त्तनकारी रथ, देवयजनभूमिके सामने, जाता है। तुम्हारे शरीरकी हितकारी स्तुति तुम्हारे साथ मिले। द्युलोककी पुत्री उषाके साथ मिलो ।

३ अश्विद्वय, जो रथ हविवाले यजमानके कर्मका लक्ष्य करके जाता है, हे नराकार नासत्यद्वय, तुम जिस यज्ञ-शाला जानेकी इच्छा करते हो, उसी अच्छी तरह आवर्त्तनकारी रथपर चढ़कर यजमानके पुत्र और हितकी प्राप्तिके लिये यज्ञ-गृहमें जाओ।

४ अश्विद्वय, तुम्हारी कृपासे वृक और वृकी मुझे न रगड़ें। मुझे छोड़कर दूसरेको दान नहीं करना। अश्वि कुमारो, यही तुम्हारा हव्य-भाग है, यही तुम्हारी स्तुति है, यही तुम्हारे लिये सोमरसका पात्र है ।

५ अश्विद्वय, जैसे मार्ग जाननेके लिये, पथिक पथ-प्रदर्शकको बुलाता है, वैसे ही गौतम, पुरुमीढ़ और हव्य ग्रहण करके तृप्त करनेके लिये तुम्हें बुलाते हैं। अश्विद्वय, मेरे आह्वानके पास आओ ।

६ अश्विद्वय, तुम्हारे अनुग्रहसे हम अन्धकारके पार चले जायंगे। तुम्हारे उद्देश्यसे यह स्तुति बनायी है। देवोंके गन्तव्य पथ यहाँमें आओ। वैसा होनेपर हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकेंगे ।

चतुर्थ अध्याय समाप्त

पञ्चम अध्याय

१८४ सूक्त। अश्विद्वय देवता। अनुष्टुप् छन्द।

ता वामद्य तावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः।
नासत्या कुह चित्सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ॥१॥
अस्मे ऊषु वृषणा मादयेथामुत्पणींर्हतमूर्म्या मदन्ता।
श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनामेष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः ॥२॥
श्रिये पूषन्निषूकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः।
वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः।
अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः।
अनु यद्वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥४॥
एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति।
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥५॥

---

१ अन्धकारका विनाश करनेके लिये उषाके आनेपर हम आजके यज्ञमें और दूसरे दिनके यज्ञमें तुम्हें बुलाते हैं। अश्विनीकुमारो, तुम असत्यशून्य और द्युलोकके नेता हो। तुम जहाँ-कहीं रहो, स्तोता आर्य ऋग्वेदीय मंत्र द्वारा, विशिष्ट दानशील यजमानके लिये; तुम्हारी स्तुति करता है।

२ अभीष्टवर्षी अश्विनीकुमारो, सोमरससे बलवान् होकर तुम हमारी तृप्ति करो और पणियोंका समूल-नाश करो। हे नेतृद्वय, तुम्हें सामने लानेके लिये हम जो तृप्ति-प्रद स्तुति करते हैं, उसे सुनो; क्योंकि तुमलोग स्तुतिके अन्वेषक और सञ्चय करनेवाले हो।

३ नासत्यद्वय, हे सूर्य-चन्द्र-रूपी अश्विनीकुमारो, कल्याणप्राप्तिके लिये, तीरकी तरह, शीघ्रगामी होकर सूर्य्य-तनयाको ले जाओ। पूर्व युगकी तरह यज्ञ-कालमें सम्पादित स्तुति महान् वरुणकी तुष्टिके लिये तुम्हें स्तुत करती है।

४ मधुपात्रवाले अश्विनीकुमारो, तुम कवि मान्यकी स्तुति अंगीकार करो। तुम्हारा दान हमारे उद्देश्यसे प्रवृत्त हो। शुभ-फल-प्रदाता अश्विनीकुमारो, अन्नकी इच्छासे और वीर्यशाली यजमानके हितके लिये मनुष्य या पुरोहित तुम्हारे साथ हर्षयुक्त हों।

५ अन्नवान् अश्विनीकुमारो, तुम्हारे लिये हव्यके साथ यह पाप-विनाशी स्तोत्र रचित हुआ है। अश्विनीकुमारो, अगस्त्यके प्रति सन्तुष्ट होकर यजमानके पुत्रादि और अपने सुख-भोगके लिये यज्ञ-भूमिमें आगमन करो।

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥

* * *

१८५ सूक्त । द्यावापृथिवी देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को विवेद ।
विश्वं त्मना विभृतो यद्ध नाम विवर्तेते अहनी चक्रियेव ॥१॥
भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते ।
नित्यं न सूनुं पित्रोः रुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥२॥
अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।
तद्रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा० ॥३॥
अतप्यमाने अवसावन्ती अनुष्याम रोदसी देवपुत्रे ।
उभे देवानामुभयेभिरह्नान्द्यावा० ॥४॥
संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामीपित्रोरुपस्थे ।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा० ॥५॥

---

६ अश्विनीकुमारो, तुम्हारी कृपासे हम अन्धकारको पार कर जायँगे । तुम्हारे उद्देशसे यह स्तव रचित हुआ। देवोंके गन्तव्य पथसे यज्ञमें आओ, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त करें।

---

१ कविगण, द्यु और पृथिवीमें पहले कौन उत्पन्न हुआ है, पीछे कौन उत्पन्न हुआ है, किसलिये उत्पन्न हुए। यह बात कौन जानता है ? वे दूसरेके ऊपर निर्भर होकर सारे संसारको धारण करते हैं और दिन तथा रात्रिकी त चक्रवत् परिवर्त्तित होते रहते हैं।

२ पाद-रहित और अविचल द्यावापृथिवी पादयुक्त तथा सचल गर्भस्थित प्राणियोंको, पिता-माताकी गो पुत्रकी तरह, धारण करते हैं। हे द्यावापृथिवी, हमें महापापसे बचाओ।

३ हम अदितिसे पापरहित, अक्षीण, हिंसा-रहित, अन्नयुक्त और स्वर्गतुल्य धनके लिये प्रार्थना करते द्यावापृथिवी, स्तोता यजमानके लिये, वही धन उत्पन्न करते हो। हे द्यावापृथिवी, हमें महापापसे बचाओ।

४ हम प्रकाशमान दिन और रात्रिके उभयविध धनके लिये दुःख-रहित और अन्न द्वारा तृप्तिकारी द्या पृथिवीका अनुगमन कर सकें। हे द्यावापृथिवी, हमें महापापसे बचाओ।

५ परस्पर संसक्त, सदा तरुण, समान सीमासे संयुक्त, भगिनीभूत और बन्धु-सदृश द्यावापृथिवी, पिता-माता क्रोडस्थित और प्राणियोंके नाभि-स्वरूप, जलका घ्राण करते हुए, हमें महापापसे बचावें।

उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री ।
दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥६॥
उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।
दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥७॥
देवान्वा यच्चकृमा कच्चिदागः सखायं वा सदमिज्जास्पतिं वा ।
इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥८॥
उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम् ।
भूरि चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः ॥९॥
ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधा ।
पातामवद्याद्दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः ॥१०॥
इदं द्यावा पृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम् ।
भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११॥

* * *

६ देवोंकी प्रसन्नताके लिये मैं विस्तीर्ण-निवासभूत, महानुभाव और शस्यादि-समुत्पादक द्यावापृथिवीको यज्ञके लिये बुलाता हूँ। इनका रूप आश्चर्य-जनक है और ये जल धारण करते हैं। द्यावापृथिवी, हमें महा पापसे बचाओ।

७ महान्, पृथु, अनेक आकारोंसे विशिष्ट और अनन्त द्यावापृथिवीकी, यज्ञस्थलमें, मैं, नमस्कार-मंत्र द्वारा, स्तुति करता हूँ। हे सौभाग्यवती और उद्धार-कुशला द्यावापृथिवी, तुम संसारको धारण करो और हमें महा पापसे बचाओ।

८ हम देवोंके पास जो सदा अपराध करते हैं, बन्धु और जामाताके प्रति जो सब अपराध करते हैं, हमारा यह यज्ञ उन सब पापोंको दूर करे।

९ स्तुति-योग्य और मनुष्योंके हितकर द्यावापृथिवी मुझे, आश्रय प्रदान करें। आश्रयदाता द्यावापृथिवी आश्रय देनेके लिये मेरे साथ मिलें। देवो, हम तुम्हारे स्तोता हैं; अन्न द्वारा तुम्हें तृप्त करते हुए प्रचुर दानके लिये प्रचुर अन्न चाहते हैं।

१० मैं बुद्धिमान् हूँ। द्यावापृथिवीके उद्देशसे चारो दिशाओंमें प्रकाशके लिये मैंने अत्युत्तम स्तोत्र किया है। पिता-माता निन्दनीय पापसे हमें बचावें तथा हमें सदा पासमें रखकर तृप्तिकर वस्तु द्वारा पालित करें।

११ हे पिता और हे माता, तुम्हारे लिये इस यज्ञमें मैंने जो स्तोत्र पढ़े हैं, उन्हें सार्थक करो। द्यावापृथिवी, आश्रय-दान द्वारा तुम स्तोताओंके समीपवर्ती बनो, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त करें।

१८६ सूक्त । विश्वेदेवगण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ न इड़ाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथानो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥१॥
आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।
भुवन् यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विथुरं न शवः ॥२॥
प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषेग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सजोषाः ।
असद्यथा नो वरुणः सुकीर्त्तिरिषश्च पर्षदरिगूर्तः सूरिः ॥३॥
उप न एषे नमसा जिगीषोषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
समाने अहन्विमिमानो अर्कं विषुरूपे पयसि सस्मिन्नूधन् ॥४॥
उत नोहिर्बुध्न्योमयस्कः शिशुं न पिप्युषीव वेति सिन्धुः ।
येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति ॥५॥
उत न ईं त्वष्टागन्त्वच्छा स्मत् सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः ।
आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रास्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ॥६॥
उत न ईं मतयोश्वयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति ।
तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरां नसन्त ॥७॥

---

१ अग्नि और सविता हमारी स्तुतियोंके कारण भूस्थानीय देवोंके साथ यज्ञ-स्थलमें आवें। युवकगण, यज्ञमें इच्छापूर्वक आकर सारे जगत्‌की तरह हमें भी प्रसन्न करो।

२ शत्रुओंके आक्रमण-कर्त्ता मित्र, वरुण और अर्यमा ये सब समान प्रीति-युक्त होकर आगमन करें। हमारे वर्द्धयिता हों और शत्रुओंको परास्त करके, जिस प्रकार हमारा अन्न हीन न हो, ऐसा करें।

३ देवगण, मैं क्षिप्रकारी और तुम्हारी तरह प्रीति-युक्त होकर तुम्हारे श्रेष्ठ अतिथि (अग्नि) की मन्त्रों द्वारा स्तुति करता हूं। उत्तम कीर्तिवाले सूरि वरुण हमारे ही हों। वरुण शत्रुओंके प्रति हुँकार करते हुए द्वारा हमें परिपूर्ण करें।

४ देवो, दिन-रात नमस्कार करते हुए, पाप-विजयके लिये, दुग्धवती धेनुकी तरह तुम्हारे पास उपस्थित होते हम, यथासमय, अधः स्थानसे एक मात्र उत्पन्न नाना रूप खाद्य द्रव्य मिश्रित करके लाये हैं।

५ अहिर्बुध्ननामक अन्तरीक्षचारी देव हमें सुख दें। सिन्धु, वत्सकी तरह, हमें प्रसन्न करें। हम जलके अग्निदेव स्तुति करते हुए प्राप्त हुए हैं। मनकी तरह वेगशाली मेघ उन्हें ले जाते हैं।

६ त्वष्टा हमारे सामने आवें। यज्ञके कारण त्वष्टा स्तोताओंके साथ समान-प्रीति-सम्पन्न हों। अतीव वृत्रघातक और मनुष्योंके अभीष्ट-पूरक इन्द्र हमारे यज्ञस्थलमें आवें।

७ जैसे गायें बछड़ोंको चाटती हैं, वैसे ही अश्वतुल्य हमारा मन तरुण इन्द्रकी स्तुति करता है। जैसे पतिको प्राप्त कर सन्तानवाली होती हैं, वैसे ही हमारी स्तुति, अतिशय यशोयुक्त इन्द्रको प्राप्तकर फल उत्पन्न करती

उत न ईं मरुतो वृद्धसेनाः स्मद्रोदसी समनसः सदन्तु।
पृषदश्वासोवनयो न रथा रिशादसो मित्रयुजो न देवाः ॥८॥
प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे प्रयुञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति।
अध यदेषां सुदिने न शरुर्विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः ॥९॥
प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वं प्रपूषणं स्वतवसो हि सन्ति।
अद्वेषो विष्णुर्वात ऋभुक्षा अच्छा सुम्नाय ववृतीय देवान् ॥१०॥
इयं सा वो अस्मे दीधितिर्यजत्रा अपि प्राणी च सदनी च भूयाः।
नि या देवेषु यतते वसूयुर्विद्यामेषं जीरदानुम् ॥११॥

* * *

१८७ सूक्त। पितु देवता। गायत्री और अनुष्टुप् छन्द।

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम्। यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत ॥१॥
स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे। अस्माकमविता भव ॥२॥
उप नः पितवाचर शिवः शिवाभिरूतिभिः। मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः ॥३॥

८ अतीव बलशाली, समान-प्रीति-युक्त, पृषत् नामके अश्वसे सम्पन्न, अवनतस्वभाव और शत्रु-भक्षक मरुद्गण, मैत्रीवाले ऋषियोंकी तरह, द्यावापृथिवीके पाससे एकत्र हमारे इस यज्ञमें आवें।

९ मरुतोंकी महिमा प्रसिद्ध है; क्योंकि वे स्तुतिका प्रयोग जानते हैं। अनन्तर, जैसे प्रकाश संसारको व्याप्त करता है, वैसे ही सुदिनमें अन्धकार-विनाशक मरुतोंकी वृष्टि-प्रद सेना सारे अनुर्वर देशोंको उत्पादिका शक्तिसे सम्पन्न करती है।

१० ऋत्विको, हमारी रक्षाके लिये अश्विनीकुमारों और पूषाकी स्तुति करो। द्वेष-शून्य विष्णु, वायु और इन्द्र (ऋभुक्षा) नामके स्वतंत्र बल-विशिष्ट देवोंकी स्तुति करो। सुखके लिये मैं सारे देवोंको सामने लाऊँगा।

११ यजनीय देवो, तुम्हारी प्रसिद्ध ज्योति हमारे लिये प्राणदाता और निवास-स्थान बने। तुम्हारी अन्नवती ज्योति देवोंको प्रकाशित करे, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें।

१ मैं, क्षिप्रकारी होकर, विशाल, सबके धारक और बलात्मक पितु (अन्न)की स्तुति करता हूँ। इनकी ही शक्तिसे त्रितदेव या इन्द्रने वृत्रकी सन्धियाँ काटकर उसका वध किया था।

२ हे स्वादु पितु, हे मधुर पितु, हम तुम्हारी सेवा करते हैं। तुम हमारी रक्षा करो।

३ हे पितु, तुम मंगलमय हो। कल्याणवाही आश्रयदान द्वारा हमरे पास आकर, हमें सुख दो। हमारे लिये तुम्हारा रस अप्रिय न हो। तुम हमारे लिये मित्र और अद्वितीय सुखकर बनो।

तव त्ये पितो रसा रजांस्यनुविष्ठिताः। दिवि वाता इव श्रिताः ॥४॥
तव त्ये पितो ददतस्तव स्वादिष्ठते पितो। प्र स्वाद्मानो रसानां तुविग्रीवा इवेरते ॥५॥
त्वे पितो महानां देवानां मनोहितम्। अकारि चारु केतुना तवाहिमवसावधीत् ॥६॥
यद्दो पितो अजगन्विवस्व पर्वतानाम्। अत्राचिन्नो मधो पितोरम्भक्षाय गम्याः ॥७॥
यदपामोषधीनां परिंशमारिशामहे। वातापे पीव इद्भव ॥८॥
यत्ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे। वाता पे पीव इद्भव ॥९॥
करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्कः उदारथिः। वातापे पीव इद्भव ॥१०॥
तं त्वा वयम् पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुषूदिम।
देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥११॥

* * *

१८८ सूक्त। आप्री देवता। गायत्री छन्द।

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित्। दूतो हव्या कविर्वह ॥१॥

---

४ पितु, जैसे वायु अन्तरीक्षका आश्रय किये हुए हैं, वैसे ही तुम्हारा रस सारे संसारके अनुकूल व्याप्त है।

५ स्वादुतम पितु, जो लोग तुम्हारी प्रार्थना करते हैं, वे भोक्ता हैं। पितु, तुम्हारी कृपासे वे तुम्हें दान दे तुम्हारे रसका आस्वादन करनेवालोंकी गर्दन ऊँची या मजबूत होती है।

६ पितु, महान् देवोंने तुममें ही मन निहित किया है। पितु, तुम्हारी चारु बुद्धि और आश्रय द्वारा ही वध किया गया था।

७ पितु, जिस समय मेघ प्रसिद्ध जलको लाते हैं, उस समय हे मधुर पितु, हमारे सम्पूर्ण भोजनके लिये आना।

८ चूँकि हम यथेष्ट जल और यव आदि ओषधियोंको खाते हैं; इसलिये हे शरीर, तुम स्थूल बनो।

९ सोम, तुम्हारे यव आदि और दुग्ध आदिसे मिश्रित अंशका हम भक्षण करते हैं। इसलिये हे शरीर, तुम बनो।

१० हे करम्भ ओषधि या सत्तु पिण्ड, तुम स्थूलता-सम्पादक, रोग-निवारक और इन्द्रियोद्दीपक बनो। हे तुम स्थूल बनो।

११ पितु, गायोंके पास जैसे हव्य गृहीत होता है, वैसे ही तुम्हारे पास स्तुति द्वारा हम रस ग्रहण यह रस देवोंको ही नहीं, हमें भी हृष्ट करता है।

* * *

१ अग्नि, ऋत्विकों द्वारा भली भाँति आज समिद्ध नामक अग्नि सुशोभित होते हैं। हे सहस्रजित् देव, कवि और दूत हो। तुम भली भाँति हव्य वहन करो।

तनूनपादृतम् यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत् सहस्रिणीरिषः ॥२॥
आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आवक्षि यज्ञियान् । अग्ने सहस्रसा असि ॥३॥
प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् । यत्रादित्या विराजथ ॥ ४ ॥
विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः । दुरो घृतान्यक्षरन् ॥५॥
सुरुक्मे हि सुपेशसाधिश्रिया विराजतः । उषासावेह सीदताम् ॥५॥
प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥७॥
भारतीड़े सरस्वति यावः सर्वा उपब्रुवे । ता नश्चोदयतः श्रिये ॥८॥
त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून्विश्वान्त्समानजे । तेषां नः स्फातिमा यज ॥९॥
उपत्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ॥१०॥
पुरोगा अग्निर्देवानाम् गायत्रेण समज्यते । स्वाहाकृतीषु रोचते । ११॥

* * *

१८९ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥१॥

२ पूजनीय तनूनपात् नामक अग्नि हजार प्रकारोंसे अन्न धारण करके, यजमानके लिये, मधुर रससे युक्त द्रव्यमें मिलते हैं ।

३ हे ईड्य नामक अग्नि, तुम हमारे द्वारा आहूत होकर हमारे लिये यज्ञभागी देवोंको बुलाओ । अग्नि, तुम असीम अन्नके दाता हो ।

४ सहस्र वीरोंवाले और पूर्वाभिमुखमें अग्र भागसे युक्त जिस अग्निरूप कुशपर आदित्य लोग बैठे हैं, उसे ऋत्विक् लोग, मंत्रके प्रभावसे, आच्छादित करते हैं ।

५ यज्ञशालाका विराट्, सम्राट्, विभु, प्रभु, बहु, और भूयान् (अग्निरूप) द्वार जल गिराता है ।

६ दीप्त आभरणसे युक्त और सुन्दर-रूप-संयुक्त अग्नि रूप दिवा-रात्रि, अतीव शोभाशाली होकर विराजित होते हैं । वे यहाँ बैठें ।

७ वह अत्युत्तम और प्रियभाषी अग्निरूप देव होता तथा दिव्य कवि-द्वय हमारे यज्ञमें उपस्थित हों ।

८ हे अग्निरूपिणी भारती, सरस्वती और इला, मैं तुम सबको बुलाता हूँ । जैसे मैं सम्पत्तिशाली हो सकूँ, वैसा करो ।

९ अग्निरूप त्वष्टा रूप देनेमें समर्थ हैं । वह सारे पशुओंका रूप व्यक्त करते हैं । त्वष्टा, हमें बहुत पशु दो ।

१० हे अग्निरूप वनस्पति, तुम देवोंका पशु रूप अन्न उत्पन्न करो । अग्नि सब हव्योंको स्वादिष्ट करें ।

११ देवोंके अग्रगामी अग्नि गायत्री छन्दसे लक्षित हुआ करते हैं । स्वाहा देनेके समय वह प्रदीप्त होते हैं ।

---

१ दीप्तिविशिष्ट अग्नि, तुम सब प्रकारके ज्ञान जानते हो; इसलिये हमें सुमार्गपर, धनकी ओर, ले जाओ । तुम कुटिल पापको हमारे पाससे ले जाओ । हम बार-बार तुम्हें प्रणाम करते हैं ।

अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वीभवा तोकाय तनयाय शंयोः ॥२॥

अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।
पुनरस्मभ्यं सुविताय देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ॥३॥

पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुक्वान्
मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ॥४॥

मा नो अग्नेव सृजो अघायाविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।
मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन् परा दाः ॥ ५ ॥

वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसद्गृणानो अग्ने तन्वे वरूथम् ।
विश्वाद्रिरिक्षोरुत वा निनित्सोरभिह्रुतामसि हि देव विष्पट् ॥ ६ ॥

त्वं ताँ अग्न उभयान्विविद्वान्वेषि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।
अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर्मर्मृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रः ॥७॥

---

२ अग्नि, तुम नये हो । स्तुतिके कारण हमें तुम सारे दुर्गम पापोंसे मुक्त करो । हमारा नगर अतीव प्रशस्त हो । हमारी भूमि प्रशस्त हो । तुम हमारे पुत्रों और अपत्योंको सुख प्रदान करो ।

३ अग्नि, तुम हमारे पाससे सब रोग दूर करो । जो अग्निहोत्र नहीं करते या जो हमारे विद्रोही हैं, उन्हें भी हटाओ । देव, तुम हमें शोभन फल देनेके लिये सारे मरण-रहित देवोंके साथ यज्ञशालामें आओ ।

४ अग्नि, तुम सतत आश्रय-दान द्वारा हमें पालित करो । हमारे प्रिय यज्ञ-गृहमें चारो ओर दीप्ति-युक बनो । युवक अग्नि, मैं तुम्हारा स्तोता हूँ । मुझे आज और न पीछे कभी भय उत्पन्न हो ।

५ अग्नि, हमें अन्नग्रासी, हिंसक और शुभनाशक शत्रुके हाथमें नहीं समर्पण करना । हमें दन्त-विशिष्ट और दंशक सर्प आदिके हाथमें नहीं सौँपना; दन्त-शून्य श्रृंगादिवाले पशुओंको नहीं सौँपना । बलिष्ठ अग्नि, हिंसक और, राक्षस आदिके हाथ भी हमें नहीं सौँपना ।

६ यज्ञोत्पन्न अग्निदेव, तुम वरणीय हो । शरीर पुष्टिके लिये स्तुति करते हुए लोग तुम्हें प्राप्त करके सारे हिंसक और निन्दक व्यक्तियोंके हाथोंसे अपनेको बचाते हैं । अग्नि, जो सामने कुटिल आचरण करते हैं, ऐसे दुष्टका तुम दमन करो ।

७ यजनीय अग्नि, तुम यज्ञ करनेवाले और न करनेवाले लोगोंको जानकर यज्ञकर्त्ताकी ही कामना करो। आक्रमणकारी अग्नि, पवित्रताभिलाषी यजमान जैसे ऋत्विकोंके लिये शिक्षणीय है, उसी प्रकार तुम भी, यथासमय, यजमानके शिक्षणीय हो ।

अवोचाम निवचनान्यस्मिन्मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ।
वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेषं वृजनम् जीरदानुम् ॥ ८ ॥

१६० सूक्त। बृहस्पति देवता। त्रिष्टुप्छन्द।

अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वम् बृहस्पतिं वर्धयानव्यमर्कैः।
गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः ॥ १ ॥
तमृत्विया उपवाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि।
बृहस्पतिः सह्यञ्जो वरांसि विभ्वाभवत्समृते मातरिश्वा ॥ २ ॥
उपस्तुति नमस उद्यतिं च श्लोकं यंसत् सवितेव प्रावहू।
अस्य क्रत्वाहन्यो यो अस्ति मृगो न भीमो अरक्षसस्तुविष्मान् ॥ ३ ॥
अस्य श्लोको दिवीयते पृथिव्यामत्यो न यंसद्यक्षभृद्विचेताः।
मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा बृहस्पतेरहिमायां अभिद्यून् ॥ ४ ॥
ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः।
न दूढ्ये अनुददासि वामं बृहस्पते चयस इत्पियारुम् ॥ ५ ॥

---

८ मंत्र-पुत्र और शत्रुनाशक इन अग्निके लिये ये सारे स्तोत्र बनाये गये हैं। हम इन अतीन्द्रिय-प्रकाशक मंत्रों द्वारा सहस्र धन प्राप्त करेंगे। हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें।

---

१ होता, अभीष्टवर्षी मिष्टजिह्व और स्तुतियोग्य बृहस्पतिको पूजा-साधक मंत्रों द्वारा वर्द्धित करो। वह स्तोताको नहीं छोड़ते। दीप्तियुक्त और स्तूयमान बृहस्पतिको गाथा-पाठक देवगण और मनुष्यगण स्तुति सुनाते हैं।

२ वर्षा ऋतु-सम्बन्धिनी स्तुतियाँ सृजन-कर्तृ-रूप बृहस्पतिके पास जाती हैं। वह देवाभिलाषियोंको फल देते हैं। वह सारे विश्वको व्यक्त करते हैं। वह स्वर्गव्यापी मातरिश्वाकी तरह वरणीय फल उत्पन्न करके यज्ञके लिये सम्भूत हुए हैं।

३ जैसे सूर्य किरणें प्रकाशित करनेकी चेष्टा करते हैं, वैसे ही बृहस्पति, यजमानोंकी स्तुति, अन्न, दान और मंत्रोंके स्वीकारके लिये चेष्टा करते हैं। राक्षसों और शत्रुओंसे शून्य बृहस्पतिकी शक्तिसे दिवसकालीन सूर्य भयंकर जन्तुकी तरह बलशाली होकर घूमते हैं।

४ भूलोक और द्युलोकमें बृहस्पतिकी कीर्ति व्याप्त होती है। बृहस्पति सूर्यकी तरह पूजित हव्य धारण करते हैं। वह प्राणियोंमें चैतन्य प्रदान करते और फल देते हैं। बृहस्पतिका आयुध शिकारी पुरुषोंके आयुधकी तरह जाता है। उनका आयुध मायावियोंके सामने प्रतिदिन दौड़ता है।

५ बृहस्पति, जो पापी लोग कल्याणवाही बृहस्पतिको बूढ़ा बैल जानते हैं, उन्हें तुम वरणीय धन नहीं देना। बृहस्पतिदेव, जो सोमयज्ञ करता है, उसपर तुम अवश्य कृपा रखते हो।

सुप्रैतुः सुयवसो न पन्था दुर्नियंतुः परिप्रीतो न मित्रः ।
अनर्वाणो अभि ये चक्षतेः नोपीवृता अपोर्णुवन्तो अस्थुः ॥६॥

सं यं स्तुभोवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।
स विद्वाँ उभयं चष्टे अन्तर्बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥७॥

एवामहस्तुविजातस्तुविष्मान्बृहस्पतिर्वृषभो धायि देवः ।
स नःस्तुतो वीरवद्धातु गोमद्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥

* * *

१९१ सूक्त । जल, तृण और सूर्य देवता । त्रिष्टुप् और महा पंक्ति छन्द ।

कङ्कतो न कङ्कतोथो सतीनकङ्कतः ।
द्वाविति प्लुषी इति न्यदृष्टा अलिप्सत ॥१॥

अदृष्टान् हन्त्यायत्यथो हन्ती परायती ।
अथो अवघ्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिषती ॥२॥

शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत ।
मौञ्जा अदृष्टाः वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥३॥

---

६ बृहस्पति, तुम सुखगामी और सुखाद्य-विशिष्ट यजमानके मार्गरूप और दुष्टहन्ता राजाके बन्धु हो। हमारी निन्दा करते हैं, उनके सुरक्षित होनेपर भी, उन्हें रक्षा-शून्य करो ।

७ जैसे मनुष्य राजासे मिलता है, तटद्वयवर्त्तिनी नदी जैसे समुद्रमें मिलती है, वैसे ही सारी स्तुतियाँ तिमें मिलती हैं । वह विद्वान् हैं। आकाशचारी पक्षीको तरह बृहस्पति-रूपसे जल और तट, दोनोंको देखते। अथवा वृष्टिकामी अभिज्ञ बृहस्पति, मध्यमें स्थित होकर तट और जल दोनोंको उत्पन्न करते हैं ।

८ इसी रूपसे बृहस्पति महान्, बलवान्, अभीष्टवर्षी, दीप्तिमान् होकर और बहुतोंके उपकारके लिये हुए हैं । उनका स्तव करनेपर वह हमें वीर-विशिष्ट करें, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें।

---

१ अल्प विषवाले, महा विषवाले, जलीय अल्प विषवाले, दो प्रकारके, जलचर और स्थलचर, तथा अदृश्य प्राणी मुझे विष द्वारा, अच्छी तरह, लिप्त किये हुए हैं ।

२ जो औषध खाता है, वह अदृश्य विषधर प्राणीको विनष्ट करता है और प्रत्यावर्तन कालमें उसे विनष्ट है । विनाशके समय नाश करता और पिसे जानेके समय पिसता है ।

३ शर, कुशर, दर्भ, सैर्य, मुञ्ज वीरण, आदि घासोंमें छिपे विषधरगण मिलकर मुझे लिप्त करते हैं ।

नि गावो गोष्ठे असदन्नि मृगासो अविक्षत।
नि केतवो जनानां न्यदृष्टा अलिप्सत ॥४॥

एत उत्ये प्रत्यदृश्रन्प्रदोषं तस्करा इव।
अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥५॥

द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा।
अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥६॥

ये अंस्या ये अंग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः।
अदृष्टाः किञ्चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ॥७॥

उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।
अदृष्टान्त्सर्वाञ्जं भयनत्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥८॥

उदपप्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन्।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥९॥

४ जिस समय गायें गोष्ठमें बैठी रहती हैं, जिस समय हरिण, अपने-अपने स्थानोंपर, विश्राम करते हैं और जिस समय मनुष्य निद्रामें रहता है, उस समय अदृश्य विषधर मुझे लिप्त किये हुए हैं।

५ तस्करकी तरह उन सबको रातको देखा जाता है। वे, अदृश्य होनेपर भी, सारे संसारको देखते हैं; इसलिये मनुष्य सावधान हो जायँ।

६ स्वर्ग पिता, पृथिवी माता, सोम भ्राता और अदिति भगिनी हैं। अदृष्ट-समदर्शी लोग, तुम लोग अपने-अपने स्थानपर रहो और यथासुख गमन करो।

७ जो विषधर स्कन्धवाले हैं, जो अंगवाले (सर्प) हैं, जो सूचीवाले (वृश्चिकादि) हैं, जो अतीव विषधर हैं, वैसे अदृष्ट विषधरगणका यहाँ क्या है ? तुम सब लोग हमारे पाससे चले जाओ।

८ पूर्व दिशामें सूर्य उगते हैं, वह सारे संसारको देखते और अदृष्ट विषधरोंका विनाश करते हैं। वह सारे अदृष्टों और यातुधानी [राक्षसी वा महोरगी] का विनाश करते हैं।

९ सूर्य, बड़ी संख्यामें, विषोंका विनाश करते हुए, उदित होते हैं। सर्वदर्शी और अदृश्योंके विनाशक आदित्य जीवोंके मंगलके लिये उदित होते हैं।

सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे।
सो चिन्न न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनम्
हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१०॥

इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम्।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनम्
हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥११॥

त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्पमक्षन्।
ताश्चिन्नु न मरान्ति नो वयं मरामारे अस्य योजनम्
हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१२॥

नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम्।
सर्वासामग्रभं नामारे अस्य योजनम्
हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१३॥

त्रिः सप्त मयूर्यः सप्तस्वसारो अग्रुवः।
तास्ते विषं विजभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव ॥१४॥

---

१० शौण्डिकके घरमें चर्ममय सुरापात्रकी तरह मैं सूर्यमण्डलमें विष फेंकता हूँ। जैसे पूजनीय सूर्यदेव प्राण-
नहीं करते, वैसे ही हम भी प्राण-त्याग नहीं करते। अश्व द्वारा चालित होकर सूर्यदेव दूरस्थित विषको दूर करते हैं। वि
मधुविद्या तुम्हें अमृतमें परिणत कर देती है।

११ जैसे क्षुद्र शकुन्तिका पक्षीने तुम्हारा विष खाकर उगल दिया है, जैसे उसने प्राण त्याग नहीं किया, वैसे
हम भी प्राण-त्याग नहीं करेंगे। अश्व द्वारा परिचालित होकर सूर्यदेव दूरस्थित विषको दूर करते हैं। विष, मधुविद्या तु
अमृतमें परिणत करती है।

१२ अग्निकी सातों जिह्वाओंमेंसे प्रत्येकमें श्वेत, लोहित और कृष्ण आदि तीन वर्ण अथवा २१ प्रकारके प
विषकी पुष्टिका विनाश करते हैं। ये कभी नहीं मरते; वैसे ही हम भी प्राण-त्याग नहीं करते। अश्व द्वारा परिचालि
होकर सूर्य दूरस्थित विषका अपनयन करते हैं। विष, मधुविद्या तुम्हें अमृतमें परिणत करती है।

१३ मैं सारी विष-नाशक निन्यानवे नदियोंके नामोंका कीर्तन करता हूँ। अश्व द्वारा चालित होकर सूर्यदे
दूर-स्थित विषका अपनोदन करते हैं। विष, मधुविद्या तुझे अमृत बना देगी।

१४ जैसे स्त्रियाँ घड़ेमें जल ले जाती हैं, हे देह, वैसे ही २१ मयूरियाँ (पक्षी) और सात नदियाँ तुम्हा
विष दूर करे।

इयत्तकः कुषुम्भक स्तकं भिनद्म्यश्मना ।
ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु संवतः ॥१५॥
कुषुम्भकस्तदब्रवीद्गिरेः प्रवर्तमानकः ।
वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम् ॥१६॥

---

१५ देह, अतीव छोटा नकुल तुम्हारा विष दूर करे । यदि न करे, तो मैं इस कुत्सित जन्तुको लोष्ट्र द्वारा मार डालूँगा । मेरे शरीरसे विष दूर हो और दूर देशमें चला जाय ।

१६ पर्वतसे आकर, उस समय, नकुलने कहा—"वृश्चिकका विष रस-शून्य है ।" हे वृश्चिक, तुम्हारा विष रसशून्य है ।

पञ्चम अध्याय समाप्त

✻

प्रथम मण्डल समाप्त

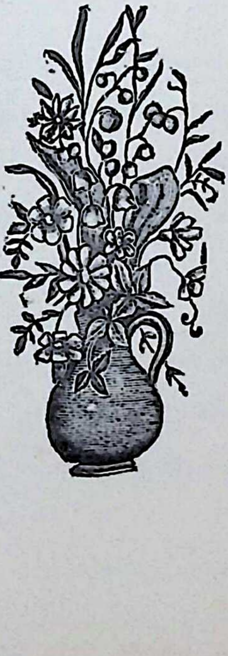

द्वितीय मण्डल

२ अष्टक । २ मण्डल । ५ अध्याय । १ अनुवाक । १ सूक्त ।

अग्नि देवता । गृत्समद ऋषि ।* जगती छन्द ।

त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥१॥
तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ॥२॥

१ मनुष्योंके स्वामी अग्निदेव, यज्ञ-दिनमें तुम उत्पन्न होओ। सर्वतः दीप्तिशाली होकर उत्पन्न होओ। पवित्र होकर उत्पन्न होओ। जलसे उत्पन्न होओ। पाषाणसे उत्पन्न होओ। वनसे उत्पन्न होओ। ओषधिसे उत्पन्न होओ।

२ अग्निदेव, होता, पोता, ऋत्विक् और नेष्टा आदिका कार्य तुम्हारा ही कर्म है। तुम अग्नीध्र हो। जिस समय तुम यज्ञकी इच्छा करते हो, उस समय प्रशास्ताका कर्म भी तुम्हारा ही है। तुम्हीं अध्वर्यु और ब्रह्मा नामके ऋषि हो। हमारे घरमें तुम ही गृहपति हो।×

---

* ऋग्वेदके प्रथम और दशम मण्डलोंके रचयिता अनेक ऋषि हैं; परन्तु अवशिष्ट मण्डलोंके एक-एक ऋषि और उनके वंशीय हैं। जिन मण्डलोंके जो ऋषि रचयिता हैं, उनके नाम ये हैं—२य के गृत्समद, ३यके विश्वामित्र, ४ र्थके वामदेव, ५मके अत्रि, ६ ष्ठके भारद्वाज, ७मके वसिष्ठ, ८ मके कण्व और ९ मके अङ्गिरा ऋषि या इन ऋषियोंके वंशोद्भव रचयिता हैं।

कहा जाता है, अङ्गिरा ऋषिके वंशीय शुनहोत्र ऋषिके पुत्रका नाम गृत्समद था। एक बार असुर लोग गृत्समदको पकड़ ले गये। पीछे इन्द्रने गृत्समदका उद्धार किया और उनको भृगुवंशीय शुनकके पुत्र शौनक कहकर अभिहित किया। शौनककी अनुक्रमणिकासे भी यही विदित होता है। इससे मालूम पड़ता है, अङ्गिराके वंशको छोड़कर गृत्समदने भृगु-वंशीयता प्राप्त की थी। महाभारत (अनुशासन पर्व)से विदित होता है कि, गृत्समद हैहय क्षत्रियोंके राजा और वीतिहव्यके पुत्र थे। एक बार काशीराज प्रतर्दनके भयसे वीतिहव्य भृगुके आश्रममें जा छिपे। भृगुने उन्हें शरणमें रख लिया। वीतिहव्यको खोजते हुए प्रतर्दन भी भृगुके आश्रममें जा धमके। पूछनेपर भृगुने कहा कि, मेरे आश्रममें क्षत्रिय नहीं रहता। ऋषि-वाक्य असत्य नहीं होता; इसलिये इसी दिनसे वीतिहव्य ब्राह्मण हो गये और उन्हींके पुत्र गृत्समद महर्षि। किसी-किसी पुराणके मतसे तो गृत्समद सुहोत्रके पुत्र और शुनक वा शौनकके पिता हैं। गृत्समदने ही जाति-विभागकी सृष्टि की—यह भी उल्लेख है। किसीके मतसे नैमिषारण्यमें जो द्वादशवर्ष-व्यापी यज्ञ हुआ था, उसमें यही गृत्समद (शौनक) प्रधान थे।

× ये यज्ञके कई ऋत्विकोंके नाम हैं। बड़े यज्ञमें १६ ऋत्विक् रहते थे। १म मण्डलके ३०सूक्तमें इनका विवरण है।

त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः ।
त्वं ब्रह्मा रयिविद्ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या ॥३॥
त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः ।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य संभुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः ॥४॥
त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम् ।
त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरूवसुः ॥५॥
त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे ।
त्वं वातैररुणैर्यासि शङ्गयस्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना ॥६॥
त्वमग्ने द्रविणोदा अरंकृते त्वं देवः सविता रत्नधा असि ।
त्वं भगो नृपते वस्व ईशिषे त्वं पायुर्दमे यस्तेऽविधत् ॥७॥
त्वामग्ने दम आ विश्पतिं विशस्त्वां राजानं सुविदत्रमृञ्जते ।
त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि शता दश प्रति ॥८॥

३ अग्निदेव, तुम साधुओंका मनोरथ पूर्ण करते हो; इसलिये तुम्हीं विष्णु हो, तुम बहुतोंके स्तुतिपात्र। तुम नमस्कारके योग्य हो। धनवान् स्तुतिके अधिपति, तुम मन्त्रोंके स्वामी हो, तुम विविध पदार्थोंकी करते और विभिन्न बुद्धियोंमें रहते हो।

४ अग्नि, तुम धृतव्रत हो; इसलिये तुम राजा वरुण हो। तुम शत्रुओंके विनाशक और स्तुति-योग्य। इसलिये तुम मित्र हो। तुम साधुओंके रक्षक हो; इसलिये तुम अर्यमा हो। अर्यमाका दान सर्वव्यापी है। अंश (सूर्य) हो। अग्निदेव, तुम हमारे यज्ञमें फलदान करो।

५ अग्निदेव, तुम त्वष्टा हो। तुम अपने सेवकके वीर्यरूप हो। सारी स्तुतियाँ तुम्हारी ही हैं। तुम्हारा हितकारी है। तुम हमारे बन्धु हो। तुम शीघ्र उत्साहित करते हो और हमें उत्तम अश्व-युक्त धन देते हो। पास बहुत धन है। तुम मनुष्योंके बल हो।

६ अग्नि, तुम महान् आकाशके असुर रुद्र हो। तुम मरुतोंके बलस्वरूप हो। तुम अन्नके ईश्वर तुम सुखके आधार-स्वरूप हो। लोहित-वर्ण और वायु-सदृश अश्वपर जाते हो। तुम पूषा हो, तुम स्वयं कृपा परिचालक मनुष्योंकी रक्षा करते हो।

७ अग्नि, अलंकारकारी यजमानकेलिये तुम स्वर्गदाता हो। तुम प्रकाशमान सूर्य और रत्नोंके आधा स्वरूप हो। नृपति, तुम भजनीय धनदाता हो। यज्ञ-गृहमें जो यजमान तुम्हारी सेवा करता है, उसकी रक्षा करते हो।

८ अग्नि, लोग अपने-अपने घरमें तुम्हें प्राप्त करते और तुम्हें विभूषित करते हैं। तुम मनुष्योंके पालक, दीप्ति मान् और हमारे प्रति अनुग्रह-सम्पन्न हो। तुम्हारी सेवा अत्युत्तम है। तुम सारे हव्योंके ईश्वर हो। हजारो, सैकड़ो और दसो फल देते हो।

त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नरस्त्वां भ्रात्राय शम्या तनूरुचम् ।
त्वं पुत्रो भवसि यस्तेविधत्वं सखा सुशेवः पास्याधृषः ॥९॥
त्वमग्न ऋभुराके नमस्यस्त्वं वाजस्य क्षुमतो राय ईशिषे ।
त्वं विभास्यनुधक्षि दावने त्वं विशिक्षुरसि यज्ञमातनिः ॥१०॥
त्वमग्ने अदितिदव दाशुषे त्व होत्रा भारती वर्धसे गिरा ।
त्वमिला शतहिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती ॥११॥
त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वयस्तवस्पाह वर्ण आ सन्दृशि श्रियः ।
त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्बहुलो विश्वतस्पृथुः ॥१२॥
त्वामग्न आदित्यास आस्यं त्वां जिह्वां शुचयश्चक्रिरे कवे ।
त्वां रातिषाचो अध्वरेषु सश्चिरे त्वं देवा हविरदन्त्याहुतम् ॥१३॥
त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्रुह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वया मर्तासः स्वदन्त आसुतिं त्वं गर्भो वीरुधां जज्ञिषे शुचिः ॥१४॥
त्वं तानत्सञ्च प्रतिचासि मज्मनाग्ने सुजात प्रचदेवरिच्यसे ।
पृक्षो यदत्र महिनाविते भुवदनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे ॥१५॥

९ अग्नि, यज्ञ द्वारा लोग तुम्हें तृप्त करते हैं; क्योंकि तुम पिता हो। तुम्हारा भ्रातृत्व प्राप्त करनेके लिये लोग कर्म द्वारा तुम्हें तृप्त करते हैं। तुम भी उनका शरीर प्रदीप्त कर देते हो। जो तुम्हारी सेवा करता है, तुम उसके पुत्र हो। तुम सखा, शुभकर्त्ता और शत्रु-निवारक होकर रक्षा करो।

१० अग्नि, तुम ऋभु हो। तुम प्रत्यक्ष स्तुति-योग्य हो। तुम सर्वत्र विश्रुत धन और अन्नके स्वामी हो। तुम अतीव उज्ज्वल हो। अंधकारके विनाशके लिये तुम धीरे-धीरे काष्ठ आदिका दहन करते हो। तुम भली भाँति यज्ञका निर्वाह और उसके फलका विस्तार करते हो।

११ अग्निदेव, तुम हव्यदाताके लिये अदिति हो। तुम होत्रा और भारती हो। स्तुति द्वारा तुम वृद्धि प्राप्त करो। तुम सौ वर्षोंकी भूमि हो। तुम दानमें समर्थ हो। हे धन-पालक, तुम वृत्रहन्ता और सरस्वती हो।

१२ अग्निदेव, अच्छी तरह पुष्ट होनेपर तुम्हीं उत्तम अन्न हो। तुम्हारे स्पृहणीय और उत्तम वर्णमें ऐश्वर्य रहता है। तुम्हीं अन्न, त्राता, बृहत्, धन, बहुल और सर्वत्र विस्तीर्ण हो।

१३ अग्निदेव, आदित्योंने तुम्हें मुख दिया है। हे कवि, पवित्र देवताओंने तुम्हें जीभ दी है। दानके समय एकत्र देवता यज्ञमें तुम्हारी अपेक्षा करते और तुम्हें ही आहुति रूपमें दिया हुआ हव्य भक्षण करते हैं।

१४ अग्निदेव, सारे अमर और द्रोष-रहित देवगण तुम्हारे मुखमें, आहुतिरूपमें, प्रदत्त हविका भक्षण करते हैं। मर्त्यगण भी तुम्हारे द्वारा अन्नादिका आस्वाद पाते हैं। तुम लता आदिके गर्भ—(उत्ताप)-रूप हो। पवित्र होकर तुमने जन्म ग्रहण किया है।

१५ अग्निदेव, बल द्वारा तुम प्रसिद्ध देवोंके साथ मिलो और उनसे पृथक् होओ। सुजात देव, तुम उनसे बलिष्ठ बनो; क्योंकि तुम्हारी ही महिमासे यह यज्ञ-स्थित अन्न शब्दायमान द्यावापृथिवीके बीच व्याप्त होता है।

ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।
अस्माञ्च ताँश्च प्रहिनेषि वस्य आबृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६॥

* * *

२ सूक्त । अग्नि देवता । जगती छन्द ।

यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा ।
समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धुर्षदम ॥१॥
अभि त्वा नक्तोरुषसो ववाशिरेग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
दिवइवेदरतिर्मानुषा युगाक्षपो भासि पुरुवार संयतः ॥२॥
तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससन्दिवस्पृथिव्योररतिं न्येरिरे ।
रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥३॥
तमुक्षमाणं रजसि स्वआदमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आदधुः ।
पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ॥४॥
स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा ।
हिरिशिप्रो वृधसानासु जर्भुरद्द्यौर्नस्तृभिश्चितयद्रोदसी अनु ॥५॥

---

१६ अग्नि, जो मेधावी स्तोताओंको गौ और अश्व आदि दान करते हैं, उन्हें तथा हमें श्रेष्ठ स
ले चलो। हम वीरोंसे युक्त होकर यज्ञमें विशाल मन्त्र पढ़ेंगे।

---

१ अग्निदेव दीप्तिमान्, शोभन-अन्न-सम्पन्न, स्वर्गदाता, उद्दीप्त, होम-निष्पादक और बलप्रदाता हैं। अ
भूतज्ञ अग्निको यज्ञ द्वारा वर्द्धित करो और यज्ञ तथा विस्तृत स्तुति द्वारा पूजा करो।

२ अग्निदेव, जैसे दिनमें गायें बछड़ेकी इच्छा करती हैं, वैसे ही तुम्हें यजमान लोग दिन और रात्रिमें चाहते
अनेकोंके माननीय अग्निदेव, तुम संयत होकर द्युलोकमें व्याप्त हो। मनुष्योंके यज्ञोंमें सदा रहते हो। रातमें
होते हो।

३ अग्नि सुदर्शन, द्यावापृथिवीके ईश्वर, धन-पूर्ण रथके सदृश, दीप्तवर्ण, ज्वाला-स्वरूप, कार्यसाधक और
भूमिमें प्रशंसित हैं। देवता लोग उन्हीं अग्निको संसारके मूल देशमें स्थापित करते हैं।

४ अग्निदेव अन्तरीक्षमें वृष्टि-जल-दाता, चन्द्रमाकी तरह दीप्ति-विशिष्ट, अन्तरीक्षगामी ज्वाला द्वारा लो
चैतन्य देनेवाले, जलकी तरह रक्षक और सबकी जनयित्री द्यावापृथिवीको व्याप्त करनेवाले हैं। उन्हीं अग्निको उस
गृहमें स्थापित किया गया है।

५ होम-निष्पादक होकर अग्निदेव सारे यज्ञोंको व्याप्त करें। मानवोंने हव्य और स्तुति द्वारा उन्हें अलंकृ
है। दाहक-शिखायुक्त अग्नि वर्द्धमान ओषधियोंके बीच जलकर, जैसे नक्षत्र आकाशमें चमकते हैं, वैसे ही,
थिवीको प्रकाशित करते हैं।

स नो रेवत् समिधानः स्वस्तये सन्ददस्वान्रयिमस्मासु दीदिहि ।
आ नः कृणुष्व सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देववीतये ॥६॥
दा नो अग्ने बृहतो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अपा वृधि ।
प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्वर्ण शुक्रमुषसो वि दिद्युतः ॥७॥
स इधान उषसो रम्या अनु स्वर्णं दीदेदरुषेण भानुना ।
होत्राभिरग्निर्मनुषः स्वध्वरो राजा विशामतिथिश्चारुरायवे ॥८॥
एवानो अग्ने अमृतेषु पूर्व्य धीष्पीपाय बृहद्दिवेषु मानुषा ।
दुहाना धेनुर्वृजनेषु कारवे त्मना शतिनं पुरुरूपमिषणि ॥९॥
वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमाजनाँ अति ।
अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषूच्चा स्वर्ण शुशुचीत दुष्टरम् ॥१०॥
स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन्त् सुजाता इषयन्त सूरयः ।
यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्ये तोके दीदिवांसं स्वे दमे ॥११॥

---

६ अग्निदेव, हमारे मङ्गलके लिये क्रमागत और वर्द्धित धन देते हुए तुम प्रज्वलित होकर प्रकाशित होओ। अग्नि, द्यावापृथिवीमें हमें फल दो। मनुष्यों द्वारा प्रदत्त हव्य देवोंके भक्षणके लिये लाया जाय।

७ अग्नि, हमें यथेष्ट गौ, अश्व आदि तथा सहस्र-संख्यक पुत्र, पौत्र आदि दो। कीर्त्तिके लिये अन्न दो और अन्नका द्वार खोलो। उत्कृष्ट यज्ञ द्वारा द्यावापृथिवीको हमारे अनुकूल करो। आदित्यकी तरह उषाएँ तुम्हें प्रकाशित करती हैं।

८ रमणीय उषामें अग्नि प्रज्वलित होकर, सूर्यकी तरह, उज्ज्वल किरणोंमें देदीप्यमान होते हैं। मनुष्योंके होम-साधक, स्तुति द्वारा स्तूयमान, उत्तम यज्ञवाले और प्रजाओंके स्वामी अग्नि यजमानके पास, प्रिय अतिथिकी तरह, आते हैं।

९ अग्नि, तुम यथेष्ट द्युतिवाले हो। देवोंके पूर्ववर्त्ती मनुष्योंकी स्तुति तुम्हें आप्यायित करती है। दूधवाली गायकी तरह यह स्तुति यज्ञस्थित स्तोताकी तरह स्वयं अपरिमित और विविध प्रकार धन प्रदान करती है।

१० अग्नि, हम तुम्हारे दिये अन्न और अश्वसे यथेष्ट सामर्थ्य प्राप्त करके सबको लांघ जायँगे और हमसे, हमारी अनन्त और दूसरोंके लिये अप्राप्य धनराशि सूर्यकी तरह, पाँच वर्णों (चार वर्ण और पञ्चम निषाद)के ऊपर दीप्तिमान होगी।

११ शत्रु-पराजेता अग्नि, तुम हमारी स्तुतिके योग्य हो। हमारा स्तोत्र श्रवण करो। सुजन्मा स्तोता लोग तुम्हारे ही उद्देशसे स्तुति करते हैं। अग्नि, रस और पुत्रकी प्राप्तिके लिये हव्य-विशिष्ट यजमानके यागगृहमें दीप्यमान और यजनीय अग्निकी पूजा की जाती है।

उभयासो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सूरयश्च शर्मणि।
वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ॥१२॥
ये स्तोतृभ्यो गो अग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः।
अस्माञ्चतांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१३॥

* * *

३ सूक्त। आप्री देवता। त्रिष्टुप् और जगती छन्द।

समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ्विश्वानि भुवनान्यस्थात्।
होता पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥१॥
नराशंसः प्रति धामान्यञ्जन्तिस्रो दिवः प्रति मह्ना स्वर्चिः।
घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन्मूर्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥२॥
ईळितो अग्ने मनसा नो अर्हन्देवान्यक्षि मानुषात्पूर्वो अद्य।
स आवह मरुतां शर्धो अच्युतमिन्द्रं नरो बर्हिषदं यजध्वम् ॥३॥
देव बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम्।
घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः ॥४॥

---

१२ सर्वभूतज्ञ अग्नि, तुम्हारा स्तोता और मेधावी यजमान—हम दोनों सुख-प्राप्तिके लिये तुम्हारे ही हाँ हमारे निवास-हेतु, अतिशय आह्लाद-प्रद, प्रभूत और पुत्र-पौत्र आदिसे युक्त धन दो।

१३ अग्नि, जो मेधावी लोग स्तोताओंको गौ और अश्व आदि धन प्रदान करते हैं, उन्हें तथा हमें श्रेष्ठ स्था ले चलो। वीर-युक्त होकर हम यज्ञमें बृहत् मन्त्रका उच्चारण करेंगे।

---

१ वेदीपर निहित समिद्ध नामक अग्नि सारे गृहके सामने अवस्थित हैं। होम-निष्पादक, विशुद्धताकारी, प्रा प्रजा-संयुक्त, द्योतमान और पूजा-योग्य अग्नि देवोंकी पूजा करें।

२ नराशंस नामक अग्नि, सुन्दर ज्वालासे युक्त होकर, अपनी महिमासे, प्रत्येक आहुति-स्थल और प्र मान तीनों लोकोंको व्यक्त करते हुए, घी बरसानेकी इच्छासे, हव्य स्निग्ध करके, यज्ञके सामने दे प्रकाशित करें।

३ इळित या इळा नामक अग्निदेव, हमपर प्रसन्न चित्तसे, यागकर्मके योग्य होकर, आज, हमारे लिये, मनु पूर्ववर्ती होकर देवोंका यज्ञ करो। मरुतों और अच्युत इन्द्रका सम्बोधन करो। ऋत्विको, कुशपर बैठे हुए इ यज्ञ करो।

४ द्योतमान कुश-स्वरूप अग्नि, हमारे धन-लाभके लिये, इस वेदीपर अच्छी तरह विस्तृत हो जाओ। तुम बढ़नेवाले और वीर-प्रदाता हो। वसुओ, विश्वदेवो, यज्ञ-योग्य आदित्यो, तुम घी-लगाये कुशपर बैठो।

विश्रयन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।
व्यचस्वतीर्विप्रथन्तामजुर्यावर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥५॥

साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रन्विते ।
तन्तुं ततं सन्वयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥६॥

दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजुयक्षतः समृचा वपुष्टरा ।
देवान्यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥७॥

सरस्वती साधयन्ती धियं न इलादेवी भारती विश्वतूर्तीः ।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥८॥

पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।
प्रजां त्वष्टा विष्यतु नाभिमस्मे अथादेवानामप्येतु पाथः ॥९॥

वनस्पतिरवसृजन्नुपस्थादग्निर्हविः सदयाति प्रधीभिः ।
त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन्देवेभ्यो दैव्यः समितोप हव्यम् ॥१०॥

---

५ हे द्योतमान्, द्वार-रूप अग्नि, तुम खुल जाओ। तुम महान् हो। लोग नमस्कार करते हुए तुम्हारे लिये हवन करते और सरलतासे तुम्हारे पास जाते हैं। तुम व्यापक, अहिंसनीय, वीर-विशिष्ट, यशोयुक्त और वर्णनीय रूपके सम्पादक हो। तुम भली भाँति प्रसिद्ध होओ।

६ हमें अच्छे कर्म-फल देनेवाली अग्नि-रूप उषाएँ रात्रिको वयन-चतुरा दो रमणियोंकी तरह, सहायताके लिये, परस्पर जाते-आते, यज्ञका रूप बनानेके लिये, परस्पर अनुकूल होकर बड़े तन्तुका वयन करती हैं। वे अतीव फलदाता और जल-युक्त हैं।

७ अग्निरूप दिव्य दो होता पहले ही यज्ञके योग्य हैं। वे सर्वापेक्षा विद्वान् और विशाल शरीरसे संयुक्त हैं। वे मन्त्र द्वारा अच्छी तरह पूजा करते और यथासमय देवोंके लिये यज्ञ करते हैं। वे पृथिवीकी नाभि-रूपिणी उत्तर-वेदीके गार्हपत्य आदि तीन अग्नियोंके प्रति गमन करते हैं।

८ हमारे यज्ञकी निष्पादिका अग्निरूप सरस्वती, इला और सर्वव्यापिका भारती, ये तीनों देवियाँ याग-गृहका आश्रय करके, हव्य-लाभके लिये, निर्दोष रूपसे, हमारे यज्ञका पालन करें।

९ अग्नि-स्वरूप त्वष्टाकी दयासे हमारे पिशङ्ग वर्ण, यज्ञकर्त्ता, अन्नदाता, क्षिप्रकर्त्ता, देवाभिलाषी और वीर पुत्र उत्पन्न हो। त्वष्टा हमें कुल-रक्षक सन्तान दें। देवोंका अन्न हमारे पास आवे।

१०· वनस्पति-रूप अग्नि हमारे कर्म जानकर हमारे पास हैं। विशेष कर्म द्वारा अग्नि भली भाँति हव्य पकाते हैं। दिव्य शमिता नामके अग्नि तीन प्रकारसे अच्छी तरह सिक्त हव्यको जानकर उसे देवोंके निकट ले जायँ।

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम।
अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥११॥

* * *

४ सूक्त। अग्नि देवता। भृगुके अपत्य सोमाहुति ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम्।
मित्र इव यो दिधिषाय्योभूद्देव आदेवे जने जातवेदाः ॥१॥
इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्विता दधुर्भृगवो विक्ष्वायोः।
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः ॥२॥
अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेष्यन्तो न मित्रम्।
सदीदयदुशतीरूर्म्या आदक्षाय्यो यो दास्वते दम आ ॥३॥
अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टिः सन्दृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः।
वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वामत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान् ॥४॥
आयन्मे अभ्वं वनदः पनन्तोशिग्भ्यो नामिमीत वर्णम्।
स चित्रेण चिकितेरंसुभासा जुजुर्वाँ यो मुहुरा युवा भूत् ॥५॥

---

११ मैं अग्निमें घी डालता हूँ। घृत ही उनकी जन्मभूमि, आश्रय-स्थान और दीप्ति है। अभीष्टवर्षी हव्य देनेके समय देवोंको बुलाकर उनकी प्रसन्नता उत्पादन करो और अग्नि-रूप स्वाहाकारमें प्रदत्त हव्य ले जाओ

---

१ यजमानो, मैं तुम्हारे लिये अतीव दीप्तियुक्त, निष्पाप, यजमानोंके अतिथि-स्वरूप और हव्य-युक्त बुलाता हूँ। वे सर्व-भूत-ज्ञाता और मनुष्योंसे देवोंतकके धारणकर्त्ता हैं।

२ भृगुओंने अग्निकी सेवा करके उन्हें जलके निवासस्थान, अन्तरीक्ष और मानवोंकी सन्तानोंके बीच किया था। शीघ्रगामी अश्ववाले और देवोंके स्वामी अग्नि हमारे समस्त विरोधी प्राणियोंको पराभूत करें।

३ स्वर्ग जाते समय देवोंने, मित्रकी तरह, अग्निको मनुष्योंके बीच स्थापित किया था। वह अग्नि यजमानके लिये, उसके योग्य गृहमें स्थापित होकर, अपनी अभिलाषा करनेवाली रात्रियोंमें दीप्त होते हैं।

४ अपने शरीरकी पुष्टि करनेके सदृश अग्निके शरीरकी पुष्टि करना भी रमणीय है। जिस समय चारो ओर फैलते और काष्ठको भस्म करते हैं, उस समय उनका शरीर अत्यन्त सुन्दर हो जाता है। जैसे रथका बार-बार पूछ कँपाता है, वैसे ही अग्नि भी काठोंपर अपनी शिखा कँपाते हैं।

५ मेरे सहयोगी स्तोता लोग अग्निके महत्त्वको स्तुति करते हैं, वे आग्रही ऋत्विकोंके पास प्रकाशित करते हैं। अग्नि रमणीय हव्यके लिये विचित्र किरणमालासे प्रकाशित होते हैं। अग्नि वृद्ध बार-बार उसी क्षण युवा हो सकते हैं।

आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत् ।
कृष्णाध्वा तपू रण्वश्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥६॥
स यो व्यस्थादभिदक्षदुर्वीं पशुर्नैति स्वयुरगोपाः ।
अग्निः शोचिष्माँ अतसान्युष्णन्कृष्णव्यथिरस्वदयं न भूम ॥७॥
नू ते पूर्वस्यावसो अधीतो तृतीये विदथे मन्म शंसि ।
अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तं क्षुमन्तं वाजंस्वपत्यं रयिं दाः ॥८॥
त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपराँ अभि ष्युः ।
सुवीरासो अभिमातिषाहः स्मत् सूरिभ्यो गृणते तद्वयो धाः ॥९॥

* * *

५ सूक्त । अग्नि देवता । सोमाहुति ऋषि । अनुष्टुप् छन्द ।

होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये ।
प्रयक्षं जेन्यं वसु शकेम वाजिनो यमम् ॥१॥
आ यस्मिन्त्सप्तरश्मयस्तता यज्ञस्य नेतरि ।
मनुष्वद्दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति ॥२॥

---

६ तृषातुरकी तरह जो अग्नि वनोंको दग्ध करते हैं, जलकी तरह इधर-उधर जाते हैं, रथवाहक अश्वको तरह शब्द करते हैं, वह कृष्ण-मार्ग और तापक होनेपर भी नभोमण्डलवाले द्युलोककी तरह शोभन हैं ।

७ जो अग्नि विश्वको व्याप्त करते हैं, जो अग्नि विस्तृत पृथिवीपर बढ़ते हैं, जो अग्नि रक्षक-रहित पशुकी तरह अपनी इच्छासे गमन कर विचरण करते हैं, वही दीप्तिमान् अग्नि सूखे वृक्ष आदिको जलाकर, व्यथाकारी कण्टक आदिको दूरकर, अच्छी तरह रसास्वदन करते हैं ।

८ अग्निदेव, तुमने पहले, प्रथम सवनमें, जो रक्षा की थी, उसे हम आज भी स्मरण करके तृतीय सवनमें मनोहर स्तोत्रोंका उच्चारण करते हैं । अग्नि, तुम हमें वीर-विशिष्ट करो । तुम हमें महान् कीर्त्तिमान् करो । हमें सुन्दर अपत्य और धन दो ।

९ अग्नि, गृत्समद-वंशीय ऋषि लोग तुम्हें रक्षक पाकर, छन्दका पाठ करते हुए, गुहामें अवस्थित उत्कृष्ट स्थान पर वर्त्तमान धन-विशेष प्राप्त करेंगे । वे उत्तम पुत्र आदिको प्राप्त कर शत्रुओंको परास्त करेंगे । मेधावी और स्तुतिकारी यजमानोंको बहुत अधिक और प्रसिद्ध धन दो ।

---

१ होता, चैतन्यदाता और पिता अग्नि पितरोंकी रक्षाके लिये उत्पन्न हुए । हम भी हव्य-युक्त होकर अतीव पूजनीय, जीतने और रक्षा करने योग्य धन प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे ।

२ यज्ञ-नेता अग्निमें सात रश्मियाँ विस्तृत हैं । देवोंके पोताके समान, अग्नि मनुष्योंके पोताकी तरह, यज्ञके अष्टम स्थानीय होकर व्याप्त होते हैं ।

दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्माणि वेरुतत् ।
परिविश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत् ॥३॥
साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि ।
विद्वाँ अस्य व्रता ध्रुवा वयाइवानुरोहते ॥४॥
ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः ।
कुवित्तिसृभ्य आवरं स्वसारो या इदं ययुः ॥५॥
यदीमातुरुपस्वसा घृतं भरन्त्यस्थित ।
तासामध्वर्युरागतौ यवो वृष्टीव मोदते ॥६॥
स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम् ।
स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमाररिमा वयम् ॥७॥
यथा विद्वाँ अरङ्करद्विश्वेभ्यो यजतेभ्यः ।
अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चकृमा वयम् ॥८॥

* * *

६ सूक्त । अग्नि देवता । सोमाहुति ऋषि । गायत्री छन्द ।
इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनेः । इमा उषु श्रुधी गिरः ॥१॥

---

३ अथवा इस यज्ञमें ऋत्विक्‌गण जो हव्यादि धारण करते, जो मंत्र आदि पढ़ते हैं, सो सब भाँ जानते हैं ।

४ पवित्र प्रशास्ता अग्नि पुण्यक्रतुके साथ उत्पन्न हुए हैं । जैसे लोग फल तोड़नेके लिये एक डालसे दूसरी पर जाते हैं, वैसे ही यजमान, अग्निके यज्ञको अवश्य फल-दाता समझकर, एकके अनन्तर दूसरा अनु करता है ।

५ जो अँगुलियाँ इस कार्यमें लगी रहती हैं, वे इन नेष्टा अग्निके लिये धेनु-स्वरूप हैं और इनकी सेवा कर तथा अग्निरूप होकर इनके गार्हपत्य आदि तीन उत्कृष्ट रूपोंकी सेवा करती हैं ।

६ जिस समय जुहु मातृ-रूपिणी वेदीके पास भगिनीके समान घृत-पूर्ण करके रखा जाता है, उस समय वृष्टिमें यव पुष्ट होता है, वैसे ही अध्वर्युरूप अग्नि भी हृष्ट होते हैं ।

७ ये ऋत्विक्-रूप अग्नि अपने कर्मके लिये ऋत्विक्‌का कर्म करते हैं । हम भी, उसके अनन्तर ही, यज्ञ और हव्य प्रदान करेंगे ।

८ अग्नि, तुम्हारी महिमा जाननेवाला यजमान जैसे सारे देवोंकी भली भाँति तृप्ति कर सके, वैसा करो । जिस यज्ञको करेंगे, वह भी, अग्नि, तुम्हारा ही है ।

---

१ अग्नि, तुम मेरी इस समिधा और आहुतिका उपभोग करो; मेरी यह स्तुति सुनो ।

अयाते अग्ने विधेमोर्जोनपादश्वमिष्टे । एना सूक्तेन सुजात ॥२॥
तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसन्द्रविणस्युं द्रविणोदः । सपर्येम सपर्यवः ॥३॥
स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्यस्मद्द्वेषांसि ॥४॥
स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम् । स नः सहस्रिणीरिषः ॥५॥
ईलाना यावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा । यजिष्ठ होतरागहि ॥६॥
अन्तर्ह्यग्न ईयसे विद्वाञ्जन्मोभया कवे । दूतो जन्येव मित्र्यः ॥७॥
सविद्वाँ आच पिप्रयो यक्षि चिकित्व आनुषक् । आचास्मिन्त्सत्सि बर्हिषि ॥८॥

७ सूक्त । अग्नि देवता । सोमाहुति ऋषि । गायत्री छन्द ।

श्रेष्ठं यविष्ठ भारताग्ने द्युमन्तमाभर । वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥१॥
मानो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च । पर्षितस्या उतद्विषः ॥२॥
विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्या इव । अति गाहेमहि द्विषः ॥३॥

२ अग्नि, हम इस आहुतिके द्वारा तुम्हारी सेवा करेंगे । बलपुत्र, विस्तीर्ण-यज्ञशाली और सुजन्मा अग्नि, इस स्तुतिसे तुम्हें हम प्रसन्न करेंगे ।

३ धनद अग्नि, तुम स्तुतिके योग्य और यज्ञके अभिलाषी हो । हम तुम्हारे सेवक हैं । स्तुति द्वारा तुम्हारी सेवा करेंगे ।

४ अग्नि, तुम धनवान्, विद्वान् और धनद हो । उठो और हमारे शत्रुओंको दूर करो ।

५ वही अग्नि, हमारे लिये, अन्तरीक्षसे वृष्टि प्रदान करते हैं । वे हमें महान् बल और अनन्त प्रकारके अन्न दें ।

६ तरुणतम देव-दूत, अतिशय यजनीय अग्नि, मैंने तुम्हारी स्तुति की है; इस लिये आओ । मैं तुम्हारा पूजक हूँ और तुम्हारा प्रश्रय चाहता हूँ ।

७ मेधावी अग्नि, तुम मनुष्योंके हृदयको पहचानते हो; तुम उभयरूप जन्म जानते हो । तुम संसार और बन्धुओंके दूत-रूप हो ।

८ अग्नि, तुम विद्वान् हो । हमारी मनःकामना पुर्ण करो । तुम चैतन्यवाले हो । यथाक्रम तुम देवोंका यज्ञ करो और कुशके ऊपर बैठो ।

१ हे तरुणतम, भरणकर्त्ता और व्याप्त अग्नि, अतिशय प्रशंसनीय, दीप्तिमान् और बहुजन-वाञ्छित धन ले आओ ।

२ अग्नि, मनुष्यों या देवोंकी शत्रुता हमें पराभूत न करे । हमें दोनों प्रकारके शत्रुओंसे बचाओ ।

३ अग्नि, जलकी धाराकी तरह हम सारे शत्रुओंको स्वयं ही लाँघ जायँगे ।

शुचिः पावक वन्द्योग्ने बृहद्वि रोचसे । त्वं घृतेभिराहुतः ॥४॥
त्वं नो असि भारताग्ने वशाभिरुक्षभिः । अष्टापदीभिराहुतः ॥५॥
द्रु वन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥६॥

* * *

८ सूक्त । अग्नि देवता । गृत्समद ऋषि । गायत्री अनुष्टुप् छन्द ।

वाजयन्निव नू रथान्योगाँ अग्नेरुपस्तुहि । यशस्तमस्य मीढ्षः ॥१॥
यः सुनीथोददाशुषेजुर्यो जरयन्नरिम् । चारुप्रतीक आहुतः ॥२॥
य उस्रिया दमेष्वादोषोषसि प्रशस्यते । यस्य व्रतं न मीयते ॥३॥
आयः स्वर्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा । अञ्जानो अजरैरभि ॥४॥
अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः । विश्वा अधिश्रियो दधे ॥५॥
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम् ।
अरिष्यन्तः सचेमह्यभिष्याम पृतन्यतः ॥६॥

४ अग्नि, तुम शुद्ध, पवित्रकर्त्ता और वन्दनीय हो। घृत द्वारा आहूत होकर तुम अत्यन्त दीप्त हुए हो।

५ भरणकर्त्ता अग्नि, तुम हमारे हो। तुम वन्ध्या गौ, वृष और गर्भिणी गौ द्वारा आहूत हुए हो।

६ जिनका अन्न समिधा है, जिनमें घृत सिक्त होता है, वही पुरातन, होमनिष्पादक, वरणीय और बलके अग्नि अतीव रमणीय हैं।

१ होता, अन्नाभिलाषी, पुरुषकी तरह प्रभूत यशवाले और अभीष्टदाता अग्निके अश्वोंकी स्तुति को

२ सुनेता, अजर और मनोहर गतिवाले अग्नि हविर्दाता यजमानके शत्रु-नाशके लिये आहूत हुए हैं।

३ सुन्दर ज्वालावाले जो अग्नि गृहमें आते हुए दिन-रात स्तुत होते हैं, उनका व्रत कभी नहीं क्षीण होता

४ जैसे किरण-रूप सूर्य प्रकाशित होते हैं, विचित्र अग्नि भी अजर शिखाओं द्वारा चारो ओर प्रकाशित हो वैसे ही रश्मियों द्वारा प्रकाशित होते हैं।

५ शत्रुओंके विनाशक और स्वयं सुशोभित अग्निके लिये सारे ऋङ्मन्त्र वर्द्धित होते हैं। अग्निने शोभाएँ धारण की हैं।

६ हमने अग्नि, इन्द्र, सोम और अन्य देवोंका प्रश्रय प्राप्त किया है। हमारा कोई अनिष्ट नहीं कर सक हम शत्रुओंको जीतेंगे।

पञ्चम अध्याय समाप्त

षष्ठ अध्याय

९ सूक्त। अग्नि देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत्सुदक्षः।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रंभरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥१॥
त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आवृषभ प्रणेता।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन्दीद्यद्बोधि गोपाः ॥२॥
विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥३॥
अग्ने यजस्व हविषा यजीयाञ्छ्रुष्टी देष्णमभिगृणीहि राधः।
त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ॥४॥
उभयन्ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म।
कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः ॥५॥
सैनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाँ आयजिष्ठः स्वस्ति।
अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद्दिदीहि ॥६॥

---

१ अग्नि देवोंके होता, विद्वान्, प्रज्वलित, दीप्तिमान्, प्रकृष्टबल-शाली, अप्रतिहत, अनुग्रह-विशिष्ट, निवासदाता, सबके भरणकर्त्ता और विशुद्ध शिखावाले हैं। होताके भवनमें अग्नि अच्छी तरह बैठें।

२ अभीष्ट-वर्षक अग्नि, तुम हमारे दूत बनो। हमें आपद्से बचाओ। हमारे पास धन दो। प्रमाद-शून्य और दीप्तिशाली होकर हमारे और हमारे पुत्रोंके रक्षक बनो। अग्नि, जागो।

३ अग्नि, हम तुम्हारे उत्तम जन्मस्थानमें तुम्हारी सेवा करेंगे। जिस स्थानसे तुम उद्भूत हुए हो, उसकी भी पूजा करेंगे। वहाँ तुम्हारे प्रज्वलित होनेपर अध्वर्यु लोग तुम्हें लक्ष्य कर हव्य प्रदान करते हैं।

४ अग्नि देव, याज्ञिकोंमें तुम श्रेष्ठ हो। हव्य द्वारा तुम यज्ञ करो। तत्पर होकर तुम देवोंके पास हमारे दिये जाने योग्य अन्नकी प्रशंसा करो। तुम धनोंमें उत्कृष्ट धनके अधिपति हो। तुम हमारे प्रदीप्त स्तोत्रको जानो।

५ दर्शनीय अग्नि, तुम प्रतिदिन उत्पन्न होते हो। तुम्हारा दिव्य और पार्थिव धन नष्ट नहीं होता। फलतः तुम स्तोत्रकर्त्ता यजमानको अन्न-युक्त करो। उसे सुन्दर अपत्यवाले धनका स्वामी बनाओ।

६ अग्निदेव, तुम अपने दलके साथ हमारे प्रति अनुग्रह करो। तुम देवोंके याजक, सर्वापेक्षा उत्तम यज्ञ-कर्त्ता, देवोंके रक्षक और हमारे पालक हो। कोई तुम्हारी हिंसा नहीं कर सकता। धन और कान्तिसे युक्त होकर तुम चारो ओर देदीप्यमान बनो।

१० सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेवेलस्पदे मनुषा यत् समिद्धः ।
श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी ॥१॥
श्रूया अग्निश्चित्रभानुर्हवं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः ।
श्यावा रथं वहतो रोहिता वोतारुषाह चक्रे विभृत्रः ॥२॥
उत्तानायामजनयन्त्सुषूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।
शिरिणायां चिदक्तुना महोभिरपरीवृतो वसति प्रचेताः ॥३॥
जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम् ॥४॥
आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।
मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ॥५॥
ज्ञेया भागं सहसानो वरेण त्वा दूतासो मनुवद्वदेम ।
अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ॥६॥

* * *

१ अग्नि सबसे प्रथम होतव्य और पिताके समान हैं। अग्नि मनुष्यों द्वारा यज्ञ-स्थानमें प्रज्वालित हुए
वह दीप्ति-पूर्ण, मरण-रहित, विभिन्न-प्रज्ञा-युक्त, अन्नवान्, बलवान् और सबके सेवनीय हैं।

२ अमर, विशिष्ट प्रज्ञावाले, विचित्र दीप्ति-युक्त अग्नि मेरे सब स्तुति-युक्त आह्वान सुनें। दो लाल
अग्निका रथ वहन करते हैं। वह विविध स्थानोंमें जाते हैं।

३ अध्वर्यु लोगोंने ऊर्द्ध्वमुख अरणि या काष्ठमें प्रेरित अग्निको उत्पन्न किया है। अग्नि विविध ओषधि
गर्भरूपसे, अवस्थित हैं। रातमें उत्तम- ज्ञानवान् अग्नि, महादीप्ति-युक्त होकर, वास करते हैं। उन्हें अन्धकार नहीं
सकता ।

४ सारे भुवनोंके अधिष्ठाता, महान्, सर्वत्रगामी, शरीरवान्, प्रवृद्ध हव्य द्वारा व्याप्त, बलवान् और सबके
मान अग्निकी हम हव्य-घृतके द्वारा पूजा करते हैं ।

५ सर्वव्यापी और यज्ञके अभिमुख आनेकी इच्छा करते हुए अग्निको घृत द्वारा हम सिक्त करते हैं। वह,
चित्तसे, उस घृतको ग्रहण करें। मनुष्योंके भजनीय और श्लाघनीय वर्णवाले अग्निके पूर्ण प्रज्वलित होनेपर उन्हें
छू नहीं सकता।

६ अपने तेजोबलसे शत्रुओंको पराजित करनेके समय, हे अग्नि, तुम हमारी सम्भोग-योग्य स्तुतिको
तुम्हारा आश्रय पाकर हम मनुकी तरह स्तोत्र करते हैं। उन बहुल-मधुस्पर्शी और धन-प्रद अग्निका जुहू और
द्वारा मैं आह्वान करता हूँ ।

११ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम् ।
इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥१॥
सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
अमर्त्यं चिद्दासं मन्यमानमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः ॥२॥
उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन्त्स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च ।
तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्रवायवे सिस्रते न शुभ्राः ॥३॥
शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः ।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मेदासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥४॥
गुहाहितं गुह्यं गूळ्हमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम् ।
उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसमहन्नहिं शूर वीर्येण ॥५॥
स्तवानुत इन्द्र पूर्व्या महान्युत स्तवाम नूतना कृतानि ।
स्तवावज्रं बाह्वोरुशन्तं स्तवाहरी सूर्यस्य केतू ॥६॥
हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम् ।
वि समना भूमिरप्रथिष्टारंस्त पर्वतश्चित् सरिष्यन् ॥७॥

१ इन्द्र, तुम मेरी स्तुति सुनो। तिरस्कार नहीं करना। हम तुम्हारे धन-दानके पात्र हैं। नदीकी तरह प्रवाहशाली यह हव्य यजमानके लिये धनेच्छा करता है। यह तुम्हें वर्द्धित करे।

२ शूर इन्द्र, तुमने जो जल बरसाया था, वृत्रने उसी प्रभूत जलपर आक्रमण किया था। तुमने उस जलको छोड़ दिया था। उस दस्यु या दास (वृत्र)ने अपनेको अमर समझा था। स्तुति द्वारा वर्द्धित होकर उसको तुमने नीचे पटक दिया।

३ शूर इन्द्र, जिस सुखकर या रुद्रकृत ऋङ्मंत्र और स्तोत्रकी तुम इच्छा करते हो और जिसमें तुम्हें आनन्द मिलता है, वह सब शुभ्र और दीप्यमान स्तुति, यज्ञके प्रति, तुम्हारे लिये प्रस्तुत होती है।

४ इन्द्र, स्तोत्र द्वारा हम तुम्हारा सुखकर बल वर्द्धित करते तथा तुम्हारे हाथोंमें दीप्त वज्र अर्पण करते हैं। वर्द्धित और तेजोयुक्त होकर तुम दास लोगोंको, सूर्य-रूप आयुध द्वारा, पराभूत करते हो।

५ शूर इन्द्र, गुहामें अवस्थित, अप्रकाश्य, लुक्कायित, तिरोहित और जलमें अवस्थित जिस वृत्र (अहि)ने अपनी शक्तिसे अन्तरीक्ष और द्युलोकको विस्मित किया था, उसको वज्र द्वारा तुमने विनष्ट किया था।

६ इन्द्र, हम तुम्हारी प्राचीन महत्कीर्तियोंकी स्तुति करते हैं तथा तुम्हारे आधुनिक कृतकर्मोंकी स्तुति करते हैं। तुम्हारे दोनों हाथोंमें दीप्यमान वज्रकी स्तुति करते हैं। तुम सूर्यात्मा हो। तुम्हारे पताका-स्वरूप हरि नामके अश्वोंकी हम स्तुति करते हैं।

७ इन्द्र, तुम्हारे शीघ्रगामी दोनों घोड़ जलवर्षी मेघध्वनि करते हैं। समतल पृथिवी मेघ-गर्जन सुनकर प्रसन्न हुई। मेघने भी, इधर-उधर, घमकर शोभा प्राप्त की।

नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन्त्सं मातृभिर्वावशानो अक्रान् ।
दूरे पारेवाणीं वर्धयन्त इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन्नि ॥८॥
इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः ।
अरेजेतां रोदसी भियानेकनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात् ॥९॥
अरोरवीद्वृष्णो अस्य वज्रो मानुषं यन्मानुषो निजूर्वात् ।
नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्पपिवान्त्सुतस्य ॥१०॥
पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।
पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वित्था सुतः पौर इन्द्रमाव ॥११॥
त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः ।
अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते रायो दावने स्याम ॥१२॥
स्यामतेत इन्द्र येत ऊती अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्तः ।
शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देवास्मे रयिं रासि वीरवन्तम् ॥१३॥
रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासिशर्ध इन्द्र मारुतं नः ।
सजोषसो ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यग्रणीतिम् ॥१४॥

८ प्रमाद-शून्य मेघ अन्तरीक्षमें आया और मातृ-भूत जलके साथ इधर-उधर घूमने लगा। मरुतोंने दूर अन्तरीक्षमें अवस्थित शब्दको वर्द्धित करते हुए, इन्द्र द्वारा प्रेरित उस शब्दको चारों ओर फैला दिया।

९ बली इन्द्रने इधर-उधर संचारी मेघमें अवस्थित मायावी वृत्रको मार गिराया। जलवर्षक इन्द्रके व्यापक शब्दसे भय पाकर द्यावापृथिवी कम्पित हुई।

१० जिस समय मनुष्योंके हितकारी इन्द्रने मनुष्योंके शत्रु वृत्रके विनाशकी इच्छा की थी, उस समय वर्षक इन्द्रका वज्र बार-बार गर्जन करने लगा। इन्द्रने अभिषुत सोमपान करके मायावी दानवकी सारी मा निपातित कर दिया था।

११ इन्द्र, तुम अभिषुत सोमपान करो। मददाता सोमरस तुम्हें आमोदित करे। सोमरस तुम्हारे उदरको करके तुम्हें प्रसन्न करे। इस प्रकार उदर-पूरक सोमरस इन्द्रको तृप्त करे।

१२ इन्द्र हम मेधावी हैं। हम तुम्हारे अन्दर स्थान पावेंगे। कर्मफलकी कामनासे हम तुम्हारी सेवा यज्ञ करेंगे। तुम्हारा आश्रय पानेकी इच्छासे हम तुम्हारी प्रशंसाका ध्यान करते हैं, ताकि हम इसी क्षण तुम्हारे दानका पात्र हो सकें।

१३ इन्द्र, तुम्हारे आश्रय-लाभकी इच्छासे जो तुम्हारा हव्य वर्द्धित करते हैं, हम भी उन्हींकी तरह आधीन हो जायँ। द्युतिमान् इन्द्र, हम जिस धनकी इच्छा करते हैं, तुम हमें सर्वापेक्षा बलवान् और वीर-पुत्र-युक्त धन दो।

१४ इन्द्र तुम हमें गृह दो, बन्धु दो और महापुरुषोंकी तरह वीर्य दो, प्रसन्न-चित्त वायुगण आनन्दित होकर आगे लाया हुआ सोम पान करें।

व्यन्त्विन्नु येषु मन्दसानस्तृपत्सोमं पाहि द्रह्यदिन्द्र ।
अस्मान्त्सु पृत्स्वातरुत्रावर्धयो द्यां बृहद्भिरर्कैः ॥१५॥
बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रोक्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान् ।
स्तृणानासो बर्हिः पस्त्यावत्त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन् ॥१६॥
उग्रेष्विन्नु शूर मन्दसानस्त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र ।
प्रदोधुवच्छ्मश्रुषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम् ॥१७
धिष्वाशवः शूर येन वृत्रमवाभिनद्दानुमौर्णवाभम् ।
अपावृणोर्ज्योतिरार्याय निसव्यतः सादि दस्युरिन्द्र ॥१८॥
सनेम येत ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून् ।
अस्मभ्यं तत्त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय ॥१९॥
अस्यसुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः ।
अवर्तयत् सूर्यो न चक्रं भिनद्वलमिन्द्रो अंङ्गिरस्वान् ॥२०॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षास्तोतृभ्यो मातिधग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥२१॥

* * *

१५ इन्द्र, जिन मरुतोंके सहायक होनेपर तुम हृष्ट होते हो, वे शीघ्र सोम पान करें। तुम भी अपनेको दृढ़ करके तृप्तिकर सोम पान करो। शत्रुनाशक इन्द्र, बलवान् और पूजनीय मरुतोंके साथ तुम युद्धमें हमें वर्द्धित करो—द्युलोकको भी वर्द्धित करो।

१६ अनिष्ट-निवारक इन्द्र, तुम सुख-प्रद हो। जो पुरुष उक्थ द्वारा तुम्हारी सेवा करता है, वह शीघ्र ही महान् हो जाता है। जो कुश बिछाकर तुम्हारी सेवा करते हैं, वह तुम्हारा आश्रय प्राप्त कर गृहके साथ अन्न प्राप्त करते हैं।

१७ शूर इन्द्र, तुम उग्र त्रिकद्रु दिन-विशेषोंमें अत्यन्त हृष्ट होकर सोमपान करो। अनन्तर प्रसन्न होकर और अपनी दाढ़ी-मूँछमें लगे सोमको झाड़कर सोम पानके लिये हरि नामक घोड़ेपर चढ़कर आओ।

१८ इन्द्र, जिस बलके द्वारा तुमने दनुके पुत्र वृत्रको ऊर्णनाभि कीटकी तरह विनष्ट किया था, वही बल धारण करो। आर्यके लिये तुमने ज्योति दी है। दस्यु तुम्हारे बायें हैं।

१९ इन्द्र, जिन लोगोंने तुम्हारा आश्रय प्राप्त करके सारे गर्वकारी मनुष्योंको अतिक्रम किया है और आर्यभाव द्वारा दस्युका अतिक्रम किया है, हम उनको भजते हैं। तुमने त्रितके बन्धुत्वके लिये त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपका वध किया है। हमारे लिये भी वैसा ही करो।

२० इन हृष्ट और सुतवान् त्रित द्वारा वर्धित होकर इन्द्रने अर्बुदका विनाश किया था। जैसे सूर्य रथ-चक्र चलाते हैं, वैसे ही इन्द्रने अङ्गिरा लोगोंकी सहायता प्राप्त करके वज्रको घुमाया था और बलको विनष्ट किया था।

२१ इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोताका मनोरथ पूरा करती है, उसे हमें दो। तुम भजनीय हो। हमें छोड़कर और किसीको भी नहीं देना। हम पुत्र-पौत्र-युक्त होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे।

१२ सूक्त। इन्द्र देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥१॥
यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान् प्रकुपितां अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥२॥
यो हत्वाहिमरिणात् सप्तसिन्धून् यो गा उदाजदपधा बलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३॥
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवांल्लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४॥
यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विजइवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥५॥
यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्त ग्राव्णो योविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६॥

---

१ मनुष्यो या असुरो, जो प्रकाशित हैं, जिन्होंने जन्मके साथ ही देवोंमें प्रधान और मनुष्योंमें अग्रणी हो वीरकर्म द्वारा सारे देवोंको विभूषित किया था, जिनके शरीर-बलसे द्यावापृथिवी भीत हुई थी और जो महती सेना नायक थे, वही इन्द्र हैं।

२ मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने व्यथित पृथिवीको दृढ़ किया है, जिन्होंने प्रकुपित पर्वतोंको नियमित किया जिन्होंने प्रकाण्ड अन्तरीक्षको बनाया है और जिन्होंने द्युलोकको स्तब्ध किया है, वही इन्द्र हैं।

३ मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने वृत्रका विनाश करके सात नदियोंको प्रवाहित किया है, जिन्होंने बल द्वारा रोकी हुई गायोंका उद्धार किया था, जो दो मेघोंके बीचसे अग्निको उत्पन्न करते हैं और जो समर-भूमिमें शत्रुओं नाश करते हैं, वही इन्द्र हैं।

४ मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने समस्त विश्वका निर्माण किया है, जिन्होंने दासोंको निकृष्ट और गूढ़ स्थान स्थापित किया है, जो लक्ष्य जीत कर व्याधकी तरह शत्रुके सारे धनको ग्रहण करते हैं, वही इन्द्र हैं।

५ मनुष्यो या असुरो, जिन भयंकर देवके सम्बन्धमें लोग जिज्ञासा करते हैं, वह कहाँ हैं? जिनके विषयमें लो बोलते हैं कि, वह नहीं हैं और जो शासककी तरह शत्रुओंका सारा धन, विनष्ट करते हैं, विश्वास करो, व इन्द्र हैं।

६ मनुष्यो या असुरो, जो समृद्ध धन प्रदान करते हैं, जो दरिद्र याचक और स्तोताको धन देते हैं और शोभन हनु या केहुनीवाले होकर सोमाभिषव-कर्त्ता और हाथोंमें पत्थरवाले यजमानके रक्षक हैं, वही इन्द्र हैं।

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जाता स जनास इन्द्रः ॥७॥
यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेवर उभया अमित्राः।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥८॥
यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥९॥
यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥१०॥
यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११॥
यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत् सर्तवे सप्तसिन्धून्।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामरोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१२॥
द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१३॥

---

७ मनुष्यो या असुरो, घोड़े, गायें, गाँव और रथ जिनकी आज्ञाके आधीन हैं, जो सूर्य्य और उषाको उत्पन्न करते हैं और जो जल प्रेरित करते हैं, वही इन्द्र हैं।

८ मनुष्यो या असुरो, दो सेनादल, परस्पर मिलनेपर, जिन्हें बुलाते हैं, उत्तम-अधम दोनों प्रकारके शत्रु जिन्हें बुलाते हैं और एक ही तरहके रथोंपर बैठे हुए दो मनुष्य जिन्हें नाना प्रकारसे बुलाते हैं, वही इन्द्र हैं।

९ मनुष्यो या असुरो जिनके न रहनेसे कोई विजयी नहीं हो सकता, युद्धकालमें, रक्षाके लिये, जिन्हें लोग बुलाते है, जो सारे संसारके प्रतिनिधि हैं और जो क्षयरहित पर्वतादिको भी नष्ट करते हैं, वही इन्द्र हैं।

१० मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने वज्र द्वारा अनेक महापापी अपूजकोंका विनाश किया है, जो गर्वकारी मनुष्यको सिद्धि प्रदान करते हैं और जो दस्युओंके हन्ता हैं, वही इन्द्र हैं।

११ मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने पर्वतमें छिपे शम्बर असुरको चालीस वर्ष खोजकर प्राप्त किया था और जिन्होंने बल-प्रकाशक अहि नामके सोये हुए दैत्यका विनाश किया था, वही इन्द्र हैं।

१२ मनुष्यो या असुरो, जो सप्त वर्ण या वराह, स्वपत, विद्युत, महः, धूपि, स्वापि, गृहमेध आदि सात रश्मियों वाले, अभीष्टवर्षी और बलवान् हैं, जिन्होंने सात नदियोंको प्रवाहित किया है और जिन्होंने वज्र-बाहु होकर स्वर्ग जानेको तैयार रौहिणको विनष्ट किया था, वही इन्द्र हैं।

१३ मनुष्यो या असुरो, द्यावापृथिवी उन्हें प्रणाम करती हैं। उनके बलके सामने पर्वत कांपते है और जो सोमपान-कर्त्ता, दृढ़ाङ्ग, वज्र-बाहु और वज्रयुक्त हैं, वही इन्द्र हैं।

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्मवर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१४॥
यः सुन्वते पचते दुध्र आचिद्वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयन्त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमावदेम ॥१५॥

* * *

१३ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद्यासु वर्धते ।
तदाहना अभवत् पिप्युषी पयोंशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥१॥
सध्रीमायन्ति परि बिभ्रतीः पयो विश्वप्स्न्याय प्रभरन्त भोजनम् ।
समानो अध्वा प्रवता मनुष्यदे यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥२॥
अन्वेको वदति यद्ददाति तद्रूपा मिनन्तदपा एक ईयते ।
विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥३॥
प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते ।
असिन्वन्दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥४॥

---

१४ मनुष्यो, जो सोमाभिषव-कर्त्ता यजमानकी रक्षा करते हैं, जो पुरोडाश आदि पकानेवाले, स्तोता और पाठक यजमानकी रक्षा करते हैं और जिनके वर्द्धक स्तोत्र, सोम और हमारा अन्न हैं, वही इन्द्र हैं ।

१५ इन्द्र, दुर्धर्ष होकर सोमाभिषवकर्त्ता और पाककारी यजमानको अन्न प्रदान करते हो, इसलिये तुम्हीं हो । हम प्रिय और वीर पुत्र, पौत्र आदिसे युक्त होकर चिरकालतक तुम्हारे स्तोत्रका पाठ करेंगे ।

---

१ वर्षा ऋतु सोमकी माता है । उत्पन्न होकर सोम जलमें बढ़ता है; इसलिये उसीमें प्रवेश करता है । जो सो लता जलकी सार-भूत होकर वृद्धि प्राप्त होती है, वह अभिषवके उपयुक्त है । उसी सोमलताका पीयूष हुव्य है ।

२ परस्पर मिली हुई उदक-वाहिनी नदियाँ चारो ओर बह रही हैं और सारे जलोंके आश्रयभूत समुद्रको प्रदान करती हैं । निम्नगामी जलका गन्तव्य मार्ग एक ही है । इन्द्र, तुमने पहले ये सब काम किये हैं; इसलिये स्तुति-योग्य हो ।

३ एक यजमान जो दान करता है, दूसरा उसका अनुवाद करता है । एक जल पशुहिंसा करके, हिंसा बनकर, जाता है, दूसरा सारे बुरे कर्मोंका शोधन करता है । इन्द्र, तुमने पहले ये सब कर्म किये हैं, इसलिये तुम पात्र हो ।

४ इन्द्र, जैसे गृहस्थ लोग अभ्यागत अतिथिको प्रचुर धन देते हैं, वैसे ही तुम्हारा दिया धन प्रजाओंमें होकर रहता है । लोग पिता द्वारा दिया भोजन दाँतोंसे खाते हैं । इन्द्र, तुमने पहले ये सब कार्य किये हैं; स्तुति-योग्य हो ।

अधाकृणोः पृथिवीं सन्दृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक् पथः।
तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन्त्सास्युक्थ्यः ॥५॥
यो भोजनं च दयसे च वर्धनमार्द्रादाशुष्कं मधुमद्दुदोहिथ।
सशेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ॥६॥
यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणाधिदाने व्यवनीरधारयः।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उररूर्वाँ अभितः सास्युक्थ्यः ॥७॥
यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावहः।
ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यमुतैवाद्य पुरुकृत् सास्युक्थ्यः ॥८॥
शतं वा यस्य दशसाकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ।
अरज्जौ दस्यून्त्समुनब्दभीतये सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ॥९॥
विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम्।
षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्चसन्दृशः परि परो अभवः सास्युक्थ्यः ॥१०॥
सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु।
जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ॥११॥

५ इन्द्र, तुमने आकाशके लिये पृथिवीको दर्शनीय किया है। तुमने प्रवाहित नदियोंका मार्ग गमन-योग्य किया है। वृत्र-हन्ता इन्द्र, जैसे जलके द्वारा अश्वको तृप्त करते हो, वैसे ही स्तोता लोग स्तोत्र द्वारा तुम्हें तृप्त करते हैं।

६ इन्द्र, तुम भोजन और वर्द्धमान धन देते हो और आर्द्र काण्डसे शुष्क और मधुर रसवाले शस्य आदिका दोहन करते हो। सेवक यजमानको तुम धन देते हो। संसारमें तुम अद्वितीय हो। इन्द्र, तुम स्तुति-योग्य हो।

७ इन्द्र, कर्म द्वारा तुमने खेतमें फूल और फलवाली औषधिको रक्षा की है। प्रकाशमान सूर्यकी नाना प्रकारकी ज्योति उत्पन्न की है। तुमने महान् होकर चारो ओर महान् प्राणियोंको उत्पन्न किया है। तुम स्तुति-पात्र हो

८ बहु-कर्म-कर्त्ता इन्द्र, तुमने हव्यप्राप्ति और दासोंके विनाशके उद्देश से नृसरके पुत्र सहवसुका विनाश करनेके लिये बलवती वज्रधाराका निर्मल मुख-प्रदेश इसको दिया था। तुम स्तुति-योग्य हो।

९ इन्द्र, तुम एक हो। तुम्हारे सुखके लिये दस सौ घोड़ हैं। तुमने दभीति ऋषिके लिये रज्जुरहित दस्युओंका विनाश किया था। तुम सबके प्राप्य हो; इसलिये स्तुति-योग्य हो।

१० सारी नदियाँ इन्द्रकी शक्तिका अनुवर्तन करती हैं। यजमान लोग इन्द्रको अन्न प्रदान करते हैं और सब लोग कर्मकर्त्ता इन्द्रके लिये धन धारण करते हैं। तुमने विशाल द्यु, पृथ्वी, दिन-रात्रि, जल और ओषधि नामके छ स्थानोंको निश्चित किया है। पंचजनके पालक हो। इन्द्र, तुम सबके स्तुति-पात्र हो।

११ तुम्हारा वीर्य सबके लिये श्लाघनीय है। तुमने एक कर्म द्वारा शत्रुओंका धन प्राप्त किया है। तुमने बलिष्ठ जातुष्ठिरको अन्न दिया है। चूँकि यह सब कार्य तुमने किये हैं; इसलिये तुम सबके स्तुति-पात्र हो।

अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च श्रुतिम् ।
नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त् सास्युक्थ्यः ॥१२॥
अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनुद्यू न्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१३॥

* * *

१४ सूक्त। इन्द्र देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चतामद्यमन्धः ।
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥१॥
अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशायँ एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥२॥
अध्वर्यवो यो दूभीकं जघान यो गा उदाजदप हि बलं वः ।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥३॥
अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवतिं च बाहून् ।
यो अर्बुदमवनीचा बबाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ॥४॥

१२ इन्द्र, सरलतासे प्रवाहशील जलके पार जानेके लिये तुमने तुर्वीति और वय्यको मार्ग दे दिया। तुमने अन्धे और पङ्गु, परावृजको जलसे उद्धार करके अपनेको कीर्त्तिशाली बनाया है; इसलिये तुम स्तुति-योग्य

१३ निवास-दाता इन्द्र, हमें भोगके लिये धन दो। तुम्हारा वह धन प्रभूत, वासयोग्य और विचि हम प्रतिदिन इस धनके भोगकी इच्छा करते हैं। हम उत्तम पुत्र-पौत्र प्राप्त करके इस यज्ञमें प्रभूत स्तो का पाठ करेंगे।

१ अध्वर्युगण, इन्द्रके लिये सोम ले आओ। चमसके द्वारा मादक अन्न अग्निमें फेंको। वीर इन्द्र सोमपानके अभिलाषी रहते हैं। अभीष्टवर्षी इन्द्रके लिये सोम प्रदान करो। इन्द्र उसे चाहते हैं।

२ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने जलको आच्छादित करनेवाले वृत्रका, वज्रद्वारा वृक्षकी तरह, विनाश किया। उन्हीं सोमाभिलाषी इन्द्रके लिये सोम ले आओ। इन्द्रदेव सोमपानके उपयुक्त पात्र हैं।

३ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने दृभीकका विनाश किया था, जिन्होंने बल असुर द्वारा अवरुद्ध गायों उद्धार करके उसे विनष्ट किया था, उन्हीं इन्द्रके लिये, जैसे वायु अन्तरिक्षमें व्याप्त है, वैसे ही, सोमको सर्वत्र करो। जैसे जीर्णको वस्त्रके द्वारा आच्छादित किया जाता है, वैसे ही सोम द्वारा इन्द्रको आच्छादित करो।

४ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने निन्यानवे बाहु दिखानेवाले उरणका विनाश किया था तथा अर्बुदको अधो करके विनष्ट किया था, सोम तैयार होनेपर उन्हीं इन्द्रको प्रसन्न करो।

अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम् ।
यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥५॥
अध्वर्यवो यः शतं शंबरस्य पुरो विभेदाश्मनेव पूर्वीः ।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै ॥६॥
अध्वर्यवो यः शतमासहस्रं भूम्या उपस्थे ऽवपज्जघन्वान् ।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्यवृणग्भरता सोममस्मै ॥७॥
अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथातमिन्द्रे ।
गभस्तिपूतं भरत श्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥८॥
अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम् ।
जुषाणो हस्त्यमभिवावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ।
अध्वर्यवः पयसो धर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
वेदाहमस्य निभृतं म एतद्दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥१०॥
अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ।
तमूर्दरं नपृणता यवेनेन्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु ॥११॥

---

५ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने सरलतासे अश्वका विनाश किया था, जिन्होंने अशोषणीय शुष्णको स्कन्धहीन करके मार डाला था, जिन्होंने पिप्रु, नमुचि और रुधिक्राका विनाश किया था, उन्हीं इन्द्रके लिये अन्न प्रदान करो।

६ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने प्रस्तरके सदृश वज्र द्वारा शम्बरकी अतीव प्राचीन नगरियोंको छिन्न–भिन्न किया था, जिन्होंने वर्चीके सौ हजार पुत्रोंको भूमिशायी किया था, उन्हीं इन्द्रके लिये सोम ले आओ।

७ अध्वर्युगण, जिन शत्रु-हन्ता इन्द्रने भूमिकी गोदमें सौ हजार असुरोंको मार गिराया था, जिन इन्द्रने कुत्स, आयु और अतिथिग्वके प्रतिद्वन्द्वियोंका वध किया था, उनके लिये सोम ले आओ।

८ नेता अध्वर्युगण, तुम जो चाहते हो, वह इन्द्रको सोम प्रदान करनेपर तुरत मिल जायगा। प्रसिद्ध इन्द्रके लिये हस्त द्वारा शोधित सोम ले आओ। हे याज्ञिकगण, इन्द्रके लिये वह प्रदान करो।

९ अध्वर्युगण, इन्द्रके लिये सुखकर सोम तैयार करो। संभोग-योग्य जलमें शोधित सोम ऊपर ले आओ। इन्द्र प्रसन्न होकर तुम्हारे हाथोंसे तैयार किया हुआ सोम चाहते हैं। इन्द्रके लिये तुम लोग मदकारक सोम प्रदान करो।

१० अध्वर्युगण, गायका अधोदेश जैसे दुग्धसे पूर्ण रहता है, वैसे ही इन फल-प्रदाता इन्द्रको सोम द्वारा पूर्ण करो। सोमका गूढ़ स्वभाव मैं जानता हूँ। यजनीय इन्द्र सोमप्रद यजमानको अच्छी तरह जानते हैं।

११ अध्वर्युगण, इन्द्रदेव, स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरीक्षके धनके राजा हैं। जैसे यव (जौ) से धान्य रखनेका स्थान पूर्ण किया जाता है, वैसे ही सोम द्वारा इन्द्रको पूर्ण करो। वह कार्य तुम लोगोंके द्वारा पूर्ण हो।

अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१२॥

◆

१५ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रघान्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।
त्रिकद्रुकेष्वपिवत् सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥१॥
अवंशे द्यामस्तभायद्बृहन्तमा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम् ।
स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥२॥
सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम् ।
वृथासृजत् पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥३॥
स प्रवोह्ळॄन् परिगत्या दभीतेर्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ ।
सङ्गोभिरश्वैरसृजद्रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥४॥

---

१२ निवास-प्रद इन्द्र, हमें भोगके लिये धन प्रदान करो। तुम्हारा वह धन प्रभूत, वास-योग्य और वि है। हम प्रतिदिन उसी धनको भोग करनेकी इच्छा करते हैं। हम उत्तम पुत्र-पौत्र प्राप्त करके इस यज्ञमें प्रभुत स्तो पाठ करेंगे।

१ मैं बलवान् हूँ। सत्य-संकल्प इन्द्रकी यथार्थ और महती कीर्त्तियोंका वर्णन करता हूँ। इन्द्रने त्रि यज्ञमें सोम पान किया है। सोमजन्य प्रसन्नता होनेपर इन्द्रने अहिका वध किया।

२ आकाशमें इन्द्रने द्युलोकको रोक रखा है। द्यावापृथिवी और अन्तरीक्षको अपने तेजसे पूर्ण किया है। वि पृथिवीको धारण किया है और उसे प्रसिद्ध किया है। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब किया था।

३ यज्ञ-गृहकी तरह इन्द्रने माप करके, सारे संसारको पूर्वाभिमुख करके बनाया है। उन्होंने वज्र द्वारा न निकलनेवाले दरवाजोंको खोल दिया। उन्होंने अनायास ही दीर्घ कालतक जाने योग्य मार्गोंसे नदियोंको प्रेरित किया। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

४ जो असुर दभीति ऋषिको उनके नगरके बाहर ले जा रहे थे, मार्गमें उपस्थित होकर इन्द्रने उनके आयुधोंको दीप्यमान अग्निमें दग्ध कर डाला। अनन्तर दभीतिको अनेक गायें, घोड़े और रथ दिये। सोमजन्य ह उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात् सो अस्नातॄनपारयत् स्वस्ति ।
त उत्स्नाय रयिमभि प्रतस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥५॥
सोदञ्चं सिन्धुमरिणान् महित्वा वज्रेणान उषसः सम्पिपेष ।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥६॥
स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत् परावृक् ।
प्रति श्रोणः स्थाद्व्यनगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥७॥
भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य तां मद इन्द्रश्चकार ॥८॥
स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥९॥
नूनं सा ते प्रतिवरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षास्तोतृभ्यो मतिधग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१०॥

* * *

५ उन इन्द्रने धुनि, इरावती या परुष्णी नामक महानदीको, पार जानेके लिये, शान्त किया था। नदीके पार जानेमें असमर्थ लोगोंको निरापद पार किया था। वे नदी पार होकर धनको लक्ष्य करके गये थे। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

६ अपनी महिमासे इन्द्रने सिन्धुको उत्तर-वाहिनी किया है। वे व्रती सेनाके द्वारा, दुर्बल सेनाको भिन्न करके वज्र द्वारा उषाके रथको चूर्ण किया था। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

७ अपने ब्याहके लिये आयी हुई कन्याओंका भागना जानकर परावृज ऋषि सबके सामने हो उठकर खड़े हो गये। पङ्गु होनेपर भी कन्याओंके प्रति दौड़े; चक्षुहीन होनेपर भी उन्हें देखा; क्योंकि स्तुतिसे प्रसन्न होकर इन्द्रने उन्हें पैर-आँखें दे दी थीं। सोमजन्य हर्ष होनेपर इन्द्रने यह सब किया था।

८ अङ्गिरा लोगोंकी स्तुति करनेपर इन्द्रने बलको विदीर्ण किया था। पर्वतके दृढ़ द्वारको खोला था। इनकी कृत्रिम रुकावटको भी हटाया था। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

९ इन्द्र, तुमने चुमुरि और धुनि नामके असुरोंको, दीर्घ निद्रामें प्रसिद्ध करके, विनष्ट किया था। दभीति नामक राजर्षिकी रक्षा की थी। उनके वेत्रधारी दौवारिकने भी शत्रुका हिरण्य प्राप्त किया था। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

१० इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तुतिकारीका मनोरथ पूरा करती है, वही दक्षिणा तुम हमें प्रदान करो। तुम भजनीय हो, हमें छोड़कर और किसीको नहीं देना। हम पुत्र-पौत्रोंसे युक्त होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे।

* * *

१६ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्भरे ।
इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद्युवानमवसे हवामहे ॥१॥
यस्मादिन्द्राद्बृहतः किञ्चनेमृते विश्वान्यस्मिन्त्सम्भृताधिवीर्या ।
जठरे सोमं तन्वी सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥२॥
न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः ।
न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥३॥
विश्वेह्यस्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते ।
वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥४॥
वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे ।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति ॥५॥
वृषा ते वज्र उत ते वृषा रथो वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा ।
वृष्णो मदस्य वृषभत्वमीशिष इन्द्र सोमस्य तृप्णुहि ॥६॥

---

१ तुम्हारे उपकारके लिये देवोंमें ज्येष्ठतम इन्द्रके लिये दीप्यमान अग्निमें हम हव्य प्रदान करते हैं। अ उनकी मनोहर स्तुति करते हैं । अपनी रक्षाके लिये स्वयं जरा-रहित, सारे संसारको जरा देनेवाले, सोमसिक्त, स और तरुण-वयस्क इन्द्रको हम बुलाते हैं ।

२ विराट् इन्द्रके विना संसार नहीं है । जिन इन्द्रमें सारी शक्तियाँ हैं, वही इन्द्र उदरमें सो धारण करते हैं। उनके शरीरमें बल और तेज है। उनके हाथमें वज्र और मस्तकमें ज्ञान है।

३ इन्द्र, जब कि तुम शीघ्रगामी अश्वपर चढ़कर अनेक योजन जाते हो, तब द्यावापृथ्वी तु बलको पराजित नहीं कर सकतीं। समुद्र और पर्वत तुम्हारे रथका परिभव नहीं कर सकते। कोई भी द तुम्हारे बलका परिभव नहीं कर सकता।

४ सब लोग यजनीय, शत्रुनाशक, अभीष्टवर्षी और सदा सज्जित इन्द्रका यज्ञ करते हैं। तुम दाता और विद्वान हो। इन्द्रके लिये तुम भी यज्ञ करो। इन्द्र, अभीष्टवर्षी और दीप्यमान अग्निके सोम पान करो।

५ अभीष्टवर्षी और मादक सोमरस अनुष्ठाताओंके लिये उत्तेजक होकर बलप्रद, अन्न-विशिष्ट और अभी वर्षी इन्द्रके पानके लिये जाता है। सोमरसप्रद अध्वर्यु और अभीष्टवर्षी अभिषव-प्रस्तर अभीष्टवर्षी सोमका, तु लिये अभिषवण करते हैं। तुम भी अभीष्टवर्षी हो।

६ अभीष्टवर्षी इन्द्र, तुम्हारे वज्र, रथ हरिनामके अश्व और तुम्हारे सारे हथियार अभीष्टवर्षी हैं। तुम मादक और अभीष्टवर्षी सोमके अधिकारी हो। इन्द्र, अभीष्टवर्षी सोमसे तुम भी तृप्त बनो।

प्र ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः ।
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिषदिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ॥७॥
पुरा संबाधादभ्या ववृत्स्व नो धेनुर्न वत्सं यवसस्य पिप्युषी ।
सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो सम्पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि ॥८॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग् भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥

* * *

१७ सूक्त । इन्द्र देवता । । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत शुष्मा यदस्य प्रत्नथो दीरते ।
विश्वा यद्गोत्रा सहसा परीवृता मदे सोमस्य दृंहितान्यैरयत् ॥१॥
स भूतु यो ह प्रथमाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत् ।
शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत शीर्षणि द्यां महिना प्रत्यमुञ्चत ॥२॥
अधाकृणोः प्रथमं वीर्यं महद्यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः ।
रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः प्रजीरयः सिस्रते सध्र्यक्पृथक् ॥३॥

---

७ तुम शत्रुनाशक हो। तुम संग्राममें स्तोत्राभिलाषी और नौकाकी तरह उद्धारक हो। यज्ञ-कालमें मैं स्तोत्र करते-करते तुम्हारे पास जाता हूँ। इन्द्र, हमारे इस स्तुतिवाक्यको अच्छी तरह जानो, हम कूपकी तरह दानाधार इन्द्रको सिक्त करेंगे।

८ जैसे तृण खाकर तृप्त गाय वत्सको लौटाती है, वैसे ही हे इन्द्र, हमें अनिष्टसे पहले ही लौटा दो। शतक्रतु, जैसे पत्नियाँ युवाको व्याप्त करती हैं, वैसे ही हम सुन्दर स्तोत्र द्वारा एक बार तुम्हें व्याप्त करेंगे।

९ इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोताको सारे मनोरथ प्रदान करती है, वह दक्षिणा तुम हमें प्रदान करो। तुम भजनीय हो। हमें छोड़कर अन्यको नहीं देना। हम पुत्र-पौत्र-युक्त होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे।

* * *

१ स्तोताओ, तुम लोग अङ्गिरा लोगोंकी तरह, नयी स्तुति द्वारा, इन्द्रकी उपासना करो; क्योंकि इन्द्रका शोषक तेज, पूर्वकालकी तरह, उदित होता है। सोमजनित हर्षके उत्पन्न होनेपर इन्द्रने वृत्र द्वारा आक्रान्त सारी मेघ-राशिको उद्घाटित किया था।

२ जिन इन्द्रने बलका प्रकाश करके प्रथम सोमपानके लिये अपनी महिमाको बढ़ाया है और जिन शत्रुहन्ता इन्द्रने युद्धकालमें अपने शरीरको सुरक्षित रखा था, वे ही इन्द्र प्रसन्न हों। उन्होंने अपनी महिमासे अपने मस्तकपर द्युलोकको धारण किया था।

३ इन्द्र, तुमने अपना महावीर्य प्रकट किया है; क्योंकि स्तोत्र द्वारा प्रसन्न होकर तुमने शत्रु-विनाशक बल प्रकट किया है। तुम्हारे रथस्थित हरि नामक अश्वोंके द्वारा स्वस्थानसे विच्युत होकर अनिष्टकारी लोगोंमेंसे कुछ दुक बाँधकर और कुछ अलग-अलग होकर भाग गये हैं।

अधा यो विश्वा भुवनाभिमज्मनेशानकृत् प्रवया अभ्यवर्धत ।
आद्रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत्सीव्यं तमांसि दुधिता समव्ययत् ॥४॥
सः प्राचीनान् पर्वतान् दृंहदोजसाधराचीनमकृणोदपामपः ।
अधारयत् पृथिवीं विश्वधायसमस्तभ्नान् मायया द्यामवस्रसः ॥५॥
सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद्विश्वस्मादाजनुषो वेदसस्परि ।
येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक्तुविष्वणिः ॥६॥
अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादासदसस्त्वामिये भगम् ।
कृधि प्रकेतमुप मास्याभर दद्धि भागं तन्वोयेन मामहः ॥७॥
भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम ददिष्ट्वमिन्द्रापांसि वाजान् ।
अविड्ढीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः ॥८॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग् भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥

* * *

४ बहुत अन्नवाले इन्द्र अपने बलसे सारे भुवनोंको अभिभूत करके और अपनेको सबका अधिपति वर्द्धित हुए हैं। अनन्तर संसारके वाहक इन्द्रने द्याव पृथिवीको व्याप्त किया है। इन्द्रने दुःस्थित तमोराशिको चारो फेंकते हुए संसारको व्याप्त किया है।

५ इन्द्रने इधर-उधर घूमनेवाले पर्वतोंको, अपने बलसे, अचल किया है। मेघ-स्थित जलराशिको नीचे गिराया। उन्होंने संसार-धारयित्री पृथिवीको अपने बलसे धारण किया है। और बुद्धि-बलसे द्युलोकको पतनसे बचाया।

६ इन्द्र, इस संसारके लिये पर्याप्त हुए हैं। वे सबके रक्षक हैं। उन्होंने सारे जीवोंकी अपेक्षा ज्ञान-बलसे अपने हाथों संसारको निर्माण किया है। विविध-कीर्तिमान् इन्द्रने इस ज्ञानसे क्रिविको वज्र द्वा मारते हुए, पृथिवीपर लेटकर रहनेके लिये, विनष्ट किया था।

७ इन्द्र, जैसे आमरण पिता-माताके साथ रहनेवाली पुत्री अपने पितृ-कुलसे ही अंशके लिये प्रार्थ करती हैं, वैसे ही मैं तुम्हारे पास धनकी याचना करता हूँ। उस धनको तुम सबके पास प्रकट करो, धनको मापो और उसे सम्पादित करो। मेरे शरीरके भोगने योग्य धन दो। इस धनसे स्तोताओंको सम्मानित करो।

८ इन्द्र, तुम पालक हो। हम तुम्हें बुलाते हैं। तुम कर्म्म और अन्नके दाता हो। नाना प्रका आश्रय प्रदान कर तुम हमें बचाओ। अभीष्टवर्षी इन्द्र, तुम हमें अत्यन्त धनशाली करो।

९ इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोताको सारे मनोरथ प्रदान करती है, वही दक्षिणा तुम दो। तुम भजनीय हो। हमें छोड़कर अन्य किसीको नहीं देना। हम पुत्र-पौत्रसे संयुक्त होकर इस प्रभूत स्तुति करेंगे।

१८ सूक्त। इन्द्र देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

प्राता रथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः।
दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत् ॥१॥
सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुषः स होता।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊजनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा ॥२॥
हरी नुकं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन।
मोषु त्वामत्र बहवो हि विप्रा निरीरमन् यजमानासो अन्ये ॥३॥
आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिराषड्भिर्हूयमानः।
अष्टाभिर्दशाभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥४॥
आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः।
आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा षष्ठ्या सप्तत्या सोमपेयम् ॥५॥
आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङाशतेन हरिभिरुह्यमानः।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥६॥

---

१ स्तुतियोग्य और विशुद्ध यज्ञ प्रातःकाल प्रारम्भ हुआ है। इस यज्ञमें चार पत्थर, तीन प्रकारके स्वर, सात प्रकारके छन्द और दस प्रकारके पात्र हैं। यह मनुष्योंके लिये हितकर और स्वर्ग-प्रदाता है। यह मनोहर स्तुति और होम आदिके द्वारा प्रसिद्ध होगा।

२ यह यज्ञ इन इन्द्रके लिये प्रथम, द्वितीय और तृतीय सवनमें यथेष्ट हुआ। यह मानवोंके लिये शुभ फल ले आता है। दूसरे ऋत्विक् लोग भी दूसरे सिद्ध वाक्योंका गर्भ उत्पन्न करते हैं। अभीष्टवर्षी और जयशील यज्ञ अन्य देवोंके साथ मिलित होता है।

३ इन्द्रके रथमें नये स्तोत्रोंके द्वारा, शीघ्र जानेके लिये, हरिनामके अश्वोंको जोड़ा जाता है। इस यज्ञमें अनेक मेधावी स्तोता हैं। दूसरे यजमान लोग तुम्हें अच्छी तरह तृप्त नहीं कर सकते।

४ इन्द्र, तुम बुलाये जाकर दो, चार, छः, आठ अथवा दस हरि नामक घोड़ोंके द्वारा सोमपानके लिये आओ। शोभन धनवाले इन्द्र, यह सोम तुम्हारे लिये प्रस्तुत हुआ है। तुम उसे हिंसित नहीं करना।

५ इन्द्र, तुम उत्तम गतिवाले बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ अथवा सत्तर घोड़ोंके द्वारा हमारे सामने, सोमपानके लिये, आओ।

६ इन्द्र, अस्सी, नब्बे अथवा सौ अश्वोंके द्वारा ढोये जाकर हमारे सामने आओ; क्योंकि इन्द्र, तुम्हारे लिये, तुम्हारे आनन्दके लिये, पात्रमें सोम रखा हुआ है।

मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा विश्वा हरी धुरि धिष्वा रथस्य ।
पुरुत्रा हि विहव्यो बभूथास्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥७॥
न म इन्द्रेण सख्यं वि योषदस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत ।
उपज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम ॥८॥
नूनं सा ते प्रतिवरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो मतिधग् भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥

◆

१९ सूक्त। इन्द्र देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः ।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥१॥
अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तोहिमिन्द्रो अर्णोवृतं विवृश्चत् ।
प्र यद्वयो न स्वसराण्यच्छाप्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥२॥
स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम् ।
अजनयत् सूर्यं विदद्गा अक्तुनाह्नां वयुनां निसाधत् ॥३॥

---

७ इन्द्र, मेरी स्तुतिके सामने आओ। जगद्व्यापी दोनों अश्वोंको रथके अग्र भागमें संयोजित करो। संख्यक यजमान तुम्हें बुलाते हैं। शूर, तुम इस यज्ञमें हृष्ट होओ।

८ इन्द्रके साथ मेरी मैत्री वियुक्त न हो। इन्द्रकी यह दक्षिणा हमें अभिमत फल प्रदान करे। हम प्रशंसनीय और आपदको हटानेवाले दोनों हाथोंके पास अवस्थिति करते हैं। प्रत्येक युद्धमें हम विजयी

९ इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोताके मनोरथ पूर्ण करती है, वही दक्षिणा हमें प्रदान तुम भजनीय हो। हमें छोड़कर दूसरेको दक्षिणा नहीं देना। हम पुत्र-पौत्र-युक्त होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति

---

१ सोमाभिषवकर्त्ता मनीषी यजमानका मादक अन्न, आनन्दके लिये, इन्द्र भक्षण करें। इस प्राचीन वर्द्धमान होकर इन्द्र इसमें निवास करते हैं। इन्द्रके स्तोत्राभिलाषी ऋत्विक् भी इसमें निवास कर चुके हैं।

२ इस मदकर सोमसे आनन्द-निमग्न होकर, इन्द्रने हाथोंमें वज्र धारण करके, जलके आवरक छेदन किया था। उस समय प्रसन्नता-दायक जल-राशि, जैसे पक्षिगण पुष्करिणीके सामने जाते हैं, समुद्रके सामने जाने लगी।

३ अहिहन्ता और पूजनीय इन्द्रने जल-प्रवाहको समुद्रके सामने प्रेरित किया। उन्होंने समुद्रको करके गायें प्राप्त कीं तथा तेजोबलसे दिवसोंको प्रकाशित किया।

सो अप्रतीनि मनवे पुरूणीन्द्रो दाशद्दाशुषे हन्ति वृत्रम्।
सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत् पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ ॥४॥
स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा देवो रिणङ्मर्त्याय स्तवान्।
आ यद्रयिं गुहदवद्यमस्मै भरदंशं नैतशो दशस्यन् ॥५॥
सरन्धयत् सदिवः सारथये शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय।
दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ॥६॥
एवा त इन्द्रोचथमहेम श्रवस्या न त्मना वाजयन्तः।
अश्याम तत् साप्तमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥७॥
एवा ते गृत्समदाः शूर मन्मावस्यवो न वयुनानि तक्षुः।
ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं सुक्षितिं सुम्नमश्युः ॥८॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षास्तोतृभ्यो मातिधग् भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥

* * *

---

४ इन्द्रने हव्यदाता मनुष्यको यजमानके लिये बहुसंख्यक उत्कृष्ट धन दान किया। वृत्रका विनाश किया। सूर्य्यकी प्राप्तिके लिये स्तोताओंमें विरोध उपस्थित होनेपर इन्द्र आश्रयदाता हुए थे।

५ इन्द्रकी स्तुति करनेपर प्रकाशमान इन्द्र सोमाभिषवकर्त्ता मनुष्य एतशके लिये सूर्य्यको लाये थे; क्योंकि जैसे पिता पुत्रको धन प्रदान करता है, वैसे ही यज्ञकालमें एतशने इन्द्रको प्रच्छन्न और अमूल्य सोम प्रदान किया था।

६ अपने सारथि राजर्षि कुत्सके लिये दीप्तियुक्त इन्द्रने शुष्ण, अशुष और कुयवको वशीभूत किया था और दिवोदासके लिये शम्बरकी निन्यानबे नगरोंको भग्न किया था।

७ इन्द्र, अन्नकी अभिलाषासे हम तुम्हें बलवान् करके तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम्हें प्राप्त करके हम सप्तपदी सख्यताका लाभ करें। देवशून्य पीयुके विरोधमें तुम वज्र फेंको।

८ बलिष्ठ इन्द्र, जैसे गमनाभिलाषी पथिक मार्ग साफ करता है, वैसे ही गृत्समदगण तुम्हारे लिये मनोरम स्तुतिकी रचना करते हैं। तुम सर्वापेक्षा नूतन हो। तुम्हारे स्तोत्राभिलाषी गृत्समदगण अन्न, बल, गृह और सुख प्राप्त करें।

९ इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोताके सारे मनोरथ पूर्ण करती है, वही दक्षिणा हमें दो। तुम भजनीय हो। हमें छोड़कर अन्य किसीको नहीं देना। हम पुत्र और पौत्रसे युक्त होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे।

२० सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

वयं ते वय इन्द्र विद्धिषुणः प्रभरामहे वाजयुर्न रथम् ।
विपन्यवो दीध्यतो मनीषा सुम्नमियक्षन्तस्त्वावतो नृन् ॥१॥

त्वं न इन्द्र त्वाभिरूतीत्वायतो अभिष्टिपासि जनान् ।
त्वमिनो दाशुषो वरूतेत्थाधीरभि यो नक्षति त्वा ॥२॥

स नो युवेन्द्रो जोहूत्रः सखा शिवो नरामस्तु पाता ।
यः संसन्तं यः शशमानमूती पचन्तं च स्तुवन्तं च प्रणेषत् ॥३॥

तमुस्तुष इन्द्र तं गृणीषे यस्मिन् पुरा वावृधुः शाशदुश्च ।
स वस्वः कामं पोपरदियानो ब्रह्मण्यतो नूतनस्यायोः ॥ ४ ॥

सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान् ब्रह्मातूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन् ।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत् पूर्व्याणि ॥ ५ ॥

---

१ इन्द्र, जिस प्रकार अन्नाभिलाषी व्यक्ति रथ तैयार करता है, उसी प्रकार हम भी तुम्हारे लिये अन्न करते हैं। तुम हमें अच्छी तरह जानते हो। हम स्तुति द्वारा तुम्हें दीप्यमान करते हैं। हम तुम्हारे जैसे पुरुषसे माँगते हैं।

२ इन्द्र, तुम हमारा पालन करते हुए हमारी रक्षा करो। जो तुम्हें चाहते हैं, उनको, तुम शत्रुओंसे, रक्षा हो। तुम हव्यदाता-यजमानके ईश्वर और उसके शत्रु को दूर करनेवाले हो। हव्य द्वारा जो तुम्हारी सेवा करता उसके लिये तुम यह सब कर्म करते हो।

३ हम यज्ञ-कार्य करते हैं। तरुण वयस्क, आह्वान-योग्य, मित्र-तुल्य और सुखदाता इन्द्र, हमारी रक्षा करें। स्तोत्रका उच्चारण करता है, क्रियाका समाधान करता है, हव्यका पाक करता है और स्तुति करता है, उसे देकर इन्द्र कर्मके पार ले जाते हैं।

४ मैं उन्हीं इन्द्रकी स्तुति करता हूँ, उन्हींकी प्रशंसा करता हूँ। उनके स्तोता पहले वर्द्धित हुए थे उन्होंने शत्रुओंका विनाश किया था। इन्द्रके निकट प्रार्थना करनेपर इन्द्र स्तोत्राभिलाषी नये यजमानकी धनेच्छा पूरण करते हैं।

५ अङ्गिरा लोगोंके मंत्रों द्वारा प्रसन्न होकर इन्द्रने उन्हें गायें लानेका मार्ग दिखा दिया था और स्तुति भी पूर्ण की थी। स्तोताओंकी स्तुति करनेपर इन्द्रने, सूर्यके द्वारा उषाका अपहरण करके, अश्नके प्राचीन को विनष्ट किया था।

सहश्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दमस्तमः ।
अव प्रियमर्शसानस्य साह्वाञ्छिरो भरद्दासस्य स्वधावान् ॥ ६ ॥
स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः पुरन्दरो दासीरैरयद्वि ।
अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत् ॥७ ॥
तस्मै तवस्यमनुदायि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्णसातौ ।
प्रति यदस्य वज्रं बाह्वोर्धुर्हत्वी दस्यून् पुर आयसीर्नितारीत् ॥ ८ ॥
नूनं सा ते प्रतिवरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो मातिधग् भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९ ॥

◆

२१ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते सत्राजिते नृजित उर्वराजिते ।
अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरेन्द्राय सोमं यजताय हर्यतम् ॥१ ॥
अभिभुवेभिभङ्गाय वन्वतेषाळ्हाय सहमानाय वेधसे ।
तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रा साहेनम इन्द्राय वोचत ॥ २ ॥

---

६ द्युतिमान्, कीर्तिमान् और अतीव दर्शनीय इन्द्र मनुष्यके लिये सदा तैयार रहते हैं। शत्रुहन्ता और बलवान् इन्द्र संसारके अनिष्टकर्त्ता दासका प्रिय मस्तक नीचे फेंकते हैं।

७ वृत्रहन्ता और पुरनाशन इन्द्रने कृष्णजन्मा दास-सेनाका विनाश किया है। मनुके लिये पृथिवी और जलकी सृष्टि की है। वह यजमानका उच्चाभिलाष पूरण करें।

८ स्तोताओंने, जल-प्राप्तिके लिये, उन इन्द्रके लिये सदा बल-वर्द्धक अन्न प्रदान किया है। जिस समय इन्द्रके हाथमें वज्र दिया गया, उस समय उन्होंने उसके द्वारा दस्युओंका हनन करके उनकी लौहमयी पुरीको ध्वस्त किया था।

९ इन्द्र, तुम्हारी धनवती दक्षिणा स्तोताके सारे मनोरथ पूर्ण करती है। उसी दक्षिणाको हमें दो। तुम भजनीय हो। हमें अतिक्रम करके अन्य किसीको नहीं देना। पुत्र और पौत्रसे युक्त होकर हम इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे।

---

१ धनजयी, स्वर्गजयी, सदाजयी, मनुष्यजयी, उर्वराभूमिजयी, अश्वजयी, गोजयी, जलजयी—अतएव सर्वजयी और यजनीय इन्द्रको लक्ष्य करके वाञ्छनीय सोम ले आओ।

२ सबके पराजय-कर्त्ता, विमर्दक, भोक्ता, अजेय, सर्वसह, पुर्णग्रीव, सर्वविधाता, सर्ववोढ़ा, दूसरोंके दुर्द्धर्ष और सर्वदा जयशील इन्द्रको लक्ष्य करके, नमः शब्दका उच्चारण करते हुए, स्तुति करो।

सत्रासाहो जनभक्षो जनंसहश्च्यवनो युध्मो अनुजोषमुक्षितः ।
वृतञ्चयः सहुरिर्विक्ष्वारित इन्द्रस्य वोचं प्रकृतानि वीर्या ॥ ३ ॥
अनानुदो वृषभो दोधतो वधो गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः ।
रध्रचोदः श्नथनो वीळितस्पृथुरिन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत् ॥ ४ ॥
यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः ।
अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥ ५ ॥
इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ ६ ॥

२२ सूक्त। इन्द्र देवता। अष्टि, अत्यष्टि और शक्करी छन्द ।

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशत् ।
स ईं ममाद महि कर्मकर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥१॥
अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ २ ॥

---

३ बहुतोंके पराजयकर्त्ता, लोगोंके भजनीय, बलवानोंके विजेता, शत्रु निवारक, योद्धा, हर्षकर-सोम-सिक्त, हिंसक, शत्रुओंके अभिभव-कर्त्ता और प्रजापालक इन्द्रके उत्कृष्ट वीर-कर्मकी सब स्तुति करते हैं ।

४ अतुलदानसम्पन्न; अभीष्टवर्षी, हिंसकोंके हन्ता, गभीर, दर्शनीय, कर्ममें अपराजेय, समृद्ध लोगोंके उत्सा दाता, शत्रुओंके कर्त्तनकारी, दृढ़ाङ्ग, जगद्व्यापी और सुन्दर-यज्ञ-विशिष्ट इन्द्रने उषासे सूर्यको उत्पन्न किया है।

५ इन्द्रके स्तोता, इष्टाभिलाषी और मनीषी अङ्गिरा लोगोंने यज्ञ द्वारा जल-प्रेरक इन्द्रके पास चुरायी गायोंका मार्ग जाना है। अनन्तर रक्षाके अभिलाषी इन्द्रके स्तोता अङ्गिरा लोगोंने स्तोत्र और पूजाके गोधन प्राप्त किया है ।

६ इन्द्र, हमें उत्तम धन दो। हमें निपुणताकी प्रसिद्धि दो। हमें सौभाग्य दो। हमारा धन बढ़ा दो। शरीरकी रक्षा करो। बातोंमें मीठापन दो। दिनको सुदिन करो।

* * *

१ पूजनीय, बहुबलशाली और तृप्तिकर इन्द्रने जैसी पहले इच्छा की थी, वैसे ही त्रिकद्रु को यव मिला अभिषुत सोम विष्णुके साथ पान करें। महान् सोमने तेजस्वी इन्द्रको महान् कार्यकी सिद्धिके लिये प्रसन्न था। सत्य और दीप्यमान सोम सत्य और प्रकाशमान इन्द्रको व्याप्त करे।

२ दीप्तिमान् इन्द्रने अपने बलसे युद्ध द्वारा क्रिविको जीता था। अपने तेजसे इन्द्रने द्यावापृथिवी चारो ओरसे पूर्ण किया था। वे सोमके बलसे बहुत बढ़े हैं। इन्द्रने एक भाग अपने पेटमें धारण करके अन्य भाग देवोंको प्रदान किया। सत्य और दीप्यमान सोम सत्य और द्योतमान इन्द्रको व्याप्त करे।

साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ ३ ॥
तव त्यं नर्यं नृतोप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतं यद्देवस्य शवसा प्रारिणा असुं रिणन्नपः ।
भुवद्विश्वमभ्या देवमोजसा विदादूर्जं शतक्रतुर्विदादिषम् ॥ ॥ ४ ॥

* * *

३ अनुवाक् । २३ सूक्त । ब्रह्मणस्पति देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीदसादनम् ॥ १ ॥
देवाश्चित्ते असुर्य प्रचेतसो बृहस्पते यज्ञियं भागमानशुः ।
उस्रा इव सूर्यो ज्योतिषा महो विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥ २ ॥
आ विबाध्या परिरापस्तमांसि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि ।
बृहस्पते भीममभित्रदम्भनं रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विन्ददम् ॥ ३ ॥
सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत् ।
ब्रह्मद्विषस्तप नो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम् ॥ ४ ॥

३ इन्द्र, तुम यज्ञके साथ सबल उत्पन्न हुए हो । तुम सब ले जानेकी इच्छा करते हो । तुमने पराक्रमके साथ बढ़कर हिंसकोंको जीता है । तुम सत् और असत्के विचारक हो । तुम स्तोताको कर्मसाधक और वाञ्छनीय धन दो । सत्य और द्योतमान् सोम सत्य और प्रकाशमान इन्द्रको व्याप्त करे ।

४ इन्द्र, तुम सबको नचानेवाले हो । तुमने जो पूर्व कालमें मनुष्योंके हितकर कर्मको किया था, वह द्युलोकमें श्लाघनीय हुआ है । अपने पराक्रमसे तुमने देव (वृत्र)की प्राण-हिंसा करके उसके द्वारा जलको बहा दिया था । इन्द्रने अपने बलसे वृत्र या अदेवको परास्त किया । शतक्रतु बल और अन्न जानें ।✽

* * *

१ हे ब्रह्मणस्पति, तुम देवोंमें गणपति और कवियोंमें कवि हो । तुम्हारा अन्न सर्वोच्च और उपमान-भूत है । तुम प्रशंसनीय लोगोंमें राजा और मंत्रोंके स्वामी हो । हम तुम्हें बुलाते हैं । तुम हमारी स्तुति सुनकर, आश्रय प्रदान करनेके लिये, यज्ञगृहमें बैठो ।

२ असुरहन्ता और प्रकृष्ट ज्ञानी बृहस्पति, देवोंने तुम्हारा यज्ञीय भाग प्राप्त किया है । जैसे ज्योति द्वारा पूजनीय सूर्य किरण उत्पन्न करते हैं, वैसे ही तुम सब मंत्र उत्पन्न करो ।

३ बृहस्पति, चारो तरफसे निन्दकों और अन्धकारोंको दूर, करके तुम ज्योतिर्मान् यज्ञ-प्रापक, भयानक, शत्रु-हिंसक, राक्षसनाशक, मेघ-भेदक और स्वर्गप्रदायक रथमें चढे हो ।

४ बृहस्पति, जो तुम्हें हव्य देता है, उसे तुम सन्मार्गमें ले जाते हो । उसे बचाते हो । उसे पाप नहीं मिलता । तुम्हारा ऐसा माहात्म्य है कि, तुम मंत्र-द्वेषियोंके सन्तापक और क्रोधके हिंसक हो ।

✽ दूसरा अनुवाक् १२ वें सूक्तसे ही प्रारम्भ होता है । भूलसे वहां नहीं दिया जा सका ।

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः ।
विश्वा इदस्माद्ध्वरसो विबाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मस्पते ॥ ५ ॥
त्वं नो गोपाः पथिकृद्विचक्षणस्तव व्रताय मतिभिर्जरामहे ।
बृहस्पते यो नो अभिह्वरो दधे स्वा तं मर्मर्तु दुच्छुना हरस्वती ॥६॥
उत वा यो नो मर्चयादनागसोरातीवा मर्त्तः सानुको वृकः ।
बृहस्पते अप तं वर्तयापथः सुगं नो अस्यै देववीतये कृधि ॥७॥
त्रातारं त्वा तनूनां हवामहेवस्पर्तरधिवक्तारमस्मयुम् ।
बृहस्पते देवनिदो निबर्हय मा दुरेवा उत्तरं सुम्नमुन्नशन् ॥८॥
त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि ।
या नो दूरे तलितो या अरातयोभिसन्ति जम्भया ता अनप्नसः ॥९॥
त्वया वयमुत्तमं धीमहे वयो बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा ।
मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि ॥१०॥
अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः ।
असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत उग्रस्य चिद्दमिता वीलुहर्षिणः ॥११॥

---

५ सुरक्षक ब्रह्मणस्पति, जिसकी तुम रक्षा करते हो, उसे दुःख कष्ट नहीं दे सकता, पाप उसे कष्ट नहीं दे सक शत्रु लोग उसे किसी तरह मार नहीं सकते, ठग उसे सता नहीं सकते। उसके लिये तुम सारे हिंसकोंको दूर कर

६ बृहस्पति, तुम हमारे रक्षक, सन्मार्गदाता और विलक्षण हो। तुम्हारे यज्ञके लिये स्तोत्र द्वारा हम स् करते हैं। जो हमारे प्रति कुटिल आचरण करता है, उसकी दुर्बुद्धि वेगवती होकर उसे शीघ्र विनष्ट करे।

७ बृहस्पति, जो गर्वोन्मत्त और सर्वग्रासी व्यक्ति हमारे सामने आकर हमारी हिंसा करता है, उसे सन्मा हटा दो। और यज्ञके लिये हमारा पथ सुगम कर दो।

८ बृहस्पति, तुम सबको उपद्रवसे बचाओ। तुम हमारे पौत्र आदिका पालन करो। हमारे लिये वचन बोलो और हमारे प्रति प्रसन्न होओ। हम तुम्हें बुलाते हैं। तुम देव-निन्दकोंका विनाश करो। दुर्बुद्धि लोग सुख न पावें।

९ ब्रह्मणस्पति, तुम्हारे द्वारा वर्द्धित होनेपर मनुष्योंके पाससे हम स्पृहणीय धन प्राप्त करें। दूर या पास जो शत्रु हमें पराजित करते हैं, उन यज्ञहीन शत्रुओंको विनष्ट करो।

१० बृहस्पति, तुम मनोरथके पूरयिता और पवित्र हो। हम तुम्हारी सहायता पाकर उत्कृष्ट अन्न करेंगे। जो दुष्ट हमें पराजित करना चाहता है, वह हमारा अधिपति न हो। हम उत्कृष्ट स्तुति द्वारा पुण्यव होकर उन्नति करें।

११ ब्रह्मणस्पति, तुम्हारे दानकी उपमा नहीं है। तुम अभीष्टवर्षी हो। युद्धमें :जाकर तुम शत्रुओं सन्ताप देते और उन्हें विनष्ट करते हो। तुम्हारा पराक्रम सत्य है। तुम ऋणका परिशोध करते हो। तुम हो और मदोन्मत्त व्यक्तियोंका दमन करते हो।

अदेवेन मनसा यो रिषण्यति शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति ।
बृहस्पते मा प्रणक्तस्य नो बधो नि कर्म्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः ॥१२॥
भरेषु हव्यो नमसोपसद्यो गन्ता वाजेषु सनिता धनं धनम् ।
विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वोमृधो बृहस्पतिर्विव वर्हा रथाँइव ॥१३॥
तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम् ।
आविस्तत्कृष्व यदसत्त उक्थ्यँ बृहस्पते विपरिरापो अर्दय ॥१४॥
बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥१५॥
मा नः स्तेनेभ्यो ये अभिद्रुहस्पदे निरामिणो रिपवोऽन्नेषु जागृधुः ।
आदेवानामोहते विव्रयो हृदि बृहस्पते न परः साम्नो विदुः ॥१६॥
विश्वेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परिस्त्वष्टाजनत् साम्नः साम्नः कविः ।
स ऋणचिदृणया ब्रह्मणस्पतिर्द्रुहो हन्ता मह ऋतस्य धर्तरि ॥ १७ ॥

---

१२ जो व्यक्ति देवशून्य मनसे हमारी हिंसा करता है और जो उग्र आत्माभिमानी हमारा वध करनेकी इच्छा करता है, हे बृहस्पति, उसका आयुध हमें न छू सके। हम वैसे बलवान् और दुष्ट शत्रुका क्रोध नाश करनेमें समर्थ हों।

१३ युद्ध-कालमें बृहस्पति आह्वान-योग्य और नमस्कार-पूर्वक उपासना-योग्य हैं। वह युद्धमें जाते हैं। सब प्रकारका धन देते हैं। सबके स्वामी बृहस्पति विजिगीषावाली सारी हिंसक सेनाओंको, रथकी तरह, निहत और विध्वस्त करते हैं।

१४ बृहस्पति, अतीव तीक्ष्ण और सन्तापक हेति आयुधसे राक्षसोंको सन्तप्त करो। इन्हीं राक्षसोंने, तुम्हारे पराक्रमके प्रसूत होनेपर भी, तुम्हारी निन्दा की थी। पूर्व कालमें तुम्हारा जो प्रशंसनीय वीर्य था, इस समय उसका आविष्कार करो और उसके द्वारा निन्दकोंका विनाश करो।

१५ यज्ञजात बृहस्पति, जिस धनकी आर्य लोग पूजा करते हैं, जो दीप्ति और यज्ञवाला धन लोगोंमें शोभा पाता है, जो धन अपने तेजसे दीप्तिवाला है, वही विचित्र धन या ब्रह्मचर्य तेज हमें दो।

१६ बृहस्पति, जो चोर द्रोह करनेमें प्रसन्न होते हैं, जो शत्रु हैं, जो दूसरेका धन चाहते हैं, जो अपने मनसे सर्वांशतः देवोंका बहिष्कार करनेकी इच्छा करते हैं और जो राक्षस-नाशक साम-स्तुति नहीं जानते, उनके हाथमें हमें नहीं देना।

१७ बृहस्पति, त्वष्टाने तुम्हें सर्व-श्रेष्ठ उत्पन्न किया है; इसलिये तुम सारे सामोंके उच्चारण-कर्त्ता हो। यज्ञ आरम्भ करनेपर ब्रह्मणस्पति उसका सारा ऋण स्वीकार करते और ऋणका परिशोध करते हैं। वह द्रोहकारीका विनाश करते हैं।

तव श्रिये व्यजिहीत पर्वतो गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः।
इन्द्रेण युजा तमसा परीवृतं बृहस्पते निरपामौब्जो अर्णवम् ॥ १८ ॥
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१९ ॥

* * *

१८ अङ्गिरोवंशीय बृहस्पति, पर्वतोंने गायोंको छिपाया था। तुम्हारी सम्पद्के लिये जिस समय वह उद्घा हुआ और तुमने गायोंको बाहर किया, उस समय इन्द्रको सहायक पाकर तुमने वृत्र द्वारा आक्रान्त जलाधारभूत राशिको नीचे किया था।

१९ ब्रह्मणस्पति, तुम इस संसारके नियामक हो। इस सूक्तको जानो। हमारी सन्ततियोंको प्रसन्न देवता लोग जिसकी रक्षा करते हैं, वह भली भाँति कल्याणवाहक है। हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें स्तुति करेंगे।

षष्ठ अध्याय समाप्त

सप्तम अध्याय

२४ सूक्त । ब्रह्मणस्पति देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

सेमामविड्ढि प्रभृतिं य ईशिषेया विधेम नवया महागिरा ।
यथा नो मीढ्वान्त्स्तवते सखा तव बृहस्पते सीषधः सोत नो मतिम् ॥१॥
यो नन्त्वाऽन्यनमन्न्योजसोतादर्दर्मन्युना शम्बराणि वि ।
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिरा वाविशद्वसुमन्तं वि पर्वतम् ॥२॥
तद्देवानां देवतमाय कर्त्वमश्रथ्नन्दृह्ळाव्रदन्त वीळिता ।
उद्गा आजदभिनद्ब्रह्मणा वलमगूहत्तमोऽव्यचक्षयत्स्वः ॥३॥
अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसातृणत् ।
तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशो बहु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम् ॥४॥
सना ता काचिद्भुवना भवीत्वा माद्भिः शरद्भिर्दुरो वरन्त वः ।
अयतन्ता चरतो अन्यदन्यदिद्या चकार वयुना ब्रह्मणस्पतिः ॥५॥

---

१ ब्रह्मणस्पति, तुम सारे संसारके स्वामी हो। हमारे द्वारा भली भाँति की गयी स्तुतिको ग्रहण करो। हम तुम्हारी, इस नवीन और बृहत् स्तुतिके द्वारा, सेवा करते हैं। हमें अभिमत फल प्रदान करो; क्योंकि, बृहस्पति, तुम्हारे बन्धु हम हैं। हमारा स्तोता तुम्हारी स्तुति करता है।

२ बृहस्पति, अपनी सामर्थ्यसे, तुमने तिरस्करणीयोंका तिरस्कार किया था, क्रोध-परवश होकर शम्बरको विदीर्ण किया था, निश्चल जलको चालित किया था और गोधनपूर्ण पर्वतमें प्रवेश किया था।

३ देव-श्रेष्ठ देव बृहस्पतिके कार्यसे सुदृढ़ पर्वत शिथिल हुआ था और स्थिर वृक्ष भग्न हुआ था। उन्होंने गायोंका उद्धार किया था। मंत्र द्वारा बलासुरको भिन्न किया था। अन्धकारको अदृश्य किया था। आदित्यको प्रकट किया था।

४ बृहस्पतिने पत्थरकी तरह दृढ़ मुखवाले, मधुर जलसे पूर्ण और निम्न अवनत जिस मेघका, बल-प्रयोग द्वारा, वध किया था, उसका आदित्य-किरणोंने जल पान किया था और उन्होंने ही जलधारामय वृष्टिका सिंचन किया था।

५ ऋत्विको, तुम्हारे ही लिये बृहस्पतिके सनातन और विचित्र प्रज्ञानने महीने-महीने और साल साल होने वाली वर्षाका द्वार उद्घाटित किया था। बृहस्पतिने ऐसे प्रज्ञानोंको मंत्र-विषयक किया था। चेष्टा करके द्यावापृथिवी परस्पर सुख बढ़ाती हैं।

अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधिं पणीनां परमं गुहाहितम् ।
ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन्तदुदीयुराविशम् ॥६॥
ऋतावानः प्रतिचक्ष्यानृता पुनरात आतस्थुः कवयो महस्पथः ।
ते बाहुभ्यां धमितमग्निमश्मनि नकिष्षो अस्त्यरणो जहुर्हितम् ॥७॥
ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिर्यत्र वष्टि प्रतदश्नोति धन्वना ।
तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः ॥८॥
ससंनयः सविनयः पुरोहितः स सुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः ।
चाक्ष्मो यद्वाजं भरते मती धनादित्सूर्यस्तपति तप्यतुर्वृथा ॥९॥
विभु प्रभु प्रथमं मेहनावतो बृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या ।
इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जना उभये भुञ्जते विशः ॥१०॥
यो वरे वृजने विश्वथा विभुर्महामुरण्वः शवसा ववक्षिथ ।
स देवो देवान् प्रति पप्रथे पृथु विश्वेदुता परिभूर्ब्रह्मणस्पतिः ॥११॥
विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्रमिनन्ति व्रतं वाम् ।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पतो हविर्नोन्नं युजेव वाजिना जिगातम् ॥१२॥

---

६ विज्ञ अङ्गिरा लोगोंने, चारो ओर खोजते हुए, पणियोंके दुर्गमें छिपाये हुए परम धनको प्राप्त किया था। मायाका दर्शन करके वे जिस स्थानसे गये थे, फिर वहीं गये ।

७ सत्यवादी और सर्वज्ञाता अङ्गिरा लोग, मायाका दर्शन करके, पुनः प्रधान मार्गसे, उसी ओर गये । उन्हों हाथोंसे जलाये अग्निको पर्वतपर फेंका । पहले वह ध्वंसक अग्नि वहाँ नहीं थे ।

८ बृहस्पति वाण-क्षेपक और सत्यरूप ज्यावाले हैं । वे जो चाहते हैं, धनुष्के द्वारा प्राप्त कर लेते हैं । जिस वा को वह फेंकते हैं, वह कार्य-साधनमें कुशल है । वे वाण दर्शनार्थ उत्पन्न हुए हैं । कर्ण ही उनका उत्पत्ति-स्थान है ।

९ ब्रह्मणस्पति पुरोहित हैं । वह सारे पदार्थोंको पृथक् और एकत्र करते हैं । सब उनकी स्तुति करते हैं। व युद्धमें प्रकट होते हैं । सर्वदर्शी बृहस्पति जिस समय अन्न और धन धारण करते हैं, उस समय अनायास सूर्य उगते हैं।

१० वृष्टिदाता बृहस्पतिका धन चारो ओर व्याप्त, प्रापणीय, प्रभूत और उत्तम है । कमनीय और अन्नवा बृहस्पतिने यह सारा धन दान किया है । दोनों प्रकारके मनुष्य (यजमान और स्तोता) ध्यानावस्थित चित्तसे ह धनका उपभोग करते हैं ।

११ चारो ओर व्याप्त और स्तवनीय ब्रह्मणस्पति अतीव और महान् बली, दोनों प्रकारके स्तोताओंकी, अप शक्तिसे, रक्षा करते हैं । दानादि गुणवाले बृहस्पति देवोंके प्रतिनिधि रूपसे सर्वत्र अत्यन्त विख्यात हैं। इसीलिये व सारे प्राणियोंके स्वामी भी हुए हैं ।

१२ इन्द्र और ब्रह्मणस्पति, तुम धनवान् हो । सारा सत्य तुम्हारा ही है । तुम्हारे व्रतको जल नहीं मार सक जैसे रथमें जुते हुए घोड़े खाद्यके सामने दौड़ते हैं, वैसे ही तुम भी हमारे हव्यके लिये दौड़ो ।

उताशिष्ठा अनुश्रृण्वन्ति वह्नयः सभेयो विप्रो भरते मतीधना ।
वीलुद्वेषा अनुवशऋणमाददिः सहवाजी समिथे ब्रह्मणस्पतिः ॥१३॥
ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्माकरिष्यतः ।
यो गा उदाजत् स दिवे विचाभजन्महीव रीतिः शवसासरत् पृथक् ॥१४॥
ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्यो वयस्वतः ।
वीरेषु वीराँ उपपृङ्ग्धि नस्त्वं वदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् ॥१५॥
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६॥

२५ सूक्त। ब्रह्मणस्पति देवता। जगती छन्द ।

इन्धानो अग्निं वनद्वनुष्यतः कृतब्रह्मा शूशुवद्रातहव्य इत् ।
जातेन जातमति स प्रसर्सृते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥१॥

१३ ब्रह्मणस्पतिके वेगवान् घोड़े हमारा स्तोत्र सुनते हैं। मेधावी और सभ्य अध्वर्यु, मनोरम स्तोत्र द्वारा, हव्य प्रदान करते हैं। पराक्रमियोंके दमनकारी ब्रह्मणस्पति हमारे पास, इच्छानुसार, ऋण स्वीकार करते हैं। अन्नवान् ब्रह्मणस्पति युद्धमें हव्य ग्रहण करें।

१४ जिस समय ब्रह्मणस्पति किसी महान् कर्ममें प्रवृत्त होते हैं, उस समय उनका मंत्र उनकी अभिलाषाके अनुसार सफल होता है। जिन्होंने गायोंको बाहर किया है, उन्होंने द्युलोकके लिये उनका भाग किया है। महान् स्रोतकी तरह गायें, अपने बलसे, अलग-अलग गयी हैं।

१५ ब्रह्मणस्पति, हम सब समय उत्कृष्ट नियम और अन्नवाले धनके अधिपति हों। तुम हमारे वीर पुत्रको पौत्र दो; क्योंकि तुम सबके ईश्वर हो। हमारी स्तुति और अन्नको चाहो।

१६ ब्रह्मणस्पति, तुम इस संसारके नियामक हो। तुम इस सूक्तको जानो। तुम हमारी सन्ततियोंको प्रसन्न करो। देवता लोग जिसकी रक्षा करते हैं, वह कल्याणवाही है। पुत्र और पौत्रवाले होकर हम इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे।

१ अग्निको प्रज्वलित करके यजमान शत्रुओंकी हिंसा कर सके। स्तोत्र पढ़ते और हव्य दान करते हुए यजमान समृद्धि प्राप्त कर सके। जिस यजमानको सखा कहकर ब्रह्मणस्पति ग्रहण करते हैं, वह पुत्रके पुत्रसे भी अधिक जीवित रहता है।

वीरेभिर्वीरान्वनवद्वनुष्यतो गोभी रयिं पप्रथद्बोधति त्मना ।
तोकं च तस्य तनयं च वर्धते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥२॥
सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवाँ ऋघायतो वृषेव वध्रीँरभिवष्ट्योजसा ।
अग्नेरिव प्रसितिर्नाहवर्तवे यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥
तस्मा अर्षन्ति दिव्या असश्चतः ससत्वभिः प्रथमो गोषु गच्छति ।
अनिभृष्टतविषिर्हन्त्योजसा यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥४॥
तस्मा इद्विश्वे धुनयन्त सिन्धवोच्छिद्रा शर्म दधिरे पुरूणि ।
देवानां सुम्ने सुभगः स एधते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥५॥

* * *

२६ सूक्त। ब्रह्मणस्पति देवता। जगती छन्द ।

ऋजुरिच्छंसो वनवद्वनुष्यतो देवयन्निददेवयन्तमभ्यसत् ।
सुप्रावीरिद्वनवत् पृत्सु दुष्टरं यज्वेदयज्योर्विभजाति भोजनम् ॥१॥

२ यजमान वीर पुत्रोंके द्वारा शत्रुओंके वीर पुत्रोंको मारे। वह गोधनके लिये विख्यात हुआ है औ सब समझ सकता है। बृहस्पति जिस यजमानको सखा कहकर ग्रहण करते हैं, उसका पुत्र और पौत्र भी प्राप्त करता है।

३ जैसे नदी तटको तोड़ती है, साँड़ जैसे बैलोंको पराजित करता है, वैसे ही बृहस्पतिकी सेवा करनेवाला य अपनी शक्तिसे, शत्रुओंको पराभूत करता है। जैसे अग्नि-शिखाका निवारण नहीं किया जाता, वैसे ही ब्रह्मणस्पति यजमानको सखा कहकर ग्रहण करते हैं, उसका भी निवारण नहीं किया जा सकता।

४ जिस यजमानको बृहस्पति सखा कहकर ग्रहण करते हैं, उसके पास, अप्रतिहत निर्झरिणी होकर, स्वर्गीय आता है। परिचर्या-कारियोंमें भी वही सबसे पहले गोधन प्राप्त करता है। उनका बल अनिवार्य है। वह बल शत्रुओंका विनाश करते हैं।

५ जिस यजमानको सखा रूपसे ब्रह्मणस्पति ग्रहण करते हैं, उसकी ओर सारी नदियाँ प्रवाहित होती वह सदा नानाविध सुखका उपभोग करता है। वह सौभाग्यशाली है। वह देवों द्वारा प्रदत्त सुख प्राप्त कर स पाता है।

१ ब्रह्मणस्पतिका सरल स्तोता शत्रुओंका विनाश कर डाले। देवाकांक्षी अदेवाकांक्षीको पराभूत कर डा जो बृहस्पतिको अच्छी तरह तृप्त करता है, वह युद्धमें दुर्धर्ष शत्रुओंका विनाश करता है। यज्ञपरायण भयादि धनका उपभोग कर सके।

यजस्व वीरि प्रविहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्यें।
हविष्कृणुष्व सुभगो यथाससि ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ॥२॥
स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धनानृभिः।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥ ३ ॥
यो अस्मै हव्यैर्घृतवद्भिरविधत् प्रतं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः।
उरुष्यतीमंहसो रक्षतीरिषोंऽहोश्चिदस्मा उरुचक्रिरद्भुतः ॥ ४ ॥

* * *

२७ सूक्त। आदित्यगण देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥१॥
इमं स्तोमं सक्रतवो मे अद्य मित्रो अर्यमो वरुणा जुषन्त।
आदित्यासः शुचयो धारपूता अवृजिना अनवद्या अरिष्टाः ॥ २ ॥
त आदित्यास उरवो गभीरा अदब्धासो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः।
अन्तः पश्यन्ति वृजिनोत साधु सर्वं राजभ्यः परमा चिदन्ति ॥ ३ ॥

---

२ वीर, तुम ब्रह्मणस्पतिकी स्तुति करो। अभिमानी शत्रुओंके विरुद्ध यात्रा करो। शत्रुओंके साथ संग्राममें मनको दृढ़ करो। ब्रह्मणस्पतिके लिये हव्य तैयार करो। वैसा करनेपर तुम उत्तम धन पाओगे। हम ब्रह्मणस्पतिके पाससे रक्षा चाहते हैं।

३ जो यजमान श्रद्धावान् होकर देवोंके पिता ब्रह्मणस्पतिकी, हव्य द्वारा, परिचर्या करता है, वह अपने मनुष्य और आत्मीय, अपने पुत्र और अन्यान्य परिचारकोंके साथ अन्न और धन प्राप्त करता है।

४ जो ब्रह्मणस्पतिकी परिचर्या घृत-युक्त हव्यसे करता है, उसे ब्रह्मणस्पति प्राचीन सरल मार्गसे ले जाते हैं। उसे वे पाप, शत्रु और दरिद्रतासे बचाते हैं। आश्चर्यरूप ब्रह्मणस्पति उसका महान् उपकार करते हैं।

* * *

१ मैं जुहू द्वारा, सर्वदा शोभमान आदित्योंको लक्ष्य कर, घृत-स्राविणी स्तुति अर्पण करता हूँ। मित्र, अर्यमा, भग, बहुव्यापक वरुण, दक्ष और अंश मेरी स्तुति सुनें।

२ दीप्तिमान्, वृष्टिपूत, अनुग्रहपरायण, अनिन्दनीय, हिंसा-रहित और एकविध कर्मकर्त्ता मित्र, अर्यमा और वरुणनामक आदित्य आज मेरे इस स्तोत्रका उपभोग करें।

३ महान्, गभीर, दुर्दमनीय, दमनकारी और बहुदृष्टिवाले आदित्यगण प्राणियोंका अन्तःकरण देखते हैं। दूर-देश-स्थित पदार्थ भी आदित्योंके पास निकट है।

धारयन्तः आदित्यासो जगत्स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः ।
दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्यमृतावानश्चयमाना ऋणानि ॥ ४ ॥
विद्यामादित्या अवसो वो अस्य यदर्यमन् भय आ चिन्मयोभु ।
युष्माकं मित्रावरुणा प्रणीतौ परि श्वभ्रेव दुरितानि वृज्याम् ॥ ५ ॥
सुगो हि वो अर्यमन्मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति ।
तेनादित्या अधिवोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ॥ ६ ॥
पिपर्तु नो अदिती राजपुत्रातिद्वेषांस्यर्यमा सुगेभिः ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मोपस्याम पुरुवीरा अरिष्टाः ॥ ७ ॥
तिस्रो भूमीर्धारयन्त्रीँरुतद्यून्त्रीणि व्रताविदथे अन्तरेषाम् ।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन्वरुणमित्र चारु ॥ ८ ॥
त्री रोचना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुचयो धारपूताः ।
अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ॥ ९ ॥
त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः ।
शतं नो रास्व शरदो विचक्षेश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा ॥ १० ॥

---

४ आदित्यगण स्थावर और जंगमको अवस्थापित करते और सारे भुवनोंकी रक्षा करते हैं । वे वाले और असुर्य अथवा प्राणके हेतुभूत जलकी रक्षा करते हैं । वे सत्यवाले और ऋण-परिशोधक हैं ।

५ आदित्यगण, हम तुम्हारा आश्रय प्राप्त करें । भय आनेपर तुम्हारा आश्रय सुख प्रदान करता है । हे मित्र और वरुण, तुम्हारा अनुसरण करके मैं गड्ढोंकी तरह पापोंको दूर कर दूँ ।

६ अर्यमा, मित्र और वरुण, तुम्हारा मार्ग सुगम, कण्टक-रहित और सुन्दर है । आदित्यगण, उसी मार्ग हमें ले जाओ, मीठे वचन बोलो और अविनाशी सुख दो ।

७ राजमाता अदिति शत्रुओंको लाँघकर हमें दूसरे देशमें ले जायँ । अर्यमा हमें सुगम मार्गमें ले जायँ बहुवीर-युक्त और अहिंसक होकर मित्र और वरुणका सुख प्राप्त करें ।

८ ये पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग तथा मर्त्य, जन और सत्य लोकोंको धारण करते हैं । इनके तीन व्रत (तीन सवन) हैं । आदित्यगण, यज्ञ द्वारा तुम्हारी महिमा श्रेष्ठ हुई है । अर्यमा, मित्र और वरुण, वह महत्त्व सुन्दर है ।

९ स्वर्णालङ्कार-भूषित, दीप्तिमान्, वृष्टिपूत, निद्रारहित, अनिमेषनयन, हिंसा-रहित और सबके स्तुति आदित्यगण सरल-स्वभाव संसारके लिये तीन प्रकार (अग्नि, वायु और सूर्य) के स्वर्गीय तेज धारण करते हैं ।

१० असुर वरुण, तुम देवता हो या मनुष्य, सबके राजा हो । हमें सौ वर्ष देखने दो, ताकि हम पूर्वजोंकी आयुको प्राप्त कर सकें ।

न दक्षिणा विचिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोतपश्चा ।
पाक्या चिद्वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥ ११ ॥

यो राजभ्य ऋतनिभ्यो ददाश यं वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः ।
स रेवान् याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेषु प्रशस्तः ॥ १२ ॥

शुचिरपः सूयवसा अदब्ध उपक्षेति वृद्धवयाः सुवीरः ।
नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद्य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥ १३ ॥

अदिते मित्रवरुणोत मृल यद्वो वयं चकृमा कच्चिदागः ।
उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभिनशन्तमिस्राः ॥ १४ ॥

उभे अस्मै पीपयतः समीचीर्दिवो वृष्टिं सुभगो नाम पुष्यन् ।
उभा क्षयावाजयन् याति पृत्सूभावर्धौ भवतः साधू अस्मै ॥ १५ ॥

या वो माया अभिद्रुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः ।
अश्वीव ताँ अति येषं रथेनारिष्टा उरा वा शर्मन्त् स्याम ॥१६॥

---

११ वास-प्रदाता आदित्यो, हम न तो दाहिने जानते, न बायें जानते, न सामने जानते और न पीछे जानते हूँ। मैं अपरिपक्व-बुद्धि और अतीव कातर हूँ। मुझे तुम ले जाओगे, तो मैं निर्भय ज्योतिको प्राप्त करूँगा।

१२ यज्ञके नायक और राजा आदित्योंको जो हव्य प्रदान करता है, उनका नित्य अनुग्रह जिसकी पुष्टि करता है, वही व्यक्ति धनवान्, विख्यात, वदान्य और प्रशंसित होकर तथा रथपर चढ़कर यज्ञस्थलमें जाता है।

१३ वह दीप्तिमान्, हिंसा-रहित, प्रचुर-अन्नशाली और सुपुत्रवान् होकर उत्तम शस्यवाले जलके पास निवास करता है। जो आदित्योंका अनुसरण करता है, उसका, दूर या निकटका शत्रु, वध नहीं कर सकता।

१४ अदिति, मित्र, वरुण, हम यदि तुम्हारे पास कोई अपराध करें, तो कृपा कर उसका मार्जन कर डालो। इन्द्र, हम विस्तीर्ण और निर्भय ज्योति प्राप्त कर सकें। अन्धकारमयी रजनी हमें छिपा न सके।

१५ जो आदित्योंका अनुसरण करता है, उसकी, द्यावा-पृथिवी एकत्र होकर, पुष्टि करती हैं। वह सौभाग्यशाली है और स्वर्गीय जल प्राप्त करके समृद्धि पाता है। युद्धकालमें वह शत्रुओंको पराजित करके अपने और शत्रु के निवास-स्थान पर जाता है। संसारका आधा भाग ही उसका मंगल-जनक है।

१६ पूजनीय आदित्यगण, द्रोह-कारियोंके लिये तुम्हारी जो माया बनायी गयी है और जो पाश शत्रुओंके लिये ग्रथित हुआ है, हम उनको, अश्वारोही पुरुषकी तरह, अनायास लांघ जायँ। हम हिंसाशून्य होकर परम सुखमें निवास करें।

माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादवस्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१७॥

* * *

२८ सूक्त । वरुण देवता । त्रिष्टुप छन्द ।

इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मह्ना ।
अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं भिक्षे वरुणस्य भूरेः ॥१॥
तव व्रते सुभगासः स्याम स्वाध्यो वरुण तुष्टुवांसः ।
उपायन उषसां गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनु द्यून् ॥२॥
तव स्याम पुरुवीरस्य शर्मन्नुरुशंसस्य वरुण प्रणेतः ।
यूयं नः पुत्रा आदितेरदब्धा अभि क्षमध्वं युज्याय देवाः ॥३॥
प्र सीमादित्यो असृजद्विधर्ताँ ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति ।
न श्राम्यन्ति न विमुचन्त्येते वयो न पप्तू रघुया परिज्मन् ॥४॥
वि मच्छ्रथाय रशनामिवाग ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य ।
मातन्तुश्छेदिंवयतो धियं मे मा मात्रा शार्यपसः पुरऋतोः ॥५॥

---

१७ वरुण, मुझे किसी धनी और प्रभूत--दानशील व्यक्तिके पास जातिकी दरिद्रताकी बात न कहनी प
राजन्, मुझे आवश्यक धनका अभाव न हो। हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

---

१ कवि और स्वयं शोभित वरुणके लिये यह हव्य है । वह अपनी महिमाके द्वारा सारे भूतोंको परा
करते हैं। प्रकाशमान स्वामी वरुण यजमानको प्रसन्नता प्रदान करते हैं। मैं उनकी स्तुतिकी प्रार्थना करता हूं ।

२ वरुण, हम भली भाँति तुम्हारी स्तुति, ध्यान और परिचर्या करके सौभाग्यशाली हो सकें। किरण-यु
उषाके आनेपर अग्निकी तरह हम प्रतिदिन तुम्हारी स्तुति करके प्रकाशमान हों ।

३ विश्व-नायक वरुण, तुम कितने ही वीरोंवाले हो. बहुत लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। हम तुम्हारे घ
निवास कर सकें। हिंसा-शून्य और दीप्तिमान् अदितिके पुत्रो, तुम, हमारी मैत्रीके लिये, हमारे अपराधको मिटा दो।

४ विश्व-धारक और अदिति वरुणने अच्छी तरह जलकी सृष्टि की है। वरुणकी महिमासे नदियाँ प्रवाहि
होती हैं। ये कभी विश्राम नहीं करतीं. लौटती भी नहीं। ये, पक्षियोंकी तरह, वेगके साथ पृथिवीपर जाती हैं ।

५ वरुण, मेरे पापने मुझे रस्सीकी तरह बाँध रखा है ; मुझे छुड़ाओ। हम तुम्हारी जलपूर्ण नदी प्राप्त करें।
यज्ञके बुननेके समय हमारा तन्तु कभी टूटने न पावे। असमयमें यज्ञकी मात्रा कभी विफल न हो ।

अपो सु म्यक्ष वरुण भियसं मत् सम्राड् ऋतावोनु मा गृभाय ।
दामेव वत्साद्वि मुमुग्ध्यंहो नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ॥६॥
मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टावेनः कृण्वन्तमसुर भ्रीणन्ति ।
मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म विषूमृधः शिश्रथो जीवसे नः ॥७॥
नमः पुरा ते वरुणोत नूनमुतापरः तुविजात ब्रवाम ।
त्वे हि कम्पर्वते न श्रितान्यप्रच्युतानि दुड़्भ व्रतानि ॥८॥
पर ऋणासावीरधमत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् ।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषस आ नो जीवान् वरुण तासु शाधि ॥९॥
यो मे राजन्युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह ।
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ॥१०॥
माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादवस्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥११॥

* * *

६ वरुण, मेरे पाससे भयको दूर कर दो। हे सम्राट् और सत्यवान्, मुझपर कृपा करो। जैसे रस्सीसे बछड़ेको छुड़ाया जाता है, वैसे ही पापसे मुझे बचाओ; क्योंकि तुमसे अलग होकर कोई एक पलके लिये भी आधिपत्य नहीं कर सकता।

७ असुर वरुण, तुम्हारे यज्ञमें अपराध करनेवालोंको जो आयुध मारते हैं, वे हमें न मारें। हम प्रकाशसे निर्वासित न हों। हमारे जीवनके लिये हिंसकको हटाओ।

८ हे बहुस्थानोत्पन्न वरुण, हम भूत, वर्तमान और भविष्यत् समयोंमें तुम्हारे लिये नमस्कार करेंगे ; क्योंकि हे अहिंसनीय वरुण, पर्वतकी तरह तुममें सारे अच्युत कर्म आश्रित हैं।

९ वरुण, पूर्वजोंने जो ऋण किया था, उसका परिशोध करो। इस समय मैं जो ऋण करता हूँ, उसका भी परिशोध करो, ताकि वरुण, मुझे दूसरेका उपार्जित धन भोग करनेकी आवश्यकता न हो। ऋणके कारण ऋणकर्त्ताके लिये मानों अनेक उषाओंका उदय ही नहीं हुआ। वरुण, हम उन सारी उषाओंमें जीवित रहें, ऐसी आज्ञा करो।

१० राजा वरुण, मैं भीरु हूँ। मुझसे जो बन्धु लोग स्वप्नकी भयंकर बातें कहते हैं, उनसे मुझे बचाओ। तस्कर या वृक मुझे मारना चाहता है। उससे मुझे बचाओ।

११ वरुण, मुझे किसी धनी और प्रभूत-दानशील व्यक्तिके पास जातिकी दरिद्रताकी बात न कहनी पड़े। राजन्, मुझे आवश्यक धनका अभाव न हो। हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे।

२९ सूक्त । विश्वेदेव देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

धृतव्रता आदित्या इषिरा आरे मत्कर्त्त रहसूरिवागः ।
शृण्वतो वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वाँ अवसे हुवे वः ॥१॥
यूयं देवाः प्रमतिर्यूयमोजो यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
अभिक्षत्तारो अभिचक्षमध्वमद्याचनो मृलयता परं च ॥२॥
किमू नु वः कृणवामापरेण किं सनेन वसव आप्येन ।
यूयं नो मित्रावरुणादिते च स्वस्तिमिन्द्रामरुतो दधात ॥३॥
हये देवा यूयमिदापयः स्थ ते मृलत नाधमानाय मह्यम् ।
मा वो रथो मध्यमवाड़ृते भून्मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म ॥४॥
प्र व एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवं शशास ।
आरे पाशा आरे अघानि देवा मा माधि पुत्रे विमिव ग्रभीष्ट ॥५॥
अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् ।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः ॥६॥

---

१ हे व्रतकारी, शीघ्र गमनशील और सबके प्रार्थनीय आदित्यो, गुप्तप्रसविनी स्त्रीके गर्भको तरह मेरा अपराध दूर देशमें फेंक दो। मित्र और वरुण, तुम्हारे मंगल-कार्यको मैं जानकर, रक्षाके लिये, तुम्हें बुलाता हूँ। तुम हमारी स्तुति सुनो।

२ देवगण, तुम्हीं अनुग्राहक और बल हो। तुम द्वेषियोंको हमारे पाससे अलग करो। शत्रु-हिंसक, शत्रुओंको पराजित करो। वर्त्तमान और भविष्यत्में हमें सुखी करो।

३ देवगण, अब और पीछे तुम्हारा कौन कार्य हम सिद्ध कर सकेंगे? वसु और सनातन प्राप्तव्य कार्य द्वारा हम तुम्हारा कौन कार्य सिद्ध कर सकेंगे? मित्रावरुण, अदिति, इन्द्र और मरुद्गण, तुम हमारा मंगल करो।

४ देवगण, तुम्हीं हमारे बन्धु हो। हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं। कृपा करो। हमारे यज्ञमें आनेमें तुम्हारा रथ मन्द-गति न हो। तुम्हारे समान बन्धु पाकर हम श्रान्त न हों।

५ देवगण, तुम लोगोंके बीच एक मनुष्य होकर मैंने अनेकविध पाप नष्ट कर डाले। जैसे पिता कुमार्गगामी पुत्रको उपदेश देता है, वैसे तुमने मुझे उपदेश दिया है। देवो, सारे पाश और पाप दूर हों। जैसे व्याध बच्चेके सामने पक्षीको मारता है, वैसे ही मुझे नहीं मारना।

६ पूजनीय देवो, आज हमारे सामने आओ। मैं डरकर तुम्हारे हृदयावस्थित आश्रयको प्राप्त करूं। देवो, वृकके हाथसे मारे जानेसे हमें बचाओ। पूजनीयो, जो हमें आपद्में फेंक देता है, उसके हाथसे हमें बचाओ।

माहं मघोनो वरुणप्रियस्य भूरिदाव्न आविदं सूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादवस्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥७॥

* * *

३० सूक्त । १—५ तकके इन्द्र, ६ के सोम और इन्द्र, ७ के इन्द्र, ८ के सरस्वती और इन्द्र, ९ के बृहस्पति, १० के इन्द्र और ११ मंत्रके मरुद्गण देवता हैं ।

जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

ऋतं देवाय कृण्वते सवित्र इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आपः ।
अहरहर्यात्यक्तुरपां कियात्या प्रथमः सर्ग आसाम् ॥१॥
यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत् प्र तं जनित्री विदुष उवाच ।
पथो रदन्तीरनुजोषमस्मै दिवेदिवे धुनयो यन्त्यर्थम् ॥२॥
ऊर्ध्वो ह्यस्थादध्यन्तरिक्षे ऽधा वृत्राय प्र वधं जभार ।
मिहं वसान उपहीमदुद्रोत्तिग्मायुधो अजयच्छत्रुमिन्द्रः ॥३॥
बृहस्पते तपुषाश्नेव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान् ।
यथा जघन्थ धृषता पुराचिदेवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र ॥४॥

---

७ वरुण, मुझे किसी धनी और प्रभूत-दानशील व्यक्तिसे अपनी जातिकी दरिद्रताकी बात न कहनी पड़े । राजन्, मुझे नियमित या आवश्यक धनका अभाव न हो । हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

१ वृष्टिकारी, द्युतिमान्, सबके प्रेरक और वृत्र-नाशक इन्द्रके यज्ञके लिये कभी भी जल नहीं रुकता, उसका स्रोत प्रतिदिन चला करता है । कभी उसकी पहली सृष्टि हुई थी ?

२ जिस व्यक्तिने वृत्रको अन्न प्रदान किया था, उसकी बात माता अदितिने इन्द्रसे कह दी थी । इन्द्रकी इच्छाके अनुसार नदियाँ, अपना मार्ग बनाती हुई, प्रतिदिन समुद्रकी ओर जाती हैं ।

३ चूँकि अन्तरीक्षमें उठकर वृत्रने सारे पदार्थोंको घेर डाला था; इसलिये इन्द्रने उसके ऊपर वज्र फेंका । वृष्टि-प्रद मेघसे आच्छादित होकर वृत्र इन्द्रके सामने दौड़ा था । उसी समय तीक्ष्णायुधधारी इन्द्रने उसको पराजित किया था ।

४ बृहस्पति, वज्रके समान दीप्त अस्त्रसे वृक द्वारा असुरके पुत्रोंको छेदो । इन्द्र, जैसे प्राचीन समयमें तुमने शक्ति द्वारा शत्रुओंको जीता था, उसी प्रकार इस समय हमारे शत्रुओंका विनाश करो ।

अवक्षिप दिवो अश्मानमुच्चा येन शत्रं मन्दसानो निजूर्वाः ।
तोकस्य सातौ तनयस्य भूरेरस्माँ अर्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम् ॥५॥
प्र हि क्रतुं बृहथो यं वनुथो रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ ।
इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टमस्मिन् भयस्थे कृणुतमुलोकम् ॥६॥
न मा तमन्नश्रमन्नोत तन्द्रन्न वोचाम मा सुनोतेति सोमम् ।
यो मे पृणाद्यो ददद्यो निबोधाद्यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ॥७॥
सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून् ।
त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् ॥८॥
यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुरभिख्याय तं तिगितेन विध्य ।
बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून् द्रुहे रीषन्तं परिधेहि राजन् ॥९॥
अस्माकेभिः सत्वभिः शूरशूरैर्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्वानि ।
ज्योगभूवन्ननुधूपितासो हत्वी तेषामाभरा नो वसूनि ॥१०॥

---

५ इन्द्र, तुम ऊपर रहते हो। स्तोताओंके स्तव करनेपर तुमने जिसके द्वारा शत्रुका विनाश किया वही पत्थरकी तरह कठिन वज्र द्युलोकसे निम्नाभिमुख फेंको। जिससे हम लोग यथेष्ट पुत्र, पौत्र और गो प्राप्त कर सकें, वैसी ही हमें तुम समृद्धि दो।

६ इन्द्र और सोम, जिसकी तुम हिंसा करते हो, उस द्वेषीको उन्मूलित करो। यजमानोंको शत्रु विरुद्ध प्रेरित करो। इन्द्र और सोम, तुम मेरी रक्षा करो। इस भय-स्थानमें भय-शून्य स्थान बनाओ।

७ इन्द्र मुझे क्लेश न दें, श्रान्त न करें, आलसी न बनावें। हम कभी यह न कहें कि, सोमाभिषव न को इन्द्र मेरी अभिलाषा पूर्ण करते, अभीष्ट दान करते, यज्ञको जानते और गो-समूह लेकर अभिषव-कर्ताके पा उपस्थित होते हैं।

८ सरस्वती, तुम हमें बचाओ। मरुतोंके साथ इकट्ठे होकर दृढ़ता-पूर्वक शत्रुओंको जीतो। इन्द्रने शूराभिमा और स्पर्द्धावान् शण्डिकोंके प्रधान (शण्डामर्क) को मारा था।

९ बृहस्पति, जो अन्तर्हित देशमें छिपकर हमारा प्राण-नाश करनेका अभिलाषी है, उसे खोजकर ती हथियारसे छेदो। आयुधसे हमारे शत्रुओंको जीतो। राजा बृहस्पति, द्रोहकारियोंके विरुद्ध प्राण-नाशक चारो ओर फेंको।

१० शूर इन्द्र, हमारे शत्रु-हन्ता वीरोंके साथ अपने सम्पादनीय वीर-कार्योंको सम्पन्न करो। हमारे शत्रु ब दिनोंसे गर्वपूर्ण हो रहे हैं। उनका विनाश कर उनका धन हमें दो।

तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरोपब्रुवे नमसा दैव्यं जनम्।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे ॥ ११ ॥

३१ सूक्त। विश्वेदेव देवता। त्रिष्टुप् और जगती छन्द।

अस्माकं मित्रावरुणावतं रथमादित्यैरुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा।
प्र यद्वयो न पप्तन् वस्मनस्परि श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः ॥ १ ॥
अधस्मान उद्वता सजोषसो रथं देवासो अभिविक्षु वाजयुम्।
यदाशवः पद्याभिस्तित्रतो रजः पृथिव्याः सानौ जङ्घनन्त पाणिभिः ॥ २ ॥
उतस्य न इन्द्रो विश्वचर्षणिर्दिवः शर्धेन मारुतेन सुक्रतुः।
अनु नु स्थात्यवृकाभिरूतिभीरथं महे सनये वाजसातये ॥ ३ ॥
उतस्य देवो भुवनस्य सक्षणिस्त्वष्टा ग्नाभिः सजोषा जूजुवद्रथम्।
इला भगो बृहद्दिवोत रोदसी पूषा पुरन्धिरश्विनावधापती ॥ ४ ॥
उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशोषासानक्ता जगतामपीजुवा।
स्तुषे यद्वां पृथिवि नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे ॥ ५ ॥

११ मरुतो, हम सुखकी अभिलाषासे स्तुति और नमस्कार द्वारा तुम्हारे देव और प्रादुर्भूत तथा एकत्र बलकी स्तुति करते हैं, ताकि उसके द्वारा हम प्रतिदिन वीर अपत्यवाले होकर प्रशंसनीय धनका उपयोग कर सकें।

१ जिस समय हमारा रथ अन्नाभिलाषी, मदमत्त और वन-निषण्ण पक्षियोंकी तरह निवास-स्थानसे दूसरे स्थानको जाता है, उस समय हे मित्र और वरुण, तुम लोग आदित्य, रुद्र और वसुओंके साथ मिलकर उसकी रक्षा करते हो।

२ समान प्रीतिवाले देवो, इस समय हमारे रथकी रक्षा करो। वह अन्न खोजनेके लिये देशमें गया है। इस रथमें जोते हुए घोड़े कदमसे मार्ग तै करते और विस्तीर्ण भूमिके उन्नत प्रदेशपर आघात करते हैं।

३ अथवा— सर्वदर्शी इन्द्र मरुतोंके पराक्रमसे उक्त कर्म सम्पन्न करके, स्वर्ग लोकसे आते हुए, हिंसा-शून्य आश्रयके द्वारा महाधन और अन्न-प्राप्तिके लिये हमारे रथके अनुकूल हों।

४ अथवा—संसारके सेवनीय वह त्वष्टा देव, देवपत्नियोंके साथ, प्रीतियुक्त होकर हमारे रथको चलावें। इला, महादीप्तिमान् भग, द्यावापृथिवी, बहुधी पूषा और सूर्याके स्वामी दोनों अश्विनीकुमार हमारा यह रथ चलावें।

५ अथवा—प्रसिद्ध, द्युतिमती, सुभगा, परस्पर-दर्शनी और जीवोंकी प्रेरयित्री उषा और रात्रि हमारा रथ चलावें। हे आकाश और पृथिवी, तुम दोनोंको, नये स्तोत्रसे स्तुति करता हूँ। स्थावर व्रीहि आदि अन्न देता हूँ। ओषधि, सोम और पशु—मेरे तीन प्रकारके अन्न हैं।

श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो ।
पर्षिणः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीतीरपसो युयोधि ॥ ३ ॥
मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥ ४॥
हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय ।
ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥५॥
उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।
घृणीवच्छायामरपा अशीया विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ॥६॥
क्वस्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः ।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥७॥
प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि ।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ॥८॥
स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्नवाउयोषद्रुद्रादसूर्यम् ॥९॥

---

३ रुद्र, ऐश्वर्यमें तुम सबसे श्रेष्ठ हो । हे वज्रबाहु, प्रवृद्धोंमें तुम अतीव प्रवृद्ध हो । हमें पापके उस पार ले हमारे पास पाप न आने पावे।

४ अभीष्टवर्षी रुद्र, हम अन्याय्य नमस्कार, अन्याय्य स्तुति अथवा विसदृश देवोंके सत्य आह्वान द्वारा क्रुद्ध न करें । हमारे पुत्रोंको ओषधि द्वारा परिपुष्ट करो । मैंने सुना है, तुम वैद्योंमें सर्वश्रेष्ठ हो ।

५ जो रुद्रदेव हव्यके साथ आह्वान द्वारा आहूत होते हैं, उनका, स्तोत्र द्वारा, मैं क्रोध दूर करूंगा । लोदर, शोभन आह्वानवाले, बभ्रु (पीत) वर्ण और सुनासिक रुद्र हमें न मारें ।

६ मैं प्रार्थना करता हूँ कि, अभीष्टवर्षी और मरुत्वाले रुद्र मुझे दीप्त अन्न द्वारा तृप्त करें । जैसे धूपका मनुष्य छायाको आश्रित करता है, वैसे ही मैं भी पाप-शून्य होकर रुद्रदत्त सुख प्राप्त करूँगा । मैं रुद्रकी प करूंगा ।

७ रुद्र, तुम्हारा वह सुखदाता हाथ कहाँ है, जिससे तुम दवा तैयार करके सबको सुखी करते हो । अभीष्ट रुद्र, दैव-पापके विघातक होकर तुम मुझे शीघ्र क्षमा करो ।

८ बभ्रु वर्ण, अभीष्टवर्षी और श्वेत आभावाले रुद्रको लक्ष्य करके अतीव महती स्तुतिका हम उच्चारण करते। हे स्तोता, नमस्कार द्वारा तेजस्वी रुद्रकी पूजा करो । हम उनके-उज्ज्वल नामका संकीर्त्तन करते हैं ।

९ दृढाङ्ग, बहुरूप, उग्र और बभ्रु वर्ण रुद्र दीप्त और हिरण्मय अलंकारसे सुशोभित होते हैं । रुद्र सारे भुव अधिपति और भर्त्ता हैं । उनका बल अलग नहीं होता ।

अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥१०॥
स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृला जरित्रे रुद्रस्तवानोन्यं ते अस्मन्निवपन्तु सेनाः ॥११॥
कुमारश्चित् पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रो पयन्तम् ।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥१२॥
या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शन्तमा वृषणो या मयोभु ।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥१३॥
परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात्
अवस्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृल ॥१४॥
एव बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि ।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१५॥

१० पूजायोग्य रुद्र, तुम धनुर्बाणधारी हो। पूजार्ह, तुम नाना रूपोंवाले हो और पूजनीय निष्कको धारण किया है। अर्चनार्ह, तुम सारे व्यापक संसारकी रक्षा करते हो। तुम्हारी अपेक्षा अधिक बली कोई नहीं है।

११ हे स्तोता, विख्यात रथपर चढ़े, युवा, पशुकी तरह भयंकर और शत्रुओंके विनाशक तथा उग्र रुद्रकी स्तुति करो। रुद्र, स्तुति करनेपर तुम हमें सुखी करते हो। तुम्हारी सेना शत्रुका विनाश करे।

१२ जैसे आशीर्वाद देते समय पिताको पुत्र नमस्कार करता है, वैसे ही हे रुद्र, तुम्हारे आनेके समय हम तुम्हें नमस्कार करते हैं। रुद्र, तुम बहुधनदाता और साधुओंके पालक हो। स्तुति करनेपर तुम हमें ओषधि देते हो।

१३ मरुतो, तुम्हारी जो निर्मल ओषधि है, हे अभीष्टवर्षिगण, तुम्हारी जो ओषधि अतीव सुखदात्री है, जिस ओषधिको हमारे पिता मनुने चुना था, वही सुखकर और भयहारक ओषधि हम चाहते हैं।

१४ रुद्रका हेति-आयुध हमें छोड़ दे। दीप्त रुद्रकी महती दुर्मति भी हमें छोड़ दे। सेचन-समर्थ रुद्र, धनवान् यजमानके प्रति अपने धनुषकी ज्या शिथिल करो। हमारे पुत्रों और पौत्रोंको सुखी करो।

१५ अभीष्टवर्षी, बभ्रु वर्ण, दीप्तिमान्, सर्वज्ञ और हमारा आह्वान् सुननेवाले रुद्र, हमारे लिये तुम यहां ऐसी विवेचना करो कि, हमारे प्रति कभी क्रुद्ध न हो, हमें कभी विनष्ट न करो। हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे।

३४ सूक्त । मरुद्गण देवता । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः ।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥१॥
द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्यभ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः ।
रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि ॥२॥
उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँ इवाजिषु नदस्य कर्णैं स्तुरयन्त आशुभिः ।
हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः ॥३॥
पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ॥४॥
इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिरध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः ।
आ हंसासो न स्वसराणि गन्त न मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥५॥
आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः सवनानि गन्तन ।
अश्वामिव पिप्यत धेनुमूधनि कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् ॥६॥

---

१ जलधारासे मरुत् लोग आकाशको छिपा लेते हैं। उनका बल दूसरेको पराजित करता है। वह पशुकी भयंकर हैं। वे बल द्वारा संसारको व्याप्त कर लेते हैं। वे वह्निकी तरह दीप्तिमान् और जलसे परिपूर्ण हैं। वे भ्रमणक मेघको इधर-उधर भेजकर जलको गिराते हैं।

२ सुवर्णहृदय मरुतो, चूँकि सेचन-समर्थ रुद्रने पृश्नीके निर्मल उदरमें तुम्हें उत्पन्न किया है; इसलिये, आकाश नक्षत्रोंसे सुशोभित होता है, वैसे ही, तुम भी अपने आभरणसे सुशोभित होओ। तुम शत्रु-भक्षक जल-प्रेरक हो। तुम मेघस्थ विद्युत्की तरह शोभित होओ।

३ युद्धमें तुरङ्गकी तरह मरुद्गण विशाल भुवनको सिक्त करते हैं। वे घोड़ेपर चढ़कर शब्दायमान मेघो कानके पाससे होकर द्रुत वेगसे जाते हैं। मरुतो, तुम हिरण्य-शिरस्त्राणवाले और समान-क्रोधवाले हो। तुम वृक्ष कम्पित करते हो। तुम पृषती (विन्दु-चिह्नित) मृगपर चढ़कर अन्नके लिये जाते हो ।

४ मरुद्गण मित्रकी तरह, हव्ययुक्त यजमानके लिये, सर्वदा समस्त जल ढोते हैं। वे दानशील, पृषती-मृग वा अक्षय, अन्नवाले और अकुटिलगामी अश्वकी तरह पथिकोंके आगे जाते हैं।

५ हे समान-क्रोध और दीप्तिमान् आयुधवाले मरुतो, जैसे हंस अपने निवास-स्थानपर जाता है, वैसे तुम भी महाजलस्रोतवाले मेघोंके साथ और धेनु-युक्त होकर विघ्न-शून्य मार्गसे, मधुर सोम-रससे उत हर्ष-लाभके लिये, आओ।

६ हे समान-क्रोधवाले मरुतो, जैसे तुम स्तोत्रसे आते हो, वैसे ही हमारे अभिषुत अन्नके पास आओ। घोड़ी तरह गायका अधोदेश पुष्ट करो और यजमानका यज्ञ अन्नवाला करो।

तं नो दात मरुतो वाजिनं रथ आपानं ब्रह्म चितयद्दिवेदिवे ।
इषं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवे सनिं मेधामरिष्टं दुष्टरं सहः ॥७॥
यद्युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसोऽश्वान्रथेषु भग आ सुदानवः ।
धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे महीमिषम् ॥ ८ ॥
यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यो रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिषः ।
वर्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव रुद्रा अशसो हन्तना वधः ॥ ९ ॥
चित्रं तद्वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः ।
यद्वा निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः ॥ १० ॥
तान्वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे ।
हिरण्यवर्णान् ककुहान्यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ॥ ११ ॥
ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु ।
उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गो अर्णसा ॥ १२ ॥
ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः ।
निमेघमाना अत्येन पाजसा सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् ॥ १३ ॥

---

७ मरुतो, तुम हमें अन्न-युक्त पुत्र दो। वह, तुम्हारे आगमनके समय, प्रतिदिन तुम्हारा गुण-कीर्त्तन करेगा। तुम स्तोताओंको अन्न दो। युद्ध-कालमें स्तोताको दानशीलता, युद्ध-कौशल, ज्ञान और अक्षय तथा अतुल बल दो।

८ मरुतोंके वक्षःस्थलमें दीप्त आभरण हैं। उनका दान सबके लिये सुखकर है। वे जिस समय रथमें घोड़े जोतते हैं, उसी समय जैसे धेनु बछड़ेको दूध देती है, वैसे ही, वे हव्यदाता यजमानके लिये उसके गृहमें यथेष्ट अन्न देते हैं।

९ मरुतो, जो मनुष्य, वृककी तरह, हमसे शत्रुता करता है, हे वसुगण, उस हिंसकके हाथसे हमें बचाओ। उसे ताप-प्रद चक्र द्वारा चारो ओरसे हटाओ। रुद्रगण, तुम उसके सारे अस्त्रोंको दूर फेंककर उसे विनष्ट करो।

१० मरुतो, जिस समय तुमने पृश्नीके अधोभागका दोहन किया था, उस समय स्तोताके निन्दककी हत्या की थी और त्रितके शत्रुओंका वध किया था। अहिंसनीय रुद्रपुत्रो, उस समय तुम्हारी विचित्र क्षमताको सबने जाना था।

११ महाभाग मरुतो, तुम सदा यज्ञ-स्थलमें जाते हो। यथेष्ट और प्रार्थनीय सोमके तैयार हो जानेपर हम तुम्हें बुलाते हैं। स्तुति-पाठक स्रुक्को उठाकर स्वर्ण-वर्ण और सर्व-श्रेष्ठ स्तुति-योग्य मरुद्गणसे प्रशंसनीय धनकी याचना करते हैं।

१२ स्वर्गगामी अङ्गिरोरूपी मरुतोंने प्रथम यज्ञका वहन किया था। उषाके आनेपर मरुद्गण हमें यज्ञ आदिमें प्रवृत्त करें। जैसे उषा अरुणवर्ण किरण-जालसे कृष्णवर्णा रात्रिको हटाती हैं, वैसे ही मरुद्गण विशाल, दीप्तिमान् और जल-स्रावी ज्योतिसे अन्धकारको दूर करते हैं।

१३ रुद्रपुत्र मरुद्गण वीणा-विशेष और अरुणवर्ण अलंकारसे युक्त होकर जलके निवास-भूत मेघमें वर्द्धित हुए हैं। मरुद्गण सर्वत्र प्रभाववाले बलसे जल लाते हुए प्रसन्नता-दायक और मनोहर सौन्दर्य धारण करते हैं।

ताँ इयानो महि वरूथमूतय उपघेदेना नमसा गृणीमसि ।
त्रितो न यान् पञ्चहोतॄनभिष्टय आववर्तदवराञ्चक्रियावसे ॥ १४ ॥
ययारध्रं पारयथात्यंहो यथा निदो मुञ्चथ वन्दितारम् ।
अर्वाची सा मरुतो या व ऊतिरोषु वाश्रेव सुमतिर्जिगातु ॥ १५ ॥

३५ सूक्त। अपां नपात् देवता। त्रिष्टुप् छन्द ।

उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे ।
अपां नपादाशुहेमा कुवित् स सुपेशसस्करति जोषिषद्धि ॥ १ ॥
इमं स्वस्मै हृद आसुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत् ।
अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्यर्यो भुवना जजान ॥ २ ॥
समन्यायन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति ।
तमूशुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परितस्थुरापः ॥ ३ ॥
तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परियन्त्यापः ।
सशुक्रेभिः शिक्वभीरेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥ ४ ॥

---

१४ मरुतोंसे वरणीय धनकी याचना करते हुए. अपनी रक्षाके लिये, स्तोत्र द्वारा हम उनकी स्तुति करते अभीष्ट-सिद्धिके लिये, चक्र द्वारा, त्रित उन मुख्य प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान आदि पाँच होताओं (मरुतों को आवर्तित करते हैं ।

१५ मरुतो, तुम जिस आश्रयसे आराधक यजमानको पापसे बचाते हो, जिससे स्तोताको शत्रुके हाथसे मु करते हो, मरुतो, तुम्हारा वही आश्रय हमारे सामने आवे ।

१ मैं अन्नकी इच्छासे इस स्तुतिका उच्चारण करता हूँ । शब्दकर्त्ता और शीघ्रगन्ता अपां नपात (जल- अग्नि) नामके देवता हमें प्रचुर अन्न और सुन्दर रूप दें। मैं उनकी स्तुति करता हूँ । वह स्तुतिको पसन्द करते हैं।

२ उनके लिये हम हृदयसे सुरचित इस मंत्रका अच्छी तरह उच्चारण करेंगे; वह उसे बार-बार जानें। स्वा अपां नपात्ने शत्रु-क्षेपणकारी बलसे समस्त भुवनको उत्पन्न किया है ।

३ कोई-कोई जल इकट्ठा होता है, उसके साथ दूसरा मिलता है। वह सब समुद्रके बड़वानलको प्रसन्न करते विशुद्ध जल निर्मल और दीप्तिमान् अपां नपात् नामक देवताको चारो ओर घेरकर रहता है ।

४ दर्परहित युवती जल-संहति, युवाकी तरह, अपां नपात् देवताको अलंकृत और परिवेष्टित करती है। इन्धन- और घृत-रूप अपां नपात् हमारे धनवाले अन्नकी उत्पत्तिके लिये जलके बीच निर्मल तेजो बलसे दीप्त हैं ।

अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम्।
कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम्॥ ५॥
अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः संपृचः पाहि सूरीन्।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो विनशन्नानृतानि॥ ६॥
स्व आदमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्वन्तर्वसुदेयाय विधते विभाति॥ ७॥
यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति।
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्रजायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः॥ ८॥
अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परियन्ति यह्वीः॥ ९॥
हिरण्यरूपः स हिरण्यसन्दृगपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः।
हिरण्ययात्परियोनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै॥ १०॥
तदस्यानीकमुत चारुनामापीच्यं वर्धते नप्तुरपाम्।
यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य॥ ११॥

---

५ इला, सरस्वती और भारती नामकी तीनों देवियाँ दुःख-रहित अपां नपात् देवताके लिये अन्न धारण करती हैं। वे जलके बीच उत्पन्न पदार्थके लिये प्रसारित होती हैं। अपां नपात् सबसे प्रथम उत्पन्न जलके सारभूत सोमको पीते हैं।

६ अपां नपात् द्वारा अधिष्ठित समुद्रमें उच्चैःश्रवा नामक अश्वका जन्म है—इस वरणीयका जन्म है। हे देव, तुम अपहर्त्ता हो। हिंसकके संपर्कसे स्तोताओंकी रक्षा करो। दानशून्य और झूठे लोग अपरिपक्व अथवा परिपाक-योग्य जलमें रहकर भी इस अहिंसनीय देवताको नहीं प्राप्त होते।

७ जो अपने घरमें हैं और जिनकी गायको सरलतासे दूहा जाता है, वही अपां नपात् देवता वृष्टिका जल बढ़ाते और उत्तम अन्न भक्षण करते हैं। वे जलके बीच प्रबल होकर यजमानको धन देनेके लिये भली भाँति दीप्तियुक्त होते हैं।

८ जो अपां नपात् सत्यवान्, सदा एक रूपसे रहनेवाले और अति विस्तीर्ण हैं, जो जलके बीच पवित्र देवतेजके द्वारा प्रकाशित होते हैं, सारे भूत उन्हींकी शाखाएँ हैं। फल-फूलके साथ सारी ओषधियाँ उन्हींसे उत्पन्न हैं।

९ अपां नपात् कुटिलगति मेघके बीच स्वयं ऊर्ध्व भावसे अवस्थित होनेपर भी बिजलीको पहनकर अन्तरीक्षमें चढ़े हैं। सर्वत्र उनके उत्तम माहात्म्यका कीर्त्तन करते हुए हिरण्यवर्णा नदियाँ प्रवाहित होती हैं।

१० वह हिरण्यरूप, हिरण्याकृति और हिरण्यवर्णा हैं। वह हिरण्मय स्थानके ऊपर बैठकर शोभा पाते हैं। हिरण्यदाता उन्हें अन्न देते हैं।

११ अपां नपात्‌का रश्मिसमूह-रूप शरीर और नाम सुन्दर हैं। ये दोनों, गूढ़ होनेपर भी, वृद्धिको प्राप्त होते हैं। युवती जलसंहति उन हिरण्यवर्णको अन्तरीक्षमें भली भाँति दीप्ति-युक्त करती हैं; क्योंकि जल ही उसका अन्न है।

अस्मै बहुनामवमाय सख्ये यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
संसानुमार्ज्मि दिधिषामि बिल्मैर्दधाम्यन्नैः परिवन्द ऋग्भिः ॥ १२ ॥
स ईं वृषाजनयत्तासुगर्भं स ईं शिशुर्धयति तं रिहन्ति ।
सो अपां नपादनभिम्लातवर्णोऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष ॥ १३ ॥
अस्मिन् पदे परमे तस्थिवांसमध्वस्मभिर्विश्वहा दीदिवांसम् ।
आपोनप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परिदीयन्ति यह्वीः ॥ १४ ॥
अयांसमग्ने सुक्षितिं जनायायांसमुमघवद्भ्यः सुवृक्तिं ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १५ ॥

* * *

३६ सूक्त। १ के इन्द्र २ और मधु, के मरुद्गण और माधव, ३ के त्वष्टा और शुक्र, ४ के अग्नि और शुचि, ५ के इन्द्र और नभ तथा ६ मंत्रके नभस्य देवता हैं। जगती छन्द।

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ठ गा अपोधुक्षन्त सीम विभिरद्रिभिर्नरः ।
पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादासोमं प्रथमोय ईशिषे ॥ १ ॥

---

१२ अपने मित्र और बहुत देवोंके आदि अपां नपात् देवताकी, यज्ञ, हव्य और नमस्कार द्वारा, हम प करेंगे। मैं उनके उन्नत प्रदेशको भली भाँति अलंकृत करूँगा। मैं काष्ठ और अन्न द्वारा उनको धारण करता मंत्र द्वारा उनकी स्तुति करता हूँ।

१३ सेचन-समर्थ उन अपां नपात्ने इस सारे जलके बीच गर्भ उत्पन्न किया है। वही कभी पुत्ररूप होकर पीते हैं। सारा जल उन्हींको चाटता है। दीप्तियुक्त वही स्वर्गीय अग्नि इस पृथिवीपर अन्य शरीरसे व्याप्त हैं।

१४ अपां नपात् उत्कृष्ट स्थानमें रहते हैं। वह तेज द्वारा प्रतिदिन दीप्तियुक्त हैं। महान् जल-समूह लिये अन्न ढोते हुए सतत गति द्वारा उनको वेष्टन किये हुए है।

१५ अग्निदेव, तुम शोभनीय हो। पुत्र-लाभके लिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ। यजमानके हितके लिये स्तुति लेकर आया हूँ। समस्त देवगण जो कल्याण करते हैं, वह सब हमारा हो। पुत्र और पौत्रवाले होकर हम यज्ञमें प्रभूत स्तुति कर सकें।

१ इन्द्र, तुम्हारे उद्देश्यसे प्रेरित यह सोम गव्य और जलसे युक्त है। यज्ञके नेता लोग इस सोमको प्रस्तर द्वारा अभिषुत करके मेष-लोममय दशापर्व द्वारा इसे संस्कृत करते हैं। इन्द्र, तुम सारे संसारके ईश्वर हो। देवोंके प्रथम, स्वाहाकारसे अग्निमें प्रक्षिप्त और वषट्कार द्वारा रक्षित सोम होताके पाससे पान करो।

यज्ञैः सम्मिश्ला पृषतीभिरृष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषुप्रिया उत ।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादासोमं पिबतादिवो नरः ॥ २ ॥
अमेवनः सुहवा आहिगन्तन निबर्हिषि सदतनारणिष्टन ।
अथामन्दस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥ ३ ॥
आवक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन्होतर्निषदा योनिषु त्रिषु ।
प्रतिवीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात्तव भागस्य तृप्णुहि ॥ ४ ॥
एषस्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादातृपत् पिब ॥ ५ ॥
जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु ।
अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादापिबतं सोम्यं मधु ॥६॥

---

२ यज्ञके साथ संयुक्त, पृषतीयोजित रथपर अवस्थित, अपने आयुधसे शोभित, आभरण-प्रिय, भरत वा रुद्रके पुत्र और अन्तरीक्षके नेता मरुतो, तुम कुशपर बैठकर पोताके पाससे सोम पान करो ।

३ शोभन आह्वानवाले देवो, तुम हमारे साथ आओ, कुशपर बैठो और विहार करो । अनन्तर हे त्वष्टा, तुम देवों और देवपत्नियोंके शोभनीय दलके साथ अन्नकी सेवा करके तृप्ति प्राप्त करो ।

४ मेधावी अग्नि, इस यज्ञमें देवोंको बुलाओ और उनके लिये यज्ञ करो। देवोंके आह्वानकारी अग्नि, तुम हमारे हव्यके अभिलाषी होकर गार्हपत्य आदिके तीनों स्थानोंपर बैठो। होमके लिये उत्तर वेदीपर लाये हुए सोम-रूप मधु स्वीकार करो । अग्नीध्रके पाससे सोमपान करो और अपने अंशमें तृप्त होओ ।

५ धनवान् इन्द्र, तुम प्राचीन हो । जिस सोम द्वारा तुम्हारे हाथमें शत्रु-विजयी सामर्थ्य और बल है, वही तुम्हारे लिये अभिषुत और आहुत हुआ है। तुम तृप्त होकर ब्राह्मण ऋत्विक्के पाससे सोम पान करो ।

६ हे मित्रावरुण, तुम हमारे यज्ञकी सेवा करो । होता बैठकर चिरन्तनी स्तुतिका उच्चारण करते हैं । तुम हमारा आह्वान सुनो । तुम शोभावाले हो । ऋत्विकों द्वारा परिवेष्टित अन्न तुम्हारे सामने है । इस मधुर सोमरसका, प्रशास्ताके पाससे, पान करो ।

सप्तम अध्याय समाप्त

अष्टम अध्याय

३७ सूक्त। १—४ द्रविणोदा, ५ के अश्विद्वय और ६ मंत्रके
देवता अग्नि हैं। जगती छन्द ।

मन्दस्व होत्रादनुजोषमन्धसोध्वर्यवः सपूर्णां वष्टयासिचम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशो ददिर्होत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥१॥
यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्योनामपत्यते ।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधुपोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥२॥
मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसेरिषण्यन्वीलयस्वा वनस्पते ।
आयुया धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥३॥
अपाद्धोत्रादुतपोत्रादमत्तोत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम् ।
तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ॥४॥
अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिहवां विमोचनम् ।
पृंक्तं हवींषि मधुनाहिकं गतमथासोमं पिबतं वाजिनीवसू ॥५॥

---

१ हे द्रविणोदा वा धनप्रिय अग्नि, होतृ-कृत यज्ञमें अन्न ग्रहण करके प्रसन्न और हृष्ट बनो। अध्वर्यु द्रविणोदा पूर्णाहुति चाहते हैं; इसलिये उनके लिये यह सोम प्रदान करो। सोमाभिलाषी द्रविणोदा अभी देनेवाले हैं। द्रविणोदा, होताके यज्ञमें ऋतुओंके साथ सोम पान करो।

२ हमने पहले जिसको बुलाया है, इस समय भी उन्हींको बुलाते हैं। वह आह्वान-योग्य हैं, क्योंकि व और सबके अधिपति हैं। उनके लिये अध्वर्युओं द्वारा सोम-रूप मधु तैयार किया गया है। द्रविणोदा, पोताके ऋतुओंके साथ सोम पान करो।

३ द्रविणोदा, तुम जिस अश्वपर जाते हो, वह तृप्त हो। वनस्पति, किसीकी हिंसा न करके दृढ़ घर्षणकारी, नेष्टाके यज्ञमें आकर ऋभुओंके साथ सोम पान करो।

४ द्रविणोदा, जिन्होंने होताके यज्ञमें सोम पान किया है, जो पिताके यज्ञमें हृष्ट हुए हैं, जिन्होंने नेष्टाके प्रदत्त अन्न भक्षण किया है, वही सुवर्ण-दाता ऋत्विक्के अशोषित और मृत्यु-निवारक चतुर्थ सोम-पात्रका पान क

५ अश्विनीकुमारो, जो रथ शीघ्रगामी, तुम्हारा वाहन और अभीष्ट स्थानपर तुम्हें उतार देनेवाला है, उसी रथको इस यज्ञमें हमारे सामने योजित करो। हमारा हव्य सुस्वादु करो और यहाँ आओ। अन्नवाले अ हमारा सोम पान करो।

जोष्यग्ने समिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्मजन्यं जोषि सुष्टुतिम्।
विश्वेभिर्विश्वाँ ऋतुना वसो मह उशन्देवाँ उशतः पायया हविः ॥६॥

* * *

३८ सूक्त। सविता देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

उदुष्य देवः सविता सवाय शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थात्।
नूनं देवेभ्यो विहिधाति रत्नमथाभजद्वीतिहोत्रं स्वस्तौ ॥१॥
विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्रबाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति।
आपश्चिदस्य व्रत आनिमृग्रा अयं चिद्वातो रमते परिज्मन् ॥२॥
आशुभिश्चिद्यान्विमुचाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्यामनुव्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥३॥
पुनः समव्यद्विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः।
उत्संहायास्थाद्व्यृतूँरदर्धररमतिः सविता देव आगात् ॥४॥
ननौकांसि दुर्यो विश्वमायुर्वितिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिषितं सविता ॥५॥

---

६ अग्निदेव, तुम समिधा, आहुति, लोगोंके हितकर स्तोत्र और सुन्दर स्तुतिसे युक्त होओ। तुम सबके आश्रय-दाता और हमारे हव्यके अभिलाषी होओ। हमारा हव्य चाहनेवाले सारे देवोंको, ऋभुओं और विश्वदेवोंके साथ, सोम पान कराओ।

---

१ प्रकाशक और जगद्वाहक सविता वा सूर्य, प्रसवके लिये, प्रति दिन उदित होते हैं। यही उनका कर्म है। वह स्तोताओंको रत्न देते और सुन्दर यज्ञवाले यजमानको मंगलभागी बनाते हैं।

२ प्रलम्बबाहु और प्रकाशवाले सविता, विश्वके आनन्दके लिये, उदित होकर बाहु प्रसारित करते हैं। उनके कार्यके लिये अतीव पवित्र जल-समूह प्रवाहित होता है और वायु भी सर्वतोव्यापी अन्तरीक्षमें विहरण करता है।

३ जाते-जाते जिस समय सविता शीघ्रगामी किरणों द्वारा विमुक्त होते हैं, उस समय वह निरन्तरगामी पथिकको भी विरत करते हैं। जो शत्रुके विरुद्ध जाते हैं; सविता उनकी जानेकी इच्छाको भी निवृत्त करते हैं। सविताके कर्मके अनन्तर रात्रिका आगमन होता है।

४ वस्त्र बुननेवाली रमणीकी तरह रात्रि पुनः आलोकको, भली भाँति, वेष्टन करती है। बुद्धिमान् लोग जो कर्म करते हैं, वह करनेमें समर्थ होनेपर भी मध्य मार्गमें रख देती है। विराम-रहित और ऋतुविभाग-कर्त्ता प्रकाशक सविता जिस समय फिर उदित होते हैं, उस समय लोग शय्या छोड़ते हैं।

५ अग्निके गृहमें स्थित प्रभूत तेज यजमानके भिन्न-भिन्न गृह और समस्त अन्नमें अधिष्ठित है। माता उषाने सविता द्वारा प्रेरित प्रज्ञापक यज्ञका श्रेष्ठ भाग पुत्र अग्निको दान किया है।

समाववर्ति विष्ठितो जिगीषुर्विश्वेषां काममश्चरताममाभूत् ।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागादनुव्रतं सवितुर्दैव्यस्य ॥६॥
त्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वितस्थुः ।
वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥७॥
याद्राध्यं वरुणो योनिमप्यमनिशितं निमिषि जर्भुराणः ।
विश्वो मार्ताण्डो व्रजमापशुर्गात्स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ॥८॥
नयस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमान मिनन्ति रुद्रः ।
नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥९॥
भगं धियं वाजयन्तः पुरन्धिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आयेवामस्य सङ्गथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥१०॥
अस्मभ्यं तद्दिवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राध आगात् ।
शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवात्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ॥११॥

* * *

६ स्वर्गीय सविताके व्रतकी समाप्ति होनेपर जयाभिलाषी राजा, युद्ध-यात्रा कर चुकनेपर भी, लौट आ
सारे जंगम पदार्थ घरकी अभिलाषा करते और सदा कार्य-रत व्यक्ति अपने किये आधे कर्मको भी छोड़कर घरको
लौटता है।

७ सविता, अन्तरीक्षमें तुमने जो जल-भाग रख छोड़ा है, जलान्वेषणकर्त्ता लोग चारों ओर उसे पाते हैं।
पक्षियोंके लिये वृक्षोंका विभाग किया है। कोई भी सविताके कार्यकी हिंसा नहीं कर सकता।

८ सविताके अस्त होनेपर सदा गमनशील वरुण सारे जंगम पदार्थोंको सुखकर, वाञ्छनीय और सुगम
स्थान प्रदान करते हैं। जिस समय सविता सारे भूतोंको स्थान-स्थानपर अलग-अलग कर देते हैं, उस समय
पक्षिगण भी अपने-अपने स्थानको जाते हैं।

९ इन्द्र जिसके व्रतकी हिंसा नहीं करते, वरुण, मित्र, अर्यमा और रुद्र भी हिंसा नहीं करते, शत्रुगण भी
नहीं करते, उन्हीं द्युतिमान् सविताको कल्याणके लिये इस प्रकार नमस्कार द्वारा हम आह्वान करते हैं।

१० जिनकी स्तुति सारे मनुष्य करते हैं, जो देव-पत्नियोंके रक्षक हैं, वही सविता हमारी रक्षा करें। हम
नीय, बहुप्रज्ञ और ध्यान-योग्य सविताको बलवान् करते हैं। हम धन और पशुकी प्राप्ति और संचयके सम्बन्धमें
ताके प्रिय हों।

११ सविता; तुमने हमें जो प्रसिद्ध और रमणीय धन प्रदान किया है, वह द्युलोक, भूलोक और अन्तरीक्ष
से हमारे पास आवे। जो धन स्तोताओंके वंशजोंके लिये शुभकर है, मैं बहुत-बहुत स्तुति करता हूँ कि, मुझे वही

३९ सूक्त। अश्विद्वय देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

ग्रावाणेवतदिदर्थं जरेथेगृध्रेवृक्षं निधिमन्तमच्छ।
ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा॥१॥
प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराजेव यमा वरमा सचेथे।
मेने इव तन्वा शुम्भमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु॥२॥
शृङ्गेवनः प्रथमा गन्तमर्वाक् शफाविव जर्भुराणा तारोभिः।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रार्वाञ्चायातं रथ्येव शक्रा॥३॥
नावेवनः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव।
श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खगलेव विस्रसः पातमस्मान्॥४॥
वातेवाजुर्या नद्येवरीतिरक्षी इव चक्षषायातमर्वाक्।
हस्ताविव तन्वे शंभविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ॥५॥
ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे॥६॥

१ अश्विद्वय, शत्रुके प्रति प्रेरित प्रस्तर-खण्डद्वयकी तरह शत्रुको बाधा दो। जैसे दो पक्षी वृक्षपर आते हैं, वैसे ही तुम भी यजमानके निकट आओ। मंत्रोच्चारक ब्रह्मा नामके ऋत्विक् और देशमें दो दूतोंकी तरह तुम बहुतोंके बुलाने योग्य हो।

२ अश्विद्वय, प्रातःकाल जानेवाले दो रथियोंकी तरह तुम वीर हो, दो छागोंकी तरह यमज हो, दो स्त्रियोंकी तरह सुन्दर शरीरवाले हो, दम्पतीकी तरह संगत और सबके कर्मज्ञाता हो। तुम दोनों भक्तके पास आओ।

३ देवोंमें प्रथम अश्विद्वय, तुम पशुकी दोनों सींगों वा अश्व आदिके दोनो खुरोंकी तरह वेगवान् होकर हमारे सामने आओ। शत्रु-हन्ता और स्वकर्म-समर्थ अश्विद्वय, जैसे दिनमें चक्रवाक-दम्पती आते हैं अथवा जैसे दो रथी आते हैं, वैसे ही तुम हमारे सामने आओ।

४ अश्विद्वय, नौकाकी तरह तुम हमें पार उतार दो। रथके युगकी तरह, रथचक्रके नाभि-फलककी तरह, उसके पार्श्वस्थ फलककी तरह और चक्रके बाह्यदेशके वलयकी तरह हमें पार करो। दो कुक्कुरोंकी तरह तुम हमारे शरीरको हिंसासे बचाओ। दो वर्मकी तरह तुम हमें जरासे बचाओ।

५ अश्विद्वय, दो वायुओंकी तरह अक्षय, दो नदियोंकी तरह शीघ्रगामी और दो मंत्रोंकी तरह दर्शक हो। तुम हमारे सामने आओ। तुम दोनों हाथों और पैरोंकी तरह शरीरके सुखदाता हो। तुम हमें श्रेष्ठ धनकी ओर ले जाओ।

६ अश्विद्वय, दोनों ओठोंकी तरह मधुर-वाक्यका उच्चारण करो, दोनों स्तनोंकी तरह, हमारे जीवन धारणके लिये, दूध पिलाओ, दोनों नाकोंकी तरह हमारे शरीरके रक्षक होओ और दोनों कानोंकी तरह हमारे श्रोता होओ।

हस्तेव शक्तिमभिसन्ददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं संशिशीतम् ॥७॥
एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्मस्तोमं गृत्समदासो अक्रन्।
तानि नरा जुजुषाणोपयातं बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥८॥

* * *

४० सूक्त। सोम और पूषा देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः।
जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥१॥
इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा।
आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्रियासु ॥२॥
सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम्।
विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥३॥
दिव्यन्यः सदनं चक्र उच्चा पृथिव्यामन्यो अध्यन्तरिक्षे।
तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुं रायस्पोषं विष्यतां नाभिमस्मे ॥४॥

---

७ अश्विद्वय, दोनों हाथोंकी तरह हमें सामर्थ्य प्रदान करो। द्यावापृथिवीको तरह हमें जल दो। अश्विद्व ये सब स्तुतियाँ तुम्हें चाहती हैं। तुम यान चढ़ानेके यंत्रके द्वारा तलवारकी तरह उन्हें तीक्ष्ण करो।

८ अश्विद्वय, गृत्समद ऋषिने तुम्हारी वृद्धिके लिये ये सब स्तोत्र और मंत्र बनाये हैं। तुम नेता और प्रीतिवाले हो। तुम्हारे पास यह सब स्तुतियां आवें। हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करें।

---

१ सोम और पूषा, तुम धन, द्युलोक और पृथिवीके जनक हो। जन्मके अनन्तर ही तुम सारे संसारके हुए हो। देवोंने तुम्हें अमरताका कारण बनाया है।

२ जनमते ही द्युतिमान् सोम और पूषाकी देवोंने सेवा की थी। ये दोनों अप्रिय अन्धकारका विनाश करते। इनके साथ इन्द्रदेव तरुणी धेनुओंके अधःप्रदेशमें पक्व दुग्ध उत्पन्न करते हैं।

३ अभीष्टवर्षी सोम और पूषा, तुम संसारके विभाजक, सप्तचक्र (सात ऋतु, मलमास लेकर) वाले संसा लिये अविभाज्य, सर्वत्र वर्त्तमान, और पंचरश्मि (पाँच ऋतु, हेमन्त और शीतको एकमें करके) वाले हो। इन्द्रा ही योजित रथ हमारे सामने प्रेरित करते हो।

४ तुममें एक जन (पूषा) उन्नत द्युलोकमें रहते हैं। दूसरे (सोम) ओषधि-रूपसे पृथिवी और चन्द्र- अन्तरीक्षमें रहते हैं। तुम दोनों अनेक लोगोंमें वरणीय, बहुकीर्त्तिशाली हमारे भागका कारण और पशुरू हमें दो।

विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति ।
सोमापूषणा ववतं धियं मे युवाभ्यां विश्वाः पृतना जयेम ॥५॥
धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वो रयिं सोमो रयिपतिर्दधातु ।
अवतु देव्यदितिरनर्वा बृहद्वदेम विदथे सुवीरा ॥६॥

* * *

४१ सूक्त । १-३ के इन्द्र और वायु, ४-६ के मित्रावरुण, ७-९ के अश्विद्वय, १०-१२ के इन्द्र, १३-१५ के विश्वदेवगण, १६-१८ के सरस्वती और १९-२१ मन्त्रके देवता द्यावापृथिवी हैं ।

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरागहि । नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥१॥
नियुत्वान् वायवागह्ययं शुक्रो अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥२॥
शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः । आयातं पिबतं नरा ॥३॥
अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम् ॥४॥
राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आसाते ॥५॥
ता सम्राजा घृतासुति आदित्यादानुनस्पती । सचेते अनवह्वरम् ॥६॥
गोमदूषु नासत्या श्वावद्यातमश्विना । वर्तीरुद्रा नृपाय्यम् ॥७॥

५ सोम और पूषा, तुममेंसे एक (सोम)ने सारे भूतोंको उत्पन्न किया है । दूसरे (पूषा) सारे संसारका पर्यवेक्षण कर जाते हैं । सोम और पूषा, तुम हमारे कर्मकी रक्षा करो । तुम्हारे द्वारा हम सारी शत्रु-सेनाकी जय कर डालें ।

६ संसारको प्रसन्नता देनेवाले पूषा हमारे कर्मसे तृप्ति प्राप्त करें । धनपति सोम हमें धन दान करें । द्युतिमती और शत्रु-रहिता अदिति हमारी रक्षा करें । हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति कर सकें ।

१ वायु, तुम्हारे पास जो हजार रथ हैं, उनके द्वारा नियुत्गणसे युक्त होकर सोम पानके लिये आओ ।

२ वायु, नियुत्गणसे युक्त होकर आओ । तुमने दीप्तिमान् सोम ग्रहण किया है । सोमाभिषवकारी यजमानके घरमें तुम जाते हो ।

३ नेता इन्द्र और वायु, तुम आज नियुत्गणसे युक्त होकर और सोमके लिये आकर गव्य-मिला सोम पीओ ।

४ मित्रावरुण, तुम्हारे लिये यह सोम तैयार हुआ है । सत्यवर्द्धक तुम हमारा आह्वान सुनो ।

५ शत्रुता-शून्य राजा मित्रावरुण स्थिर, उत्कृष्ट और हजार स्तम्भोंवाले इस स्थानपर बैठें ।

६ सम्राट्, घृतान्नभोजी, अदिति-पुत्र और दाता मित्रावरुण सरलगति यजमानकी सेवा करते हैं ।

७ अश्विद्वय, नासत्यद्वय, रुद्रद्वय, यज्ञके नेता जो सोमपान करेंगे, उसी सोमको धेनु और अश्वसे युक्त करके तथा रथपर लेकर आओ ।

न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू। दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥८॥
तान अवोह्लमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम् धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥९॥
इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभीषदप चुच्यवत्। स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥१०॥
इन्द्रश्च मृलयाति नो ननः पश्चादघं नशत्। भद्रं भवाति नः पुरः ॥११॥
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्। जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥१२॥
विश्वेदेवास आगत शृणुताम इमं हवम्। एदं बर्हिर्निषीदत ॥१३॥
तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः। एतं पिबत काम्यम् ॥१४॥
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरायतः। विश्वे मम श्रुता हवम् ॥१५॥
अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति। अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥१६॥
त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम्। शुनहोत्रेषु मत्स्वप्रजां देवि दिदिड्ढिनः ॥१७॥
इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति। या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥
प्रेतां यज्ञस्य शम्भुवा युवामिदा वृणीमहे। अग्निं च हव्यवाहनम् ॥१९॥

---

८ धनवर्षी अश्विद्वय, दूरस्थित वा समीपवर्त्ती मन्दभाषी मर्त्य रिपु जिस धनको नहीं चुरा सकता, ही हमें दो।

९ ज्ञानार्ह अश्विद्वय, तुम हमारे पास नानारूप और धन-प्रापक धन ले आओ।

१० इन्द्र अधिक और अभिभवकारी भयको दूर करते हैं। वह स्थिर और प्रज्ञावान् हैं।

११ यदि इन्द्र हमें सुखी करें, तो हमारे साथ पाप नहीं आवेगा; हमारे सामने कल्याण उपस्थित होगा।

१२ प्रज्ञावान् और शत्रुजेता इन्द्र चारो ओरसे हमें भय-शून्य करें।

१३ विश्वदेवगण, यहाँ आओ। हमारा आह्वान सुनो और कुशके ऊपर बैठो।

१४ विश्वदेवगण, तीव्र मदवाला, रसवाली और हर्षकर यह सोम तुम्हारे लिये गृत्समदवंशीयोंके पास इस शोभन सोमका पान करो।

१५ जिन मरुतोंमें इन्द्र श्रेष्ठ हैं, जिनके दाता पूषा हैं, वे ही मरुद्गण हमारा आह्वान सुनें।

१६ मातृगणमें श्रेष्ठ, नदियोंमें श्रेष्ठ और देवोंमें श्रेष्ठ सरस्वती, हम दरिद्र हैं; हमें धनी करो।

१७ सरस्वती, तुम द्युतिमती हो। तुम्हारे आश्रयसे अन्न है। शुनहोत्रोंमें तुम सोम पान करके तृप्त होओ। देवी, तुम हमें पुत्र दो।

१८ अन्नवती और जलवती सरस्वती, इस हव्यको स्वीकार करो। यह मननीय और देवोंके लिये प्रिय है। गृत्समद लोग इसे तुम्हें देते हैं।

१९ यज्ञके सुख-सम्पादक द्यावापृथिवी, तुम आओ। हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं। हम हव्य-वाह अग्निको भी प्रार्थना करते हैं।

द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् । यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥२०॥
आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः । इहाद्य सोमपीतये ॥२१॥

* * *

४२ सूक्त । कपिञ्जलरूपी इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा काचिदभिभा विश्व्या विदत् ॥१॥
मा त्वा श्येनः उद्वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान्वीरो अस्ता ।
पित्र्यामनुप्रदिशं कनिक्रदत् सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह ॥२॥
अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।
मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥

* * *

४३ सूक्त । कपिञ्जलरूपी इन्द्र देवता । जगती, मध्या, शक्करी और अष्टि छन्द ।

प्रदक्षिणिदभिगृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः ।
उभे वाचौ वदती सामगाइव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानुराजति ॥१॥

---

२० द्यावापृथिवी स्वर्ग आदिके साधक और देवोंके ओर जानेवाली हैं । हमारे इस यज्ञको देवोंके पास ले जायँ ।

२१ द्रोहता-शून्य द्यावापृथिवी, सोमपानके लिये यज्ञार्ह देवगण आज तुम्हारे पास बैठें ।

---

१ बारम्बार शब्दायमान और भविष्यद्वक्ता कपिञ्जल, जैसे कर्णधार नौकाको परिचालित करता है, वैसे ही, वाक्यको प्रेरित करता है । शकुनि, तुम कल्याण-सूचक होओ । किसी ओरसे किसी प्रकारकी पराजय तुम्हारे पास न आवे ।

२ शकुन्ति, तुम्हें श्येन पक्षी न मारे—गरुड़ पक्षी भी न मारे । वह बलवान्, वीर और धनुर्धारी होकर तुम्हें न प्राप्त करे । दक्षिण दिशामें बार-बार शब्द करके और सुमंगल-शंसी होकर हमारे लिये प्रियवादी बनो ।

३ शकुन्ता, सुमंगल-सूचक और प्रियवादी होकर घरकी दक्षिण दिशामें बोलो, ताकि चोर और दुष्ट व्यक्ति हमारे ऊपर प्रभुत्व न करे । पुत्र और पौत्रवाले होकर हम इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करें ।

---

१ समय-समयपर अन्नकी खोज करके स्तोताओंकी तरह शकुनिगण, प्रदक्षिण करके, शब्द करें । जैसे सामगायक लोग गायत्रीः और त्रिष्टुप् (दोनों साम) का उच्चारण करते हैं, वैसे ही कपिञ्जल भी 'दोनों वाक्य उच्चारण करता और श्रोताओंको अनुरक्त करता है ।

उद्गातेव शकुने सामगायसि ब्रह्मपुत्रइव सवनेषु शंससि ।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमावद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमावद ॥२॥
आवदं स्त्वं शकुने भद्रमावद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः ।
यदुत्पतन् वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥

* * *

२ शकुनि, जैसे उद्गाता साम गान करते हैं, वैसे ही तुम भी गाओ। यज्ञमें ब्रह्मपुत्र ऋत्विक्‌की तरह तुम करो। जैसे सेचन-समर्थ अश्व अश्वीके पास जाकर शब्द करता है, वैसे ही तुम भी करो। शकुनि, तुम सर्वत्र लिये मंगल-सूचक और पुण्य-जनक शब्द करो ।

३ शकुनि, जिस समय तुम शब्द करते हो, उस समय हमारे लिये मंगल-सूचना करते हो । समय चुप रहकर तुम बैठते हो, उस समय हमारे प्रति सुप्रसन्न रहते हो । उड़नेके समय तुम कर्करि (एक वा की तरह शब्द करते हो। हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करें ।

द्वितीय मण्डल समाप्त

तृतीय मण्डल

२ अष्टक। ३ मण्डल। ८ अध्याय। १ अनुवाक्। १ सूक्त।

अग्नि देवता। विश्वामित्र ऋषि।* त्रिष्टुप् छन्द।

सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै।
देवाँ अच्छादीद्यद्युञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ॥१॥
प्राञ्चं यज्ञं चकृम वर्धतां गीः समिद्भिरग्निं नमसा दुवस्यन्।
दिवः शशासुर्विदथा कवीनां गृत्साय चित्तवसे गातुमीषुः ॥२॥
मयोदधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः।
अविन्दन्नुदर्शतमप्स्वन्तर्देवासो अग्निमपसि स्वसृणाम् ॥३॥
अवर्धयन्त्सुभगं सप्तयह्वीः श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा।
शिशुं न जातमभ्यारुरश्वा देवासो अग्निं जनिमन्वपुष्यन् ॥४॥

१ अग्निदेव, यज्ञ करनेके लिये तुमने मुझे सोमका वाहक किया है; इसलिये मुझे बलवान् करो। अग्नि, मैं प्रकाशमान होकर, देवोंको लक्ष्य कर, अभिषवणके लिये, प्रस्तरखण्ड ग्रहण और स्तव करता हूँ। अग्नि, तुम मेरे शरीरकी रक्षा करो।

२ अग्नि, हमने भली भाँति यज्ञ किया है। हमारी स्तुति वर्द्धित हो। समिधा और हव्य द्वारा लोग अग्निकी परिचर्या करें। द्यु लोकसे आकर देवोंने स्तोताओंको स्तोत्र सिखाया है। स्तोतागण स्तवनीय और प्रबुद्ध अग्निकी स्तुति करनेकी इच्छा करते हैं।

३ जो मेधावी, विशुद्ध-बल-शाली और जन्मसे ही उत्कृष्ट बन्धु हैं, जो द्यु लोकका सुख-विधान करते हैं, उन्हीं दर्शनीय अग्निको, देवोंने, यज्ञ-कार्यके लिये, वहनशील नदियोंके जलके बीच, प्राप्त किया है।

४ शोभन धनवाले, शुभ्र और अपनी महिमासे दीप्तिशाली अग्निके उत्पन्न होते ही उन्हें सात नदियोंने संवर्द्धित किया था। जैसे अश्वी नवजात शिशुके पास जाती है, वैसे ही नदियाँ नवजात अग्निके पास गयी थीं। उत्पत्तिके साथ ही अग्निको देवोंने दीप्तिमान् किया।

---

* इस मण्डलके ऋषि विश्वामित्र और उनके वंशज हैं। प्राचीन भारतके अनेक ऋषियोंकी तरह विश्वामित्र भी गृहस्थ और महान् योद्धा थे। विश्वामित्र और उनके वंशजोंके साथ वसिष्ठ और उनके वंशजोंकी बड़ी प्रतिद्वन्द्विता थी।

शुक्रेभिरङ्गै रज आततन्वान् क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः ।
शोचिर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ॥५॥
वव्राजा सीमनदतीरदब्धा दिवो यह्वीरवसाना अनग्नाः ।
सना अत्र युवतयः सयोनीरेकं गर्भं दधिरे सप्तवाणीः ॥६॥
स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम् ।
अस्थुरत्र धेनवः पिन्वमाना महीदस्मस्य मातरा समीची ॥७॥
बभ्राणः सूनो सहसो व्यद्यौद्दधानः शुक्रा रभसा वपूंषि ।
श्चोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ॥८॥
पितुश्चिदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद्वि धेनाः ।
गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्दिवो यह्वीभिर्न गुहा बभूव ॥९॥
पितुश्च गर्भं जनितुश्च बभ्रे पूर्वीरेको अधयत् पीप्यानाः ।
वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मै मनुष्ये निपाहि ॥१०॥

५ शुभ्रवर्ण तेजके द्वारा अन्तरीक्षको व्याप्त करके अग्निदेव यजमानको स्तुति-योग्य और पवित्र तेजके द्व परिशोधित करते तथा दीप्तिका परिधान करके यजमानको अन्न और प्रभूत तथा सम्पूर्ण सम्पत्ति देते हैं।

६ अग्नि जलकी चारो ओर जाते हैं। वह जल अग्निको नहीं बुझाता अथवा वह अग्नि द्वारा नहीं सूख अन्तरीक्षके अपत्यभूत अग्नि वस्त्रसे आच्छादित नहीं हैं, तो भी, जलसे वेष्टित होनेके कारण, नग्न भी नहीं हैं। सना नित्य, तरुण और एक स्थानसे उत्पन्न सात नदियाँ एक अग्निका गर्भ धारण करती हैं।

७ जल-वर्षणके अनन्तर जलके गर्भ-स्वरूप और अन्तरीक्षमें पुञ्जीभूत नानावर्ण अग्निकी किरणें रहती हैं। अग्निमें जलरूप स्थूल धेनुएँ सबकी प्रीति-दायिका होती हैं। सुन्दर और महान् द्यावापृथिवी दर्शनीय अग्निके मात पिता हैं।

८ बलके पुत्र, सबके द्वारा तुम्हें धारण करनेपर तुम उज्ज्वल और वेगवान् किरण धारण करके प्रकाशित हो जिस समय अग्नि यजमानके स्तोत्र द्वारा बढ़ते हैं, उस समय मधुर जलधारा गिरती है।

९ जन्मके साथ ही अग्निने पिता (अन्तरीक्ष) के अधस्तन जल-प्रदेशको जाना था और अधस्तन-सम्बन्धि धारा या वृष्टि और अन्तरीक्षचारी वज्रको गिराया था। अग्नि, शुभकर्त्ता वायु आदि बन्धुओंके साथ, अवस्थान करते अन्तरीक्षके अपत्यभूत जलके साथ गुहामें वर्त्तमान रहते हैं। इन अग्निको कोई नहीं पाता।

१० अग्नि पिता (अन्तरीक्ष) और जनयिताका गर्भ धारण करते हैं। एक अग्नि बहुतर वृद्धिको प्राप्त ओषधि भक्षण करते हैं। सपत्नी और मनुष्योंकी हितकारिणी द्यावापृथिवी अभीष्टवर्षी अग्निके बन्धु हैं। अग्नि, तुम द्यावापृथि को अच्छी तरह बचाओ।

उरौ महाँ अनिबाधे ववर्धापो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः
ऋतस्य योनावशयद्दमूना जामीनामग्निरपसि स्वसॄणाम् ॥११॥
अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनां दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीकः ।
उदुस्रिया जनिता यो जजनापां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः ॥१२॥
अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां वना जजान सुभगा विरूपम् ।
देवासश्चिन्मनसा संहि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन् ॥१३॥
बृहन्त इद्भानवो भाऋजीकमग्निं सचन्त विद्युतो न शुक्राः ।
गुहेव वृद्धं सदसि स्वे अन्तरपार ऊर्वे अमृतं दुहानाः ॥१४॥
ईळे च त्वा याजमानो हविर्भिरीळे सखित्वं सुमतिं निकामः ।
देवैरवो मिमीहि संजरित्रे रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः ॥१५॥
उपक्षेतारस्तव सुप्रणीतेऽग्ने विश्वानि धन्या दधानाः ।
सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अभिष्याम पृतनायूँरदेवान् ॥१६॥

---

११ महान् अग्नि असम्बाध और विस्तीर्ण अन्तरीक्षमें वर्द्धित होते हैं; क्योंकि बहु-अन्नवान् जल उनको अच्छी तरह वर्द्धित करता है। जलके जन्मस्थान अन्तरीक्षमें स्थित अग्नि भगिनी–स्थानीया नदियोंके जलमें प्रशान्त चित्तसे शयन करते हैं।

१२ जो अग्निदेव समस्त संसारके जनक, जलके गर्भभूत, मनुष्योंके सुरक्षक, महान्, शत्रुओंके आक्रमणकर्त्ता, संग्राममें अपनी महती सेनाके रक्षक, सबके दर्शनीय और अपनी दीप्तिसे प्रकाशमान हैं, उन्होंने ही यजमानके लिये जल उत्पन्न किया है।

१३ सौभाग्यशाली अरणिने दर्शनीय, विविध रूपवान् तथा जल और ओषधियोंके गर्भभूत अग्निको उत्पन्न किया है। सारे देवता लोग-भी स्तुति-योग्य, प्रवृद्ध तथा सद्योजात अग्निके पास, स्तुति-सम्पन्न होकर, गये थे। उन्होंने अग्निकी परिचर्या भी की थी।

१४ दीप्तिशाली बिजलीकी तरह महान् सूर्यगण अगाध समुद्रके बीच अमृतका दोहन करके, गुहाकी तरह, अपने भवन अन्तरीक्षमें प्रवृद्ध और प्रभा द्वारा प्रदीप्त अग्निका आश्रय करते हैं।

१५ हव्य द्वारा मैं यजमान तुम्हारी स्तुति करता हूँ। धर्म-क्षेत्रमें बुद्धि पानेकी इच्छासे तुम्हारे साथ बन्धुत्वके लिये प्रार्थना करता हूँ। देवोंके साथ मुझ स्तोताके पशु आदिको और मेरी, दुर्दम्य तेजके द्वारा, रक्षा करो।

१६ सुनेता अग्नि, हम तुम्हारा आश्रय चाहते हैं। हम समस्त धनकी प्राप्तिका कारणीभूत कर्म करते और हव्य प्रदान करते हैं। हम तुम्हें वीर्यशाली अन्न प्रदान करके अदेवों और अहितकारी शत्रुओंको जीत सकें।

आ देवनामभवः केतुरग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।
प्रतिमर्तां अवासयो दमूना अनुदेवान्रथिरो यासि साधन् ॥१७॥
निदुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन् ।
घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ॥१८॥
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन् ।
अस्मे रयिं बहुलं सन्तरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ॥१९॥
एता ते अग्ने जनिमा सनानि प्रपूर्व्याय नूतनानि वोचम् ।
महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मन्जन्मन्निहितो जातवेदाः ॥२०॥
जन्मन्जन्मन्निहतो जातवेदा विशमित्रेभिरिध्यते अजस्रः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥२१॥
इमं यज्ञं सहसावन्त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो रराणः ।
प्रयंसि होतर्बृहतीरिषो नोऽग्ने महि द्रविणमायजस्व ॥२२॥
इलामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥२३॥

◆

१७ अग्नि, तुम देवोंके स्तवनीय दूत हो। तुम सारे स्तोत्रोंके ज्ञाता हो। तुम मनुष्योंको उनके अपने गृहमें वास देते हो। तुम रथी हो। तुम देवोंका कार्य-साधन करके उनके पीछे-पीछे जाते हो।

१८ नित्य राजा अग्नि यज्ञका साधन करके मनुष्योंके गृहमें बैठते हैं। अग्नि सारे स्तोत्र जानते हैं। अंग घीके द्वारा दीप्तियुक्त है। विशाल अग्नि प्रकाशमान होते हैं।

१९ गमनेच्छु महान् अग्नि, मङ्गलमयी मैत्री और महान् रक्षाके साथ हमारे पास आओ और हमें बहुल, द्रव, शोभन स्तुतिवाला और कीर्त्तिशाली धन दो।

२० अग्नि, तुम पुराण पुरुष हो। तुम्हें लक्ष्य करके इन सब सनातन और नवीन स्तोत्रका हम पाठ सर्व-भूतज्ञ अग्नि मनुष्योंके बीच निहित हैं। उन अभीष्टवर्षी अग्निको लक्ष्य करके हमने यह सब सवन किया है।

२१ सारे मनुष्योंमें निहित और सर्व-भूतज्ञ अग्नि विश्वामित्र द्वारा अनवरत प्रदीप्त होते हैं। हम उनका प्राप्त करके यज्ञार्ह अग्निका अभिलषणीय अनुग्रह प्राप्त करें।

२२ बलवान् और शोभन कर्मवाले अग्नि, तुम सदा विहार करते-करते हमारे यज्ञको देवोंके पास ले देवोंके बुलानेवाले अग्नि, हमें अन्न दो। अग्नि, हमें महान् धन दो।

२३ अग्नि, स्तोताको अनेक कर्मोंके हेतुभूत और धेनुप्रदात्री भूमि हमें, चिर काल, दो। हमारे वंशका करनेवाला और सन्तति-जनयिता एक पुत्र उत्पन्न हो। अग्नि, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो।

२ सूक्त। वैश्वानर अग्नि देवता। जगती छन्द।

वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि ।
द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति ॥१॥
सरोचयज्जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत् पुत्रईड्यः ।
हव्यवाळग्निरजरश्चनोहितो दूळभो विशामतिथिर्विभावसुः ॥२॥
क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः ।
रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सनिष्यन्नुपब्रुवे ॥३॥
आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्रयं वाजमृग्मियम् ।
रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा ॥४॥
अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरोजना वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः ।
यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् ॥५॥
पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नरः ।
अग्ने दुव इच्छमानास आप्यमुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः ॥६॥
आ रोदसी अपृणदास्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन् ।
सो अध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥७॥

---

१ हम यज्ञ-वर्द्धक वैश्वानरको लक्ष्य करके विशुद्ध घृतकी तरह प्रसन्नता-दायक स्तुति करेंगे। जैसे कुठार रथका संस्कार करता है, वैसे ही मनुष्य और ऋत्विक् लोग देवोंको बुलानेवाले गार्हपत्य और आहवनीय, इन दो प्रकारके रूपोंवाले अग्निका संस्कार करते हैं।

२ जन्मके साथ ही वह द्यावापृथिवीको प्रकाशित करते हैं। वह पिता-माताकी प्रशंसाके अनुकूल पुत्र हुए थे। हव्यवाही, जरा-रहित, अन्नदाता, अहिंसित और प्रभाधन अग्नि मनुष्योंके, अतिथिके समान, पूज्य हैं।

३ ज्ञानी देवता लोग विपद्से उद्धार करनेवाले बलके द्वारा यज्ञमें अग्निको उत्पन्न करते हैं। जैसे भार-वाही अश्वकी स्तुति करता हूँ, वैसे ही अन्नाभिलाषी होकर दीप्तिमान् तेजके द्वारा प्रकाशमान और महान् अग्निकी स्तुति करता हूँ।

४ हम स्तुति--योग्य वैश्वानरके श्रेष्ठ, लज्जा-रहित और प्रशंसनीय अन्नके अभिलाषी होकर भृगु-वंशियोंके अभिलाषप्रद, अभिलषणीय, प्रज्ञावान् और स्वर्गीय दीप्तिके द्वारा शोभावाले अग्निका भजन करता हूँ।

५ सुखकी प्राप्तिके लिये ऋत्विक् लोग कुशको फैलाकर और स्रुक्को उठाकर अन्नदाता, अतीव प्रकाशक, सारे देवोंके हितैषी, दुःखनाशक और यजमानोंके यज्ञ-साधक अग्निकी स्तुति करते हैं।

६ पवित्र दीप्तिवाले और देवोंको बुलानेवाले अग्नि, तुम्हारी सेवाके अभिलाषी यजमान लोग यज्ञमें कुश फैलाकर तुम्हारे योग्य याग-गृहकी सेवा करते हैं। उन्हें धन दो।

७ अग्निने द्यावापृथिवी और विशाल आकाशको भी पूर्ण किया था। यजमानोंने इन नवजात अग्निको धारण किया था। सर्वत्र व्याप्त और अन्नदाता यही अग्नि, अश्वकी तरह अन्न लाभके लिये, लाये जाते हैं।

नमस्यत हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।
रथीर्ऋतस्य बृहतो विचर्षणिरग्निर्देवानामभवत् पुरोहितः ॥८॥
तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनोऽग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः ।
तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुजमु लोकमु द्वे उप जामिमीयतुः ॥९॥
विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिषः संसीमकृण्वन्त्स्वधितिं न तेजसे ।
स उद्वतो निवतो याति वेविषत् स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत् ॥१०॥
स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान्वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः ।
वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो वि दाशुषे ॥११॥
वैश्वानरः प्रत्नथानाकमारुहद्दिव स्पृष्ठं भन्दमानः सुमन्मभिः ।
स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ॥१२॥
ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्य मायं दधे मातरिश्वा दिविक्षयम् ।
तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे ॥१३॥
शुचिं न यामं निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम् ।
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् ॥१४॥

---

८ नेता और महान् यज्ञके दर्शक जो अग्नि देवोंके सम्मुख उपस्थित हुए थे, उन्हीं हव्यदाता, शोभन यज्ञ गृहके हितैषी और सर्वभूतज्ञता अग्निकी पूजा और परिचर्या करो।

९ अमर देवोंने अग्निकी इच्छा करके महान् और जगद्व्यापी अग्निकी पार्थिव, वैद्युतिक और सूर्यरू मूर्तियोंको शोभित किया था। उन्होंने तीनों मूर्तियोंमें से जगद्पालिका पार्थिव मूर्त्तिको मर्त्यलोकमें रखा, शे अन्तरीक्षमें गयीं।

१० धनाभिलाषी प्रजाओंने अपने प्रभु मेधावी अग्निको तलवारकी तरह तीखो करनेके लिये संस्कृत कि था। वह उन्नत और निम्न प्रदेशोंको व्याप्त करके गमन करते और सारे भुवनोंका गर्भ धारण करते हैं।

११ नवजात और अभीष्टवर्षी वैश्वानर अग्नि नाना स्थानोंमें सिंहकी तरह गर्जन करके अनेक जठरोंमें व होते हैं। वह अत्यन्त तेजस्वी और अमर हैं। वह यजमानको रमणीय वस्तु प्रदान करते हैं।

१२ स्तोताओं द्वारा स्तुति किये जानेवाले वैश्वानर अग्नि चिरन्तनकी तरह अन्तरीक्षकी पीठ—स्वर्ग—पर च हैं। प्राचीन ऋषियोंके सदृश यजमानोंको धन देकर वह जागरूक होकर देवोंके साधारण मार्गपर, सूर्य रूपसे, भ्रमण करते

१३ बलवान्, यज्ञार्ह, मेधावी, स्तुतियोग्य और द्युलोक-वासी जिन अग्निको द्युलोकसे लाकर वायुने पृथि पर स्थापित किया है, हम उन्हीं नाना गतिवाले, पिङ्गलवर्ण किरणसे युक्त और प्रकाशमान अग्निसे नया धन चाहते

१४ प्रदीप्त, यज्ञमें गमनकारी, सारे पदार्थोंके ज्ञानभूत, द्युलोकके पताका-स्वरूप, सूर्यमें अवस्थित, उषाकालमें रूक, अन्नवान् और महान् अग्निकी, स्तोम द्वारा, याचना करता हूँ।

मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे ॥१५॥

* * *

३ सूक्त । वैश्वानर अग्नि देवता । जगती छन्द ।

वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे ।
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ॥१॥
अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः ।
क्षयं बृहन्तं परिभूषति द्युभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः ॥२॥
केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः ।
अपांसि यस्मिन्नधिसन्दधुर्गिरस्तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आचके ॥३॥
पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् ।
आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः ॥४॥
चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम् ।
विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः ॥५॥

१५ स्तुत्य, देवाह्वानकारी, सर्वदा शुद्ध, अकुटिल, दाता, श्रेष्ठ, विश्वदर्शक, रथकी तरह नाना वर्णवाले, दर्शनीय रूपवाले और मनुष्योंके सदा कल्याणकर्त्ता उन अग्निदेवके पास मैं धनकी याचना करता हूँ ।

* * *

१ मेधावी स्तोता लोग, सन्मार्गकी प्राप्तिके लिये, बहु-बलशाली वैश्वानरको लक्ष्य कर यज्ञमें रमणीय स्तोत्रोंका पाठ करते हैं। अमर अग्नि हव्य प्रदानके द्वारा देवोंकी परिचर्या करते हैं। इसलिये कोई सनातन यज्ञको दूषित नहीं कर सकता।

२ दर्शनीय होता अग्नि; देवोंके दूत होकर, द्यावापृथिवीके बीच जाते हैं। देवों द्वारा प्रेरित धीमान् अग्नि यजमानके सामने स्थापित और उपविष्ट होकर महान् यज्ञ-गृहको अलंकृत करते हैं।

३ मेधावी लोग यज्ञके केतु-स्वरूप और यज्ञके साधनभूत अग्निको अपने वीर कर्म द्वारा पूजित करते हैं। जिन अग्निमें स्तोता लोग अपने-अपने करने योग्य कर्मोंको अर्पण करते हैं, उन्हीं अग्निसे यजमान सुखकी आशा करते हैं।

४ यज्ञके पिता, स्तोताओंके बलदाता, ऋत्विकोंके ज्ञानहेतु और यज्ञादि कर्मोंके साधनभूत अग्नि पार्थिव और वैद्युतादि रूपके द्वारा द्यावापृथिवीमें प्रवेश करते हैं। अत्यन्त प्रिय और तेजस्वी अग्नि यजमान द्वारा स्तुत होते हैं।

५ आह्लादक, आह्लादजनक रथवाले, पिङ्गलवर्ण, जलके बीच निवास करनेवाले, सर्वज्ञ, सर्वत्र व्याप्त, शीघ्रगामी, बलशाली, भर्त्ता और दीप्तिवाले वैश्वानर अग्निको देवोंने इस लोकमें स्थापित किया है।

अग्निर्देवेभिर्मनुषश्च जन्तुभिस्तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया ।
रथीरन्तरीयते साधदिष्टिभिर्जीरो दमूना अभिशस्तिचातनः ॥६॥
अग्ने जरस्व स्वपत्य आयून्यूर्जा पिन्वस्व समिषा दिदोहि नः ।
वयांसि जिन्व बृहतश्च जागृव उशिग्देवानामसि सुक्रतुर्विपाम् ॥७॥
विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम् ।
अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्रशंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे ॥८॥
विभावा देवः सुरणः परिक्षितीरग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः ।
तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयमुपभूषेम दम आ सुवृक्तिभिः ॥९॥
वैश्वानर तव धामान्याचके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षणः ।
जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना ॥१०॥
वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहदरिणादेकः स्वपस्यया कविः ।
उभा पितरा महयन्नजायताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥११॥

* * *

६ जो यज्ञ-साधक देवों और ऋत्विकोंके साथ कर्म द्वारा यजमानके नानाविध यज्ञोंका सम्पादन करते हैं; नेता, शीघ्रगामी, दानशील और शत्रुओंके नाशक हैं, वही अग्नि द्यावापृथिवीके बीच जाते हैं ।

७ हम सुपुत्र और दीर्घ आयु प्राप्त करेंगे; इसलिये, हे अग्नि, तुम देवोंकी स्तुति करो । अन्न द्वारा उन्हें करो । हमारे धान्यके लिये भली भाँति वृष्टिको संचालित करो । अन्न दान करो । सदा जागरण-शील अग्नि, तुम म यजमानको अन्न दो; क्योंकि तुम सुकर्मा और देवोंके प्रिय हो ।

८ मनुष्योंके पति, महान्, अतिथि-भूत, बुद्धि-नियन्ता, ऋत्विकोंके प्रिय, यज्ञके ज्ञापक, वेगयुक्त और सर्व अग्निकी, नेता लोग, समृद्धिके लिये, नमस्कार और स्तुतिके द्वारा, प्रशंसा करते हैं ।

९ दीप्तिमान्, स्तूयमान, कमनीय और सुन्दर रथवाले अग्नि बलके द्वारा सारी प्रजाको व्याप्त करते हैं। अनेकोंके पालक और गृहमें निवासी अग्निके सारे कर्मोंको, सुन्दर स्तोत्र द्वारा, प्रकाशित करेंगे ।

१० विज्ञ वैश्वानर, तुम जिस तेजके द्वारा सर्वज्ञ हुए हो, मैं तुम्हारे उसी तेजका स्तव करता हूँ । जन्मके ह ही तुम द्यावापृथिवी और सारे भुवनोंको व्याप्त कर डालते हो । अग्नि, तुम अपने सारे भूतोंको व्याप्त करते हो ।

११ वैश्वानरके सन्तोषजनक कर्मसे महान् धन होता है; क्योंकि वह सुन्दर यज्ञ आदि कर्मकी इच्छासे यजमा को धन देते हैं । वह वीर्यशाली हैं । पिता-माता द्यावा-पृथिवीकी पूजा करते हुए उत्पन्न हुए हैं ।

४ सूक्त । आप्री देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

समित् समित् सुमना बोध्यस्मे शुचा शुचा सुमतिं रासि वस्वः ।
आ देव देवान्यजथाय वक्षि सखा सखीन्त्सुमना यक्ष्यग्ने ॥१॥
य देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस्तनूनपाद्घृतयोनिं विधन्तम् ॥२॥
प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिळः प्रथमं यजध्यै ।
अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै स देवान्यक्षदिषितो यजीयान् ॥३॥
ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकार्यूर्ध्वा शोचींषि प्रस्थिता रजांसि ।
दिवो वा नाभा न्यसादि होता स्तृणीमहि देवव्यचा विर्बर्हिः ॥४॥
सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन ।
नृपेशसो विदथेषु प्रजाता अभीमं यज्ञं विचरन्त पूर्वीः ॥५॥
आ भन्दमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा विरूपे ।
यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषदिन्द्रो मरुत्वाँ उत वा महोभिः ॥६॥

---

१ हे समिद्ध अग्नि, अनुकूल मनसे जागो। तुम अतीव गतिशील तेजसे युक्त होकर हमारे ऊपर धनके लिये अनुग्रह करो । द्योतमान अग्नि, देवोंको इस यज्ञमें ले आओ। अग्नि, तुम देवोंके सखा हो। अनुकूल मनसे मित्र देवोंका यज्ञ करो।

२ वरुण, मित्र और अग्नि जिन तनूनपात् नामक अग्निका, प्रतिदिन तीन बार करके, यज्ञ करते हैं, वही हमारे इस जल-कारण यज्ञको वृष्टि आदि फल दें।

३ देवोंके आह्वानकारी अग्निके पास सर्वजन-प्रिय स्तुति गमन करे। इला, प्रसन्नता उत्पन्न करनेके लिये, प्रधान, अतीव अभीष्टवर्षी और वन्दनीय अग्निके पास जायँ। यज्ञकर्ममें कुशल अग्नि, हमारे द्वारा प्रेरित होकर यज्ञ करें।

४ अग्नि और बर्हिरूप अग्निके लिये यज्ञमें एक उन्नत मार्ग किया हुआ है। दीप्तियुक्त हव्य ऊपर जाता है। दीप्तिमान् यज्ञ-गृहके नाभिप्रदेशमें होता उपविष्ट हैं। हम देवोंके द्वारा व्याप्त कुशको बिछावेंगे।

५ जल द्वारा संसारके प्रसन्नकर्त्ता देवता लोग सप्त यज्ञमें जाते हैं। वे अकपट चित्तसे याचित होकर नररूपी यज्ञजात (अग्निरूप यज्ञ-द्वार-द्वय) प्रत्यक्ष होकर हमारे इस यज्ञमें आवें।

६ स्तूयमान अग्नि-रूप रात और दिन, परस्पर-संगत होकर अथवा पृथक् रूपसे, सशरीर प्रकाशित होकर आवें। मित्र, वरुण अथवा इन्द्र हमें जिस रूपसे अनुगृहीत करते हैं, तेजस्वी होकर, उसी रूपको धारण करें।

दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥७॥
आ भारती भारतीभिः सजोषा इला देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥८॥
तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥९॥
वनस्पतेव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥१०॥
आयाह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११॥

⁂

५ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रत्यग्नि रुषसश्चेकितानो बोधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।
पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धोपद्वारा तमसो वह्निरावः ॥१॥

७ मैं दिव्य और प्रधान अग्निरूप दोनों होताओंको प्रसन्न करता हूँ । यज्ञाभिलाषी, सप्त और ऋत्विक् लोग हव्य द्वारा अग्निको प्रमत्त करते हैं। व्रतके रक्षक और दीप्तिशाली ऋत्विक् लोग प्रत्येक व्रतमें अग्निको यह बात बोलते हैं ।

८ भारती लोगों (सूर्य-सम्बन्धियों) के साथ अग्नि-रूप भारती आवें, देवों और मनुष्योंके साथ इला अग्नि भी आवें । सारस्वतगणों (अन्तरीक्षस्थ वचनों) के साथ सरस्वती भी आवें । ये तीनों देवियाँ आकाश कुशपर बैठें ।

९ अग्निरूप त्वष्टा देव, जिससे वीर, कर्मकुशल, बलशाली, सोमाभिषवके लिये प्रस्तर-हस्त और देवाभि पुत्र उत्पन्न हो सके, सन्तुष्ट होकर तुम हमें वैसा ही त्राण-कुशल और पुष्टिकारी वीर्य प्रदान करो ।

१० अग्निरूप वनस्पति, तुम देवोंको पास ले आओ । पशुके संस्कारक अग्नि (वनस्पति) देवोंके लिये दें । वे ही यज्ञ-रूप देवता लोगोंको बुलानेवाले अग्नि यज्ञ करें; क्योंकि वे ही देवोंका जन्म जानते हैं ।

११ अग्नि, तुम दीप्ति-युक्त होकर इन्द्र और शीघ्रताकारी देवोंके साथ एक रथपर हमारे सामने सुपुत्र-युक्ता अदिति हमारे कुशपर बैठें । नित्य देवगण अग्निरूप स्वहाकारवाले होकर तृप्ति प्राप्त करें ।

१ अग्नि उषाको जानते हैं । मेधावी अग्नि ज्ञानियोंके मार्गपर जानेके लिये जागते हैं । अत्यन्त अग्नि देवाभिलाषी व्यक्तियोंके द्वारा प्रदीप्त होकर अज्ञानका द्वार उद्घाटित करते हैं ।

प्रेद्धग्निर्वावृधे स्तोमेभिर्गीर्भिः स्तोतृणां नमस्य उक्थैः ।
पूर्वीर्ऋतस्य सन्दृशश्चकानः सन्दूतो अद्यौ दुषसो विरोके ॥२॥
अधाय्यग्निर्मानुषीषु विक्ष्वपां गर्भो मित्र ऋतेन साधन् ।
आ हर्यतो यजतः सान्वस्थादभूदु विप्रो हव्यो मतीनाम् ॥३॥
मित्रो अग्निर्भवति यत् समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।
मित्रो अध्वर्युरिषिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम् ॥४॥
पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य ।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥५॥
ऋभुश्चक्र ईड्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान् ।
ससस्य चर्म घृतवत् पदं वेस्तदिदग्नी रक्षत्यप्रयुच्छन् ॥६॥
आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थात् पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः ।
दीद्यानः शुचिर्ऋष्वः पावकः पुनः पुनर्मातरानव्यसीकः ॥७॥
सद्योजात ओषधीभिर्ववक्षे यदी वर्धन्ति प्रस्वो घृतेन ।
आप इव प्रवता शुम्भमाना उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थे ॥८॥

---

२ पूज्य अग्नि स्तोताओंके स्तोत्र, वाक्य और मंत्र द्वारा वृद्धि पाते हैं। देव-दूत अग्नि अनेक यज्ञोंमें दीप्ति प्राप्त करनेकी इच्छासे प्रातःकाल प्रकाशित होते हैं।

३ यजमानोंके मित्र, यज्ञके द्वारा अभिलाषा पूरी करनेवाले और जलके पुत्र अग्नि मनुष्योंके बीच स्थापित हुए हैं। अग्नि स्पृहणीय और यजनीय हैं। वह उन्नत स्थानपर बैठे हैं। ज्ञानी अग्नि स्तोताओंकी स्तुतिके योग्य हुए हैं।

४ जिस समय अग्नि समिद्ध होते हैं, उस समय मित्र बनते हैं। वही, मित्र ही, होता और सर्वज्ञ वरुण हैं। वही, मित्र ही, दानशील अध्वर्यु और प्रेरक वायु हैं। वह नदियों और पर्वतोंके मित्र हैं।

५ सुन्दर अग्नि सर्वव्याप्त पृथिवीके प्रिय स्थानकी रक्षा करते हैं। महान् अग्नि सूर्यके विहरण-स्थान अन्तरीक्षकी रक्षा करते हैं। अन्तरीक्षके बीच मरुतोंकी रक्षा करते हैं। वह देवोंके प्रसन्नता-कारक यज्ञकी रक्षा करते हैं।

६ महान् और सारे ज्ञातव्योंके ज्ञाता अग्नि प्रशंसनीय और सुन्दर जल उत्पन्न करते हैं। अग्निके निद्रित रहनेपर भी उनका चर्म या रूप दीप्तिमान् रहता है वही अग्नि सावधानीसे उसकी रक्षा करते हैं।

७ दीप्तिमान्, विशेष रूपसे स्तुत और स्वस्थान-प्रिय अग्नि अधिरूढ़ हुए हैं। दीप्तिशाली, शुद्ध, महान् और पवित्र अग्नि पिता-माता द्यावापृथिवीको नवीनतर करते हैं।

८ जन्म लेते ही अग्नि ओषधियों द्वारा धृत होते हैं। उस समय पथ-प्रवाहित जलकी तरह शोभित ओषधियाँ जल द्वारा वर्द्धित होकर फल देती हैं। पिता-माता द्यावापृथिवीके क्रोड़में बढ़कर अग्नि हमारी रक्षा करें।

उदुष्टुतः समिधा यह्वो अद्यौद्वर्ष्मन्दिवो अधिनाभा पृथिव्याः ।
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा दूतो वक्षद्यजथाय देवान् ॥९॥
उदस्तम्भीत् समिधा नाकमृष्वोऽग्निर्भवन्नुत्तमो रोचनानाम् ।
यदी भृगुभ्यः परिश्वा मातरिश्वा गुहासन्तं हव्यवाहं समीधे ॥१०॥
इलामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११॥

* * *

६ सूक्त। अग्नि देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।
दक्षिणावाड्वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥१॥
आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो ।
दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥२॥
द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय ।
यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीलते शुक्रमर्चिः ॥३॥

---

९ हमारे द्वारा स्तुत और दीप्ति द्वारा महान् अग्निने पृथिवीकी नाभि वा उत्तर वेदीपर स्थित होकर
रीक्षको प्रकाशित किया है। सबके मित्र और स्तुति-योग्य अरणि-प्रदीप्त अग्नि देवोंके दूत होकर यज्ञमें देवोंको बुला

१० जिस समय मातरिश्वाने भृगुओं वा आदित्य-रश्मियोंके लिये गुहास्थित और हव्य-वाहक अग्निको प्र
किया था, उस समय तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ महान् अग्निने तेज द्वारा स्वर्गको स्तब्ध किया था।

११ अग्नि, तुम स्तोताको अनेक कर्मोंके हेतु भूत और धेनु-प्रदात्री भूमि सदा प्रदान करो। हमारे
विस्तारक और सन्तति-जनयिता एक पुत्र हो। हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो।

१ यज्ञकर्त्ता लोग, तुम सोमाभिलाषी हो। मंत्र द्वारा प्रेरित होकर तुम देवार्चन-साधक स्रुक् ले आओ।
आहवनीय अग्निकी दक्षिण दिशामें ले जाया जाता है, जिसके अन्न है, जिसका अग्र भाग पूर्व दिशामें है औ
अग्निके लिये अन्न धारण करता है, वही घृतयुक्त स्रुक् जाता है।

२ जन्मके साथ ही तुम द्यावापृथिवीको पूर्ण करो। याग-योग्य, महिमा द्वारा तुम अन्तरीक्ष और पृथि
प्रकृष्टतर होओ और तुम्हारे अंशभूत विशिष्ट अग्नि—सप्त जिह्वाएँ पूजित हों।

३ अग्नि, तुम होता हो। जिस समय देवाभिलाषी और हव्य-युक्त मनुष्य तुम्हारे दीप्त तेजकी स्तुति
हैं, उस समय अन्तरीक्ष, पृथिवी और यज्ञार्ह देवगण, यज्ञ-सम्पादनके लिये, तुम्हारी स्तुति करते हैं।

महान्त्सधस्थे ध्रुव आनिषत्तोन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः।
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ॥४॥
व्रताते अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आततन्थ।
त्वं दूतो अभवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ॥५॥
ऋतस्य वा केशिना योग्याभिर्घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व।
अथा वह देवान्देव विश्वान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥६॥
दिवश्चिदाते रुचयन्त रोका उषो विभातीरनु भासि पूर्वीः।
अपो यदग्न उशधग्वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ॥७॥
उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोचने सन्ति देवाः।
ऊमा वा ये सुहवासो यजत्रा आयेमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ॥८॥
ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नाना रथं वा विभवो ह्यश्वाः।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रीँश्च देवाननुष्वधमावह मादयस्व ॥९॥
स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञं यज्ञमभिवृधे गृणीतः।
प्राची अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये ॥१०॥

---

४ महान् और यजमानोंके प्रिय अग्नि, द्यावापृथिवीके बीच, महिमावाले अपने स्थान पर, बैठे हैं। आक्रमण-शीला, सपत्नीभूता, जरारहिता, अहिंसिता और क्षीरप्रसविनी द्यावापृथिवी अत्यन्त गमन-शील अग्निकी गायें हैं।

५ अग्नि, तुम सर्वोत्कृष्ट हो। तुम्हारा कर्म महान् है। तुमने यज्ञ द्वारा द्यावापृथिवीको विस्तृत किया है। तुम दूत हो। अभीष्टवर्षी अग्नि, उत्पन्न होनेके साथ ही तुम यजमानके नेता बनो।

६ द्युतिमान् अग्नि, प्रशस्त केशवाले, रज्जुयुक्त और घृतस्रावी रोहित नामक दोनों घोड़ोंको यज्ञके सम्मुख योजित करो। अनन्तर तुम सारे देवोंको बुलाओ। सर्वभूतज्ञ, तुम उन्हें सुन्दर यज्ञ-युक्त करो।

७ अग्नि, जिस समय तुम वनमें जलका शोषण करते हो, उस समय सूर्यसे भी अधिक तुम्हारी दीप्ति होती है। तुम भली भाँति प्रकाशमान पुरातन उषाके पीछे शोभित होते हो। स्तोता लोग स्तुतियोग्य होता अग्निकी स्तुति करते हैं।

८ विस्तीर्ण अन्तरीक्षमें जो देवगण हृष्ट हैं, आकाशकी दीप्तिमें जो सब देवता हैं, 'उम' संज्ञक जो यजनीय पितर लोग भली भाँति आहूत होकर आगमन करते हैं, रथी अग्निके जो सब अश्व हैं—

९ अग्नि, उक्त सब देवोंके साथ एक रथ अथवा नाना रथोंपर चढ़कर हमारे सामने आओ; क्योंकि तुम्हारे अश्वगण समर्थ हैं। ३३ देवोंको, उनकी स्त्रियोंके साथ, अन्नके लिये, ले आओ और सोम द्वारा हृष्ट करो।

१० विशाल द्यावापृथिवी, प्रत्येक यज्ञमें, समृद्धिके लिये, जिन अग्निकी प्रशंसा करती हैं, वे ही देवोंके होता हैं। सुरूपा, जलवती और सत्यस्वरूपा द्यावापृथिवी, यज्ञकी तरह, सत्यसे उत्पन्न होता अग्निके अनुकूल हैं।

इलामग्ने पुरुदंस सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११॥

११ अग्नि, तुम स्तोताको अनेक कर्मोंके हेतुभूत और धेनुधात्री भूमि सदा दो। हमारे वंशका विस और सन्ततिजनयिता एक पुत्र दो। अग्नि, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो।

अष्टम अध्याय समाप्त

द्वितीय अष्टक समाप्त

"ऋग्वेद-संहिता"

(हिन्दी-टीका-सहित)

तृतीय अष्टक छप रहा है

द्वितीय अष्टक छप गया

प्रथम अष्टकका मूल्य २) रु०, द्वितीय अष्टकका भी २) रु०

अत्यन्त सरल हिन्दीमें सम्पूर्ण ऋग्वेदका सरल-सुन्दर अनुवाद
प्रत्येक पृष्ठमें मार्मिक सूचनाएँ
मूलके साथ-साथ शुद्ध हिन्दीमें मनोहारिणी टीका
और विस्तृत गवेषणापूर्ण टिप्पनियाँ

हिन्दूजातिकी संस्कृति और सभ्यताका अध्ययन कीजिये

वेदोंकी ज्ञान-गङ्गामें अवगाहन कर पवित्र होनेका ऐसा सुयोग फिर न मिलेगा
आठ आने पेशगी भेजकर "वैदिकपुस्तक-माला"के तुरत स्थायी ग्राहक बन जाइये
स्थायी ग्राहकोंसे डाकखर्च नहीं लिया जायगा

इस कार्यके लिये संसार भरकी भाषाओंमें ऋग्वेदके सम्बन्धमें जितनी पुस्तकें, निबन्ध-प्रबन्ध और आलोचना-ग्रन्थ छपे हैं, उन सबका संग्रह कर लिया गया है। वेदोंके अनेक अधिकारी विद्वान और सिद्धहस्त हिन्दी-लेखक इस विशाल अनुवाद-यज्ञमें लगे हुए हैं

६) रु० वार्षिक भेजकर "गंगा"का ग्राहक बननेवालोंको वेदकी पुस्तकोंपर डाकखर्च नहीं देना होगा

अर्थ सनातनधर्मानुकूल है

—"गंगा"-कार्यालय, कृष्णगढ़, सुलतानगञ्ज, भागलपुर

हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ पत्रिका 'गंगा' इसलिये है कि,

१—संसारके जितने बड़े-बड़े विद्वान् "गंगा"में लिखते हैं, उतने हिन्दीकी किसी भी पत्रिकामें नहीं,

२—"गंगा"की जैसी सजावट और कम्पोजीशन होता है, वैसा हिन्दीकी किसी भी पत्रिकाका नहीं,

३—हिन्दूत्वके मूल—हिन्दूसभ्यता, प्राचीनतम इतिहास, संस्कृति, संस्कृत-साहित्य और हिन्दूधर्म-"गंगा"में जितने लेख निकलते हैं, उतने किसी भी पत्रिकामें नहीं,

४—विश्वविदित विद्वानोंने "गंगा" और उसके अद्भुत "वेदाङ्क"की जितनी प्रशंसा की है, उतनी हिन्दीकी भी पत्र-पत्रिका और पुस्तककी नहीं।

कुछ प्रशंसाएँ पढ़िये—

१—देशपूज्य और विहार-रत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद—"गङ्गाके लेख उच्च कोटिके होते हैं। इसमें बहुत गह रोचक विषयोंपर लेख छपा करते हैं। इसके विशेषाङ्क और भी मार्केके होते हैं। प्रसन्नता होती है कि, विहार सर्वाङ्गसुन्दर पत्रिका इतनी सफलता प्राप्त कर रही है।"

२—सर जार्ज ए० ग्रियर्सन (सुरे, इङ्गलैण्ड)—"गङ्गाका 'वेदाङ्क' प्रत्यक्ष रूपसे एक महत्त्वपूर्ण वस्तु है।"

३—डा० स्टेन कोनो पी-एच० डी० (नारवे)—"गङ्गामें बड़े रुचिकर और सुपाठ्य प्रबन्ध रहते हैं।"

४—प्रो० रैप्सन एम० ए० (लण्डन)—"गङ्गा द्वारा प्राचीन भारतवर्षके साहित्य, इतिहास और पुरा प्रगतिको आगे बढाया जा रहा है।"

५—डा० बर्नेट एम० ए०, डी० लिट् (ब्रिटिश म्युजियम, लण्डन)—"वेदाङ्कका सम्पादन बड़ी योग्यतासे हुआ है।

६—डा० ओटो स्टीन पी-एच० डी० (चेकोस्लोवेकिया)—"वेदाङ्कसे भारतकी प्राचीन संस्कृतिके प्रेमियोंको आनन्द मिलेगा।"

७—"ऋग्वेदिक इण्डिया"के लेखक डा० अविनाशचन्द्र दास एम० ए०, पी-एच० डी० (कलकत्ता)—" प्रकाशनका कार्य्य समस्त भारतवर्षमें अपने ढङ्गका एक ही है। खेद है कि, बङ्गला भाषामें ऐसा प्रकाशन अब हुआ है।"

८—श्रीयुत नारायण भवानराव पावगी (पूना)—"सम्पूर्ण वैदिक साहित्यमें 'वेदाङ्क'की समता रखनेवाला कोई भी नहीं है। इसपर गर्व होना चाहिये।"

९—भारत सरकारके "पुरातत्त्व-विभाग"के अन्वेषक प० हीरानन्द शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल० (नौ —"वेदाङ्कमें ऐसे मौलिक लेख हैं, जो अनुसन्धानके योग्य हैं।"

१०—पटियालाके इतिहास-कार्यालयाध्यक्ष ठाकुर किशोर सिंह बार्हस्पत्य—"वेदाङ्ककी श्रेणीका विशेषाङ्क आ किसी सामयिक पत्रिकाने नहीं प्रकाशित किया। "वेदाङ्क"के सम्पादकीय विचार वेदोंके गहरे स्वाध्यायके निष्क

११—राजा महेन्द्रप्रताप (चीनसे)—"गङ्गा भगीरथ-परिश्रमका फल है।"

"वेदाङ्क"का मूल्य २॥) रु० है; परन्तु ५) रु० वार्षिक मूल्य भेजकर जो
"गङ्गा"के ग्राहक बनेंगे, उनको "वेदाङ्क" मुफ्त मिलेगा।
"गङ्गा"के ग्राहकोंको "ऋग्वेद-संहिता"का प्रत्येक अष्टक विना डाकखर्चके मिलता है।

मैनेजर, गङ्गा, सुलतानगञ्ज, भाग

मुद्रक और प्रकाशक, मुन्शी महेन्द्रनारायण, कृष्णगढ़, सुलतानगंज, भागलपुर।

वैदिकपुस्तकमाला—तृतीय पुष्प

ऋग्वेद-संहिता

(सरल-हिन्दी-टीका-सहित)

तृतीय अष्टक

टीकाकार

पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री

"दर्शनपरिचय", "हिन्दी-विष्णुपुराण", "राजर्षि प्रह्लाद", "महासती मदालसा" आदिके लेखक,
"सेनापति", "विश्वदूत" आदिके भूतपूर्व सम्पादक, "गीताप्रचारक-महामण्डल" (मोरिशस) के
जन्मदाता, "दक्षिण अफ्रीकन सनातनधर्म-महामण्डल" (डरबन, नेटाल) के आजीवन
सभापति, "गङ्गा"के प्रधान सम्पादक तथा सनातनधर्मके महोपदेशक),

पण्डित गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ

(प्राइवेट सेक्रेटरी, बनैली-राज्याधिपति साहित्य-विभूषण कुमार कृष्णानन्द
सिंह बहादुर तथा "गङ्गा" और "वैदिकपुस्तकमाला"के
अन्यतम जन्मदाता एवम् अध्यक्ष)

—* और *—

साहित्याचार्य पण्डित महेन्द्र मिश्र "मग"

("गङ्गा"के सहकारी सम्पादक)

प्रकाशक
पण्डित गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ
संचालक, "वैदिकपुस्तकमाला", कृष्णगढ़, सुलतानगंज (ई० आई० आर०)

मूल्य २) } अग्रहायण, १९९० विक्रमीय { प्रथम संस्करण ३०००

वेद क्यों पढ़ना चाहिये ?

इसलिये कि—

(१) वेद हिन्दूधर्मकी मूल पुस्तक है,

(२) वेद मनुष्यजातिकी सबसे प्राचीन पुस्तक है,

(३) सदाचार, वीरता, परोपकार, देश-सेवा, सत्य, त्याग आदि मनुष्यजातिकी जितनी उच्चतम गुणावली है, सबका वेदमें बड़ा ही सुन्दर विवरण है ।

(४) वेद हमारी जातिके प्राचीन इतिहास, कला, विज्ञान, धर्म-प्रेम, समाज-व्यवस्था, राष्ट्र-धर्म, यज्ञ-रहस्य आदि आदिको दर्पणकी तरह दिखाता है ।

इसलिये जिस प्रकार हर एक ईसाई बाइबिलको और हर एक मुसलमान कुरानको, गाड और खुदाकी विमल वाणी जानकर, अपने पास रखता है, उसी प्रकार ईश्वरका पवित्र उपदेश समझकर वेदको अपने पास रखना हर एक हिन्दूका आवश्यक कर्त्तव्य है ।

लज्जाकी बात है कि, जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका, इंगलैंड आदिके विद्वानोंने तो वेदकी सारी पुस्तकोंको छपा डाला और हिन्दीमें एकभी ऋग्वेदका सरल अनुवाद नहीं ! इसी अभावकी पूर्तिके लिये हमने "वैदिकपुस्तकमाला" द्वारा सरस-सरल हिन्दीमें चारों वेदोंका अनुवाद कराना निश्चित किया है, जिसका तृतीय पुष्प (अष्टक) आपके सामने है । इसका मूल्य केवल लागत भर २) रुपया रखागया है; क्योंकि इसके प्रधान संरक्षक भारत-प्रसिद्ध बनैली-राज्यके अधीश्वर हैं ।

॥) देकर "वैदिकपुस्तकमाला"के स्थायी ग्राहक बननेवालोंको आगे कभी भी डाकखर्च नहीं देना होगा और पुस्तक निकलते ही, सूचना देकर, वी०पो० से, भेज दी जायगी ।

मैनेजर, "वैदिकपुस्तकमाला", कृष्णगढ़, सुलतानगंज (ई०आई० आर०)

वैदिकपुस्तकमाला—तृतीय पुष्प

ऋग्वेद-संहिता

(सरल-हिन्दी-टीका-सहित)

तृतीय अष्टक

टीकाकार

पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री

("दर्शनपरिचय", "हिन्दी-विष्णुपुराण", "राजर्षि प्रह्लाद", "महासती मदालसा" आदिके लेखक,
"सेनापति', "विश्वदूत" आदिके भूतपूर्व सम्पादक, "गीताप्रचारक-महामण्डल" (मोरिशस) के
जन्मदाता, "दक्षिण अफ्रीकन सनातनधर्म-महामण्डल" (डरबन, नेटाल) के आजीवन
सभापति, "गङ्गा"के प्रधान सम्पादक तथा सनातनधर्मके महोपदेशक),

पण्डित गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ

(प्राइवेट सेक्रेटरी, बनैली-राज्याधिपति साहित्य-विभूषण कुमार कृष्णानन्द
सिंह बहादुर तथा "गङ्गा" और "वैदिकपुस्तकमाला"के
(अन्यतम जन्मदाता एवम् अध्यक्ष)

—*और*—

साहित्याचार्य पण्डित महेन्द्र मिश्र "मग"

("गङ्गा"के सहकारी सम्पादक)

प्रकाशक
पण्डित गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ
संचालक, "वैदिकपुस्तकमाला", कृष्णगढ़, सुलतानगंज (ई० आई० आर०)

प्रथम संस्करण
३०००

मूल्य २)
अग्रहायण, १९९० विक्रमीय

श्रीमिथिला प्रेस,
खलीफाबाग, भागलपुरमें मुद्रित

दो शब्द

जो आर्य नहीं हैं—मंगोल, सेमेटिक या हेमेटिक हैं, वे भी ऐतिहासिक दृष्टिसे वेदोंका बड़ा सम्मान करते हैं—उनका भी मत है कि, आर्यजातिका और तत्सम्पर्कीय अन्य जातियोंका मूल इतिहास जाननेके लिये वेदाध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। अनेक उत्कट-ज्ञान-पिपासु यूरोपियनोंके विचारसे तो वेदोंका पढ़ना उतना ही आवश्यक है, जितना साक्षर होना। यही कारण है कि, इन लोगोंमेंसे कइयोंने वेदोंके पठन-पाठनमें अपना सारा जीवन ही लगा दिया है, वेदेतिहासके अन्वेषणमें सारी पृथिवीकी खाक छान डाली है और वेदोंके प्रकाशन तथा प्रचारमें लाखों रुपये, पानीकी तरह, बहा डाले हैं। जर्मनी, फ्रांस, हालैंड, चेकोस्लोवेकिया, अमेरिका, रूस और इंगलैंड आदिमें तो कितनी ही वेद-ज्ञान-प्रसारिणी संस्थाएँ तक खुल गयी हैं।

और, इधर, भारतमें तो वेदोंके ऊपर केवल ऐतिहासिक दृष्टि ही नहीं, धार्मिक दृष्टि भी है। हमारे यहाँ करोड़ों हिन्दू ऐसे हैं, जो वेदोंको मनुष्यजातिकी समस्त ज्ञान-राशिका सुदृढ़ आधार मानते हैं। इनके मतसे संसारमें जितने ज्ञान-विज्ञानोंका संचरण है, सबका प्रकाश-स्तम्भ वेद ही हैं। हिन्दू धर्मशास्त्रमें ईश्वर न माननेवाला नास्तिक हो या न हो; परन्तु वेद न माननेवाला अवश्य नास्तिक है—“नास्तिको वेद-निन्दकः” (मनुस्मृति)। सांख्य और मीमांसा आदि ईश्वरको नहीं मानते; परन्तु वेदको नित्य, शाश्वत, अज और अप्रमेय मानते हैं। लो॰ तिलक जैसे युगान्तरकारी विद्वान्के मतसे तो वही हिन्दू है, जिसकी वेदोंपर अखण्ड श्रद्धा है, जो वेदोंको सर्वांशतः प्रमाण मानता है—“प्रामाण्य-बुद्धि-वेंदेषु।” स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे सुधार-वादीके विचारसे “जो वेदमें नहीं है, वह संसारमें ही नहीं है, न हो सकता है।” प्राचीन आचार्योंका तो मत ही था कि, “प्रत्यक्ष और अनुमानसे भी जो बात नहीं जानी जा सकती, उसे वेद बताता है”—

‘‘प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं वदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ॥’

वेदोंका कभी विनाश नहीं होता, वे प्रलय-कालमें भी

मनुस्मृतिके टीकाकार कुल्लूकभट्टकी दृष्टिसे परमात्मामें स्थित रहते हैं—“प्रलयकालेऽपि परमात्मनि वेदराशिः स्थितः।” इस तरह कोई वेदको ईश्वरका निःश्वास मानता है, कोई ईश्वरवत् अमर मानता है, कोई अनन्त-ज्ञान-राशि मानता है कोई विश्वकी उच्चतम संपद् मानता है। यही आर्य-परम्परा है और यह बहुत कुछ सार्थक तथा सयुक्तिक है।

यह सब कुछ है; परन्तु इन दिनों हम ऐसे बुद्धि-हीन, साधना-शून्य, अव्यवस्थित, दरिद्र और अज्ञानी हो गये हैं कि, वेदोंका महत्त्वतक समझना हमारे लिये असम्भवसी बात हो चली है। कोई वेदोंको “गड़रियोंके गीत” समझता है, कोई ब्राह्मणोंकी उदर-पूर्त्तिका साधन। हमारी मनोवृत्ति इतनी दासभावापन्न हो गयी है कि, वेदाध्यन तो दूर रहा, जीवन भरमें वेदोंकी पुस्तकोंका दर्शन भी नहीं करते—भले ही बी०

ए०, एम० ए० या बैरिस्टरी पास करके बाइबिल या कुरानकी तारीफ कर डालते हैं । हम देखते हैं कि इनसे भी उच्चतर परीक्षाएँ पास करके अँग्रेज और मुसलमान अपने प्राण-प्रिय धर्म-ग्र बाइबिल और कुरानका घर-घर गौरव-प्रचार करनेके लिये जमीन और आसमान एक कर डा हैं, अपनी संस्कृति और सभ्यताके प्रसारके लिये जीवनतक गँवा देनेको तैयार हो जाते हैं; औ हम अपने मूल धर्म-ग्रन्थ और आदिम इतिहास वेद, संस्कृति और सभ्यताको लातों ठुकरा देते हैं- हमें भली बातोंकी नकल आती ही नहीं ! क्लबों, मोटरोंमें लाखो रुपये उड़ानेको हमें मिल जा हैं; परन्तु वैदिक ग्रन्थोंको खरीदनेके लिये एक पैसा भी नहीं मिलता । चरित्र-हीन करनेवा "तोता-मैनाका किस्सा" और तिलिस्मी तथा जासूसी उपन्यास पढ़नेको हमारे प्राण तड़फड़ा उठ हैं; किन्तु वेदकी बात सूईसी चुभती है ! इससे भी बढ़कर किसीका पतन होगा ?

वेदोंका प्रचार न होनेके कारण और भी हैं—वैदिक ग्रन्थोंकी महार्घता और राष्ट्र-भाषा हिन्दीमें सरल अनुवादका अभाव । ऋग्वेदकी सटीक पुस्तक डेढ़ दो सौ रुपयोंमें मिलती है और सरल हिन्दी-अनुवादका तो एकदम ही अभाव है—अवश्य ही साम्प्रदायिक हिन्दी-अनुवाद है, जिसमें काफी खींचतान की गयी है । ऐसे ही अभावोंकी पूर्त्तिकी दिशामें हमारा वर्त्तमान प्रयत्न है । हमने सिर्फ १६) रु० में, (प्रत्येक अष्टक २) रु० में) सरल हिन्दी-अनुवादके साथ, सम्पूर्ण ऋग्वेद-संहिताका देना निश्चित किया है--यद्यपि इसमें हमें बहुत ही परिश्रम और द्रव्य व्यय करना पड़ रहा है । दो अष्टक निकल चुके हैं; आज तीसरा निकल रहा है । टाइप, छपाई आदिकी दृष्टिसे यह अष्टक उन दोनोंसे बढ़िया है । इस अष्टकमें कई ऐसी सूचियाँ दी गयी हैं, जिनसे इस अष्टककी सभी महत्त्व-पूर्ण बातें विदित हो जाती हैं । कई कारणोंसे इस ग्रन्थ-रत्नका प्रकाशन धीरे-धीरे हो रहा था; परन्तु अब ऐसा प्रबन्ध कर लिया गया है, जिससे अधिकसे अधिक चार महीनोंमें एक अष्टक अवश्य ही निकला करेगा । जिस "वेद-रहस्य"की चर्चा प्रथम और द्वितीय अष्टकोंकी भूमिकाओंमें की गयी है, उसके अनेक प्रकरण लिखे जा चुके हैं । इस रहस्यमें वेदोंके सम्बन्धकी अथसे इतितक सब बातें आ जायँगी ।

एक बात और । इस अष्टकका प्रूफ देखने और अनुवाद करनेमें साहित्याचार्य पण्डित महेन्द्र मिश्र "मग"ने हमें बहुत सहायता दी है; इसलिये उनका नाम भी देना हमने उचित समझा ।

अग्रहायणी अमावास्या, १९९०
कृष्णगढ़, सुलतानगंज

रामगोविन्द त्रिवेदी,
गौरीनाथ झा

सायणाचार्यके मतानुसार तृतीय अष्टकमें पौराणिक कथाएँ

तृतीय अष्टकमें तृतीय मण्डलके ७ से ६२ सूक्त, चतुर्थ मण्डलके ५८ सूक्त और पञ्चम मण्डलके ८ सूक्त हैं। प्रत्येक कथाके आगे मण्डल, सूक्त और मन्त्रकी संख्या दी गयी है।

१	अग्नि द्वारा दासोंके नब्बे नगरोंका कम्पित होना	३।१२।६
२	उषाओंसे अग्निकी उत्पत्ति	३।१७।३
३	भरतपुत्रों द्वारा अग्निकी उत्पत्ति	३।२३।२
४	इलापुत्र अग्नि	३।२९।३
५	इन्द्र द्वारा वृत्रका हस्तहीन होना	३।३०।८
६	अङ्गिराओं द्वारा गौओंका अन्वेषण	३।३१।५
७	इन्द्र द्वारा जलकी उत्पत्ति	३।३१।१६
८	जन्म लेते ही इन्द्रने सोम पान किया	३।३२।९
९	विपाशा और शुतुद्री नदियोंका जन्म	३।३३।१
१०	विश्वामित्रकी प्रार्थनासे विपाशा और शुतुद्रीका निम्नस्थ [पार होने योग्य] होना	३।३३।९-१०
११	सुपर्ण पक्षी द्वारा सोमका लाया जाना	३।४३।७
१२	पणियों द्वारा गौओंका अपहरण	३।४४।५
१३	अदितिने सूतिकागृहमें इन्द्रको स्तन्य दानके प्रथम सोमरस पिलाया	३।४८।२
१४	त्वष्टाको विनष्ट कर इन्द्रने चमसस्थित सोम चुराया	३।४८।४
१५	पिजवनपुत्र सुदासका यज्ञ	३।५३।९
१६	अनार्य जनपद कीकटमें दुग्धदायिनी गौएँ	३।५३।१४
१७	वसिष्ठके भृत्यों द्वारा विश्वामित्रका अपमान	३।५३।२३
१८	त्रिविक्रमावतार	३।५४।१४
१९	विना रेतःसंयोगके ओषधियोंका गर्भवती होना	३।५५।५
२०	ऋभुओं द्वारा चमस-निर्माण, मृतक गोशरीरमें चर्मयोजना और इन्द्रके अश्व-द्वयका निर्माण	३।६०।२,४।३३।२,४,१०,११
२१	अग्निपत्नी होत्रा और सूर्यपत्नी भारती	३।६२।३
२२	वरुणकृत जलोदररोग	४।१।५
२३	अग्नि अपने सेवकोंको धनवान् करते हैं	४।२।६–१०, ३।१८।४
२४	चक्षुर्हीन दीर्घतमाका शापोद्धार	४।४।१३
२५	देवदूत अग्नि	४।७.८
२६	सहदेवपुत्र सोमक राजाका अश्वदान	४।१५।७–८
२७	सरमाने गौओंको प्रकाशित किया	४।१६।८
२८	कुत्स और इन्द्रका रूपसाम्य	४।१६।१०
२९	इन्द्र द्वारा कुयव और शुष्ण असुरका बध	४।१६।१२
३०	संग्राममें इन्द्र द्वारा सूर्यके रथचक्रका छिन्न होना	४।१६।१२,४।३०।४
३१	इन्द्र द्वारा पिप्रु और मृगय असुरोंका बध, विदथिपुत्र ऋजिश्वाका बन्दी होना एवम् पचास हजार कृष्णवर्ण असुरोंका मारा जाना और शम्बरके नगरोंका विनाश	४।१६।१३
३२	इन्द्र द्वारा वामदेवकी यज्ञरक्षा	४।१६।१८
३३	इन्द्र-एतश-युद्ध	४।१७।१४
३४	गर्भस्थ वामदेवका इन्द्र और अदितिसे संवाद	४।१८
५३	इन्द्रका ब्रह्महत्यापापसे उद्धार	४।१८।७

३६ इन्द्र द्वारा पिताका असत्कार ४।१८।१२

३७ वामदेव द्वारा कुत्तेका मांस खाया जाना और उनकी स्त्रीका अश्लाघनीया होना ४।१८।१३

३८ अग्रू पुत्रका दीमकके पिण्डसे बाहर होना और इन्द्र द्वारा उनके मांस-चर्म-हीन शरीरकी रक्षा ४।१९।२६

३९ सोमापहरणकालमें श्येनका सोमपालोंसे युद्ध ४।२७।३

४० इन्द्र द्वारा विचूर्णित उषादेवीके शकटका विपाशा नदीके तीरपर गिर पड़ना ४।३०।११

४१ वचि नामक असुरके अनुचरोंका बध ४।३०।१५

४२ अनभिषिक्त राजा यदु और तुर्वशका इन्द्र द्वारा अभिषेक ४।३०।१७

४३ सरयू नदीके पारमें रहनेवाले आर्य राजा अर्ण और चित्ररथका इन्द्र द्वारा वध ४।३०।१८

४४ इन्द्र द्वारा अन्ध और पङ्गुके अन्धत्व और पङ्गुत्वका विनाश ४।३०।१९

४५ इन्द्रने दिवोदासको शम्बरके पाषाणनिर्मित शत-संख्यक नगर दिये ४।३

४६ दभीतिके लिये त्रिंशत्-सहस्र-संख्यक राक्षसोंका हनन ४।३

४७ वृषभयुक्त रथ द्वारा गमन ४।३

४८ ऋभुओंने परिचर्या द्वारा माता-पिताको युवा किया ४।३३।२—३, ४।३४।९, ४।

४९ ऋभुओंने देवोंके लिये अंसत्रा कवच और अश्विद्वयके लिये रथ-निर्माण किया ४।

५० ऋभुओं द्वारा निर्मित अश्विद्वयके चित्रक र का विना अश्व और प्रग्रहके अन्तरिक्षमें परिभ्रमण ४।३

५१ त्रसदस्यु राजाका महादान ४।

५२ पुरुकुत्सकी स्त्रीने सप्तर्षिके अनुग्रहसे त्रसदस्युको प्राप्त किया ४।४

५३ सूर्या द्वारा अश्विद्वयके रथका संवरण ४।४३।

५४ इन्द्र द्वारा क्षीर, सूर्य द्वारा दधि और देवों द्वारा घृतकी उत्पत्ति ४।५८।

५५ वृश ऋषिके रथचक्र द्वारा कुमारकी मृत्यु ५।२।

५६ यज्ञयूपमें बद्ध शुनःशेपकी मुक्ति ५।२।

किस मन्त्रकी टिप्पनीमें क्या है ?

१ कुल ३३३९ देवता ३।९।९

२ भिन्न-भिन्न स्थानोंमें वर्त्तमान अग्निके भिन्न-भिन्न नाम ३।२२।२

३ विपाशा और शुतुद्री नदियोंने जल घटाकर विश्वामित्रको पार उतार दिया ३।३४।१

४ गन्धर्वोंका अन्तरिक्षमें निवास और सोमरस प्रस्तुत करना ३।३८।६

५ चतुर्थ-मण्डलके ऋषि ४।१।१

६ दीर्घतमाका जन्म ४.४।१३

७ कुत्स और इन्द्रका रूपसाम्य ४।१६।१०

८ स्वश्व राजाने सूर्यको पुत्र रूपसे प्राप्त किया ४।१७।१४

९ एक पदकी ऋचा ४।१७।

१० वामदेवकी जन्मकथा ४।१८

११ इन्द्रके ब्रह्महत्यापापका निष्क्रमण ४।१८।

१२ सूर्यरश्मिसे ऋभुओंकी स्तुति ४।३३।

१३ निष्क शब्दसे स्वर्णमुद्रा ४।३७।

१४ त्रसदस्युका जन्म ४।४२।

१५ सुखकर देवताके अर्थमें शुन शब्द ४।५७।

१६ शौनकके विचारसे शुन शब्द ४।५७।

१७ महीधरके विचारसे सीता शब्दका अथ ४।५७।

१८ "चत्वारि श्रृङ्ग"का आदित्यात्मक अर्थ ४।५८।

१९ शाट्यायन ब्राह्मणोक्त कुमारकी कथा ५।२।

तृतीय अष्टककी जानने योग्य बातें

आय और दस्यु, ये दो जातियाँ थीं	३।३४।२
पश्व-कृषि	४।३८।६
मनुष्योंकी परमायु	३।३६।२
पुत्रके अवर्त्तमान होनेपर दौहित्र पुत्र-स्थानीय होता है	३।३१।२
पुत्र क्रिया और सम्पत्तिका अधिकारी है एवम् कन्या सम्मानकी अधिकारिणी है	३।३१।३
"धान" अर्थात् भूना जौ (व्रीहि अर्थात् चावलका उल्लेख नहीं हैं)	३।३५।१
धान, करम्भ, अपूप, पुरोडाश, पक्ति और खारी (शस्यका माप)	४।३२।१
निष्क	४।३७।२
अंसत्रा (कवच), द्रापि (कवच या परिच्छद)	४।३४।५, ४।५३।२
खदिर और शिशुकाष्ठकी गाड़ी	३।५३।१९
रथनिर्माता शिल्पिगण और सूत्रधार	४।२।३, ४।१६।६
सुवर्ण-सज्जा-विशिष्ट अश्व	४।२।२
युद्धका अश्व	४।३८।५
अमात्यवेष्टित गजस्कन्धपर आरूढ़ राजा	४।४।१
प्रस्तरनिर्मित नगर	४।३०।३
कृषिकार्यका विवरण	४।५७ समस्त सूक्त
वणिकोंका समुद्रगमन	४।५५।३
भ्रातृरहिता विपथगामिनी नारी, पतिविद्वेषिणी दुष्टाचारिणी भार्या	४।५।१
वस्त्रापहारक तस्कर	४।३८।३
सरयूके पूर्व आर्यराज्यका विस्तार और आर्यराजाओंसे युद्ध	४।३०।२
दृषद्वती, अपया, सरस्वती, पुरुष्णी, विपाशा और शुतुद्री नदियाँ	३।२३।२,४।२२।१,३।३३।१
जह्नुकन्या	३।५८।१
अनार्य बबरजातियाँ	३।३१।६,७,४।१६।४,४।२८।१,४।३०।४,४।३८।१
कीकट (दक्षिण मगध) देशके बर्बर	३।५३।६,१०

देव-विवरण

ऐश्वरिक बलकी एकता एक ईश्वरका अनुभव	३।५५।३,६
स्वर्गलाभकी कथा	४।११।१, ४।४७।१
गायत्री मन्त्र	३।६२।१
हंसवती ऋक्	४।४०।१
अंगिरा द्वारा कृत अग्निपूजाका अनुष्ठान	४।१।४,४।२।४
सीता (अर्थ, लाङ्गलकृत भूमिरेखा)	४।५७।५
शुन और सीर	४।५७।२,४
ऋभुक्षा	४।३७—१
दधिक्रा	३।२०।१, ४।३८।२, ५
धिषणा	३।२२।२
स्वस्तिदेवी	४।५५।१
शरु	४।३।३
घृतकी स्तुति	४।५८।६
श्येन पक्षी द्वारा सोमानयन	३।४३।१, ४।२६।४-७, ४।२७ समस्त सूक्त
जन्म लेते ही इन्द्रने मातृ-स्तनमें सोम देखा और अति-शय सोमप्रियता दिखायी	३।४८ समस्त सूक्त ३।५३।४
इन्द्रने पिताका अपमान किया	४।१८।६
यूपकाष्ठ और पशुबलि	३।८ समस्त सूक्त
३३३९ देव	३।६।२
गन्धर्वगण	३।३८।२
"असुर"	३।२६।१
ऋग्वेदकी उपमासे क्रमशः उपाख्यानोंकी सृष्टि	५।२।१

वैदिक-पुस्तक—मालाकी नियमावली

(१) इस मालामें हिन्दी-अनुवाद-सहित चारो वेद और विशेषतः वैदिक ग्रन्थ ही गूँथे जायँगे।

(२) ॥) भेजकर मालाके स्थायी ग्राहक बननेवालों और गङ्गाके ग्राहकोंको किसी भी पुस्तक
डाकखर्च नहीं देना पड़ेगा ।

(३) स्थायी ग्राहकोंको मालामें प्रकाशित सभी पुस्तकोंको खरीदना पड़ेगा ।

(४) मालामें प्रकाशित पुस्तकें, सूचना देकर, वी० पी० से, भेजी जायँगी ।

मैनेजर, वैदिक-पुस्तक-माला, कृष्णगढ़, सुलतानगंज (ई० आई० आर०)

"गङ्गा" के संरक्षक, सोनबरसा-राज्याधिपति—
राव बहादुर रुद्रप्रताप सिंहजी साहब एम० एल० सी०

समर्पण

जो हिन्दू-धर्मकी रक्षाके लिये अहोरात्र चिन्तित रहते हैं,
जो हिन्दू-जातिके अभ्युदयके लिये सर्वस्व त्याग
करनेको तैयार रहते हैं, जो हिन्दी-साहित्यके
उन्नयनके लिये पानीकी तरह रुपये बहाते
हैं, जो विद्वानों और ब्राह्मणोंके आश्रयस्थल
हैं, जो अध्ययन और मननमें ही अपना
अधिक समय व्यतीत करते हैं, जो
प्रजाकी भलाई करना ही अपना
पवित्र राज-धर्म समझते हैं
और जो बिहारकी सुप्रसिद्ध
पत्रिका 'गङ्गा'के
संरक्षक हैं, उन

वीरव्याघ्र-कछवाहा-राजपूत-कुल-भूषण, सोनबरसा-राज्याधिपति

राव बहादुर रुद्रप्रताप सिंह एम० एल० सी०

— के —

कमनीय कर-कमलोंमें

सप्रेम समर्पित

रामगोविन्द त्रिवेदी
गौरीनाथ झा

ॐ तत्सत्

ऋग्वेद-संहिता

(हिन्दी-टीका-सहित)

३ अष्टक । ३ मण्डल । १ अध्याय । १ अनुवाक ।

७ सूक्त

अग्नि देवता । तृतीय मण्डलके ऋषि विश्वामित्र और उनके वंशोद्भव हैं । यहाँसे १२ सूक्ततकके ऋषि स्वयं विश्वामित्र हैं । त्रिष्टुप् छन्द है ।

प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेरा मातरा विविशुः सप्तवाणीः ।
परिक्षिता पितरा सञ्चरेते प्रसर्स्राते दीर्घमायुः प्रयक्षे ॥ १ ॥
दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वा देवीरातस्थौ मधुमद्वहन्तीः ।
ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येका चरति वर्तनिं गौः ॥२॥

---

१ श्वेत पृष्ठवाले और सबके धारक अग्निकी जो किरणें उत्तमताके साथ उठती हैं, वे पितृ-मातृ-रूप द्यावापृथिवीको चारो दिशाओंमें प्रविष्ट होती हैं, सात नदियोंमें भी प्रविष्ट होती हैं। चारो ओर वर्त्तमान पितृ-मातृ-भूत द्यावापृथिवी भली भाँति फैली हैं और अच्छी तरह यज्ञ के लिये अग्निको दीर्घ जीवन प्रदान करती हैं।

२ द्युलोकवासी धेनु ही अभीष्टवर्षी अग्निका अश्व है। मधुर-जल-वाहिनी और प्रकाशवती नदियोंमें अग्नि निवास करते हैं । अग्नि, तुम ऋत या सत्यके गृहमें रहना चाहते और अपनी ज्वाला देते हो। अग्नि, एक गौ या मध्यमिका वाक् तुम्हारी सेवा करती है ।

आ सीमरोहत् सुयमा भवन्तीः पतिश्चिकित्वान्रयिविद्रयीणाम् ।
प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेस्ता अवासयत् पुरुधप्रतीकः ॥ ३ ॥
महि त्वाष्ट्रमुर्जयन्तीरजुर्यं स्तभूयमानं वहतो वहन्ति ।
व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थ एकामिव रोदसी आ विवेश ॥ ४ ॥
जानन्ति वृष्णो अरुषस्य शेवमुत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति ।
दिवोरुचः सुरुचो रोचमाना इड़ा येषां गण्या माहिना गीः ॥५॥
उतो पितृभ्यां प्रविदानु घोषं महो महद्भ्यामनयन्त शूषम् ।
उक्षा ह यत्र परिधानमक्तोरनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष ॥ ६ ॥
अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्तविप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।
प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ॥७॥

---

३ धनोंमें श्रेष्ठ धनके स्वामी, ज्ञानवान् और अधिपति अग्नि सुखसे संयमनीय वड़वा चढ़ गये। श्वेत पृष्ठवाले और चारो ओर प्रसृत अग्निने वड़वाओंको, सतत गमन करनेके लि छोड़ दिया ।

४ बलकारिणी और प्रवहमाना नदियाँ अग्निको धारण करती हैं। वह महान्, त्वष्टाके पु जरारहित और सारे संसारको धारण करनेके अभिलाषी हैं। जैसे पुरुष एक स्त्रीके पास जाता है वैसे ही अग्नि जलके पास प्रदीप्त होकर द्यावापृथिवीमें प्रवेश करते हैं।

५ लोग अभीष्टवर्षी और अहिंसक अग्निके आश्रय-जन्य सुखको जानते और महान् अग्नि आज्ञामें रत रहते हैं। जिन मनुष्योंके श्रेष्ठ-स्तुति-रूप वाक्य गणनीय होते हैं, वे द्युलोकके दीप्तिक और शोभन दीप्ति-युक्त होकर देदीप्यमान होते हैं।

६ महान्से भी महान् पितृ-मातृ-स्थानीय द्यावापृथिवीके ज्ञानके पश्चात् ऊँचे स्वरमें की ग स्तुतिसे उत्पन्न सुख अग्निके निकट जाता है। जलसेचनकर्ता अग्नि रात्रिकी चारो ओर व्याप्त स्व तेज स्तोताके पास भेजते हैं।

७ पाँच अध्वर्युओंके साथ सात होता गमनशील अग्निके प्रिय स्थानकी रक्षा करते हैं। सोम पानके लिये पूर्वकी ओर जानेवाले अजर और सोम-रस स्तोता लोग प्रसन्न होते हैं; क्योंकि देवता लोग देव-तुल्य स्तोताओंके यज्ञमें जाते हैं।

दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनुव्रतं व्रतपा दीध्यानाः । ८ ।
वृषायन्ते महे अत्याय पूर्वीर्वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः ।
देव होतर्मन्द्रतरश्चिकित्वान्महो देवान्रोदसी एह वक्षि ॥९॥
पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदूषुः ।
उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः कृत चिदेनः समहे दशस्य ॥१०॥
इड़ामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ ॥

---

८ दिव्य-होतृ-द्वय-स्वरूप दो मुख्य अग्नियोंको मैं अलंकृत करता हूँ। सात जन होता सोम द्वारा प्रसन्न होते हैं। स्तोत्रकर्ता, यज्ञ-रक्षक और दीप्तिशाली होता लोग "अग्नि ही सत्य है", ऐसा कहते हैं।

९ हे देदीप्यमान और देवोंको बुलानेवाले अग्नि, तुम महान्, सबको अतिक्रम करके रहनेवाले, नाना वर्णों वाले और अभीष्टवर्षक हो। तुम्हारे लिये प्रभूत, अतीव विस्तृत और सर्वत्र व्याप्त ज्वालाएँ वृषके समान आचरण करती हैं। तुम मादयिता और ज्ञानी हो। तुम पूज्य देवों और द्यावापृथिवीको इस कर्ममें बुलाते हो।

१० सतत गमनशील अग्नि, जिस उषाकालमें भली भाँति अन्न द्वारा यज्ञ प्रारम्भ किया जाता है, जो उषाकाल शोभन-वाक्य-युक्त तथा पक्षियों और मनुष्योंके शब्दोंसे सुचिन्हित है, वही सब उषाकाल तुम्हारे लिये धनयुक्त होकर प्रकाशित होते हैं। हे अग्नि, अपनी विशाल महिमाके कारण तुम यजमानके किये पापका नाश करते हो।

११ अग्नि, स्तोताको तुम अनेक कर्मोंकी कारणभूता और धेनुप्रदात्री भूमि अथवा गो-रूप देवता सदा प्रदान करो। हमें वंशविस्तारक और सन्तति-जनयिता एक पुत्र हो। अग्निदेव, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो।

८ सूक्त

इस सूक्तके यूप देवता हैं। ११ वीं ऋचाके छिन्न यूपके मूलभूत स्थाणु देवता हैं। ८ म के विश्वदेव या यूप देवता हैं। छठी ऋचासे लेकर सारी ऋचाओंके विविध यूप देवता हैं। अवशिष्ट ऋचाओंके एक यूप देवता हैं। अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द।

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन ।
यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥१॥
समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद्ब्रह्मवन्वानो अजरं सुवीरम् ।
आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥२॥
उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन् पृथिव्या अधि ।
सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥३॥
युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्वो मनसा देवयन्तः ॥४॥
जातो जायते सुदिनत्वे अह्नाँ समर्य आ विदथे वर्धमानः ।
पुनन्ति धीराः अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम् ॥५॥

---

१ वनस्पतिदेव, देवोंके अभिलाषी अध्वर्यु लोग देव-सम्बन्धी मधु द्वारा तुम्हें सिक्त करते हैं। तुम चाहे उन्नत भावसे रहो अथवा मातृ-भूत पृथिवीकी गोदमें ही शयन करो, हमें धन दो।

२ यूप, तुम समिद्ध अथवा आहवनीय नामक अग्निकी पूर्व दिशामें रहकर अजर, सुन्दर और अपत्ययुक्त अन्न देते हुए तथा हमारे पापको दूर करते हुए महती सम्पत्तिके लिये उन्नत होओ।

३ वनस्पति, तुम पृथिवीके उत्तम यज्ञ-प्रदेशमें उन्नत होओ। तुम सुन्दर परिमाणसे युक्त हो। यज्ञ-निर्वाहकको अन्न दान करो।

४ दृढ़ाङ्ग, सुन्दर जिह्वावाले तथा जिह्वासे परिवेष्टित यूप आता है। वह यूप ही, समस्त वनस्पतियोंकी अपेक्षा, उत्तम रूपसे उत्पन्न है। ज्ञानी मेधावी लोग हृदयसे देवोंकी इच्छा करके, सुन्दर ध्यानके साथ उसे उन्नत करते हैं।

५ पृथिवीपर वृक्षरूपसे उत्पन्न यूप मनुष्योंके साथ यज्ञमें सुशोभित होकर दिनोंको सुदिन करता है। कर्मनिष्ठ और विद्वान् अध्वर्यु लोग यथाबुद्धि उसी यूपको प्रक्षालन द्वारा शुद्ध करते हैं। देवोंके याजक और मेधावी होता वाक्य वा मन्त्रका उच्चारण करते हैं।

यान्वो नरो देवयन्तो निमिम्युर्वनस्पते स्वधितिर्वाततक्ष ।
ते देवासः स्वरवस्तस्थिवांसः प्रजावदस्मे दिधिषन्तु रत्नम् ॥६॥
ये वृक्णासो अधिक्षमि निमितासो यतस्रुचः ।
ते नो व्यन्तु वार्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः ॥७॥
आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथाः द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।
सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा ऊर्ध्वं कृणवन्त्वध्वरस्य केतुम् ॥८॥
हंसा इव श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः ।
उन्नीयमानाः कविभिः पुरस्ताद्देवा देवानामपियन्ति पाथः ॥९॥
शृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां सन्ददृशे चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्यन्नम् ।
वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणा अस्माँ अवन्तु पृतनाज्येषु ॥१०॥

---

६ यूपो, देवाभिलाषी और कर्मोंके नायक अध्वर्यु आदिने तुम्हें गड्ढेमें फेंक दिया है। वनस्पति, कुठारने तुम्हें काटा है। तुम दीप्तिमान् और काष्ठ-खण्डवाले हो। हमें अपत्यके साथ उत्तम धन दो।

७ जो फरसेसे भूमिपर काटे जाते हैं, जो ऋत्विकों द्वारा गड्ढेमें फेंके जाते हैं और जो यज्ञके साधक हैं, वे ही सब यूप देवोंके पास हमारा हव्य ले जाँय।

८ सुन्दर नायक आदित्य, रुद्र, वसु, द्यावापृथिवी और विस्तीर्ण अन्तरीक्ष, ये सब मिलकर यज्ञकी रक्षा करें और यज्ञकी ध्वजा यूपको उन्नत करें।

९ दीप्त वस्त्रसे आच्छादित, हंसकी तरह श्रेणीपूर्वक गमन करनेवाले और खण्ड-युक्त यूप हमारे पास आवें। मेधावी अध्वर्यु आदिके द्वारा यज्ञकी पूर्व दिशामें उन्नीयमान तथा दीप्तिशाली सारे यूप देवोंका मार्ग प्राप्त करते हैं।

१० स्वरुवाले और मुक्तकण्टक यूप पृथिवीके शृङ्गी पशुओंकी सींगकी तरह भली भाँति दिखाई देते हैं। यज्ञमें ऋत्विकोंकी स्तुतियाँ सुननेवाले यूप युद्धमें हमारी रक्षा करें।

वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम ।
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाय ॥११॥

६ सूक्त

अग्नि देवता । त्रिष्टुप् और बृहती छन्द ।

सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
अपां नपातं सुभगं सुदीदीतिं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥१॥
कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्त्तनं यद्दूरे सन्निहाभवः ॥२॥
अति तृष्टं ववक्षिथाथैव सुमना असि ।
प्रप्रन्ये यन्ति पर्यन्य आसते येषां सख्ये असि श्रितः ॥३॥
इयिवांसमतिस्रिधः शश्वतीरति सश्चतः ।
अन्वीमविन्दन्निचिरासो अद्रुहोप्सु सिंहमिव श्रितम् ॥४॥

---

११ हे छिन्नमूल स्थाणु, इस तीखी धारवाले फरसेने तुम्हें महान् सौभाग्य प्रदान किया है। तुम हजार शखाओंवाले होकर भली भाँति उत्पन्न होओ। हम भी हजार शाखाओंवाले होकर भली भाँति प्रादुर्भूत हों।

१ अग्नि, तुम जलके नप्ता, सुन्दर धनवाले, दीप्तिमान, निरुपद्रवी और संसारके प्राप्तव्य हो हम तुम्हारे मित्रभूत मनुष्य हैं। अपनी रक्षाके लिये तुम्हें हम वरण करते हैं।

२ अग्नि, तुम सारे वनोंकी रक्षा करते हो। तुम मातृ-रूप जलमें पैठकर शान्त होओ। तुम्हारा शान्त भाव सदा नहीं सहा जाता; इसलिये तुम दूरमें रहकर भी हमारे काठके बीच उत्पन्न होते हो।

३ अग्नि, स्तोताकी अभिलाषाको तुम विशेष रूपसे वहन करनेकी इच्छा करते हो। तुम सन्तुष्ट रहते हो। तुम जिन १६ ऋत्विकोंके साथ मित्रताके साथ रहते हो, उनमेंसे कुछ विशेष-रूपसे होम करनेके लिये जाते हैं; अवशिष्ट मनुष्य चारों ओर बैठते हैं।

४ गुहा-स्थित सिंहकी तरह जलमें छिपे हुए तथा शत्रुओं और बहु सेनाओंको हरानेवाले अग्निको द्रोह-रहित और चिरन्तन विश्वदेवोंने प्राप्त किया था।

ससृवांसमिव त्मनाग्निमित्था तिरोहितम् ।
एनं नयन्मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि ॥५॥
तं त्वा मर्ता अगृभ्णात देवेभ्यो हव्यवाहन ।
विश्वान्यद्यज्ञाँ अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्ठ्य ॥६॥
तद्भद्रं तव दंसना पाकाय चिच्छदयति ।
त्वां यदग्ने पशवः समासते समिद्धमपि शर्वरे ॥७॥
आ जुहोता स्वध्वरं शीरं पावकशोचिषम् ।
आशुं दूतमजिरं प्रत्नमीड्यं श्रुष्टी देवं सपर्यत ॥८॥
त्रीणि शता त्रीसहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवानवचासपर्यन् ।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादियन्त ॥९॥

५ जैसे स्वच्छन्दगामी पुत्रको पिता खींच ले आता है, वैसे ही मातरिश्वा स्वेच्छासे छिपे हुए और मन्थन द्वारा प्राप्त अग्निको देवोंके लिये लाये थे।

६ मनुष्योंके हितैषी और सदा तरुण अग्निदेव, अपनी महिमासे तुम सारे यज्ञका विशेष रूपसे पालन करते हो। इसलिये हे हव्यवाहन, मनुष्योंने तुम्हें देवोंके लिये ग्रहण किया है।

७ अग्नि, चूँकि सायंकालमें तुम्हारे समिद्ध होनेपर तुम्हारे पास सारे पशु बैठते हैं; इसलिये तुम्हारा यह सुन्दर कर्म बालककी तरह अज्ञको भी फलप्रदान करके सन्तुष्ट करता है।

८ पवित्र दीप्तिवाले, काष्ठादिके बीच सोये हुए और सुकर्मा अग्निका होम करो। बहुव्याप्त, दूतस्वरूप, शीघ्रगामी, पुरातन, स्तुतियोग्य और दीप्तिमान् अग्निकी शीघ्र पूजा करो।

९ तीन हजार तीन सौ उनतालीस देवोंने अग्निकी पूजा की है, घृत द्वारा उन्हें सिक्त किया है और उनके लिये कुश विस्तृत किया है। पश्चात् उन्होंने अग्निको होता मानकर कुशोंके ऊपर बैठाया है। *

---

* सायणाचार्यके मतसे देवता केवल ३३ ही हैं; परन्तु देवोंकी विशाल महिमा बतानेके विचारसे इस मन्त्रमें ३३३९ देवोंका उल्लेख किया गया है।

१० सूक्त

अग्नि देवता। उष्णिक् छन्द।

त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनां। देवं मर्तास इन्धते समध्वरे ॥१॥
त्वां यज्ञेष्वृत्विजमग्ने होतारमीड़ते। गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे ॥२॥
सघायस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे। सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति॥
स केतुरध्वराणामग्निर्देवेभिरागमत्। अञ्जानः सप्तहोतृभिर्हविष्मते ॥४॥
प्रहोत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत्। विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वधसे ॥५
अग्निं वर्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्यः। महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ॥६
अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान्देवयते यज। होता मन्द्रो विराजस्यति स्रिधः॥७॥
स नः वक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्यम्। भवास्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ॥८॥

---

१ अग्निदेव, तुम प्रजाओंके अधिपति और दीप्तिमान् हो। तुम्हें बुद्धिमान् मनुष्य उद्दी करते हैं।

२ अग्नि, तुम होता और ऋत्विक् हो। यज्ञमें अध्वर्यु तुम्हारी स्तुति करते हैं। यज्ञके रक्ष होकर अपने गृह (यज्ञशाला)में दीप्त होओ।

३ अग्निदेव, तुम जातवेदा (प्राप्त-बुद्धि) हो। तुम्हें जो यजमान समिन्धनकारी हव्य दान करते हैं, वह सुवीर्य पुत्र प्राप्त करते और पशु, पुत्र आदिके द्वारा समिद्ध होते हैं।

४ यज्ञके प्रज्ञापक वही अग्नि सात होताओं द्वारा सिक्त होकर, यजमानके लिये, देवोंके साथ आवें।

५ ऋत्विको, मेधावी व्यक्तियोंका तेज धारण करनेवाले, संसारके विधाता और देवोंको बुलानेवाले अग्निको लक्ष्य करके तुम लोग महान् और प्राचीन वाक्यका सम्पादन करो।

६ महान् अन्न और धनके लिये अग्नि दर्शनीय हैं। जिस वाक्यके द्वारा अग्नि प्रशंसनीय होते हैं, हमारा वही स्तुति-रूप वाक्य उन्हें वर्द्धित करे।

७ अग्नि, तुम यज्ञ-कर्त्ताओंमें श्रेष्ठ हो। यज्ञमें यजमानोंके लिये देवोंका याग करो। अग्नि, तुम होता और यजमानोंके हर्षदाता हो। तुम शत्रुओंको हराकर शोभा पा रहे हो।

८ पावक, तुम हमें कान्तिवाला और शोभन शक्तिवाला धन दो। स्तोताओंके कल्याणके लिये उनके पास जाओ।

त्वं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ॥९॥

११ सूक्त

अग्नि देवता । गायत्री छन्द ।

अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ॥१॥
स हव्यवाडमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥२॥
अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः । अर्थं ह्यस्य तरणि ॥३॥
अग्निं सूनुं सनश्रुतं सहसो जातवेदसम् । वह्निं देवा अकृण्वत ॥४॥
अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् । तूर्णीरथः सदा नवः ॥५॥
साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥६ ॥
अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः ॥७॥

---

९ अग्नि, हव्यवाहक, अमर और मथन-रूप बल द्वारा तुम वर्द्धमान हो। प्रबुद्ध मेधावी स्तोता लोग तुम्हें भली भाँति उद्दीप्त करते हैं।

१ अग्निदेव होता पुरोहित और यज्ञके विशेष द्रष्टा हैं। वह यज्ञको क्रमबद्ध जानते हैं।

२ हव्यवाहक, अमर, हव्याभिलाषी, देवोंके दूत और अन्नप्रिय अग्नि प्रज्ञावान् हो रहे हैं।

३ यज्ञके केतुस्वरूप और प्राचीन अग्नि, प्रज्ञाके बलसे, सब कुछ जानते हैं। इन अग्निका तेज अन्धकारका विनाश करता है।

४ बलके पुत्र, सनातन कहकर प्रसिद्ध तथा जातवेदा अग्निको देवोंने हव्यवाहक किया है।

५ मनुष्योंके नेता, शीघ्रकारी, रथके समान और सदा नवीन अग्निकी कोई हिंसा नहीं कर सकता।

६ सारी शत्रु-सेनाके विजेता, शत्रुओं द्वारा अबध्य और देवोंके पोषणकर्त्ता अग्नि, यथेष्ट मात्रामें, विविध अन्नोंसे युक्त हैं।

७ हव्यदाता मनुष्य हव्यवाहक अग्नि द्वारा सारे अन्न प्राप्त करता है। ऐसा मनुष्य पवित्र कारक और दीप्ति-विशिष्ट अग्निके पाससे गृह प्राप्त करता है।

परि विश्वानि सुधिताऽग्नेरश्याम मन्मभिः। विप्रासो जातवेदसः ॥८॥
अग्ने विश्वानि वार्या वाजेषु सनिषामहे । त्वे देवास एरिरे ॥९॥

१२ सूक्त

इन्द्र और अग्नि देवता । गायत्री छन्द ।

इन्द्राग्नी आगतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥१॥
इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः। अया पातमिमं सुतम् ॥२
इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृपताम् ॥३॥
तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥४॥
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आवृणे ॥५॥

---

८ हम मेधावी और जातवेदा अग्निके स्तोत्रों द्वारा समस्त अभिलषित धन प्राप्त कर सकें।

९ अग्नि, हम सारे अभिलषणीय धन प्राप्त कर सकें। देवता लोग तुम्हारे ही भीतर प्रवि हुए हैं ।

१ हे इन्द्र और अग्नि, स्तुति द्वारा आहूत होकर तुम लोग स्वर्गसे तैयार किया हुआ औ वरणीय इस सोमको लक्ष्य कर आओ। हमारी भक्तिके कारण आकर इस सोमका पान करो।

२ इन्द्र और अग्नि, स्तोताका सहायक, यज्ञका साधक और इन्द्रियोंका हर्ष-वर्द्धक सोम जाता है। इस अभिषुत सोमका पान करो।

३ यज्ञके साधक सोम द्वारा प्रेरित होकर स्तोताओंके सुखदाता इन्द्र और अग्निकी मैं सेवा करता हूँ। वे इस यज्ञमें सोमपान करके तृप्त हों

४ मैं शत्रु-नाशक, वृत्रहन्ता, विजयी, अपराजित और प्रचुर परिमाणमें अन्न देनेवाले इ और अग्निको बुलाता हूँ।

५ हे इन्द्र और अग्नि, मन्त्र-शाली होकर लोग तुम्हारी पूजा करते हैं। स्तोत्र-ज्ञाता स्तोता लो तुम्हारी अर्चना करते हैं । अन्न-प्राप्तिके लिये मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ ।

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम्। साकमेकेन कर्मणा ॥६॥
इन्द्राग्नी अपसस्पर्युपप्रयन्ति धीतयः। ऋतस्य पथ्या अनु ॥७॥
इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च। युवोरप्तुर्यं हितम् ॥८॥
इन्द्राग्नि रोचना दिवः परिवाजेषु भूषथः। तद्वां चेति प्रवीर्यम् ॥९॥

२ अनुवाक। १३ सूक्त

अग्नि देवता। १३—१४ सूक्तके विश्वामित्रके पुत्र अपत्य ऋषि हैं। अनुष्टुप् छन्द।

प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै।
गमद्देवेभिरासनो यजिष्ठो बर्हिरासदत् ॥१॥
ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः।
हविष्मन्तस्तमीड़ते तं सनिष्यन्तोवसे ॥२॥

---

६ इन्द्र और अग्नि, तुम लोगोंने एक ही बारकी चेष्टासे दासोंके नब्बे नगरोंको, एक साथ, कम्पित किया था।

७ इन्द्र और अग्नि, स्तोता लोग यज्ञके मार्गको लक्ष्य करके हमारे कर्मके चारो ओर आते हैं।

८ इन्द्र और अग्नि, तुम्हारा बल और अन्न तुम दोनोंके बीचमें, एक साथ ही, है। वृष्टि-प्रेरण-कार्य तुम्हीं दोनोंके बीच निहित है।

९ इन्द्र और अग्नि, तुम स्वर्गके प्रकाशक हो। तुम युद्धमें सर्वत्र विभूषित होओ। तुम्हारी सामर्थ्य उस युद्ध-विजयको भली भाँति विदित करती है।

* * *

१ अध्वर्युओ, अग्निदेवको लक्ष्य करके यथेष्ट स्तुति करो। देवोंके साथ वह हमारे पास आवें। याजक-श्रेष्ठ अग्नि कुशपर बैठें।

२ जिनके वशमें द्यावा-पृथिवी हैं, जिनके बलकी सेवा देवता लोग करते हैं, उनका संकल्प व्यर्थ नहीं होता।

स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हिषः ।
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ॥३॥
स नः शर्माणि वीतयेऽग्निर्यच्छतु शन्तमा ।
यतो नः प्रुष्णावद्वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥४॥
दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।
ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ॥५॥
उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः ।
शं नः शोचा मरुद्वृधोऽग्ने सहस्रसातमः ॥६॥
नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत् पुष्टिमद्वसु ।
द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥७॥

* * *

---

३ वही मेधावी अग्नि इन यजमानोंके प्रवर्त्तक हैं। वह यज्ञके प्रवर्त्तक हैं। वह सबके प्रवर्तक हैं। अग्नि कर्मफल और धनके दाता हैं। तुम उन अग्निकी सेवा करो।

४ वही अग्नि हमारे भोगके लिये अतीव सुखकर गृह प्रदान करें। समृद्धि-युक्त पृथिवी आकाश और स्वर्ग लोकका धन अग्निके पाससे हमारे पास आवे।

५ स्तोता लोग दीप्तिमान्, प्रतिक्षण नवीन, देवोंके आह्वानकारी और प्रजाओंके पालक अग्निको श्रेष्ठ स्तुति द्वारा, उद्दीपित करते हैं।

६ अग्निदेव, स्तोत्र-समयमें हमारी रक्षा करो। तुम देवोंके प्रधान आह्वानकर्त्ता हो। मन्त्रोच्चारण-कालमें हमारी रक्षा करो। तुम हजार धनोंके दाता हो। मरुत् लोग तुम्हें वर्द्धित करते हैं। तुम हमारे सुखकी वृद्धि करो।

७ अग्नि, तुम हमें पुत्र-युक्त, पुष्टिकारक, दीप्तिमान्, सामर्थ्यशाली, अत्यधिक और अक्षय सहस्रसंख्यक धन दो।

१४ सूक्त

अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात् सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः ।
विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो अश्रेत् ॥१॥
अयामि ते नम उक्तिं जुषस्व ऋतावस्तुभ्यं चेतते सहस्वः ।
विद्वां आवक्षि विदुषो निषत्सि मध्य आबर्हिरूतये यजत्र ॥२॥
द्रवतां त उषसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ ।
यत् सीमञ्जन्ति पूर्व्यं हविर्भिरा बन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे ॥३॥
मित्रश्च तुभ्यं वरुणः सहस्वोऽग्ने विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन् ।
यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभिक्षितीः प्रथयन्त सूर्यो नृन् ॥४॥

---

१ देवोंको बुलानेवाले, स्तोताओंके आनन्दवर्द्धक, सत्यप्रतिज्ञ, यज्ञकारी, अतीव मेधा और संसारके विधाता अग्नि हमारे यज्ञमें अवस्थान करते हैं। उनका रथ द्युतिमान् है। उनकी शिखा उनका केश है। वह बलके पुत्र हैं। वह पृथिवीपर प्रभाको प्रकट करते हैं।

२ यज्ञवान् अग्नि, तुम्हें लक्ष्य करके नमस्कार करता हूँ। तुम बलवान् और कर्मज्ञापक हो। तुम्हें लक्ष्य करके नमस्कार किया जाता है, उसे ग्रहण करो। हे यजनीय, तुम विद्वान् हो; विद्वानोंको ले आओ। हमें आश्रय देनेके लिये कुशपर बैठो।

३ अन्न-सम्पादक उषा और रात्रि तुम्हें लक्ष्य करके जाते हैं। अग्नि, वायु-मार्गसे तुम उनके सम्मुख जाओ; क्योंकि ऋत्विक् लोग हव्य द्वारा पुरातन अग्निको भली भाँति सिक्त करते हैं। युगद्वयकी तरह परस्पर संसक्त उषा और रात्रि हमारे घरमें बार-बार आकर रहें।

४ बलवान् अग्नि, मित्र, वरुण और सारे देवता तुम्हें लक्ष्य करके स्तोत्र करते हैं; क्योंकि हे बलके पुत्र अग्नि, तुम्हीं सूर्य या स्वामी हो। मनुष्योंकी पथ-प्रदर्शक किरणोंको फैलाकर प्रभामें समान-स्थित हो।

वयं ते अस्य ररिमाहि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
यजिष्ठेन मनसा यक्षिदेवानस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥
त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वीर्देवस्य यन्त्यतयो विवाजाः ।
त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नोद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने ॥६॥
तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्तासो अध्वरे अकर्म ।
त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह ॥७॥

* * *

१५ सूक्त

अग्नि देवता । १५ और १६ सूक्तोंके कतगोत्रोत्पन्न उत्कील ऋषि हैं । त्रिष्टुप् छन्द ।

विपाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः ।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ॥१॥

---

५ अग्नि, आज हाथ उठाकर हम तुम्हें शोभन हव्य प्रदान करेंगे। तुम मेधावी हो। नमस्कारसे प्रसन्न होकर तुम अपने मनमें यज्ञाभिलाष करते हुए प्रभूत स्तोत्रों द्वारा देवोंकी पूजा करो।

६ बलके पुत्र अग्नि, तुम्हारे पाससे होकर यजमानके पास प्रभूत रक्षण जाता है; अन्न भी जाता है। प्रिय वचन द्वारा तुम हमें अचल और सहस्र-सङ्ख्यक धन दो।

७ हे समर्थ, सर्वज्ञ और दीप्तिमान् अग्निदेव, हम मनुष्य हैं। हम तुम्हें उद्देश्य करके यज्ञमें यह जो हव्य देते हैं, हे अमर, वह सब हव्य तुम आस्वादित करो और सारे यजमानोंकी रक्षा करनेके लिये जागरित होओ।

१ अग्निदेव, विस्तीर्ण तेजके द्वारा तुम अतीव प्रकाशमान हो। तुम शत्रुओं और रोग-रहित राक्षसोंका विनाश करो। अग्निदेव उत्कृष्ट, सुखदाता, महान् और उत्तम आह्वानवाले हैं। मैं उनके ही रक्षणमें रहूँगा ।

त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपाः ।
जन्मेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं मे अग्ने तन्वा सुजात ॥२॥
त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो विभाहि ।
वसो नेषि च पर्षि चात्यंहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ ॥३॥
अषाळ्हो अग्ने वृषभो दिदीहि पुरो विश्वा सौभगा संजिगीवान् ।
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर्जातवेदो बृहतः सुप्रणीते ॥४॥
अच्छिद्रा शर्म जरितः पुरूणि देवाँ अच्छादीद्यानः सुमेधाः ।
रथो न सस्निरभिवक्षि वाजमग्ने त्वं रोदसी नः सुमेके ॥ ५ ॥
प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजानग्ने त्वं रोदसी नः सुदोघे ।
देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो मा नो मर्तस्य दुर्मतिः परिष्ठात् ॥६॥

---

२ अग्निदेव, तुम उषाके प्रकट होने और सूर्यके उदित होनेपर हमारी रक्षाके लिये जागरित होओ। अग्निदेव, तुम स्वयम्भू हो। जैसे पिता पुत्रको ग्रहण करता है, वैसे ही तुम हमारे :स्तोमको ग्रहण करो।

३ अभीष्ट-वर्षक अग्नि, तुम मनुष्योंके दर्शक हो। तुम अँधेरी रातमें अधिक दीप्तिमान् होते हो। तुम बहुत ज्वाला विस्तृत करते हो। हे निरास पिता, हमें कर्मफल प्रदान करो। हमारे पापका निवारण करो। युवक अग्नि तुम हमें धनाभिलाषी करो।

४ अग्नि, शत्रु लोग तुम्हें परास्त नहीं कर सकते। तुम अभीष्टवर्षक हो। तुम सारी शत्रु-पुरी और धन जीत करके प्रदीप्त होओ। हे सुप्रणीत और ज्ञातवेदा अग्नि, तुम महान्, आश्रयदाता और प्रथम यज्ञके निर्वाहक होओ।

५ हे अन्नजीर्णकर्ता अग्निदेव, तुम सुमेधा और दीप्तिमान् हो। देवोंके लिये तुम सारे कर्मोंको छिद्र-रहित करो। अग्निदेव, तुम यहीं ठहरकर रथकी तरह देवोंको लक्ष्य करके हमारा हव्य वहन करो। तुम द्यावापृथिवीको उत्तम रूपसे युक्त करो।

६ अभीष्टवर्षक अग्नि, तुम हमें वर्द्धित करो। हमें अन्न प्रदान करो। हे देव, सुन्दर दीप्ति द्वारा तुम सुशोभित होकर देवोंके साथ हमारी द्यावापृथिवीको दोहनके योग्य बनाओ। मनुष्योंकी दुर्बुद्धि हमारे पास न आवे।

इड़ामग्ने पुरुदंस सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥७॥

* * *

१६ सूक्त

अग्नि देवता । बृहती छन्द ।

अयमग्निः सुवीर्यस्येशे महः सौभगस्य ।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥१॥
इमं नरो मरुतः सश्चता वृधं यस्मिन्रायः शेवृधासः ।
अभि ये सन्ति पृतनासु दूढ्यो विश्वाहा शत्रुमादभुः ॥२॥
स त्वं नो रायः शिशीहि मीढ्वो अग्ने सुवीर्यस्य ।
तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतोनमीवस्य शुष्मिणः ॥३॥
चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि सासहिश्चक्रिर्देवेष्वा दुवः ।
आ देवेषु यतत आसुवीर्य आशंस उत नृणाम् ॥४॥

---

७ अग्निदेव, तुम स्तोताको अनेक कर्मोंकी कारणीभूत और धनु-प्रदात्री भूमि सदा प्रदान करो। हमें वंश-वर्द्धक और सन्तति-जनक एक पुत्र प्राप्त हो। अग्निदेव, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो।

* * *

१ अग्निदेव उत्तम सामर्थ्यवाले, महासौभाग्यके स्वामी, गौ आदिसे युक्त, अपत्यवाले धनके अधिपति और वृत्रहन्ताओंके ईश्वर हैं।

२ नेता मरुतो, सौभाग्यवर्द्धक अग्निमें मिलो। अग्निमें सुखवर्द्धक धन है। मरुद्गण सेनावाले संग्राममें शत्रुओंको परास्त करते हैं। वह सदा ही शत्रुओंकी हिंसा करते हैं।

३ बहुधनशाली और अभीष्टवर्षक अग्नि, हमें तुम प्रभूत, प्रजायुक्त एवं आरोग्य, बल और सामर्थ्यवाला धन देकर तीक्ष्ण करो।

४ जो अग्नि संसारके कर्त्ता हैं, वह सारे संसारमें अनुप्रविष्ट होते हैं। भारको सहन करके अग्नि देवोंके पास हव्य ले आते हैं। अग्नि स्तोताओंके सामने आते हैं, यज्ञनेताओंके स्तोत्रमें आते हैं और मनुष्योंके युद्धमें आते हैं।

मा नो अग्ने मतये मावीरतायै रीरधः।
मागोतायै सहसस्पुत्र मा निदेप द्वेषांस्याकृधि ॥५॥
शग्धि वाजस्य सुभग प्रजावतोऽग्ने बृहतो अध्वरे।
सं राया भूयसा सृज मयोभुना तुविद्युम्न यशस्वता ॥६॥

१७ सूक्त

अग्नि देवता। १७–१८ सूक्तोंके विश्वामित्रके अपत्य कत ऋषि हैं। त्रिष्टुप् छन्द।

समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः।
शोचिष्केशो घृतनिर्णिक् पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ॥१॥
यथायजो होत्रमग्ने पृथिव्या यथा दिवो जातवेदश्चिकित्वान्।
एवानेन हविषा यक्षि देवान्मनुष्वद्यज्ञं प्रतिरेममद्य ॥२॥
त्रीण्यायूंषि तव जातवेदस्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने।
ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथा भव यजमानाय शं योः ॥३॥

---

५ बलके पुत्र अग्नि, तुम हमें शत्रुग्रस्त, वीर-शून्य, पशुहीन अथवा निन्दनीय नहीं करना। हमारे प्रति द्वेष मत करो।

६ सुभग अग्नि, तुम यज्ञमें प्रभूत और अपत्यशाली अन्नके अधीश्वर हो। हे महाधन, तुम हमें प्रभूत, सुखकर और यशोवर्द्धक धन दो।

१ अग्नि धर्मधारक, ज्वालावाले केशसे संयुक्त, सबके स्वीकरणीय दीप्ति-रूप, पवित्र और सुक्रतु हैं। वह यज्ञके आरम्भमें क्रमशः प्रज्वलित होकर देवोंके यज्ञके लिये घृतादि द्वारा सिक्त होते हैं।

२ अग्निदेव, तुमने जैसे पृथिवीको हव्य दिया था; हे जातवेदा, तुम सर्वज्ञ हो; द्युलोकको जैसे हव्य प्रदान किया था, वैसे ही हमारे हव्यके द्वारा देवोंका यज्ञ करो। मनुके यज्ञकी तरह हमारे इस यज्ञको पूर्ण करो।

३ हे जातवेदा, तुम्हारा अन्न आज्य, औषधि और सोमके रूपसे तीन प्रकारका है। हे अग्नि, एकाह, आहीन और समगत नामक तीन उषा देवताएँ तुम्हारी माताएँ हैं। तुम उनके साथ देवोंको हव्य प्रदान करो। तुम विद्वान् हो। तुम यजमानके सुख और कल्याणके कारण बनो।

अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस्त्वेड्यं जातवेदः ।
त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥४॥
यस्त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्द्विता च सत्ता स्वधया च शम्भुः ।
तस्यानु धर्मप्रयजा चिकित्वोथानो धा अध्वरं देववीतौ ॥५॥

* * *

१८ सूक्त

अग्नि देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

भवानो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ॥१॥
तपोष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान्तपाशंसमररुषः परस्य ।
तपोवसो चिकितानो अचित्तान्विते तिष्ठन्तामजरा अयासः ॥२॥
इध्मेनाग्ने इच्छामानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥३॥

---

४ जातवेदा, तुम दीप्तिशाली, सुदर्शन और स्तुति-योग्य अग्नि हो। हम तुम्हें नमस्कार करते है देवोंने तुम्हें आसक्ति-शून्य और हव्य-वाहक दूत बनाया है; अमृतकी नाभि बनाया है।

५ अग्निदेव, तुमसे प्रथम और विशेष-यज्ञ-कर्त्ता जो होता मध्यम और उत्तम नामक दो स्थानों स्वधाके साथ, बैठकर सुखी हुए थे, हे सर्वज्ञ अग्नि, उनके धर्मको लक्ष्य करके विशेष रूपसे यज्ञ करो अनन्तर हे अग्नि, देवोंकी प्रसन्नताके लिये हमारे इस यज्ञको धारण करो।

---

१ अग्निदेव, जैसे मित्र मित्रके प्रति और माता-पिता पुत्रके प्रति हितैषी होते हैं, वैसे ही हमा सामने आनेमें प्रसन्न होकर हितैषी बनो। मनुष्योंके द्रोही मनुष्य हैं; इसलिये तुम विरुद्धाचारी शत्रुओं भस्मसात् करो।

२ अग्निदेव, अभिभवकर्ता शत्रुओंको भली भाँति बाधा दो। जो सब शत्रु हव्य दान नहीं करते उनकी अभिलाषा व्यथ कर दो। निवास-दाता और सर्वज्ञ अग्नि, तुम चञ्चल-चित्त मनुष्योंको सन्ता करो। इसीलिये तुम्हारी किरणें अजर और बाधा-शून्य हों।

३ अग्नि, मैं धनाभिलाषी होकर तुम्हारे वेग और बलके लिये समिधा और घृतके साथ हव प्रदान करता हूँ। स्तोत्र द्वारा तुम्हारी स्तुति करके मैं जबतक रहूँ, तबतक मुझे धन दो। इस स्तुतिको अपरिमित धनदानके लिये दीप्त करो।

उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो बृहद्वयः शशमानेषु धेहि।
रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर्मर्मृज्मा ते तन्वं भूरिकृत्वः ॥४॥
कृधिरत्नं सुसनितर्धनानां स घेदग्ने भवसि यत् समिद्धः।
स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत्सृप्रा करस्ना दधिषे वपूंषि ॥५॥

* * *

१९ सूक्त

अग्नि देवता। १९—२२ सूक्तोंके ऋषि कुशिकके अपत्य गाथी हैं। त्रिष्टुप् छन्द।

अग्निं होतारं प्रवृणे मियेधे गृत्सं कविं विश्वविदममूरम्।
स नो यक्षद्देवताता यजीयान्राये वाजाय वनते मघानि ॥१॥
प्र ते अग्ने हविष्मतीमियर्म्यच्छा सुद्युम्नां रातिनीं घृताचीम्।
प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः संरातिभिर्वसुभिर्यज्ञमश्रेत् ॥२॥
स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्षस्वपत्यस्य शिक्षोः।
अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥३॥

---

४ बलके पुत्र अग्नि, तुम अपनी दीप्तिसे दीप्तिमान् बनो। स्तुत होकर तुम प्रशंसक विश्वामित्रके वंशधरोंको धन-युक्त करो, प्रभूत अन्नदान करो तथा आरोग्य और अभय प्रदान करो। कर्मकारक अग्नि, हम लोग बार-बार तुम्हारे शरीरका परिमार्जन करेंगे।

५ दाता अग्नि, धनोंमें श्रेष्ठ धन प्रदान करो। जिस समय तुम समिद्ध होओ, उसी समय वैसा धन दो। भाग्यवान् स्तोताके गृहकी ओर अपनी रूपवती दोनों भुजाओंको, धन देनेके लिये, पसारो।

---

१ देवोंके स्तोता, मेधावी, सर्वज्ञ और अमूढ़ अग्निको हम इस यज्ञमें होतृ-रूपसे स्वीकार करते हैं। वह अग्नि सर्वपित्ता यज्ञ-परायण होकर हमारे लिये देवोंका यज्ञ करें। धन और अन्नके लिये वह हमारे हव्यका ग्रहण करें।

२ अग्नि, मैं हव्य-युक्त, तेजस्वी, हव्यदाता और घृतसमन्वित जुहूको तुम्हारे सामने प्रदान करता हूं। देवोंके बहुमान कर्त्ता अग्नि हमारे दातव्य धनके साथ प्रदक्षिणा करके यज्ञमें सम्मिलित हों।

३ अग्नि, जिसकी तुम रक्षा करते हो, उसका मन अत्यन्त तेजस्वी हो जाता है। उसे उत्तम अपत्य-वाला धन प्रदान करो। फलदानेच्छुक अग्नि, तुम अतीव धनदाता हो। हम तुमारी महिमासे रक्षित होंगे तथा तुम्हारी स्तुति करते हुए धनाधिपति होंगे।

भूरीणि हि त्वे दधिरेअनीकाग्ने देवास्य यज्यवो जनासः ।
स आवह देवतातिं यविष्ठ शर्द्धो यदद्य दिव्यं यजासि ॥४॥
यत्त्वा होतारमनजन्मियेधे निषादयन्तो यजथाय देवाः ।
स त्वं नो अग्नेवितेहवोध्यधि श्रवांसि धेहि नस्तनूषु ॥५॥

२० सूक्त

अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

अग्निमुषसमाश्विना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वाह्निरुक्थैः ।
सुज्योतिषो नः शृणवन्तु देवाः सजोषसो अध्वरं वावशानाः ॥१॥
अग्न त्रीते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।
तिस्र उते तन्वो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥२॥
अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोममृतस्य नाम ।
याश्च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः सन्दधुः पृष्ठबन्धो ॥३॥

---

४ द्युतिमान् अग्निदेव, यज्ञ-कर्त्ताओंने तुममें प्रभूत दीप्ति प्रदान की है। युवतम अग्नि, चूँकि तुम यज्ञमें स्वर्गीय तेजकी पूजा करते हो; इसलिये देवोंको बुलाओ।

५ अग्निदेव, चूँकि यज्ञके लिये बैठे हुए दीप्तिशाली ऋत्विक् लोग यज्ञमें तुम्हें होता कहकर सिक कहते हैं; इसलिये तुम हमारी रक्षाके लिये जागो। हमारे पुत्रोंको अधिक अन्न दो।

१ हव्यवाहक उषाके अधिकार दूर करते समय अग्निदेव उषा, अश्विनीकुमारों और दधिक्रा (अश्वरूपी अग्नि) नामक देवताको ऋचाके द्वारा बुलाते हैं। सुन्दर द्युतिमान् और परस्पर मिलित देवता लोग हमारे यज्ञकी अभिलाषा करके उस ऋचाको सुनें।

२ अग्निदेव, तुम्हारा अन्न तीन प्रकारका है; तुम्हारा स्थान तीन प्रकारका है। यज्ञ-सम्पादक अग्नि, देवोंकी उदर-पूर्ति करनेवाली तुम्हारी तीन जिह्वाएँ हैं। तुम्हारे तीन प्रकारके शरीर देवोंके द्वारा अभिलषित हैं। अप्रमत्त होकर तुम उन्हीं तीनों शरीरोंके द्वारा हमारी स्तुतिकी रक्षा करो।

३ हे द्युतिमान्, जातवेदा, मरण-शून्य और अन्नवान् अग्नि, देवोंने तुम्हें अनेक प्रकारके तेज दिये हैं। हे संसारके तृप्तिकर्त्ता और प्रार्थित फलदाता अग्नि, मायावियोंकी जिन मायाओंको देवोंने तुम्हें प्रदान किया है, वह सब तुममें ही हैं।

अग्निर्नेता भगइव क्षितीनां दैवीनां देवऋतुपा ऋतावा ।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद्विश्वाति दुरिता गृणन्तम् ॥४॥
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम् ।
अश्विना मित्रावरुणा भगं च वसून्रुद्राँ आदित्याँ इह हुवे ॥५॥

२१ सूक्त

अग्नि देवता । त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और बृहती छन्द ।

इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥१॥
घृतवन्तः पावक ते स्तोकाश्चोतन्ति मेदसः ।
स्वधर्मन्देववीतये श्रेष्ठ नो धेहि वार्यम् ॥२॥
तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोग्ने विप्राय सन्त्य ।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥३॥

---

४ ऋतुकर्त्ता सूर्यकी तरह जो अग्नि देवों और मनुष्योंके नियन्ता हैं, जो अग्नि सत्यकारी, वृत्रहन्ता, सनातन, सर्वज्ञ और द्युतिमान् हैं, वह स्तोताको, सारे पापोंको लँघाकर, पार ले जायँ।

५ मैं दधिक्रा, अग्नि, देवी उषा, बृहस्पति, द्युतिमान् सविता, अश्विद्वय, भग, वसु, रुद्र और आदित्योंको इस यज्ञमें बुलाता हूँ।

——

१ जातवेदा अग्नि, हमारे इस यज्ञको देवोंके पास समर्पित करो। हमारे हव्यका सेवन करो। हे होता, बैठकर सबसे पहले मेद और घृतके बिन्दुओंको भली भाँति खाओ।

२ पावक, इस साङ्ग यज्ञमें घृतसे युक्त सबमें दो बिन्दु तुम्हारे और देवोंके पीनेके लिये गिर रहे हैं। इसलिये हमें श्रेष्ठ और वरणीय धन दो।

३ भजनीय अग्निदेव, तुम मेधावी हो। घृतस्रावी सब बिन्दु तुम्हारे लिये हैं। तुम ऋषि और श्रेष्ठ हो। तुम प्रज्वलित होते हो। यज्ञ-पालक बनो।

तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य ॥
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ॥४॥
ओजिष्ठं ते मध्यते मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे ।
श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान्देवशो विहि ॥५॥

२२ सूक्त

अग्नि देवता। अनु टुप् और त्रिष्टुप् छन्द ।

अयंसो अग्निर्यस्मिन् सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।
सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान्तसन्तन् स्तूयसे जातवेदः ॥१॥
अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥२॥

४ हे सततगमनशील और शक्तिमान् अग्नि, तुम्हारे लिये मेदो-रूप हव्यके सब विन्दु क्षरित होते हैं। कवि लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। महान् तेजके साथ आओ। हे मेधावी, हमारे हव्यका सेवन करो।

५ अग्निदेव, हम अतीव सार-युक्त मेद, पशुके मध्य भागसे, उठाकर तुम्हें देंगे। निवासप्रद अग्ने, चमड़ेके ऊपर जो सब विन्दु तुम्हारे लिये गिरते हैं, वह देवोंमें से प्रत्येकको विभाग करके दो।

——

१ सोमाभिलाषी इन्द्रने जिन अग्निमें अभिषुत सोमको अपने उदरमें रखा था, यह वही अग्नि है। हे सर्वज्ञ अग्नि, जो हव्य नाना-रूपवाला और अश्वकी तरह वेगशाली है, उसकी तुम सेवा करो। संसार तुम्हारी स्तुति करता है।

२ यजनीय अग्नि, तुम्हारा जो तेज द्युलोक, पृथ्वी, ओषधियों और जलमें है, जिसके द्वारा तुमने अन्तरीक्षको व्याप्त किया है, वह तेज उज्ज्वल, समुद्रके समान विशाल और मनुष्योंके लिये दर्शनीय है।*

---

* द्युलोकमें सूर्य, भूलोकमें आहवनीय, ओषधिमें निगूढ़ तेज, समुद्र (जल)में बड़वानल और अन्तरीक्षमें वायु-रूप अग्नि वर्तमान हैं। अग्निका ऐसा तेज, समुद्रके समान विशाल और व्यापक है ही।

अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छादेवाँ ऊचिषे धिष्ण्या ये।
या रोचने परस्तात् सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥३॥
पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहोनमीवा इषो महीः ॥४॥
इडामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५॥

२३ सूक्त

अग्नि देवता। भरतके पुत्र देवश्रवा और देववात ऋषि हैं। बृहती और त्रिष्टुप् छन्द।

निर्मथितः सुधित आ सधस्थे युवा कविरध्वरस्य प्रणेता।
जूर्यत्स्वग्निरजरो वनेष्वत्रा दधे अमृतं जातवेदाः ॥१॥
अमन्थिष्टां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम्।
अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषां नो नेता भवतादनुद्यून् ॥२॥

---

३ अग्नि, तुम द्युलोकके जलके सामने जा रहे हो, प्राणात्मक देवोंको एकत्र करते हो। सूर्यके ऊपर अवस्थित रोचन नामके लोकमें और सूर्यके नीचे जो जल है, उन दोनोंको तुम्हीं प्रेरित करते हो।

४ सिकता-संमिश्रित अग्नि, खोदाई करनेवाले हथियारोंमें मिलकर इस यज्ञका सेवन करें। द्रोह-रहित, रोगादिशून्य और महान् अन्न हमें दान करें।

५ अग्नि, तुम स्तोताको अनेक कर्मोंकी कारणभूत और धेनु-प्रदात्री भूमि सदा दो। हमारे वंशका विस्तारक और सन्तति-जनयिता एक पुत्र हो। अग्नि, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो।

१ जो अग्नि मन्थन द्वारा उत्पन्न, यजमानके घरमें स्थापित, युवा, सर्वज्ञ, यज्ञके प्रणेता, जातवेदा और महारण्यका विनाश करके भी स्वयं अजर हैं, वही अग्नि इस यज्ञमें अमृत धारण करते हैं।

२ भरतके पुत्र देवश्रवा और देववात सुदक्ष और धनवान् अग्निको मन्थन द्वारा उत्पन्न करते हैं। अग्निदेव, तुम बहुत धनके साथ हमारी ओर देखो और प्रतिदिन हमारा अन्न ले आओ।

दशक्षिपः पूर्व्यं सीमजीजनन् सुजातं मातृषु प्रियम् ।
अग्निं स्तुहि दैववातं देवश्रवो यो जनानामसद्वशी ॥३॥
नि त्वा दधे वर आपृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम् ।
दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥४॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥

* * *

२४ सूक्त ।

अग्नि देवता । २४—२५ विश्वामित्र ऋषि । अनुष्टुप् और गायत्री छन्द ।

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य ।
दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धायज्ञवाहसे ॥१॥
अग्न इळा समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः । जुषस्व सूनो अध्वरम् ॥२॥

---

३ दस अगुलियोंने इन पुरातन और कमनीय अग्निको उत्पन्न किया है। हे देवश्रवा, अरणिरूप माताओंके बीच सुजात और प्रिय तथा देववात द्वारा उत्पादित अग्निकी स्तुति करो। वही अग्नि लोगोंके वशवर्त्ती होते हैं।

४ अग्नि, सुदिन (प्रधान-देव-पूजा-दिन) की प्राप्तिके लिये गो-रूपिणी पृथिवीके उत्कृष्ट स्थानमें तुम्हें हम स्थापित करते हैं। अग्निदेव, तुम दृषद्वती (राजपूतानेकी सिकतामें विनष्ट घग्घर नदी), आपया (कुरुक्षेत्रस्थ नदी) और सरस्वती (कुरुक्षेत्रीय सरस्वती नदी) के तटोंपर रहनेवाले मनुष्योंके गृहमें धन-युक्त होकर दीप्त होओ।

५ अग्नि, तुम स्तोताको अनेक कर्मोंके कारण और धेनुप्रदात्री भूमि सदा प्रदान करो। हमें वंश-विस्तारक और सन्तति-जनयिता एक पुत्र हो। अग्नि, हमारे ऊपर तुम्हारा अनुग्रह हो।

१ अग्नि, तुम शत्रु-सेनाको पराभूत करो। विघ्न-कर्त्ताओंको दूर कर दो। तुम्हें कोई जीत नहीं सकता। तुम शत्रुओंको जीत कर यजमानको अन्न दो।

२ अग्नि, तुम यज्ञमें प्रीतमान और अमर हो। तुम्हें उत्तर वेदीपर प्रज्वलित किया जाता है। तुम हमारे यज्ञकी भली भाँति सेवा करो।

अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत । एदं बर्हिः सदो मम ॥३॥
अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः । यज्ञेषु य उचायवः ॥४॥
अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् । शिशीहि नः सूनुमतः ॥५॥

२५ सूक्त

चतुर्थ ऋचाके इन्द्र और अग्नि देवता हैं; शेषके अग्नि हैं । विराट् छन्द ।

अग्ने दिवः सूनुरसि प्रचेतास्तना पृथिव्या उत विश्ववेदाः ।
ऋधग्देवाँ इह यजा चिकित्वः ॥१॥
अग्निः सनोति वीर्याणि विद्वान्त्सनोति वाजममृताय भूषन् ।
स नो देवाँ एहवहा पुरुक्षो ॥२॥
अग्निर्द्यावापृथिवी विश्वजन्ये आभाति देवी अमृते अमूरः ।
क्षयन्वाजैः पुरुश्चन्द्रो नमोभिः ॥३॥

---

३ अग्नि, तुम अपने तेजसे सदा जागरित हो । तुम बलके पुत्र हो । मैं तुम्हें बुलाता हूँ । मेरे इस कुशपर बैठो ।

४ अग्नि, जो तुम्हारे पूजक हैं, उनके यज्ञमें समस्त तेजस्वी अग्नियोंके साथ स्तुतिकी मर्यादाकी रक्षा करो ।

५ अग्नि, तुम हव्यदाताको वीर्ययुक्त और प्रभूत धन दो । हम पुत्र-पौत्रवाले हैं । हमें तीक्ष्ण करो ।

१ अग्निदेव, तुम सर्वज्ञ, चित्रवान्, द्युदेवताके पुत्र और पृथिवीके तनय हो । चेतनावान् अग्नि, तुम देवोंके इस यज्ञमें पृथक्-पृथक् यज्ञ करो ।

२ विद्वान् अग्नि सामर्थ्य प्रदान करते हैं । अग्नि अपनेको विभूषित करके देवोंको अन्न प्रदान करते हैं । हे बहुविध अन्नवाले अग्नि, हमारे लिये देवोंको इस यज्ञमें ले आओ ।

३ सर्वज्ञ, जगत्पति, बहुदीप्ति-युक्त, बल और अन्नवाले अग्नि संसारकी माता, द्युतिमती और मरण-शून्या द्यावा-पृथिवीको प्रकाशित करते हैं ।

अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे सुतावतो यज्ञमिहोपयातम् ।
अमर्धन्ता सोमपेयाय देवा ॥४॥
अग्ने अपां समिध्यसे दुरोणे नित्यः सूनो सहसो जातवेदः ।
सधस्थानि महयमान ऊती ॥५॥

२६ सूक्त

१–३ के वैश्वानर, ४–६ के मरुद्गण, ७–८ के ब्रह्म (वैश्वानर अग्नि) और ९ के विश्वामित्रके उपाध्याय देवता हैं। विश्वामित्र ऋषि। ७ वीं ऋचाके ऋषि अग्नि वा ब्रह्म हैं। जगती और त्रिष्टुप् छन्द।

वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम् ।
सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भीरण्वं कुशिकासो हवामहे ॥१॥
तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम् ।
बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुष्यदम् ॥२॥

---

४ अग्नि, तुम और इन्द्र यज्ञकी हिंसा न करके अभिषव-प्रदाता इस गृहमें, सोमपानके लिये, आओ।

५ बलके पुत्र, नित्य और सर्वज्ञ अग्नि, आश्रय दान-द्वारा तुम जीवलोकोंको अलंकृत करते हुए जलके स्थान अन्तरीक्षमें सुशोभित होते हो।

१ हम कुशिक-गोत्रोद्भूत हैं। धनकी अभिलाषासे हव्यको संग्रह करते हुए भीतर ही भीतर वैश्वानर अग्निको जानकर स्तुति द्वारा उन्हें बुलाते हैं। वे सत्यके द्वारा अनुगत हैं; स्वर्गका विषय जानते हैं। यज्ञका फल देते हैं; उनके पास रथ है; वह यज्ञमें आते हैं।

२ आश्रय-प्राप्ति और यजमानके यज्ञके लिये उन शुभ्र, वैश्वानर, मातरिश्वा (विद्युद्रूप) ऋचा-योग्य, यज्ञपति, मेधावी, श्रोता, अतिथि और क्षिप्रगामी अग्निको हम बुलाते हैं।

अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगे युगे ।
स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः ॥३॥
प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः शुभे संमिश्लाः पृषतीरयुक्षत ।
बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयन्ति पर्वताँ अदाभ्याः ॥४॥
अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय आत्वेषमुग्रमव ईमहे वयम् ।
ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः ॥५॥
व्रातं व्रातं गणं गणं सुशस्तिभिरग्नेर्भामं मरुतामोज ईमहे ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गन्तारो यज्ञं विदथेषु धीराः ॥६॥
अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोजस्रो धर्मो हविरस्मि नाम ॥७॥
त्रिभिः पवित्रैरपुपोध्यर्कं हृदामतिं ज्योतिरनु प्रजानन् ।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद्यावापृथिवी पर्यपश्यत् ॥८॥

---

३ हिनहिनानेवाला घोड़ेका बच्चा जैसे अपनी माताके द्वारा वर्द्धित होता है, वैसे ही प्रतिदिन वैश्वानर अग्नि कौशिकोंके द्वारा वर्द्धित होते हैं। देवोंमें जागरूक अग्नि हमें उत्तम अश्व, उत्तम वीर्य और उत्तम धन प्रदान करें ।

४ अग्नि-रूप अश्वगण गमन करें; बली मरुतोंके साथ मिलकर पृषती (वाड़व) वाहनोंको संयुक्त करें। सर्वज्ञ और अहिंसनीय मरुद्गण अधिक जलशाली और पर्वतसदृश मेघको कम्पित करते हैं।

५ मरुद्गण अग्निके आश्रित और ससारके आकर्षक हैं। उन्हीं मरुतोंके दीप्त और उग्र आश्रयके लिये हम भली भाँति याचना करते हैं। वर्षण-रूप-धारी, ह्रेषा (हिनहिनाना)-शब्द-कारी और सिंहके समान गरजनेवाले मरुद्गण विशेषरूपसे जल देते हैं।

६ दलके दल और झुण्डके झुण्ड स्तुतिमंत्रों द्वारा अग्निके तेज और मरुत्के बलकी हम याचना करते हैं। बिन्दु-चिह्नित अश्व(पृषती)वाले और अक्षय धन-संयुक्त तथा धीर मरुद्गण हव्यके उद्देश्यसे यज्ञमें जाते हैं।

७ मैं अग्नि या परब्रह्म जन्मसे ही जातवेदा या परतत्त्व-रूप हूँ। घृत या प्रकाश ही मेरा नेत्र है। मेरे मुखमें अमृत है। मेरे प्राण त्रिविध (वायु-सूर्य-दीप्ति) हैं। मैं अन्तरीक्षको मापनेवाला हूँ। मैं अक्षय उत्ताप हूँ। मैं हव्य-रूप हूँ।

८ अन्तःकरण द्वारा मनोहर ज्योतिको भली भाँति जानकर अग्निने अग्नि-वायु-सूर्य-रूप तीन पवित्र स्वरूपोंसे पूजनीय आत्माको शुद्ध किया है। अग्निने अपने रूपों द्वारा अपनेको अतीव रमणीय किया था तथा दूसरे ही क्षण द्यावा-पृथिवीको देखा था।

शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम् ।
मेलिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम् ॥९॥

२७ सूक्त

अग्नि देवता । प्रथम ऋचाके देवता ऋतु या अग्नि । यहाँ से ३२ सूक्ततकके ऋषि विश्वामित्र हैं । गायत्री छन्द ।

प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या । देवाञ्जिगाति सुम्नयुः ॥१॥
ईले अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम् । श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥२॥
अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनम् । अति द्वेषांसि तरेम ॥३॥
समिध्यमानो अध्वरेऽग्निः पावक ईड्यः । शोचिष्केशस्तमीमहे ॥४॥
पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णीक् स्वाहुतः । अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् ॥५॥
तं सबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः । आ चक्रुरग्निमूतये ॥६॥

---

९ शत धारवाले स्रोतकी तरह अविच्छिन्न प्रवाहवाले, विद्वान्, पालक, वाक्योंका मेल करानेवाले, माता-पिताकी गोदमें प्रसन्न और सत्यवादी (विश्वामित्रके उपाध्याय वा अग्नि) को, हे द्यावा-पृथिवी, तुम पूर्ण करो ।

—

१ ऋतुओ, स्रुक् और हविवाले देवता, पशु, मास, अर्द्ध मास आदि तुम्हारे यजमानके लिये सुखकी इच्छा करते हैं और यजमान देवोंको प्राप्त करता है ।

२ मेधावी, यज्ञ-निर्वाहक, वेगवान् और धनवान् अग्निकी, स्तुति-वचनोंके द्वारा, मैं पूजा करता हूँ ।

३ दीप्तिमान् अग्निदेव, हव्य तैयार करके तुम्हें हम यहीं रख सकेंगे और पापसे उत्तीर्ण होंगे।
४ यज्ञके समय प्रज्वलित, ज्वालावाले केशसे संयुक्त, पावक तथा पूजनीय अग्निके पास हम अभिलषित फलकी याचना करते हैं ।

५ प्रभूत तेजवाले, मरण-शून्य, घृतशोधन-कर्त्ता और सम्यक् पूजित अग्नि यज्ञका हव्य ले जायँ।
६ यज्ञ-विघ्न-नाशक और हव्ययुक्त ऋत्विकोंने स्रुकको संयत करके, आश्रय-प्राप्तिके लिये, एवं प्रकार स्तुतिके द्वारा उन अग्निको अपने अभिमुख किया था।

होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया। विदथानि प्रचोदयन् ॥७॥
वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्रणीयते। विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥८॥
धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमादधे। दक्षस्य पितरं तना ॥९॥
नि त्वा दधे वरेण्यं दक्षस्येला सहस्कृत। अग्ने सुदीतिमुशिजम् ॥१०॥
अग्निं यन्तुरमप्तुरमृतस्य योगे वनुषः। विप्रा वाजैः समिन्धते ॥११॥
ऊर्जो नपातमध्वरे दीदिवांसमुपद्यवि। अग्निमीले कविक्रतुम् ॥ १२ ॥
ईलेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः। समग्निरिध्यते वृषा ॥ १३ ॥
वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः। तं हविष्मन्त ईलते ॥१४॥
वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि। अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥१५॥

---

७ होम-निष्पादक, अमर और द्युतिमान् अग्नि यज्ञ-कार्यमें लोगोंको उत्तेजित करके यज्ञ-कार्यकी अभिज्ञताके सहयोगसे अग्रगन्ता होते हैं।

८ बलवान् अग्नि युद्धमें आगे स्थापित किये जाते हैं। यज्ञ-कालमें वह यथास्थान निक्षिप्त होते हैं। वह मेधावी और यज्ञ-सम्पादक हैं।

९ जो अग्नि कर्म द्वारा वरणीय हैं, भूतोंके गर्भ-रूपसे अवस्थित हैं, पितृ-स्वरूप हैं, उन्हीं अग्निको दक्षकी पुत्री (यज्ञ-भूमि) धारण करती हैं।

१० बल-सम्पादित अग्नि, तुम उत्कृष्ट दीप्तिसे युक्त, हव्याभिलाषी और वरणीय हो। तुम्हें दक्षकी तनया इला (वेदी-रूपा भूमि) धारण करती हैं।

११ मेधावी भक्त लोग संसारके नियामक और जलके प्रेरक अग्निको, यज्ञके सम्पादनके लिये, अन्न द्वारा, भली भाँति, उद्दीप्त करते हैं।

१२ अन्नके नप्ता, अन्तरीक्षके पास दीप्तिमान् और सर्वज्ञ अग्निकी यज्ञकी मैं स्तुति करता हूँ।

१३ पूजनीय, नमस्कार-योग्य, दर्शनीय और अभीष्टवर्षी अन्धकारको दूर करते हुए प्रज्वलित होते हैं।

१४ अभीष्टवर्षी और अश्वकी तरह देवोंके हव्यवाहक अग्नि प्रज्वलित होते हैं। हविष्मान् अग्निकी मैं पूजा करता हूँ।

१५ अभीष्टवर्षी अग्नि, हम घृत आदिका सेचन करते हैं, तुम जलका सेचन करते हो। हम तुम्हें दीप्त करते हैं। तुम दीप्तिमान् और बृहत् हो।

२८ सूक्त

अग्नि देवता । गायत्री, उष्णिक्, त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

अग्ने जुषस्व नो हविः पुरोडाशं जातवेदः । प्रातःसावे धियावसो ॥१॥

पुरोला अग्ने पचतस्तुभ्यं वाघ परिष्कृतः । तं जुषस्व यविष्ठ्य ॥२॥

अग्ने वीहि पुरोलाशमाहुतं तिरो अह्न्यम् । सहसः सूनुरस्यध्वरे हितः ॥३॥

माध्यन्दिने सवने जातवेदः पुरोलाशमिह कवे जुषस्व ।
अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्रमिनन्ति विदथेषु धीराः ॥ ४ ॥

अग्ने तृतीये सवने हि कानिषः पुरोलाशं सहसः सूनवाहुतम् ।
अथा देवेष्वध्वरं विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृविम् ॥ ५ ॥

अग्ने वृधान आहुतिं पुरोलाशं जातवेदः । जुषस्व तिरो अह्न्यम् ॥६॥

---

१ जातवेदा अग्नि, तुम्हारा स्तोत्र ही धन-प्रदायक है । प्रातःसवनमें तुम हमारे पुरोडाश औ हव्यकी सेवा करो ।

२ युवतम अग्नि, तुम्हारे लिये पुरोडाशका पाक किया गया है; उसे संस्कृत किया गया है। तु उसका सेवन करो ।

३ अग्नि, दिनान्तमें सम्यक् प्रदत्त पुरोडाशका भक्षण करो । तुम बलके पुत्र हो, यहाँ निहित होओ ।

४ हे जातवेदा और मेधावी अग्नि, माध्यन्दिन सवनमें पुरोडाशका सेवन करो । धीर अध्वर्यु लोग यज्ञमें तुम्हारा भाग नष्ट नहीं करते। तुम महान् हो ।

५ बलके पुत्र अग्नि, तृतीय सवनमें दिये गये पुरोडाशकी तुम अभिलाषा करो। अनन्तर अविनाशी, रत्नवान् और जागरण-कारी सोमको, स्तुतिके साथ, अमर देवोंके पास, स्थापित करो ।

६ जातवेदा अग्नि, दिनके अन्तमें तुम पुरोडाश-रूप आहुतिका सेवन करो ।

—

२९ सूक्त

अग्नि देवता। अनुष्टुप्, जगती और त्रिष्टुप् छन्द।

अस्तीदमधिमन्थनमस्ति प्रजननं कृतम्।
एतां विश्पत्नीमाभराग्निं मन्थाम पूर्वथा ॥१॥
अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुधितो गर्भिणीषु।
दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥२॥
उत्तानायामवभरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इळायास्पुत्रो वयुनेजनिष्ट ॥३॥
इड़ायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि।
जातवेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोह्लवे ॥४॥
मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम्।
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयता सुशेवम् ॥५॥

---

१ यही अग्नि मन्थन और उत्पत्तिके साधन हैं। संसार-रक्षक अरणिको ले आओ। पहलेकी तरह हम अग्निका मन्थन करेंगे।

२ गर्भिणीके गर्भकी तरह जातवेदा अग्नि काष्ठ (अरणि)-द्वयमें निहित हैं। अपने कर्ममें जागरूक और हविसे युक्त अग्नि मनुष्योंके, प्रतिदिन, पूजनीय हैं।

३ हे ज्ञानवान् अध्वर्यु, ऊर्द्ध्वमुख अरणिपर अधोमुख अरणि रखो। तुरत गर्भयुक्त अरणिने अभीष्टवर्षी अग्निको उत्पन्न किया। उसमें अग्निका दाहकत्व था। उज्ज्वल तेजसे युक्त इलाके पुत्र अग्नि अरणिमें उत्पन्न हुए।

४ जातवेदा अग्नि, हम तुम्हें पृथिवीके ऊपर, उत्तर वेदीके नाभि-स्थलमें, हव्य वहन करनेके लिये स्थापित करते हैं।

५ नेता अध्वर्युगण, कवि, द्वैध-शून्य, प्रकृष्ट ज्ञानवान्, अमर, सुन्दर शरीरवाले अग्निको मन्थन द्वारा उत्पन्न करो। नेता अध्वर्युगण, यज्ञके सूचक, प्रथम और सुखदाता अग्निको कर्मके प्रारम्भमें उत्पन्न करो।

यदी मन्थन्ति बाहुभिर्विरोचतेश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा ।
चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परिवृणक्त्यश्मनस्तृणा दहन् ॥६॥
जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः ।
यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ॥ ७ ॥
सीद होतः स्वउलोके चिकित्वान्त्सादय यज्ञं सुकृतस्य योनौ ।
देवावीर्देवान् हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयोधाः ॥ ८ ॥
कृणोत धूमं वृषणं सखायोस्रेधन्त इतन वाजमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून् ॥ ९ ॥
अयन्ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आसीदाथा नो वर्द्धया गिरः ॥ १० ॥

---

६ जिस समय हाथोंसे मन्थन किया जाता है, उस समय काष्ठसे अग्नि, अश्वकी तरह, सुशोभित होकर तथा द्रुतगामी अश्विद्वयके विचित्र रथकी तरह शीघ्र गन्ता होकर शोभा धारण करते हैं। को भी अग्निका मार्ग नहीं रोक सकता। अग्निने तृण और उपलको भस्म कर उस स्थानको छोड़ दिया।

७ उत्पन्न अग्नि भी सर्वज्ञ, अप्रतिहतगमन और कर्म-कुशल हैं; इसलिये मेधावी लोग उनकी स्तुति करते हैं। वह कर्म-फल प्रदान करके शोभा प्राप्त करते हैं। देवता लोगोंने पूजनीय और सर्वज्ञ अग्निको यज्ञमें हव्यवाहक किया था।

८ होम-निष्पादक अग्नि, अपने स्थानपर बैठो। तुम सर्वज्ञ हो। यजमानको पुण्य लोकमें स्थापित करो। तुम देवोंके रक्षक हो। हव्यके द्वारा देवोंकी पूजा करो। मैं यज्ञ करता हूँ, मुझे यथेष्ट अन्न प्रदान करो।

९ अध्वर्युगण, अभीष्टवर्षी धूम उत्पन्न करो। तुम सबल होकर युद्धके सामने जाओ। य अग्नि वीर-प्रधान और सेना-विजेता हैं। इन्हींकी सहायतासे देवोंने असुरोंको परास्त किया था।

१० अग्नि, ऋतु-काष्ठ-(पलाश-अश्वत्थादि)-वान् यह अरणि तुम्हारा उत्पत्ति-स्थान है। इससे उत्पन्न होकर तुम शोभा प्राप्त करो। उसे जानकर तुम बैठ जाओ। इससे उत्पन्न होकर तुम शोभा प्रा करो। तुम वह जानकर उपवेशन करो। हमारी स्तुतिको वर्द्धित करो।

तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद्विजायते ।
मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत् सरीमणि ॥११॥
सुनिर्मथा निर्मथितः सुनिधा निहितः कविः ।
अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान्देवयते यज ॥१२॥
अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोस्रेमाणं तरणिं वीडुजम्भम् ।
दशस्वसारो अग्रुवः समीचीः पुमांसं जातमभिसंरभन्ते ॥१३॥
प्र सप्तहोता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशोचदूधनि ।
न निमिषति सुरणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ॥१४॥
अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदुः ।
द्युम्नवद्ब्रह्म कुशिकास एरिर एक एको दमे अग्निं समीधिरे ॥१५॥

---

११ गर्भस्थ अग्निको तनूनपात् कहा जाता है। जिस समय अग्नि प्रत्यक्ष होते हैं, उस समय वह आसुर (असुर-हन्ता अथवा अरणि-रूप-काष्ठ-पुत्र) नराशंस (अग्नि-नाम) होते हैं। जिस समय अन्तरीक्षमें तेजका विकाश करते हैं, उस समय मातरिश्वा (अग्नि-नाम) होते हैं। अग्निके प्रसृत होनेपर वायुकी उत्पत्ति होती है।

१२ अग्नि, तुम मेधावी और मन्थनके द्वारा उत्पन्न हो। तुम्हें अत्युत्तम स्थानमें स्थापित किया गया है। हमारा यज्ञ निर्विघ्न करो और देवाभिलाषीके लिये देवोंकी पूजा करो।

१३ मर्त्य ऋत्विक् लोगोंने अमर, अक्षय, दृढ़-दन्त-विशिष्ट और पाप-तारक अग्निको उत्पन्न किया है। पुत्र-सन्तानकी तरह उत्पन्न अग्निको लक्ष्य कर भगिनी-स्वरूप दस अँगुलियाँ, परस्पर मिलकर, आनन्द-सूचक शब्द करती हैं।

१४ अग्नि सनातन हैं। जिस समय सात मनुष्य उनका हवन करते हैं, उस समय वह शोभा पाते हैं। जिस समय वह माताके स्तन और क्रोड़पर शोभा पाते हैं, उस समय देखनेमें वह सुन्दर मालूम पड़ते हैं। वह प्रतिदिन सजग रहते हैं; क्योंकि वह असुरके जठरसे उत्पन्न हुए हैं।

१५ मरुतोंके समान शत्रुओंके साथ युद्ध करनेवाले और ब्रह्मासे प्रथम उत्पन्न कुशिक-गोत्रोत्पन्न ऋषि लोग निश्चय ही सारा संसार जानते हैं। अग्निको लक्ष्य करके हव्य-युक्त स्तोत्रका पाठ करते हैं। वे लोग अपने-अपने गृहमें अग्निको दीप्त करते हैं।

यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतश्चिकित्वोवृणीमही ।
ध्रुवमया ध्रुवमुताशमिष्ठाः प्रजानन्विद्वाँ उपयाहि सोमम् ॥१६॥

* * *

१६ होम-निष्पादक, विद्वान् और सर्वज्ञ अग्नि, इस प्रवर्तित यज्ञमें तुम्हें हम वरण करते है इसलिये तुम इस यज्ञमें देवोंको हव्य प्रदान करो। नित्य स्तव करो। सोमकी बातको जानकर उस पास आओ।

प्रथम अध्याय समाप्त

द्वितीय अध्याय

३० सूक्त

३ अनुवाक। इन्द्र देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१॥
न ते दूरे परमा चिद्रजांस्या तु प्रयाहि हरिवो हरिभ्याम्।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥२॥
इन्द्रः सुशिप्रो मघवा तरुत्रो महाव्रातस्तुविकूर्म्मिर्ऋघावान्।
यदुग्रोधा बाधितो मर्त्येषु क्व त्या वृषभ वीर्याणि ॥३॥
त्वं हि स्म च्यावयन्नच्युतान्येको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः।
तव द्यावापृथिवीपर्वतासोनुव्रताय निमितेव तस्थुः ॥४॥

---

१ इन्द्र, सोमार्ह ऋत्विक् लोग तुम्हारी स्तुति करनेकी इच्छा करते हैं। सखा लोग तुम्हारे लिये सोमका अभिषवण करते हैं; कुछ हव्य धारण करते हैं; शत्रुओंकी हिंसाको सहते हैं। तुम्हारी अपेक्षा संसारमें कौन प्रसिद्ध है?

२ हे हरिवर्ण अश्ववाले इन्द्र, दुरस्थ स्थान भी तुम्हारे लिये दूर नहीं हैं। हरिवर्ण अश्वसे युक्त होकर शीघ्र आओ। तुम दृढ़चित्त और अभीष्टवर्षी हो। तुम्हारे ही लिये यह सब सवन किया गया है। अग्निके समिद्ध होनेपर, सोमाभिषवके लिये, प्रस्तर-खण्ड प्रयुक्त हुए हैं।

३ अभीष्टवर्षी इन्द्र, तुम परम ऐश्वर्यवाले हो। तुम्हारा शिप्र (शिरस्त्राण) सुन्दर है। तुम धनवान्, विजेता, महान् मरुद्गणवाले, संग्राममें नानाविध कर्म करनेवाले, शत्रुहिंसक और भयङ्कर हो। संग्राममें वाधा प्राप्त करके मनुष्योंके प्रति तुमने जो वीर्य धारण किया है, तुम्हारा वह वीर्य कहाँ है?

४ इन्द्र, अकेले ही तुमने दृढ़मूल राक्षसोंको उनके स्थानोंसे गिराया है। वृत्रादिको मारा है। तुम्हारी आज्ञासे द्यावापृथिवी और यर्वत अचल हैं।

'उताभये पुरुहूत श्रवोभिरेको दृह्ळमवदो वृत्रहा सन् ।
इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत्संगृभ्णा मघवन् काशिरित्ते ॥५॥
प्र सू त इन्द्र वृत्रहा हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु ॥६॥
यस्मै धायुरदधा मर्त्यायाभक्तं चिद्भजते गेह्यं स ।
भद्रा त इन्द्र सुमतिर्घृताची सहस्रदाना पुरुहूत रातिः ॥७॥
सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र संपिणक्कुणारुम् ।
अभिवृत्रं वर्द्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥८॥
नि सामनामिषिरामिन्द्र भूमिं महीमपारां सदने ससत्थ ।
अस्तभ्नाद्द्यां वृषभो अन्तरिक्षमर्षन्त्वापस्त्वयेह प्रसूताः ॥९॥

---

५ इन्द्र, तुम बहुत लोगोंके द्वारा आहूत और वीर्ययुक्त हो। अकेले ही तुमने वृत्रका बध करके देवोंको जो अभय वाक्य प्रदान किया था, वह ठीक है। मघवन्, तुम अपार द्यावापृथिवीको संयोजित करते हो। तुम्हारी ऐसी महिमा प्रख्यात है।

६ इन्द्र, तुम्हारा अश्ववाला रथ शत्रुको लक्ष्य करके निम्न मार्गसे शीघ्र आगमन करे। शत्रुको बध करते-करते तुम्हारा वज्र आवे। अपने सामने आनेवाले शत्रुओंका विनाश करो। भागनेवाले शत्रुओंका बध करो। संसारको यज्ञ-युक्त करो। तुम्हारे अन्दर ऐसी सामर्थ्य निविष्ट हो।

७ इन्द्र, तुम निरन्तर ऐश्वर्यको धारण करते हो। तुम जिस मनुष्यको दान करते हो, वह पहले अप्राप्त गृह-सन्बन्धीय पशु, सुवर्ण आदि धन प्राप्त करता है। अनेक लोकोंसे आहूत, घृत, हव्य आदिसे युक्त तुम्हारा अनुग्रह कल्याणवाही होता है। तुम्हारी धन देनेकी शक्ति असीम है।

८ अनेक लोकोंसे आहूत इन्द्र, तुम दानवीरके साथ वर्त्तमान हो। बाधक और गर्जनशील वृत्रको हस्तहीन करके चूर्ण-विचूर्ण कर डालते हो। इन्द्र, वर्द्धमान और हिंस्र वृत्रको पाद-हीन करके तुमने बलसे विनष्ट किया था।

९ इन्द्र, तुमने महती, अनन्ता और चला पृथिवीको समभावापन्न करके उसके स्थानमें निविष्ट किया था। अभीष्टवर्षक इन्द्रने, द्युलोक और अन्तरिक्ष जैसे पतित न हो, इस प्रकार धारण किया है। इन्द्र, तुम्हारा प्रेरित जल पृथिवीपर आवे।

अलातृणो बल इन्द्र व्रजो गोः पुराहन्तोर्भयमानो व्यार ।
सुगान् पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन्वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः ॥१०॥
एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुतद्याम् ।
उतान्तरिक्षादभि नः समीकइषो रथीः सयुजः शूर वाजान् ॥११॥
दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः ।
सं यदानड़ध्वन आदिदश्वैर्विमोचनं कृणुते तत्त्वस्य ॥१२॥
दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तोर्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम् ।
विश्वे जानन्ति महिना यदागादिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ॥१३॥
महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामापक्वँ चरति विभ्रती गौः ।
विश्वं स्वाद्म सम्भृतमुस्त्रियायां यत् सीमिन्द्रो अदधाद्ध भोजनाय ॥१४॥

---

१० इन्द्र, अतीव हिंसक बल नामका गोव्रज अथवा गोष्ठभूत मेघ वज्र-प्रहारके पहले ही डरकर टुकड़े-टुकड़े हो गया था । गौके निकलनेके लिये इन्द्रने मार्ग सुगम कर दिया था । रमणीय शब्दायमान जल अनेक लोकोंसे आहूत इन्द्रके सम्मुख आया था ।

११ अकेले इन्द्रने ही पृथिवी और द्युलोकको परस्पर संगत और धनयुक्त करके परिपूर्ण किया है । शूर, तुम रथवाले हो । हमारे पास रहनेके अभिलाषी होकर योजित अश्वोंको अन्तरीक्षसे हमारे सामने प्रेरित करो ।

१२ सूर्य इन्द्र द्वारा प्रेरित हैं । वह अपने गमनके लिये प्रकाशित दिशाओंका प्रतिदिन अनुसरण करते हैं । जिस समय वह अश्वके द्वारा अपना मार्ग-गमन समाप्त कर देते हैं, तब हमें छोड़ देते हैं—यह भी इन्द्रके ही लिये ।

१३ गमनशील रात्रिके पश्चात् उषाके गत होनेपर सब लोग महान् तथा चित्र सूर्य-तेजका दर्शन करनेकी इच्छा करते हैं । जिस समय उषाकाल विगत हो जाता है, उस समय सब अग्निहोत्र आदि कर्मको कर्त्तव्य समझने लगते हैं । इन्द्रके कितने ही सत्कार्य हैं ।

१४ इन्द्रने नदियोंमें महान् तेजवाला जल स्थापित किया है । इन्द्रने जलसे स्वादुतर दधि, घृत, क्षीर आदि, भोजनके लिये गौमें सस्थापित किया है । नवप्रसूता गौ दुग्ध धारण करके विचरण करती है ।

इन्द्र दृह्य यामकोशा अभूवन्यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः ।
दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः ॥१५॥
सद्घोष शृण्वेऽवमैरमित्रैर्जहीन्येष्वशनिं तपिष्ठाम् ।
वृश्चेमधस्ताद्विरुजा सहस्व जहि रक्षो मघवन्रन्धयस्व ॥१६॥
उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि ।
आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥१७॥
स्वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतः संयन्महीरिष आसत्सि पूर्वीः ।
रायो वन्तारो बृहतः स्यामाऽस्मे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान् ॥१८॥
आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके ।
ऊर्व इव पप्रथे कामो अस्मे तमा पृण वसुपते वसूनाम् ॥१९॥
इमं कामं मन्दयाऽगोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥२०॥

---

१५ इन्द्र तुम दृढ़ बनो। शत्रुओंने मार्ग बन्द किया है। यज्ञ और स्तुति करनेवाले तथा सखा लोगोंको अभीष्ट फल प्रदान करो। शत्रुओंका बध करना उचित है। वे धीरे-धीरे जाते और हथियार फेंकते हैं। वे हत्यारे और तूणीरवाले हैं।

१६ इन्द्र, हम समीपस्थ शत्रुओं द्वारा छोड़ा हुआ वज्र-नाद सुनते हैं। अतीव सन्ताप देनेवाली इन सब अशनियोंको इन सब शत्रुओंके सामने ही रखकर इनका विनाश करो; समूल छेदन करो; विशेष रूपसे बाधा दो; अभिभूत करो। इन्द्र, राक्षसोंका बध करो; पीछे यज्ञ सम्पन्न करो।

१७ इन्द्र, राक्षस-कुलका समूल उन्मूलन करो। उनका मध्यभाग छेदो; अग्रभाग विनष्ट करो। गमनशील राक्षसको दूर करो। यज्ञ-विद्वेषी (ब्राह्मण-शत्रु) के प्रति सन्तापप्रद अस्त्र फेंको।

१८ संसारके निर्वाहक इन्द्र, हमें अश्वसे युक्त करो। हमें अविनाशी करो। तुम जब हमारे निकट रहोगे, तब हम महान् अन्न और प्रभूत धनका भोग करके बड़े हो सकेंगे। हमें पुत्र, पौत्र आदिसे युक्त धन प्राप्त हो।

१९ इन्द्र, हमारे लिये दीप्तिसे युक्त धन ले आओ। तुम दानशील हो और हम तुम्हारे दानके पात्र हैं। हमारी अभिलाषा बड़वानलकी तरह बढ़ी हुई है। धनपति, हमारी अभिलाषा पूर्ण करो।

२० हमारी इस अभिलाषाको गौ, अश्व और दीप्तिवाले धनके द्वारा पूर्ण करो तथा उसके द्वारा हमें विख्यात करो। इन्द्र, स्वर्गादि सुखाभिलाषी और कर्मकुशल कुशिकनन्दनोंने मन्त्र द्वारा तुम्हारा स्तोत्र किया है।

आ नो गोत्राद्दर्हि गोपते गाः समस्मभ्यं सनयो यन्तु वाजाः ।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मोऽस्मभ्यं सु मघवन्बोधि गोदाः ॥२१॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तम् वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥२२॥

◆

३१ सूक्त ।

इन्द्र देवता । इषीरथके अपत्य कुशिक अथवा विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन् ।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन् सं शग्म्येन मनसा दधन्वे ॥१॥
न जामये तान्वो रिक्थमारैक् चकार गर्भं सनितुर्निधानम् ।
यदी मातरो जनयन्त वह्निमन्यः सुकृतोरन्य ऋन्धन् ॥२॥

---

२१ स्वर्गाधिपति इन्द्र, मेघको विदीर्ण करके हमें जल दो। उपभोगके योग्य अन्न हमारे पास आवे। अभीष्टवर्षक, तुम द्युलोकको व्याप्त करके स्थित हो। सत्यबल मघवन्, हमें गौ दो।

२२ इन्द्र, तुम अन्न प्राप्त करो। तुम युद्धमें उत्साहके द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत ऐश्वर्यवाले, नेतृ-श्रेष्ठ, स्तुति-श्रवण-कर्त्ता; उग्र, युद्धमें शत्रु-विनाशी और धन-विजेता हो। आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं।

---

१ पुत्रहीन पिता रेतोधा जामाताको सम्मानयुक्त करते हुए शास्त्रके अनुशासनके अनुसार पुत्रीसे उत्पन्न पौत्र (दौहित्र) के पास गया। अपुत्र पिता, पुत्रीको गर्भ रहेगा, ऐसा विश्वास करके शरीर धारण करता है।

२ औरस पुत्र पुत्रीको नहीं धन देता। वह पुत्रीको उसके भर्त्ता (पति) के रेतःसेचनका आधार बनाता है। यदि पिता-माता पुत्र और कन्या, दोनोंका ही उत्पादन करते हैं, तब उनमेंसे एक (पुत्र) उत्कृष्ट क्रिया-कर्मका अधिकारी होता है और दूसरा (पुत्री) सम्मान-युक्त होता है।

अग्निर्यज्ञे जुह्वारेजमानो महस्पुत्रां अरुषस्य प्रयक्षे ।
महान् गर्भो मह्या जातमेषां मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः ॥३॥
अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन् ।
तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥४॥
वीलौ सतीरभिधीरामतृन्दन् प्राचाहिन्वन् मनसा सप्त विप्रा ।
विश्वामविन्दन् पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश ॥५॥
विद्यदी सरमारुग्णमद्रेर्महिपाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः ।
अग्रं नयत् सुपद्यक्षराणामच्छारवं प्रथमा जानती गात् ॥६॥
अगच्छदु विप्रतमः सखीयन्नसूदयत् सुकृते गर्भमद्रिः ।
ससानमर्यो युवभिर्मखस्यन्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन् ॥७॥

३ इन्द्र, तुम दीप्ति-युक्त हो। तुम्हारे यज्ञके लिये ज्वाला द्वारा कम्पमान अग्निने यथेष्ट-पुत्र रश्मियोंको उत्पन्न किया है। इन रश्मियोंका जल-रूप गर्भ महान् है; ओषधि-रूप जन्म महान् है। हे हर्यश्व, तुम्हारी सोमाहुति द्वारा प्रयुक्त इन रश्मियोंकी प्रवृत्ति महती है।

४ विजेता मरुद्गण वृत्रके साथ युद्ध करनेवाले इन्द्रके साथ सङ्गत हुए थे। सूर्य-संज्ञक महान् तेज तमोरूप वृत्रसे निर्गत होता है, इस बातको मरुतोंने जाना था। उषाएँ, इन्द्रको सूर्य समझ करके, उनके सामने गयी थीं। अकेले इन्द्र सारी रश्मियोंके पति हुए थे।

५ धीमान् और मेधावी सात अङ्गिरा लोगोंने सुदृढ़ पर्वतपर रोकी हुई गायोंको खोज निकाला था। वे, पर्वतपर गायें हैं, ऐसा निश्चय करके जिस मार्गसे वहाँ गये थे, उसी मार्गसे लौट आये। उन्होंने यज्ञ-मार्गमें सारी गायोंको प्राप्त किया था। यह सब जानकर इन्द्र, नमस्कार द्वारा, अङ्गिरा लोगोंकी सम्भावना करके पर्वतपर गये थे।

६ जिस समय सरमा पर्वतके टूटे हुए द्वारपर पहुँची, उस समय इन्द्रने अपने कहे हुए यथेष्ट अन्नको, अन्यान्य सामग्रियोंके साथ, उसे दिया। अच्छे पैरोंवाली सरमा शब्द पहचान कर सामने जाते हुए, अक्षय गायोंके पास, पहुँच गयी। *

७ अतीव मेधावी इन्द्र अङ्गिरा लोगोंकी मित्रताकी इच्छासे गये थे। पर्वतने महायोद्धाके लिये अपने गर्भस्थ गोधनको बाहर कर दिया। शत्रु-हन्ता इन्द्रने तरुण मरुतोंके साथ उन्हें प्राप्त किया। अङ्गिराने तुरत उनकी पूजा की।

---

* १।६।५ की टिप्पनी देखिये।

सतः सतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वावेद जनिमा हन्ति शुष्णम्।
प्रणो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्त्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् ॥८॥
नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम्।
इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां येन मासाँ असिषासन्नृतेन ॥९॥
संपश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः।
वि रोदसी अतपद्घोष एषां जाते निष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥१०॥
स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः।
उरूच्यस्मै घृतवद्भरन्ती मधुस्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ॥११॥
पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै महि त्विषीमत्सुकृतो विहिख्यन्।
विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री असीना ऊर्द्ध्वं रभसं वि मिन्वन् ॥१२॥

---

८ जो इन्द्र उत्तम पदार्थके प्रतिनिधि हैं, जो समर-भूमिमें अग्रगामी हैं, जो सब उत्पन्न पदार्थोंको जानते हैं, जिन्होंने शुष्णका बध किया था, वही दूरदर्शी और गोधनके अभिलाषी इन्द्र, द्युलोकसे सम्मान करते हुए, हमें पापसे बचावें।

९ भीतर ही भीतर गोधनकी प्राप्तिकी इच्छा करके, स्तोत्रके द्वारा अमरता प्राप्त करनेकी युक्ति करते हुए यज्ञ-कार्यमें लगे थे। इनके इस यज्ञमें यथेष्ट उपवेशन हैं। इन्होंने इस सत्यभूत यज्ञके द्वारा महीनोंको अलग करनेकी इच्छा की थी।

१० अङ्गिरा लोगों अपने गोधनको लक्ष्य करके, देखते हुए, पहलेके उत्पन्न पुत्रकी रक्षाके लिये दूध दूहकर हृष्ट हुए थे। उनकी आनन्दध्वनि द्यावापृथिवीमें व्याप्त हुई थी। पहलेकी ही तरह वह संसारमें अवस्थित हुए थे। गायोंकी रक्षाके लिये वीर पुरुषको नियुक्त किया था।

११ सहायताके लिये, मरुतोंके साथ, इन्द्रने वृत्रका बध किया था। वे ही पूजनीय और होम-योग्य हैं। मरुतोंके साथ गायोंका, यज्ञके लिये, दान किया था। घृत-युक्त-हव्य-धारिणी, प्रभूत-हव्य-दात्री और प्रशस्ता गौने इनके लिये स्वादुतर क्षीर आदि दिया था।

१२ अङ्गिरा लोगोंने पालक इन्द्रके लिये महान् और दीप्तिमान् स्थान-संस्कार किया था। सुकर्मशाली अङ्गिरा लोगोंने इन्द्रके उपयुक्त इस स्थानको विशेष रूपसे दिखा दिया था। यज्ञमें बैठकर उन लोगोंने जनयित्री द्यावापृथिवीको स्तम्भ-रूप अन्तरिक्ष द्वारा रोककर वेगवान् इन्द्रको द्युलोकमें संस्थापित किया था।

मही यदि धिषणा शिश्नथे धात् सद्योवृधं विभ्वं रोदस्योः ।
गिरो यस्मिन्ननवद्याः समीचीर्विश्वा इन्द्राय तविषीरनुत्ताः ॥१३॥
मह्याते सख्यं वश्मि शक्तीरावृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वीः ।
महि स्तोत्रमव आगन्म सूरेरस्माकं सु मघवन्बोधि गोपाः ॥१४॥
महि क्षेत्रं पुरुश्चन्द्रं विविद्वानादित् सखिभ्यश्चरथं समैरत् ।
इन्द्रो नृभिरजनद्दीद्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम् ॥१५॥
अपश्चिदेश विभ्वोतदमूनाः प्रसध्रीचीरसृजद्विश्वश्चन्द्राः ।
मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैर्द्युभिर्हिन्वन् त्यक्तुभिर्धनुत्रीः ॥१६॥
अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य मँहना यजत्रे ।
परि यत्ते महिमानं वृजध्यै सखाय इन्द्र काम्या ऋजिप्याः ॥१७॥

---

१३ द्यावापृथिवीके परस्पर विश्लिष्ट होनेपर यदि महान् स्तुति इन्द्रदेवको तत्क्षणात् वृद्धि-प्रा और धारण-क्षम करे, तो इन्द्रके प्रति दोष-रहित स्तुति सङ्गत हो। फलतः इन्द्रका सारा बल स्वभा सिद्ध है।

१४ इन्द्र, मैं तुम्हारी, महती मित्रताके लिये, प्रार्थना करता हूँ। तुम्हारी शक्तिके लिये प्रार्थना करता हूँ। तुम वृत्र-हन्ता हो। तुम्हारे पास अनेक अश्व, वहन करनेके लिये, आते हैं। तुम विद्वान् हो। ह तुम्हें महत् सख्य, स्तोत्र और हव्य प्रदान करेंगे। इन्द्र, तुम हमारे रक्षक हो, ऐसा जानना।

१५ भली भाँति समझकर इन्द्रने मित्रोंको महान् क्षेत्र और यथेष्ट हिरण्य दान किया है। इसके अनन्तर उन्होंने उन लोगोंको गौ आदि भी दान किया है। वह दीप्तिमान् हैं। उन्होंने नेता मरुद्गणके साथ सूर्य, उषा, पृथिवी और अग्निको उत्पन्न किया है।

१६ शान्तमना इन इन्द्रने विस्तीर्ण, परस्पर सङ्गत और संसारके आनन्ददायक जलको उत्पन्न किया है। वह माधुर्य-युक्त सोम-समूहको पवित्र (जल-परिष्कारक) अथवा अग्नि, सूर्य और वायुके द्वारा शोधित करके और सारे संसारको प्रसन्न करके दिन-रात संसारको अपने व्यापारमें प्रेरित करता है।

१७ सूर्यकी महिमासे सारे पदार्थोंके धारण-कर्त्ता और यज्ञार्ह दिन-रात क्रमानुसार घूम रहे हैं। ऋजुगति, मित्र-भूत और कमनीय मरुद्गण शत्रुको परास्त करनेके लिये तुम्हारी शक्तिका अनुसर करने योग्य होते हैं।

पतिर्भव वृत्रहन् सूनृतानां गिरां विश्वायुर्वृषभो वयोधाः ।
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान् महीभिरूतिभिः सरण्यन् ॥१८॥
तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम् ।
द्रुहो वि याहि बहुला अदेवीः स्वश्च नो मघवन् सातये धाः ॥१९॥
मिहः पावकाः प्रतता अभूवन् स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम् ।
इन्द्रत्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षू मक्षू कृणुहि गोजितो नः ॥२०॥
अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्तः कृष्णाँ अरुषैर्द्धामभिर्गात् ।
प्र सूनृताः दिशमानऋतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥२१॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥२२॥

* * *

---

१८ वृत्रहन्ता इन्द्र, तुम अविनाशी, अभीष्टवर्षी और अन्नदाता हो। हमारी प्रियतम स्तुतिके स्वामी बनो। तुम महान् हो। यज्ञमें तुम जानेके अभिलाषी हो। महान् आश्रय और कल्याण-वाहिनी मैत्रीके लिये हमारे सामने आओ।

१९ इन्द्र, तुम पुरातन हो। अङ्गिरा लोगोंकी तरह मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ। मैं तुम्हारी स्तुति करनेके लिये अभिनवता लाता हूँ। तुम देवरहित द्रोहियोंको मार डालते हो। इन्द्र, हमें उपभोगके योग्य धन दो।

२: इन्द्र, पवित्र जल चारो ओर फैला है। हमारे लिये अविनाशी जल-समूहके तीरको जलसे पूर्ण करो। तुम रथवाले हो। हमें शत्रुसे बचाओ। हमें शीघ्र गायोंके विजेता करो।

२२ वृत्रहन्ता और गायोंके स्वामी इन्द्र हमें गौ दान करें। कृष्णों अथवा यज्ञ-विघातक असुरोंको दीप्ति-युक्त तेजके द्वारा विनष्ट करें। उन्होंने सत्य-वचनसे अङ्गिरा लोगोंको प्रियतम गायें दान करके सारे द्वारोंको बन्द कर दिया था।

२२ इन्द्र, तुम अन्न-लाभ-कर्त्ता, युद्धमें उत्साह द्वारा प्रवृद्ध. धनवान्, प्रभूत-ऐश्वर्य-युक्त, नेतृ-श्रेष्ठ स्तुति-श्रवण-कर्त्ता, उग्र, संग्राममें शत्रु-विनाशकारी और धनजेता हो। आश्रय-प्राप्तिके लिये तुम्हें बुलाता हूँ।

* * *

३२ सूक्त

इन्द्रदेवता। त्रिष्टुप् छन्द।

इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं माध्यन्दिनं सवनं चारु यत्ते।
प्र प्रुथ्याशिप्रे मघवन्नृजीषिन्विमुच्या हरी इह मादयस्व ॥१॥
गवा शिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥२॥
ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्नर्चन्तु इन्द्र मरुतस्त ओजः।
माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र ॥३॥
त इन्वस्य मधुमद्विविप्र इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन्।
येभिर्वृत्रस्येषितो विवेदाममर्मणो मन्यमानस्य मर्म ॥४॥

---

१ सोमपति इन्द्र, इस माध्यन्दिन सवनके अवसरपर तुम सोम पान करो; क्योंकि यह तुम्हारा प्रि है। हे धनवान् और ऋजीष (रिट्ठी) सोमसे युक्त इन्द्र, दोनों घोड़ोंको रथसे खोलकर और उनके जबड़ोंको घाससे पूर्ण करके इस यज्ञमें उन्हें प्रसन्न करो।

२ इन्द्र, गव्यसंयुक्त और मन्थन-सम्पन्न नूतन सोमका पान करो। तुम्हारे हर्षके लिये हम उसे दा करते हैं। स्तोता मरुतों और रुद्रोंके साथ जबतक तृप्ति न हो, तबतक सोम पान करो।

३ इन्द्र, जो मरुद्गण तुम्हारे शत्रु-शोषक तेजको बढ़ाते हैं, वही मरुद्गण तुम्हारा बल वर्द्धित करते हैं; वही मरुद्गण स्तुति करके तुम्हारी युद्ध-शक्तिको बढ़ाते हैं। वज्रहस्त, शोभन-शिरस्त्राण-युक्त इन्द्र, माध्य न्दिन सवनमें रुद्रोंके साथ सोम पान करो।

४ मरुद् लोग इन्द्रके बल हुए थे, वृत्र समझता था कि, मेरा रहस्य कोई नहीं जानता। परन्तु मरुतोंके द्वारा प्रेरित होकर इन्द्रने वृत्रका रहस्य जाना था। ये ही मरुद्गण तुम्हारे लिये शीघ्र माधुर्य युक्त उत्साह-वाक्य बोले थे।

मनुष्वदिन्द्र सवनं जुषाणः पिबा सोमं शश्वते वीर्याय ।
स आववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ॥५॥

त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँ इव प्रासृजः सर्तवाजौ ।
शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम् ॥६॥

यजाम इन्नमसा वृद्धमिन्द्रं बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
यस्य प्रिये ममतुर्यज्ञियस्य न रोदसी महिमानं ममाते ॥७॥

इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे ।
दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः ॥८॥

अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वं सद्यो यज्जातो अपिबो ह सोमम् ।
न द्याव इन्द्र तवसस्त ओजो नाहा न मासाः शरदो वरन्त ॥९॥

---

५ इन्द्र, मनुके यज्ञकी तरह तुम मेरे इस यज्ञका सेवन करते हुए शाश्वत वलके लिये सोम-पान करो। हर्यश्व, यज्ञ-योग्य मरुतोंके साथ तुम आओ। गमनशील मरुतोंके साथ अन्तरीक्षसे जल प्रेरित करो।

६ इन्द्र, चूँकि तुम दीप्तिमान् जलके आवरणकर्त्ता हो, दीप्ति-शून्य और सोये हुए वृत्रको, युद्धमें, निहत किया है; इसलिये तुमने युद्ध-समयमें अश्वकी तरह जलको छोड़ दिया है।

७ फलतः हम हव्य द्वारा प्रवृद्ध और महान्, अजर और नित्यतरुण स्तोतव्य इन्द्रकी पूजा करते हैं। परिमाणशून्य, द्यावापृथिवी यज्ञार्ह इन्द्रकी महिमाको परिमित नहीं कर सकती।

८ सारे देवगण इन्द्रके कर्म—सुकृत और बहुतर यज्ञादि—की हिंसा नहीं कर सकते। इन्द्रदेव भूलोक, द्युलोक और अन्तरीक्षलोकको धारण किये हुए हैं। उनका कर्म रमणीय है। उन्होंने सूर्य और उषाको उत्पन्न किया है।

९ दौरात्म्य-शून्य इन्द्र, तुम्हारी महिमा ही वास्तविक महिमा है; क्योंकि तुम उत्पन्न होकर ही सोम पान करते हो। तुम बलवान् हो। स्वर्गादि लोक तुम्हारे तेजका निवारण नहीं कर सकते; दिन, मास और वर्ष भी नहीं निवारण कर सकते।

त्वं सद्यो अपिबो जात इन्द्र मदाय सोमं परमे व्योमन् ।
यद्ध द्यावापृथिवी आविवेशीरथाभवः पूर्व्यः कारुधायाः ॥१०॥
अहन्नहिं परिशयानमर्ण ओजायमानं तुविजात तव्यान् ।
न ते महित्वमनुभूदध द्यौर्यदन्यया स्फिग्या क्षामवस्थाः ॥११॥
यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भूदुत प्रियः सुतसोमो मियेधः ।
यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन् यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ॥१२॥
यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे अर्वागैनं सुम्नाय नव्यसे ववृत्याम् ।
यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्वेभिर्यो मध्यमेभिरुत नूतनेभिः ॥१३॥
विवेष यन्मा धिषणा जजानस्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः ।
अंहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥१४॥

---

१० इन्द्र, उत्पन्न होनेके साथ ही तुमने सर्वोच्च स्वर्गप्रदेशमें रहकर तुरत आनन्द-प्राप्तिके लिये सोम पान किया था। जिस समय तुम द्यावापृथिवीमें अनुप्रविष्ट हुए हो, उसी समय तुम प्राचीन-सृष्टिके विधाता हुए हो।

११ इन्द्र, तुमसे अनेक उत्पन्न हुए हैं। जो अहि अपनेको बलवान् समझकर जलको परिवेष्टित करते हुए अवस्थिति करता था, उसी अहिको प्रवृद्ध होकर तुमने विनष्ट किया है। परन्तु जिस समय तुम पृथिवीको एक कटिमें छिपाकर अवस्थान करते हो, उस समय स्वर्ग तुम्हारी महिमाकी सीमा नहीं कर सकता।

१२ इन्द्र, हमारा यज्ञ तुम्हारी वृद्धि करता है। जिस कार्यमें सोम अभिषुत होता है, वह तुम्हारा प्रिय है। हे यज्ञ-योग्य, यज्ञके लिये अपने यजमानकी तुम रक्षा करो। अहिका विनाश करनेके लिये यह यज्ञ तुम्हारे वज्रको दृढ़ करे।

१३ पुरातन, मध्यतन और अधुनातन स्तोत्र द्वारा जो इन्द्रवर्द्धित होते हैं, उन्हीं इन्द्रको यजमान, रक्षक यज्ञके द्वारा, अपने सामने ले आता है; नये धनके लिये उन्हें आवर्त्तित करता है।

१४ जभी मैं मन-ही-मन इन्द्रकी स्तुति करनेकी इच्छा करता हूँ, तभी स्तुति करता हूँ। मैं दूरवर्ती अशुभ दिनके पहले ही इनकी स्तुति करता हूँ। इन्द्र हमें दुःखके पार ले जायँ। इसीलिये दोनों तटोंके रहनेवाले लोग जैसे नौकारोहीको पुकारते हैं, वैसे ही हमारे मातृ-पितृ-कुलोंके लोग इन्द्रको पुकारते हैं।

आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥१५॥
न त्वा गभीरः पुरुहूत सिन्धुर्नाद्रयः परिषन्तो वरन्त ।
इत्था सखिभ्य इषितो यदिन्द्रा दृह्लं चिदरुजो गव्यमूर्वम् ॥१६॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥१७॥

* * *

३३ सूक्त

४,६,८ और १० मन्त्रोंके नदी ऋषि हैं, अवशिष्टके विश्वामित्र हैं ।
अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने ।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥१॥

---

१५ इन्द्रका कलस पूर्ण हुआ है; पानार्थ स्वाहा शब्दका उच्चारण हुआ है। जैसे जल-सेक्ता जल-पात्रमें जल-सेक करता है, वैसे ही मैं सोमका सेचन करता हूँ। सुस्वादु सोम, प्रदक्षिण करता हुआ, इन्द्रके सम्मुख, उनकी प्रसन्नताके लिये, गमन करता है।

१६ बहुलोकाहूत इन्द्र, गम्भीर सिन्धु तुम्हारा निवारण नहीं कर सकता। उसके चारो ओर वर्त्तमान उपसागर तुम्हारा निवारण नहीं कर सकता; क्योंकि, बन्धुओं द्वारा इस प्रकार प्रार्थित होकर तुमने अति प्रबल गव्य उर्व (बड़वानल या अवरोधक वृत्र) का निवारण कर डाला है।

१७ इन्द्र, तुम अन्न-प्रापक, युद्धमें उत्साह द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत ऐश्वर्य-सम्पन्न, नेतृ-श्रेष्ठ, स्तुति-श्रवणकर्त्ता, उग्र, संग्राममें शत्रु-विनाशी और धनजेता हो। आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं।

---

१ जलप्रवाहवती विपाशा [व्यास] औ शुतुद्री [सतलज] नामकी दो नदियां पर्वतकी गोदसे सागरसङ्गमाभिलाषिणी होकर घोड़सालसे विमुक्त घोड़ियोंकी तरह स्पर्द्धा करती हुई, दो गायोंके समान सुशोभित होकर वत्सलेहाभिलाषिणी हो, गायोंकी तरह वेगसे समुद्रकी तरफ जाती हैं।

इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः ।
समाराणे उर्मिभिः पिन्वमाने अन्यावामन्यामप्येति शुभ्रे ॥२॥
अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म ।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु सञ्चरन्ती ॥३॥
एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥४॥
रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥५॥
इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
देवो नयत् सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥६॥

---

२ नदीद्वय, तुम्हें इन्द्र प्रेरित करते हैं। तुम उनकी प्रार्थना सुनती हो। दो रथियोंकी तरह समुद्रकी ओर जाती हो। तुम एक साथ प्रवाहित होकर, तरङ्ग द्वारा वर्द्धित होकर, परस्पर आस-पास जाती हुई सुशोभित हो रही हो।

३ मातृ-तुल्य शुतुद्री नदीके पास उपस्थित हुआ हूँ, परम सौभाग्यवती विपाशाके पास उपस्थित हुआ हूँ। ये दोनों वत्सको चाटनेकी इच्छावाली गायोंकी तरह एक स्थानकी ओर जाती हैं।

४ हम (दोनों नदियाँ) इस जलसे धुल कर देवकृत स्थानके सामने जाती है। हमारे गमनका उद्योग बन्द होनेवाला नहीं है। किस लिये यह वत्स हम दोनों नदियोंको पुकारता हैं।

५ जलवती नदियो, मेरे (विश्वामित्रके) सोम-सम्पादक वचनके लिये एक क्षणके लिये, गमनसे विरत होओ। मैं कुशिकका पुत्र हूँ; प्रसन्नताके लिये महती स्तुतिके द्वारा नदियोंको, अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये बुलाता हूँ।

६ नदियोंके परिवेष्टक वृत्रको मारकर वज्रबाहु इन्द्रने हम दोनों नदियोंको खोदा है। जगत्प्रेरक, सुहस्त और द्युतिमान् इन्द्रने हमें प्रेरित किया है। इन्द्रकी आज्ञासे हम प्रभूत होकर जाती हैं।

प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत् ।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोयनमिच्छमानाः ॥७॥
एतद्वचोजरितर्मापि मृष्ठा आयत्ते घोषानुत्तरा युगानि ।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥८॥
ओषु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
निषू नमध्वं भवता सुपारा अधो अक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥९॥
आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥१०॥
यदङ्ग त्वा भरताः संतरेयुर्गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥११॥

---

७ इन्द्रने जिस अहि (वृत्र)को विदीर्ण किया था, उनके उस वीर कार्यका सदा कीर्त्तन करना चाहिये। इन्द्रने चारो ओर आसीन अवरोधक लोगोंको वज्रसे विनष्ट किया था। गमनाभिलाषी जल आया था ।

८ हे स्तोता, तुम यह जो वाक्य-घोषणा करते हो, उसे नहीं भूलना। भविष्यत् यज्ञ–दिनमें मन्त्र-रचना करके तुम हमारी सेवा करो। हम (दोनों नदियाँ) तुम्हें नमस्कार करती हैं। हमें पुरुषकी तरह प्रगल्भ नहीं करना ।

९ हे भगिनीभूत नदीद्वय, मैं (विश्वामित्र) स्तुति करता हूँ; सुनो। मैं दूर देशसे रथ और अश्व लेकर आता हूँ। तुम निम्नस्थ बनो, ताकि मैं पार हो जाऊँ। नदीद्वय, स्रोतवत् जलके साथ रथचक्रके अधोदेशमें गमन करो ।

१० स्तोता, हमने (दो नदियोंने) तुम्हारी सारी बातें सुनीं । तुम दूरसे आये हो; इसलिये रथ और शकटके साथ गमन करो। जैसे पुत्रको स्तन-पान करानेके लिये माता और जैसे मनुष्यको आलिङ्गन करनेके लिये युवती स्त्री, अवनत होती हैं, वैसे ही हम भी तुम्हारे लिये अवनत होती हैं ।

११ नदीद्वय, चूँकि भरत-कुलोत्पन्न तुम्हें पार करेंगे, चूँकि पार जानेके इच्छुक भरतवंशीय लोग इन्द्र द्वारा प्रेरित और तुम्हारे द्वारा अनुज्ञात होकर पार होंगे, चूँकि वे लोग पार होनेकी चेष्टा करते हैं और तुम्हारी अनुमति पा चुके हैं; इसलिये मैं (विश्वामित्र) सर्वत्र तुम्हारी स्तुति करूँगा। तुम यज्ञार्ह हो।

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्तविप्रः सुमतिं नदीनाम् ।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ॥१२॥
उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसाघ्न्यौ शूनमारताम् ॥१३॥

३४ सूक्त

इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्रोदसी उभे ॥१॥

---

१२ गोधनाभिलाषी भरतवंशीय लोग पार हो गये; ब्राह्मण लोग नदियोंकी सुन्दर स्तुति करते हैं। तुम अन्न-कारिणी और धन-समन्विता होकर छोटी-छोटी नदियोंको तृप्त और परिपूर्ण करो तथ शीघ्र गमन करो ।

१३ नदीद्वय, तुम्हारी तरङ्ग इस प्रकार प्रवाहित हो कि, युगकील + उसके ऊपर रहे; तुम लोग रज्जुको नहीं छूना ।† पाप-शून्या, कल्याण-कारिणी और अनिनन्दनीया विपाशा और शुतुद्री इस समय न बढ़ें । *

———

१ पुरभेदी, महिमावाले और धनशाली इन्द्रने शत्रुओंको मारते हुए, तेजके द्वारा, दासको जीता है। स्तोत्र द्वारा आकृष्ट, वर्द्धित-शरीर और बहु-अस्त्रधारी इन्द्रने द्यावापृथिवीको परिपूर्ण किया है।

+ The pin of the yoke.—wilson.

† Leave the traces full.—wilson.

* पिजवान राजाके पुत्र सुदासके पुरोहित विश्वामित्र एक बार पौरोहित्य कर्मसे बहुतसा धन लेकर व्यास और सतलज या विपाशा और शुतुद्री नदियोंके संगमस्थलपर पहुँचे। अगाध-गम्भीर नदियोंकी, विश्वामित्रने, प्रथम तीन मंत्रोंसे, स्तुति की। पीछे नदियोंने विश्वामित्रको उत्तर दिया और अन्तको जल घटा कर उन्हें पार जानेको कहा।—सायण।

मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥२॥
इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः ।
अहन् व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ॥३॥
इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥४॥
इन्द्रस्तुजो बर्हणा आविवेश नृवद्दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥५॥
महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान् संपिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥६॥

---

२ इन्द्र, तुम पूजनीय और बलवान् हो। तुम्हें अलंकृत करके, अन्नके लिये, तुम्हारी प्रेरित स्तुतिका उच्चारण करता हूँ। तुम मनुष्यों और देवोंके अग्रगामी हो।

३ इन्द्र, तुम्हारा कर्म प्रसिद्ध है। तुमने वृत्रको रोका था। शत्रुओंके आक्रमण-निवारक इन्द्रने मायावियोंका, विशेष रूपसे, बध किया था। शत्रुवधाभिलाषी इन्द्रने वनमें छिपे स्कन्ध-हीन शत्रुका विनाश किया है। उन्होंने राम्यों या रात्रियोंकी गायोंको आविष्कृत किया है।

४ स्वर्गदाता इन्द्रने दिनको उत्पन्न करके युद्धाभिलाषी अङ्गिरा लोगोंके साथ परकीय सेनाका अभिभव करके परास्त किया है। मनुष्यके लिये दिनके पताका-स्वरूप सूर्यको प्रदीप्त किया था। महायुद्धके लिये ज्योति प्रकट हुई।

५ बहुत धनका ग्रहण करके बाधाकारी और वर्द्धमाना शत्रु-सेनाके बीच इन्द्र पैठे। स्तोताके लिये, उन्होंने, उषाको चैतन्य प्रदान किया और उनके शुक्रवर्ण तेजको वर्द्धित किया।

६ इन्द्र महान् हैं। उपासक लोग उनके प्रभूत सत्कर्मोंकी प्रशंसा करते हैं। बल द्वारा वह बलवानोंको चूर-चूर करते हैं। पराभवकर्त्तामें ज्यासम्पन्न इन्द्रने, माया द्वारा, दस्युओंको चूर्ण किया है।

युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥७॥
सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससानयः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥८॥
ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ॥९॥
इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीँ रसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद बलं नुनुदे विवाचोथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम् ॥१०॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११॥

---

७ देवोंके पति और मानवोंके वर-प्रदाता इन्द्रने महायुद्धमें धन प्राप्त करके स्तोताओंको दान दि मेधावी स्तोता लोग यजमानके घरमें मन्त्र द्वारा इन्द्रकी कीर्त्तिकी प्रशंसा करते हैं।

८ स्तोता लोग सबके जेता, वरणीय, जलप्रद, स्वर्ग और स्वर्गीय जलके स्वामी इन्द्रके आनन्दमें आनन्दित होते हैं। इन्द्रने पृथिवी, अन्तरीक्ष और स्वर्गको दान कर दिया है।

९ इन्द्रने अश्वका दान किया है, सूर्यका दान किया है, अनेक लोगोंके उपभोगके योग्य गोध दान किया है, सुवर्णमय धन दान किया है तथा दस्युओंका बध करके आर्यवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वै जातियों) की रक्षा की है।

१० इन्द्रने ओषधि प्रदान की है, दिन दिया है, वनस्पति और अन्तरीक्ष प्रदान किया है। उन्होंने मेघको भिन्न किया है, विरोधियोंका बध किया है, जो युद्ध करने सामने आये, उनका व किया है।

११ इन्द्र, तुम अन्न-प्राप्त-कर्त्ता हो, युद्धमें उत्साह द्वारा प्रवृद्ध हो। तुम धनवान् हो, प्रभूत वैभव-सम्पन्न हो, नेतृश्रेष्ठ हो, स्तुति-श्रोता हो, उग्र हो, संग्राममें अरि-मर्दन और धन-जेता हो। आव प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं।

३५ सूक्त

इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

तिष्ठा हरी रथ आयुज्यमाना याहि वायुर्ननियुतो नो अच्छ ।
पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय ॥१॥
उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि ।
द्रवद्यथा संभृतं विश्वतश्चिदुपेमं यज्ञमावहात इन्द्रम् ॥२॥
उपो नयस्व वृषणा तपुष्पोतेमवत्वं वृषभ स्वधावः ।
ग्रसेतामश्वा वि मुचेह शोणा दिवेदिवे सदृशीरद्धि धानाः ॥३॥
ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिर रथँ सुखमिन्द्राधितिष्ठन्प्रजानन्विद्वाँ उपयाहि सोमम् ॥४॥

---

१ इन्द्र, हरि नामके दोनों अश्व रथमें योजित किये जाते हैं। जैसे वायु अपने नियुत नामक अश्वोंकी प्रतीक्षा करते हैं, वैसे ही तुम भी इन दोनोंकी कुछ क्षण प्रतीक्षा करके हमारे सामने आओ। हमारा दिया सोम पीयो। हम स्वाहा शब्दका उच्चारण करके, तुम्हारे आनन्दके लिये, सोम दान करते हैं।

२ अनेक लोकोंमें आहूत इन्द्रके शीघ्र गमनके लिये रथके अग्र भागमें द्रुतगामी अश्वद्वयको हम संयोजित करते हैं। विधिवत् अनुष्ठित इस यज्ञमें अश्वद्वय इन्द्रको ले आवें।

३ अभीष्टवर्षक और अन्नवान् इन्द्र, अपने वीर्यवान् और शत्रुभयत्राता अश्वद्वयको हमारे निकट ले आओ। तुम इस यजमानकी रक्षा करो। रक्तवर्ण हरि नामके अश्वद्वयको इस देव-यजन-स्थानमें छोड़ दो। वे खावें। तुम समान रूपवाले उपयुक्त धान्य अथवा भूँजे हुए जौका भक्षण करो।

४ इन्द्र, मन्त्र द्वारा तुम्हारे अश्वद्वय योजित होते हैं तथा युद्धमें जिनकी समान प्रसिद्धि है, उन्हीं दोनों अश्वोंको मन्त्र द्वारा हम योजित करते हैं। इन्द्र, तुम विद्वान् हो। तुम समझकर सुदृढ़ और सुखकर रथपर आरोहण करके सोमके पास आओ।

मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन् यजमानासो अन्ये।
अत्यायाहि शश्वतो वयं तेरं सुतेभिः कृणवाम सोमैः ॥५॥
तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि।
अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥६॥
स्तार्णं ते बर्हिः सुत इन्द्र सोमः कृताधाना अत्तवे ते हरिभ्याम्।
तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णो मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि ॥७॥
इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन्।
तस्या गत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन्विद्वान् पथ्या अनु स्वाः ॥८॥
याँ आभजो मरुत इन्द्र सोमे ये त्वामवर्द्धन्नभवन् गणस्ते।
तेभिरेतं सजोषा वावशानोऽग्नेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र ॥९॥
इन्द्र पिब स्वधया चित् सुतस्याग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र।
अध्वर्योर्वा प्रयतं शक्र हस्ताद्धोतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व ॥१०॥

---

५ इन्द्र, दूसरे यजमान तुम्हारे वीर्यवान् और कमनीय पृष्ठोंवाले हरिद्वयको आनन्दित करें हम अभिषुत सोमके द्वारा, यथेष्ट रीतिसे, तुम्हारी तृप्ति करेंगे। तुम अनेक यजमानोंको अतिक्रम करके शीघ्र आओ।

६ यह सोम तुम्हारा है। इसके सामने आओ। प्रसन्न-वदन होकर इस प्रभूत सोमका पान करो। इन्द्र, इस यज्ञमें कुशके ऊपर बैठकर इस सोमको जठरमें रखो।

७ इन्द्र, तुम्हारे लिये कुश फैलाये गये हैं। सोम अभिषुत हुआ है तुम्हारे अश्वद्वयके भोजनके लिये धान्य तैयार है तुम्हारा आसन कुश है; अनेक लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम अभीष्टवर्षी हो। तुम्हारे पास मरुत्सेना है। तुम्हारे लिये हव्य विस्तृत है।

८ इन्द्र, तुम्हारे लिये अध्वर्युगण, प्रस्तर और जलने इस सोम-दुग्धको मधुररस-विशिष्ट किया है। दर्शनीय और विद्वान् इन्द्र, प्रसन्न वदनसे अपनी हितकर स्तुतिको जान करके सोम पान करो।

९ इन्द्र, सोम-पान-समयमें जिन मरुतोंको तुम सम्मानान्वित करते हो, युद्धमें जो तुम्हें वर्द्धित करते और तुम्हारे सहायक होते हैं, उन्हीं सब मरुतोंके साथ सोमपानाभिलाषी होकर अग्निकी जिह्वा द्वारा सोम पान करो।

१० यजनीय इन्द्र, स्वधा अथवा अग्निकी जिह्वा द्वारा अभिषुत सोम पान करो। शक्र, अध्वर्युके हाथसे प्रदत्त सोम अथवा होताके भजनीय हव्यका सेवन करो।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११॥

३६ सूक्त

इन्द्र देवता । केवल १० म ऋचाके अंगिराके वंशज घोर ऋषि हैं । त्रिष्टुप् छन्द ।

इमामूषु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः ।
सुतेसुते वावृधे वर्द्धनेभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतोभूत् ॥१॥
इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः ।
प्रयम्यमानान् प्रतिषू गृभायेन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः ॥२॥
पिबा वर्द्धस्व तव घा सुतास इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेमे ।
याथापिबः पूर्व्याँ इन्द्र सोमाँ एवा पाहि पन्यो अद्य नवीयान् ॥३॥

---

११ इन्द्र, तुम अन्न-प्रापक युद्धमें उत्साह द्वारा प्रवृद्ध हो । तुम धनवान्, प्रभूत ऐश्वर्यवाले, नेतृश्रेष्ठ, स्तुतिश्रोता, उग्र, संग्राममें शत्रु-हन्ता और धनजेता हो । आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं ।

१ इन्द्र, धन-दानके लिये मरुतोंके साथ सदा आकर विशेष रूपसे प्रस्तुत सोमको धारण करो । जो इन्द्र विशाल कर्मके कारण प्रसिद्ध हैं, वे प्रत्येक सोमाभिषवमें पुष्टिकर हव्य द्वारा वर्द्धित हुए हैं ।

२ पूर्व समयमें इन्द्रको लक्ष्य करके सोम दिया गया था, जिससे इन्द्र कालात्मक, दीप्त और महान् हुए हैं । इन्द्र, तुम इस प्रदत्त सोमको ग्रहण करो । स्वर्गादि फल देनेवाले और प्रस्तर द्वारा अभिषुत सोमका पान करो ।

३ इन्द्र, पान करो और परिपुष्ट बनो । तुम्हारे लिये प्राचीन और नवीन सोम अभिषुत हुआ है । इन्द्र, तुम स्तुति-योग्य हो । जैसे तुमने प्राचीन सोमका पान किया था, वैसे ही इस क्षणमें नूतन सोमका पान करो ।

महाँ अमत्रो वृजने विरप्श्युग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः ।
नाह विव्याच पृथिवी चनैनं यत् सोमासो हर्यश्वमन्दन् ॥४॥
महाँ उग्रो वावृधे वीर्याय समाचक्रे वृषभः काव्येन ।
इन्द्रो भगो वाजदा अस्य गावः प्रजायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः ॥५॥
प्रयत् सिन्धवः प्रसवं यथायन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः ।
अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान् यदीं सोमः पृणाति दुग्धो अंशुः ॥६॥
समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः ।
अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैर्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः ॥७॥
ह्रदाइव कुक्षयः सोमधाना समी विव्याच सवना पुरूणि ।
अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश वृत्रं जघन्वाँ अवृणीत सोमम् ॥८॥
आ तू भर माकिरेतत् परिष्ठाद्विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम् ।
इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्र यन्धि ॥९॥

---

४ जो इन्द्र अतीव शक्तिशाली हैं, जो समर-भूमिमें शत्रुओंके विजेता हैं, जो शत्रुओंके आह्वानकर्त्ता हैं, उन्हीं इन्द्रका उग्र बल और दुद्धर्ष तेज सर्वत्र विस्तृत हो रहा है। जिस समय हर्यश्व इन्द्रको सोमरस हृष्ट करता है, उस समय पृथिवी और स्वर्ग भी इन्द्रको धारण नहीं कर सकते ।

५ बली, उग्र, अभीष्ट-वर्षक और दाता इन्द्र, वीर कीर्त्तिके लिये, प्रवृद्ध हुए हैं, स्तोत्रके साथ मिल गये हैं। इन्द्रकी सब गायोंने दुग्धदायी होकर जन्म लिया है। इन्द्रका दान बहुत है।

६ जिस समय नदियाँ स्रोतका अनुकरण करके दूरस्थ समुद्रकी ओर जाती हैं, उस समय रथोंकी भाँति जल भागता है। ठीक इसी भाँति वरणीय इन्द्र इस अन्तरीक्षसे अभिषुत लता-खण्ड-रूप अल्प सोमकी ओर दौड़ते हैं।

७ समुद्र सङ्गमाभिलाषिणी नदियाँ जैसे समुद्रको पूर्ण करती हैं, वैसे ही अध्वर्यु लोग इन्द्रके लिये अभिषुत सोमका सम्पादन करते हुए हस्त द्वारा लताका दोहन करते और प्रस्तर द्वारा धारारूप मधुर सोमरसका शोधन करते हैं।

८ इन्द्रका उदर तालावके समान सोमका आधार है। वह एक ही साथ अनेक यज्ञोंको व्याप्त करते हैं। इन्द्रने प्रथम भक्षणीय सोम आदिका भक्षण किया है; अनन्तर वृत्रको निहत करके देवोंको भाग दे दिया है।

९ इन्द्र, शीघ्र धन दो। तुम्हारे इस धनको कौन रोक सकता हैं। हम तुम्हे धनाधिपति जानते हैं। तुम्हारे पास जो पूजनीय धन है, उसे हमें दो।

अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥१०॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११॥

* * *

३७ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । गायत्री और अनुष्टुप् छन्द ।

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वावर्तयामसि ॥१॥
अर्वाचीनं सुते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥२॥
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥३॥
पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥४॥

---

१० इन्द्र. ऋजीषी (उच्छिष्ट) सोमवाले इन्द्र, तुम सबके वरणीय प्रभूत धन दो। जीनेके लिये हमें सौ वर्ष दो। सुन्दर जबड़ोंवाले इन्द्र, हमें बहु वीर पुत्र दो।

११ इन्द्र, तुम अन्नप्रापक यज्ञमें उत्साह द्वारा प्रवृद्ध हो। तुम धनवान्, प्रभूत वैभववाले, नेतृवर, स्तुति-श्रवण-कर्त्ता, प्रचण्ड, युद्धमें शत्रु-नाशक और धन-विजेता हो। आश्रय पानेके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं।

— — —

१ इन्द्र, वृत्र-विनाशक बलकी प्राप्ति और शत्रु-सेनाके पराभवके लिये तुम्हें हम प्रवर्त्तित करते हैं।

२ शतक्रतु इन्द्र, तुम्हारे मन और चक्षुको प्रसन्न करके स्तोता लोग हमारे सामने तुम्हें प्रेरित करें।

३ शतक्रतु इन्द्र, अभिमानी शत्रुओंके पराभवकर्त्ता युद्धमें हम सारी स्तुतियोंसे तुम्हारा नाम-कीर्त्तन करेंगे।

४ इन्द्र सबकी स्तुतिके योग्य, असीम तेजवाले और मनुष्योंके स्वामी हैं। हम उनकी स्तुति करते हैं।

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुपब्रुवे । भरेषु वाजसातये ॥५॥
वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो । इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥६॥
द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च । इन्द्र साद्वाभिमातिषु ॥७॥
शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् । इन्द्रसोमं शतक्रतो ॥८॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आवृणे ॥९॥
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद्द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् ।
उत्ते शुष्म तिरामसि ॥१०॥
अर्वावतो न आगह्यथो शक्र परावतः ।
उलोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आगहि ॥११॥

* * *

---

५ इन्द्र, वृत्रका विनाश करने और युद्धमें धन-प्राप्तिके लिये बहुतों द्वारा आहूत इन्द्रका आह्वान करते हैं।

६ शतक्रतु इन्द्र, युद्धमें तुम शत्रुओंके पराभव-कर्त्ता हो। हम, वृत्रके विनाशके लिये, तुम्हा प्रार्थना करते हैं।

७ इन्द्र, जो धन, युद्ध, वीर-निचय और बलमें हमारे अभिमानी शत्रु हैं, उन्हें पराजित करो।

८ शतक्रतु, हमारे आश्रय-लाभके लिये अत्यन्त बलवान, दीप्तियुक्त और स्वप्न-निवारक सोम पा करो।

९ शतक्रतु, पञ्च जनोंमें जो सब इन्द्रियाँ हैं, उनको हम तुम्हारी ही समझते हैं।

१० इन्द्र, प्रभूत अन्न तुम्हारे निकट जाय। शत्रुओंका दुर्द्धर्ष अन्न हमें प्रदान करो। हम तुम्हा उत्कृष्ट बलको वर्द्धित करेंगे।

११ शक्र इन्द्र, निकट अथवा दूर देशसे हमारे पास आओ। वज्रवान् इन्द्र, तुम्हारा जो उत्कृ स्थान है, वहींसे इस यज्ञमें आओ।

३८ सूक्त

इन्द्र और इन्द्रावरुण देवता। विश्वामित्र-गोत्रीय प्रजापति अथवा वाच-गोत्रीय प्रजापति अथवा
विश्वामित्र ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

अभि तष्टेव दीधया मनीषामत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः ।
अभि प्रियाणि मर्मृशत पराणि कवीँरिच्छामि संदृशे सुमेधाः ॥१॥
इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां मनोधृतः सुकृतस्तक्षत द्याम् ।
इमा उते प्रण्योवर्धमाना मनोवाता अध नु धर्मणि ग्मन् ॥२॥
निषीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन् ।
संमात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी अन्तर्मही समृते धायसे धुः ॥३॥
आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥४॥

---

१ स्तोता; त्वष्टाकी तरह, इन्द्रकी स्तुतिको जागरित करो। उत्कृष्ट, भारवाही और द्रुतगामी अश्वकी तरह कर्ममें प्रवृत्त होकर तथा इन्द्रके प्रिय कर्मके विषयपर चिन्ता कर मैं, मेधावान् होते हुए, स्वर्गगत कवियोंको देखनेकी इच्छा करता हूँ।

२ इन्द्र, कवियोंके जन्मके सम्बन्धमें उन गुरुओंसे पूछो, जिन्होंने मनःसंयम और पुण्य कार्य द्वारा स्वर्गका निर्माण किया था। इस समय इस यज्ञमें तुम्हारे लिये प्रणीत स्तुतियाँ वृद्धिङ्गत होकर, मनकी तरह, वेगसे जाती हैं।

३ इस भूलोकमें, सर्वत्र, कवियोंने गूढ़ कर्मका विधान करके पृथिवी और स्वर्गको, बल-प्राप्तिके लिये, अलंकृत किया है। उन्होंने मात्राओं या मूलतत्त्वोंके द्वारा पृथिवी और स्वर्गका परिमाण किया है। उन्होंने परस्पर-मिलिता, विस्तीर्णा और महती द्यावापृथिवीको सङ्गत किया है और द्यावापृथिवीके बीचमें, धारणार्थ, अन्तरीक्षको स्थापित किया है।

४ सारे कवियोंने रथस्थित इन्द्रको विभूषित किया है। स्वभावतः दीप्तिमान् इन्द्र दीप्तिसे आच्छादित होकर स्थित हैं। अभीष्टवर्षी और असुर इन्द्रकी कीर्ति अद्भुत है। विश्वरूप धारण करके वह अमृतमें अवस्थित हैं।

असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः ।
दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे ॥५॥
त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान् व्रते गन्धर्वाँ अपि वायुकेशान् ॥६॥
तदिन्वस्य वृषभस्य धेनोरानामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः ।
अन्यदन्यदसुर्यं वसाना निमायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥७॥
तदिन्वस्य सवितुर्णकिर्मे हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
आसुष्टती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे ॥८॥
युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद्दैवी स्वस्तिः परिणस्यातम् ।
गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि ॥९॥

५ अभीष्टवर्षक, सनातन और सर्वश्रेष्ठ इन्द्रने जल-सृष्टि की है। इस प्रभूत जलने उनकी पिपासाको रोका है। स्वर्गके पौत्र-स्वरूप और शोभायमान इन्द्र और वरुण द्युतिमान् यज्ञकर्त्ताकी स्तुतिसे लाभ-योग्य धन, हमारे लिये, धारण करते हैं।

६ राजा इन्द्र और वरुण, व्यापक और सम्पूर्ण सवन-त्रयको इस यज्ञमें अलंकृत करो। इन्द्र, तुम यज्ञमें गये थे; क्योंकि मैंने इस यज्ञमें वायुकी तरह केश-विशिष्ट गन्धर्वोंको देखा था। *

७ जो यजमान लोग अभीष्टदाता इन्द्रके लिये गौओंके भोग-योग्य हव्यको शीघ्र दूहते हैं, जिनके अनेक नाम हैं, उन्होंने नवीन असुर-बलको धारण करते हुए तथा मायाका विकाश करते हुए अपने-अपने रूपको, इन्द्रको, समर्पित किया था।

८ सूर्यकी स्वर्णमयी दीप्तिकी कोई सीमा नहीं कर सकता। इस दीप्तिके जो आश्रय हैं, वह उत्तम स्तुति द्वारा स्तुत होकर जैसे माता सन्तानका आलिङ्गन करती है, वैसे ही सर्वव्यापक द्यावापृथिवीको आलिङ्गित करते हैं।

९ इन्द्र और वरुण, तुम दोनों प्राचीन स्तोताका कल्याण करो अर्थात् उसको स्वर्गीय मङ्गल-रूप श्रेय दो। हमें चारो ओरसे बचाओ। इन्द्रकी जीभ सबको अभय प्रदान करती है। इन्द्र स्थिर हैं। सारे मायावी लोग उनकी नानाविध कीर्त्तियाँ देखते हैं।

---

* १।२२।१४में गन्धर्वोंका अन्तरीक्षमें निवास करना लिखा है। १।११२।३ में गन्धर्वोंका सोमरस प्रस्तुत करना लिखा है। गन्धर्वोंका ऐसा ही विवरण पुराणोंमें भी है।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥१०॥

* * *

३९ सूक्त

४ अनुवाक। इन्द्र देवता। ३५से ५३ सूक्ततकके विश्वामित्र ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

इन्द्रं मतिर्हृद आवच्यमानाच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति ।
या जागृविर्विदथे शस्यमानेन्द्र यत्ते जायते विद्धि तस्य ॥१॥
दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना ।
भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमस्मे सनजा पित्र्याधीः ॥२॥
यमाचिदत्र यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतदाह्यस्थात् ।
वपूंषि जाता मिथुना सचेते तमोहना तपुषो बुध्नएता ॥३॥

१० इन्द्र, तुम अन्न-लाभ-कर्त्ता यज्ञमें उत्साह द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत ऐश्वर्यसे युक्त नेतृश्रेष्ठ, स्तुति श्रवण-कर्त्ता, उग्र, युद्धमें शत्रु-संहारक और धन-विजेता हो। आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं।

---

१ इन्द्र, तुम विश्वपति हो। हृदयसे उच्चारित और स्तोताओं द्वारा सम्पादित स्तोत्र तुम्हारे सामने जाता है। तुम्हें जगाकर यज्ञमें जो स्तुति कही जाती है और जो मुझसे ही उत्पन्न है, उसे तुम जानो।

२ इन्द्र, सूर्यसे भी पहले उत्पन्न जो स्तुति यज्ञमें उच्चारित होकर तुम्हें जगाती है, वह स्तुति कल्याणकारी शुभ्र वस्त्र धारण करके हमारे पितरोंके पाससे ही आगत और सनातन है।

३ यमक-पुत्रों (अश्विनीकुमारों) की माताने इन्हें उत्पन्न किया। इनकी प्रशंसा करनेके लिये मेरी जीभका अगला भाग नाच रहा है। अन्धकार-नाशक दिनके आदिमें आगत मिथुन (जोड़ा) जन्मके साथ ही स्तुतिमें मिलता है।

नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः।
इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावानुद्गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ॥४॥
सखाह यत्र सखिभिर्नवग्वैरभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन्।
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम् ॥५॥
इन्द्रो मधुसम्भृतमुस्रियायां पद्वद्विवेद शफवन्नमे गोः।
गुहाहितं गुह्यं गूळ्हमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान् ॥६॥
ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्नारे स्याम दुरितादभीके।
इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः ॥७॥
ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी अनुष्यादारे स्याम दुरितस्य भूरेः।
भूरि चिद्धि तुजतो मर्त्यस्य सुपारासो वसवो बर्हणावत् ॥८॥

---

४ इन्द्र, हमारे जिन पितरोंने, गोधनके लिये, युद्ध किया था, उनका पृथिवीपर, कोई भी निन्दक नहीं है। महिमा और कीर्त्तिवाले इन्द्रने अङ्गिरा लोगोंको समिद्ध गोवृन्द प्रदान किया था।

५ नवग्व (अङ्गिरा लोगों) के सखा इन्द्र जिस समय घुटनेके ऊपर जोर देकर गोधनकी खोजमें गये थे, उस समय अङ्गिरा लोगोंके साथ अन्धकारमें छिपे सूर्यको देख सके थे।

६ इन्द्रने प्रथम दुग्धदात्री धेनुओंपर मधु सिञ्चित किया; पश्चात् चरण और खुरसे युक्त धन ले आये। उदारचेता इन्द्रने गुहामध्यस्थित, प्रच्छन्न और अन्तरीक्षमें छिपे मायावीको दाहिने हाथसे पकड़ा।

७ रात्रिसे ही उत्पन्न होकर इन्द्रने ज्योति धारण की। हम पापसे दूर भय-शून्य स्थानमें रहेंगे। हे सोमपा और सोम-पुष्ट इन्द्र, बहुस्तोम-विनाशक और स्तोत्रकारीकी इस स्तुतिका सेवन करो।

८ यज्ञके लिये सूर्य द्यावापृथिवीको प्रकाशित करें। हम प्रभूत पापसे दूर रहेंगे। वसुओ, स्तुति द्वारा तुम्हें अनुकूल किया जा सकता है। प्रभूत और समृद्ध धनको प्रभूत-दान-शील मनुष्यको प्रदान करो।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥६॥

---

६ इन्द्र, तुम अन्न-प्राप्ति-कर्त्ता युद्धमें उत्साह द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत-ऐश्वर्य-सम्पन्न, नेतृश्रेष्ठ, स्तुति-श्रवण-कर्त्ता, उग्र, संग्राममें शत्रु-नाशक और धन-विजेता हो। आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं।

द्वितीय अध्याय समाप्त

तृतीय अध्याय

४० सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । गायत्री छन्द ।

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे । स पाहि मध्वो अन्धसः ॥१॥
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥२॥
इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः । तिरः स्तवान विश्पते ॥३॥
इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्रयन्ति सत्पते । क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥४॥
दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव द्युक्षास इन्दवः ॥५॥
गिर्वणः पाहि नः सुतम् मधोर्धाराभि रज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥६॥
अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता । पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥७॥

---

१ हे इन्द्र, तुम अभीष्टपूरक हो । अभिषुत सोमपानके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं । मदकारक और अन्नमिश्रित सोमका तुम पान करो ।

२ हे बहुजनस्तुत इन्द्र, यह अभिषुत सोम बुद्धिवर्द्धक है । इसे पीनेकी अभिलाषा प्रकट करो और इस तृप्तिकारक सोमसे जठरका सिञ्चन करो ।

३ हे स्तूयमान, मरुत्पति इन्द्र, सम्पूर्ण यजनीय देवोंके साथ तुम हमारे इस हविवाले यज्ञका भली भाँति वर्द्धन करो अर्थात् हविः स्वीकार कर इस यज्ञको पूर्ण करो ।

४ हे सत्पति इन्द्र, हमारे द्वारा प्रदत्त, आह्लादक, दीप्त, अभिषुत सोम तुम्हारे जठर-देशमें जा रहा है । इसे धारण करो ।

५ हे इन्द्र, यह अभिषुत सोम सबके द्वारा वरणीय है । इसे तुम अपने जठरमें धारण करो । यह सब दीप्त सोमरस तुम्हारे साथ द्युलोकमें रहता है ।

६ हे स्तुतिपात्र इन्द्र, मदकारक सोमकी धारासे तुम प्रसन्न होते हो; अतः हमारे अभिषुत सोमका पान करो । तुम्हारे द्वारा वर्द्धित अन्न ही हम लोगोंको प्राप्त होता है ।

७ देवयाजकोंकी द्युतिमान्, क्षयरहित सोम आदि सम्पूर्ण हवि इन्द्रके अभिमुख जाती है । सोम-पान कर इन्द्र वर्द्धित होते हैं

अर्वावतो न आगहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥८॥
यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आगहि ॥९॥

४१ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । गायत्री छन्द ।

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥१॥
सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् । अजुज्रन प्रातरद्रयः ॥२॥
इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आबर्हिः सीद । वीहि शूर पुरोळाशम् ॥३॥
रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥४॥
मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥५॥

---

८ हे वृत्रविदारक इन्द्र, निकटतम प्रदेशसे या अत्यन्त दूर देशसे हमारी ओर आओ। हमारी इस स्तुति-वाणीका आकर ग्रहण करो।

९ हे इन्द्र, यद्यपि तुम अत्यन्त दूर देश, निकटतम प्रदेश और मध्य भाग देशमें आहूत होते हो; तथापि सोमपानके लिये इस यज्ञमें आओ।

---

१ हे वज्रधर इन्द्र, होताओंके द्वारा आहूत होनेपर हमारे पास हमारे यज्ञमें, तुम, सोमपानके लिये हरि नामक घोड़ोंके साथ, शीघ्र आओ।

२ हमारे यज्ञमें यथासमय ऋत्विक् होता, तुम्हें बुलानेके लिये, बैठे हैं। कुश परस्पर सम्बद्ध करके बिछा दिया गया है। प्रातःसवनमें सोमाभिषवके लिये प्रस्तर सब भी परस्पर सम्बद्ध किये हुए हैं; अतः सोमपानके लिये आओ।

३ हे स्तुतिलभ्य इन्द्र, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं; अतः इस यज्ञीय कुशपर बैठो। हे शूर, हमारे द्वारा प्रदत्त इस पुरोडाशका भक्षण करो।

४ हे स्तुतिपात्र और वृत्रहन्ता इन्द्र, हमारे यज्ञके तीनों सवनोंमें किये गये स्तोत्रों और उक्थों (शस्त्रों)में रमण करो।

५ महान् सोमपायी और बलपति इन्द्रको स्तुतियाँ वैसे ही चाटती हैं, जैसे गौएँ बछड़ेको चाटती हैं।

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥६॥
वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥७॥
मारे अस्मद्वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥८
अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे ॥९॥

४२ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । गायत्री छन्द ।

उप नः सुतमागहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥१॥
तमिन्द्र मदमागहि बर्हिष्ठां ग्रावभिः सुतम् । कुविन्न्वस्य तृष्णवः ॥२॥
इन्द्र मित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ॥३॥

---

६ हे इन्द्र, प्रभूत धनदानके लिये सोमके द्वारा तुम शरीरको प्रसन्न करो; परन्तु मुझ स्तोता निन्दित नहीं करना ।

७ हे इन्द्र, हम तुम्हारी इच्छा करते हुए हविसे युक्त होकर तुम्हारी स्तुति करते हैं । हे सर्व निराशयिता इन्द्र, तुम भी हविके स्वीकरणार्थ हमारी रक्षा करो ।

८ हे हरि-(अश्व)-प्रिय, हमसे दूर देशमें घोड़ोंको रथसे मत खोलो । हमारे निकट आओ । हे सोमवान् इन्द्र, इस यज्ञमें हृष्ट बनो ।

९ हे इन्द्र, श्रमजलसे युक्त और लम्बे केशवाले घोड़े, बैठने योग्य कुशके सामने, तुम्हें सुखक रथपर हमारे पास ले आवें ।

१ हे इन्द्र, हमारे दुग्धमिश्रित अभिषुत सोमके निकट आओ; क्योंकि तुम्हारा अश्व-संयुक्त रथ हमारी कामना करता है ।

२ हे इन्द्र, इस सोमके निकट आओ । यह पत्थरोंपर पीसकर निकाला गया है और कुशोंपर रखा गया है । इसका प्रचुर परिमाणमें पान करके शीघ्र तृप्त होओ ।

३ इन्द्रके लिये उच्चारित हमारी यह स्तुति-वाणी इन्द्रको, सोमपानार्थ बुलानेके लिये इस यज्ञ-देशसे इन्द्रके निकट जाय ।

इन्द्र सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥४॥
इन्द्र सोमाः सुता इमे तान्दधिष्व शतक्रतो । जठरे वाजिनीवसो ॥५॥
विद्मा हि त्वा धनञ्जयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ॥६॥
इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब । आगत्या वृषभिः सुतम् ॥७॥
तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये सोमं चोदामि पीतये । एष रन्तु ते हृदि ॥८॥
त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ॥९॥

४३ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ याह्यर्वाङ्ङुपबन्धुरेष्ठास्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम् ।
प्रिया सखाया विमुचोप बर्हिस्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते ॥१॥

४ स्तोत्रों और उक्थों द्वारा सोमपानके लिये यज्ञमें हम इन्द्रको बुलाते हैं । बहुबार आहूत इन्द्र यज्ञमें आवें ।

५ हे शतक्रतु इन्द्र, तुम्हारे लिये सोम तैयार है, इसे जठरमें धारण करो । तुम अन्नधन हो ।

६ हे कवि, युद्धमें तुम शत्रुओंके अभिभव-कर्त्ता और धनजेता हो । हम तुम्हें ऐसा ही जानते हैं; अतएव हम तुमसे धनकी याचना करते हैं ।

७ हे इन्द्र, हमारे इस यज्ञमें आकर गव्य-मिश्रित तथा यव-मिश्रित अभिषुत सोमका ग्रीवा द्वारा पान करो ।

८ हे इन्द्र, तुम्हारे पीनेके लिये ही इस अभिषुत सोमको हम तुम्हारे जठरमें प्रेरित करते हैं। यह सोम तुम्हारे हृदयमें तृप्तकर हो ।

९ हे पुरातन इन्द्र, हम कुशिक-वंशोत्पन्न तुम्हारे द्वारा रक्षित होनेकी इच्छा करते हुए, अभिषुत सोमपानके लिये स्तुति-वचनों द्वारा तुम्हें बुलाते हैं।

१ हे इन्द्र, जूएवाले रथपर चढ़कर तुम हमारे निकट आओ । यह सोम प्राचीन कालसे ही तुम्हारे उद्देशसे प्रस्तुत है । तुम अपने प्रियतम सखास्वरूप अश्वको कुशके निकट खोलो। ये ऋत्विक् सोमपानके लिये तुम्हें बुला रहे हैं ।

आयाहि पूर्वीरति चर्षणीराँ अर्य आशिष उपनो हरिभ्याम् ।
इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः ॥२॥
आ नो यज्ञं नमो वृधं सजोषा इन्द्रदेव हरिभिर्याहि तूयम् ।
अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ॥३॥
आ च त्वामेता वृषणा वहातो हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा ।
धानावदिन्द्रः सवनं जुषाणः सखा सख्युः शृणवद्वन्दनानि ॥४॥
कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद्राजानं मघवन्नृजीषिन् ।
कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मेवस्वो अमृस्य शिक्षाः ॥५॥
आ त्वा बृहन्तो हरयो युजाना अर्वागिन्द्र सधमादो वहन्तु ।
प्र ये द्विता दिव ऋञ्जत्याताः सुसंमृष्टासो वृषभस्य मूराः ॥६॥

---

२ हे स्वामी इन्द्र, तुम समस्त पुरातन प्रजाका अतिक्रमण करके आओ। घोड़ोंके साथ यहाँ आकर सोमपान करो, यही हमारी प्रार्थना है। स्तोताओंके द्वारा प्रयुक्त सख्यभिलाषिणी स्तुतियाँ तुम्हारा आह्वान कर रही हैं।

३ हे द्योतमान इन्द्र, हमारे अन्नवर्द्धक यज्ञमें, घोड़ोंके साथ, तुम शीघ्र आओ। घृतसहित अन्नरूप हवि लेकर हम सोमपान करनेके स्थानमें तुम्हारा, स्तुति द्वारा, प्रभूत आह्वान कर रहे हैं।

४ हे इन्द्र, सेचनसमर्थ, सुन्दर धुरा और शोभन अङ्गवाले, सखास्वरूप ये दोनों घोड़े तुम्हें यज्ञभूमिमें रथपर ले जाते हैं। भूँजे जौसे युक्त यज्ञकी सेवा करते हुए सखा स्वरूप इन्द्र हम स्तोताओंकी स्तुतियाँ सुनें।

५ हे इन्द्र, मुझे लोगोंका रक्षक बनाओ। हे मघवन्, हे सोमवान् इन्द्र, मुझे सबका स्वामी बनाओ। मुझे अतीन्द्रियद्रष्टा (ऋषि) बनाओ तथा अभिषुत सोमका पानकर्त्ता बनाओ और मुझे अक्षय धन प्रदान करो।

६ हे इन्द्र, महान् और रथमें संयुक्त हरि नामक मत्त घोड़े तुम्हें हमारे अभिमुख ले आवें। कामनाओंके वर्षक इन्द्रके अश्व शत्रुओंके विनाशक हैं। इन्द्रके हाथोंसे संस्पृष्ट होनेपर वे घोड़े आकाशमार्गसे अभिमुख आते हुए और दिशाओंको द्विधा करते हुए गमन करते हैं।

इन्द्र पिब वृष धूतस्य वृष्ण आयन्ते श्येन उसते जभार ।
यस्य मदेच्यावयसि प्रकृष्टीर्यस्य मदे अपगोत्रा ववर्थ ॥७॥
शुन हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥८॥

४४ सूक्त

इन्द्र देवता। विश्वामित्र ऋषि। बृहती छन्द।

अयन्ते अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः ।
जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आगह्या तिष्ठ हरितं रथम् ॥१॥
हर्यन्नुषसमर्चयः सूर्यं हर्यन्नरोचयः
विद्वाँ श्चिकित्वान् हर्यश्व वर्ध स इन्द्र विश्वा अभिश्रियः ॥२॥

---

७ हे इन्द्र, तुम सोमाभिलाषी हो। तुम अभीष्टफलदायक, और प्रस्तर द्वारा अभिषुत सोमका पान करो। सुपर्णपक्षी तुम्हारे लिये सोमको लाया है। सोमपानजन्य हर्षके उत्पन्न होनेपर तुम शत्रुभूत मनुष्यादिको पातित करते हो एवं सोमजन्य हर्षके उत्पन्न होनेपर तुम वर्षा ऋतुमें मेघोंको अपावृत करते हो।

८ इन्द्र, तुम अन्न प्राप्त करो। तुम युद्धमें उत्साहके द्वारा प्रवृद्ध, धनवान् प्रभूत, ऐश्वर्यवाले, नेतृश्रेष्ठ, स्तुतिश्रवण-कर्त्ता, उग्र, युद्धमें शत्रुविनाशी और धनविजेता हो। आश्रयप्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं।

---

१ हे इन्द्र, पत्थरों द्वारा अभिषुत, प्रीतिवर्द्धक, कमनीय सोम तुम्हारे लिये हो। हरिनामक घोड़ोंसे युक्त, हरिद्वर्ण रथपर तुम अधिष्ठान करो और हमारे अभिमुख आगमन करो।

२ हे इन्द्र, सोमाभिलाषी होकर तुम उषाकी अर्चना करते हो तथा सोमाभिलाषी होकर तुम सूर्यको भी प्रदीप्त करते हो। हे हरिनामक घोड़ोंवाले, तुम विद्वान् हो, हमारे मनोभिलाषके ज्ञाता हो तथा अभिमतफल-प्रदानसे तुम हमारी सम्पूर्ण सम्पत्तिको परिवर्द्धित करते हो।

द्यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्पसम् ।
अधारयद्धरितोर्भूरिभोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत ॥३॥
जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमाभाति रोचनम् ।
हर्यश्वो हरितं धत्त आयुधमा वज्रं बाह्वोर्हरिम् ॥४॥
इन्द्रो हर्यंतमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम् ।
अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुतमुद्गा हरिभिराजत ॥५॥

* * *

४५ सूक्त

इन्द्र देवता। विश्वामित्र ऋषि। बृहती छन्द।

आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मात्वा केचिन्नियमन्वि न पाशिनोति धन्वेवताँ इहि ॥१॥

---

३ हरिद्वर्ण रश्मिवाले द्युलोकका तथा ओषधियोंसे हरिद्वर्णवाली पृथिवीका, इन्द्रने, धारण किया है। हरिद्वर्णवाली द्यावापृथिवीके मध्यमें अपने घोड़ोंके लिये इन्द्र प्रभूत भोजन प्राप्त करते हैं। इन्द्र इसी द्यावापृथिवीके मध्यमें विचरण करते हैं।

४ कामनाओंके पूरक, हरिद्वर्णवाले, इन्द्र जन्मग्रहण करते ही सम्पूर्ण दीप्तिमान् लोकोंको प्रकाशित करते हैं। हरिनामक घोड़ोंवाले इन्द्र हाथोंमें हरिद्वर्ण आयुध धारण करते हैं तथा शत्रुओंके प्राणसंहारक वज्र धारण करते हैं।

५ इन्द्रने कमनीय, शुभ्र, क्षीरादिके द्वारा व्याप्त होनेके कारण शुभ्र, वेगवान् और प्रस्तरों द्वारा अभिषुत सोमको अपावृत किया है—आवरणरहित कर दिया है। पणियों द्वारा अपहृत गौओंके इन्द्रने अश्वयुक्त होकर गुहासे बाहर निकाला है।

---

१ हे इन्द्र, मादक और मयूरोंके रोमों (पिच्छों)के समान रोमोंसे युक्त घोड़ोंके साथ तुम इस यज्ञमें आओ। जैसे उड़ते पक्षीको व्याध फाँस रखते हैं, वैसे कोई भी तुम्हारे मार्गमें प्रतिबन्धक न हो। पथिक मरुभूमिको जैसे उल्लङ्घित कर जाते हैं, वैसे ही तुम भी इन सकल बाधाओंका अतिक्रमण करके हमारे यज्ञमें शीघ्र आओ।

वृत्रखादो वलं रुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृह्लाचिदारुजः ॥२॥
गंभीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गाइव ।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥३॥
आ नस्तुजं रयिं भराशं न प्रति जानते ।
वृक्षं पक्वं फलमंकीव धूनुहीन्द्र संपारणं वसु ॥४॥
स्वयुरिन्द्र स्वरालसि स्मद्दिष्टिः स्वयशस्तरः ।
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवनः सुश्रवस्तमः ॥५॥

* * *

२ इन्द्र वृत्रहन्ता हैं । ये मेघोंको विदीर्ण करके जलका प्रेरण करते हैं । इन्होंने शत्रुपुरीको विदीर्ण किया है । इन्द्रने हमारे सम्मुख दोनों घोड़ोंको चलानेके लिये रथपर आरोहण किया है । इन्द्रने बलवान् शत्रुओंको नष्ट किया है ।

३ हे इन्द्र, साधु गोपगण जैसे गौओंको यव आदि खाद्य पदार्थोंसे पुष्ट करते है, महावकाश समुद्रको जिस प्रकार तुम जल द्वारा पुष्ट करते हो, वैसे ही यज्ञ करनेवाले इस यजमानको भी तुम अभिमत-फल-प्रदानसे सन्तुष्ट करो। धेनुगण जैसे तृणादिको और छोटी सरिताएँ जैसे महाजलाशयको प्राप्त करती हैं, वैसे ही यज्ञीय सोम तुम्हें प्राप्त करता है ।

४ हे इन्द्र, जैसे व्यवहारज्ञ पुत्रको पिता अपने धनका भाग दे देता है, वैसे ही शत्रुओंको परास्त करनेवाला, धनवान् पुत्र हमें दो। पके फलोंके लिये जैसे अङ्कुश (लग्गी) वृक्षको चालित कर देता है, वैसे ही तुम हमारी इच्छाको पूर्ण करनेवाला धन दो।

५ हे इन्द्र, तुम धनवान् हो, स्वर्गके राजा हो, सुवचन हो और प्रभूत कीर्तिवाले हो। हे बहु-जनस्तुत, तुम अपने बलसे वर्द्धमान होकर हमारे लिये अतिशय शोभन अन्नवाले होओ ।

४६ सूक्त

इन्द्रदेवता । विश्वामित्र ऋषि ।

युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः ।
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्याणीन्द्र श्रुतस्य महतो महानि ॥१॥
महाँ असि महिष वृष्ण्येभिर्धनस्पृदुग्रसहमानो अन्यान् ।
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान् ॥२॥
प्र मात्राभीरिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः ।
प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी ॥३॥
उरुं गभीरं जनुषाभ्युग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम् ।
इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आविशन्ति ॥४॥
यं सोममिन्द्र पृथिवी द्यावा गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया ।
तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्यध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ॥५॥

---

१ हे इन्द्र, तुम युद्ध करनेवाले अभिमत-फलदाता, धनोंके स्वामी, सामर्थ्यवान, नितान्त तरुण, चिरन्तन, शत्रुओंके पराजित-कर्ता, जरारहित, वज्रधारी और तीनों लोकोंमें विश्रुत हो। तुम्हारा वीर्य महान् है।

२ हे पूजनीय उग्र इन्द्र, तुम महान् हो। तुम अपने धनको पार ले जाते हो। पराक्रमसे शत्रुओंको तुम अभिभूत करते हो। तुम सम्पूर्ण संसारके एक मात्र राजा हो। तुम शत्रुओंका संहार करो और साधुचरित जनोंको स्थापित करो।

३ दीप्यमान और सब प्रकारसे अपरिमित, सोमवान् इन्द्र पर्वतोंसे भी श्रेष्ठ हैं, बलमें देवताओंसे भी अधिक हैं, द्यावापृथिवीसे भी अधिक हैं तथा विस्तीर्ण, महान् अन्तरीक्षसे भी श्रेष्ठ हैं।

४ हे इन्द्र, तुम महान् हो; अत एव गभीर हो तथा स्वभावसे ही शत्रुओंके लिये भयङ्कर हो। तुम सर्वत्र व्याप्त हो, स्तोताओंके रक्षक हो। नदियाँ जैसे समुद्रके अभिमुख गमन करती हैं, वैसे ही यह पूर्वकालिक अभिषुत सोम इन्द्रके अभिमुख गमन करे।

५ हे इन्द्र, माता जिस प्रकार गर्भ धारण करती है, उसी प्रकार द्यावापृथिवी तुम्हारी कामनासे सोमको धारण करती हैं। हे कामनाओंके पूरक, उसी सोमको अध्वर्यु लोग तुम्हारे लिये प्रेरित करते हैं और उसे तुम्हारे पीनेके लिये शुद्ध करते हैं।

४७ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥१॥
सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि शत्रूँरपमृधोनुदस्वाथाभयं कृणु हि विश्वतो नः ॥२॥
उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोममिन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः ।
याँ आभजो मरुतो ये त्वान्वहन् वृत्रमदधुस्तुभ्यमोजः ॥३॥
ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्द्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमंसगणो मरुद्भिः ॥४॥

---

१ हे इन्द्र, तुम जलवर्षक मरुत्वान् हो । रमणीय पुरोडाशादि रूप अन्नसे युक्त सोमको तुम संग्रामके लिये और हर्षके लिये पियो । तुम विशेष रूपसे सोम संघातका जठरमें सेक करो; क्योंकि तुम पूर्वकालसे ही अभिषुत सोमोंके स्वामी हो ।

२ हे शूर इन्द्र, तुम देवगणोंसे संगत, मरुद्गणोंसे युक्त, वृत्रहन्ता और कर्मविषयज्ञाता हो । तुम सोमपान करो । हमारे शत्रुओंको मारो, हिंसक जन्तुओंका अपनोदन करो और हमें सर्वत्र निर्भय करो ।

३ हे ऋतुपा इन्द्र, सखा-स्वरूप मरुतों और देवोंके साथ तुम हमारे अभिषुत सोमका पान करो । युद्धमें सहायता पानेके लिये जिन मरुतोंका तुमने सेवन—ग्रहण—किया था और जिन मरुतोंने तुम्हें स्वामी माना था, उन्हीं मरुतोंने तुम्हें संग्राममें शत्रुहननादि रूप पराक्रमवान् किया था; तब तुमने वृत्रको मारा था ।

४ हे मघवन्, हे अश्ववन् इन्द्र, जिन मरुतोंने, अहिहनन-कार्यमें, बलदान द्वारा, तुम्हें संवर्द्धित किया था, जिन्होंने तुम्हें शम्बर-वधमें संवर्द्धित किया था और जिन्होंने गौओंके लिये पणि असुरोंके साथ युद्धमें संवर्द्धित किया था, जो मेधावी मरुत् तुम्हें आज भी प्रसन्न कर रहे हैं, उन मरुद्गणोंके साथ तुम सोम पान करो ।

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ।।५।।

४८ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य ।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोमस्य ।।१।।
यज्जायथास्तदहरस्य कामेंशोः पीयूषमपिबो गिरिष्ठाम् ।
तं ते माता परियोषा जनित्रीमहः पितुर्दम आसिञ्चदग्रे ।।२।।
उपस्थाय मातरमन्नमैट्टतिग्ममपश्यदभि सोममूधः ।
प्रयावयन्नचरद्गृत्सो अन्यान्महानि चक्रे पुरुध प्रतीकः ।।३।।

---

५ हे इन्द्र, तुम मरुद्गणयुक्त, जलवर्षी, प्रोत्साहक, प्रभूतशब्दविशिष्ट, दिव्य, शासनकर्त्ता, विश्वके अभिभविता, उग्र तथा बलप्रद हो। हम नूतन आश्रय (रक्षा)-लाभके लिये तुम्हें बुलाते हैं।

—

१ जलवर्षक, सद्यःउत्पन्न, कमनीय इन्द्र हविर्युक्त सोमरूप अन्नके संग्रहकर्त्ताकी रक्षा करें। प्रत्येक कार्यमें सोमपानकी इच्छा होनेपर तुम देवताओंके पहले गव्यमिश्रित साधु सोमका पान करो।

२ हे इन्द्र, तुम जिस दिन उत्पन्न हुए थे, उसी दिन पिपासित होनेपर तुमने पर्वतस्थ सोमलताके रसका पान किया था। तुम्हारे महान् पिता कश्यपके (सूक्तिका) गृहमें, तुम्हारी युवती माता अदितिने, स्तन्यदानके पहले, तुम्हारे मुँहमें, सोमरसका ही सिञ्चन किया था।

३ इन्द्रने मातासे प्रार्थनापुरःसर अन्नकी याचना की और उसके स्तनमें क्षीररूपसे स्थित दीप्त सोमको देखा। गृत्स (शत्रुहननार्थ देवताओं द्वारा अभिकांक्षित इन्द्र) शत्रुओंको अपने स्थानोंसे उच्चालित कर सर्वत्र विचरण करने लगे। बहुतों प्रकारसे अङ्गविक्षेप कर इन्द्रने वृत्रहननादि बहुविध महान् कार्य किये।

उग्रस्तुराषाड़भिभूत्यो जायथावशं तन्वं चक्र एषः ।
त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूयामुष्या सोममपिबच्चमूषु ॥४॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥५॥

* * *

४६ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

शंसा महामिन्द्रं यस्मिन्विश्वा आकृष्टयः सोमपाः काममव्यन् ।
यं सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टं घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः ॥१॥
यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम् ।
इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः ॥२॥

---

४ शत्रुओंके लिये भयङ्कर, शीघ्र अभिभवकर्ता और पराक्रमवान् इन्द्रने अपने शरीरको नाना प्रकारका बनाया । इन्द्रने अपनी सामर्थ्यसे त्वष्टा नामक असुरको पराजित कर चमस-स्थित सोमको चुराकर पिया ।

५ इन्द्र, तुम अन्न प्राप्त करो । युद्धमें उत्साहके द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत, ऐश्वर्यवाले, नेतृश्रेष्ठ, स्तुतिश्रवणकर्ता, उग्र, युद्धमें शत्रुविनाशी और धनविजेता हो । आश्रयप्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं ।

---

१ हे स्तोता, महान् इन्द्रकी स्तुति करो । इन्द्र द्वारा रक्षित होनेपर सब मनुष्य यज्ञमें सोमपान कर अभीष्ट प्राप्त करते हैं । देवताओं और द्यावापृथीवीने ब्रह्मा द्वारा आधिपत्यके लिये नियुक्त शोभन कर्मवाले तथा पापोंके हन्ता इन्द्रको उत्पन्न किया ।

२ संग्राममें अपने तेजसे राजमान, हरि नामक घोड़ोंसे युक्त रथपर स्थित, बल-युद्धके नेता और संग्राममें सेनाओंको दो भागोंमें विभक्त करनेवाले जिन इन्द्रको कोई भी अतिक्रान्त नहीं कर सकता, वही इन्द्र सेनाओंके उत्कृष्ट स्वामी हैं । वे युद्धमें शत्रु-बलशोषक मरुतोंके साथ तीव्रवेग होकर शत्रुओंके प्राणोंको नष्ट करते हैं ।

सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वाव्यानशी रोदसी मेहनावान् ।
भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः ॥३॥
धर्त्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान् ।
क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणेव वाजम् ॥४॥
शूनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥५॥

५० सूक्त

इन्द्र देवता। विश्वामित्र ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान् ।
ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नैरास्य हविस्तन्वः काममृध्याः ॥१॥

---

३ जैसे बलवान् अश्व शत्रुबलका सन्तरण करता है, वैसे ही बलवान् इन्द्र संग्राममें शत्रुओंका उत्क्रमण करते हैं। द्यावापृथीवीको व्याप्त कर इन्द्र धनवान् होते हैं। यज्ञमें पूषदेवकी तरह हवनीय इन्द्र स्तुति कर्त्ताओंके पिता हैं। आहूत होकर कमनीय इन्द्र अन्नदाता होते हैं।

४ इन्द्र द्युलोक तथा अन्तरिक्षके धारक हैं। वे ऊर्द्ध्वगामी रथकी तरह वर्तमान हैं। वह गमनशील मरुतोंके द्वारा सहायवान् हैं। वह रात्रिको आच्छादित करते हैं, सूर्यको उत्पन्न करते हैं और भजनीय कर्मफल-रूप अन्नका वैसे ही विभाग करते हैं, जैसे धनीका वाक्य धन-विभाग करता है।

५ इन्द्र, तुम अन्न प्राप्त करो। तुम युद्धमें उत्साहके द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत ऐश्वर्य-वाले, नरश्रेष्ठ, स्तुतिश्रवणकर्ता उग्र, युद्धमें शत्रुविनाशी और धनविजेता हो। आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं।

——

१ इन्द्र यज्ञमें आकर स्वाहाकृत इस सोमका पान करें। जिस इन्द्रका यह सोम है, वह विघ्न-कारियोंके हिंसक, याजकोंके अभिमतफल वर्षक और मरुद्वान् हैं। अतिशय व्यापक इन्द्र हम लोगोंके द्वारा दिये गये अन्नसे तृप्त हों। हव्य इन्द्रके शरीरकी अभिलाषा पूर्ण करे।

आ ते सपर्यू जवसे युनज्मि ययोरनुप्रदिवः श्रुष्टिमावः ।
इह त्वा धेयुर्हरयः सुशिप्र पिबात्वस्य सुषुतस्य चारोः ॥२॥
गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारमिन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः ।
मन्दानः सोमं पपिवां ऋजीषिन् समस्मभ्यं पुरुधो गा इषण्य ॥३॥
इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभि स्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकोसा अक्रन् ॥४॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धननाम् ॥५॥

* * *

२ हे इन्द्र, तुम्हें यज्ञमें आनेके लिये हम रथको परिचारक-अश्वयुक्त करते हैं। तुम पुरातन हो, घोड़ोंके वेगका अनुगमन करते हो। हे शोभन-हनु इन्द्र, घोड़े तुम्हें यज्ञमें धारण करें। आकर तुम इस कमनीय और भलीभाँति अभिषुत सोमका शीघ्र पान करो।

३ स्तोताओंके अभिमतफलवर्षक और स्तुति द्वारा प्रसन्न करने योग्य इन्द्रको स्तोत्र करनेवाले ऋत्विक् लोग श्रेष्ठत्व और चिरकालीन आयु प्राप्तिके लिये गव्यमिश्रित सोम द्वारा धारण करते हैं। हे सोमवान् इन्द्र, प्रमुदित होकर तुम सोमपान करो और स्तोताओंको अग्निहोत्रादि-कार्यसिद्धिके लिये बहुविध धेनु दो।

४ हमारी इस अभिलाषाको गौ, अश्व और दीप्तिवाले धनके द्वारा पूर्ण करो तथा उनके द्वारा हमें विख्यात करो। इन्द्र, स्वर्गादि-सुखाभिलाषी और कर्मकुशल कुशिकनन्दनोंने मन्त्र द्वारा तुम्हारा स्तोत्र किया है।

५ इन्द्र, तुम अन्न प्राप्त करो। तुम युद्धमें उत्साहके द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत-ऐश्वर्यवाले, नेतृ-श्रेष्ठ, स्तुतिश्रवणकर्ता, उग्र, युद्धमें शत्रुविनाशी और धनविजेता हो। आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं।

५१ सूक्त

इन्द्र देवता। विश्वामित्र ऋषि। जगती, गायत्री और त्रिष्टुप् छन्द।

चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्यमिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवे दिवे ॥१॥
शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं गिरो म इन्द्रमुपयन्ति विश्वतः।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं धामसाचमभिषाचं स्वर्विदम् ॥२॥
आकरे वसोर्जरिता पनस्यतेऽनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति।
विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि ॥३॥
नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरभि प्रवीरमर्चता सबाधः।
सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे ॥४॥

---

१ अभिमतफलप्रदानसे मनुष्योंके धारक, धनवान उक्थ द्वारा प्रशंसनीय, बल-धन आदि सम्पत्तिसे प्रतिक्षण वर्द्धमान, स्तोताओं द्वारा बहुशः आहूत, मरणधर्मरहित और शोभन स्तुतिवचनसे प्रतिदिन स्तूयमान इन्द्रकी प्रभूत स्तुति-वचनोंसे सब प्रकारसे स्तुति की जाय।

२ इन्द्र सौ यज्ञ करनेवाले, जलवाले, मरुतोंसे युक्त, सम्पूर्ण जगत्के नेता, अन्नके दाता, शत्रुपुरीके भेदक, युद्धार्थ शीघ्रगन्ता, मेघभेदन द्वारा जलके प्रेरक, धन-प्रदाता, शत्रुओंके अभिभवकर्त्ता तथा स्वर्गके प्रदाता हैं। इन्द्रके निकट हमारी स्तुतिवाणी सब प्रकारसे जाय!

३ इन्द्र शत्रुओंके बलसंहारक हैं, संग्राममें वे सबसे स्तुत होते हैं। वे निष्पाप स्तुतियोंको सम्मानित करते हैं। अग्निहोत्रादि करनेवाले यजमानके गृहमें सोमपान कर वे अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। विश्वामित्र, मरुतोंके साथ शत्रुओंके अभिभवकर्ता और शत्रुसंहारक इन्द्रकी स्तुति करो।

४ हे इन्द्र, तुम मनुष्योंके नेता तथा वीर हो। राक्षसों द्वारा पीड़ित ऋत्विक् स्तुतियों तथा उक्थों (शस्त्रों) द्वारा तुम्हें भलीभाँति अर्चित करते हैं। वृत्रहननादि कर्म करनेवाले इन्द्र बलके लिये गमनोद्यम करते हैं। एक मात्र पुरातन इन्द्र ही इस अन्नके ईश्वर हैं; अतः इन्द्रको नमस्कार है।

पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी विभर्त्ति ।
इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि ॥५॥
तुभ्यं ब्रह्माणि गिर इन्द्र तुभ्यं सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व ।
बोध्या पिरवसो नूतनस्य सखे वसो जरितृभ्यो वयोधाः ॥६॥
इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य ।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ॥७॥
सः वावशान इह पाहि सोमं मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः सुतं नः ।
जातं यत्त्वा परिदेवा अभूषणन् महे भराय पुरहूत विश्वे ॥८॥
अप्तूर्यें मरुत आपिरेषो मन्दन्निन्द्रमनुदातिवाराः ।
तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः सुतं सोमं दाशुषः स्वे सधस्थे ॥९॥

---

५ मनुष्योंमें इन्द्रका अनुशासन नाना प्रकारका है। शासक इन्द्रके लिये पृथिवी बहुत धन धारण करती है। इन्द्रकी आज्ञासे द्युलोक, औषधियाँ, जल, मनुष्य और वृक्ष उनके उपभोगयोग्य धनकी रक्षा करते हैं।

६ हे अश्ववान् इन्द्र, तुम्हारे लिये स्तोत्रों और शस्त्रोंको ऋत्विक् लोग यथार्थ ही धारण करते हैं, तुम उनका ग्रहण करो। हे सबके निवासयिता और सखिस्वरूप इन्द्र, तुम व्याप्त हो। यह अभिनव हवि तुम्हें दी गयी है, इसे ग्रहण करो। स्तोताओंको अन्न दो।

७ हे मरुतोंसे युक्त इन्द्र, शर्याति राजाके यज्ञमें जैसे तुमने अभिषुत सोमका पान किया था, वैसे ही इस यज्ञमें सोम पान करो। हे शूर, तुम्हारे निर्बाध निवासस्थानमें स्थिर और सुन्दर यज्ञ करनेवाले मेधावी यजमान हविके द्वारा तुम्हारी परिचर्या करते हैं।

८ हे इन्द्र, सोमकी कामना करते हुए तुम मित्र मरुतोंके साथ हमारे इस यज्ञमें अभिषुत सोमका पान करो। हे पुरुओं द्वारा आहूत इन्द्र, तुम्हारे जन्म-ग्रहण करते ही सब देवताओंने तुम्हें महासंग्रामके लिये भूषित किया था।

९ हे मरुतो, जलके प्रेरणासे इन्द्र तुम्हारे मित्र होते हैं। उन्हें बलदाता तुमने प्रसन्न किया था। वृत्रविनाशक इन्द्र तुम्हारे साथ हवि देनेवाले यजमानके गृहमें अभिषुत सोमका पान करें।

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबात्वस्य गिर्वणः ॥१०॥
यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नियच्छ तन्वम् । सत्वा ममत्तु सोम्यम् ॥११
प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः । प्रबाहू शूर राधसे ॥१२॥

५२ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप्, गायत्री और जगती छन्द ।

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥१॥
पुरोळाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च । तुभ्यं हव्यानि सिस्रते ॥२॥
पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योषणाम् ॥३॥
पुरोळाशं सनश्रुत प्रातःसावे जुषस्व नः । इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन् ॥४॥

१० हे धनके स्वामी स्तूयमान इन्द्र, उद्देशानुक्रमसे बल द्वारा इस अभिषुत सोमका शीघ्र पान करो ।

११ हे इन्द्र, तुम्हारे लिये जो अन्नमिश्रित सोम अभिषुत हुआ है, उसमें अपने शरीरको निमग्न करो । तुम सोमपानके योग्य हो । तुम्हें वह सोम प्रसन्न करे ।

१२ हे इन्द्र, वह सोम तुम्हारी दोनों कुक्षियोंको व्याप्त करे, स्तोत्रोंके साथ वह तुम्हारे शरीरको व्याप्त करे । हे शूर, धनके लिये वह तुम्हारी दोनों भुजाओंको भी व्याप्त करे ।

——

१ हे इन्द्र, भुने जौसे युक्त, दधिमिश्रित, सत्तूसे युक्त, सवनीय पुरोडाशसे युक्त और शस्त्रवाले हमारे सोमका, प्रातःसवनमें, तुम सेवन करो ।

२ हे इन्द्र, पक्व पुरोडाशका तुम सेवन करो । पुरोडाशके भक्षणके लिये उद्यम करो । हवनके योग्य यह पुरोडाश आदि हवि तुम्हारे लिये गमन करती है ।

३ हे इन्द्र, हमारे इस पुरोडाशका भक्षण करो । हमारी इस श्रुति लक्षणा वाणीका वैसे ही सेवन करो, जैसे स्त्रीकी भक्ति करनेवाला कामी पुरुष युवती स्त्रीका सेवन करता है ।

४ हे पुराणकालसे प्रसिद्ध इन्द्र, हमारे इस पुरोडाशका प्रातःसवनमें सेवन करो, जिससे तुम्हारा कर्म महान् हो ।

माध्यन्दिनस्य सवनस्य धानाः पुरोडाशमिन्द्र कृष्वेह चारुम् ।
प्र यत् स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमाण उप गीर्भिरीट्टे ॥५॥
तृतीये धानाः सवने पुरुष्टुत पुरोडाशमाहुतं मामहस्व नः ।
ऋभुमन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्तः उपशिक्षेम धीतिभिः ॥६॥
पूषण्वते ते चकृमा करम्भं हरिवते हर्यश्वाय धानाः ।
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ॥७॥
प्रति धाना भरत तूयमस्मै पुरोडाशं वीरतमाय नृणाम् ।
दिवेदिवे सदृशीरिन्द्र तुभ्यं वर्धन्तु त्वा सोमपेयाय धृष्णो ॥८॥

* * *

५ हे इन्द्र, माध्यन्दिन-सवन-सम्बन्धी भुने जौके कमनीय पुरोडाशका यहाँ आकर भक्षण करके संस्कृत करो। तुम्हारी परिचर्या करनेवाले, स्तुतिके लिये त्वरित गमन (व्यग्र), अतएव वृषकी तरह इधर-उधर दौड़नेवाले, स्तोता जब स्तुतिलक्षण वचनोंसे तुम्हारी स्तुति करते हैं, तभी तुम पुरोडाश आदिका भक्षण करते हो।

६ हे वहुजनस्तुत इन्द्र, तृतीय सवनमें हमारे भुने जौका और हुत पुरोडाशका भक्षण करो। हे कवि, तुम ऋभुवाले तथा धनयुक्त पुत्रवाले हो। हम लोग हवि देकर स्तुतियों द्वारा तुम्हारी परिचर्या करते हैं।

७ हे इन्द्र, तुम पूषा नामक देववाले हो। तुम्हारे लिये हम दही-मिला सत्तू बनाते हैं। तुम हरि नामक घोड़ेवाले हो। तुम्हारे खानेके लिये हम भुना जौ तैयार करते हैं। मरुतोंके साथ तुम पुरोडाशका भक्षण करो। हे शूर, तुम वृत्रहन्ता हो. विद्वान् हो, सोम पियो।

८ अध्वर्युओ, इन्द्रके लिये शीघ्र भुना जौ दो। यह नेतृतम हैं। इन्हें पुरोडाश प्रदान करो। हे शत्रुओंके अभिभवकर्ता इन्द्र, तुम्हें लक्ष्य कर प्रतिदिन की गयी, एक प्रकारकी, स्तुति तुम्हें सोम-पानके लिये उत्साहित करे।

५३ सूक्त

१४ ऋचाके इन्द्र और पर्वत देवता, १५-१६ के वाग्देवता, १७-२० के रथांग देवता हैं, अवशिष्टके इन्द्र देवता हैं। विश्वामित्र ऋषि। जगती आदि छन्द।

इन्द्रा पर्वता बृहता रथेन वामीरिष आवहतं सुवीराः ।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिडया मदन्ता ॥१॥
तिष्ठा सुकं मघवन्मा परा गाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि ।
पितुर्न पुत्रः सिचमारभेत इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः ॥२॥
शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहीन्द्राय वाहः कृणवाव जुष्टम् ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदाथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम् ॥३॥
जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिस्तदित्त्वा युक्ता हरयो वहन्तु ।
यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ॥४॥

१ हे इन्द्र और पर्वत, महान् रथपर मनोहर और सुन्दर पुत्रसे युक्त अन्न लाओ। हे द्योतमान, हमारे यज्ञमें तुम दोनों हव्यका भक्षण करो। हव्य द्वारा हृष्ट होकर हमारे स्तुतिलक्षण वचनोंसे वर्द्धित होओ।

२ हे मघवन्, इस यज्ञमें कुछ कालतक तुम सुखपूर्वक ठहरो। हमारे यज्ञसे चले मत जाओ। क्योंकि, सुन्दर अभिषुत सोम द्वारा हम शीघ्र ही तुम्हारा यजन करते हैं। हे शक्तिसम्पन्न इन्द्र, मधुर वचनों द्वारा पुत्र जैसे पिताके वस्त्रप्रान्तका ग्रहण करता है, वैसे ही हम सुमधुर स्तुतियों द्वारा तुम्हारे वस्त्रप्रान्तको गृहीत करते हैं।

३ हे अध्वर्युओ, हम दोनों स्तुति करेंगे। तुम हमें उत्तर दो। हम दोनों इन्द्रके उद्देश्यसे प्रीति-युक्त स्तोत्र करते हैं। तुम यजमानके कुशके ऊपर उपवेशन करो। इन्द्रके लिये, हम दोनोंके द्वारा किया गया उक्थ (शस्त्र) प्रशस्त हो।

४ हे मघवन्, स्त्री ही गृह होती है और स्त्री ही पुरुषोंका मिश्रण-स्थान है। रथमें युक्त होकर अश्व तुम्हें उस गृहमें ले जायँ। हम जब कभी तुम्हारे लिये सोमको अभिषुत करेंगे, तब हमारे द्वारा प्रहित, दूतस्वरूप अग्नि तुम्हारे निकट गमन करें।

परा याहि मघवन्ना च याहीन्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम् ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य ॥५॥
अपाः सोममस्तमिन्द्र प्रयाहि कल्याणीर्जाया सूरणं गृहे ते ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥६॥
इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्रतिरन्त आयुः ॥७॥
रूपं रूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परिस्वाम् ।
त्रिर्य्यद्दिवः परि मुहूर्त्तमागात् स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥८॥
महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतोस्तभ्नात् सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः ।
विश्वामित्रो यद्वहत् सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥९॥

---

५ हे मघवन्, तुम स्वकीय गृहाभिमुख होओ अथवा हमारे इस यज्ञमें आगमन करो। हे पोषक, दोनों स्थानोंमें तुम्हारा प्रयोजन है; क्योंकि वहाँ गृहमें स्त्री है और यहाँ सोम है। गृह-गमनके लिये तुम महान् रथके ऊपर अधिष्ठान करो अथवा हेषारव करनेवाले घोड़ोंको रथसे विमुक्त करो।

६ हे इन्द्र, यहीं ठहरकर सोम पान करो। सोम पीकर घर जाना। तुम्हारे रमणीय गृहमें मङ्गलकारिणी जाया और सुन्दर ध्वनि है। गृह-गमनके लिये तुम महान् रथके ऊपर अवस्थान करो अथवा अश्वको रथसे विमुक्त करो—इसी यज्ञमें ठहरो।

७ हे इन्द्र, यज्ञ करनेवाले ये भोज सुदास राजाके याजक हैं, नाना रूप हैं अर्थात् अङ्गिरा मेधातिथि आदि हैं। देवोंसे भी बलवान् रुद्रके पुत्र बलवान् मरुत् मुझ विश्वामित्रके लिये, अश्वमेधमें महनीय धन देते हुए, अन्नको भली भाँति वर्द्धित करें।

८ इन्द्र जिस रूपकी क़ामना करते हैं, उस रूपके हो जाते हैं। मायावी इन्द्र अपने शरीरको नानाविध बनाते हैं। वे ऋतवान् होकर भी अऋतुमें सोमपान करते हैं। वे स्वकीय स्तुति द्वारा आहूत होकर, स्वर्ग लोकसे मुहूर्त-मध्यमें, तीनों सवनोंमें गमन करते हैं।

९ अतिशय सामर्थ्यवान्, अतीन्द्रियार्थद्रष्टा, द्योतमान तेजोंके जनयिता तेजों द्वारा आकृष्ट और अध्वर्यु आदिके उपदेष्टा विश्वामित्रने जलवान् सिन्धुको निरुद्धवेग किया। पिजवनके पुत्र सुदास राजाको जब विश्वामित्रने यज्ञ कराया था, तब इन्द्रने कुशिकगोत्रोत्पन्न ऋषियोंके साथ प्रिय व्यवहार किया था।

हंसा इव कृणुथ श्लोकमद्रिभिर्मदन्तो गीर्भिरध्वरे सुते सचा ।
देवेभिर्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो विपिवध्वं कुशिकाः सोम्यं मधु ॥१०॥
उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्वं राये प्रमुञ्चता सुदासः ।
राजा वृत्रं जङ्घनत् प्रागपागुदगथा यजाते वर आपृथिव्याः ॥११॥
य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम् ।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ॥१२॥
विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
करदिन्नः सुराधसः ॥१३॥
किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम् ।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्रन्धयानः ॥१४॥

---

१० हे मेधावियो, हे अतीन्द्रियार्थद्रष्टाओ, हे नेतृगणके उपदेशको, हे कुशिक-गोत्रोत्पन्नो, हे पुत्रो, यज्ञमें पत्थरों द्वारा सोमके अभिषुत होनेपर तुम लोग स्तुतियों द्वारा देवताओंको प्रसन्न करते हुए शब्द करो अर्थात् श्लोक (मन्त्र) का भली भाँति उच्चारण करो, जैसे हंस शब्दोंका भली भाँति उच्चारण करते हैं। देवगणके साथ तुम लोग मधुर सोम रसका पान करो।

११ हे कुशिक-गोत्रोत्पन्नो, हे पुत्रो, तुम लोग अश्वके समीप जाओ, अश्वको उत्तेजित करो। धनके लिये सुदासके अश्वको छोड़ दो। राजा इन्द्रने विघ्नकारक वृत्रका पूर्व, पश्चिम और उत्तर देशमें वध किया है। अतएव सुदास राजा पृथ्वीके उत्तम स्थानमें यज्ञ करें।

१२ हे कुशिक पुत्रो, हम (विश्वामित्र) ने द्यावापृथिवी द्वारा इन्द्रका स्तव किया है। स्तोता विश्वामित्रका यह इन्द्र-विषयक स्तोत्र भरतकुलके मनुष्यकी रक्षा करे।

१३ विश्वामित्र-वंशीयोंने वज्रधर इन्द्रके लिये स्तोत्र किया है। इन्द्र हम लोगोंको शोभन धनसे युक्त करें।

१४ हे इन्द्र, अनार्योंके निवासयोग्य देशोंमें कीकटसमूहके मध्यमें गौएँ तुम्हारे लिये क्या करेंगी? वे सोमके साथ मिश्रित होनेके योग्य दुग्ध दान नहीं करती हैं। दुग्ध प्रदान द्वारा वे पात्रको भी दीप्त नहीं करती हैं। हे धनवान् इन्द्र, उन गौओंको तुम हमारे निकट लाओ और प्रमगन्द (अत्यन्त कुसीदिकुल) के धनका भी आनयन करो। हे मघवन्, नीच वंशवालोंका धन हमें दो।

ससर्परीरमतिं बाधमाना बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता ।
आ सूर्य्यस्य दुहिता ततान श्रवो देवेष्वमृतमजुर्यम् ॥१५॥
ससर्परीरभरत्तूयमेभ्योधिश्रवः पाञ्चजन्यासुकृष्टिषु ।
सापक्ष्या नव्यमायुर्दधानायां मे पलस्तिजमदग्नयो ददुः ॥१६॥
स्थिरौ गावौ भवतां वीडुरक्षो मेषा वि बर्हि मा युगं विशारि ।
इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोरारिष्टनेमे अभि नः सचस्व ॥१७॥
बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानडुत्सु नः ।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥१८॥
अभिव्ययस्व खदिरस्य सारमोजे धेहि स्पन्दने शिंशपायाम् ।
अक्ष वीलो वीलित वीलयस्व मा यामादस्मादव जीहिपो नः ॥१९॥

---

१५ अग्निको प्रज्वलित करनेवाले ऋषियों द्वारा सूर्यसे लाकर हम लोगोंको दी गयी, अज्ञानको बाधित करनेवाली, रूप तथा शब्दतया सर्वत्र सर्पणशीला वाक् (वचन) आकाशमें प्रभूत शब्द करती है। सूर्यकी दुहिता वाग्देवता इन्द्र आदि देवताओंके निकट पत्थररहित अमृत रूप अन्नको विस्तृत करती है।

१६ गद्य-पद्य रूपसे सर्वत्र सर्पणशीला वाग्देवता चारो वर्ण तथा निषादमें जो अन्न विद्यमान है, उससे अधिक अन्न हमें शीघ्र दे। दीर्घ आयुवाले जमदग्नि आदि मुनियोंने जिस वचनको सूर्यसे लाकर हमें दिया है, पत्तोंके निर्वाहक सूर्यकी दुहिता, वह वाग्देवता हमारे लिये नूतन अन्न दान करे।

१७ सुदासके यज्ञमें अवभृथ करनेके उपरान्त यज्ञशालासे जानेकी इच्छा करते हुए विश्वामित्र रथाङ्गकी स्तुति करते हैं—गोद्वय स्थिर होओ, अक्ष दृढ़ होओ। दण्ड जिससे विनष्ट नहीं हो, युग जिससे विनष्ट नहीं हो, युग जिससे विशीर्ण नहीं हो। पतनशील कीलकद्वयके विशीर्ण होनेके पहले ही इन्द्र धारण करें। हे अहिंसित नेमिविशिष्ट रथ, तुम हम लोगोंके अभिमुख आगमन करो।

१८ हे इन्द्र, तुम हम लोगोंके शरीरमें बलदान करो, हमारे वृषभोंको बलदान करो और हमारे पुत्र-पौत्रोंको चिरजीवी होनेके लिये बलदान करो; क्योंकि तुम बलप्रद हो।

१९ हे इन्द्र, रथके खदिर-काष्ठके सारको दृढ़ करो, रथके शीशमके काठको दृढ़ करो। हे हम लोगों के द्वारा दृढ़ीकृत अक्ष, तुम दृढ़ होओ। हमारे गमनशील इस रथसे हमें फेंक नहीं देना।

अयमस्मान् वनस्पतिर्म्मा च हा मा च रीरिषत् ।
स्वस्त्या गृहेभ्य आवसा आ विमोचनात् ॥२०॥
इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्म्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमुद्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥२१॥
परशुं चिद्वितपति शिम्बलं चिद्विवृश्चति ।
उखा चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥२२॥
न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयन्ति पशुमन्यमानाः ।
नावाजिनं वाजिना हासयन्ति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति ॥२३॥
इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम् ।
हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परिणयन्त्याजौ ॥२४॥

---

२० वनस्पतियों द्वारा निर्मित यह रथ हम लोगोंको मत त्यक्त करे, मत विनष्ट करे। जबतक हम लोग गृह न प्राप्त करें, जबतक रथ चलता रहे और जबतक कि, अश्व विमुक्त न हो जायँ, तबतक हम लोगोंका मङ्गल हो।

२१ हे शूर, हे धनवान् इन्द्र, हम लोग शत्रुओंके हिंसक हैं। हम लोगोंको तुम प्रभूत और श्रेष्ठ आश्रय दान द्वारा सन्तुष्ट करो। जो हम लोगोंसे द्वेष करता है, वह निकृष्ट होकर पतित हो। हम लोग जिससे द्वेष करते हैं, उसे प्राणवायु परित्याग करे।

२२ हे इन्द्र, जैसे कुठारको पाकर वृक्ष प्रतप्त होता है, वैसे ही हमारे शत्रु प्रतप्त हों। शाल्मली पुष्प जैसे अनायास ही वृन्तच्युत हो जाता है, वैसे ही हमारे शत्रुओंके अवयव विच्छिन्न हों। प्रहत, जलस्रावी स्थाली (हाँड़ी) पाककालमें जैसे फेनोद्गीर्ण करती है, वैसे ही मेरी मन्त्रसामर्थ्यसे प्रहत होकर शत्रु मुख द्वारा फेनोद्गीर्ण करें।

२३ वसिष्ठके भृत्योंको विश्वामित्र कहते हैं—हे पुरुषो, अवसान करनेवाले विश्वामित्रकी मन्त्र-सामर्थ्यको तुम लोग नहीं जानते हो। तपस्याका क्षय न हो जाय, इसी लोभसे चुपचाप बैठे हुएको पशु मानकर ले जा रहे हो। वसिष्ठ मेरे साथ स्पर्द्धा करनेके योग्य नहीं हैं; क्योंकि प्राज्ञ व्यक्ति मूर्ख व्यक्तिको उपहासास्पद नहीं करते हैं; अश्वके सम्मुख गर्दभ नहीं लाया जाता है।

२४ हे इन्द्र, भरतवंशीयगण (वसिष्ठके साथ) अपगमन (पार्थक्य) जानते हैं, गमन (एकता) नहीं जानते हैं अर्थात् शिष्टोंके साथ उनकी संगति नहीं है। संग्राममें सहज शत्रुकी तरह उन लोगोंके प्रति वे अश्व प्रेरण करते हैं और धनुर्धारण करते हैं।

५४ सूक्त

५ अनुवाक । विश्वदेवगण देवता । विश्वामित्रके पुत्र प्रजापति अथवा वाक्के पुत्र प्रजापति ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

इमं महे विदथ्याय शूषं शश्वत्कृत्व ईड्याय प्रजभ्रः ।
शृणोतु नो दम्येभिरनीकैः शृणोत्वग्निर्दिव्यैरजस्रः ॥१॥
महिमहे दिवे अर्चापृथिव्यै कामो म इच्छश्चरति प्रजानन् ।
ययोर्हस्तोमे विदथेषु देवाः सपर्यवोमादयन्ते सचायोः ॥२॥
युवोर्ऋतं रोदसी सत्यमस्तुमहेषुणः सुविताय प्रभूतम् ।
इदं दिवे नमो अग्ने पृथिव्यै सपर्यामि प्रयसायामि रत्नम् ॥३॥
उतो हि वां पूर्व्या आविविद्र ऋतावरी रोदसी सत्यवाचः ।
नरश्चिद्वां समिथे शूरसातौ ववन्दिरे पृथिवि वेविदानाः ॥४॥

---

१ महान् यज्ञमें मन्थन द्वारा निष्पाद्यमान और स्तुति-योग्य अग्निके उद्देश्यसे यह सुखकर स्तोत्र वारम्वार उच्चारित होता है। अग्नि गृहमें विद्यमान हो कर तथा तेजोविशिष्ट होकर हमारे इस स्तोत्र को सुनें। दिव्य तेजसे निरन्तर युक्त होकर अग्नि हमारे इस स्तोत्रको सुनें।

२ हे स्तोता, महती द्यावापृथिवीकी सामर्थ्यको जानते हुए तुम उनकी अर्चना करो। मेरा मनोरथ सम्पूर्ण भोगका इच्छुक है, सर्वत्र वर्तमान है। पूजाभिलाषी देवगण सम्पूर्ण मनुष्योंके यज्ञमें द्यावापृथिवीके स्तोत्र करनेमें मत्त होते हैं।

३ हे द्यावापृथिवी, तुम्हारा ऋत (अनृशंसता) यथार्थ हो। तुम हमारे महान् यज्ञकी समाप्तिके लिये समर्थ होओ। हे अग्नि, द्युलोक और पृथिवीको नमस्कार है। हविर्लक्षण अन्नसे मैं परिचर्या करता हूँ, उत्तम धनकी याचना करता हूँ!

४ हे सत्ययुक्त द्यावापृथिवी, पुरातन सत्यवादी महर्षियोंने तुमसे हितकर अर्थ (अभिलषित) प्राप्त किया था। हे पृथिवी, युद्धमें जानेवाले मनुष्यगण तुम्हारे माहात्म्यको जानकर तुम्हारी वन्दना करते हैं।

को अद्धा वेद क इह प्रवोचद्देवाँ अच्छा पथ्या कासमेति ।
ददृश्र एषामवमासदां सिपरेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥५॥
कविर्नृचक्षा अभिषीमचष्ट ऋतस्य योना विघृते मदन्ती ।
नाना चक्राते सदनं यथा वेः समानेन क्रतुना संविदाने ॥६॥
समान्या वियुते दूरे अन्ते ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके ।
उत स्वसारायुवती भवन्ती आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम ॥७॥
विश्वेदेते जनिमा संविविक्तो महो देवान्बिभ्रती न व्यथेते ।
एजद्ध्रुवं पत्यते विश्वमेकं चरत् पतत्रि विषुणं विजातम् ॥८॥
सना पुराण मध्येम्यारान्महः पितुर्ज्जनितुर्जामितन्नः ।
देवासो यत्र पनितार एवैरुरौ पथिव्युते तस्थुरन्तः ॥९॥

---

५ उस सत्यभूत अर्थको कौन जानता है ? कौन उस जाने हुए अर्थको बोलता है। कौन समीचीन पथ देवताओंके निकट ले जाता है। देवगणके अधःस्थान अर्थात् द्युलोकस्थित नक्षत्रादि देखे जाते हैं। वे उत्कृष्ट और दुर्ज्ञेय व्रतमें अवस्थिति करते हैं।

६ कवि, मनुष्योंके द्रष्टा सूर्य इस द्यावापृथिवीको सर्वत्र देखते हैं। जलके उत्पत्ति-स्थान अन्तरिक्षमें हर्षकारिणी, रसवती और समान कर्मों द्वारा परस्पर ऐकाग्रभावापन्ना द्यावापृथिवी पक्षियोंके घोसलोंकी तरह पृथक्-पृथक् नाना स्थानको अधिकृत करती हैं।

७ परस्पर प्रीतियुक्त कर्म द्वारा ऐकमत्य प्राप्त, वियुक्त होकर वर्तमान, अविनाशिनी द्यावापृथिवी जागरणशील होकर अनश्वर अन्तरिक्षमें नित्य तरुण भगिनीद्वयकी तरह एक आत्मासे जायमान होकर ठहरी हैं। वे दोनों आपसमें द्वन्द्व (मिथुन) नाम अभिहित करती हैं।

८ यह द्यावापृथिवी सम्पूर्ण भौतिक वस्तुको अवकाश-दान द्वारा विभक्त करती है। महान् सूर्य, इन्द्र आदि अथवा सरित्, समुद्र, पर्वत आदिको धारण करके भी व्यथित नहीं होती है। जङ्गमात्मक और स्थावरात्मक जगत् केवल एक पृथिवीको ही प्राप्त करता है। चञ्चल पशु और पक्षिगण नाना रूप होकर द्यावापृथिवीके मध्यमें ही अवस्थित होते हैं।

९ हे द्यौ, तुम महान् हो, तुम सबका जनन करती हो और पालन करती हो। तुम्हारी सनातनता, पूर्वक्रमागता और हम लोगोंका जननत्व सब एकसे ही उत्पन्न हुआ है। द्यौ भगिनी होती है। हम अभी उसका (भगिनीत्वका) स्मरण करते हैं। द्युलोकमें, विस्तीर्ण और विविक्त आकाशमें तुम्हारी स्तुति करनेवाले देवता अपने वाहनोंके सहित स्थित हैं। वहाँ ठहरकर वे स्तोत्र सुनते हैं।

इमं स्तोमं रोदसी प्रब्रवीम्यृदूदराः शृणवन्नग्निजिह्वाः ।
मित्रः सम्राजो वरुणो युवान आदित्यासः कवयः पप्रथानाः ॥१०॥
हिरण्यपाणिः सविता सुजिह्वस्त्रिरादिवो विदथे पत्यमानः ।
देवेषु च सवितः श्लोकमश्रेरादस्मभ्यमासुव सर्व्वतातिम् ॥११॥
सुकृत् सुपाणिः स्ववाँऋतावा देवस्त्वष्टावसेतानि नो धात् ।
पूषण्वन्त ऋभवो मादयध्वमूर्ध्वग्रावाणो अध्वरमतष्ट ॥१२॥
विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः ।
सरस्वती शृणवन् यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः ॥१३॥
विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि ग्मन् ।
उरुक्रमः ककुहो यस्य पूर्वीर्न मर्धन्ति युवतयो जनित्रीः ॥१४॥

---

१० हे द्यावापृथिवी, तुम्हारे इस स्तोत्रका हम अच्छी तरहसे उच्चारण करते हैं। सोमको उदरमें धारण करनेवाले, अग्निरूपी जिह्वावाले, भली भाँति दीप्यमान, नित्य तरुण, कवि, अपने-अपने कर्मको प्रकट करनेवाले मित्र आदि देवता इस स्तोत्रको सुनें।

११ दानार्थ हिरण्यको हाथमें रखनेवाले, शोभन वचनवाले सविता यज्ञके तीनों सवनोंमें आकाशसे आते हैं। हे सविता, तुम स्तोताओंके स्तोत्रको प्राप्त करो। इसके अनन्तर, सम्पूर्ण, अभिलषित फलको हम लोगोंके लिये प्रेरित करो।

१२ सुन्दर जगत्के कर्ता, कल्याणपाणि, धनवान्, सत्यसङ्कल्प त्वष्टदेव रक्षाके लिये हम लोगोंको सम्पूर्ण अपेक्षित फल प्रदान करें। हे ऋभुओ, पूषाके सहित तुम हम लोगोंको धन प्रदान करके हृष्ट करो। क्योंकि, सोमाभिषवके लिये प्रस्तरको उत्तोलन करनेवाले ऋत्विकोंने यह यज्ञ किया है।

१३ द्योतमान रथवाले, आयुधवान् दीप्तिमान, शत्रुओंके विनाशक, यज्ञोत्पन्न, सतत गमनशील, यज्ञार्ह मरुद्गण और वाग्देवता हमारे इस स्तोत्रको सुनें। हे त्वरान्वित मरुद्गण, हमें पुत्रविशिष्ट धन दान करो।

१४ धनका हेतुभूत यह स्तोत्र और अर्चनीय शस्त्र, इस विस्तृत यज्ञमें, बहुकर्मा विष्णुके निकट गमन करें। सबकी जनयित्री और परस्पर असङ्कीर्ण दिशाएँ, जिस विष्णुको हिंसित नहीं करती हैं, वह विष्णु उरुविक्रमी हैं। त्रिविक्रमावतारमें एक ही पैरसे उन्होंने सम्पूर्ण जगत्को आक्रान्त किया था।

इन्द्रो विश्वैर्वीर्यैः पत्यमान उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
पुरन्दरो वृत्रहा धृष्णुषेणः संगृभ्य न आभरा भूरि पश्वः ॥१५॥
नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा सजात्यमश्विनोश्चारु नाम ।
युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणां दात्रं रक्षेथे अकवैरदब्धा ॥१६॥
महत्तद्वः कवयश्चारु नाम यद्ध देवा भवथ विश्व इन्द्रे ।
सख ऋभुभिः पुरुहूत प्रियेभिरिमां धियं सातये तक्षता नः ॥१७॥
अर्यमाणो अदितिर्यज्ञियासो दब्धानि वरुणस्य व्रतानि ।
युयोत नो अनपत्यानि गन्तोः प्रजावान्नः पशुमाँ अस्तु गातुः ॥१८॥
देवानां दूतः पुरुध प्रसूतोनागान्नो वोचतु सर्वताता ।
शृणोतु नः पृथिवी द्यौरुतापः सूर्यो नक्षत्रैरुर्वन्तरिक्षम् ॥१९॥

---

१५ सकल-सामर्थ्य-सम्पन्न इन्द्रने द्यावा और पृथिवी दोनोंको महिमा द्वारा पूर्ण किया है। शत्रुपुरीको विदीर्ण करनेवाले, वृत्रको मारनेवाले और शत्रुओंको पराजित करनेवाली सेनावाले इन्द्र पशुओंका संग्रह करके हमें प्रचुर परिमाणमें पशु दान करें ।

१६ हे अश्विनीकुमारो, तुम हम बन्धुओंकी अभिलाषाकी जिज्ञासा करनेवाले हो, हमारे पालक होओ। तुम दोनोंका मिलन कमनीय है। हे अश्विन्, हमारे लिये तुम उत्तम धनके देनेवाले होओ। तुम्हारा तिरस्कार कोई भी नहीं करता है । तुम्हें हम हवि देते हैं । तुम शोभन कर्म द्वारा हमारा पालन करो।

१७ हे कवि देवगण, तुम्हारा वह प्रभूत कर्म मनोहर है, जिससे तुम लोग इन्द्रलोकमें देवत्व प्राप्त करते हो। हे बहुजनाहूत इन्द्र, तुम प्रियतम ऋभुओंके साथ सख्यभावापन्न हो । तुम हमारी इस स्तुतिको, धनादिलाभके लिये, स्वीकृत करो।

१८ सर्वदा गमनशील सूर्य देवमाता अदिति, यज्ञार्ह देवगण और अहिंसित कर्म करनेवाले वरुण हम लोगोंकी रक्षा करें। वे हमारे मार्गसे पुत्रोंके अहित कर्मको अथवा पतनकारक कर्मको दूर करें। हमारे गृहको वे पशु आदिसे तथा अपत्यसे युक्त करें।

१९ अग्निहोत्रके लिये बहु देशोंमें प्रसूत या विहित और देवताओंके दूत अग्नि हैं। कर्म-साधनकी विगुणतासे हम सापराध हैं। हमें अग्नि सर्वत्र निरपराध कहें । द्यावापृथिवी, जलसमूह, सूर्य और नक्षत्रों द्वारा पूर्ण विशाल अन्तरिक्ष हमारी स्तुति सुनें ।

शृण्वन्तु नो वृषणः पर्वतासो ध्रुवक्षेमास इडया मदन्तः ।
आदित्यैर्नो अदितिः शृणोतु यच्छन्तु नो मरुतः शर्म भद्रम् ॥ २० ॥
सदासुगः पितुमाँ अस्तु पन्था मध्वा देवा ओषधीः संपिपृक्त ।
भगो मे अग्ने सख्ये न मृध्या उद्रायो अश्यां सदनं पुरुक्षोः ॥२१॥
स्वदस्व हव्या समिषो दिदीह्यस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि ।
विश्वाँ अग्ने पृत्सु ताञ्जेषि शत्रूनहा विश्वा सुमना दीदिही नः ॥२२॥

◆

२० अभिमत-फल-सेचक मरुद्गण, अर्थियोंकी कामनाको पूर्ण करनेवाले निश्चल पर्वत हविरन्नसे प्रसन्न होकर हमारी स्तुति सुनें । अदिति अपने पुत्रोंके साथ हमारी स्तुति सुनें । मरुद्गण हमें कल्याण-कर सुख दें ।

२१ हे अग्नि, हमारा मार्ग सदा सुखसे जाने योग्य तथा अन्नवान् हो । हे देवो, मधुर जलसे ओषधियोंको संसिक्त करो । हे अग्नि, तुमसे मैत्री प्राप्त करनेपर हमारा धन विनष्ट नहीं हो । हम जिससे धनके और प्रभूत अन्नके स्थानको प्राप्त करें ।

२२ हे अग्नि, हवन-योग्य हविका आस्वादन करो, हमारे अन्नको भली भाँति प्रकाशित करो और उन अन्नोंको हमारे अभिमुख करो । तुम संग्राममें बाधा डालनेवाले सब शत्रुओंको जीतो और प्रफुल्लित मनवाले होकर तुम हमारे सम्पूर्ण दिवसोंको प्रकाशित करो ।

५५ सूक्त

१ के वैश्वदेव, २-९ तकके अग्नि, १० के अहोरात्र, ११-१४ तकके द्यावापृथिवी, १५ के द्युनिशा, १६ के दिक्, १७-२२ तकके इन्द्र देवता हैं । प्रजापति ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

उषसः पूर्वा अधयद्व्यूषुर्महद्विजज्ञे अक्षरं पदे गोः ।
व्रता देवानामुप नु प्रभूषन् महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१॥
मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः ।
पुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २ ॥
विमे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीद्ये पूर्व्याणि ।
समिद्धे अग्नावृतमिद्वदेम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥३॥
समनो राजा विभृतः पुरुत्रा शये शयासु प्रयुतो वनानु ।
अन्या वत्सं भरति क्षेति माता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥४॥

---

१ उदयकालसे प्राचीन उषा जब दग्ध होती है, तब अविनाशी आदित्य समुद्रसे या आकाशमें उदित होते हैं। सूर्यके उदित होनेपर अग्निहोत्रादिके लिये तत्पर यजमान कर्म करते हैं और शीघ्र ही देवताओंके समीप उपस्थित होते हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है ।

२ हे अग्नि, इस समय देवता हमें अच्छी तरहसे मत हिंसित करें। देव-पदवीको प्राप्त पुरातन पुरुष (पितर) हमें मत हिंसित करें। यज्ञके प्रज्ञापक, पुरातन द्यावापृथिवीके मध्यमें उदित सूर्य हमें मत हिंसित करें। देवताओंका महान् बल एक ही है ।

३ हे अग्नि, हमारी बहुविध अभिलाषाएँ विविध दिशामें गमन करती हैं। अग्निष्टोमादि यज्ञको लक्ष्य कर हम पुरातन स्तोत्रको दीप्त करते हैं। यज्ञार्थ अग्निके दीप्त होनेपर हम सत्य बोलेंगे। देवताओंका महान् बल एक ही है ।

४ सर्वसाधारणके राजा दीप्यमान अग्नि (या सोम) बहुत देशोंमें अग्निहोत्रके लिये स्थापित होते हैं। वे वेदीके ऊपर शयन करते हैं। अरणि-काष्ठ या चमसके ऊपर विभक्त होते हैं। द्यावापृथिवी इनके माता-पिता हैं, उनमें अन्य अर्थात् द्युलोक इन्हें वृष्टि आदिके द्वारा पुष्ट करते हैं और अन्य माता वसुधा इन्हें केवल निवास देती हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है ।

आक्षित् पूर्वास्वपरा अनूरुत्सद्योजातासु तरुणीष्वन्तः ।
अन्तर्वतीः सुव्रते अप्रवीता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥५॥
शयुः परस्तादध नु द्विमाता बन्धनश्चरति वत्स एकः ।
मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥६॥
द्विमाता होता विदथेषु सम्राडन्वग्रं चरति बुध्नः ।
प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥७॥
शूरस्येव युध्यतो अन्तमस्य प्रतीचीनं ददृशे विश्वमायत् ।
अन्तर्मतिश्चरति निष्षिधं गोर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥८॥
नि वेवेति पलितो दूत आस्वन्तर्महाँश्चरति रोचनेन ।
वपूंषि बिभ्रदभि नो वि चष्टे महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥९॥

---

५ जीर्ण ओषधियोंमें वर्तमान तथा नव्य ओषधियोंमें गुणानुरूपसे स्थित अग्नि या सूर्य सद्योजात, पल्लवित ओषधियोंके आभ्यन्तरमें वर्तमान हैं । ओषधियाँ विना किसी पुरुषके रेतः-संयोगसे अग्निके द्वारा गर्भवती होकर फल-पुष्प आदिको उत्पन्न करती हैं । यह देवोंका ऐश्वर्य है । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

६ दोनों लोकोंके निर्माता अथवा द्यावापृथिवीरूप माता-पितावाले सूर्य पश्चिम दिशामें, अस्त-वेलामें, शयन करते हैं; किन्तु उदय-वेलामें वे ही द्यावापृथिवीके पुत्र सूर्य अप्रतिबद्ध-गति होकर आकाशमें अकेला चलते हैं । यह सकल कर्म मित्र और वरुणका है । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

७ दोनों लोकोंके निर्माता, यज्ञके होता तथा यज्ञमें भली भाँति राजमान अग्नि आकाशमें सूर्य रूपसे विचरण करते हैं । वे सब कर्मोंके मूलभूत होकर भूमिमें निवास करते हैं । रमणीय वचनवाले स्तोता, अच्छी तरहसे, रमणीय स्तोत्रोंको करते हैं । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

८ युद्ध करनेवाले शूर व्यक्तिके अभिमुख आनेवाली शत्रु-सेना जैसे पराङ्मुख दीख पड़ती है, वैसे ही समीपमें वर्तमान अग्निके अभिमुख आनेवाला भूतजात पराङ्मुख होता दीख पड़ता है । सबके द्वारा ज्ञायमान अग्नि जलको हिंसित करनेवाली दीप्तिको मध्यमें धारण करते हैं । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

९ पालक और देवोंके दूत अग्नि ओषधियोंके मध्यमें अत्यन्त व्याप्त होकर वर्तमान हैं । वे सूर्यके साथ द्यावापृथिवीके मध्यमें चलते हैं । नानविध रूपोंको धारण करते हुए वे हम लोगोंको विशेष अनुग्रह-दृष्टिसे देखें । देवताओंका महान् बल एक ही है

विष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः ।
अग्निष्टा विश्वा भुवनानि वेद महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१०॥
नाना चक्राते यम्या वपूंषि तयोरन्यद्रोचते कृष्णमन्यत् ।
श्यावी च यदरुषी च स्वसारौ महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥११॥
माता च यत्र दुहिता च धेनू सवर्दुघे धापयेते समीची ।
ऋतस्य ते सदसीड़े अन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१२॥
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा निदधे धेनुरुधः ।
ऋतस्य सा पयसा पिन्वतेला महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१३॥
पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा ।
ऋतस्य सद्म विचरामि विद्वान् महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१४॥

---

१० व्याप्त, सबके रक्षक, प्रियतम और क्षयरहित तेजको धारण करनेवाले अग्नि परम स्थानकी रक्षा करते हैं अथवा लोकधारक जलको धारण करते हुए जलके स्थान अन्तरिक्षकी रक्षा करते हैं। अग्नि उन सम्पूर्ण भूतजातको जानते हैं। देवताओंका महान् वल एक ही है।

११ मिथुनभूत अहोरात्र (शुक्ल-कृष्ण आदि) नानाविध रूप धारण करते हैं। कृष्णवर्णा तथा शुक्लवर्णा जो दोनों भगिनियाँ हैं, उनके मध्यमें एक अर्जुनवर्णा या दीप्तिशालिनी है और दूसरी कृष्णवर्णा है। देवताओंका महान् वल एक ही है।

१२ माता पृथिवी और दुहिता द्युलोकस्वरूप दोनों क्षीरदायिनी धेनु जिस अन्तरिक्षमें परस्पर सङ्गत होकर अपने रसको अन्योन्य पिलाती हैं, जलके स्थानभूत उस अन्तरिक्षके मध्यमें स्थित द्यावा-पृथिवीकी हम स्तुति करते हैं। देवताओंका महान् वल एक ही है।

१३ द्युलोक पृथिवीके पुत्र अग्निको उदकधारारूप जिह्वासे चाटते हैं और मेघ द्वारा ध्वनि करते हैं। द्युरूपा धेनु पृथिवीको जलवर्जित करके अपने ऊधः-प्रदेशको पुष्ट करती है। वह जलवर्जित पृथिवी सत्यभूत आदित्यके जलसे, वर्षाकालमें, सिक्त होती हैं। देवताओंका महान् वल एक ही है।

१४ पृथ्वी नानाविध शरीरको आच्छादित करती हैं। उन्नत होकर वह तीनों लोकोंको व्याप्त करनेवाले अथवा डेढ़ वर्षकी अवस्थावाले सूर्यको चाटती हुई अवस्थान करती हैं। सत्यभूत आदित्यके स्थानको जानते हुए हम उनकी परिचर्या करते हैं। देवताओंका महान् वल एक ही है।

पदे इव निहिते दस्मे अन्तस्तयोरन्यद्गुह्यमाविरन्यत् ।
सध्रीचीना पथ्या सा विषूची महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१५॥
आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः ।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१६॥
यदन्यासु वृषभो रोरवीति सो अन्यस्मिन् यूथे निदधाति रेतः ।
स हि क्षपावान्त्सभगः स राजा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१७॥
वीरस्य नु स्वश्व्यं जनासः प्र नु वोचाम विदुरस्य देवाः ।
षोह्ळायुक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१८॥
देवस्त्वष्टासविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान ।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१९॥

---

१५ पदद्वयकी तरह दर्शनीय अहोरात्र द्यावापृथिवीके मध्यमें स्थापित हैं। उनके मध्यमें एक गूढ़ और अन्य आविर्भूत हैं। अहोरात्रका परस्पर मिलन-पथ (काल) पुण्यकारी और अपुण्यकारी दोनोंको ही प्राप्त होता है। देवताओंका महान् बल एक ही है।

१६ वृष्टि द्वारा सबकी प्रीणयित्री, शिशुरहिता, आकाशमें वर्तमाना, अक्षीणरसा, क्षीरप्रसविणी युवती और सर्वदा नूतनस्वरूपा दिशाएँ (या मेघ) कम्पित हों। देवताओंका महान् बल एक ही है।

१७ जलके वर्षक पर्जन्यरूप इन्द्र अन्य दिशाओंमें मेघ द्वारा प्रभूत शब्द करते हैं। वे अन्य दिशा-समूहमें वारिवर्षण करते हैं। वे जल या शत्रुके क्षेपनवान् हैं सबके द्वारा भजनीय हैं और सबके राज हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है।

१८ हे जनो, शूर इन्द्रके शोभन अश्वोंका हम शीघ्र ही प्रभूत वर्णन करते हैं। देवता भी इन्द्रको अश्वोंको जानते हैं। दो-दो मासोंको मिलानेपर छ ऋतुएँ होती हैं; फिर हेमन्त और शिशिरको मिला देनेपर पाँच ही ऋतुएँ होती हैं। ये ही इन्द्रके अश्व हैं। ये कालात्मक इन्द्रका वहन करती हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है।

१९ अन्तर्यामी होनेके कारण सबके प्रेरक, नानाविध रूपविशिष्ट त्वष्टृदेव बहुत प्रकारसे प्रजाओंको उत्पन्न करते हैं और उनका पोषण करते हैं। ये सम्पूर्ण भुवन त्वष्टाके हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है।

मही समैरच्चम्वा समीची उभे ते अस्य वसुना न्यृष्टे ।
शृण्वे वीरो विन्दमानो वसूनि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२०॥
इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरः सदः शर्मसदो न वीरा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२१॥
निष्षिध्वरीस्त ओषधीरुतापो रयिं त इन्द्र पृथिवी विभर्ति ।
सखायस्ते वामभाजः स्याम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२२॥

---

२० इन्द्रने महती और परस्पर सङ्गत द्यावापृथिवीको पशु-पक्षियोंसे युक्त किया है। वह द्यावा-पृथिवी इन्द्रके तेजसे अतिशय व्याप्त है। समर्थ इन्द्र शत्रुओंको पराजित कर उनके धनको ग्रहण करनेमें विख्यात हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है।

२१ विश्वधाता और हम लोगोंके राजा इन्द्र इस पृथिवी तथा अन्तरिक्षमें, हितकारी मित्रकी तरह निवास करते हैं। वीर मरुद्गण संग्रामके लिये, इन्द्रके आगे जाते हैं। वे इन्द्रके गृहमें निवास करते हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है।

२२ हे पर्जन्यात्मक इन्द्र, ओषधियोंने तुमसे सिद्धि पायी है, जल तुमसे ही निःसृत हुआ है और पृथिवी तुम्हारे भोगके लिये धनका धारण करती है। हम लोग तुम्हारे सखा हैं। हम लोग तुम्हारे धनका भागी हो सकें। देवताओंका महान् बल एक ही है।

तृतीय अध्याय समाप्त

चतुर्थ अध्याय

५६ सूक्त

विश्वदेवगण देवता । प्रजापति ऋषि । त्रिष्टुपछन्द

न ता मिनन्ति मायिनो न धीरा व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि ।
न रोदसी अद्रुहा वेद्याभिर्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः ॥१॥
षड्भाराँ एको अचरन्बिभर्त्यृतं वर्षिष्ठमुपगाव आगुः ।
तिस्रो महीरुपरास्तस्थुरत्या गुहा द्वे निहिते दर्श्येका ॥२॥
त्रिपाजस्यो वृषभो विश्वरूप उतत्र्युधा पुरुध प्रजावान् ।
त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्त्स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम् ॥३॥
अभीक आसां पदवीरबोध्यादित्यानामह्वे चारु नाम ।
आपश्चिदस्मा अरमन्त देवीः पृथग् व्रजन्तीः परिषीमवृञ्जन् ॥४॥

---

१ मायाविगण देवोंकी सृष्टिके अनन्तर होनेवाले, स्थिर, प्रसिद्ध, कर्मोंको हिंसित नहीं करें, विद्वान् लोग भी नहीं करें। द्रोह-रहित द्यावापृथिवी प्रजागणके साथ उन्हें विघ्नयुक्त नहीं करें। अचल पर्वतोंको कोई अवनत नहीं कर सकता है।

२ एक स्थायी संवत्सर वसन्त आदि छ ऋतुओंको धारण करता है। सत्यभूत और प्रवृद्ध आदित्यात्मक संवत्सरको रश्मियाँ प्राप्त करती हैं। चञ्चल लोकत्रय ऊपर-ऊपर अवस्थित हैं। स्वर्ग और अन्तरिक्ष गुहामें निहित हैं; एक पृथिवी ही दीख पड़ती है।

३ ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त नामक तीन उरवाले, जलवर्षक, नानारूप, तीन ऊध (वसन्त, शरत्, हेमन्त)-विशिष्ट, बहुप्रकार, प्रजावान्, उष्ण, वर्षा और शीतात्मक तीन गुणवाले तथा महत्त्ववान् संवत्सर आते हैं। सेचनसमर्थ संवत्सर, सबके लिये, उदक धारण करते हैं।

४ संवत्सर इन सकल ओषधियोंके समीप उनके पदस्वरूप जागरित हुआ है। मैं आदित्यों (चैत्रादि मासों)का मनोहर नाम उच्चारण करता हूँ। द्युतिमान् और स्वतन्त्र पथ द्वारा जानेवाला जल-समूह इस संवत्सरको चार महीनोंतक वृष्टि द्वारा प्रीत करता है और आठ महीनोंतक छोड़ देता है।

त्रीषधस्था सिन्धवस्त्रिः कवीनामुत त्रिमाता विदथेषु सम्राट् ।
ऋतावरीर्योषणास्तिस्रो अप्यास्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानाः ॥५॥
त्रिरा दिवः सवितर्वार्याणि दिवेदिव आ सुव त्रिर्नो अह्नः ।
त्रिधातु राय आ सुवा वसूनि भग त्रातर्धिषणे सातये धाः ॥६॥
त्रिरा दिवः सविता सोषवीति राजाना मित्रावरुणा सुपाणी ।
आपश्चिदस्य रोदसी चिदुर्वीरत्नं भिक्षन्त सवितुः सत्राय ॥७॥
त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि त्रयो राजन्त्यसुरस्य वीराः ।
ऋतावान इषिरा दूडभासस्त्रिरा दिवो विदथे सन्तु देवाः ॥८॥

* * *

---

५ हे नदियो, त्रिगुणित त्रिसंख्यक स्थान देवोंका निवासस्थान है। तीनों लोकोंके निर्माता संवत्सर या सूर्य यज्ञके सम्राट् हैं । जलवती, अन्तरिक्षचारिणी इला, सरस्वती और भारती नामक तीन योषित् यज्ञके तीनों सवनोंमें आगमन करें ।

६ हे सबके प्रेरक आदित्य, द्युलोकसे आकर प्रतिदिन तीन बार रमणीय धन हम लोगोंको प्रदान करो। हे हम लोगोंके रक्षक आदित्य, हम लोगोंको दिनके मध्यमें तीन बार अर्थात् तीनों सवनोंमें पशु, कनक, रत्न और गोधन प्रदान करो। हे धिषणा, हम लोगोंको जिससे धन लाभ हो, वैसा करो ।

७ सविता दिनमें तीन बार हम लोगोंको धन प्रदान करें। कल्याणपाणि, राजा, मित्रा-वरुण, द्यावापृथिवी और अन्तरिक्ष आदि देवता सविता देवकी वदान्यतासे अपेक्षित अर्थकी याचना करें।

८ विनाश-रहित और द्युतिमान् तीन उत्तम स्थान हैं । इन तीनों स्थानोंमें कालात्मक संवत्सरके अग्नि, वायु और सूर्य नामक पुत्र शोभा पाते हैं । यज्ञवान्, शीघ्रगामी और अति-रस्कृत देवगण, दिनमें तीन बार, हमारे यज्ञमें आगमन करें ।

५७ सूक्त

विश्वदेवगण देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र मे विविक्वाँ अविदन्मनीषां धेनुं चरन्ती प्रयुतामगोपाम् ।
सद्यश्चिद्या दुदुहे भूरि धासेरिन्द्रस्तदग्निः पनितारो अस्याः ॥१॥
इन्द्रः सुपूषा वृषणा सुहस्ता दिवो न प्रीताः शशयं दुदुह्रे ।
विश्वे यदस्यां रणयन्त देवाः प्रवोत्र वसवः सुम्नमश्याम् ॥२॥
या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन् ।
अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंषि ॥३॥
अच्छा विवक्मि रोदसी सुमेके ग्राव्णो युजानो अध्वरे मनीषा ।
इमा उ ते मनवे भूरिवारा ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः ॥४॥
या ते जिह्वा मधुमती सुमेधा अग्ने देवेषूच्यत उरूची ।
तये हविश्वाँ अवसे यजत्रानासादय पायया चा मधूनि ॥५॥

---

१ विवेकवान् इन्द्र मेरी देवता-विषयक स्तुतिको, इतस्ततः विहारिणी, एकाकिनी और रक्षक-विहीना धेनुकी तरह, अवगत करें । जिस स्तुतिरूपा धेनुसे तत्क्षण बहुत अपेक्षित फल दोहन किया जाता है, इन्द्र और अग्नि उस धेनुकी प्रशंसा करें ।

२ इन्द्र, पूषा एवम् अभीष्टवर्षी कल्याणपाणि मित्रावरुण प्रीत होकर सम्प्रति अन्तरिक्षशायी मेघका अन्तरिक्षसे दोहन करते हैं। हे निवास-प्रद विश्वदेवगण, तुम सब इस वेदिपर विहार करो, जिससे हम लोगोंको तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख प्राप्त हो।

३ जो ओषधियाँ जलवर्षक इन्द्रकी शक्तिकी वाञ्छा करती हैं, वे ओषधियाँ नम्र होकर इन्द्रकी गर्भाधान-शक्तिको जानती हैं। फलाभिलाषिणी, सबकी प्रीणयित्री ओषधियाँ नाना रूपधारी व्रीहि, यव, नीवारादि शस्यस्वरूप पुत्रके अभिमुख विचरण करती हैं।

४ यज्ञमें प्रस्तर धारण करके हम सुन्दर रूप-विशिष्ट द्यावापृथिवीकी स्तुति-लक्षण वचन द्वारा स्तुति करते हैं। हे अग्नि, तुम्हारी अतिशय वरणीय, कमनीय और पूज्य दीप्तियाँ मनुष्योंके लिये ऊर्ध्वमुख होती हैं।

५ हे अग्नि, तुम्हारी जो मधुमती, प्रज्ञाशालिनी ज्वाला अत्यन्त व्याप्तिविशिष्ट होकर देवोंके मध्यमें आह्वानार्थ प्रेरित होती है, उस जिह्वासे यजनीय देवोंको, हमारी रक्षाके लिये, इस कर्ममें उपवेशित कराओ। उन देवोंको हर्षकर सोमपान कराओ।

या ते अग्ने पर्वतस्येव धारा सश्चन्ती पीपयद्देव चित्रा ।
तामस्मभ्यं प्रमतिं जातवेदो वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम् ॥६॥

५८ सूक्त

अश्विद्वय देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानान्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः ।
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः ॥१॥
सुयुग्वहन्ति प्रति वामृतेनोर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः ।
जरेथामस्मद्विपणेर्मनीषां युवोरवश्चकृमायातमर्वाक् ॥२॥
सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्गवां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥३॥

---

६ हे द्युतिमान् अग्नि, नानारूपा और हम लोगोंको छोड़कर अन्यत्र नहीं जानेवाली तुम्हारी जो अनुग्रह बुद्धि है, वह हम लोगोंको अपेक्षित फल-प्रदान द्वारा वर्द्धित करे, जैसे मेघकी धारा वनस्पतियोंको वर्द्धित करती है। हे निवासप्रद जातवेदा, हम लोगोंको उसी अनुग्रह बुद्धिका प्रदान करो और सर्वजन-हितकारिणी शोभन बुद्धिको दो।

१ प्रीणयित्री उषा पुरातन अग्निके लिये कमनीय दुग्ध दोहन करती है। उषापुत्र सूर्य उसके मध्यमें विचरण करते हैं। शुभ्रदीप्ति दिवस सबके प्रकाशक सूर्यका वहन करता है। उसके पूर्व ही अश्विद्वयके स्तोता जागरित होते हैं।

२ हे अश्विद्वय, उत्तम रूपसे रथमें युक्त अश्वद्वय, सत्यरूप रथ द्वारा, तुम दोनोंको यहाँ ले आनेके लिये वहन करते हैं। यज्ञ तुम्हारे लिये उन्मुख होते हैं, जैसे माता-पिताको लक्ष्य कर पुत्र जाते हैं। हम लोगोंके निकटसे पणियोंकी आसुरी बुद्धिको, विशेष रूपसे, नष्ट करो। हम लोग तुम्हारे लिये हवि प्रस्तुत करते हैं। तुम दोनों आगमन करो।

३ हे अश्विद्वय, सुन्दर चक्रविशिष्ट रथपर आरोहण करके और उत्तम रूपसे योजित अश्वों द्वारा वाहित होकर तुम दोनों स्तुतिकारियोंके इस श्लोकका श्रवण करो। हे अश्विद्वय, पुरातन मेधाविगण क्या नहीं बोलते हैं, जो हमारी वृत्तिहानिके विरुद्ध तुम दोनों गमन करते हो।

आ मन्येथामागतं कच्चिदेवैर्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते ।
इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे ॥४॥
तिरः पुरूचिदश्विना रजांस्यांगूषो वां मघवाना जनेषु ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥५॥
पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम् ।
पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह नू समानाः ॥६॥
अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना ।
नासत्या तिरोअह्न्यं जुषाणा सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू ॥७॥
अश्विना परिवामिषः पुरूचीरीयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृध्राः ।
रथो हवामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी यान्ति सद्यः ॥८॥

---

४ हे अश्विद्वय, तुम दोनों हमारी स्तुतिको अवगत करो और अश्वोंके साथ यज्ञमें आगमन करो। सब स्तोता स्तुतिलक्षण वचनोंसे तुम दोनोंका आह्वान् करते हैं। वे मित्रकी तरह दुग्धमिश्रित और हर्षकर हवि तुम दोनोंको प्रदान करते हैं। सूर्य उषाके आगे उदित होते हैं; इसलिये आगमन करो।

५ हे अश्विद्वय, नाना देशोंको अपने तेजसे तिरस्कृत करके तुम दोनों देवयान पथ द्वारा इस स्थलमें आगमन करो। हे धनवान् अश्विद्वय, तुम दोनोंके लिये स्तोताओंका स्तोत्र उद्घोषित होता है। हे शत्रुओंके क्षयकारक, तुम दोनोंके लिये ये मदकारक सोमके पात्रविशेष सञ्चित हैं।

६ हे अश्विद्वय, तुम दोनोंका पुरातन सख्य वाञ्छनीय है और कल्याणकर है। हे नेतृद्वय, तुम दोनोंका धन जह्नुकुलजामें है। तुम दोनोंके सुखकर सख्यको बारम्बार प्राप्त करके हम लोग मित्रभूत (तुम्हारे समान) होते हैं। हर्षकारक सोमके द्वारा तुम दोनोंके साथ, हम शीघ्र ही हृष्ट होते हैं।

७ शोभन सामर्थ्यसे युक्त, नित्य तरुण, असत्यरहित एवम् शोभन फलके दाता हे अश्विद्वय, वायु और नियुद्गणके साथ मिलकर अक्षीण और सोमपायी तुम दोनों दिवसके शेषमें सोम पान करो।

८ हे अश्विद्वय, प्रचुर हवि तुम लोगोंके निकट गमन करती है। दोषरहित और कर्मकुशल स्तोता लोग स्तुतिलक्षण वचनों द्वारा तुम दोनोंकी परिचर्या करते हैं। स्तोताओं द्वारा आकृष्ट, जलप्रद रथ द्यावापृथिवीके मध्यमें सद्यः गमन करता है।

अश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः सोमस्तं पातमागतं दुरोणे ।
रथो हवां भूरिवर्पः करिक्रत् सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः ॥६॥

५९ सूक्त

मित्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥१॥
प्र स मित्रमर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥२॥
अनमीवास इड़या मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥३॥

---

६ हे अश्विद्वय, जो सोम अत्यन्त मधुर रससे मिश्रित हुआ है, उसका पान करो। तुम लोगोंका धनदानकारी रथ सोमाभिषव करनेवाले यजमानके संस्कृत गृहमें बारम्बार आगमन करता है।

१ स्तुत होनेपर मित्र देवता सकल लोकको कृष्यादि कार्यमें प्रवर्तित करते हैं। वृष्टि द्वारा अन्न और यज्ञको उत्पन्न करते हुए मित्र देवता पृथ्वी और द्युलोक दोनोंका धारण करते हैं। कर्मवान् मनुष्योंको, चारो तरफसे, मित्र देवता अनुग्रह दृष्टिसे देखते हैं। मित्रके उद्देशसे घृत-विशिष्ट हव्य प्रदान करो।

२ हे आदित्य, मित्र, यज्ञयुक्त होकर जो मनुष्य तुम्हें हविरन्न प्रदान करता है, वह अन्नवान् हो। तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर वह मनुष्य किसीसे भी विनष्ट और अभिभूत नहीं होता है। तुम्हें जो हविः देता है, उस पुरुषको दूर अथवा निकटसे पाप छू नहीं सकता है।

३ हे मित्र, रोग-वर्जित होकर, अन्नलाभसे हृष्ट होकर और पृथिवीके विस्तीर्ण प्रदेशमें मितज्ञानु होकर हम सर्वत्रगामी आदित्यके व्रत (कर्म) के निकट अवस्थिति करते हैं। हम लोगोंके ऊपर आदित्य अनुग्रह-बुद्धि करें।

अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥४॥
महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यात यज्जनो गृणते सुशेवः ।
तस्मा एतत् पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविराजुहोत ॥५॥
मित्रस्य चर्षणीधृतो वो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमं ॥६॥
अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः ।
अभिश्रवोभिः पृथिवीम् ॥७॥
मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे । सदेवान्विश्वान्बिभर्ति ॥८॥
मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे । इषइष्टव्रता अकः ॥९॥

* * *

---

४ नमस्कारयोग्य, सुन्दर मुखविशिष्ट, स्वामी, अत्यन्त बलविशिष्ट और सबके विधाता यह सूर्य प्रादुर्भूत हुए हैं। ये यज्ञार्ह हैं। इनके अनुग्रह और कल्याणकर वात्सल्यको हम यजमान प्राप्त कर सकें।

५ जो आदित्य महान् हैं, जो सकल लोकके प्रवर्तक हैं, नमस्कार द्वारा उनकी उपासना करना उचित है। वे स्तुति करनेवालोंके प्रति प्रसन्नमुख होते हैं। स्तुतियोग्य मित्रके लिये प्रीतिकर हव्य अग्निमें अर्पित करो।

६ वृष्टि द्वारा मनुष्योंके धारक मित्रदेवका अन्न और सबके द्वारा भजनीय धन अतिशय कीर्तियुक्त है।

७ जिस मित्रदेवने अपनी महिमासे द्युलोकको अभिभूत किया है, उसीने कीर्तियुक्त होकर पृथिवीको प्रचुर अन्नविशिष्ट किया है।

८ निषादको लेकर पाँचो वर्ण शत्रुजयक्षम और बलविशिष्ट मित्रके उद्देशसे हव्य प्रदान करते हैं। मित्र अपने स्वरूपसे समस्त देवगणको धारण करते हैं।

९ देवों और मनुष्योंके मध्यमें जो व्यक्ति कुशच्छेदन करता है, उसे मित्रदेव कल्याणकर अन्न प्रदान करते हैं।

६० सूक्त

ऋभुगण देवता । विश्वामित्र ऋषि । जगती छन्द ।

इहेह वो मनसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभितानि वेदसा ।
याभिर्मायाभिः प्रतिजूतिवर्पसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥१॥
याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।
येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥२॥
इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुर्मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे ।
सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्ट्वी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया ॥३॥
इन्द्रेण याथ सरथं सुते सचाँ अथो वशानां भवथा सह श्रिया ।
न वः प्रतिमै सुकृतानि वाघतः सौधन्वना ऋभवो वीर्याणि च ॥४॥

---

१ हे ऋभुगण, तुम लोगोंके कर्मको सब कोई जानता है। हे मनुष्यगण, तुम सब सुधन्वाके पुत्र हो। तुम लोग जिस सकल कर्म द्वारा शत्रुपराभवोपयुक्त और तेजोविशिष्ट होकर यज्ञीय भागको प्राप्त करते हो, कामना-कालमें, उस सकल कर्मको तुम लोग जान जाते हो।

२ हे ऋभुओ, जिस शक्तिके द्वारा तुम लोगोंने चमसको विभक्त किया था, जिस प्रज्ञाबलसे गो-शरीरमें चर्मयोजना की थी और जिस मनीषाके द्वारा इन्द्रके अश्वद्वयका निर्माण किया था, उन्हीं सकल कर्मों द्वारा तुम लोगोंने यज्ञभागार्हत्व देवत्व प्राप्त किया है ।

३ मनुष्यपुत्र ऋभुगणने यागादि कर्म करके इन्द्रके सखित्वको प्राप्त किया है। पूर्वमें मरणधर्मा होकर भी वे इन्द्रके सखित्वसे प्राण धारण करते हैं । सुधन्वके पुण्य-कार्यकारी पुत्रगण कर्मबल और यज्ञादि-बलसे व्याप्त होकर अमृतत्वको प्राप्त हुए हैं।

४ हे ऋभुगण, तुम लोग इन्द्रके साथ एक रथपर आरोहण करके सोमाभिषवके स्थानमें गमन करो। पीछे मनुष्योंकी स्तुतियोंको ग्रहण करो। हे अमृत-फलवाहक सुधन्वाके पुत्रो, तुम्हारे शोभन कर्मोंकी इयत्ता कोई नहीं कर सकता है । हे ऋभुओ, तुम्हारी सामर्थ्यकी इयत्ता भी कोई नहीं कर सकता है ।

इन्द्र ऋभुर्वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोममावृषस्वा गभस्त्योः ।
धियेषितो मघवन्दाशुषो गृहे सौधन्वनेभिः सह मत्स्वानृभिः ॥५॥
इन्द्र ऋभुमान् वाजवान् मत्स्वेह नोस्मिन्त्सवने शच्या पुरुष्टुत ।
इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिरे व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः ॥६॥
इन्द्र ऋभुभिर्वाजिभिर्वाजयन्निह स्तोमं जरितुरुपयाहि यज्ञियम् ।
शतं केतेभिरिषिरेभिरायवे सहस्रणीथो अध्वरस्य होमनि ॥७॥

६१ सूक्त

उषा देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।
पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिरनुव्रतं चरसि विश्ववारे ॥१॥

---

५ हे इन्द्र, तुम वाज (अन्न या ऋभुओंके भ्राता)-विशिष्ट हो। ऋभुओंके साथ तुम, अच्छी तरहसे, जल द्वारा सिक्त और अभिषुत सोमको दोनों हाथोंसे ग्रहण करके पान करो। हे मघवन्, तुम स्तुति द्वारा प्रेरित होकर यजमानके गृहमें, सुधन्वाके पुत्रोंके साथ, सोमपानसे हृष्ट होते हो।

६ हे बहुस्तुत इन्द्र, ऋभु और वाजसे युक्त होकर तथा इन्द्राणीके साथ होकर हमारे इस तृतीय सवनमें आनन्दित होओ। हे इन्द्र, तीनों सवनोंमें सोमपानके लिये ये दिन तुम्हारे लिये नियत हुए हैं। किन्तु देवोंके व्रत और मनुष्योंके कर्मोंके साथ सकल दिन तुम्हारे लिये नियत हुए हैं।

७ हे इन्द्र, तुम स्तोताओंके अन्नोंका सम्पादन करते हुए वाजयुक्त ऋभुओंके साथ, इस यज्ञमें स्तोताओंके स्तोत्रोंके अभिमुख आगमन करो। मरुद्गण भी शतसंख्यक गमनकुशल अश्वोंके साथ यजमानके सहस्र प्रकारसे प्रणीत अध्वरके अभिमुख आगमन करें।

* * *

१ हे अन्नवती तथा धनवती उषा, प्रकृष्ट ज्ञानवती होकर तुम स्तोत्र करनेवाले स्तोताके स्तोत्रका ग्रहण करो। हे सबके द्वारा वरणीया, पुरातनी, युवतीकी तरह शोभमाना और बहुस्तोत्रवती उषा, तुम यज्ञकर्मको लक्ष्य कर आगमन करो।

उषो देव्यमर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥२॥
उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्याववृत्स्व ॥३॥
अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद्दिवः पप्रथ आपृथिव्याः ॥४॥
अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत् प्र रोचना रुरुचे रण्वसन्दृक् ॥५॥
ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।
आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥६॥

---

२ हे मरणधर्म-रहिता, सुवर्णमय रथवाली उषा देवी, तुम प्रिय सत्यरूप वचनका उच्चारण करनेवाली हो। तुम सूर्य-किरणके सम्बन्धसे शोभमाना होओ। प्रभूत बलयुक्त जो अरुणवर्ण अश्व हैं, वे सुखपूर्वक रथमें योजित किये जा सकते हैं। वे तुम्हें आवहन करें।

३ हे उषा देवी, तुम निखिल भूतजातके अभिमुख आगमनशीला, मरणधर्म-रहिता और सूर्यकी केतु-स्वरूपा हो। तुम आकाशमें उन्नत होकर रहती हो। हे नवतरा उषा, तुम एक मार्गमें विचरण करनेकी इच्छा करती हुई, आकाशमें चलनेवाले सूर्यके रथाङ्गकी तरह, पुनः-पुनः उसी मार्गमें प्रवृत्त होओ।

४ जो धनवती उषा, वस्त्रकी तरह विस्तीर्ण अन्धकारको क्षयित करती हुई सूर्यकी पत्नी होकर गमन करती है, वही सौभाग्यवती और सत्कार्यशालिनी उषा द्युलोक और पृथ्वीके अवसानसे प्रकाशित होती है।

५ हे स्तोताओ, तुम लोगोंके अभिमुख उषा देवी शोभमाना होती है। तुम लोग नमस्कार द्वारा उसकी शोभन स्तुति करो। स्तुतिको धारण करनेवाली उषा आकाशमें ऊर्ध्वाभिमुख तेजको आश्रित करती है। रोचनशीला और रमणीयदर्शना उषा अतिशय दीप्त होती है।

६ जो उषा सत्यवती है, उसे सब कोई द्युलोकके तेजःप्रभावसे जानते हैं। धनवती उषा नानाविध रूपसे युक्त होकर द्यावापृथिवीको व्याप्त करके रहती है। हे अग्नि, तुम्हारे अभिमुख आनेवाली, भासमाना उषा देवीसे हविकी याचना करनेवाले तुम रमणीय धनको प्राप्त करते हो।

ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन् वृषा मही रोदसी आविवेश ।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं विदधे पुरुत्रा ॥७॥

६२ सूक्त

१--३ तकके इन्द्रावरुणा, ४--६ तकके बृहस्पति, ७--९ तकके पूषा, १०--१२ तकके सविता, १३--१५ तकके सोम, १६--१८ तकके मित्रावरुणा देवता। विश्वामित्र ऋषि, किसी-किसीके मतसे अन्तिम तीन ऋचाके जमदग्नि ऋषि। १--३ तक त्रिष्टुप् और शेष गायत्री छन्द।

इमा उ वां भृमयो मन्यमाना युवावते न तुज्या अभूवन् ।
क्व त्यदिन्द्रावरुणा यशो वां येन स्मासिनं भरथः सखिभ्यः ॥१॥
अयमु वां पुरुतमो रयीयञ्छश्वत्तममवसे जोहवीति ।
सजोषाविन्द्रावरुणा मरुद्भिर्दिवा पृथिव्या शृणुतं हवं मे ॥२॥
अस्मेतदिन्द्रावरुणा वसुष्यादस्मे रयिर्मरुतः सर्ववीरः ।
अस्मान्वरूत्रीः शरणैरवन्त्वस्मान् होत्रा भारती दक्षिणाभिः ॥३॥

---

७ वृष्टि द्वारा जलके प्रेरक आदित्य सत्यभूत दिवसके मूलमें उषाका प्रेरण करके, विस्तीर्ण द्यावापृथिवीके मध्यमें प्रवेश करते हैं। तदनन्तर महती उषा मित्र और वरुणकी प्रभास्वरूपा होकर, सुवर्णकी तरह, अपनी प्रभाको अनेक देशोंमें प्रसारित करती है।

१ हे मित्रावरुण, शत्रुओं द्वारा अभिमन्यमान; अतएव भ्रमणशीला तुम्हारी ये प्रजाएँ जिससे तरुण वयष्क शत्रुओं द्वारा हिंसित नहीं हों। तुम लोगोंका तादृश यश और कहाँ है, जिससे तुम लोग हम बन्धुओंके लिये अन्न-सम्पादन करते हो।

२ हे इन्द्रावरुण, धनकी इच्छा करनेवाले ये महान् यजमान, रक्षा या अन्नके लिये, तुम दोनोंका सर्वदा आह्वान करते हैं। मरुद्गण, द्युलोक और पृथिवीके साथ मिलित होकर तुम दोनों मेरी स्तुति सुनो।

३ हे इन्द्रावरुण, हम लोगोंको वही अभिलषित धन हो। हे मरुद्गण, सर्वकर्म-समर्थ पुत्र और पशुसङ्घ हम लोगोंको हो। सबके द्वारा भजनीय देव-पत्नियाँ शरण (गृह) द्वारा हम लोगोंकी रक्षा करें। होत्रा भारती [होत्रा अग्निपत्नी, भारती सूर्यपत्नी] उदार वचनों द्वारा हम लोगोंका पालन करें।

बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य । राश्व रत्नानि दाशुषे ॥४॥
शुचिमर्कैर्बृहस्पतिमध्वरेषु नमस्यत । अनाम्योज आचके ॥५॥
वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम् बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥६॥
इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी । अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ॥७॥
तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीम वा धियम् । वधूयुरिव योषणाम् ॥८॥
योविस्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । स नः पूषाविता भूवत् ॥९
तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१०॥
देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरन्ध्या । भगस्य राति मीमहे ॥११॥
देवं नरः सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः । नमस्यन्ति धियेषिताः ॥१२॥

---

४ हे सब देवोंके हितकर बृहस्पति, हम लोगोंके पुरोडाश (हवि) आदिका सेवन करो। तदनन्तर हवि देनेवाले यजमानको तुम उत्तम धन दो।

५ हे ऋत्विको, तुम लोग यज्ञ-समूहमें, अर्चनीय स्तोत्रों द्वारा, विशुद्ध बृहस्पतिकी परिचर्या करो। मैं शत्रुओं द्वारा अनभिभवनीय बलकी याचना करता हूँ।

६ मनुष्योंके लिये अभिमतफलवर्षक, विश्वरूप नामक गोवाहनसे युक्त, अतिरस्करणीय और सबके द्वारा भजनीय बृहस्पतिके निकट मैं अभिमत फलकी याचना करता हूँ।

७ हे दीप्तिमान् पूषा, यह नवीनतम और शोभन स्तुतिरूप वचन तुम्हारे लिये हैं। इस स्तुतिका उच्चारण हम लोग तुम्हारे लिये करते हैं।

८ हे पूषा, मेरी उस स्तुतिका ग्रहण करो। स्त्रीकामी व्यक्ति जैसे स्त्रीके अभिमुख आगमन करता है, वैसे ही तुम इस हर्षकारिणी स्तुतिके अभिमुख आगमन करो।

९ जो पूषा निखिल लोकको विशेष रूपसे देखते हैं और उसे देखते हैं, वही पूषा हम लोगोंके रक्षक हों।

१० जो सविता हम लोगोंकी बुद्धिको प्रेरित करता है, सम्पूर्ण श्रुतियोंमें प्रसिद्ध उस द्योतमान जगत्स्रष्टा परमेश्वरके संभजनीय परब्रह्मात्मक तेजका हम लोग ध्यान करते हैं।

११ हम लोग धनाभिलाषी होकर स्तुति द्वारा द्योतमान सवितासे भजनीय धनके दानकी याचना करते हैं।

१२ कर्मनेता मेधावी अध्वर्युगण बुद्धि द्वारा प्रेरित होकर, यजनीय हवि और शोभन स्तोत्रों द्वारा सविता देवताकी अर्चना करते हैं।

सोमो जिगाति गातुविद्देवानामेति निष्कृतम् । ऋतस्य योनिमासदम् ॥१३॥
सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे । अनमीवा इषस्करत् ॥१४॥
अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः । सोमः सधस्थमासदत् ॥१५॥
आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥१६॥
उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥१७॥
गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा ॥१८॥

---

१३ पथज्ञ सोम जानेवालोंको स्थान दिखाते हैं। उपवेशनकारी देवोंके लिये संस्कृत यज्ञस्थानमें गमन करते हैं।

१४ सोम हम स्तोताओंके लिये एवम् द्विपदों, चतुष्पदों और पशुओंके लिये रोगशून्य अन्न प्रदान करें।

१५ सोमदेव हम लोगोंके अन्न या आयुको बढ़ाते हुए और कर्मविघातक शत्रुओंको अभिभूत करते हुए हम लोगोंके यज्ञस्थानमें उपवेशन करें।

१६ हे शोभनकर्मकारी मित्रावरुण, हम लोगोंके गोष्ठको दुग्धपूर्ण करो। हम लोगोंके आवासस्थानको मधुर रससे पूर्ण करो।

१७ हे विशुद्धकर्मकारी मित्रावरुण, तुम दोनों बहुतों द्वारा स्तुत हो एवम् हविरन्न या स्तोत्र द्वारा वर्द्धमान हो। दीर्घ स्तुतियुक्त होकर तुम लोग धन या बलके महत्त्वसे विराजमान होओ।

१८ हे मित्रावरुण, तुम दोनों जमदग्नि नामक महर्षि द्वारा अथवा अग्निको प्रज्वलित करनेवाले विश्वामित्र द्वारा स्तुत होकर यज्ञदेशमें उपवेशन करो। तुम दोनों ही कर्मफलके वर्द्धयिता हो; सोमपान करो।

तृतीय मण्डल समाप्त

चतुर्थ मण्डल

३ अष्टक । ४ मण्डल । ४ अध्याय । १ अनुवाक ।

१ सूक्त ।

अग्नि देवता २---४ ऋचाके वरुण देवता । वामदेव ऋषि ।* अष्टि, अतिजगती, धृति, त्रिष्टुप् छन्द ।

त्वां ह्यग्ने सदमित् समन्यवो देवासो देवमरतिं न्येरिर इतिक्रत्वा न्येरिरे ।
अमर्त्यं यजत मर्त्येष्वादेवमादेवं जनत प्रचेतसं
विश्वमादेवं जनत प्रचेतसम् ॥ १ ॥
स भ्रातरं वरुणमग्न आववृत्स्व देवाँ अच्छा सुमती
यज्ञवनसं ज्येष्ठं यज्ञवनसम् ।
ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम् ॥२॥
सखे सखायमभ्याववृत्स्वाशुं न चक्रं रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्मरंह्या

---

१ हे अग्नि, तुम द्योतमान और शीघ्रगामी हो। स्पर्द्धावान् देवगण तुम्हें सर्वदा ही, युद्धके लिये, प्रेरित करते हैं; अतएव यजमान लोग तुम्हें स्तुति द्वारा प्रेरित करें । हे यजनीय अग्नि, तुम अमर, द्युतिमान और उत्कृष्ट ज्ञान-विशिष्ट हो। यज्ञ करनेवाले मनुष्योंके मध्यमें आनेके लिये देवोंने तुम्हें उत्पन्न किया है। तुम कर्माभिज्ञ हो। समस्त यज्ञोंमें उपस्थित रहनेके लिये देवोंने तुम्हें उत्पन्न किया है।

२ हे अग्नि, तुम्हारे भ्राता वरुण हैं । वे हव्यभाजन, यज्ञभोक्ता, अतिशय प्रशंसनीय, उदकवान्, अदिति-पुत्र, जलदान द्वारा मनुष्योंके धारक, सुबुद्धियुक्त और राजमान हैं । तुम ऐसे वरुण देवको स्तोताओंके अभिमुख करो।

३ हे सखिभूत दर्शनीय अग्नि, तुम अपने सखा वरुणको हमारे अभिमुख करो, जैसे गमनकुशल और रथमें युक्त अश्वद्वय शीघ्रगामी चक्रको, लक्ष्य देशके अभिमुख ले जाते हैं। हे अग्नि, तुम्हारी सहायतासे वरुणने सुखकर हव्य लाभ किया है तथा तेजोविशिष्ट मरुतोंके लिये भी सुखकर हव्य लाभ किया है। हे दीप्तिमान् अग्नि, तुम हमारे पुत्र-पौत्रोंको सुखी करो। हे दर्शनीय अग्नि, हम लोगोंका कल्याण करो।

---

* चतुर्थ मण्डलके वामदेव अथवा तद्वंशीय ऋषि हैं । द्वितीय मण्डलके प्रथम सूक्तकी प्रथम ऋचाकी टिप्पनी देखिये ।

अग्ने मृलीकं वरुणे सचाविदो मरुत्सु विश्वभानुषु ।
तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि ॥३॥
त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेलोव यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् ॥४॥
स त्वं नो अग्नेवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृलीकं सुहवो न एधि ॥५॥
अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य संदृक् देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।
शुचिघृतं न तप्तमघ्न्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः ॥६॥
त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः ।
अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्यो रोरुचानः ॥७॥

---

४ हे अग्नि, तुम सम्पूर्ण पुरुषार्थके साधनोपायको जानते हो । हम लोगोंके प्रति द्योतमान वरुणके क्रोधका अपनोदन करो। तुम सबकी अपेक्षा अधिक याज्ञिक, हविर्वाही और अतिशय दीप्तिमान् हो । तुम हम लोगोंको सब प्रकारके पापोंसे, विशेष रूपसे, विमुक्त करो।

५ हे अग्नि, रक्षादान द्वारा तुम हम लोगोंके प्रत्यासन्न होओ । उषाके विनष्ट होनेपर प्रातःकालमें, अग्निहोत्रादि कार्यकी सिद्धिके लिये, तुम हम लोगोंके अत्यन्त निकटस्थ होओ। हम लोगोंके लिये जो वरुणकृत जलोदरादि रोग और पाप हैं, उनका विनाश करो। तुम यजमानोंके लिये अत्यन्त फलप्रद हो। तुम इस सुखकर हविका भक्षण करो। हम तुम्हारा उत्तम रूपसे आह्वान करते हैं; हमारे निकट आगमन करो।

६ उत्तम रूपसे भजनीय अग्निदेवका प्रशंसनीय अनुग्रह, मनुष्योंके लिये, अत्यन्त भजनीय तथा स्पृहणीय होता है, जैसे क्षीराभिलाषी देवोंके लिये गौओंका तेजोयुक्त, क्षरणशील और तथा दुग्ध स्पृहणीय होता है और जैसे मनुष्योंके लिये पयस्विनी गौ भजनीय होती है।

७ अग्निदेवका प्रसिद्ध, उत्तम और यथार्थभूत अग्नि, वायु तथा सूर्यात्मक तीन जन्म सबके द्वारा स्पृहणीय है। अनन्त, अकाशमें अपने तेज द्वारा परिवेष्ठित, सबके शोधक, दीप्तियुक्त और अत्यन्त दीप्यमान स्वामी अग्नि हमारे यज्ञमें आगमन करें।

स दूतो विश्वेदभिवष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः ।
रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा सदा रण्वः पितुमतीव संसत् ॥८॥
स चेतयन्मनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मह्यारशनया नयन्ति ।
स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन् देवो मर्तस्य सधनित्वमाप ॥९॥
स तु नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य ।
धिया यद्विश्वे अमृता अकृण्वन्द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् ॥१०॥
स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ।
अपादशीर्षा गुहमानो अन्तायोयुवानो वृषभस्य नीळे ॥११॥
प्रशर्ध आर्त प्रथमं विपन्याँ ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे ।
स्पार्हो युवा वपुष्यो विभावा सप्त प्रियासो जनयन्त वृष्णे ॥१२॥

---

८ दूत, देवोंके आह्वानकारी, सुवर्णमय रथोपेत, रमणीय ज्वालाविशिष्ट अग्नि समस्त यज्ञकी कामना करते हैं। रोहिताश्व, रूपवान् और सदा कान्तियुक्त अग्नि, अन्न द्वारा समृद्ध गृहकी तरह, रमणीय हैं।

९ अग्नि यज्ञमें विनियुक्त होते हैं। वे यज्ञमें प्रवृत्त मनुष्योंको जानते हैं। अध्वर्युगण महती रशना द्वारा, उत्तर वेदिमें, उनका प्रणयन करते हैं। यजमानके गृहोंमें अभीष्ट-साधन करते हुए वे निवास करते हैं। वे द्योतमान अग्नि, धनियोंके साथ, एकत्र वास करते हैं।

१० स्तोताओं द्वारा, भजनीय जो उत्कृष्ट रत्न अग्निका है, उस रत्नको सर्वज्ञ अग्नि हमारे अभिमुख प्रेरित करें। मरण-धर्मरहित समस्त देवोंने, यज्ञके लिये, अग्निका उत्पादन किया है। द्युलोक उनके पालक और जनक हैं। अध्वर्युगण घृतादि आहुतियों द्वारा यथार्थभूत अग्निको सिक्षित करते हैं।

११ अग्नि ही श्रेष्ठ हैं। वे यजमानोंके गृहोंमें और महान् अन्तरिक्षके मूल स्थानमें उत्पन्न हुए हैं। अग्नि पादरहित और शिरोवर्जित हैं। वे शरीरके अन्तभागका गोपन करके, जलवर्षी मेघके निलयमें, अपनेको धूमाकार बनाते हैं।

१२ हे अग्नि, तुम स्तुतियुक्त उदकके उत्पत्तिस्थानमें, मेघके कुलायभूत (घोंसला) अन्तरिक्षमें, वर्तमान हो। तेज तुम्हारे निकट सर्वप्रथम उपस्थित होता है। जो अग्नि स्पृहणीय, नित्य तरुण, कमनीय और दीप्तिमान् हैं, उन्हीं अग्निके उद्देशसे सप्त होता स्तुति करते हैं।

अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभिप्रसेदुर्ऋतमाशुषाणा : ।
अश्मव्रजा : सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आजन्नुषसो हुवाना : ॥१३॥
ते मर्मृजत ददृवांसो अद्रिं तदेषामन्ये अभितो विवोचन् ।
पश्वयन्त्रासो अभिकारमर्चन्विदन्त ज्योतिश्चकृपन्त धीभि : ॥१४॥
ते गव्यता मनसा दृध्रमुब्धं गा येमानं परिसन्तमद्रिम् ।
दृह्ळं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रु : ॥१५॥
ते मन्वत प्रथमं नाम धेनोस्त्रि : सप्तमातु : परमाणि विन्दन् ।
तज्जानतीरभ्यनूषत व्रा आविर्भुव दरुणीर्यशसा गो : ॥१६॥
नेशत्तमो दुधितं रोचत द्यौरुद्देव्या उषसो भानुरर्त ।
आसूर्यो बृहतस्तिष्ठदज्राँ ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥१७॥

---

१३ इस लोकमें, हमारे पितृपुरुषों (अङ्गिरा आदि) ने, यज्ञ करनेके लिये, अग्निके अभिमुख गमन किया था। प्रकाशके लिये उषा देवीका आह्वान करते हुए उन लोगोंने, अग्नि-परिचर्याके बलसे, पर्वतविलान्तर्वर्ती अन्धकारके मध्यसे दोहवती धेनुओंको बाहर किया था।

१४ उन लोगोंने, पर्वतको विदीर्ण करते समय, अग्निकी परिचर्या की थी। अन्य ऋषियोंने उनके कर्मका कीर्त्तन सर्वत्र किया था। उन्हें पशुओंको बचानेके उपाय ज्ञात थे। अभिमत फलप्रद अग्निका स्तवन करते हुए उन्होंने ज्योति लाभ किया था; और, बुद्धिबलसे यज्ञ किया था।

१५ अङ्गिरा आदि कर्मोंके नेता और अग्निकी कामनावाले थे। उन्होंने मनसे गो-लाभकी इच्छा करके द्वारनिरोधक, दृढ़बद्ध, सुदृढ़, गौओंके अवरोधक एवम् सर्वतः व्याप्त गोपूर्ण गोष्ठ-रूप पर्वतका, अग्निविषयक स्तुति द्वारा, उद्घाटन किया था।

१६ हे अग्नि, स्तोत्र करनेवाले अङ्गिरा आदिने ही पहले-पहल जननी वाक्के सम्बन्धी स्तुतिसाधक शब्दोंको जाना, पश्चात् वचन-सम्बन्धी सताईस छन्दोंको प्राप्त किया। अनन्तर इन्हें जाननेवाली उषाका स्तवन किया एवम् सूर्यके तेजके साथ अरुणवर्णा उषा प्रादुर्भूत हुई।

१७ रात्रिकृत अन्धकार उषा द्वारा प्रेरित होनेपर विनष्ट हुआ। अन्तरीक्ष दीप्त हुआ। उषा देवीकी प्रभा उद्गत हुई। मनुष्योंके सत् और असत् कर्मोंका अवलोकन करते हुए सूर्यदेव महान् अजर पर्वतके ऊपर आरूढ़ हुए।

आदित् पश्चा बुबुधाना व्यख्यन्नादिद्रत्नं धारयन्त द्युभक्तम् ।
विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु ॥१८॥
अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम् ।
शुच्यूधो अतृणन्न गवामन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः ॥१९॥
विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् ।
अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृलीको भवतु जातवेदाः ॥२०॥

२ सूक्त

अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि ।
होता यजिष्ठो मह्ना शुचध्यै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्यै ॥१॥

---

१८ सूर्योदयके अनन्तर अङ्गिरा आदिने पणियों द्वारा अपहृत गौओंको जानकर, पीछेकी ओरसे, उन गौओंको अच्छी तरहसे देखा एवम् दीप्तियुक्त धन धारण किया। इनके समस्त गृहोंमें यजनीय देवगण आये। वरुण-जनित उपद्रवोंका निवारण करनेवाले हे मित्रभूत अग्नि, जो तुम्हारी उपासना करता है, उसे सत्य फल लाभ हो।

१९ हे अग्नि, तुम अत्यन्त दीप्तिमान्, देवोंके आह्वाता, विश्वपोषक और सर्वापेक्षा यागशील हो। तुम्हारे उद्देशसे हम स्तुति करते हैं। यजमान लोग, तुम्हें आहुति देनेके लिये, गौओंके ऊधःप्रदेशसे शुद्ध दुग्धका दोहन नहीं करते हैं और न सोमलता-सम्बन्धी शोधित अन्नको ही गृहमें प्रक्षिप्त करते हैं। वे लोग केवल तुम्हारी स्तुति करते हैं।

२० अग्नि समस्त यज्ञार्ह देवोंके पोषक हैं। अग्नि सम्पूर्ण मनुष्योंके लिये अतिथिवत् पूज्य हैं। स्तोताओंके अन्नभोजी अग्नि, स्तोताओंके लिये, सुखकर हों।

——

१ जो मरणधर्म-रहित अग्नि, मनुष्योंके मध्यमें, सत्यवान् होकर निहित हैं, जो दीप्तिमान् अग्नि इन्द्रादि, देवताओंके मध्यमें, शत्रुओंके पराभवकर्ता हैं, वे ही अग्नि देवोंके आह्वाता और सबकी अपेक्षा अधिक यज्ञ करनेवाले हैं। वे अपनी महिमासे प्रदीप्त होनेके लिये उत्तर वेदिपर स्थापित हुए हैं एवम् हवि द्वारा यजमानोंको स्वर्ग भेजनेके लिये स्थापित हुए हैं।

इह त्वं सूनो सहसो नो अद्यजातो जाताँ उभयाँ अन्तरग्ने ।
दूत ईयसे युयुजान ऋष्व ऋजुमुष्कान् वृषण: शुक्राँश्च ॥२॥
अत्या वृधस्नू रोहिता घृतस्नू ऋतस्य मन्ये मनसा जविष्ठा ।
अन्तरीयसे अरुषा युजानो युष्माँश्च देवान्विश आ च मर्तान् ॥३॥
अर्यमणं वरुणं मित्रमेषामिन्द्राविष्णूमरुतो अश्विनोत ।
स्वश्वो अग्ने सुरथः सुराधा एदुवह सुहविषे जनाय ॥४॥
गोमाँ अग्नेविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः ।
इलावाँ एषो असुर प्रजावान्दीर्घो रयि: पृथुबुध्नः सभावान् ॥५॥
यश्त इध्मं जभरत् सिष्विदानो मूर्धानं वाततपते त्वाया ।
भुवस्तस्य स्वतवाँः पायुरग्ने विश्वस्मात् सीमघायत उरुष्य ॥६॥

---

२ हे बलपुत्र अग्नि, तुम आज हमारे इस कार्यमें संस्कृत हुए हो। हे दर्शनीय अग्नि, तुम ऋजु, मांसल, दीप्तिमान् और बलवान् अश्वोंको रथमें युक्त करके जन्मविशिष्ट देव और मनुष्योंके मध्यमें, हव्य पहुँचानेके लिये, दूत बनकर जाते हो।

३ हे अग्नि, तुम सत्यभूत हो। मैं तुम्हारे रोहितवर्णवाले अश्वद्वयकी स्तुति करता हूँ। वे अश्व मनकी अपेक्षा भी अधिक वेगवान् हैं, वे अन्न और जलका क्षरण करते हैं। तुम दीप्तिमान् अश्वद्वयको रथमें युक्त करके देवों और मनुष्योंके मध्यमें प्रवेश करो।

४ हे अग्नि, तुम्हारा अश्व उत्तम है, रथ उत्तम है और धन भी उत्तम है। इन मनुष्योंके मध्यमें शोभन हविवाले यजमानके लिये अर्यमा, वरुण, मित्र, इन्द्राविष्णु, मरुद्गण और अश्विद्वयका आनयन करो।

५ हे बलवान् अग्नि, हमारा यह यज्ञ गोविशिष्ट, मेषविशिष्ट और अश्वविशिष्ट हो। जो यज्ञ अध्वर्यु और यजमानविशिष्ट है, वह यज्ञ सर्वदा अप्रधृष्य, हविरन्नसे युक्त तथा पुत्र-पौत्रवान् हो एवम् अविच्छिन्न अनुष्ठानसे संयुक्त, धनसम्पन्न, बहुत धनोंका हेतुभूत और उपदेष्टाओंसे युक्त हो।

६ हे अग्नि, जो मनुष्य तुम्हारे लिये स्वेद (पसीनेसे)-युक्त होकर लकड़ियोंको ढोता है, जो तुम्हें प्राप्त करनेकी कामनासे अपने मस्तकको काष्ठभारसे उत्तप्त करता है, उसे तुम धनवान् बनाते हो और उसका पालन करते हो। जो कोई उसकी अनिष्ट-कामना करता है, उससे तुम उसकी रक्षा करो।

यस्ते भरादन्नियते चिदन्नं निशिषन्मन्द्रमतिथिमुदीरत् ।
आदेवयुरिनधत्ते दुरोणे तस्मिन्रयिर्ध्रुवो अस्तु दास्वान् ॥७॥
यस्त्वा दोषा य उषसि प्रशंसात् प्रियं वा त्वा कृणवते हविष्मान् ।
अश्वो न स्वेदम् आहेम्यावान्तमंहसः पीपरो दाश्वांसम् ॥८॥
यस्तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद्दुवस्त्वे कृणवते यतस्रुक् ।
न स राया शशमानो वियोषन्नैनमंहः परिवरदघायोः ॥९॥
यस्य त्वमग्ने अध्वरं जुजोषो देवो मर्तस्य सुधितं रराणः ।
प्रीते दसद्धोत्रा सा यविष्ठासाम यस्य विधतो वृधासः ॥१०॥
चित्तिमचित्तिं चिनवद्विविद्वान् पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्तान् ।
राये च नः स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्य ॥११॥

---

७ हे अग्नि, अन्नकी इच्छा करनेपर जो कोई तुम्हें देनेके लिये हविरन्न धारण करता है, जो तुम्हें हर्षकर सोम प्रदान करता है, जो अतिथि-रूपसे तुम्हारा उत्तर वेदिपर प्रणय करता है और जो व्यक्ति देवत्वकी इच्छा करके तुम्हें गृहमें समिद्ध करता है, उसका पु धर्मपथमें निश्चल और औदार्यविशिष्ट हो ।

८ हे अग्नि, जो मनुष्य रात्रिकालमें और जो व्यक्ति उषाकालमें तुम्हारी स्तुति करता है एवम् जो यजमान प्रिय हव्यसे युक्त होकर तुम्हें प्रसन्न करता है, तुम अपने गृहमें सुवर्ण-निर्मित सज्जा (काठी)-विशिष्ट अश्वकी तरह विचरण करते हुए उस यजमानकी, दरिद्रतासे, रक्षा करो ।

९ अग्नि, तुम अमर हो । जो यजमान तुम्हारे लिये हव्य प्रदान करता है, जो तुम्हारे लिये स्रुक्को संयत करता है, जो तुम्हारी परिचर्या करता है, वह स्तोत्र करनेवाला यजमान धन-शून्य नहीं हो, हिंसकोंका आहनन उसका स्पर्श नहीं करे ।

१० हे अग्नि, तुम आनन्दयुक्त और दीप्तिमान् हो । तुम जिस मनुष्यका सुसम्पादित और हिंसा-रहित अन्न भक्षण करते हो, हे युवतम, वह होता निश्चय ही प्रीत होता है। अग्निके परिचर्याकारी जो यजमान यज्ञके वर्द्धयिता हैं, हम उन्हींके होंगे ।

११ अश्वपालक जिस तरहसे अश्वोंके कान्त एवम् दुर्वह पृष्ठोंको पृथक् कर सकते हैं उसी तरह विद्वान् अग्नि पाप और पुण्यको पृथक् करें । हे अग्निदेव, हम लोगोंको सुन्दर पुत्रसे युक्त धन हो । तुम दाताको धन हो और अदाताके समीपसे उसकी रक्षा करो ।

कविं शशासुः कवयो दब्धानि धारयन्तो दुर्यास्वायोः ।
अतस्त्वं दृश्याँ अग्न एतान् पड्भिः पश्येरद्भुताँ अर्य एवैः ॥१२॥
त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ ।
रत्नं भर शशमानाय घृष्वे पृथुश्चन्द्रमवसे चर्षणिप्राः ॥१३॥
अधा ह यद्वयमग्ने त्वाया पड्भिर्हस्तेभिश्चकृमा तनूभिः ।
रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोर्ऋतं येमुः सुध्य आशुषाणाः ॥१४॥
अधा मातुरुषसः सप्तविप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नॄन् ।
दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेमाद्रिं रुरुजेम धनिनं शुचन्तः ॥१५॥
अधा यथा नः पितरः परासः पत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः ।
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरपव्रन् ॥१६॥

१२ हे अग्नि, मनुष्योंके गृहोंमें निवास करनेवाले, अतिरस्कृत देवोंने तुम मेधावीको, होता होनेके लिये, कहा है। हे अग्नि, तुम मेधावी हो, यज्ञस्वामी हो; अतएव तुम अपने चञ्चल तेजसे दर्शनीय और अद्भुत देवोंको देखो।

१३ हे दीप्तिमान् युवतम अग्नि, तुम मनुष्योंकी अभिलाषाके पूरक एवम् उत्तर वेदिपर प्रणयनके योग्य हो। जो यजमान, तुम्हारे लिये, सोमाभिषव करता है, तुम्हारी परिचर्या करता है और तुम्हारा स्तवन करता है, उसकी रक्षाके लिये तुम उसे प्रभूत, आह्लादकर तथा उत्तम धन दो।

१४ हे अग्नि, जिस लिये हम लोग तुम्हारी कामनासे हाथ, पैर और शरीर द्वारा कार्य करते हैं, उसी लिये यज्ञरत और शोभनकर्मा अङ्गिरा आदिने, बाहु द्वारा काष्ठ मन्थन करके, तुम सत्यभूतको उत्पन्न किया है, जैसे शिल्पिगण रथ निर्माण करते हैं।

१५ हम सात व्यक्ति (वामदेव और छ अङ्गिरा) प्रथम मेधावी है। हम लोगोंने माता उषाके समीपसे अग्निके परिचारकों या रश्मियोंको उत्पन्न किया है। हम द्योतमान आदित्यके पुत्र अङ्गिरा हैं। हम दीप्तिमान् होकर उदक-विशिष्ट पर्वतका या मेघका भेदन करेंगे।

१६ हे अग्नि, हम लोगोंके श्रेष्ठ, पुरातन और सत्यभूत यज्ञमें रत पितृपुरुषोंने दीप्त स्थान तथा तेज प्राप्त किया था। उन्होंने उक्थोंका उच्चारण करके अन्धकारको विनष्ट किया था तथा पणियों द्वारा अपहृत अरुणवर्णा गौओंको या उषाको प्रकाशित किया था।

सुकर्माण: सुरुचो देवयन्तोयो न देवा जनिमा धमन्त: ।
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमूर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन् ॥१७॥
आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद्देवानां तज्जनिमान्त्युग्र ।
मर्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायो: ॥१८॥
अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभाती: ।
अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रं देवस्य मर्मृजतश्चारु चक्षु: ॥१९॥
एता ते अग्न उचथानि वेधो वोचाम कवये ता जुषस्व ।
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो राय: पुरुवार प्रयन्धि ॥२०॥

* * *

१७ सुन्दर यज्ञादि कार्यमें रत दीप्तियुक्त तथा देवाभिलाषी स्तोता, धौंकनी द्वारा, निर्मल लोहेकी तरह, अपने मनुष्य जन्मको, यागादि कार्य द्वारा, निर्मल करते हैं। वे अग्निको दीप्त तथा इन्द्रको प्रवृद्ध करते हैं। चारो ओर उपवेशन करके उन्होंने महान् गो-समूहको प्राप्त किया था।

१८ हे तेजस्वी अग्नि, जिस तरह अन्न-विशिष्ट गृहमें पशु-समूह रहता है, वैसे ही अङ्गिरा आदि देवोंके गो-समूहके निकट हैं। उनके द्वारा लायी गयी गौओंसे प्रजा समर्थ हुई थी। आर्य-अपत्य वर्द्धन-समर्थ और मनुष्य पोषण-समर्थ हुए थे।

१९ हे अग्नि, हम तुम्हारी परिचर्या करते हैं, जिससे हम शोभन कर्मवाले होते हैं। तमोनिवारिका उषा सकल तेज धारण करती है। वह, पूर्ण रूपसे, आह्लादकर अग्निको बहुधा धारण करती है। तुम द्योतमान हो। हम तुम्हारे मनोहर तेजकी परिचर्या करते हैं।

२० हे विधाता अग्नि, तुम मेधावी हो। हम तुम्हारे उद्देशसे इस सम्पूर्ण उक्थका उच्चारण करते हैं, तुम इसका सेवन करो। तुम उद्दीप्त होकर हमें विशेष रूपसे धनवान् करो। तुम बहुतों द्वारा वरणीय हो। तुम हम लोगोंको महान् धन प्रदान करो।

* * *

३ सूक्त

अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥१॥
अयं योनिश्चकृमा यं वयन्ते जायेव पत्य उशती सुवासाः ।
अर्वाचीनः परिवीतो निषीदेमा उते स्वपाक प्रतीचीः ॥२॥
आशृण्वते अदृपिताय मन्म नृचक्षसे सुमृलीकाय वेधः ।
देवाय शस्तिममृताय शंस ग्रावेव सोता मधुषुद्यमीले ॥३॥
त्वं चिन्नः शम्या अग्ने अस्या ऋतस्य बोध्यृतचित् स्वाधीः ।
कदा त उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति सख्या गृहे ते ॥४॥
कथा ह तद्वरुणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कं न आगः ।
कथा मित्राय मीह्लुषे पृथिव्यै ब्रवः कदर्यम्णे कद्भगाय ॥५॥

१ हे यजमानो, यज्ञके अधिपति, देवोंके आह्वाता, द्यावा-पृथिवीके अन्नदाता, सुवर्णकी तरह प्रभावाले और शत्रुओंको रुलानेवाले रुद्रात्मक अग्निकी, अपनी रक्षाके लिये, वज्र-रूप मृत्युके पूर्व ही, सेवा करो ।

२ हे अग्नि, पतिकामिनी, सुवस्त्राच्छादिता जाया जिस तरह पतिके लिये स्थान प्रस्तुत करती है, उसी तरह हम लोग भी उत्तर वेदिरूप प्रदेश प्रस्तुत करते हैं, यही तुम्हारा स्थान है । हे सुकर्मा अग्नि, तुम तेज द्वारा परिवृत होकर हम लोगोंके अभिमुख उपवेशन करो । यह सकल स्तुति तुम्हारे अभिमुख उपवेशन करे ।

३ हे स्तोता, स्तोत्र-श्रवण-परायण, अप्रमत्त, मनुष्योंके द्रष्टा, सुखकर और अमर अग्निदेवके उद्देशसे स्तोत्र और शस्त्रका पाठ करो । प्रस्तरकी तरह सोमाभिषवकारी यजमान अग्निकी स्तुति करते हैं ।

४ हे अग्नि, हम लोगोंके इस कर्मके तुम देवता होओ । हे सत्यज्ञ अग्नि, तुम सुकर्मा हो । तुम्हें हमारा स्तोत्र अवगत हो । उन्मादकारक तुम्हारे स्तोत्र कब उच्चारित होंगे ? हमारे गृहमें तुम्हारे साथ कब सखाभाव होगा ?

५ हे अग्नि, वरुणके निकट तुम हम लोगोंकी पापजन्य निन्दा क्यों करते हो ? अथवा सूर्यके निकट क्यों निन्दा करते हो ? हम लोगोंका क्या अपराध है ? अभिमत फलदाता मित्र और पृथिवीको तुमने क्यों कहा ? अथवा अर्यमा और भग नामक देवोंसे ही तुमने क्यों कहा ?

कद्धिष्णयासु वृधसानो अग्ने कद्वाताय प्रतवसे शुभं ये ।
परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृघ्ने ॥६॥
कथा महे पुष्टिं भराय पूष्णे कद्रुद्राय सुमखाय हविर्दे ।
कद्विष्णव उरुगायाय रेतो ब्रवः कदग्ने शरवे बृहत्यै ॥७॥
कथा शर्धाय मरुतामृताय कथा सूरे बृहते पृच्छ्यमानः ।
प्रति ब्रवोदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ॥८॥
ऋतेन ऋतं नियतमील आ गोरामा सचा मधुमत् पक्वमग्ने ।
कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय ॥९॥
ऋतेन हि॰ मा वृषभश्चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन ।
अस्पन्दमानो अचरद्वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥१०॥

---

६ हे अग्नि, जब तुम यज्ञमें वर्द्धमान होते हो, तब उस कथाको क्यों बोलते हो ? प्रकृष्ट बलयुक्त, शुभप्रद, सर्वत्रगामी, सत्यके नेता वायुको वह कथा क्यों कहते हो ? पृथिवीको क्यों कहते हो ? हे अग्नि, पापी मनुष्योंको मारनेवाले रुद्रदेवको वह कथा क्यों कहते हो ?

७ हे अग्नि, महान्, पुष्टिप्रद पूषाको वह पाप-कथा क्यों कहते हो ? यज्ञभाजन, हविःप्रद रुद्रको वह क्यों कहते हो ? बहुस्तुति-भाजन विष्णुको पापकी कथा क्यों कहते हो ? वृहत् संवत्सर अथवा निर्ऋतिको वह कथा क्यों कहते हो ?

८ हे अग्नि, सत्यभूत मरुद्गणको वह कथा (मेरा अपराध) क्यों कहते हो ? पूछे जानेपर महान् सूर्यको वह कथा क्यों कहते हो ? देवी अदितिको और त्वरितगमन वायुको क्यों कहते हो ? हे सर्वज्ञ जातवेदा, तुम द्युलोकके कार्यका साधन करो ।

९ हे अग्नि, हम सत्यभूत यज्ञके साथ नित्य सम्बद्ध दुग्धकी याचना, गौओंके निकट करते हैं। अपक्व होकर भी वह गौ मधुर और पक्व दुग्ध धारण करती है । वह कृष्णवर्णा होकर भी शुभ्र, पुष्टिकारक और प्राणधारक दुग्ध द्वारा मनुष्योंका पोषण करती हैं ।

१० अभिमत फलवर्षक और श्रेष्ठ अग्नि सत्यभूत और पुष्टिकर दुग्ध द्वारा सिक्त होते हैं । अन्नद अग्नि एकत्र अवस्थिति करके, सर्वत्र तेज द्वारा, विचरण करते हैं । जलवर्षक सूर्य अन्तरिक्ष या मेघसे पयोदोहन करते हैं ।

ऋतेनाद्रिं व्यसन् भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः ।
शुनं नरः परिषदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ॥११॥
ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अर्णोभिरापो मधुमद्भिरग्ने ।
वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः प्रसदमित् स्रवितवे दधन्युः ॥१२॥
मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋणं वेर्मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम ॥१३॥
रक्षाणो अग्ने तव रक्षणेभीरारक्षाणः सुमख प्रीणानः ।
प्रतिष्फुर विरुज वीड्वंहो जहि रक्षो महिचिद्वा वृधानम् ॥१४॥
एभिर्भव सुमना अग्ने अर्कैरिमान् स्पृश मन्मभिः शूर वाजान् ।
उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व सन्ते शस्तिर्देववाता जरेत ॥१५॥

---

११ मेधातिथि आदिने यज्ञ द्वारा गो-निरोधक पर्वतको विदीर्ण करके फेंक दिया था; और, गौओंके साथ मिले थे । कर्मोंके नेता उन अङ्गिरोगणने सुखपूर्वक उषाको प्राप्त किया था। तदनन्तर सूर्यदेव, मन्थन द्वारा अग्निके उत्पन्न होनेपर, उदित हुए ।

१२ हे अग्नि, मरण-रहिता, विघ्नशून्या और मधुर जलयुक्ता देवी नदियाँ यज्ञ द्वारा प्रेरित होकर, जानेके लिये प्रोत्साहित अश्वकी तरह, सर्वदा प्रवाहित होती हैं ।

१३ हे अग्नि, जो कोई हमारी हिंसा करता है, उसके यज्ञमें तुम कभी भी नहीं जाना। किसी दुष्ट बुद्धिवाले प्रतिवासी (पड़ोसी) के यज्ञमें नहीं जाना । हमें छोड़कर दूसरे बन्धुके यज्ञमें नहीं जाना । तुम कुटिलचित्त भ्राताके ऋण (हवि) की कामना नहीं करना । हम लोग भी मित्र या शत्रु द्वारा प्रदत्त धनका भोग नहीं करेंगे । केवल तुम्हारे ही द्वारा प्रदत्त धनका भोग करेंगे ।

१४ हे सुयज्ञ अग्नि, तुम हम लोगोंके रक्षक हो । तुम हव्य द्वारा प्रीत होकर आश्रय दान द्वारा हमारी रक्षा करो । तुम हम लोगोंको प्रदीप्त करो । हम लोगोंके दृढ़ पापका तुम विनाश करो एवम् महान् और वर्द्धमान राक्षसका विनाश करो ।

१५ हे अग्नि, हमारे इस अर्चनीय शास्त्र द्वारा तुम प्रीतमना होओ । हे शूर, हमारे इस स्तोत्र-सहित अन्नका ग्रहण करो । हे हविरन्नके गृहीता अग्नि, मन्त्रोंका सेवन करो । देवोंके उद्देशसे प्रयुक्त स्तुति तुम्हें संवर्द्धित करे ।

एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि ।
निवचना कवये काव्यान्यशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः ॥१६॥

४ सूक्त

रक्षोहाग्नि देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥१॥
तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनुस्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गान सन्दितो विसृज विष्वगुल्काः ॥२॥
प्रतिस्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे दघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरा दधर्षीत् ॥३॥

१६ हे विधाता अग्नि, तुम कर्मविषयको जानेवाले और उत्कृष्ट द्रष्टा हो । हम प्राज्ञ लोग, तुम्हारे उद्देशसे, फलप्रापक, गूढ़, अतिशय वक्तव्य और हम कवियों द्वारा प्रथित इस समस्त वाक्यका, स्तोत्र और शस्त्रोंके साथ, उच्चारण करते हैं ।

---

१ हे अग्नि, तुम अपने तेजःपुञ्जको विस्तारित करो, जैसे व्याध अपने जालको विस्तारित करता है । जैसे अमात्यके साथ राजा हाथीके ऊपर गमन करता है, वैसे ही तुम भयशून्य तेजःसमूहके साथ गमन करो । तुम शीघ्रगामिनी सेनाका अनुगमन करके शत्रु-सैन्यको हिंसित करो और शत्रुओंको नष्ट करो । अत्यन्त तीक्ष्ण तेज द्वारा तुम राक्षसोंका भेदन करो ।

२ हे अग्नि, तुम्हारी भ्रमणकारिणी और शीघ्रगामिनी रश्मियाँ सर्वत्र प्रसृत होती हैं । तुम अत्यन्त दीप्तिमान् हो । अभिभवसमर्थ तेजोराशि द्वारा तुम शत्रुओंको दग्ध करो । शत्रु तुम्हें निरुद्ध नहीं कर सकते हैं । तुम जुहू द्वारा तापप्रद तथा पतनशील विस्फुलिङ्गको और उल्का (तेजःपुञ्ज) को सर्वत्र विकीर्ण करो ।

३ हे अग्नि, तुम अतिशय वेगवान् हो । शत्रुओंको बाधा देनेवाली रश्मियोंको तुम शत्रुओंके प्रति प्रेरित करो । कोई तुम्हारी हिंसा नहीं कर सकता है । जो कोई दूरसे हम लोगोंकी अनिष्ट-कामना करता है अथवा जो निकटसे अनिष्ट करनेकी इच्छा करता है, तुम उसके निकटसे इस सकल प्रजाकी रक्षा करो । हम लोग तुम्हारे हैं । जिससे कोई शत्रु हम लोगोंको पराभूत नहीं कर सके ।

उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्वन्यमित्राँ ओषतात्तिग्महेते ।
यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचातं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥४॥
ऊर्ध्वो भव प्रतिविध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अवस्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिम जामिं प्रमृणीहि शत्रून् ॥५॥
स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो विदुरो अभिद्यौत् ॥६॥
सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।
पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः ॥७॥
अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक् सन्ते वावाता जरतामियं गीः ।
स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमास्मे क्षत्राणि धारयेरनुद्यून् ॥८॥

४ हे तीक्ष्ण ज्वालाविशिष्ट अग्नि, उठो, राक्षसोंको मारनेके लिये प्रस्तुत होओ । शत्रुओंके ऊपर ज्वालाजालका विस्तार करो। तेजोराशि द्वारा शत्रुओंको भली भाँति दग्ध करो । हे समीद्ध अग्नि, जो व्यक्ति हमारे साथ शत्रुता करता है, उस व्यक्तिको, शुष्क काष्ठकी तरह, तुम दग्ध कर दो ।

५ हे अग्नि, तुम राक्षसोंको मारनेके लिये उद्यत होओ । हमसे जितने अधिक बलवान् हैं, उन सबको एक-एक करके मारो । अपने देव-सम्बन्धी तेजको आविष्कृत करो । प्राणियोंको क्लेश देनेवालोंके दृढ़ धनुष्को ज्या-शून्य करो और पूर्वमें पराजित अथवा अपराजित शत्रुओंको विनष्ट करो ।

६ युवतम अग्नि, तुम गमनशील और प्रधान हो । जो कोई तुम्हारे लिये स्तुति प्रेरित करता है, वह पुरुष तुम्हारे अनुग्रहको प्राप्त करता है। तुम यज्ञस्वामी हो । तुम उसके लिये समस्त शोभन दिनोंको, धनोंको और रत्नोंको ग्रहण करो । तुम उसके गृहके अभिमुख द्योतित होओ।

७ हे अग्नि, जो व्यक्ति नित्य सङ्कल्पित हव्य द्वारा अथवा उक्थ मन्त्र द्वारा तुम्हें प्रीत करनेकी इच्छा करता है, वह पुरुष सौभाग्यवान् और सुदाता हो। वह कठिनतासे लाभ करनेके योग्य अपनी सौ वर्षोंकी आयुको प्राप्त करे । उस यजमानके लिये सब दिन शोभन हों । वह यज्ञफल-साधन-समर्थ हो ।

८ हे अग्नि, हम तुम्हारी अनुग्रह-बुद्धिकी पूजा करते हैं । तुम्हारे उद्देशसे उच्चारित वाक्य प्रतिध्वनित होकर तुम्हारी स्तुति करे। हम लोग पुत्र-पौत्रादिके साथ उत्तम रथ और उत्तम अश्वोंसे युक्त होकर तुम्हारी परिचर्या करेंगे। तुम हम लोगोंके लिये प्रतिदिन धन धारण करो।

इह त्वा भूर्याचरेदुपत्मन्दोषावस्तर्दीदिवांसमनुद्यून् ।
क्रीडन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् ॥९॥
यस्त्वास्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन ।
तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग् जुजोषत् ॥१०॥
महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।
त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ॥११॥
अस्वप्नजस्तरणयः सुशोवा अतन्द्रासोवृका अश्रमिष्ठाः ।
ते पायवः सध्र्यञ्चो निषद्याग्ने तव नः पान्त्वमूर ॥१२॥
ये पायवो मामतेयन्ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥१३॥

९ हे अग्नि, तुम अहर्निश प्रदीप्त होते हो। इस लोकमें पुरुष, तुम्हारे समीप, तुम्हारी परिचर्या प्रतिदिन करते हैं। हम भी शत्रुओंके धनको आत्मसात् करके, अपने गृहमें पुत्र-पौत्रोंके साथ विहार करते हुए, प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारी परिचर्या करते हैं।

१० हे अग्नि, जो पुरुष सुन्दर अश्वयुक्त होकर, यागयोग्य धनविशिष्ट होकर और व्रीहि आदि धनसे संयुक्त रथके साथ तुम्हारे समीप गमन करता है, उस पुरुषके तुम रक्षक होओ। जो पुरुष अनुक्रमसे अतिथियोग्य पूजा तुम्हें प्रदान करता है, उसके तुम सखा होओ।

११ हे होता, युवतम और प्रज्ञावान् अग्नि, स्तोत्र द्वारा जो बन्धुता उत्पन्न हुई है, उसके द्वारा हम महान् राक्षसरूप शत्रुओंको भग्न करें। यह स्तोत्रात्मक वचन पिता गोतमके निकटसे हमारे समीप आया है। तुम शत्रुओंके विनाशक हो। तुम हमारे स्तुति-वचनको जानो।

१२ हे सर्वज्ञ अग्नि, तुम्हारी रश्मियाँ सतत जागरूक, सर्वदा गमनशील, सुखान्वित, आलस्य-रहित, अहिंसित, अश्रान्त, परस्पर सङ्गत और रक्षणक्षम हैं। वे इस स्थानपर उपवेशन करके हमारी रक्षा करें।

१३ हे अग्नि, रक्षा करनेवाली तुम्हारी इन रश्मियोंने, कृपा करके, ममताके पुत्र चक्षुहीन दीर्घतमाकी, शापसे, रक्षा की थी। तुम सर्व-प्रज्ञावान् हो। तुम आदरपूर्वक उन रश्मियोंका पालन करते हो। तुम्हारे शत्रु तुम्हें विनष्ट करनेकी इच्छा करके भी तुम्हारा विनाश नहीं कर सकते हैं।*

---

* उचथ्य ऋषिकी पत्नी ममता गर्भिणी थी। उसके देवर बृहस्पतिने एक दिन उसके साथ सम्भोग किया; किन्तु पूर्वसे ही वर्तमान गर्भस्थ रेतने उनसे रेतःसेक-कालमें कहा कि, "मैं यहाँ वर्तमान हूँ, आप रेतःक्षण नहीं करें।" बृहस्पतिने उसे अन्धा होनेका शाप दिया। वही दीर्घतमा हुआ। पीछे अग्निकी स्तुति करके दीर्घतमाने आँखें पायीं।—सायण।

त्वया वयं सधन्यस्त्वोतास्तव प्रणीत्यश्याम वाजान् ।
उभा शंसा सूदय सत्यतातेनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण ॥१४॥
अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय ।
दहाशसो रक्षसः पाह्यस्मान् द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् ॥१५॥

---

१४ हे अग्नि, तुम्हारा गमन लज्जाशून्य है । हम स्तोता, तुम्हारे अनुग्रहसे, समान धनवाले होकर तुम्हारे द्वारा रक्षित हों। तुम्हारी प्रेरणासे अन्न लाभ करें । हे सत्यविस्तारक और पाप-नाशक, निकटस्थ या दूरस्थ शत्रुओंको विनष्ट करो तथा अनुक्रमसे समस्त कार्य (इस सूक्तमें प्रतिपादित) करो ।

१५ हे अग्नि, इस प्रदीप्त स्तुति द्वारा हम तुम्हारी परिचर्या करें । हमारे इस स्तोत्रको प्रतिगृहीत करो । स्तुतिविहीन राक्षसोंको भस्मसात् करो । हे मित्रोंके पूजनीय अग्नि, शत्रु और निन्दकोंके परिवादसे हमारी रक्षा करो ।

चतुर्थ अध्याय समाप्त

पञ्चम अध्याय

५ सूक्त

वैश्वानर अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

वैश्वानराय मीह्लुषे सजोषाः कथा दाशेमाग्नये बृहद्भाः ।
अनूनेन बृहता वक्षथेनोपस्तभायदुपमिंन रोधः ॥१॥
मा निन्दत य इमां मह्यं रातिं देवो ददौ मर्त्याय स्वधावान् ।
पाकाय गृत्सो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यह्वो अग्निः ॥२॥
साम द्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः सहस्ररेता वृषभस्तुविष्मान् ।
पदं न गोरपगूह्ळं विविद्वानग्निर्मह्यं प्रेदु वोचन्मनीषाम् ॥३॥
प्रताँ अग्निर्बभसत्तिग्मजंभस्तपिष्ठेन शोचिषायः सुराधाः ।
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धाम प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि ॥४॥

---

१ समान रूपसे प्रीतियुक्त होकर हम यजमान वैश्वानर नामक अभीष्टवर्षी, महान् दीप्तियुक्त अग्निको किस प्रकारसे हव्य प्रदान करें? स्तम्भ जिस तरहसे छादन (छप्पर) को धारण करता है, उसी तरहसे वे सम्पूर्ण अतएव बृहत् शरीर द्वारा द्युलोकका धारण करते हैं।

२ हे होताओ, जो अग्निदेव हव्ययुक्त होकर मरणशील और परिपक्व बुद्धिविशिष्ट हम यजमानोंको धन दान करते है, उनकी निन्दा मत करो। वे मेधावी, अमर और प्रज्ञावान् हैं। वे वैश्वानर, नेतृश्रेष्ठ एवम् महान् हैं।

३ मध्यम और उत्तम रूप स्थानद्वयको परिव्याप्त करनेवाले, तीक्ष्ण तेजोविशिष्ट, प्रभूत सारवान्, अभीष्टवर्षी और धनवान् अग्नि अत्यन्त गुप्त गोपदकी तरह रहस्य हैं। वे ज्ञातव्य हैं। महान् स्तोत्रको विशेष रूपसे जानकर विद्वान् हमें कहें।

४ विद्वान् मित्र और वरुणके प्रिय एवम् स्थिर तेजको जो द्वेषी हिंसित करता है उसे सुन्दर धनविशिष्ट और तीक्ष्णदन्त अग्नि अत्यन्त सन्तापकर तेज द्वारा, दग्ध करें।

अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् ॥५॥
इदं मे अग्ने कियते पावकामिनते गुरुं भारं न मन्म ।
बृहद्दधाथ घृषता गभीरं यह्वं पृष्ठं प्रयसा सप्तधातु ॥६॥
तमिन्वे३वसमना समानमभिक्रत्वा पुनती धीतिरश्याः ।
ससस्य चर्मन्नधिचारुपृश्नेरग्रे रुप आरुपितं जवारु ॥७॥
प्रवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहाहितमुप निणिग्वदन्ति ।
यदुस्रियाणामप वारिव व्रन् पाति प्रियं रुपो अग्रं पदं वेः ॥८॥
इदमुत्यन्महि महामनीकं यदुस्रिया सचत पूर्व्यं गोः ।
ऋतस्य पदे अधिदीद्यानं गुहा रघुष्यद्रघूयद्विवेद ॥९॥

---

५. भ्रातृरहिता, विपथगामिनी योषित्की तरह तथा पतिविद्वेषिणी दुष्टाचारिणी स्त्रीकी तरह यज्ञविहीन, अग्निविद्वेषी, सत्यरहित तथा सत्यवचनशून्य पापी नरकस्थानको उत्पन्न करता है।

६ हे शोधक अग्नि, हम तुम्हारे कर्मका परित्याग नहीं करते हैं। क्षुद्र व्यक्तिको जैसे गुरु भार दिया जाता है, उसी तरह तुम हमें प्रभूत धन दान करो। वह धन शत्रुधर्षक, अन्नयुक्त, दूसरोंके द्वारा अनवगाहनीय महान् स्पर्शनयोग्य एवम् सात प्रकार (सात ग्राम्य पशु और सात वन्य पशु) का है।

७ यह सुयोग्य एवम् सबके प्रति समान शोधयित्री स्तुति, उपयुक्त पूजाविधिके साथ वैश्वानरके निकट शीघ्र गमन करे। वह वैश्वानरके आरोहणकारी दीप्त मण्डल पृथ्वीके निकटसे अचल द्युलोकके ऊपर विचरण करनेके लिये, पूर्व दिशामें आरोपित हुई है।

८ लोग कहते हैं कि, दोग्धागण जलकी तरह जिस दुग्धका दोहन करते हैं, उस दुग्धको वैश्वानर गुहामें छिपा रखते हैं। वे विस्तीर्ण पृथ्वीका प्रिय एवम् श्रेष्ठ स्थानकी रक्षा करते हैं। मेरे इस वाक्यके अतिरिक्त और क्या वक्तव्य हो सकता है?

९ क्षीरप्रसविणी गौ अग्नि होत्रादि कर्ममें जिनकी सेवा करती है, जो अन्तरिक्षमें अत्यन्त दीप्तिमान् हैं, जो गुहामें निहित हैं, जो शीघ्र स्पन्दमान हैं और जो शीघ्र गमनकारी हैं, वे महान् और पूज्य हैं। सूर्य मण्डलात्मक वैश्वानरको हम जानते हैं।

अधद्युतानः पित्रोः सचासामनुत गुह्यं चारु पृश्नेः ।
मातुष्पदे परमे अन्तिषद्गोर्वृष्णः शोचिषः प्रयतस्य जिह्वा ॥१०॥
ऋतं वोचे नमसा पृच्छमानस्तवाशसा जातवेदो यदीदम् ।
त्वमस्य क्षयसि यद्ध विश्वं दिवि यदुद्रविणं यत् पृथिव्याम् ॥११॥
किं नो अस्य द्रविणं कद्ध रत्नं वि नो वोचो जातवेदश्चिकित्वान् ।
गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य रेकु पदं न निदाना अगन्म ॥१२॥
का मर्यादा वयुना कद्ध वाममच्छा गमेम रघवो न वजम् ।
कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सूरो वर्णेन ततनन्नुषासः ॥१३॥
अनिरेण वचसा फल्ग्वेन प्रतीत्येन कृधुना तृपासः ।
अधा ते अग्ने किमिहा वदन्त्यनायुधास आसता सचन्ताम् ॥ १४ ॥

---

१० इसके अनन्तर पिता-मातास्वरूप द्यावापृथिवीके मध्यमें व्याप्त होकर दीप्तिमान् वैश्वानर गौके ऊधःप्रदेशमें निगूढ़ रमणीय दुग्धको मुख द्वारा पान करनेके लिये प्रबोधित हों। अभीष्टवर्षी, दीप्त और प्रयत वैश्वानरकी जिह्वा माता गौके ऊधःप्रदेशरूप उत्कृष्ट स्थानमें, पान करनेकी इच्छासे, वर्तमान है।

११ हम यजमान पूछे जानेपर नमस्कारपूर्वक, सत्य बोलते हैं। हे जातवेदा, तुम्हारी स्तुति द्वारा यदि हम इस धनको प्राप्त करें, तो तुम्हीं इस धनके स्वामी होओ। तुम सम्पूर्ण धनके स्वामी होओ। पृथ्वीमें जितने धन हैं और द्युलोकमें जितने धन हैं, उन सब धनोंके तुम स्वामी हो।

१२ इस धनका साधनभूत धन क्या है? इसका हितकर धन क्या है? हे जातवेदा, तुम जानते हो, हमें कहो। इस धनकी प्राप्तिके लिये जो मार्ग है, उसका गूढ और उत्कृष्ट उपाय हमसे कहो? हम जिससे गन्तव्य स्थानको निन्दित होकर नहीं प्राप्त करें।

१३ पूर्व आदि सीमा क्या है? पदार्थ ज्ञान क्या है? और रमणीय पदार्थसमूह क्या है? शीघ्रगामी अश्व जिस तरहसे संग्रामके अभिमुख गमन करता है, उसी तरह हम इन्हें अधिगत करेंगे। द्युतिमती, मरणरहिता और आदित्यकी पत्नी प्रसवित्री उषा किस समय हम लोगोंके लिये प्रकाशित होकर व्याप्त होंगी?

१४ हे अग्नि, अन्नरहित, उक्थ मन्त्र और आरोपणीय अल्पाक्षर वचन द्वारा अतृप्त मनुष्य अभी इस लोकमें तुम्हें क्या कहता है? अर्थात् हविर्विहीन वाक्य द्वारा कुछ लाभ नहीं हो सकता है। हविरादि साधनसे हीन जन दुःख प्राप्त करते हैं।

अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णो वसोरनीकं नम आरुरोच ।
रुशद्वसानः सुदृशीकरूपः क्षितिर्न राया पुरुवारो अद्यौत् ॥१५॥

६ सूक्त

अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

ऊर्ध्वं ऊषुणो अध्वरस्य होतरग्ने तिष्ठ देवताता यजीयान् ।
त्वं हि विश्वमभ्यसि मन्म प्रवेधसश्चित्तिरसि मनीषाम् ॥१॥
अमूरो होता न्यसादि विद्द्वग्निर्मन्द्रो विदथेषु प्रचेताः ।
ऊर्ध्वं भानुं सवितेवाश्रेन्मेतैव धूमं स्तभायदुप द्याम् ॥२॥
यता सुजूर्णी रातिनी घृताची प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः ।
उदुस्वरुर्नवजा नाक्रः पश्वो अनक्ति सुधितः सुमेकः ॥३॥

---

१५ समिद्ध, अभीष्टवर्षी और निवासप्रद अग्निका तेजःसमूह, यज्ञगृहमें, दीप्त होता है। यजमानके मङ्गलके लिये वे दीप्त तेजका परिधान करते हैं; इसलिये उनका रूप रमणीय है। वे अनेक यजमानों द्वारा स्तुत होकर द्योतित होते हैं, जैसे अश्व आदि धनसे राजा द्योतित होता है।

१ हे यज्ञहोता अग्नि, तुम श्रेष्ठ याज्ञिक हो। तुम हम लोगोंसे ऊर्द्ध्व स्थानमें अवस्थिति करो। तुम सम्पूर्ण शत्रुओंके धनको जीतो। तुम स्तोताओंकी स्तुतिको प्रवर्द्धित करो।

२ प्रगल्भ, होमनिष्पादक, हर्षयिता और प्रकृष्ट ज्ञानविशिष्ट अग्निदेव यज्ञमें, प्रजाओंके मध्यमें, स्थापित होते हैं। वे उदित सूर्यकी तरह ऊद्ध्र्वमुख होते हैं; और, स्तम्भकी तरह, द्युलोकके ऊपर, धूमका धारण करते हैं।

३ संयत और पुरातन जुहू घृतपूर्ण हुआ है। यज्ञको दीर्घ करनेवाले अध्वर्युगण प्रदक्षिण करते हैं। नवजात यूप उन्नत होता है। आक्रमणकारी और सुदीप्त कुठार पशुओंके निकट गमन करता है।

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वो अध्वर्युर्जुजुषाणो अस्थात् ।
पर्यग्निः पशुपा न होता त्रिविष्ट्येति प्रदिव उराणः ॥४॥
परि त्मना मितद्रुरेति होताग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।
द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वाभुवना यद्भ्राट् ॥५॥
भद्रा ते अग्ने स्वनीक सन्दृग्घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः ।
न यत्ते शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तन्वीरेप आधुः ॥६॥
न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ।
अधा मित्रो न सुधितः पावकोऽग्निर्दीदाय मानषीषु विक्षु ॥७॥
द्विर्यं पञ्च जीजनन्त्संवसानाः स्वसारो अग्निं मानुषीषु विक्षु ।
उषर्बुधमथर्यो नदन्तं शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम् ॥८॥

---

४ कुशके विस्तृत होनेपर और अग्नि समिद्ध होनेपर अध्वर्यु, देनोंको प्रीत करनेके लिये, उत्थित होते हैं । होमनिष्पादक और पुरातन अग्नि अल्प हव्यको भी वहुत कर देते हैं तथा पशुपालकोंकी तरह पशुओंके चारो तरफ तीन बार गमन करते हैं ।

५ होता, हर्षदाता, मिष्टभाषी और यज्ञवान् अग्नि परिमितगति होकर पशुओंके चारो तरफ गमन करते हैं । अग्निका दीप्तिसमूह, अश्वकी तरह, चारो तरफ धावित होता है । अग्नि जब प्रदीप्त होते हैं, तब समस्त भूतजात भीत होते हैं ।

६ हे सुन्दर ज्वालाविशिष्ट अग्नि, तुम भीतिजनक हो और सर्वत्र व्याप्त हो । तुम्हारी मनोहर और कल्याणी मूर्ति अच्छी तरहसे द्रष्ट होती है । रात्रि अन्धकार द्वारा तुम्हारी दीप्तिको निवारित नहीं कर सकती है । राक्षस आदि तुम्हारे शरीरमें पापको नहीं रख सकते हैं ।

७ हे वृष्टिको उत्पन्न करनेवाले वैश्वानर, तुम्हारा दान (या दीप्ति) किसीके द्वारा निवारित नहीं हो सकता । मातापिता-स्वरूप द्यावापृथिवी जिसे प्र षित करनेमें शीघ्र समर्थ नहीं होती है, वह सुतृप्त और शोधक अग्नि मनुष्योंके मध्यमें, सखाकी तरह, दीप्तिमान् होते हैं ।

८ मनुष्योंकी दसो अँगुलियाँ, स्त्रीकी तरह, जिस अग्निको उत्पन्न करती हैं, वह अग्नि उषाकालमें वुध्यमान, हव्यभाजी, दीप्तिमान्, सुन्दर-वदन और तीक्ष्ण कुठारकी तरह शत्रुरूप राक्षसोंके हन्ता हैं ।

तव त्ये अग्ने हरितो घृतस्ना रोहितास ऋज्वञ्चः स्वञ्चः ।
अरुषासो वृषण ऋजुमुष्का आदेवतातिमह्वन्त दस्माः ॥९॥
ये हत्ये ते सहमाना अयासस्त्वेषासो अग्ने अर्चयश्चरन्ति ।
श्येनासो न दुवसनासो अर्थं तुविष्वणसो मारुतं न शर्धः ॥१०॥
अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यूधाः ।
होतारमग्निं मनुषो निषेदुर्नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥११॥

७ सूक्त

अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । जगती, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द ।

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥१॥

---

९ हे अग्नि, तुम्हारे वे अश्व हमारे यज्ञके अभिमुख आहूत होते हैं । उनकी नासिकासे फेन निर्गत होता है । वे लोहितवर्ण, अकुटिल तथा सुन्दरगामी, दीप्तिमान्, युवा, सुगठित और दर्शनीय हैं ।

१० हे अग्नि, तुम्हारी वह शत्रुओंको अभिभूत करनेवाली, गमनशील, दीप्त और पूजनीय रश्मियाँ, मरुतोंकी तरह, अत्यन्त ध्वनि करती हैं, जब वे अश्वकी तरह गन्तव्य स्थानमें जाती हैं ।

११ हे समिद्ध अग्नि, तुम्हारे लिये हम लोगोंने स्तोत्र किया है । होता उक्थ (शस्त्र-रूप स्तोत्र) का उच्चारण करते हैं । यजमान तुम्हारा यजन करते हैं । अतएव तुम हम लोगोंको धन दो । मनुष्योंके प्रशंसनीय होता, अग्निकी पूजा करनेके लिये, ऋत्विक् आदि पशु आदि, धनकी कामनेसे, उपविष्ट हुए हैं ।

१ अप्नवान् आदि भृगुवंशीयोंने, वनके मध्यमें, दावाग्नि-रूपसे दर्शनीय एवम् समस्त लोकके ईश्वर अग्निको प्रदीप्त किया था । वे होता, याज्ञिकश्रेष्ठ, स्तुतिभाजन और देवश्रेष्ठ अग्नि यज्ञकारियों द्वारा संस्थापित हुए हैं ।

Digitization by Arya Samaj Foundation Chennai

अग्ने कदा त आनुषग्भुवद्देवस्य चेतनम् ।
अधा हि त्वा जगृभ्रिरे मर्तासो विद्वीड्यम् ॥२॥
ऋतावानं विचेतसं पश्यन्तो द्यामिव स्तृभिः ।
विश्वेषामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे ॥३॥
आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।
आ जभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे ॥४॥
तमीं होतारमानुषक् चिकित्वांसं निषेदिरे ।
रण्वं पावकशोचिवं यजिष्ठं सप्तधामभिः ॥५॥
तं शश्वतीषु मातृषु वन आवीतमश्रितम् ।
चित्रं सन्तं गुहाहितं सुवेदं कूचिदर्थिनम् ॥६॥
ससस्य यद्वियुता सस्मिन्नूधन्नृतस्य सामन्रणयन्त देवाः ।
महाँ अग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदमिदृतावा ॥७॥

---

२ हे अग्नि, तुम दीप्तिमान् और मनुष्यों द्वारा स्तुतियोग्य हो। तुम्हारी दीप्ति कब प्रसृत होगी? मर्त्य लोग तुम्हें ग्रहण करते हैं।

३ मायारहित, विज्ञ, नक्षत्र-परिवृत द्युलोककी तरह और समस्त यज्ञके वृद्धिकारक अग्निके दर्शन करके ऋत्विक् आदि प्रत्येक यज्ञगृहमें उनका ग्रहण करते हैं।

४ जो अग्नि प्रजाओंको अभिभूत करते हैं, उन्हीं शीघ्रगामी, यजमानके दूत, केतु-स्वरूप और दीप्तिमान् अग्निका आनयन, समस्त प्रजाओंके लिये, मनुष्यगण करते हैं।

५ उस होता और विद्वान् अग्निका अध्वर्यु आदि मनुष्योंने यथास्थानपर उपविष्ट कराया है। वे रमणीय, पवित्र दीप्तिविशिष्ट, याज्ञिकश्रेष्ठ और सप्त-तेजोयुक्त हैं।

६ मातृ-स्वरूप जलसमूहमें और वृक्षसमूहमें विद्यमान, कमनीय, दाह-भयसे प्राणियों द्वारा असेवित, विचित्र, गुहामें निहित, सुविज्ञ और सर्वत्र हव्यग्राही उस अग्निको अध्वर्यु आदि मनुष्योंने उपविष्ट कराया है।

७ देवगण निद्रासे विमुक्त होकर अर्थात् उषाकालमें, जलके स्थानस्वरूप सम्पूर्ण यज्ञमें, जिस अग्निको स्तोत्र आदिके द्वारा प्रसन्न करते है, वह महान्, सत्यवान् अग्नि नमस्कारपूर्वक दत्त हव्यको ग्रहण करके, सदा यजमानकृत यज्ञको अवगत करें—जानें।

वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वानुभे अन्तारोदसी सञ्चिकित्वान् ।
दूत ईयसे प्रदिव उराणो विदुष्टरो दिव आरोधनानि ॥८॥
कृष्णं त एम रुशतः पुरोभाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषामिदेकम् ।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ॥९॥
सद्योजातस्य ददृशानमोजो यदस्य वातो अनुवाति शोचिः ।
वृणक्ति तिग्मामतसेषु जिह्वां स्थिरा चिदन्नादयते विजम्भैः ॥१०॥
तृषु यदन्ना तृषुणा ववक्ष तृषुं दूतं कृणुते यह्वो अग्निः ।
वातस्य मेड़िं सचते निजूर्वं नाशुः नः वाजयते हिन्वे अर्वा ॥११॥

* * *

८ हे अग्नि तुम विद्वान् हो। तुम यज्ञके दूत-कार्यको जानते हो। इन दोनों द्यावापृथिवीके मध्यमें अवस्थित अन्तरिक्षको तुम भली भाँतिसे जानते हो। तुम पुरातन हो। तुम अल्प हव्यको बहुत कर देते हो। तुम विद्वान्, श्रेष्ठ और देवोंके दूत हो। तुम देवताओंको हवि देनेके लिये स्वर्गके आरोहणयोग्य स्थानमें जाते हो।

९ हे अग्नि, तुम दीप्तिमान् हो। तुम्हारा गमनमार्ग कृष्णवर्ण है। तुम्हारी दीप्ति पुरोवर्तिनी है। तुम्हारा सञ्चरणशील तेज सम्पूर्ण तैजस पदार्थके मध्यमें श्रेष्ठ है। तुम्हें नहीं पाकर यजमान लोग तुम्हारी उत्पत्तिके कारण-स्वरूप काष्ठको धारण करते हैं। उत्पन्न होकर तुम तुरत ही यजमानके दूत होते हो।

१० अरणिमन्थनके अनन्तर उत्पन्न अग्निका तेज, ऋत्विक् आदिके द्वारा, दृष्ट होता है। जब अग्नि-शिखाको लक्ष्य करके वायु बहती है, तब अग्नि वृक्ष-सङ्घमें तीक्ष्ण ज्वालाको संयुक्त कर देते हैं। और, स्थिर अन्नरूप काष्ठ आदिको, तेजके द्वारा, विखण्डित करते हैं अर्थात् भक्षण करते हैं।

११ अग्नि क्षिप्रगामी रश्मिसमूह द्वारा अन्नरूप काष्ठ आदिको शीघ्र दग्ध करते हैं। महान् अग्नि अपनेको क्षिप्रगामी दूत बनाते हैं। वे काष्ठसमूहको विशेषरूपसे दग्ध करके वायुके बलके साथ सङ्गत होते हैं। घुड़सवार जैसे अश्वको बलवान् करता है, वैसे ही गमनशील अग्नि अपनी रश्मिको बलवान् करते हैं और प्रेरित करते हैं।

८ सूक्त

अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री छन्द ।

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥१॥
स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः । स देवाँ एह वक्षति ॥२॥
स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते दमे । दाति प्रियाणि चिद्वसु ॥३॥
स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते । विद्वाँ आरोधनं दिवः ॥४॥
ते स्याम अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः । य ईं पुष्यन्त इन्धते ॥५॥
ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो विशृण्विरे । ये अग्ना दधिरे दुवः ॥६॥
अस्मे रायो दिवेदिवे सञ्चरन्तु पुरुस्पृहः । अस्मे वाजास ईरताम् ॥७॥
स विप्रश्चर्षणीनां शवसा मानुषाणाम् । अति क्षिप्रेव विध्यति ॥८॥

* * *

१ हे अग्नि, तुम सब धनके स्वामी अथवा सर्वविद्, देवताओंको हव्य पहुँचानेवाले, मरणधर्म-रहित, अतिशय यजनशील और देवदूत हो। हम स्तुति द्वारा तुम्हें वर्द्धित करते हैं।

२ अग्नि यजमानोंके अभीष्टफल-साधक धनके दानको जानते हैं। वे महान् हैं। वे देवलोकके आरोहण-स्थानको जानते हैं। वे इन्द्रादि देवताओंको यज्ञमें बुलावें।

३ वे द्युतिमान् हैं । इन्द्रादि देवताओंको यजमानों द्वारा क्रमपूर्वक नमस्कार करना जानते हैं । वे यज्ञगृहमें यज्ञाभिलाषी यजमानको अभीष्ट धन दान करते हैं ।

४ अग्नि होता हैं । वे दूत-कर्मको जान करके और स्वर्गके आरोहण-योग्य स्थानको जान करके, द्यावापृथिवीके मध्यमें, गमन करते हैं ।

५ जो हव्य दान देकर अग्निको प्रीत करता है, जो उन्हें वर्द्धित करता है और जो यजमान उन्हें काष्ठ द्वारा प्रदीप्त करता है, उसी यजमानकी तरह हम हों ।

६ जो यजमान अग्निकी परिचर्या करते हैं, वे अग्निका सम्भजन करके धन द्वारा विख्यात होते हैं और पुत्र-पौत्र आदिके द्वारा भी विख्यात होते हैं ।

७ ऋत्विक् आदिके द्वारा अभिलषित धन हम यजमानोंके निकट प्रति दिन आगमन करे। अन्न हम लोगोंको (यज्ञकार्यमें) प्रेरित करें।

८ अग्नि मेधावी हैं। वे बल द्वारा मनुष्योंके विनाशयोग्य दुरितको, विशेष रूपसे, विनष्ट करें।

८ सूक्त

अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री छन्द ।

अग्ने मृड़ महाँ असिय ईमा देवयुं जनम् । इयेथ बर्हिरासदम् ॥१॥
स मानुषीषु दूड़भो विक्षु प्रावीरमर्त्यः । दूतो विश्वेषां भुवत् ॥२॥
स सद्म परिणीयते होता मन्द्रो दिविष्टिषु । उत पोता निषीदति ॥३॥
उतग्ना अग्निरध्वर उतो गृहपतिर्दमे । उत ब्रह्मा निषीदति ॥४॥
वेषिह्यध्वरीयतामुपवक्ता जनानाम् । हव्या च मानुषाणाम् ॥५॥
वेषीद्वस्य दूत्यम् यस्य जुजोषो अध्वरम् । हव्यं मर्तस्य वोह्लवे ॥६॥
अस्माकं जोष्यध्वरमस्माकं यज्ञमङ्गिरः । अस्माकं श्रृणुधी हवम् ॥७॥
परि ते दूड़भो रथोस्माँ अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥८॥

---

१ हे अग्नि, तुम हम लोगोंको सुखी करो। तुम महान् हो। तुम देवोंकी कामना करनेवाले हो। तुम यजमानके निकट कुशपर बैठनेके लिये आगमन करते हो।

२ राक्षसों आदि द्वारा अहिंसनीय अग्नि मनुष्यलोकमें, प्रकर्ष रूपसे, गमन करते हैं। वे मृत्युविवर्जित हैं। वे समस्त देवोंके दूत हों।

३ यज्ञगृहमें ऋत्विक् आदिके द्वारा नीयमान होकर अग्नि यज्ञोंमें स्तुतियोग्य होता हैं। अथवा पोता होकर यज्ञ-गृहमें प्रवेश करते हैं।

४ अथवा यज्ञमें अग्नि देवपत्नी या अध्वर्यु होते हैं अथवा यज्ञगृहमें वे गृहपति होते हैं अथवा ब्रह्मा नामक ऋत्विक् होकर उपवेशन करते हैं।

५ हे अग्नि, तुम यज्ञाभिलाषी मनुष्योंके हव्यकी कामना करते हो। तुम अध्वर्यु आदिके सब कर्मोंको जाननेवाले ब्रह्मा हो। तुम यज्ञकर्मोंके अविकल उपद्रष्टा या सदस्य हो।

६ हे अग्नि, तुम हव्य वहन करनेके लिये जिस यजमानके यज्ञकी सेवा करते हो, उसके दौत्य कार्यकी भी तुम कामना करते हो।

७ हे अङ्गिरा अग्नि, तुम हमारे यज्ञकी सेवा करो, हमारे हव्यका सेवन करो और हमारे आह्वान-कारक स्तोत्रका श्रवण करो।

८ हे अग्नि, तुम जिस रथ द्वारा समस्त दिशामें गमन करके हवि देने वाले यजमानकी रक्षा करते हो, तुम्हारा वही अहिंसनीय रथ हम यजमानके चारो तरफ व्याप्त हो।

१० सूक्त

अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । पदपङ्क्ति, उष्णिक् आदि छन्द ।

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामात ओहैः ॥१॥
अधाह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो वभूथ ॥२॥
एभिर्नो अर्कैर्भवानो अर्वाङ्स्वर्णज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥३॥
आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोग्ने दाशेम ।
प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ॥४॥
तव स्वादिष्ठाग्ने संदृष्टिरिदा चिदह्न इदा चिदक्तोः ।
श्रिये रुक्मो न रोचत उपाके ॥५॥
घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम् ।
तत्ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥६॥

---

१ हे अग्नि, आज हम ऋत्विग्गण, इन्द्रादि-प्रापक स्तुति द्वारा, तुम्हें वर्द्धित करते हैं। अश्व जैसे सवारका वहन करता है, उसी तरह तुम हव्यवाहक हो । तुम यज्ञकर्ताकी तरह उपकारक हो। तुम भजनीय हो और अतिशय प्रिय हो ।

२ हे अग्नि, तुम इसी समय हमारे भजनीय, प्रवृद्ध, अभीष्टफल-साधक, सत्यभूत और महान् यज्ञके नेता होते हो।

३ हे अग्नि, तुम ज्योतिर्मान् सूर्यकी तरह समस्त तेजसे युक्त और शोभन अन्तःकरणवाले हो। तुम हम लोगोंके अर्चनीय स्तोत्र द्वारा नीत होओ; और, हम लोगोंके अभिमुख आगमन करो।

४ हे अग्नि, आज हम ऋत्विक् वचनों द्वारा स्तुति करके तुम्हें हव्य दान करेंगे। सूर्यकी रश्मिकी तरह तुम्हारी शोधक ज्वाला शब्द करती है। अथवा मेघकी तरह तुम्हारी ज्वाला शब्द करती है।

५ हे अग्नि, तुम्हारी प्रियतम दीप्ति अहर्निश अलङ्कारकी तरह, पदार्थोंको आश्रयित करनेके लिये, उनके समीप शोभा पाती है।

६ हे अन्नवान् अग्नि, तुम्हारी मूर्ति शोधित घृतकी तरह, पापरहित है। तुम्हारा शुद्ध रमणीय तेज अलङ्कारकी तरह दीप्त होता है ।

कृतं चिद्धिष्मा सनेमि द्वेषोग्न इनोषि मर्तात् ।
इत्था यजमानादृतावः ॥७॥
शिवा नः सख्या सन्तु भ्रात्राग्ने देवेषु युष्मे ।
सा नो नाभिः सदने यस्मिन्नूधन् ॥८॥

११ सूक्त

२ अनुवाक । अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकमुपाक आरोचते सूर्यस्य ।
रुशदृशे ददृशे नक्तया चिद्रूक्षितं दृश आरूपे अन्नम् ॥१॥
विषाह्यग्ने गृणते मनीषां खं वेपसा तुविजात स्तवानः ।
विश्वेभिर्यद्वावनः शुक्रदेवैस्तन्नो रास्व सुमहो भूरि मन्म ॥२॥

---

७ हे सत्यवान् अग्नि, तुम यजमानों द्वारा कृत हो; तथापि चिरन्तन हो। तुम यजमानोंके पापको निश्चय ही दूर कर देते हो।

८ हे अग्नि, तुम द्युतिमान् हो। तुम्हारे प्रति जो हम लोगोंका सख्य और भ्रातृभाव है, वह मङ्गलजनक हो। वह सखित्व और भ्रातृकार्य, देवोंके स्थानमें और सम्पूर्ण यज्ञमें हम लोगों का, नाभिबन्धन हो।

——

१ हे बलवान् अग्नि, तुम्हारा भजनीय तेज सूर्यके समीपभूत दिवसमें चारो तरफ दीप्तिमान् होता है। तुम्हारा रोचमान और दर्शनीय तेज रात्रिमें भी दृश्यमान होता है। तुम रूपवान् हो। तुम्हारे उद्देशसे स्निग्ध और दर्शनीय अन्न हुत होता है।

२ हे बहुजन्मा अग्नि, तुम यज्ञकारियों द्वारा स्तुत होकर स्तुतिकारी यजमानके लिये पुण्य लोकके द्वारको विमुक्त करो। हे सुन्दर तेजोविशिष्ट अग्नि, देवोंके साथ यजमानको तुम जो धन देते हो, हमें भी वही प्रभूत और अभिलषित धन दो।

त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषास्त्वदुक्था जायन्ते राध्यानि ।
त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्थाधिये दाशुषे मर्त्याय ॥३॥
त्वद्वाजी वाजम्भरो विहाया अभिष्टिकृज्जायते सत्यशुष्मः ।
त्वद्रयिर्देवजूतो मयोभुस्त्वदाशुर्जूजुवाँ अग्ने अर्वा ॥४॥
त्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम् ।
द्वेषोयुतमाविवासन्ति धीभिर्दमूनसं गृहपतिममूरम् ॥५॥
आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि ।
दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित् सचसे स्वस्ति ॥६॥

३ हे अग्नि, हविर्वहन और देवतानयन आदि अग्नि-सम्बन्धी कार्य तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं, स्तुतिरूप वचन तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं और अराधनयोग्य उक्थ तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं। सत्यकर्मा और हव्यदाता यजमानके लिये वीर्ययुक्त रूप और धन भी तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं ।

४ हे अग्नि, बलवान्, हव्यवाहक, महान्, यज्ञकारी और सत्यबल-विशिष्ट पुत्र तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं । देवों द्वारा प्रेरित सुखप्रद धन तुमसे ही उत्पन्न होता है और शीघ्रगामी, गतिविशिष्ट तथा वेगवान् अश्व तुमसे ही उत्पन्न हुआ है ।

५ हे अमर अग्नि, देवाभिलाषी मनुष्य स्तुति द्वारा तुम्हारी परिचर्या करते हैं । तुम देवोंमें आदि देव हो । तुम द्योतमान हो । तुम्हारी जिह्वा देवोंको हृष्ट करनेवाली है । तुम पापोंको पृथक् करनेवाले हो और राक्षसोंको दमन करनेकी इच्छावाले हो। तुम गृहपति और प्रगल्भ हो ।

६ हे बलपुत्र अग्नि, तुम रात्रि कालमें मङ्गलजनक और द्युतिमान् होकर हमारे कल्याणके लिये सेवा करते हो । जिस कारण तुम यजमानोंका विशेष रूपसे पालन करते हो, उसीसे तुम हम लोगोंके निकटसे अमतिको दूर करो । हम लोगोंके निकटसे पापको दूर करो और हमारे निकटसे समस्त दुर्मतिको दूर करो ।

१२ सूक्त

अग्नि देवता। वामदेव ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

यस्त्वामग्न इनधते यतस्रुक् त्रिस्ते अन्नं कृणवत् सस्मिन्नहन् ।
स सु द्युम्नैरभ्यस्तु प्रसक्षत्तव क्रत्वा जातवेदश्चिकित्वान् ॥१॥
इध्मं यस्ते जभरच्छश्रमाणो महो अग्ने अनीकमासपर्यन् ।
स इधानः प्रति दोषामुषासं पुष्यन्रयिं सचते घ्नन्नमित्रान् ॥२॥
अग्निरीशे बृहतः क्षत्रियस्याग्निर्वाजस्य परमस्य रायः ।
दधाति रत्नं विधते यविष्ठो व्यानुषङ्मर्त्याय स्वधावान् ॥३॥
यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठाचित्तिभिश्चकृमा कच्चिदागः ।
कृधीष्वस्माँ अदितेरनागान् व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने ॥४॥
महश्चिदग्न एनसो अभीक ऊर्वाद्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
मा ते सखायः सदमिद्रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शंयोः ॥५॥

---

१ हे अग्नि, जो यजमान स्रुक्को संयत करके तुम्हें प्रदीप्त करता है, जो व्यक्ति तुम्हें प्रतिदिन तीनों सवनोंमें हविरन्न देता है, हे जातवेदा, वह व्यक्ति तुम्हारे तृप्तिकर (इन्धन-दान आदि) कार्य द्वारा तुम्हारे प्रसहमान तेजको जानकर धन द्वारा शत्रुओंका पराभूत करता है ।

२. हे अग्नि, जो तुम्हारे लिये होमसाधन काष्ठका आहरण करता है, हे महान् अग्नि, जो व्यक्ति काष्ठके अन्वेषणमें श्रान्त होकर तुम्हारे तेजकी परिचर्या करता है और रात्रिकाल तथा दिवाकालमें जो तुम्हें प्रदीप्त करता है, वह यजमान प्रजा और पशुओं द्वारा पुष्ट होकर शत्रुओंको विनष्ट करता है और धन लाभ करता है ।

३ अग्नि महान् बलके ईश्वर तथा उत्कृष्ट अन्न और पशु-स्वरूप धनके स्वामी हैं । युवतम और अन्नवान् अग्नि परिचर्या करनेवाले यजमानको रमणीय धनसे संयुक्त करें ।

४ हे युवतम अग्नि, यद्यपि तुम्हारे परिचारकोंके मध्यमें हम अज्ञानवश कुछ पाप करते हैं; तथापि तुम पृथ्वीके निकट हमें सम्पूर्ण रूपसे निष्पाप कर दो । हे अग्नि, सर्वत्र विद्यमान हमारे पापोंको तुम शिथिल करो ।

५ हे अग्नि, हम तुम्हारे सखा हैं । हमने इन्द्रादि देवोंके निकट अथवा मनुष्योंके निकट जो पाप किया है, उस महान् और विस्तृत पापसे हम कभी भी विघ्न नहीं पावें । तुम हमारे पुत्र और पौत्रको पाप-रूप उपद्रवोंसे शान्ति और सुकृतजनित सुख दो ।

यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित् पदि षितामहुञ्चता यजत्राः ।
एवोष्वस्मन् मुञ्चताव्यंहः प्रतार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥६॥

१३ सूक्त

अग्नि देवता अथवा जिस मन्त्रमें जिस देवताका नामोल्लेख है, वही देवता ।
वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यद्विभातीनां सुमना रत्नधेयम् ।
यातमश्विना सुकृतो दुरोणमुत् सूर्यो ज्योतिषा देव एति ॥१॥
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद्द्रप्सं दविध्वद्गविषो न सत्वा ।
अनुव्रतं वरुणो यन्ति मित्रो यत् सूर्यं दिव्यारोहयन्ति ॥२॥
यं सीमकृण्वन्तमसे विपृचे ध्रुवक्षेमा अनवश्यन्तो अर्थम् ।
तं सूर्यं हरितः सप्तयह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥३॥

---

६ हे पूजार्ह और निवासयिता अग्नि, तुमने जिस तरह पदबद्ध गौरी गौको विमुक्त किया था, उसी तरह हम लोगोंको पापसे विमुक्त करो । हे अग्नि, हमारी आयु तुम्हारे द्वारा प्रवृद्ध है, तुम इसे और प्रवृद्ध करो ।

१ शोभन मनवाले अग्नि तमोनिवारिणी उषाके, धनप्रकाशकालके, पूर्व ही प्रवृद्ध होते हैं । हे अश्विद्वय, तुम यजमानके गृहमें गमन करो । ऋत्विक् आदिके प्रेरक सूर्यदेव अपने तेजके साथ उषाकालमें प्रादुर्भूत होते हैं ।

२ सवितादेव उन्मुख किरणको विकासित करते हैं । रश्मियाँ जब सूर्यको द्युलोकमें आरूढ़ कराती हैं, तब वरुण, मित्र और अन्यान्य देवगण अपने-अपने कर्मोंका अनुगमन करते हैं, जैसे बलवान् वृषभ गौओंकी कामना करके, धूलि विकीर्ण करता हुआ, गौओंका अनुगमन करता है ।

३ सृष्टि करनेवाले देवोंने संसारके कार्यका परित्याग नहीं करके, सर्वतोभावसे अन्धकारको दूर करनेके लिये, जिस सूर्यको सृष्ट किया था, उस समस्त प्राणिसमूहके विज्ञाता सूर्यका धारण महान् हरिनामक सप्ताश्व करते हैं ।

वर्हिष्ठेभिर्विहरन्यासि तन्तुमवव्ययन्नसितं देव वस्म।
दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्वन्तः ॥४॥
अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोव पद्यते न।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवःस्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥५॥

* * *

१४ सूक्त

अग्नि देवता। अथवा जिस मन्त्रमें जिस देवताका नामोल्लेख है, वही देवता। वामदेव ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

प्रत्यग्निरुषसो जातवेदा अख्यद्देवो रोचमाना महोभिः।
आ नासत्योरुगाया रथेनेमं यज्ञमुप नो यातमच्छ ॥१॥
ऊर्ध्व केतुं सविता देवो अश्रेज्ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन्।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिश्चेकितानः ॥२॥

---

४ हे द्युतिमान् सूर्य, तुम जगन्निर्वाहक रसको ग्रहण करनेके लिये तन्तुस्वरूप रश्मि-समूहको विस्तारित करते हो, कृष्णवर्णा रात्रिको तिरोहित करते हो और अत्यन्त वहनसमर्थ अश्वों द्वारा गमन करते हो। कम्पनयुक्त सूर्यकी रश्मियाँ अन्तरिक्षके मध्यमें स्थित चर्मसदृश अन्धकारको दूर करें।

५ अदूरवर्ती अर्थात् प्रत्यक्ष उपलभ्यमान सूर्यको कोई भी बाँध नहीं सकता है। अधोमुख सूर्य किसी प्रकार भी हिंसित नहीं होते हैं। ये किस बलसे ऊर्ध्वमुख भ्रमण करते हैं? द्युलोकमें समवेत स्तम्भस्वरूप सूर्य स्वर्गका पालन करते हैं। इसे किसने देखा है? अर्थात् इस तत्त्वको कोई भी नहीं जानता है।

— —

१ जातवेदा अग्निके तेजसे दीप्यमाना उषा प्रवृद्ध हुई है। हे प्रभूत गमनशाली अश्विद्वय, तुम दोनों, रथ द्वारा, हमारे यज्ञके अभिमुख आगमन करो।

२ सविता देवता समस्त भुवनको आलोकयुक्त करके उन्मुख किरणका आश्रय लेते हैं। सबको विशेष रूपसे देखनेवाले सूर्यने अपनी किरणोंसे द्यावापृथिवी और अन्तरिक्षको परिपूर्ण किया है।

आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागान्महो चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना ।
प्रबोधयन्ती सुविताय देव्युषा ईयते सुयुजा रथेन ॥३॥
आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ ।
इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन् यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ॥४॥
अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥५॥

१५ सूक्त

१—६ के अग्नि देवता, ७ और ८ के सोमक राजा देवता, ९ और १० के अश्विद्वय देवता। वामदेव ऋषि। गायत्री छन्द।

अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन् परिणीयते । देवो देवेषु यज्ञियः ॥१॥
परि त्रिविष्ट्यध्वरं यात्यग्नी रथीरिव । आ देवेषु प्रयो दधत् ॥२॥

---

३ धनधारिणी, अरुणवर्णा, ज्योतिःशालिनी, महती, रश्मिविचित्रिता और विदुषी उषा आयी है। प्राणियोंको जागरित करके उषा देवी सुयोजित रथ द्वारा, सुख-प्राप्तिके लिये गमन करती है।

४ हे अश्विद्वय, उषाके प्रकाशित होनेपर अत्यन्त वहनक्षम और गमनशील अश्व तुम्हें इस यज्ञमें ले आवें। हे अभीष्टवर्षिद्वय, यह सोम तुम्हारे लिये है। इस यज्ञमें सोम पान करके हृष्ट होओ।

५ अदूरवर्त्ती अर्थात् प्रत्यक्ष उपलभ्यमान सूर्यको कोई भी बाँध नहीं सकता है। अधोमुख सूर्य किसी प्रकार भी हिंसित नहीं होते हैं। ये किस बलसे ऊर्द्ध्वमुख भ्रमण करते हैं? द्युलोकमें समवेत सतम्भस्वरूप सूर्य स्वर्गका पालन करते हैं। इसे किसने देखा है? अर्थात् इस तत्त्वको कोई भी नहीं जानता है।

१ होम-निष्पादक, देवोंके मध्यमें दीप्यमान और यज्ञार्ह अग्नि हमारे यज्ञमें शीघ्रगामी अश्वकी तरह परिणीत होते हैं।

२ अग्नि देवोंके लिये अन्न धारण करके, प्रतिदिन तीन बार, रथीकी तरह, यज्ञमें परिगमन करते हैं।

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥३॥
अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते । द्युमाँ अमित्रदम्भनः ॥४॥
अस्य घा वीर ईवतोऽग्नेरीशीत मर्त्यः । तिग्मजम्भस्य मीह्ुषः ॥५॥
तमर्वन्तं न सानसिमरुषं न दिवः शिशुम् । मर्मृज्यन्ते दिवेदिवे ॥६॥
बोधद्यन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः । अच्छा न हूत उदरम् ॥७॥
उतत्या यजता हरी कुमारात् साहदेव्यात् । प्रयता सद्य आददे ॥८॥
एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः । दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥९॥
तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम् । दीर्घायुषं कृणोतन ॥१०॥

* * *

३ अन्नके पालक, मेधावी अग्नि हवि देनेवाले यजमानको रमणीय धन देकर हविको चारो तरफसे व्याप्त करते हैं।

४ जो अग्नि देवताके पुत्र सृञ्जयके लिये पूर्व दिशामें स्थित होते हैं और उत्तर वेदीपर समिद्ध होते हैं, वे शत्रु-नाशकारी अग्नि दीप्तियुक्त हों।

५ स्तुति करनेवाले वीर मनुष्य तीक्ष्ण तेजवाले, अभीष्टवर्षी और गमनशील अग्निके ऊपर आधिपत्यका विस्तार कर।

६ यजमान लोग अश्वकी तरह हव्यवाही, द्युलोकके पुत्रभूत सूर्यकी तरह दीप्तिमान् और सम्भजनीय अग्निकी प्रतिदिन बारम्बार परिचर्या करें।

७ सहदेवके पुत्र सोमक नामवाले राजाने जब हमें इन दोनों अश्वोंको देनेकी बात कही थी, तब हम उनके निकट आहूत होकर अश्वोंको नहीं लाभ करके, नहीं निर्गत हुए हैं।

८ सहदेवके पुत्र सोमक राजाके निकटसे, उसी दिन, उन पूजनीय और प्रयत अश्वोंको हमने ग्रहण किया था।

९ हे द्योतमान अश्विनीकुमारो, तुम दोनोंके तृप्तिकारक सहदेवके पुत्र सोमक राजा सौ वर्षकी आयुवाले हों।

१० हे द्योतमान अश्विनीकुमारो, तुम दोनों सहदेवके पुत्र सोमक राजाको दीर्घायु करो।

१६ सूक्त

इन्द्र देवता। वामदेव ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

आसत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः।
तस्मा इन्द्धः सुषुमासुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥१॥
अवस्य शूराध्वनो नान्तेस्मिन्नो अद्य सवने मन्दध्यै।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असूर्याय मन्म ॥२॥
कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात्।
दिव इत्था जीजनत् सप्तकारू नह्नाचिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥३॥
स्वर्यद्वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योतीरुरुचुर्यद्ध वस्तोः।
अन्धातमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥४॥

---

१ ऋजाषी अर्थात् सोमवान् और सत्यवान् इन्द्र हमारे निकट आगमन करें। इनके अश्व हमारे निकट आगमन करें। हम यजमान इन्द्रके उद्देशसे सारविशिष्ट अन्नरूप सोमका अभिषव करेंगे। वे स्तुत होकर हम लोगोंके अभीष्टको सिद्ध करें।

२ हे शत्रुओंको अभिभत करनेवाले इन्द्र, इस माध्यन्दिनके सवनमें तुम हम लोगोंको विमुक्त करो, जैसे गन्तव्य मार्गके अन्तमें मनुष्य घोड़ोंको छोड़ देता है। जिससे इस सवनमें हम तुम्हें हृष्ट करें। हे इन्द्र, तुम सर्वविद् हो और असुरोंके हिंसक हो। यजमान लोग, उशनाकी तरह, तुम्हारे लिये मनोहर उक्थका उच्चारण करते हैं।

३ कवि जिस प्रकारसे गूढ़ अर्थका सम्पादन करते हैं, उसी प्रकार अभीष्टवर्षी इन्द्र कार्योंका सम्पादन करते हैं। जब सेचनयोग्य सोमका, अधिक परिमाणमें, पान करके इन्द्र हृष्ट होते हैं, तब द्युलोकसे सप्त-संख्यक रश्मियोंको सचमुच उत्पन्न कर देते हैं। स्तूयमान रश्मियां दिनमें भी मनुष्योंके ज्ञानका सम्पादन करती हैं।

४ जब प्रभूत, ज्योतिःस्वरूप द्युलोक रश्मियों द्वारा अच्छी तरहसे दर्शनीय होता है, तब देवगण उस स्वर्गमें निवास करनेके लिये दीप्तियुक्त होते हैं। नेतृश्रेष्ठ सूर्यने आगमन करके, मनुष्योंको अच्छी तरहसे देखनेके लिये, निविड़ अन्धकारको नष्ट कर दिया है।

ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्यु भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा विरेच्यभि यो विश्वाभुवना बभूव ॥५॥
विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद्ये विभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रुः ॥६॥
अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन् प्रावत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्राणांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥७॥
अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमादर्षि भूरिं गोत्रारुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥८॥
अच्छा कविं नृमणो गा अभिष्टौ स्वर्षाता मघवन्नाधमानम् ।
ऊतिभिस्तमिषणो द्युम्नहूतौ निमायावानब्रह्मा दस्युरर्त ॥९॥

---

५ ऋषीजी अर्थात् सोमविशिष्ट इन्द्र, अमित महिमा धारण करते हैं। वे अपनी महिमाके बलसे द्यावा और पृथिवी दोनोंको परिपूर्ण करते हैं। इन्द्रने समस्त भुवनोंको अभिभूत किया है। इन्द्रकी महिमा समस्त भुवनोंसे अधिक हुई है।

६ इन्द्र, सम्पूर्ण मनुष्योंके हितकर वृष्टि अदि कार्यको जानते हैं। उन्होंने अभिलाषकारी और मित्रभूत मरुतोंके लिये जलवर्षण किया था। जिन मरुतोंने वचनरूप ध्वनिसे पर्वतोंको विदीर्ण किया था, उन मरुतोंने इन्द्रकी अभिलाषा करके, गौपूर्ण गोशालाका आच्छादन किया है।

७ हे इन्द्र, तुम्हारे लोकपालक वज्रने जलावरक मेघको प्रेरित किया था। चेतनावती भूमि तुमसे सङ्गत हुई थी। हे शूर और वर्षणशील इन्द्र, तुम अपने बलसे लोकपालक होकर समुद्रसम्बन्धी और आकाशस्थित जलको प्र रित करो।

८ हे बहुजनाहूत इन्द्र, जब तुमने वृष्टिजलको लक्ष करके मेघको विदीर्ण किया था, तब तुम्हारे लिये पहले ही सरमा (देवोंकी कुतिया)ने पणियों द्वारा अपहृत गौओंको प्रकाशित किया था। अङ्गिराओं द्वारा स्तूयमान होकर तुम हम लोगोंको प्रभूत अन्न प्रदान करते हो और हम लोगोंका आदर करते हो।

९ हे धनवान् इन्द्र, मनुष्य तुम्हें सम्मानित करते हैं। तुमने धन प्रदान करनेके लिये कुत्सके अभिमुख गमन किया था। याचना करनेपर शत्रुओंके उपद्रवोंसे आश्रय दान द्वारा तुमने उनकी रक्षा की थी। कपटी ऋत्विकोंके कार्योंको अपनी अनुज्ञासे जानकर तुमने कुत्सके धन-लोभी शत्रुको युद्धमें विनष्ट किया था।

आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः ।
स्वे योनौ निषदतं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी ॥१०॥
यामि कुत्सेन सरथमवस्युस्तोदोवातस्य हर्योरीशानः ।
ऋज्रा वाजं नगध्यं युयूषन् कविर्यदहन् पार्याय भूषात् ॥११॥
कुत्साय शुष्णमशुषं निबर्हीः प्रापित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा ।
सद्यो दस्यून् प्रमृण कुत्स्येन प्रसूरश्चक्रं बृहतादभीके ॥१२॥
त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसमृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः ।
पञ्चाशत् कृष्णा निवपः सहस्रात्कं न पुरो जरिमा विदर्दः ॥१३॥

१० हे इन्द्र, तुमने मनमें शत्रुओंको मारनेका संकल्प करके कुत्सके गृहमें आगमन किया था। कुत्स भी तुम्हारे साथ मैत्री करनेके लिये अतिशय आग्रहवान् हुआ था। तब तुम दोनों अपने स्थानमें उपविष्ट हुए थे। तुम्हारी सत्यदर्शिनी भार्या शची तुम दोनोंका समान रूप देख कर संशयान्विता हुई थी। *

११ जिस दिन प्राज्ञ कुत्स ग्रहणीय अन्नकी तरह ऋजुगामी अश्वद्वयको अपने रथमें युक्त करके आपत्तिसे निस्तीर्ण होनेमें समर्थ हुए थे, उस दिन हे इन्द्र, तुमने कुत्सकी रक्षा करनेकी इच्छासे उसके साथ एक रथपर गमन किया था। तुम शत्रु नाशक और वायुके सदृश घोड़ोंके अधिपति हो।

१२ हे इन्द्र, तुमने कुत्सके लिये सुखरहित शुष्णका बध किया था। दिवसके पूर्व भागमें तुमने कुयव नामवाले असुरको मारा था। बहुत परिजनोंसे आवृत होकर तुमने उसी समय वज्र द्वारा शत्रुओंको भी विनष्ट किया था। तुमने संग्राममें सूर्यके चक्रको छिन्न कर दिया था।

१३ हे इन्द्र, तुमने पिप्रु नामक असुरको तथा प्रवृद्ध मृगय नामक असुरको विनष्ट किया था। तुमने विदथिके पुत्र ऋजिश्वाको वन्दी बनाया था। तुमने पचास हजार कृष्णवर्ण राक्षसों-को मारा था। जरा जिस तरहसे रूपको विनष्ट करती है, उसी तरहसे तुमने शम्बरके नगरोंको विनष्ट किया था।

---

* रुरु नामके किसी राजर्षिके पुत्रका नाम कुत्स था। ये भी राजर्षि थे। शत्रुओंको हरानेमें असमर्थ होकर इन्होंने कभी इन्द्रसे सहायता माँगी थी। इन्द्र कुत्सके घर आये थे और उसके शत्रुओंको मार भगाया था। मैत्री हो जानेपर कुत्स भी इन्द्रके घर गये थे। दोनोंके रूपमें इतनी समानता थी कि, इन्द्राणी अपने पति इन्द्रको नहीं पहचान सकी थी। —सायण।

सूर उपाके तन्वं दधानो वियत्ते चेत्यमृतस्य वर्पः ।
मृगो न हस्ती तविषीमुषाणः सिंहो न भीम आयुधानि बिभ्रत् ॥१४॥
इन्द्रं कामा वसूयन्तो अग्मन्त्स्वर्मीह्ले न सवने चकानाः ।
श्रवस्यवः शशमानास उक्थैरोको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः ॥१५॥
तमिद्व इन्द्रं सुहवं हुवेम यस्ता चकार नर्या पुरूणि ।
यो मावते जरित्रे गध्यं चिन्मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधा ॥१६॥
तिग्मा यदन्तरशनिः पताति कस्मिञ्चिच्छूरमुहुके जनानाम् ।
घोरा यदर्य समृतिर्भवात्यधस्मानस्तन्वो बोधि गोपाः ॥१७॥
भुवोविता वामदेवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजसातौ ।
त्वामनु प्रमतिमाजगन्मोरुशंसो जरित्रे विश्वधस्याः ॥१८॥

---

१४ हे इन्द्र, तुम मरण-रहित हो । जब तुम सूर्यके निकट अपना शरीर धारण करते हो, तब तुम्हारा रूप प्रकाशित होता है : सूर्यके समीप सबका रूप मलिन हो जाता है; किन्तु इन्द्रका रूप और भासमान होता है । हे इन्द्र, तुम गजविशेष मृगकी तरह शत्रुओंको दग्ध करके आयुध धारण करते हो और सिंहकी तरह भयङ्कर होते हो ।

१५ राक्षस-जनित भयको निवारित करनेके लिये इन्द्रकी कामना करनेवाले और धनकी इच्छा करनेवाले स्तोता लोग युद्धसदृश यज्ञमें इन्द्रसे अन्नकी याचना करते हैं, उक्थों द्वारा उनकी स्तुति करते हैं और उनके निकट गमन करते हैं । इन्द्र उस समय स्तोताओंके लिये आवासस्थानकी तरह होते हैं और रमणीय तथा दर्शनीय लक्ष्मीकी तरह होते हैं ।

१६ जिन इन्द्रने मनुष्योंके हितकर बहुतेरे प्रसिद्ध कार्य किये हैं, जो स्पृहणीय धनविशिष्ट हैं, जो हमारे सदृश स्तोताके लिये ग्रहणीय अन्नको शीघ्र लाते हैं, हे यजमानो, हम स्तोता लोग उन इन्द्रका शोभन आह्वान्, तुम्हारे लिये करते हैं ।

१७ हे शूर इन्द्र, मनुष्योंके किसी भी युद्धमें अगर हम लोगोंके मध्यमें तीक्ष्ण अशनि-पात हो अथवा शत्रुओंके साथ अगर हम लोगोंका घोरतर युद्ध हो, तब हे स्वामिन्, तुम हम लोगोंके शरीरकी रक्षा करना। ऐसा जानो ।

१८ हे इन्द्र, तुम वामदेवके यज्ञकार्यके रक्षक होओ । तुम हिंसा-रहित हो । तुम युद्धमें हम लोगोंके सुहृद होओ । तुम मतिमान् हो । हम लोग तुम्हारे निकट गमन करें । तुम सर्वदा स्तोत्रकारियोंके प्रशंसक होओ ।

एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा मघवद्भिर्मघवन्विश्व आजौ ।
द्यावो न द्युम्नैरभिसन्तो अर्यः क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वीः ॥१९॥
एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।
नूचिद्यथा नः सख्या वियोषदसन्न उग्रोविता तनूपाः ॥२०॥
नूष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्य : सदासाः ॥२१॥

१७ सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा अनुक्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः ।
त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान्त्सृजः सिन्धुंरहिना जग्रसानान् ॥१॥

---

१९ हे धनवान् इन्द्र, हम शत्रुओंको जीतनेके लिये समस्त युद्धमें तुम्हारी अभिलाषा करते हैं। धनी जिस तरह धन द्वारा दीप्तिमान् होता है, हम भी उसी तरह हव्ययुक्त होकर पुत्र-पौत्रादि परिजनोंके साथ दीप्तिमान् हों और शत्रुओंको अभिभूत करके रात्रि तथा सम्पूर्ण संवत्सरोंमें तुम्हारी स्तुति करें।

२० इन्द्रके साथ हम लोगोंकी मैत्री जिस कार्यसे वियुक्त नहीं हो, तेजस्वी और शरीर-पालक इन्द्र जिससे हम लोगोंके रक्षक हों, हम लोग उसी प्रकारका आचरण करेंगे। दीप्त रथनिर्माता जिस तरह रथका निर्माण करते हैं, उसी तरह हम लोग भी अभीष्टवर्षी तथा नित्य तरुण इन्द्रके लिये स्तोत्रकी रचना करते हैं ।

२१ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगों द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं । जिससे हम लोग रथवान् होकर, स्तुति द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें ।

१ हे इन्द्र, तुम महान् हो । महत्त्वसे युक्त होकर पृथ्वीने तुम्हारे बलका अनुमोदन किया था एवम् द्युलोकने भी तुम्हारे बलका अनुमोदन किया था । लोकोंको आवृत करनेवाले वृत्र नामक असुरको तुमने बल द्वारा मारा था । वृत्रने जिन नदियोंको ग्रस्त किया था, तुमने उन नदियोंको विमुक्त कर दिया था ।

तव त्विषो जनिमन्रेजत द्यौरेजद्भूमिर्भियसा स्वस्य मन्योः ।
ऋघायन्त सुभ्वः पर्वतास आर्दन्धन्वानि सरयन्त आपः ॥२॥
भिनद्गिरिं शवसा वज्रमिष्णन्नाविष्कृण्वानः सहसान ओजः ।
वधीद्वृत्रं वज्रेण मन्दसानः सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः ॥३॥
सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौरिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत् ।
य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रमनपच्युतं सदसो न भूम ॥४॥
य एक इच्च्यावयति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
सत्यमेनमनु विश्वे मन्दति रातिं देवस्य गृणतो मघोनः ॥५॥
सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे सत्रा मदासो बृहतो मदिष्ठाः ।
सत्रा भवो वसुपतिर्वसूनां दत्रे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ॥६॥

---

२ हे इन्द्र, तुम दीप्तिमान् हो । तुम्हारे जन्म होनेपर द्युलोक तुम्हारे कोप-भयसे कम्पित हुआ था, पृथ्वी कम्पित हुई थी और वृद्धि प्रदानके लिये वृहत् मेघसमूह तुम्हारे द्वारा आवद्ध हुआ था । इन मेघोंने प्राणियोंको पिपासाको विनष्ट करके मरुभूमिमें जल-प्रेरण किया था।

३ शत्रुओंके अभिभवकर्ता इन्द्रने तेजःप्रकाशन करके और बलपूर्वक वज्रका प्रेरण करके पर्वतोंको विदीर्ण किया था । सोमपानसे हृष्ट होकर इन्द्रने वज्र द्वारा वृत्रको विनष्ट किया था । वृत्रके विनष्ट होनेपर जल आवरणरहित होकर वेगसे आने लगा था ।

४ हे इन्द्र, तुम अतिशय स्तुत्य, उत्तम वज्रविशिष्ट, स्वर्गस्थानसे अनपच्युत अर्थात् विनाशरहित और महिमावान् हो । तुम्हें जिस द्योतमान प्रजापतिने उत्पन्न किया था, वे अपनेको सुन्दर पुत्रवान् मानते थे । इन्द्रके जनयिता प्रजापतिका कर्म अत्यन्त शोभन हुआ था ।

५ सम्पूर्ण प्रजाओंके राजा, बहुजनाहूत और देवोंके मध्यमें एक मात्र प्रधान इन्द्र शत्रु-जनित भयको विनष्ट करते हैं । द्योतमान और धनवान् बन्धु इन्द्रके उद्देशसे सचमुच समस्त यजमान स्तुति करते हैं ।

६ सम्पूर्ण सोम सचमुच इन्द्रके ही हैं। ये मदकारक सोम महान् इन्द्रके लिये सचमुच हर्षकारक हैं । हे इन्द्र, तुम धनपति हो, केवल धनपति हो नहीं; बल्कि सम्पूर्ण पशुओंके भी पति हो। हे इन्द्र, धनके लिये तुम सचमुच समस्त प्रजाओंको धारण करते हो ।

त्वमध प्रथमं जायमानोमे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
त्वं प्रतिप्रवत आशयानमहिं वज्रेण मघवन्विवृश्चः ॥७॥
सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥८॥
अयं वृतश्चातयते समीचीर्य आजिषु मघवा शृण्व एकः ।
अयं वाजं भरति यं सनोत्यस्य प्रियासः सख्ये स्याम ॥९॥
अयं शृण्वे अध जयन्नुतघ्नन्नयमुत प्रकृणुते युधा गाः ।
यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृह्ळं भयत एजदस्मात् ॥१०॥
समिन्द्रो गा अजयत्सं हिरण्या समश्विया मघवायो ह पूर्वीः ।
एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकैरायो विभक्ता संभरश्च वस्वः ॥११॥

---

७ हे धनवान् इन्द्र, पहले ही उत्पन्न होकर तुमने वृत्रभीत सम्पूर्ण प्रजाओंको धारण किया था। तुमने उदकवान् देशके उद्देशसे जलनिरोधक वृत्रासुरको छिन्न किया था।

८ अनेक शत्रुओंके हन्ता, अत्यन्त दुर्द्धर्ष शत्रुओंके प्रेरक, महान्, विनाशरहित, अभीष्टवर्षी और शोभन वज्रविशिष्ट इन्द्रकी स्तुति हम लोग करते हैं। जिन इन्द्रने वृत्र नामक असुरको मारा था, जो अन्नदाता और शोभन धनसे युक्त हैं तथा जो धन दान करते हैं, हम उनकी स्तुति करते हैं।

९ जो धनवान् इन्द्र संग्राममें अद्वितीय सुने जाते हैं, वे मिलित और विस्तृत शत्रु-सेनाको विनष्ट करते हैं। वे जो अन्न यजमानको देते हैं, उसी अन्नको धारण भी करते हैं। इन्द्रके साथ हम लोगोंकी मैत्री प्रिय हो।

१० शत्रुविजयी और शत्रुहिंसक होकर इन्द्र सर्वत्र प्रख्यात हैं। इन्द्र शत्रुओंके समीपसे पशुओंको छीन लाते हैं। इन्द्र जब सचमुच कोप करते हैं, तब स्थावर और जङ्गम-रूप समस्त जगत् इन्द्रसे डरने लगता है।

११ जिस धनवान् इन्द्रने असुरोंको जीता था, शत्रुओंके रमणीय धनको जीता था, अश्व-समूहको जीता था तथा अनेक शत्रुसेनाको जीता था, वह सामर्थ्यवान् नेतृश्रेष्ठ स्तोताओं द्वारा स्तुत होकर पशुओंका विभाजक तथा धनका धारक हो।

कियत्स्विदिन्द्रो अध्येति मातु: कियत् पितुर्जनितुर्यो जजान ।
यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति-वातो न जूत: स्तनयद्भिरभ्रै: ॥१२॥
क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोतीयर्ति रेणुं मघवा समोहम् ।
विभञ्जनुरशनिमाँइव द्यौरुत स्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥१३॥
अयं चक्रमिषणत्सूर्यस्य न्येतशं रीरमत् ससृमाणम् ।
आकृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ॥१४॥
असिक्न्यां यजमानो न होता ॥१५॥
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्त: ।
जनीयन्तो जनिदामक्षितोतिमा च्यावयामोवते न कोशम् ॥१६॥

---

१२ इन्द्र अपनी जननीके समीप कितना बल प्राप्त करते हैं और पिताके समीप कितना बल प्राप्त करते हैं । जिन इन्द्रने अपने पिता प्रजापतिके समीपसे इस दृश्यमान जगत्को उत्पन्न किया था तथा उन्हीं प्रजापतिके समीपसे जगत्को मुहुर्मुहुः बल प्रदान किया था, वे इन्द्र गर्जनशील मेघ द्वारा प्रेरित वायुकी तरह आहूत होते हैं ।

१३ धनवान् इन्द्र किसी एक धनशून्य व्यक्तिको धनपूर्ण करते हैं अर्थात् कोई पुरुष इन्द्रकी स्तुति करके धनसमृद्ध हुआ है । वज्रयुक्त अन्तरिक्षकी तरह शत्रुविनाशक इन्द्र समूढ़ पापको विनष्ट करते हैं और स्तोताको धन प्रदान करते हैं ।

१४ इस इन्द्रने सूर्यके आयुधको प्रेरित किया था और युद्धके लिये जानेवाले एतशको निवारित किया था ।❋ कुटिल-गति और कृष्णवर्ण मेघने, तेजके मूलभूत और जलके स्थानस्वरूप अन्तरिक्षमें स्थित इन्द्रको अभिषिक्त किया था ।

१५ जैसे रात्रिकालमें यजमान सोम द्वारा अग्निको अभिषिक्त करते हैं । ⁑

१६ हम मेधावी स्तोता गौओंकी अभिलाषा करते हैं, अश्वोंकी अभिलाषा करते हैं, अन्नकी अभिलाषा करते हैं और स्त्रीकी अभिलाषा करते हैं । हम सखिताके लिये कामनापूरक, भार्याप्रद और सर्वदा रक्षक इन्द्रको, लोग जैसे कूपमें जलपात्रको अवनमित करते हैं, उसी तरह अवनमित करेंगे ।

❋ स्वश्व राजाने पुत्रकामनासे सूर्यकी उपासना की । सूर्य उनके पुत्र होकर प्रकट हुए । उन्होंने एतश ऋषिके साथ युद्ध किया । ऋषिने विजय पानेके लिये इन्द्रकी स्तुति की । इन्द्रने प्रसन्न होकर ऐतशकी रक्षा की । उस युद्धमें इन्द्रने सूर्यके चक्रको तोड़ दिया था ।—सायण ।

⁑ यह एक पदकी ही ऋचा है, दृष्टान्तकी तरह पूर्व ऋचाके साथ सम्बद्ध है ।

त्राता नो बोधि ददृशान आपिरभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम्।
सखा पिता पितृतमः पितॄणां कर्तेमुलोकमुशते वयोधाः ॥१७॥
सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्रस्तुवते वयोधाः।
वयं ह्याते चकृमा सबाध आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र ॥१८॥
स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरिण्येको अप्रतीनि हन्ति।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः ॥१९॥
एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत् सत्या चर्षणीधृदनर्वा।
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधिश्रवो माहिनं यज्जरित्रे ॥२०॥
नूष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१॥

१७ हे इन्द्र, तुम आप्त हो । रक्षक रूपसे सबको देखते हुए तुम हमारे रक्षक होओ। तुम सोमयोग्य यजमानोंके अभिद्रष्टा और सुखयिता हो । प्रजापतिके समान तुम्हारी ख्याति है । तुम पालक हो और पालकोंके मध्यमें श्रेष्ठ हो । तुम पितरोंके स्रष्टा हो । तुम स्वर्गाभिलाषी स्तोताओंके लिये अन्नप्रद होओ ।

१८ हे इन्द्र, हम तुम्हारी मैत्रीकी अभिलाषा करते हैं । तुम हमारे रक्षक होओ। तुम स्तुत होते हो, तुम हमारे सखा होओ। तुम स्तोताओंको अन्न दान करो। हे इन्द्र, हम बाधायुक्त हो कर भी, स्तुतिरूप कर्म द्वारा, पूजा करके, तुम्हारा आह्वान करते हैं।

१९ जब इन्द्र हम लोगोंके द्वारा स्तुत होते हैं, तब वे अकेले ही अनेक अभिगन्ता शत्रुओंको मार डालते हैं। जिस इन्द्रकी शरणमें वर्तमान स्तोताका निवारण न देवगण करते हैं और न मनुष्यगण करते हैं, उस इन्द्रका स्तोता प्रिय होता है।

२० विविध शब्दवान्, समस्त प्रजाओंके धारक, शत्रुरहित और धनवान् इन्द्र इस प्रकार स्तुत होकर हम लोगोंके सत्य रूप अभिलषितको सम्पादित करें । हे इन्द्र, तुम समस्त जन्मधारियोंके राजा हो। स्तोता जिस महिमायुक्त यशको प्राप्त करता है, वह यश तुम अधिक परिमाणमें हम लोगोंको दें।

२१ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगोंके द्वारा स्तूयमान होकर जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

१८ सूक्त

इस सूक्तमें इन्द्र, अदिति और वामदेवका कथोपकथन है; अतएव ये ही तीनों देवता और ऋषि हैं।* त्रिष्टुप् छन्द ।

अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे ।
अतश्चिदाजनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवेकः ॥ १ ॥
नाहमतो निरया दुर्गहैतत्तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि ।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सन्त्वेन पृच्छै ॥ २ ॥
परायतीं मातरमन्वचष्ट ननानुगान्यनुनूगमानि ।
त्वष्टुर्गृहे अपिबत्सोममिन्द्रः शतधन्यं चम्बोः सुतस्य ॥ ३ ॥
किं स ऋधक्कृणवद्यं सहस्रं मासो जभार शरदश्च पूर्वीः ।
नहीन्वस्य प्रतिमानमस्त्यन्तर्जातेषूतये जनित्वाः ॥ ४ ॥

१ इन्द्र कहते हैं—"यह योनिनिर्गमणरूप मार्ग अनादि और पूर्वापर लब्ध है। इसी योनिमार्गसे सम्पूर्ण देव और मनुष्य उत्पन्न हुए हैं; अतएव तुम गर्भमें प्रवृद्ध होकर इसी मार्ग द्वारा उत्पन्न होओ। माताकी मृत्युके लिये मत कार्य करो।"

२ वामदेव कहते हैं—"हम इस योनिमार्ग द्वारा नहीं निर्गत होंगे। यह मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। हम पार्श्वभेद करके निर्गत होंगे। दूसरोंके द्वारा अकरणीय बहुतेरे कार्य हमें करने हैं। हमें एकके साथ युद्ध करना है। हमें एकके साथ वाद-विवाद करना है।

३ "इन्द्र कहते हैं कि, 'हमारी माता मर जायगी; तथापि हम पुरातन मार्गका अनुधावन नहीं करेंगे, शीघ्र वहिर्गत होंगे। (इन्द्रने जो यथेच्छाचरण किया था, उसीको वामदेव कहते हैं) इन्द्रने अभिषवकारी त्वष्टाके गृहमें सोमाभिषव-फलक द्वारा अभिषुत सोमका पान, वलपूर्वक, किया था, वह सोम बहुत धन द्वारा क्रीत था।

४ "अदितिने इन्द्रको अनेक मासों और अनेक संवत्सरोंतक धारण किया था। इन्द्रने यह विरुद्ध कार्य क्यों किया था? अर्थात् गर्भमें बहुत दिनोंतक रहकर इन्द्रने अदितिको क्लेश दिया था।"

इन्द्रके ऊपर किये गये आक्षेपको सुनकर अदिति कहती हैं—"हे वामदेव, जो उत्पन्न हुए हैं और जो देवादि उत्पन्न होंगे, उनके साथ इन्द्रकी तुलना नहीं हो सकती है।

---

* गर्भस्थ वामदेव माताके योनिदेशसे वहिर्गत होना नहीं चाहते हैं। वे माताके पार्श्वदेशको भिन्न करके उत्पन्न होना चाहते हैं। उनके इस दृढ़ सङ्कल्पको जानकर उनकी माताने उन्हें समझानेके लिये इन्द्र और अदितिको बुलाया है।—सायण।

अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्येणान्यृष्टम् ।
अथोदस्थात् स्वयमत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ॥ ५ ॥
एता अर्षन्त्यललाभवन्तीर्ऋतावरीरिव संक्रोशमानाः ।
एता विपृच्छ किमिदं भनन्ति कमापो अद्रिं परिधिं रुजन्ति ॥ ६ ॥
किमुष्विदस्मै निविदो भनन्तेन्द्रस्यावद्यं दिधिषन्त आपः ।
ममैतान् पुत्रो महता बधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ॥ ७ ॥
ममच्चन त्वा युवतिः परास ममच्चन त्वा कुषवा जगार ।
ममच्चिदापः शिशवे ममृड्युर्ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत् ॥ ८ ॥
ममच्चन ते मघवन्व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान ।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवाञ्छिरो दासस्य सम्पिणग्वधेन ॥ ९ ॥

५ "गह्वररूप सूतिका-गृहमें उत्पन्न इन्द्रको निन्दनीय मानकर माताने उन्हें अतिशय सामर्थ्यवान् किया था। अनन्तर, उत्पन्न होते ही इन्द्र अपने तेजको धारण करके उत्थित हुए थे और द्यावापृथिवीको परिपूर्ण किया था।

६ "अ-ल-ला शब्द करती हुई ये जलवती नदियाँ इन्द्रके महत्त्वको प्रकट करनेके लिये, हर्षपूर्वक, बहुविध शब्द करती हुई बहती हैं। हे ऋषि, तुम इन नदियोंको पूछो कि, ये क्या बोलती हैं ? यह शब्द इन्द्रके माहात्म्यका सूचक है। मेरे पुत्र इन्द्रने ही उदकके आवरक मेघको विदीर्ण करके जलको प्रवर्तित किया था।

७ "वृत्रबधसे ब्रह्महत्या रूप पापको प्राप्त करनेवाले इन्द्रको निवित् क्या कहती है? जल फेन रूपसे इन्द्रके पापको धारण करता है। + मेरे पुत्र इन्द्रने महान् वज्रसे वृत्रका वध किया था। अनन्तर, इन नदियोंको विसृष्ट किया था।"

८ वामदेव कहते हैं—"तुम्हारी युवती माता अदितिने प्रमत्त होकर तुम्हारा प्रसव किया था। कुषवा नामकी राक्षसीने प्रमत्त होकर तुम्हें ग्रास बनाया था। हे इन्द्र, उत्पन्न होनेपर तुम्हें जलसमूहने प्रमत्त होकर सुखी किया था। इन्द्र प्रमत्त होकर, अपने वीर्यके प्रभावसे, सूतिका-गृहमें, राक्षसीको मारनेके लिये, उत्थित हुए थे।

९ "हे धनवान् इन्द्र, व्यंस नामक राक्षसने प्रमत्त होकर तुम्हारे हनुद्वय (चिबुकके अधोभाग) को विद्ध करके अपहृत किया था। हे इन्द्र, इसके अनन्तर अधिक बलवान् होकर तुमने व्यंस राक्षसके सिरको वज्र द्वारा पीस डाला था।

÷ ब्राह्मण वृत्रको मारनेसे इन्द्र ब्रह्महत्या पापसे आक्रान्त हुए थे। उनके पापोंको जल-समूहने फेनरूपसे ग्रहण किया या। इस तरह इन्द्र पापरहित हुए थे।—सायण।

गृष्टिः ससूव स्थविरं तवागामनाधृष्यं वृषभं तुम्रमिन्द्रम् ।
अरीह्ळं वत्सं चरथाय माता स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम् ॥ १० ॥
उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा जहति पुत्र देवाः ।
अथाब्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं विक्रमस्व ॥ ११ ॥
कस्ते मातरं विधवामचक्रच्छयुं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तम् ।
कस्ते देवो अधिमार्डीक आसीद्यत् प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य ॥ १२ ॥
अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारम् ।
अपश्यं जायाममहीयमानामधा मे श्येनो मध्वा जभार ॥ १३ ॥

* * *

१० "सकृत्प्रसूता (एक बार ब्यायी हुई) गौ जैसे वत्स प्रसव करती है, उसी तरह इन्द्रकी माता अदिति अपनी इच्छासे सञ्चरण करनेके लिये इन्द्रको प्रसव करती है। इन्द्र अवस्थामें वृद्ध, प्रभूत बलशाली, अनभिभवनीय, अभीष्टवर्षी, प्रेरक, अनभिभूत, स्वयं गमनक्षम और शरीराभिलाषी हैं।

११ "इन्द्रकी माता अदितिने महान् इन्द्रसे पूछा, 'हे मेरे पुत्र इन्द्र, अग्नि आदि देव तुम्हें त्याग रहे हैं।' इन्द्रने विष्णुको कहा, 'हे सखा विष्णु, तुम यदि वृत्रको मारनेकी इच्छा करते हो, तो अत्यन्त पराक्रमशाली होओ।'

१२ "हे इन्द्र, तुम्हारे अतिरिक्त किस देवने माताको विधवा किया था! तुम जिस समय सो रहे थे अथवा जाग रहे थे; उस समय किसने तुम्हें मारनेको चाहा था? कौन देवता सुख देनेमें तुम्हारी अपेक्षा अधिक हैं? जिस कारण तुमने पिताके दोनों चरणोंको पकड़कर उनका बध किया था?*

१३ "हमने जीवनोपायके अभावमें कुत्तेकी अँतड़ीको पकाकर खाया था। हमने देवोंके मध्यमें इन्द्रके अतिरिक्त अन्य देवको सुखदायक नहीं पाया। हमने अपनी भार्याको अश्लाघनीय (असम्मानित) होते देखा। इसके अनन्तर इन्द्र हमारे लिये मधुर जल लाये।"

पञ्चम अध्याय समाप्त

---

* यह कथा तैत्तिरीय-संहिता (६।१।३।६) में लिखी है।

षष्ठ अध्याय

१६ सूक्त

इन्द्र देवता। वामदेव ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः।
महामुभे रोदसी वृद्धमृष्वं निरेकमिद्वृणते वृत्रहत्ये ॥ १ ॥
अवासृजन्त जिव्रयो न देवा भुवः सम्राडिन्द्र सत्ययोनिः।
अहन्नहिं परिशयानमर्णः प्रवर्तनीररदो विश्वधेनाः ॥ २ ॥
अतृप्णुवन्तं वियतमबुध्यमबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र।
सप्त प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण विरिणा अपर्वन् ॥ ३ ॥
अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्ण वातस्तविषीभिरिन्द्रः।
दृह्लान्यौभ्नादुशमान ओजोवाभिनत् ककुभः पर्वतानाम् ॥ ४ ॥

---

१ हे वज्रवान् इन्द्र, इस यज्ञमें शोभन आह्वानसे युक्त तथा रक्षक निखिल देवगण और दोनों द्यावापृथिवी, वृत्रवधके लिये, एक मात्र तुम्हारा ही सम्भजन करती हैं। तुम स्तूयमान, महान्, गुणोत्कर्षसे प्रवृद्ध और दर्शनीय हो।

२ हे इन्द्र, वृद्ध पिता जैसे युवा पुत्रको प्रेरित करते हैं, उसी तरह देवगण तुम्हें असुर-वधके लिये प्रेरित करते हैं। हे इन्द्र, तुम सत्यविकाश-स्वरूप हो। तबसे तुम समस्त लोकोंके अधीश्वर हुए हो। जलको लक्ष्य करके परिशयन करनेवाले वृत्रासुरका तुमने बध किया था। सबको प्रसन्न करनेवाली नदियोंका तुमने खनन किया था।

३ हे इन्द्र, तुमने सोगमें अतृप्त, शिथिलाङ्ग, दुर्विज्ञान, अज्ञानभावापन्न, सुप्त और सपणशील जलको आच्छादित करके सोनेवाले वृत्रको, पौर्णमासीमें, वज्र द्वारा, मारा था।

४ वायु जैसे वल द्वारा जलको क्षोभित करती है, उसी तरह परमैश्वर्यवान् इन्द्र वल द्वारा अन्तरिक्षको, क्षीणजल करके, पीस डालते हैं। बलाभिळाषी इन्द्र दृढ़ मेघको भग्न करते हैं और पर्वतोंके पक्षोंको छिन्न करते हैं।

अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथा इव प्रययुः साकमद्रयः ।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥ ५ ॥

त्वं महीमवनिं विश्वधेनां तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम् ।
अरमयो नमसैजदर्णः सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून् ॥ ६ ॥

प्राग्रुवो नभन्वो न वक्वा ध्वस्रा अपिन्वद्युवतीर्ऋतज्ञाः ।
धन्वान्यज्राँ अपृणक्तृषाणाँ अधोगिन्द्रः स्तर्यो दंसुपत्नीः ॥ ७ ॥

पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ।
परिष्ठिता अतृणद्बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥ ८ ॥

वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं निवेशनाद्धरिव आजभर्थ ।
व्यन्धो अख्यदहिमाददानो निर्भूदुखच्छित् समरन्त पर्व ॥ ९ ॥

---

५ हे इन्द्र, माताएँ जिस तरह पुत्रके निकट गमन करती हैं, उसी तरह मरुतोंने तुम्हारे निकट गमन किया था; जैसे वृत्रको मारनेके लिये तुम्हारे साथ वेगवान् रथ गया था। तुमने विशरणशील नदियोंको वारिपूर्ण किया था; मेघको भग्न किया था और वृत्र द्वारा आवृत जलको प्रेरित किया था।

६ हे इन्द्र, तुमने महती तथा सबको प्रीति देनेवाली और तुर्वीति तथा वय्य राजाके लिये अभीष्ट फल देनेवाली भूमिको अन्नसे अचल किया था तथा जलसे रमणीय किया था अर्थात् पृथ्वीको तुमने अन्न-जलसे समृद्ध किया था। हे इन्द, तुमने जलको सुतरणीय (सुगमतासे तैरनेके योग्य) वना दिया था।

७ इन्द्रने शत्रुहिंसक सेनाकी तरह तटध्वंसिनी, जलयुक्ता तथा अन्नजनयित्री नदियोंको भली भाँति पूर्ण किया है। इन्द्रने जलशून्य देशोंको वृष्टि द्वारा पूर्ण किया है तथा पिपासित पथिकोंको पूर्ण किया है। इन्द्रने दस्युओंकी अधिकृता, प्रसव-निवृत्ता गौओंको दूहा था।

८ वृत्रासुरको मारकर इन्द्रने तमिस्रा द्वारा आच्छादित अनेक उषाको तथा संवत्सरोंको विमुक्त किया था। एवं वृत्र द्वारा निरुद्ध जलको भी विमुक्त किया था। इन्द्रने मेघके चारो तरफ वर्तमान तथा वृत्र द्वारा बध्यमान नदियोंको पृथ्वीके ऊपर वहनेके लिये विमुक्त किया था।

९ हे हरि नामक घोड़ावाले इन्द्र, तुमने उपजिह्विका (कीटविशेष) द्वारा भक्ष्यमान अग्रू-पुत्रको वल्मीक (दीमक)के स्थानसे बाहर किया था। बाहर किये जाते समय वह अग्रू-पुत्र यद्यपि अन्धा था; तथापि उसने सर्पको अच्छी तरहसे देखा था। उसके, उपजिह्विका द्वारा छिन्न, अङ्ग इन्द्र द्वारा संयुक्त हुए थे।

प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्राविद्वाँ आह विदुषे करांसि ।
यथायथा वृष्ण्यानि स्वगूर्तापांसि राजन्नर्याविवेषीः ॥१०॥
नूष्टुत इन्द नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥

२० सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥१॥
आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोवसे राधसे च ।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥२॥

---

१० हे राजमान प्राज्ञ इन्द्र, तुम सर्ववेत्ता हो। वर्षणयोग्य और स्वयं सम्पन्न मनुष्योंके वृष्टि-सम्बन्धी कर्मोंको तुमने जिस प्रकारसे किया था, वामदेव उन सकल पुरातन कर्मोंको जानकर कहते हैं।

११ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगोंके दुवारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति दुवारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

१ अभीष्टप्रद और तेजस्वी इन्द्र, हम लोगोंको आश्रय प्रदान करनेके लिये दूरसे आवें; हम लोगोंको आश्रय प्रदान करनेके लिये निकटसे आगमन करें। वे संग्राममें संगत होनेपर शत्रुओंका बध करते हैं। वे वज्रबाहु, मनुष्योंके पालक और तेजस्वी मरुतोंसे युक्त हैं।

२ हम लोगोंके अभिमुखवर्ती इन्द्र आश्रय और धन प्रदान करनेके लिये, हम लोगोंके निकट अश्वोंके साथ आवें। वज्रवान्, धनशाली और महान् इन्द्र युद्धमें उपस्थित होनेपर हमारे इस यज्ञमें उपस्थित हों।

इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र पुरोदधत् सनिष्यसि क्रतुं नः ।
श्वघ्नीव वज्रिन्त्सनये धनानां त्वया वयमर्य आजिं जयेम ॥३॥
उशन्नुषुणः सुमना उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः ।
पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन ॥४॥
वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभिर्वृक्षो न पक्वः सृण्यो न जेता ।
मर्यो न योषामभिमन्यमानोच्छा विवक्मि पुरुहूतमिन्द्रम् ॥५॥
गिरिर्न यः स्वतवाँ ऋष्व इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः ।
आदर्ता वज्रं स्थविरं न भीम उद्नेव कोशं वसुना न्यृष्टम् ॥ ६ ॥
न यस्य वर्ता जनुषान्वस्तिन राधस आमरीता मघस्य ।
उद्वावृषाणस्तविषीव उग्रास्मभ्यं दद्धि पुरुहूत रायः ॥ ७ ॥

---

३ हे इन्द्र, तुम हम लोगोंको पुरःसर करके, हमारे इस क्रियमान यज्ञका सम्भजन करो। हे वज्रधर, हम तुम्हारे स्तोता हैं। व्याधा जिस तरहसे मृगोंका शिकार करता है, उसी तरहसे हम तुम्हारे द्वारा, धन लाभके लिये युद्धमें जय लाभ करें।

४ हे अन्नवान् इन्द्र, तुम प्रसन्न मनसे हम लोगोंके समीप आगमन करो और हमारी कामना करके उत्तम रूपसे अभिषुत, सम्भृत और मादक सोमरसका पान करो एवम् माध्यन्दिन सेवनमें उदीयमान स्तोत्रके साथ सोम पान करके हृष्ट होओ।

५ जो पके फलवाले वृक्षकी तरह एवम् आयुधकुशल विजयी व्यक्तिकी तरह हैं और जो नूतन ऋषियों द्वारा विविध प्रकारसे स्तूयमान होते हैं, उन पुरुहूत इन्द्रके उद्देशसे हम स्तुति करते हैं। जैसे स्त्री-अभिमानी मनुष्य स्त्रीकी प्रशंसा करता है।

६ जो पर्वतकी तरह प्रवृद्ध और महान् हैं, जो तेजस्वी हैं और जो शत्रुओंको अभिभूत करनेके लिये सनातन कालमें उत्पन्न हुए हैं, वे इन्द्र जल द्वारा पूर्ण जलपात्रकी तरह, तेजःपूर्ण वृहत् वज्रका आदर करते हैं।

७ हे इन्द्र, तुम्हारे जन्मसे [उत्पन्न मात्रसे] ही कोई निवारक नहीं रहा, यज्ञादि कर्मके लिये तुम्हारे द्वारा प्रदत्त धनका नाशक कोई नहीं रहा। हे बलशाली, तेजस्वी, पुरुहूत, तुम अभीष्टवर्षी हो। तुम हम लोगोंको धन दो।

ईक्षे रायः क्षयस्य चर्षणीनामुत व्रजमपवर्तासि गोनाम् ।
शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम् ॥ ८ ॥
कयातच्छृण्वे शच्या शचिष्ठो यया कृणोति मुहु काचिदृष्वः ।
पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अंहोथा दधाति द्रविणं जरित्रे ॥ ९ ॥
मा नो मर्धीराभरा दद्धितन्नः प्र दाशुषे दातवे भूरि यत्ते ।
नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन्त उक्थे प्रब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः ॥ १० ॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासः ॥११॥

* * *

८ हे इन्द्र, तुम प्रजाओंके धन और गृहका पर्यवेक्षण करते हो और निरोधक असुरोंसे गौओंके समूहको उन्मुक्त करते हो । हे इन्द्र, तुम शिक्षाके विषयमें प्रजाओंके नेता या शासक हो और युद्धमें प्रहार करनेवाले हो । तुम प्रभूत धनराशिके प्रापक होओ ।

९ अतिशय प्राज्ञ इन्द किस प्रेज्ञावलसे विश्रुत होते हैं ? महान् इन्द्र जिस प्रज्ञावलसे मुहुर्मुहः कर्मसमूहका सम्पादन करते हैं (उसीके द्वारा विश्रुत हैं) । वे यजमानोंके बहुल पापको विनष्ट करते हैं और स्तोताओंको धन दान करते हैं ।

१० हे इन्द्र, तुम हम लोगोंकी हिंसा मत करो; बल्कि हम लोंगोके पोषक होओ । हे इन्द्र, तुम्हारा जो प्रभूत धन हव्यदाताको दान देनेके लिये है, वह धन लाकर हमें दो । हम तुम्हारा स्तव करते हैं इस नूतन दानयोग्य और प्रशस्त उक्थमें हम तुम्हारा विशेष रूपसे कीर्तन करते हैं।

११ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगोंके द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो । हे हरि-विशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें ।

२१ सूक्त

इन्द्र देवता। वामदेव ऋषि। त्रिष्टुप छन्द।

आयात्विन्द्रोवस उप न इह स्तुत: सधमादस्तु शूर: ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्नक्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥ १ ॥
तस्येदिह स्तवथ वृष्ण्यानि तुविद्युम्नस्य तुविराधसो नॄन् ।
यस्य क्रतुर्विदथ्यो न सम्राट् साह्वान्तरुत्रो अभ्यस्ति कृष्टीः ॥ २ ॥
आयात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षु समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान् परावतो वा सदनादृतस्य ॥ ३ ॥
स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे तमुष्टवाम विदथेष्विन्द्रम् ।
यो वायुना जयति गोमतीषु प्र धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ॥ ४ ॥
उप यो नमो नमसि स्तभायन्नियर्ति वाचं जनयन्यजध्यै ।
ऋञ्जसानः पुरुवार उक्थैरेन्द्रं कृण्वीत सदनेषु होता ॥ ५ ॥

---

१ जिनका बल प्रभूत है। जो सूर्यकी तरह अभिभवसमर्थ बलका पोषण करते हैं, वे हम लोगोंके समीप रक्षाके लिये आवें। पराक्रमवान् और प्रवृद्ध इन्द्र हमारे साथ हृष्ट हों।

२ हे स्तोताओं, यज्ञार्ह सम्राट्की तरह, जिनका अभिभवकारक तथा त्राणकारक कर्म शत्रुसम्बन्धिनी प्रजाओंको अभिभूत करता है, उन प्रभूतयशा तथा अतिशय धनशाली इन्द्रके बलभूत नेता मरुतोंकी, तुम लोग इस यज्ञमें, स्तुति करो।

३ इन्द्र हम लोगोंको आश्रय देनेके लिये मरुतोंके साथ स्वर्गलोकसे, भूलोकसे, अन्तरिक्षलोकसे, जलसे, आदित्यलोकसे, दूर देशसे और जलके स्थानभूत मेघलोकसे यहाँ आवें।

४ जो स्थूल एवम् महान् धनके अधिपति हैं, जो प्राणरूप बल द्वारा शत्रुसेनाको जीतते हैं, जो प्रगल्भ हैं और जो स्तोताओंको श्रेष्ठ धन दान करते हैं, यज्ञस्थलमें हम उन इन्द्रके उद्देशसे स्तुति करते हैं।

५ जो निखिल लोकोंका स्तम्भन करके यज्ञार्थ गर्जनशील वचनको उत्पन्न करते हैं और हव्य प्राप्त करके वृष्टि द्वारा अन्न दान करते हैं, जो प्रसाधनयोग्य तथा उक्थ द्वारा स्तुतियोग्य हैं, यज्ञ-गृहमें होता उन इन्द्रका आह्वान करते हैं।

धिषा यदि् धिषण्यन्तः सरण्यान्त्सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे ।
आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता योनो महान्त्संवरणेषु वह्निः ॥ ६ ॥
सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय ।
गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद्धिये प्रायसे मदाय ॥७॥
वि यद्वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि ।
विदद्गौरस्य गवयस्य गोहे यदीवाजाय सुध्यो वहन्ति ॥८॥
भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र ।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि किं नो दुदु हर्षसे दातवाउ ॥९॥
एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्राड्ढन्ता वृत्रं वारिवः पूरवेकः ।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय ते वसो दैव्यस्य ॥१०॥

---

६ जब इन्द्रकी स्तुतिके अभिलाषी, यजमानके गृहमें निवासकारी, स्तोता, स्तुतिके सहित, इन्द्रके निकट, उपगत होते हैं, तब वे इन्द्र आवें । वे युद्धमें हम लोगोंकी सहायता करें। वे यजमानोंके होता हैं । उनका क्रोध दुस्तर है ।

७ जगद्भर्ता, प्रजापतिके पुत्र, अभीष्टवर्षी इन्द्रका बल स्तोत्रकारी यजमानकी सेवा करता है । वह बल सचमुच यजमानोंके भरणके लिये गुहारूप हृदयमें उत्पन्न होता है, यजमानोंके गृह और कर्ममें सचमुच अवस्थान करता है तथा यजमानोंकी अभीष्टप्राप्ति और हर्षके लिये सचमुच वह बल उत्पन्न होता है । इन्द्रका बल यजमानोंका सदा पालन करता है ।

८ इन्द्रने मेघके द्वारको अपावृत किया था और जलके वेगको जलसमूह द्वारा परिपूर्ण किया था; अतएव जब सुकर्मा यजमान इन्द्रको अन्न दान करते हैं, तब वे गौर मृग और गवयमृग प्राप्त करते हैं ।

९ हे इन्द्र, तुम्हारा कल्याणकारक हस्तद्वय सत्कर्मका अनुष्ठान करता है एवम् तुम्हारा हस्तद्वय यजमानको धन दान करता है । हे इन्द्र, तुम्हारी स्थिति क्या है ? क्यों तुम हम लोगोंको हृष्ट नहीं करते हो ? क्यों तुम हम लोंगोंको धन देनेके लिये हृष्ट नहीं होते हो ?

१० इस प्रकार स्तुत होकर सत्यवान्, धनेश्वर और वृत्रहन्ता इन्द्र यजमानोंको धन देते हैं। हे वहुस्तुत, हम लोगोंकी स्तुतिके लिये तुम हमें धन दो । जिससे हम दिव्य अन्नका भक्षण कर सकें ।

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपे: ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्य: सदासा: ॥११॥

२२ सूक्त

३ अनुवाक। इन्द्र देवता। वामदेव ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान् करति शुष्म्याचित्।
ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्थायो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति ॥१॥
वृषा वृषन्धिश्चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतम: शचीवान्।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्या: पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥
यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मै: ।
दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं द्याममेन रेजयत् प्रभूम ॥ ३ ॥

---

११ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों दुवारा स्तुत होकर तथा हम लोगोंके द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति द्वारा' सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

१ महान् बलवान् इन्द्र हम लोगोंके हविरन्नका सेवन करते हैं। वे धनवान् हैं। वे वज्र धारण करके बलसे युक्त होकर आगमन करते हैं। इन्द्र हव्य, स्तोम, सोम और उक्थको स्वीकार करते हैं।

२ अभीष्टवर्षी इन्द्र दोनों बाहुओंसे वृष्टिकारी चतुर्धाराविशिष्ट वज्रको शत्रुओंके ऊपर फेंकते हैं। वे उग्र, नेतृश्रेष्ठ और कर्मवान् होकर आच्छादनकारिणी परुष्णी नदीकी, आश्रयके लिये, सेवा करते हैं। इन्द्रने परुष्णीके भिन्न-भिन्न प्रदेशको सखिकर्मके लिये संवृत किया था।

३ जो दीप्तिमान्, जो दातृश्रेष्ठ और जो उत्पन्न होते ही प्रभूत अन्न तथा महाबलसे युक्त हुए थे, वे दोनों बाहुओंमें कामयमान वज्र धारण करके बल दुवारा द्युलोक और भूलोकको प्रकम्पित करते थे।

विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीर्द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन्नेजत क्षाः ।
आमातरा भरति शुष्म्या गोर्नृवत् परिज्मन्नोनुवन्त वाताः ॥ ४ ॥
ता तू त इन्द्र महतो महानि विश्वेष्वित् सवनेषु प्रवाच्या ।
यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वानहिं वज्रेण शवसा विवेषीः ॥ ५ ॥
ता तू ते सत्या तुविनृम्ण विश्वा प्र धेनवः सिस्रते वृष्ण ऊध्न ।
अधाह त्वद्वृषमणोभियानाः प्रसिन्धवो जवसा चक्रमन्त ॥ ६ ॥
अत्राह ते हरिवस्ता उ देवीरवोभिरिन्द्रस्तवन्त स्वसारः ।
यत् सीमनु प्रमुचो बद्बधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै ॥ ७ ॥
पिपीले अंशुर्मद्यो न सिन्धुरात्वा शमी शशमानस्य शक्ति ।
अस्मद्र्यक् शुशुचानस्य यम्या आशुर्न रश्मि तुव्योजसं गोः ॥ ८ ॥

---

४ महान् इन्द्रके जन्म होनेपर समस्त पर्वत, अनेक समुद्र, द्युलोक और पृथिवी उनके भयसे कम्पित हुई थी। बलवान् इन्द्र गतिशील सूर्यके माता-पिता द्यावापृथ्वीको धारण करते हैं। इन्द्र द्वारा प्रेरित होकर वायु मनुष्यकी तरह शब्द करती है।

५ हे इन्द्र, तुम महान् हो, तुम्हारा कर्म महान् है और तुम समस्त सवनमें स्तुतियोग्य हो। हे प्रगल्भ, शूर, इन्द्र, तुमने सम्पूर्ण लोकको धारण करके, घर्षणशील वज्र द्वारा, बलपूर्वक, अहिको विनष्ट किया था।

६ हे अधिकबलशाली इन्द्र, तुम्हारे वे सकल कर्म निश्चय ही सत्य हैं। हे इन्द्र, तुम अभीष्टवर्षी हो। तुम्हारे भयसे गौएँ अपने ऊधःप्रदेशोंमें क्षीरकी रक्षा करती हैं। हे हर्षणशील, नदियाँ तुम्हारे भयसे वेगपूर्वक प्रवाहित होती हैं।

७ हे हरिवान् इन्द्र, जब तुमने वृत्र द्वारा बद्ध इन नदियोंको, दीर्घकालिक बन्धनके अनन्तर, प्रवाहित होनेके लिये मुक्त किया था, तब उसी समय वे प्रसिद्ध, द्युतिमती नदियाँ, तुम्हारे द्वारा रक्षित होनेके लिये, तुम्हारा स्तवन करती थीं।

८ हर्षजनक सोम निष्पीड़ित हुआ है, स्यन्दमान होकर यह तुम्हारे निकट आगमन करे। शीघ्रगामी, आरोही गमनशील अश्वकी दृढ़ बल्गा (लगाम) धारण करके जैसे अश्वको प्रेरित करता है, उसी तरह तुम दीप्तिमान् स्तोताकी स्तुतिको हमारे निकट प्रेरित करो।

अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा नृम्णानि सत्रा सहुरे सहांसि ।
अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य ॥ ९ ॥
अस्माकमित् सुश्रृणुहि त्वमिन्द्रास्मभ्यश्चित्राँ उपमाहि वाजान् ।
अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरन्धीरस्माकं सुमघवन् बोधि गोदाः ॥ १० ॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

२३ सूक्त

इन्द्र देवता । अथवा ८, ९, १०के ऋत देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

कथा महामवृधत् कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभिसोममूधः ।
पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय ॥ १ ॥

---

९ हे सहनशील इन्द्र, तुम सर्वदा शत्रुओंको अभिनव करनेवाला, प्रवृद्ध और प्रशस्त बल हम लोगोंको दो। बध्ययोग्य शत्रुओंको हमारे वशीभूत करो। हिंसक मनुष्योंके अस्त्रोंको नष्ट करो।

१० हे इन्द्र, तुम हम लोगोंकी स्तुति श्रवण करो। हम लोगोंको विविध प्रकारका अन्न दो। हमारे लिये समस्त बुद्धि प्रेरित करो। हमारे लिये तुम गौदाता होओ।

११ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगोंके द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्द शसे अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

१ हम लोगोंकी स्तुति महान् इन्द्रको किस प्रकारसे वद्धित करेगी ? वे किस होताके यज्ञमें प्रीत होकर आगमन करते हैं ? महान् इन्द्र सोमरसका आस्वादन करते हुए तथा अन्नकी कामना और सेवा करते हुए किस यजमानको देनेके लिये प्रदीप्त धनको धारण करते हैं।

को अस्य वीरः सधमादमाप समानंश सुमतिभिः को अस्य ।
कदस्य चित्रं चिकितेकदूती वृधे भुवच्छशमानस्य यज्योः ॥ २ ॥
कथा श्रृणोति हूयमानमिन्द्रः कथा श्रृण्वन्नवसामस्य वेद ।
का अस्य पूर्वीरुपमातयो ह कथैनमाहुः पपुरिं जरित्रे ॥३॥
कथा सबाधः शशमानो अस्य नशदभिद्रविणं दीध्यानः ।
देवो भुवन्नवेदाम ऋतानां नमो जगृभ्वाँ अभि यज्जुजोषत् ॥४॥
कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्तस्य सख्यं युजोष ।
कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन् कामं सुयुजं ततस्रे ॥५॥
किमादमत्रं सख्यं सखिभ्यः कदा नु ते भ्रात्रं प्रब्रवाम ।
श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः स्वर्ण चित्रतममिष आगोः ॥६॥

---

२ कौन वीर इन्द्रके साथ सोमपान करने पाता है? कौन व्यक्ति इन्द्रके अनुग्रहको प्राप्त करता है? कब इनके विचित्र धन वितरित होंगे? कब ये स्तोता यजमानको वर्द्धित करनेके लिये रक्षायुक्त होंगे?

३ हे इन्द्र, परमैश्वर्यसे युक्त होकर तुम होताकी कथाको क्योंकर श्रवण करते हो? स्तोत्रोंको सुनकर स्तुति करनेवाले होताकी रक्षण-कथाको क्योंकर जानते हो? इन्द्रके पुरातन दान कौन हैं? वे दान इन्द्रको स्तोताओंकी अभिलाषाके पूरक क्यों कहते हैं?

४ जो यजमान पीड़ायुक्त होकर इन्द्रकी स्तुति करते हैं और यज्ञ दुवारा दीप्तियुक्त होते हैं, वे किस प्रकारसे इन्द्रसम्बन्धी धन प्राप्त करते हैं? जब द्युतिमान् इन्द्र हव्य ग्रहण करके हमारे ऊपर प्रसन्न होते हैं, तब वे हमारी स्तुतिको विशेष रूपसे ज्ञात करते हैं।

५ द्योतमान इन्द्र, उषाके प्रारम्भमें (प्रभातमें) किस प्रकार और कब मनुष्योंके बन्धुत्वकी सेवा करते हैं? जो होता इन्द्रके उद्देशसे सुयोग तथा कमनीय हव्यको विस्तारित करते हैं, उन बन्धुओंके प्रति कब और किस प्रकारसे, अपने बन्धुत्वको इन्द्र प्रकाशित करते हैं?

६ हे इन्द्र, हम यजमान तुम्हारे शत्रुपराभवकारी सख्यको, स्तोताओंके निकट, किस प्रकारसे, भली भाँति, कहेंगे? कब हम तुम्हारे भ्रातृत्वका प्रचार करेंगे? सुदर्शन इन्द्रका उद्योग स्तोताओंके कल्याणके लिये होता है। सूर्यकी तरह गतिशील इन्द्रका अतिशय दर्शनीय शरीर सबके द्वारा अभिलषित है।

द्रुहं जिघांसन् ध्वरसमनिन्द्रान्तेतिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका ।
ऋणाचिद्यत्र ऋणयान उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो वबाधे ॥७॥
ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ॥८॥
ऋतस्य दृह्ला धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि ।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन गाव ऋतमाविवेशुः ॥९॥
ऋतं येमान ऋतमिद्वनोत्यृतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः ।
ऋताय पृथ्वी बहुले गभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते ॥१०॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥

---

७ द्रोह करनेवाली, हिंसा करनेवाली तथा इन्द्रको नहीं जाननेवाली राक्षसीको मारनेके लिये पहलेसे ही तीक्ष्ण आयुधोंको अत्यन्त तीक्ष्ण करते हैं। ऋण भी हम लोगोंको उषाकालमें बाधित करता है, ऋणविनाशक बलवान् इन्द्र उन उषाओंको दूरसे हो, अज्ञातभावसे पीड़ित करते हैं।

८ ऋत (सत्य, आदित्य अथवा यज्ञ) देवको बहुत जल हैं। ऋतदेवकी स्तुति पापको नष्ट करती है। ऋतदेवका बोधयोग्य तथा दीप्तिमान् स्तुतिवाक्य मनुष्योंके बधिर कर्णमें भी प्रवेश पाता है।

९ वपुष्मान् ऋतदेवके दृढ़, धारक, आह्लादक आदि अनेक रूप हैं। लोग ऋतदेवके निकट प्रभूत अन्नकी इच्छा करते हैं। ऋतदेव द्वारा गौएँ, दक्षिणारूपसे, यज्ञमें प्रवेश करती हैं।

१० स्तोता लोग ऋतदेवको वशीभूत करनेके लिये सम्भजन करते हैं। ऋतदेवका बल शीघ्र ही जलकामना करता है। विस्तीर्णा तथा दुरवगाहा द्यावापृथिवी ऋतदेवकी है। प्रीतिदायिका तथा उत्कृष्टा द्यावापृथिवी ऋतदेवके लिये दुग्ध दोहन करती है।

११ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर, तथा हम लोगोंके द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

२४ सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।

का सुष्टुतिः शवसः सूनुमिन्द्रमर्वाचीनं राधस आववर्तत् ।
ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्षिधान्नो जनासः ॥१॥
स वृत्र हत्ये हव्यः स ईड्यः ससुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः ।
स यामन्ना मघवा मर्त्याय ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात् ॥२॥
तमिन्नरो विह्वयन्ते समीके रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम् ।
मिथो यत्त्यागमुभयासो अग्मन्नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ॥३॥
क्रतूयन्ति क्षितयो योग उग्राशुषाणासो मिथो अर्णसातौ ।
संयद्विशोववृत्रन्त युध्मा आदिन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके ॥ ४ ॥

---

१ हम लोगोंको धन देनेके लिये, हम लोगोंके अभिमुख, किस प्रकारसे सुन्दर स्तुति बलके पुत्र इन्द्रको आवर्तित करे । हे यजमानो, वीर तथा पशुपालक इन्द्र हम लोगोंको, शत्रुओंका धन दे । हम लोग उनकी स्तुति करते हैं ।

२ वृत्रको मारनेके लिये इन्द्र संग्राममें आह्वत होते हैं। वे स्तुतियोग्य हैं । वे सुन्दर रूपसे स्तुत होनेपर यजमानोंको धन देनेके लिये, सत्यधन होते हैं। धनवान् इन्द्र स्तोत्राभिलाषी तथा सोमाभिलाषी यजमानको धन दान करते हैं।

३ मनुष्यगण युद्धमें इन्द्रका ही आह्वान करते हैं। यजमान लोग शरीरको तपस्या द्वारा क्षीण करके उन्हींको त्राणकर्ता करते हैं । यजमान तथा स्तोता दोनों ही परस्पर संगत होकर पुत्र पौत्र लाभके लिये इन्द्रके निकट गमन करते हैं।

४ हे बलवान् इन्द्र, चतुर्दिक्में व्याप्त मनुष्य जल लाभके लिये एकत्र होकर यज्ञ करते हैं! जब युद्धकारी लोग युद्धमें एकत्र होते हैं, तब कौन इन्द्रकी अभिलाषा करता है।

आदिद्धनेम इन्द्रियं यजन्त आदित्पक्तिः पुरोडाशं रिरिच्यात् ।
आदित् सोमो विपपृच्यादसुष्वीनादिज्जुजोष वृषभं यजध्यै ॥ ५ ॥
कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थेन्द्राय सोममुशते सुनोति ।
सध्रीचीनेन मनसा विवेनन्तमित् सखायं कृणुते समत्सु ॥ ६ ॥
य इन्द्राय सुनवत् सोममद्य पचात् पक्तीरुत भृज्जाति धानाः ।
प्रति मनायोरुचथानि हर्यन्तस्मिन्दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्रः ॥७॥
यदा समर्यं व्यचेदृघावा दीर्घं यदाजिमभ्यख्यदर्यः ।
अचिक्रदद्वृषणं पत्न्यच्छा दुरोण आनिशितं सोमसुद्भिः ॥८॥
भूयसा वस्नमचरत् कनीयोविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।
स भूयसा कनीयो नारिरेचीद्दीना दक्षा विदुहन्ति प्रवाणम् ॥९॥

---

५ उस समय युद्धमें कोई योद्धा बलवान् इन्द्रकी पूजा करते हैं । अनन्तर कोई पुरोडाश प्रस्तुत करके इन्द्रको देते हैं । उस समय सोमाभिषव करनेवाले यजमान अनभिषुत सोमवाले यजमानको धनसे पृथक् कर देते हैं । उस समय कोई अभीष्टवर्षी इन्द्रके उद्देशसे यज्ञ करनेकी अभिलाषा करते हैं ।

६ जो सोमाभिलाषी स्वर्गलोकस्थित इन्द्रके उद्देशसे अभिषव करते है, उन्हें इन्द्र धन दान करते हैं। एकान्त चित्तसे इन्द्रकी अभिलाषा करनेवाले तथा सोमाभिषव करनेवाले यजमानके साथ संग्राममें इन्द्र सखिता करते हैं ।

७ जो आज इन्द्रके लिये सोमाभिषव करते है, जो पुरोडाश प्रस्तुत करते हैं और जो भर्जन योग्य जौको भूँनते हैं, उसी स्तोत्रकारीके स्तोत्रको स्वीकार करके इन्द्र, यजमानकी अभिलाषाके पूरक, बलको धारण करते है ।

८ जब शत्रुओंके हिंसक स्वामी इन्द्र शत्रुओंको जानते हैं, जब वे दीर्घ संग्राममें व्याप्त रहते हैं, तब उनकी पत्नी, सोमाभिषवकारी ऋत्विक् द्वारा तीक्ष्णीकृत अर्थात् सोमपान करनेसे उत्साहवान् तथा अभीष्टवर्षी इन्द्रका, यज्ञगृहमें, आह्वान करती हैं ।

९ कोई बहुत पण्य द्वारा अल्प धन प्राप्त करता है, फिर क्रेताके निकट गमन करके 'हमने विक्रय नहीं किया है' कहकर अवशिष्ट मूल्यकी प्रार्थना करता है । विक्रेता 'बहुत दिया है' कहकर अल्प मूल्यका अतिक्रम नहीं करता है । 'समर्थ या असमर्थ होओ विक्रय कालमें जो वचन हुआ है, वही रहेगा ।'

——

क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।
यदा वृत्राणि जङ्घनदथैनं मे पुनर्ददत् ॥१०॥

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥

२५ सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

को अद्य नर्यो देवकाम उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।
को वा महेऽवसे पार्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे ॥१॥

को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः ।
क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती ॥२॥

---

१० कौन हमारे इन्द्रको प्रीणयित्री दस धेनुओं द्वारा, खरीदेगा ? जब इन्द्र शत्रुओंका वध करेंगे, तब इन्द्रको फिर मुझे देना।

११ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगोंके द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो । हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर सदा तुम्हारी सेवा करते रहें ।

१ आज कौन मनुष्य हितकर, देवताभिलाषी, कामयमान व्यक्ति इन्द्रके साथ मैत्री चाहता है ? सोमाभिषवकारी कौन व्यक्ति, अग्निके प्रज्वलित होनेपर, महान् तथा पारगामी आश्रय लाभके लिये, इन्द्रका स्तव करता है ?

२ कौन यजमान स्तुतिवाक्य द्वारा सोमार्ह इन्द्रके निकट अवनत होता है ? कौन इन्द्रकी स्तुतिकामना करता है ? कौन इन्द्र द्वारा प्रदत्त गौओंको धारण करता है ? कौन इन्द्रके साहाय्यकी इच्छा करता है ? कौन इन्द्रके साथ मैत्रीकी इच्छा करता है ? कौन इन्द्रके भ्रातृत्वकी इच्छा करता है ? कौन क्रान्तदर्शी इन्द्रसे आश्रय-प्रार्थना करता है ?

को देवानाम वो अद्या वृणीते कः आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे ।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाविवेनम् ॥३॥
तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंसज्ज्योक् पश्यात् सूर्यमुच्चरन्तम् ।
य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्याय नृतमाय नृणाम् ॥४॥
न तं जिनन्ति बहवोन दभ्रा उर्वस्मा अदितिः शर्म यंसत् ।
प्रियः सुकृत् प्रिय इन्द्रे मनायुः प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी ॥५॥
सुप्राव्यः प्राशुषालेष वीरः सुष्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः ।
नासुष्वेरापिर्न सखा न जामिर्दुष्प्राव्यो बहन्तेद्वाचः ॥ ६
न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रोऽसुन्वता सुतपाः संगृणीते ।
आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत ॥७॥

---

३ आज कौन यजमान इन्द्र आदि देवताओंकी, रक्षाके लिये, प्रार्थना करता है? कौन आदित्य, अदिति तथा उदककी प्रार्थना करता है? अश्विद्वय, इन्द्र और अग्नि स्तुतिसे प्रसन्न हो कर, किस यजमानके अभिषुत सोमका यथेच्छ पान करते हैं?

४ जो यजमान कहते हैं कि, नेता, मनुष्योंके बन्धु एवम् नेताओंके मध्यमें श्रेष्ठ नेता इन्द्रके लिये सोमाभिषव करेंगे, उन यजमानोंको हविर्भर्त्ता अग्नि सुख प्रदान करें तथा चिर कालसे उदित सूर्यको देख।

५ अल्प अथवा अधिक शत्रु उन यजमानोंको हिंसित नहीं करें। जो यजमान इन्द्रके लिये सोमाभिषव करते हैं। इन्द्र-माता अदिति उन यजमानोंको अधिक सुख प्रदान करें। शोभन यज्ञ-याग करनेवाले यजमान इन्द्रके प्रिय हों। जो इन्द्रकी स्तुति-कामना करते हैं, वे इन्द्रके प्रिय हों। जो इन्द्रके निकट साधुभावसे गमन करते हैं, वे इन्द्रके प्रिय हों। सोमवान् यजमान इन्द्रके प्रिय हों।

६ जो व्यक्ति इन्द्रके निकट गमन करता है और सोमाभिषव करता है, उसके पाक-कार्यको, शीघ्र अभिनवकारी तथा विक्रान्त इन्द्र स्वीकार करते हैं। जो यजमान सोमाभिषव नहीं करता है, उसके लिये इन्द्र व्याप्त नहीं होते हैं, सखा नहीं होते हैं और बन्धु भी नहीं होते हैं। जो व्यक्ति इन्द्रके निकट गमन नहीं करता है और उनकी स्तुति नहीं करता है, इन्द्र उसकी हिंसा करते हैं।

७ अभिषुतसोमपायी इन्द्र सोमाभिषव-कर्मरहित, धनवान्, लोभी बनियोंके साथ मैत्री संस्थापित नहीं करते हैं। वे उनके निरर्थक धनको उद्धरित करते हैं और नष्ट करते हैं। वे सोमाभिषवकारी तथा हव्यपाककारी यजमानके असाधारण बन्धु होते हैं।

इन्द्रं परेवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोवसितास इन्द्रम् ।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ॥ ८ ॥

२६ सूक्त

प्रथम तीन मन्त्रों द्वारा वामदेवने इन्द्ररूपसे आत्माकी स्तुति की है अथवा इन्द्रने ही आत्माकी स्तुति की है; अतएव वामदेवके वाक्यके पक्षमें वामदेव ऋषि, इन्द्र देवता अथवा इन्द्रके वाक्यके पक्षमें इन्द्र ऋषि परमात्मा देवता । अवशिष्ट ऋचाओंके वामदेव ऋषि। सुपर्णात्मक परब्रह्म देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयन्यृञ्जेहं कविरुशना पश्यता मा ॥ १ ॥
अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥ २ ॥
अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकन्नवतीः शम्बरस्य।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ॥ ३ ॥

---

८ उत्कृष्ट तथा निकृष्ट व्यक्ति इन्द्रका आह्वान करते हैं एवम् मध्यम व्यक्ति भी इन्द्रका ही आह्वान करते हैं । चलनेवाले लोग इन्द्रका आह्वान करते हैं तथा उपविष्ट लोग भी इन्द्रका ही आह्वान करते हैं । गृहवासी लोग इन्द्रका आह्वान करते हैं तथा युद्ध करनेवाले भी इन्द्रका ही आह्वान करते हैं। अन्नकी इच्छा करनेवाले लोग भी इन्द्रका ही आह्वान करते हैं ।

---

१ हम प्रजापति हैं, हम सबके प्रेरक सविता हैं, हम ही दीर्घतमाके पुत्र मेधावी कक्षीवान् ऋषि हैं, हमने ही अर्जुनीपुत्र कुत्सको भली भाँति अलङ्कृत किया था, हम ही उशना नामक कवि हैं । हे मनुष्यो, हमें अच्छी तरहसे देखो ।

२ हमने आर्यको पृथिवी दान किया था । हमने हव्यदाता मनुष्यको शस्यकी अभिवृद्धिके लिये वृष्टि दान किया था । हमने शब्दायमान जलका आनयन किया था । देवगण हमारे सङ्कल्पका अनुगमन करते हैं ।

३ हमने सोमपानसे मत्त होकर शम्बरके ९९ नगरोंको एक कालमें ही ध्वस्त किया था। जिस समय हम यज्ञमें अतिथियोंके अभिगन्ता राजर्षि दिवोदासका पालन कर रहे थे, उस समय हमने दिवोदासको सौ नगर, निवास करनेके लिये, दिये थे ।

प्र सुषविभ्यो मरुतो विरस्तु प्र श्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा ।
अचक्रया यत् स्वधया सुपर्णो हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम् ॥ ४ ॥
भरद्यदि विरतो वेविजानः पथोरुणा मनोजवा असर्जि ।
तूयं ययौ मधुना सोम्येनोतश्रवो विविदे श्येनो अत्र ॥ ५ ॥
ऋजीपी श्येनो ददमानो अंशुं परावतः शकुनो मन्द्रं मदम् ।
सोमं भरद्दादृहाणो देवावान्दिवो अमुष्मादुत्तरादादाय ॥ ६ ॥
आदाय श्येनो अभरत् सोमं सहस्रं सवाँ अयुतं च साकम् ।
अत्रा पुरन्धिरजहादरातीर्मदे सोमस्य मूरा अमूरः ॥७॥

२७ सूक्त

श्येन देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥१॥

---

४ हे मरुद्गण, श्येन पक्षी पक्षियोंके मध्यमें प्रधान हो । अन्य श्येनोंकी अपेक्षा शीघ्रगामी श्येन प्रधान हो । जिस लिये कि, देवों द्वारा सेवित सोमरूप हव्यको, मनुष्योंके लिये, स्वर्गलोकसे चक्ररहित रथ दुवारा, सुपर्ण लाया था ।

५ जब भयभीत होकर श्येन पक्षी द्युलोकसे सोम लाया था, तब वह विस्तीर्ण अन्तरिक्ष मार्गमें मनकी तरह वेगयुक्त होकर उड़ा था एवम् सोममय मधुर अन्नके साथ वह शीघ्र गया था; और, सोम लानेके कारण सुपर्णने इस लोकमें यशोलाभ किया था ।

६ देवोंके साथ होकर ऋजुगामी और प्रशसित-गमन श्येन पक्षीने दूरसे सोमको धारण करके एवम् स्तुतियोग्य तथा मदकर सोमको, उन्नत द्युलोकसे, ग्रहण करके दृढ़भावसे उसका आनयन किया था ।

७ श्येन पक्षीने सहस्र और अयुत संख्यक यज्ञके साथ सोमको ग्रहण करके उस अन्नका आनयन किया था । उस सोमके लाये जानेपर बहुकर्मविशिष्ट प्राज्ञ इन्द्रने, सोमसम्बन्धी हर्षके उत्पन्न होनेपर, मूढ़ शत्रुओंका बध किया था ।

---

१ गर्भमें विद्यमान होकर ही हम (वामदेव) ने इन्द्र आदि समस्त देवोंके जन्मको यथाक्रमसे जाना था । अर्थात् परमात्माके समीपसे सब देव उत्पन्न हुए हैं । बहुतेरे लौहमय शरीरोंने हमारा पालन किया था । अभी हम श्येनकी तरह स्थित होकर आवरणरहित आत्माको जानते हुए, शरीरसे निर्गत होते हैं ।

न घा स मामप जोषं जभाराभीमास त्वक्षसा वीर्येण ।
ईर्मा पुरन्धिरजहादरातीरुत वाताँ अतरच्छूशुवानः ॥२॥
अव यच्छ्येनो अस्वनीदध द्योर्वि यद्यदि वात ऊहुः पुरन्धिम् ।
सृजद्यदस्मा अव ह क्षिपज्ज्यां कृशानुरस्ता मनसा भुरण्यन् ॥३॥
ऋजिप्य ईमिन्द्रावतो न भुज्युं श्येनो जभार बृहतो अधिष्णोः ।
अन्तः पतत् पतत्र्यस्य पर्णमध यामनि प्रसितस्य तद्वेः ॥४॥
अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तमापिप्यानं मघवा शुक्रमन्धः ।
अध्वर्युभिः प्रयतं मध्वो अग्रमिन्द्रो मदाय प्रतिधत् पिबध्यै
शूरो मदाय प्रतिधत् पिबध्यै ॥५॥

* * *

२ उस गर्भनें हमारा पर्याप्तरूपसे अपहरण नहीं किया था अर्थात् गर्भमें निवास करते समय हमें मोह नहीं हुआ था । हमने गर्भस्थ दुःखको तीक्ष्ण वीर्य द्वारा अर्थात् ज्ञानसामर्थ्यसे पराभूत किया था । सबके प्रेरक परमात्माने गर्भस्थित शत्रुओंका बध किया था और वर्द्धमान होकर गर्भमें क्लेशकारक वायुको अतिक्रान्त किया था ।

३ सोमाहरणकालमें जब श्येनने द्युलोकसे अधोमुख होकर शब्द किया था, जब सोमपालोंने श्येनके निकटसे सोम छीन लिया था, जब शरप्रक्षेपक सोमपाल कृशानुने मनोवेगसे जानेकी इच्छा करके धनुष्की कोटिपर प्रत्याञ्चा चढ़ायी थी और श्येनके प्रति शरक्षेपण किया था, तब श्येनने सोमका आनयन किया था ।

४ अश्विद्वयने जिस प्रकार सामर्थ्यवान् इन्द्रविशिष्ट देशसे भुज्युनामक राजाका आहरण किया था, उसी प्रकार ऋजुगामी श्येनने इन्द्ररक्षित महान् द्युलोकसे सोमका आहरण किया था। उस समय युद्धमें कृशानुके अस्त्रोंसे विद्ध होनेपर उस गमनशील पक्षीका एक मध्यस्थित तथा पतनशील पक्ष गिर पड़ा था ।

५ इस समय विक्रमवान् इन्द्र शुभ, पात्रस्थित गव्यमिश्रित, तृप्तिकर, सारसमन्वित एवम् अध्वर्युओं द्वारा प्रदत्त सोम लक्षण अन्नका और मधुर सोमरसका, हर्षके लिये पहले ही, पान करें।

* * *

२८ सूक्त

इन्द्र और सोम देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

त्वा युजा तव तत् सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥१॥
त्वा युजा नि खिदत् सूर्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्द्रो ।
अधिष्णुना बृहता वर्तमानं महोद्रुहो अप विश्वायु धायि ॥२॥
अहन्निन्द्रो अदहदग्निरन्दो पुरा दस्यून्मध्यन्दिनादभीके ।
दुर्गे दुरोणे क्रत्वा न यातां पुरू सहस्रा शर्वा नि बर्हीत ॥३॥
विश्वस्मात् सीमधमाँ इन्द्र दस्यून्विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः ।
अबाधेथाममृणतं नि शत्रू नविन्देथामपचितिं वधत्रैः ॥४॥
एवासत्यं मघवाना युवं तदिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः ।
आदर्द्द तमपिहितान्यश्ना रिरिचिथुः क्षाश्चित्ततृदाना ॥५॥

---

१ हे सोम, इन्द्रके साथ तुम्हारी मैत्री होनेपर इन्द्रने तुम्हारी सहायतासे मनुष्योंके लिये सरणशील जलको प्रवाहित किया था, वृत्रका वध किया था, सर्पणशील जलको प्रेरित किया था और वृत्र द्वारा तिरोहित जल-द्वारको उद्घाटित किया था।

२ हे सोम, इन्द्रने तुम्हारी सहायतासे, क्षण-भरमें, प्रेरक सूर्यके रथके ऊपर स्थित बृहत् अन्तरिक्षमें वर्तमान द्विचक्र रथके एक चक्रको बलपूर्वक तोड़ डाला था । प्रभूत द्रोहकारी सूर्यके सर्वतोगामी चक्रको इन्द्रने अपहृत किया था।

३ हे सोम, तुम्हारे पानसे बलवान् इन्द्रने, मध्याह्नकालके पहले ही, संग्राममें शत्रुओंको मार डाला था और अग्निने भी कितने शत्रुओंको जला डाला था। किसी कार्यसे रक्षाशून्य दुर्गम स्थानसे जानेवाले व्यक्तिको जैसे चोर मार डालता है, उसी तरह इन्द्रने बहु सहस्र सेनाओंका बध किया है।

४ हे इन्द्र, तुम इन दस्युओंको सकल सद्गुणोंसे रक्षित करते हो। तुम कर्महीन मनुष्यों (दासों) को गर्हित (निन्दित) बनाते हो। हे इन्द्र और सोम, तुम दोनों शत्रुओंको बाधा दान करो और उनका बध करो। उन्हें मारनेके लिये लोगोंसे पूजा ग्रहण करो ।

५ हे सोम, तुम और इन्द्रने महान् अश्वसमूह और गोसमूहको दान किया था एवम् पणियों द्वारा आच्छादित गोवृन्द और भूमिको बल द्वारा विमुक्त किया था। हे धनयुक्त इन्द्र और सोम, तुम दोनों शत्रुओंके हिंसक हो । तुम दोनोंने इस प्रकारसे जो कुछ किया है, वह सत्य है।

२६ सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द

आ नः स्तुत उप वाजेभिरूती इन्द्र याहि हरिभिर्मन्दसानः ।
तिरश्चिदर्यः सवना पुरूण्याङ्गूषेभिर्गृणानः सत्यराधाः ॥१॥
आ हि ष्मा याति नर्यश्चिकित्वान् हूयमानः सोतृभिरुप यज्ञम् ।
स्वश्वो यो अभीरुर्मन्यमानः सुष्वाणेभिर्मदति सं ह वीरैः ॥२॥
श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामनु प्र दिशं मन्दयध्यै ।
उद्वावृषाणो राधसे तुविष्मान् करन्नइन्द्रः सुतीर्थाभयं च ॥३॥
अच्छायो गन्ता नाधमानमूती इत्था विप्रं हवमानं गृणन्तम् ।
उपत्मनि दधानो धुर्या शून्तसहस्राणि शतानि वज्रबाहुः ॥४॥

१ हे इन्द्र, तुम स्तुत होकर हम लोगोंको रक्षित करनेके लिये, हम लोगोंके अन्नयुक्त अनेक यज्ञोंमें, अश्वोंके साथ, आगमन करो। तुम मोदमान, स्वामी, स्तोत्रों दुवारा स्तूयमान और सत्यधन हो।

२ मनुष्योंके हितकारी, सर्ववेत्ता इन्द्र सोमाभिषवकारियों दुवारा आहूत होकर यज्ञके उद्देशसे आगमन करें। वे सुन्दर अश्वोंसे युक्त हैं, वे निर्भय हैं, वे सोमाभिषवकारियों दुवारा स्तुत होते हैं एवम् वीर मरुतोंके साथ हृष्ट होते हैं।

३ हे स्तोता, तुम इन्द्रके कर्णद्वयमें, इन्द्रको बली करनेके लिये और सब दिशाओंमें अतिशय हृष्ट करनेके लिये, स्तोत्रोंको सुनाओ। सोमरससे सिक्त बलवान् इन्द्र हम लोगोंके धनके लिये शोभन तीर्थोंको भयरहित करें।

४ वज्रबाहु इन्द्र अपने वशीभूत सहस्रसंख्यक तथा शतसंख्यक शीघ्रगामी अश्वोंको रथवहन प्रदेशमें संस्थापित करते हैं एवम् रक्षा करनेके लिये याचक, मेधावी आह्लादकारी और स्तवकारी यजमानके निकट गमन करते हैं।

त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा वयन्ते स्याम सूरयो गृणन्तः ।
भेजानासो बृहद्दिवस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः ॥५॥

३० सूक्त

इन्द्र देवता । नवमके उषा और इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री और अनुष्टुप् छन्द ।

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् । नकिरेवा यथा त्वम् ॥१॥
सत्रा ते अनु कृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः । सत्रामहाँ असिश्रुतः ॥२॥
विश्वेचनेदनात्वा देवास इन्द्र युयुधुः । यदहा नक्तमातिरः ॥३॥
यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते । मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥४॥
यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इत् । त्वमिन्द्र वनूँरहन् ॥५॥

---

५ हे धनवान् इन्द्र, हम लोग तुम्हारे स्तोता हैं। हम लोग तुम्हारे द्वारा रक्षित हैं, मेधावी और स्तुतिकारी हैं। तुम दीप्तिविशिष्ट, स्तुतियोग्य और अन्नविशिष्ट हो। धनदान-कालमें हम लोग तुम्हारा सम्भजन कर सकें।

१ हे वृत्रनाशक इन्द्र, लोकमें तुम्हारी अपेक्षा कोई भी उत्कृष्टतर नहीं है, तुम्हारी अपेक्षा कोई भी प्रशस्यतर नहीं है। हे इन्द्र, तुम जिस तरह लोकमें प्रसिद्ध हो, उस तरह कोई भी नहीं है।

२ सर्वत्र व्याप्त चक्र जिस तरह शकटका अनुवर्तन करता है, उसी तरह प्रजागण तुम्हारा अनुवर्तन करते हैं। हे इन्द्र, तुम सचमुच महान् और गुण द्वारा प्रख्यात हो।

३ जयाभिलाषी सब देवोंने बलरूपसे तुम्हारी सहायता प्राप्त करके, असुरोंके साथ युद्ध किया था। जिस लिये कि, तुमने अहर्निश शत्रुओंका बध किया था।

४ हे इन्द्र, जिस युद्धमें तुमने युद्धकारी कुत्स एवम् उसके सहायकोंके लिये सूर्यके रथचक्रको अपहृत किया था।

५ हे इन्द्र, जिस युद्धमें तुमने एकाकी होकर देवोंके बाधक सकल राक्षसोंके साथ युद्ध किया था तथा उन हिंसकोंका बध किया था

यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्यम् । प्रावः शचीभिरेतशम् ॥६॥
किमादुतासि वृत्रहन् मघवन् मन्युमत्तमः । अत्राहदानुमातिरः ॥७॥
एतद्घेदुतवीर्यमिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् ।
स्त्रियं यद्दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥८॥
दिवश्चिद्घा दुहितरं महान् महीयमानाम् । उषासमिन्द्र सं पिणक् ॥९॥
अपोषा अनसः सरत् सम्पिष्टादह विभ्युषी ।
नि यत् सीं शिश्नथद्वृषा ॥१०॥
एतदस्या अनः शये सुसम्पिष्टं विपाश्या । ससार सीं परावतः ॥११॥
उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधिक्षमि । परिष्ठा इन्द्र मायया ॥१२॥
उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र मृक्षो अभि वेदनम् ।
पुरो यदस्य सम्पिणक् ।१३।

---

६ हे इन्द्र, जिस संग्राममें तुमने एतश ऋषिके लिये सूर्यकी हिंसा की थी, उस समय युद्धकर्म द्वारा तुमने एतशकी रक्षा की थी।

७ हे आवरक अन्धकारके हननकर्ता धनवान् इन्द्र, उसके बाद क्या तुम अत्यन्त क्रोधवान् हुए थे? इस अन्तरिक्षमें और दिवसमें तुमने दानुपुत्र वृत्रका बध किया था।

८ हे इन्द्र, तुमने बलको इस प्रकारसे सामर्थ्ययुक्त किया था। तुमने हननाभिलाषिणी तथा द्युलोककी दुहिता उषाका बध किया।

९ हे महान् इन्द्र, तुमने द्युलोककी दुहिता तथा पूजनीया उषाको सम्पिष्ट किया था।

१० अभीष्टवर्षी इन्द्रने जब उषाके शकटको भग्न किया था, तब उषा भीत होकरके इन्द्र द्वारा भग्न शकटके ऊपरसे अवतीर्ण हुई थी।

११ इन्द्र द्वारा विचूर्णित उषा देवीका शकट विपाशा नदीके तीरपर गिर पड़ा। शकटके टूट जानेपर उषादेवी दूर देशमें अपसृत हो गयीं।

१२ हे इन्द्र, तुमने सम्पूर्णजला तथा तिष्ठमाना नदीको पृथ्वीके ऊपर, बुद्धिबलसे, सर्वत्र संस्थापित किया था।

१३ हे इन्द्र, तुम वर्षणकारी हो। जिस समय तुमने शुष्णके नगरोंको सम्पिष्ट किया था, उस समय तुमने उसके धनको लूटा था।

उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि। अवाहन्निन्द्र शाम्बरम् ॥१४॥
उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः। अधि पञ्च प्रधीँरिव ॥१५॥
उत त्यं पुत्रमग्रुवः परावृक्तं शतक्रतुः। उक्थेष्विन्द्र आभजत् ॥१६॥
उत त्या तुर्वशायदू अस्नातारा शचीपतिः। इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् ॥१७॥
उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः। अर्णाचित्ररथावधीः ॥ १८ ॥
अनु द्वा जहिता नयोऽन्धं श्रोणं च वृत्रहन्। न तत्ते सुम्नमष्टवे ॥१९॥
शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत्। दिवोदासाय दाशुषे ॥२०॥
अस्वापयद्दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः। दासानामिन्द्रो मायया ॥२१॥
सघेदुतासि वृत्रहन्त्समान इन्द्र गोपतिः।
यस्ता विश्वानि चिच्युषे ॥२२॥

१४ हे इन्द्र, तुमने कुलितरके पुत्र दास शम्बरको, बृहत् पवतके ऊपर निम्न मुख करके मारा था।

१५ हे इन्द्र, चक्रके चतुर्दिक् स्थित शङ्कु (हिंसक) की तरह वर्चि नामक दासके चतुर्दिक् स्थित पञ्चशत-संख्यक और सहस्र-संख्यक अनुचरोंको तुमने विशेष रूपसे मारा था।

१६ शतकर्मा इन्द्रने अग्रुके पुत्र परावृक्तको स्तोत्र-भागी किया था।

१७ ययातिके शापसे अनभिषिक्त प्रसिद्ध राजा यदु और तुर्वशको शचीपति विद्वान् इन्द्रने अभिषेक-योग्य बनाया था।

१८ हे इन्द्र, तुमने तत्क्षण सरयू नदीके पारमें रहनेवाले आर्यत्वाभिमानी अर्ण और चित्ररथ नामक राजाका बध किया था।

१९ हे वृत्रहन्ता, तुमने बन्धुओं द्वारा त्यक्त अन्ध और पङ्गुको अनुनीत किया था अर्थात् उनके अन्धत्व और पङ्गुत्वको विनष्ट किया था। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुखको अतिक्रमण करनेमें कोई भी समर्थ नहीं हो सकता है।

२० इन्द्रने हव्यदाता यजमान दिवोदासको, शम्बरके पाषाणनिर्मित शतसंख्यक नगर दिये।

२१ इन्द्रने दभीतिके लिये अपनी शक्तिसे त्रिंशत्-सहस्र-संख्यक राक्षसोंको हनन-साधन आयुधोंके द्वारा सुला दिया था।

२२ हे इन्द्र, तुमने इन समस्त शत्रुओंको प्रच्युत किया है। हे शत्रुओंके हिंसक इन्द्र, तुम गौओंके पालक हो। तुम सम्पूर्ण यजमानोंके लिये समान रूपसे प्रख्यात हो।

उत नूनं यदिन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम् ।
अद्या नकिष्टदामिनत् ॥२३॥
वामं वामं त आदुरे देवो ददात्वर्यमा ।
वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूलती ॥२४॥

३१ सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री छन्द ।

कयानश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥१॥
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृह्ला चिदारुजे वसु ॥२॥
अभीषुणः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥३॥
अभीन आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः । नियुद्भिश्चर्षणीनाम् ॥४॥
प्रवता हि क्रतूनामाहा पदेव गच्छसि । अभक्षि सूर्ये सचा ॥५॥

---

२३ हे इन्द्र, जिस लिये तुमने अपने बलको सामर्थ्योपेत किया है; उसी लिये आज भी कोई व्यक्ति उसकी हिंसा नहीं कर सकता है ।

२४ हे शत्रुविनाशक इन्द्र, अर्यमादेव तुम्हें वह मनोहर धन दान करें, दन्तहीन पूषा वह मनोहर धन दान करें और भग वह मनोहर धन दान करें ।

१ सर्वदा वर्द्धमान, पूजनीय और मित्रभूत इन्द्र किस तर्पण द्वारा हमारे अभिमुख आगमन करेंगे? किस प्रज्ञायुक्त श्रेष्ठ कर्म द्वारा हम लोगोंके अभिमुख आगमन करेंगे ।

२ हे इन्द्र, पूजनीय, सत्यभूत और हर्षकर सोमरसोंके मध्यमें कौन सोमरस शत्रुओंके धनको विनष्ट करनेके लिये तुम्हें हृष्ट करेगा ?

३ हे इन्द्र, तुम सखा-स्वरूप स्तोताओंके रक्षक हो । तुम बहुत प्रकारकी रक्षाके साथ हमारे अभिमुख आगमन करो ।

४ हे इन्द्र, हम लोग तुम्हारे उपगन्ता हैं । तुम हम मनुष्योंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर हमारे निकट वृत्ताकार चक्रकी तरह प्रत्यागत होओ ।

५ हे इन्द्र, तुम यज्ञके प्रवण-प्रदेशमें अपने स्थानको जानकर आगमन करते हो । हे इन्द्र, हम सूर्यके साथ तुम्हारा सम्भजन करते हैं ।

सं यत्त इन्द्रमन्यवः सं चक्राणि दधन्विरे । अध त्वे अध सूर्ये ॥६॥
उत स्मा हि त्वामाहुरिन्मघवानं शचीपते । दातारमविदीधयुम् ॥७॥
उत स्मा सद्य इत् परि शशमानाय सुन्वते । पुरूचिन्मंहसे वसु ॥८॥
नहि ष्मा ते शतं चन राधो वरन्त आमुरः । न च्यौत्नानि करिष्यतः ॥९॥
अस्मां अवन्तु ते शतमस्मान्त्सहस्रमूतयः ।
अस्मान्विश्वा अभिष्टयः ॥१०॥
अस्मां इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये । महो राये दिवित्मते ॥११॥
अस्मां अविड्ढि विश्वहेन्द्र राया परीणसा ।
अस्मान्विश्वाभिरूतिभिः ॥१२॥
अस्मभ्यं ताँ अपावृधि व्रजाँ अस्तेव गोमतः ।
नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥१३॥

---

६ हे इन्द्र, तुम्हारे लिये सम्पादित स्तुति और कर्म जब हम लोगोंके द्वारा अनुमन्यमान होते हैं, तब वे पहले तुम्हारे होते हैं और उसके बाद सूर्यके होते हैं।

७ हे कर्मपालक इन्द्र, तुम्हें लोग धनवान्, स्तोताओंके अभीष्टप्रद और दीप्तिमान् कहते हैं।

८ हे इन्द्र, तुम क्षणभरमें ही स्तुतिकारी तथा सोमाभिषवकारी यजमानको बहुत धन प्रदान करते हो।

९ हे इन्द्र, बाधक राक्षस आदि तुम्हारे शतपरिमित धनका निवारण नहीं कर सकते हैं। शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले तुम्हारे बलका निवारण, वे नहीं कर सकते हैं।

१० हे इन्द्र, तुम्हारी शतसंख्यक रक्षा हम लोगोंकी रक्षा करे। तुम्हारी सहस्रसंख्यक रक्षा हम लोगोंकी रक्षा करे। तुम्हारा समस्त अभिगमन हम लोगोंकी रक्षा करे।

११ हे इन्द्र, इस यज्ञमें तुम हम यजमानोंको सखा, अविनाशी तथा दीप्तियुक्त धनका भागी बनाओ।

१२ हे इन्द्र, तुम प्रतिदिन हम लोगोंकी, महान् धन द्वारा, रक्षा करो और समस्त रक्षा द्वारा रक्षा करो।

१३ हे इन्द्र, तुम शूरकी तरह, नूतन रक्षा द्वारा, हम लोगोंके लिये गोविशिष्ट गोव्रज (गौओंके निवासस्थान) का उद्धार करो।

अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमां इन्द्रानपच्युतः । गव्युरश्वयुरीयते ॥१४॥
अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य । वर्षिष्ठन्द्यामिवोपरि ॥१५॥

३२ सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री छन्द ।

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्द्धमागहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥१॥
भृमिश्चिद्घासि तूतुजिरा चित्र चित्रिणीष्वा । चित्रं कृणोष्यूतये ॥२॥
दभ्रेभिश्चिच्छशीयांसं हंसि व्राधन्तमोजसा ।
सखिभिर्ये त्वे सचा ॥३॥
वयमिन्द्र त्वे सचा वयन्त्वाभि नोनुमः । अस्माँ अस्माँ इदुदव ॥४॥
स नश्चित्राभिरद्रिवोऽनवद्याभिरूतिभिः । अनाधृष्टाभिरागहि ॥५॥

---

१४ हे इन्द्र, हम लोगोंका शत्रुधर्षक, दीप्तिमान्, विनाशरहित, गोयुक्त और अश्वयुक्त रथ सर्वत्र गमन करे। उस रथके साथ हम लोगोंकी रक्षा करो।

१५ हे सबके प्रेरक आदित्य, तुमने जिस प्रकारसे सेचन-समर्थ द्यु लोकको ऊपरमें स्थापित किया है, उसी प्रकारसे देवोंके मध्यमें हम लोगोंके यशको उत्कृष्ट करो।

१ हे शत्रुहिंसक इन्द्र, तुम शीघ्र ही हम लोगोंके निकट आगमन करो। तुम महान् हो। महान् रक्षाके साथ तुम हमारे निकट आगमन करो।

२ हे पूजनीय इन्द्र, तुम भ्रमणशील और हम लोगोंके अभीष्ट-दाता हो। चित्रकर्मयुक्त प्रजाको-तुम रक्षाके लिये, धन दान करते हो।

३ हे इन्द्र, जो यजमान तुम्हारे साथ सङ्गत होते हैं, उन थोड़ेसे भी यजमानोंके साथ तुम उत्प्लवमान तथा वर्द्धमान शत्रुओंको अपने बलसे विनष्ट करते हो।

४ हे इन्द्र, हम यजमान तुमसे सङ्गत हुए हैं। हम अधिक परिमाणमें तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हम सबकी विशेष रूपसे रक्षा करो।

५ हे वज्रधर, तुम मनोहर, अनिन्दित और शत्रुओंके द्वारा अप्रहर्षित अर्थात् अनाक्रमणी रक्षाओंके साथ हमारे निकट आगमन करो।

भूयामोषु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः । युजो वाजाय घृष्वये ॥६॥
त्वं ह्येक ईशिष इन्द्र वाजस्य गोमतः । सनो यन्धि महीमिषम् ॥७॥
न त्वा वरन्ते अन्यथा यद्दित्ससि स्तुतो मघम् ।
स्तोतृभ्य इन्द्र गिर्वणः ॥८॥
अभि त्वा गोतमा गिरानूषत प्रदावने ।
इन्द्र वाजाय घृष्वये ॥९॥
प्र ते वोचाम वीर्या या मन्दसान आरुजः ।
पुरोदासीरभीत्य ॥१०॥
ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौंस्या ।
सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥११॥
अवीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः ।
एषु धा वीरवद्यशः ॥१२॥

---

६ हे इन्द्र, हम तुम्हारे सदृश गोयुक्त देवताके सखा हैं । प्रभूत अन्नके लिये तुम्हारे साथ संयुक्त होते हैं ।

७ हे इन्द्र, जिस कारण तुम ही एक गोयुक्त अन्नके स्वामी हो; इसलिये तुम हमें प्रभूत अन्न दान करो ।

८ हे स्तुतियोग्य इन्द्र, जब तुम स्तुत होकर स्तोताओंको धन दान करनेकी इंच्छा करते हो, तब कोई भी उसे अन्यथा नहीं कर सकता है ।

९ हे इन्द्र, तुम्हें लक्ष्य करके गोतम नामवाले ऋषि धन और प्रभूत अन्नके लिये, स्तुति वाक्य द्वारा, तुम्हारी स्तुति करते हैं ।

१० हे इन्द्र, सोमपानसे हृष्ट होकरके तुम क्षेपक असुरोंके सम्पूर्ण नगरोंमें अभिगमन करके उन्हें भग्न कर देते हो । हे इन्द्र, हम स्तोता तुम्हारे उसी वीर्यका कीर्तन करते हैं ।

११ हे इन्द्र, तुम स्तुतियोग्य हो। तुमने जिन बलोंको प्रदर्शित किया है, हे इन्द्र, प्राज्ञगण सोमाभिषव होनेपर तुम्हारे उन्हीं बलका संकीर्तन करते हैं।

१२ हे इन्द्र, स्तोत्रवाहक गोतमगण तुम्हें स्तोत्र द्वारा वर्द्धित करते हैं । तुम इन्हें पुत्र-पौत्रयुक्त अन्न दान करो ।

यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधरणस्त्वम् । तं त्वा वयं हवामहे ॥१३॥
अर्वाचीनो वसो भवास्मे सु मत्स्वान्धसः । सोमानामिन्द्र सोमपाः ॥१४॥
अस्माकं त्वा मतीनामा स्तोम इन्द्र यच्छतु । अर्वागा वर्तया हरी ॥१५॥
पुरोलाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्चनः । बधूयुरिव योषणाम् ॥१६॥
सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे । शतं सोमस्य खार्यः ॥१७॥
सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि । अस्मत्रा राध एतु ते ॥१८॥
दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि । भूरिदा असि वृत्रहन् ॥१९॥
भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर । भूरि घेदिन्द्र दित्ससि ॥२०॥
भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन् । आ नो भजस्व राधसि ॥२१॥

१३ हे इन्द्र, यद्यपि तुम सब यजमानोंके साधारण देवता हो; तथापि हम स्तोता तुम्हारा आह्वान करते हैं ।

१४ हे निवासप्रद इन्द्र, तुम हम यजमानोंके अभिमुख आगमन करो । हे सोमपा, तुम सोमरूप अन्न द्वारा हृष्ट होओ ।

१५ हे इन्द्र, हम तुम्हारे स्तोता हैं । हमारा स्तोत्र तुम्हें हमारे निकट ले आवे । तुम अश्वद्वयको हमारे अभिमुख परिवर्तित करो ।

१६ हे इन्द्र, तुम हमारे पुरोडाश रूप अन्नका भक्षण करो । स्त्रीकामी पुरुष जैसे स्त्रियोंके वचनकी सेवा करता है, उसी तरह तुम हमारे स्तुतिवाक्यका सेवन करो ।

१७ हम स्तोता इन्द्रके निकट शिक्षित, शीघ्रगामी, सहस्रसंख्यक अश्वोंकी याचना करते हैं एवम् शतसंख्यक सोम-कलशकी याचना करते हैं अर्थात् अपरिमित कलशवाले यज्ञकी याचना करते हैं ।

१८ हे इन्द्र, हम तुम्हारी शतसंख्यक और सहस्रसंख्यक गौओंको अपने अभिमुख करते हैं । हम लोगोंका धन तुम्हारे निकटसे आवे ।

१९ हे इन्द्र, हम तुम्हारे समीपसे दश कुम्भ-परिमित सुवर्ण धारण करते हैं । हे शत्रु-हिंसक इन्द्र, तुम सहस्रप्रद होते हो ।

२० हे इन्द्र, तुम बहुप्रद हो । तुम हम लोगोंको बहुत धन दान करो । अल्प धन मत दो । तुम बहुत धन हम लोगोंके लिये लाओ; क्योंकि तुम हम लोगोंको प्रभूत धन देनेकी इच्छा करते हो ।

२१ हे वृत्रहिंसक विभ्रान्त इन्द्र, तुम बहुप्रद रूपसे बहुतेरे यजमानोंके निकट विख्यात हो । तुम हम लोगोंको धनका भागी करो ।

प्र ते बभ्रु विचक्षण शंसामि गोषणो नपात्।
माभ्यां गा अनु शिश्नथः ॥२२॥
कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके ।
बभ्रु यामेषु शोभेते ॥२३॥
अरं म उस्रयाम्णेऽरमनुस्रयाम्णे ।
बभ्रु यामेष्वस्रिधा ॥२४॥

---

२२ हे प्राज्ञ इन्द्र, हम तुम्हारे पिङ्गलवर्ण अश्वद्वयकी प्रशंसा करते हैं। हे गोप्रद, तुम स्तोताओंका विनाश नहीं करते हो। तुम इस अश्वद्वय द्वारा हमारी गौओंको विनष्ट नहीं करना।

२३ हे इन्द्र, दृढ़, नव और क्षुद्र द्रुमाख्य स्थानमें स्थित कमनीय शाल-भञ्जिका-द्वय (पुत्तलिका) की तरह तुम्हारे पिङ्गलवर्ण दोनों घोड़े यज्ञमें शोभा पाते हैं।

२४ हे इन्द्र, हम जब वृषभयुक्त रथ द्वारा गमन करें अथवा जब पद द्वारा गमन करें, तब तुम्हारा अहिंसक तथा पिङ्गलवर्ण अश्वद्वय हमारा पर्याप्तकारी हो।

षष्ठ अध्याय समाप्त

* * *

सप्तम अध्याय

३३ सूक्त

४ अनुवाक । ऋभुगण देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य उपस्तिरे श्वैतरीन्धेनुमीले ।
ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परि द्यां सद्यो अपसो बभूवुः ।।१।।
यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः ।
आदिद्देवानामुप सख्यमायन्धीरासः पुष्टिमवहन्मनायै ।।२।।
पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना ।
ते वाजो विभ्वाँ ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ।।३।।
यत् संवत्समृभवो गामरक्षन्यत् संवत्समृभवो मा अपिंशन् ।
यत् संघत्समभरन्भासो अस्यास्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः ।।४।।

---

१ हम यजमान ऋभुओंके निकट, दूतकी तरह, स्तुतिवाक्य प्रेरित करते हैं। हम उनके निकट सोम-उपस्तरणके लिये पयोयुक्त धेनुकी याच्ञा करते हैं। ऋभुगण वायुके समान गमनवाले हैं। वे जगत्के उपकार-जनक कर्मको करनेवाले हैं। वे वेगसे जानेवाले घोड़ों द्वारा अन्तरिक्षको क्षणमात्रमें परिव्याप्त करते हैं।

२ जब ऋभुओंने माता-पिताको परिचर्या द्वारा युवा किया था एवम् चमस-निर्माणादि अन्य कार्य करके वे अलंकृत हुए थे, तब इन्द्रादि देवोंके साथ उन्होंने उसी समय सख्य लाभ किया था। धीर ऋभुगण प्रकृष्ट मनस्वी हैं। वे यजमानोंके लिये पुष्टि धारण करते हैं।

३ ऋभुओंने यूपकाष्ठकी तरह जीर्ण और शयनशील माता-पिताको नित्य तरुण किया था। वाज, विभु और ऋभु इन्द्रके साथ सोम पान करके हम लोगोंके यज्ञकी रक्षा करें।

४ ऋभुओंने संवत्सर-पर्यन्त मृतक गौका पालन किया था। ऋभुओंने उस गौके मांसको संवत्सर-पर्यन्त अवयवयुक्त किया था एवम् संवत्सर पर्यन्त उसके शरीरके सौन्दर्यकी रक्षा की थी। इन सकल कार्यों द्वारा उन्होंने देवत्व प्राप्त किया था।

ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान्त्रीन् कृणवामेत्याह ।
कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट ऋभवस्तत् पनयद्वचो वः ॥५॥
सत्यमूचुर्नर एवाहि चक्रुरनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम् ।
विभ्राजमानाँश्चमसाँ अहेवावेनत्त्वष्टा चतुरो ददृश्वान् ॥६॥
द्वादश द्यू न्यदगोह्यस्यातिथ्ये रणन्नृभवः ससन्तः ।
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिधून्धन्वातिष्ठन्नोषधीर्निम्नमापः ॥७॥
रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम् ।
त आतक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्वपसः सुहस्ताः ॥८॥
अपोह्येषामजुषन्त देवा अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः ।
वाजो देवानामभवत् सुकर्मेन्द्रस्य ऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा ॥९॥

---

५ ज्येष्ठ ऋभुने कहा, "एक चमसको दो करेंगे।" उसके अवरज विभुने कहा, "तीन करेंगे।" उसके कनिष्ठ वाजने कहा, "चार प्रकारसे करेंगे।" हे ऋभुओ, तुम्हारे गुरु त्वष्टाने इस चतुष्करण-रूप तुम्हारे वचनको अङ्गीकार किया था ।

६ मनुष्य-रूप ऋभुओंने सत्य कहा था; क्योंकि उन्होंने जैसा कहा, वैसा किया था। इसके अनन्तर वे ऋभुगण तृतीय सवनगत स्वधाके भागी हुए थे। दिवसकी तरह दीप्तिमान् चार चमसोंको देखकर त्वष्टाने उसकी कामना की थी—उसे अङ्गीकार किया था।

७ अगोपनीय सूर्यके गृहमें जब ऋभुगण आर्द्रासे लेकर वृष्टिकारक बारह नक्षत्रोंतक अतिथिरूपसे [सत्कृत होकर] सुखपूर्वक निवास करते हैं, तब वे वृष्टि द्वारा खेतोंको शस्य-सम्पन्न करते और नदियोंको प्रेरित करते हैं। जलविहीन स्थानमें ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं; और, नीचेकी तरफ जल जमा होता है। *

८ हे ऋभुओ, जिन्होंने सुचक्र और चक्रविशिष्ट रथका निर्माण किया था, जिन्होंने विश्वकी प्रेरयित्री और बहुरूपा धेनुको उत्पन्न किया था, वे सुकर्मा, सुन्दर, अन्नयुक्त और सुहस्त ऋभु हम लोगोंके धनका निष्पादन करें।

९ इन्द्र आदि देवोंने वरप्रदान-रूप कर्म द्वारा एवम् प्रसन्न अन्तःकरण द्वारा देदीप्यमान होकर इन ऋभुओंके अश्व, रथ आदि निर्माण रूप कर्मको स्वीकार किया था। शोभन व्यापारवाले कनिष्ठ वाज सब देवोंके सम्बन्धी हुए, ज्येष्ठ ऋभु इन्द्रके सम्बन्धी हुए और मध्यम विभु वरुणके सम्बन्धी हुए।

---

* इस ऋचामें सूर्यरश्मिरूपसे ऋभुओंकी स्तुति की गयी है।—सायण।

ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वा ।
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् ॥१०॥
इदाह्नः पीतिमुत वो मदन्धुर्न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ।
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीये अस्मिन्त्सवने दधात ॥११॥

* * *

३४ सूक्त

ऋभुगण देवता। वामदेव ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयोप यात ।
इदाहि वो धिषणा देव्यह्नामधात् पीतिं सम्मदा अग्मता वः ॥१॥
विदानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋतुभिर्ऋभवो मादयध्वम् ।
सं वो मदा अग्मत सं पुरन्धिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम् ॥२॥

---

१० हे ऋभुओ, जिन्होंने अश्वद्वयको प्रज्ञा तथा स्तुति द्वारा हृष्ट किया था, जिन्होंने उस अश्वद्वयको इन्द्रके लिये सुयोजमान किया था, वही ऋभुगण हम लोगोंको, मङ्गलाकांक्षी मित्रकी तरह, धन, पुष्टि, गौ आदि धन तथा सुख दान करें।

११ चमस आदि निर्माणके अनन्तर तृतीय सवनमें देवोंने तुम लोगोंको सोमपान तथा तदुत्पन्न हर्ष प्रदान किया था। तपोयुक्त व्यक्तिको छोड़कर दूसरेके सखा देवगण नहीं होते हैं। हे ऋभुओ, इस तृतीय सवनमें तुम निश्चय ही हम लोगोंको धन दान करो।

——

१ हे ऋभु, विभु, वाज और इन्द्र, रत्न दान करनेके लिये तुम लोग हमारे इस यज्ञमें आओ; क्योंकि अभी दिनमें वाक्देवी तुम लोगोंको सोमाभिषव-सम्बन्धी प्रीति दान करती हैं। इसलिये सोमजनित हर्ष तुम लोगोंके साथ सङ्गत हो।

२ हे अन्न द्वारा शोभमान ऋभुगण, पहले तुम लोगोंका जन्म मनुष्योंमें हुआ था, अब देवत्वप्राप्तिको जान करके तुम लोग देवोंके साथ हृष्ट होओ। हर्षकर सोम और स्तुति तुम लोगोंके लिये एकत्र हुए है। तुम लोग हमारे लिये पुत्र-पौत्र-विशिष्ट धन प्रेरित करो।

अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि यमा मनुष्वत् प्रदिवो दधिध्वे ।
प्र वोच्छा जुजुषाणासो अस्थुरभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः ॥३॥
अभूदु वो विधते रत्नधेयमिदा नरो दाशुषे मर्त्याय ।
पिबत वाजा ऋभवो ददे वो माह तृतीयं सवनं मदाय ॥४॥
आ वाजा यातोप न ऋभुक्षा महो नरो द्रविणसो गृणानाः ।
आ वः पीतयोऽभिपित्वे अह्नामिमा अस्तं नवस्व इव ग्मन् ॥५॥
आ नपातः शवसो यातनोपेमं यज्ञं नमसा हूयमानाः ।
सजोषसः सूरयो यस्य च स्थ मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः ॥६॥
सजोषा इन्द्र वरुणेन सोमं सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ।
अग्रेपाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः ॥७॥

---

३ हे ऋभुओ, तुम लोगोंके लिये यह यज्ञ किया गया है। मनुष्यकी तरह दीप्तिशाली होकर तुम लोग इसे धारण करो। सेवमान सोम तुम लोगोंके निकट रहता है। हे वाजगण, तुम लोग ही प्रथम उपास्य हो।

४ हे नेतृगण, तुम्हारे अनुग्रहसे अभी इस तृतीय सवनमें दानयोग्य रत्न परिचर्याकारी, हव्यदाता यजमानके लिये हो। हे वाजगण, हे ऋभुगण, तुम लोग पान करो। तृतीय सवनमें हर्षके लिये प्रभूत सोम हम तुम लोगोंके लिये दान करते हैं।

५ हे वाजो, हे ऋभुक्षाओ, तुम लोग नेता हो। महान् धनकी स्तुति करते हुए तुम लोग हमारे निकट आगमन करो। दिवसकी समाप्तिमें अर्थात् तृतीय सवनमें जैसे नवप्रसवा गौएँ गृहके प्रति आगमन करती हैं, उसी तरह यह सोम-रसका पान तुम लोगोंके निकट आगमन करता है।

६ हे बलपुत्रो या बलवानो, स्तोत्र द्वारा आहूत होकर तुम लोग इस यज्ञमें आगमन करो। तुम लोग इन्द्रके साथ प्रीत होते हो और मेधावी हो; क्योंकि तुम लोग इन्द्रके सम्बन्धी हो। तुम लोग इन्द्रके साथ रत्न दान करते हुए मधुर सोमरसका पान करो।

७ हे इन्द्र, तुम रात्र्यभिमानी वरुणदेवके साथ समान-प्रीतियुक्त होकर सोम पान करो। हे स्तुतियोग्य इन्द्र, तुम मरुतोंके साथ सङ्गत होकर सोमपान करो। प्रथम पानकारी ऋतुओंके साथ, देवपत्नियोंके साथ और रत्न देनेवाले ऋतुओंके साथ सोम पान करो।

सजोषस आदित्यैर्मादयध्वं सजोषस ऋभवः पर्वतेभिः ।
सजोषसो दैव्येना सवित्रा सजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभिः ॥८॥
ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा ।
ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥९॥
ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
ते अग्रेपा ऋभवो मन्दसाना अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति ॥१०॥
नापाभूत न वोऽतीतृषामानिःशस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन् ।
समिन्द्रेण मदथ सं मरुद्भिः संराजभी रत्नधेयाय देवाः ॥११॥

---

८ हे ऋभुओ, आदित्योंके साथ सङ्गत होकर तुम हृष्ट होओ, पर्वमें अर्चमान देवविशेषके साथ सङ्गत होकर तुम हृष्ट होओ, देवोंके हितकर सविता देवके साथ सङ्गत होकर हृष्ट होओ और रत्नदाता नद्यभिमानी देवोंके साथ सङ्गत होकर हृष्ट होओ ।

९ हे ऋभुओ, जिन्होंने अश्विद्वयको रथनिर्माणादि कार्य द्वारा प्रीत किया था, जिन्होंने जीर्ण पिता-माताको युवा किया था, जिन्होंने धेनु और अश्वका निर्माण किया था, जिन्होंने देवोंके लिये अंसत्रा कवच निर्माण किया था, जिन्होंने द्यावापृथिवीको पृथक् किया था, जो व्याप्त एवम् नेता हैं और जिन्होंने सुन्दर अपत्य-प्राप्ति-साधन रूप कार्य किया था, वे प्रथम पानकारी हैं।

१० हे ऋभुओ, जो गोविशिष्ट, अन्नविशिष्ट, पुत्रपौत्रादिविशिष्ट निवासयोग्य गृह आदि धनों से युक्त तथा बहुत अन्नवाले धनको धारण करते हैं एवम् जो धनकी प्रशंसा करते हैं, वह प्रथम पानकारी ऋभुगण हृष्ट होकर हम लोगोंको धन दान करें।

११ हे ऋभुओ, तुम लोग चले नहीं जाना। हम तुमलोगोंको अत्यन्त तृषित नहीं करेंगे। हे देवो (ऋभुओ), तुम लोग अनिन्दित होकर रमणीय धन दान करनेके लिये इस यज्ञमें इन्द्रके साथ हृष्ट होओ, मरुतोंके साथ हृष्ट होओ और अन्यान्य दीप्तिमान् देवोंके साथ हृष्ट होओ।

◆

३५ सूक्त

ऋभुगण देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

इहोप यात शवसो नपातः सौधन्वना ऋभवो माप भूत ।
अस्मिन् हि वः सवने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः ॥१॥
आगन्नृभूणामिह रत्नधेयमभूत् सोमस्य सुषुतस्य पीतिः ।
सुकृत्यया यत् स्वपस्यया चँ एकं विचक्र चमसं चतुर्धा ॥२॥
व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे वि शिक्षेत्यब्रवीत ।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां गणं देवानामृभवः सुहस्ताः ॥३॥
किं मयस्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र ।
अथा सुनुध्वं सवनं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य ॥४॥
शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त चमसं देवपानम् ।
शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥५॥

---

१ हे बलके पुत्र, सुधन्वाके पुत्र, ऋभुओ, तुम सब इस तृतीय सवनमें आओ, अपगत मत होओ। इस सवनमें मदकर सोम, रत्नदाता इन्द्रके अनन्तर, तुम लोगोंके निकट गमन करे।

२ ऋभुओंका रत्नदान इस तृतीय सवनमें मेरे निकट आवे; क्योंकि तुम लोगोंने शोभन हस्त-व्यापार द्वारा और कर्मकी इच्छा द्वारा एक चमसको चतुर्धा किया था एवम् अभिषुत सोमपान किया था ।

३ हे ऋभुओ, तुम लोगोंने चमसको चतुर्धा किया था एवम् कहा था कि, "हे सखा अग्नि, अनुग्रह करो।" अग्निने तुम लोगोंसे कहा—"हे वाजगण, हे ऋभुगण, तुम लोग कुशलहस्त हो। तुम लोग अमरत्वपथमें अर्थात् स्वर्गमार्गमें गमन करो।"

४ जिस चमसको कौशल-पूर्वक चार किया था, वह चमस किस प्रकारका था? हे ऋत्विको, तुम लोग हर्षके लिये सोमाभिषव करो। हे ऋभुओ, तुम लोग मधुर सोमरसका पान करो।

५ हे रमणीय सोमवाले ऋभुओ, तुम लोगोंने कर्म द्वारा माता-पिताको युवा किया था, कर्म द्वारा चमसको देवपानके योग्य चतुर्धा किया था और कर्म द्वारा शीघ्रगामी इन्द्रके वाहक अश्वद्वयको सम्पादित किया था ।

यो वः सुनोत्यभिपित्वे अह्नां तीव्रं वाजासः सवनं मदाय ।
तस्मै रयिमृभवः सर्ववीरमातक्षत वृषणो मन्दसानाः ॥६॥
प्रातः सुतमपिबो हर्यश्व माध्यन्दिनं सवनं केवलं ते ।
समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः सखीँयाँ इन्द्र चकृषे सुकृत्या ॥७॥
ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येना इवेदधि दिवि निषद ।
ते रत्नं धात शवसो नपातः सौधन्वना अभवतामृतासः ॥८॥
यत्तृतीयं सवनं रत्नधेयमकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः ।
तदृभवः परिषिक्तं व एतत् सं मदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम् ॥९॥

३६ सूक्त

ऋभुगण देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप्, जगती छन्द ।

अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः ।
महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥१॥

---

६ हे ऋभुओ, तुम लोग अन्नवान् हो । जो यजमान तुम लोगोंके उद्देशसे, हर्षके लिये, दिवावसानमें तीव्र सोमका अभिषव करता है, हे फलवर्षी ऋभुओ, तुम लोग हृष्ट होकर, उस यजमानके लिये बहु-पुत्रयुक्त धनका सम्पादन करो ।

७ हे हरिविशिष्ट इन्द्र, तुम प्रातः सवनमें अभिषुत सोम पान करो। माध्यन्दिन सवन केवल तुम्हारा ही है । हे इन्द्र, तुमने शोभन कर्म द्वारा जिसके साथ मैत्री की है, उस रत्नदाता ऋभुओं के साथ तुम तृतीय सवनमें पान करो ।

८ हे ऋभुओ, तुम लोग सुकर्म द्वारा देवता हुए थे। हे बलके पुत्रो, तुम लोग श्येन [गृद्ध-विशेष] की तरह द्युलोकमें निषण्ण हो। तुम लोग धन दान करो । हे सुधन्वाके पुत्रो, तुम लोग अमर हुए थे।

९ हे सुहस्त ऋभुओ, चूँकि तुम लोग रमणीय सोमदानयुक्त तृतीय सवनको शोभन कर्मकी इच्छासे प्रयुक्त और प्रसाधित करते हो; इसलिये तुम लोग हृष्ट इन्द्रियोंके साथ अभिषुत सोम पान करो ।

— — —

१ हे ऋभुओ, तुम लोगोंका कर्म स्तुतियोग्य है । तुम लोगों द्वारा प्रदत्त अश्विनीकुमारका त्रिचक्र रथ अश्वके विना और प्रग्रहके विना अन्तरिक्षमें परिभ्रमण करता है । जिसके द्वारा तुम लोग द्यावा-पृथिवीका पोषण करते हो, वह रथनिर्माण-रूप महान् कर्म तुम लोगोंके देवत्वको प्रख्यात करता है ।

रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसो विह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया ।
ताँऊन्व स्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ।२।
तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन् महित्वनम्
जिव्री यत् सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ।३।
एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः ।
अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ।।४।।
ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो वाजश्रुतासो यमजीजनन्नरः ।
विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः ।।५।।
सवाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः ।६।

---

२ हे सुन्दरान्तःकरण ऋभुओ, तुम लोगोंने मानसिक ध्यान द्वारा सुवर्तन चक्रवाला अकुटिल रथ निर्माण किया था । हे वाजगण और हे ऋभुगण, हम सोमपानके लिये तुम लोगोंको आवेदित करते हैं ।

३ हे वाजगण, हे ऋभुगण और हे विभुगण, तुम लोगोंने जो वृद्ध और जीर्ण पिता-माताको नित्य तरुण और सर्वदा विचरणक्षम किया था, तुम लोगोंका वही माहात्म्य देवोंके मध्यमें प्रख्यात है।

४ हे ऋभुओ, तुम लोगोंने एक चमसको चार भागोंमें विभक्त किया था, कर्म द्वारा गौको चर्मसे परिवृत किया था; अतएव तुम लोगोंने देवोंके बीच अमरत्व पाया है । हे वाजगण, ऋभुगण, तुम लोगोंका यह कर्म प्रशंसाके योग्य है ।

५ वाजोंके साथ विख्यात नेता ऋभुओंने जिस धनको उत्पन्न किया था, प्रधान और प्रभूत वह अन्नविशिष्ट धन ऋभुओंके निकटसे हमारे निकट आवे। यज्ञमें ऋभुओं द्वारा सम्पन्न रथ विशेष रूपसे प्रशंसाके योग्य है । हे दीप्तिविशिष्ट ऋभुओ, तुम लोग जिसकी रक्षा करते हो, वह दर्शनयोग्य होता है ।

६ वाज, विभु और ऋभु जिस पुरुषकी रक्षा करते हैं, वह बलवान् होकर रणकुशल होता है, वह ऋषि होकर स्तुतियुक्त होता हैं, वह शूर होकर शत्रुओंका प्रक्षेपक होता है, वह युद्धमें उद्धर्ष होता है, वह धनपुष्टि और पुत्र-पौत्रादि धारण करता है ।

श्रेष्ठं वः पेशो अधि धायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चितस्तान्व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ॥
यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजन
द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नो रयिमृभवस्तक्षता वयः ॥
इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत्तक्षता नः ।
येन वयं चितयेमात्यन्यान्तं वाजं चित्रमृभवो ददानः ॥९॥

३७ सूक्त

ऋभुगण देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।

उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः ।
यथा यज्ञं मनुषो विद्वा सु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम् ॥१॥

---

७ हे वाजगण, हे ऋभुगण, तुम लोग अत्युत्कृष्ट और दर्शनीय रूप धारण करते हो। ह लोगोंने तुम्हारे लिये यह उचित स्तोत्र किया है । तुम लोग इसका सेवन करो । तुम लोग धीमान्, कवि और ज्ञानवान् हो। स्तोत्र द्वारा हम तुम लोगोंको आवेदित करते हैं।

८ हे ऋभुओ, हमारी स्तुतिके लिये, मनुष्योंकी हितकारिणी समस्त भोग्य वस्तुओंको जानकर तुम उनकी समाप्ति करो एवम् हमारे लिये दीप्तिमान्, बलकारक और बलवान् शत्रुओंके शोष धन और अन्नका सम्पादन करो।

९ हे ऋभुओ, तुम लोग हमारे इस यज्ञमें प्रीत होकर पुत्र-पौत्रादिका सम्पादन करो, इ यज्ञमें धन सम्पादन करो और इस यज्ञमें भृत्यादि-युक्त यश सम्पादन करो। हम लोग जिस अन्न द्वारा दूसरोंका अतिक्रमण कर सकें, उस तरहका रमणीय अन्न हम लोगोंको दो।

---

१ हे रमणीय ऋभुओ, तुम लोग जिस तरहसे दिवसोंको सुदिन करनेके लिये मनुष्योंके य को धारण करते हो, हे वाजगण, हे ऋभुगण, उसी तरहसे तुम लोग देवमार्ग द्वारा हमारे यज्ञ आगमन करो ।

ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अद्य घृतनिर्णिजो गुः ।
प्र वः सुतासो हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः ॥२॥
त्र्युदायं देवहितं यथा वः स्तोमो वाजा ऋभुक्षणो ददे वः ।
जुह्वे मनुष्वदुपरासु विक्षु युष्मे सचा बृहद्दिवेषु सोमम् ॥३॥
पीवो अश्वाः शुचद्रथा हि भूतायःशिप्रा वाजिनः सुनिष्काः ।
इन्द्रस्य सूनो शवसो नपातोऽनु वश्चेत्यग्रियं मदाय ॥४॥
ऋभुमृभुक्षणो रयिं वाजे वाजिन्तमं युजम् ।
इन्द्रस्वन्तं हवामहे सदासातममश्विनम् ॥५॥
सेदृभवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम् ।
स धीभिरस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता ॥६॥

२ आज यह सारे यज्ञ तुम्हारे हृदय और मनमें प्रीतिदायक हों, घृतमिश्रित पर्याप्त सोमरस तुम्हारे हृदयमें गमन करे। चमसपूर्ण अभिषुत सोमरस तुम्हारी कामना करता है । वह प्रीत होकर तुम्हें सुकर्मके लिये हृष्ट करे ।

३ हे वाजगण, हे ऋभुगण, जो लोग सवनत्रयोपेत, देवोंके हितकर सोमको, तुम लोगोंके उद्देशसे, धारण करते हैं अथवा सोमको तुम लोगोंके उद्देशसे धारण करते हैं, उन समवेत प्रजाओंके मध्यमें हम मनुकी तरह प्रभूत-दीप्तियुक्त होकर तुम्हारे उद्देशसे सोम प्रदान करते हैं।

४ हे ऋभुओ, तुम्हारे अश्व पीन हैं, तुम्हारे रथ दीप्तिशाली हैं, तुम्हारा हनुद्वय लोहेकी तरह सारवान् है । तुम अन्नवान् और शोभन निष्क※ (दान) वाले हो । हे इन्द्रके पुत्रो और बलके पुत्रो, तुम लोगोंके हर्षके लिये यह प्रथम सवन अनुष्ठित हुआ है।

५ हे ऋभुओ, हम अत्यन्त त्रासमान धनका आह्वान करते है, संग्राममें अत्यन्त बलवान् रक्षकका आह्वान करते हैं और सर्वदा दानशील, अश्ववान् तथा इन्द्रवान् या इन्द्रियवान् आपके गणका आह्वान करते हैं ।

६ ऋभुओ, तुम और इन्द्र जिस मनुष्यकी रक्षा करते हो, वही श्रेष्ठ होता है। वह कर्म द्वारा धनभागी हो। वह यज्ञमें अश्वयुक्त हो ।

※ ऋग्वेदके अनेक स्थानोंमें "निष्क" शब्द प्रयुक्त हुआ है । यह उस समयकी स्वर्ण-मुद्रा था ।

वि नो वाजा ऋभुक्षणः पथश्चितन यष्टवे ।
अस्मभ्यं सूरयः स्तुता विश्वा आशास्तरीषणि ॥७॥
तं नो वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम् ।
समश्वं चर्षणिभ्य आ पुरु शस्त मघत्तये ॥८॥

३८ सूक्त

प्रथमके द्यावापृथिवी और अवशिष्टके दधिक्रा देवता। वामदेव ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

उतो हि वां दात्रा सन्ति पूर्वा या पूरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे ।
क्षेत्रासां ददथुरुर्वरासां घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम् ॥१॥
उत वाजिनं पुरुनिष्षिध्वानं दधिक्रामु ददथुर्विश्वकृष्टिम् ।
ऋजिप्यं श्येनं प्रुषितप्सुमाशुं चर्कृत्यमर्यो नृपतिं न शूरम् ॥२॥
यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं विश्वः पूरुर्मदति हर्षमाणः ।
पड्भिर्गृध्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम् ॥३॥

७ हे वाजगण, हे ऋभुगण, हम लोगोंको यज्ञमाग प्रज्ञापित करो। हे मेधावियो, तुम लोग स्तुत होनेपर समस्त दिशाओंको उत्तीर्ण करनेकी सामर्थ्यको वितरित करो।

८ हे वाजगण, हे ऋभुगण, हे इन्द्र, हे अश्विद्वय, तुम लोग हम स्तुति करनेवाले मनुष्योंके लिये, धन-दानार्थ, प्रभूत धन और अश्वके दानकी आज्ञा करो।

१ हे द्यावापृथिवी, दाता त्रसदस्यु राजाने तुम्हारे समीपसे बहुत धन पा करके याचक मनुष्योंको दिया था, तुमने उन्हें अश्व और पुत्र दिया था एवम् दस्युओंको मारनेके लिये अभिभव-समर्थ उग्र अस्त्र दिया था।

२ गमनशील, अनेक शत्रुओंके निषेधक, समस्त मनुष्योंके रक्षक, सुन्दर-गमन, दीप्ति-विशिष्ट, शीघ्रगामी एवम् बलवान् राजाकी तरह शत्रु-विनाशक दधिक्रा (अश्वरूपी अग्नि) देवको तुम दोनों (द्यावापृथिवी) धारण करती हो।

३ सब मनुष्य हृष्ट होकर जिस दधिक्रा देवकी स्तुति करते हैं, वे निम्नगामी जलकी तरह गमनशील संग्रामाभिलाषी शूरकी तरह पद द्वारा दिशाओंके लङ्घनाभिलाषी, रथगामी और वायुकी तरह शीघ्रगामी हैं।

यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन् ।
आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यत्तिरो अरतिं पर्याप आयोः ॥४॥
उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु ।
नीचायमानं जुसरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥५॥
उत स्मासु प्रथमः सरिष्यन्नि वेवेति श्रेणिभी रथानाम् ।
स्रजं कृण्वानो जन्यो न शुभ्वा रेणुं रेरिहत् करणं ददश्वान् ॥६॥
उत स्य वाजी सहुरिर्ऋतावा शुश्रुषमाणस्तन्वा समर्ये ।
तुरं यतीषु तुरयन्नृजिप्योधि भ्रुवोः किरते रेणुमृञ्जन् ॥७॥
उत स्मास्य तन्यतोरिव द्योर्ऋघायतो अभियुजो भयन्ते ।
यदा सहस्रमभिषीमयोधीद्दुर्वर्तुः स्मा भवति भीम ऋञ्जन् ॥८॥

---

४ जो संग्राममें एकत्रीभूत पदार्थोंको निरुद्ध करते हुए अत्यन्त-भोगवासनासे समस्त दिशाओंमें गमन करते और वेगसे विचरण करते हैं, जिनकी शक्ति आविर्भूत रहती है, वे ज्ञातव्य कर्मोंको जानते हुए स्तुतिकारी यजमानोंके शत्रुओंको तिरस्कृत करते हैं।

५ मनुष्य जैसे वस्त्रापहारक तस्करको देखकर चीत्कार करता है, वैसे ही संग्राममें शत्रुगण दधिक्रा देवको देखकर चीत्कार करते हैं। पक्षिगण जिस प्रकार नीचेकी ओर आनेवाले क्षुधार्त्त श्येन पक्षीको देख कर पलायन करते हैं, उसी प्रकार मनुष्य अन्न और पशु-यूथके उद्देशसे गमन करनेवाले दधिक्रा देवको देखकर चीत्कार करते हैं।

६ वे असुर-सेनाओंमें जानेकी अभिलाषा करके रथपङ्क्तियोंसे युक्त होकर गमन करते हैं। वे अलङ्कृत हैं। वे मनुष्योंके हितकर अश्वकी तरह शोभायमान है। वे मुखस्थित लौह-दण्ड या लगामका दंशन करते और अपने पदाघातसे उद्भूत धूलिका लेहन करते हैं।

७ इस प्रकारका वह अश्व सहनशील, अन्नवान् स्व-शरीर द्वारा समरमें कार्य साधन करता है। वह ऋजुगामी और वेगगामी है। शत्रु-सेनाओंके मध्यमें वह वेगसे गमन करता है। वह धूलिको उत्थित करके भ्रूदेशके ऊपर विक्षिप्त करता है।

८ युद्धाभिलाषी लोग दीप्तिमान् शब्दकारी वज्रकी तरह हिंसाकारी दधिक्रा देवसे भीत होते हैं। जब वे चारों तरफ हजारोंके ऊपर प्रहार करते हैं, तब वे उत्तेजित होकर भीम और दुर्वार हो जाते हैं।

उत स्मास्य पनयन्ति जना जूतिं कृष्टिप्रो अभिभूतिमाशोः ।
उतैनमाहुः समिथे वियन्तः परा दधिक्रा असरत् सहस्रैः ॥९॥
आदधिक्राः शवसा पञ्चकृष्टीः सूर्य इव ज्योतिषा पस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि ॥१०॥

* * *

३९ सूक्त

दधिक्रा देवता। वामदेव ऋषि। त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।

आशुं दधिक्रान्तमु नुष्टवाम दिवस्पृथिव्या उत चर्किराम ।
उच्छन्तीर्मामुषसः सूदयन्त्वति विश्वानि दुरितानि पर्षन् ॥१॥
महश्चर्कर्म्यर्वतः क्रतुप्रा दधिक्राव्णः पुरुवारस्य वृष्णः ।
यं पूरुभ्यो दीदिवांसन्नाग्निं ददथुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥२॥

---

९ मनुष्योंकी अभिलाषाके पूरक एवम् वेगवान् दधिक्रा देवके अभिभवकारक वेगकी स्तुति मनुष्यगण करते और कहते हैं कि, शत्रुगण पराभूत होंगे । दधिक्रा देव सहस्र सेनाके साथ गमन करते हैं ।

१० सूर्य जिस प्रकारसे तेज द्वारा जल दान करते हैं, उसी तरहसे दधिक्रादेव, बल द्वारा, पञ्चकृष्टि (देव, मनुष्य, असुर, राक्षस और पितृगण अथवा चारो वर्ण और निषाद) को विस्तृत करते हैं। शत-सहस्रदाता, वेगवान् [दधिक्रा देव] हमारे स्तुतिवाक्यको मधुर फल द्वारा संयोजित करें ।

१ हम लोग शीघ्रगामी उसी दधिक्रा देवकी शीघ्र स्तुति करेंगे। द्यावापृथिवीके समीपसे उनके सम्मुख घास विक्षेप करेंगे। तमोनिवारिणी उषा देवी हमारी रक्षा करें एवम् समस्त दुरितोंसे हमें पार करें ।

२ हम यज्ञके सम्पादक हैं। हम बहुतों द्वारा वरणीय, महान् और अभीष्टवर्षी दधिक्रादेवकी स्तुति करेंगे । हे मित्रावरुण, तुम दोनों दीप्तिमान् अग्निकी तरह स्थित, त्राणकर्ता दधिक्रा देवको, मनुष्योंके उपकारके लिये, धारण करते हो ।

यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत् समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ ।
अनागसन्तमदितिः कृणोतु समित्रेण वरुणेना सजोषाः ॥३॥
दधिक्राव्ण इष ऊर्जो महो यदमन्महि मरुतां नाम भद्रम् ।
स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं हवामह इन्द्रं वज्रबाहुम् ॥४॥
इन्द्रमिवेदुभये वि ह्वयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
दधिक्रामु सूदनं मर्त्याय ददथुर्मित्रावरुणा नो अश्वम् ॥५॥
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्रण आयूंषि तारिषत् ॥६॥

४० सूक्त

दधिक्रा देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

दधिक्राव्ण इदनु चर्किराम विश्वा इन्मामुषसः सूदयन्तु ।
अपामग्ने रुषसः सूर्यस्य बृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः ॥१॥

---

३ जो यजमान उषाके प्रकाशित होनेपर अर्थात् प्रभात होनेपर और अग्निके समिद्ध होनेपर अश्वरूप दधिक्राकी स्तुति करते हैं, मित्र, वरुण और अदितिके साथ दधिक्रादेव उस यजमानको निष्पाप करें।

४ हम अन्नसाधक, बलसाधक, महान् और स्तोताओंके कल्याणकारक दधिक्राके नामकी स्तुति करते हैं। कल्याणके लिये हम वरुण, मित्र, अग्नि और वज्रबाहु इन्द्रका आह्वान करते हैं।

५ जो युद्धके लिये उद्योग करते हैं और जो यज्ञ आरम्भ करते हैं. वे दोनों ही इन्द्रकी तरह दधिक्राका आह्वान करते हैं। हे मित्रावरुण, तुम मनुष्योंके प्रेरक अश्वस्वरूप दधिक्राको हमारे लिये धारण करो।

६ हम जयशील, व्यापक और वेगवान् दधिक्रा देवकी स्तुति करते हैं। वे हमारी चक्षु आदि इन्द्रियोंको सुगन्ध-विशिष्ट करें। वे हमारी आयुको वर्द्धित करें।

१ हम वारम्बार दधिक्रा देवकी स्तुति करेंगे। सम्पूर्ण उषा हमें कर्ममें प्रेरित करें। हम जल, अग्नि, उषा, सूर्य, बृहस्पति और अङ्गिरो-गोत्रोत्पन्न जिष्णुकी स्तुति करेंगे।

सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसच्छ्रवस्यादिष उपसस्तुरण्यसत् ।
सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो दधिक्रा वेषमूर्जं स्वर्जनत् ॥२॥
उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः ।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसम्परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः ॥३॥
उत स्य वाजो क्षिपणिन्तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि।
क्रतुं दधिक्रा अनुसन्तवीत्वत्पथामङ्कां स्यन्वापनीफणत् ॥४॥
हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्ज गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥५॥

* * *

२ गमनशील, भरणकुशल, गौओंके प्रेरक और परिचारकोंके साथ निवास करनेवाले दधिक्रा देव अभिलषणीय उषाकालमें अन्नकी इच्छा करें। शीघ्रगामी, सत्यगमनशील, वेगवान् और उत्प्लवन द्वारा गमनशील दधिक्रा देव अन्न, बल और स्वर्ग उत्पादन करें ।

३ पक्षिगण जिस तरहसे पक्षियोंकी गतिका अनुसरण करते हैं, उसी तरहसे सब वेगवान् लोग त्वरायुक्त और आकाङ्क्षावान् दधिक्रा देवकी गतिका अनुसरण करते है । श्येन पक्षीकी तरह द्रुतगामी और त्राणकारी दधिक्राके उरुप्रदेशके चारो तरफ एकत्र होकर अन्नके लिये सब गमन करते हैं ।

४ वह अश्व-रूप देव कण्ठप्रदेशमें, कक्षप्रदेशमें, मुखप्रदेशमें बद्ध होते हैं एवम् बद्ध होकर पैदल शीघ्र गमन करते हैं। दधिक्रा देव अधिक बलवान् होकर यज्ञाभिमुख कुटिल मार्गोंका अनुसरण करके सर्वत्र गमन करते हैं ।

५ हंस [आदित्य] दीप्त आकाशमें अवस्थित रहते हैं। वसु [वायु] अन्तरिक्षमें अवस्थिति करते हैं । होता [वेदिकाग्नि] वेदीस्थलपर गार्हपत्यादि रूपसे अवस्थिति करते हैं एवम् अतिथिवत् पूज्य होकर गृहमें [पाकादिसाधन रूपसे] अवस्थिपि करते हैं। ऋत [सत्य, ब्रह्म, यज्ञ] मनुष्योंके मध्यमें अवस्थान करते हैं, वरणीय स्थानमें अवस्थान करते हैं, यज्ञस्थलमें अवस्थान करते हैं एवम् अन्तरिक्ष-स्थलमें अवस्थान करते हैं । वे जलमें उत्पन्न हुए हैं, रश्मियोंमें उत्पन्न हुए हैं, सत्यमें उत्पन्न हुए हैं और पर्वतोंमें उत्पन्न हुए हैं।

४१ सूक्त

इन्द्र और वरुण देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप छन्द ।

इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्माँ अमृतो न होता ।
यो वां हृदि क्रतुमाँ अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रा वरुणा नमस्वान् ॥१॥
इन्द्रा ह यो वरुणा चक्र आपी देवौ मर्तः सख्याय प्रयस्वान् ।
स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रूनवोभिर्वा महद्भिः स प्र शृण्वे ॥२॥
इन्द्रा ह रत्नं वरुणा धेष्ठेत्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता ।
यदी सखाया सख्याय स्तोमैः सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ॥३॥
इन्द्रा युवं वरुणा दिद्युमस्मिन्नोजिष्ठमुग्रा नि वधिष्टं वज्रम् ।
यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीतिस्तस्मिन्मिमाथामभिभूत्योजः ॥४॥
इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥५॥

---

१ हे इन्द्र, हे वरुण, अमर होता अग्निकी तरह कौन हवियुक्त स्तोम [स्तोत्र] तुम दोनोंका अनुग्रह लाभ करेगा? हे इन्द्र, हे वरुण, वह स्तोम [प्रशंसा] हम लोगोंके द्वारा अभिहित होकर एवम् प्रज्ञोपेत और हवियुक्त होकर तुम दोनोंके हृदयङ्गम हो।

२ हे प्रसिद्ध इन्द्र और वरुणदेव, जो मनुष्य हविलक्षण अन्नवान् होकर सख्याके लिये तुम दोनोंसे बन्धुत्व करता है, वह मनुष्य पाप नाश करता है, संग्राममें शत्रुका विनाश करता है और महती रक्षा द्वारा प्रख्यात होता है।

३ हे प्रसिद्ध इन्द्र और वरुण, तुम दोनों देव हम स्तोत्र करनेवाले मनुष्योंके लिये रमणीय धन देनेवाले होओ। यदि तुम दोनों परस्पर [यजमानके] सखा हो और सख्य-कर्मके लिये अभिषुत सोम द्वारा अन्नवान् और हृष्ट हो, तो धन देने वाले होओ।

४ हे उग्र इन्द्र और वरुण, तुम दोनों इस शत्रुके ऊपर दीप्त और अतिशय तेजोविशिष्ट वज्र प्रक्षेप करो। जो शत्रु हम लोगोंके द्वारा दुर्दमनीय, अत्यन्त अदाता और हिंसक है, उस शत्रुके विरुद्ध तुम दोनों अभिभवकर बलका प्रयोग करो।

५ हे इन्द्र और वरुण, वृषभ जिस तरहसे धेनुको प्रीत करता है, उसी तरहसे तुम दोनों स्तुतियोंके प्रीणयिता होओ। तृणादिका भक्षण करके सहस्रधारा महती गौ जिस तरहसे दुग्ध दोहन करती है, उसी तरहसे स्तुतिरूपा धेनु हम लोगोंकी अभिलाषाका दोहन करे।

तोके हिते तनय उर्वरासु सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
इन्द्रा नो अत्र वरुणा स्यातामवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम् ॥६॥
युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी ।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शम्भू ॥७॥
ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू ।
श्रिये न गाव उप सोममस्थुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥८॥
इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः ।
उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥९॥
अश्वस्य त्मना रथ्यस्य पुष्टेर्नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
ता चक्राणा ऊतिभिर्नव्यसीभिरस्मत्रा रायो नियुतः सचन्ताम् ॥१०॥

६ हे इन्द्र और वरुण, तुम दोनों रात्रिमें रक्षायुक्त होकर शत्रुओंकी हिंसा करनेके किये लिये अवस्थान करो, जिससे हम लोग पुत्र, पौत्र और उर्वरा भूमि लाभ कर सकें एवम् चिर कालपर्यन्त सूर्यको देख सकें अर्थात् चिरजीवी हों तथा सन्तानोत्पादन शक्ति प्राप्त कर सकें ।

७ हे इन्द्र और वरुण, हम लोग धेनु-लाभकी अभिलाषासे तुम लोगोंके निकट प्राचीन रक्षाकी प्रार्थना करते हैं। तुम दोनों क्षमताशाली, बन्धुस्वरूप, शूर एवम् अतिशय पूज्य हो । हम लोग तुम दोनोंके निकट सुखदायक पिताकी तरह सख्य और स्नेहकी प्रार्थना करते हैं ।

८ हे शोभन फलके देनेवाले देवद्वय, योद्धा जिस तरहसे संग्रामकी कामना करता है, उसी तरहसे हम लोगोंकी रत्नाभिलाषिणी स्तुतियाँ तुम दोनोंकी कामना करती हुई रक्षा-लाभके लिये तुम दोनोंके निकट गमन करती हैं। दध्यादि द्वारा शोधन करनेके लिये जैसे गौएँ सोमके निकट रहती हैं, वैसे ही हमारी आन्तरिक स्तुतियाँ इन्द्र और वरुणके निकट गमन करती हैं।

९ धन-लाभके लिये जैसे सेवक धनियोंके निकट गमन करते हैं, उसी तरह हमारी स्तुतियां सम्पित्त-लाभकी इच्छासे इन्द्र और वरुणके निकट गमन करें । भिक्षुक स्त्रियोंकी तरह अन्नकी भिक्षा माँगते हुए इन्द्रके निकट गमन करें ।

१० हम लोग विना प्रयत्नके अश्वसमूह, रथ-समूह, पुष्टि एवम् अविचल धनके स्वामी होंगे। वे दोनों देव गमन-शील हों एवम् नूतन रक्षाके साथ हम लोगोंके अभिमुख अश्व और धन नियुक्त करें ।

आ नो बृहन्ता बृहतीभिरूती इन्द्र यातं वरुण वाजसातौ ।
यद्दिद्यवः पृतनासु प्रक्रीलान्तस्य वां स्याम सनितार आजेः ॥११॥

सूक्त ४२

१-६ ऋचाओंके पुरुकुत्स-तनय राजर्षि त्रसदस्यु देवता । अवशिष्टके-इन्द्र और वरुण देवता ।
त्रसदस्यु ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य विश्वायोर्विश्वे अमृता यथा नः ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥१॥
अहं राजा वरुणो मह्यं तान्यसुर्याणि प्रथमा धारयन्त ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥२॥
अहमिन्द्रो वरुणस्ते महित्वोर्वी गभीरे रजसी सुमेके ।
त्वष्टेव विश्वा भुवनानि विद्वान्त्समैरयं रोदसी धारयञ्च ॥३॥

---

११ हे महान् इन्द्र और वरुण, तुम दोनों महान्, रक्षाके साथ आगमन करो। जिस अन्नप्रापक युद्धमें शत्रुसेनाके आयुध क्रीड़ा करते हैं, उस युद्धमें हम लोग तुम दोनोंके अनुग्रहसे जयलाभ कर सकें।

१ हम क्षत्रिय-जात्युत्पन्न [अतिशय बलवान्] और सम्पूर्ण मनुष्योंके अधीश हैं । हमारा राज्य दो प्रकारका है। सम्पूर्ण देवगण जैसे हमारे हैं, वैसे ही सारी प्रजा भी हमारी ही है। हम रूपवान् और अन्तिकस्थ वरुण हैं। देवगण हमारे यज्ञकी सेवा करते हैं। हम मनुष्यके भी राजा हैं।

२ हम राजा वरुण हैं। देवगण हमारे लिये ही असुर-विघातक श्रेष्ठ बल धारण करते हैं। हम रूपवान् और अन्तिकस्थ वरुण हैं। देवगण हमारे यज्ञकी सेवा करते हैं हम मनुष्यके भी है

३ हम इन्द्र और वरुण हैं। महत्ताके कारण विस्तीर्ण, दुरवगाहा, सुरूपा, द्यावापृथिवी हम ही हैं। हम विद्वान् हैं। हम सकल भूतजातको, प्रजापतिकी तरह, प्रेरित करते हैं। हम द्यावापृथिवीको धारण करते हैं।

अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा धारयं दिवं सदन ऋतस्य ।
ऋतेन पुत्रो अदितेर्ऋतावोत त्रिधातु प्रथयद्विभूम ॥४॥
मां नरः स्वश्वा वाजयन्तो मां वृताः समरणे हवन्ते ।
कृणोम्याजिं मघवाहमिन्द्र इयर्मि रेणुमभिभूत्योजाः ॥५॥
अहं ता विश्वा चकरं नकिर्मा दैव्यं सहो वरते अप्रतीतम् ।
यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्थोभे भयेते रजसी अपारे ॥६॥
विदुष्टे विश्वा भुवनानि तस्य ता प्र ब्रवीषि वरुणाय वेधः ।
त्वं वृत्राणि शृण्विषे जघन्वान् त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥७॥
अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने ।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम् ॥८॥

४ हमने ही सिञ्चमान जलका सेचन किया हैं, उदक या आदित्यके स्थानभूत द्युलोकका धारण किया है अथवा आकाशमें आदित्यका धारण किया है। जलके निमित्तसे हम अदित-पुत्र ऋतावा [यज्ञवान्] हुए हैं। हमने व्याप्त आकाशको तीन प्रकारसे प्रथित किया है अर्थात् परमेश्वरने हमारे लिये ही क्षिति आदि तीन लोकोंको बनाया है।

५ सुन्दर अश्ववाले और संग्रामेच्छु नेता हमारा ही अनुगमन करते हैं। वे सब वृत होकर युद्धके लिये संग्राममें हमारा हो आह्वान करते हैं। हम धनवान् इन्द्र होकर युद्ध करते हैं। हम अभिभव करने वाले बलसे युक्त हैं। हम संग्राममें धूलि उत्थित करते हैं।

६ हमने उन सकल कार्योंको किया है। हम अप्रतिहत-दैवबलसे युक्त हैं। कोई भी हमारा निवारण नहीं कर सकता। जब सोमरस हमें हृष्ट करता है एवम् उक्थ-समूह हमें हृष्ट करता हैं, तब अपार और उभय द्यावापृथिवी चलित हो जाती है।

७ हे वरुण, तुम्हारे कर्मको सकल भूतजात जानता है। हे स्तोता, वरुणके लिये बोलो अर्थात् वरुणकी स्तुति करो। हे इन्द्र, तुमने बैरियोंका बध किया है—यह तुम्हारी प्रसिद्धि है। हे इन्द्र, तुमने आच्छन्न नदियोंको उन्मुक्त किया है।

८ दुर्गहके पुत्र पुरुकुत्सके बन्दी होनेपर इस देश या पृथिवीके पालयिता सप्तर्षि हुए थे। उन्होंने इन्द्र और वरुणके अनुग्रहसे पुरुकुत्सकी स्त्रीके लिये यज्ञ करके त्रसदस्युको लाभ किया था। त्रसदस्यु इन्द्रकी तरह शत्रु-विनाशक और अर्द्धदेव देवताओंके समीपमें वर्तमान या देवताओंके अर्द्धभूत इन्द्रकी तरह थे ❋।

❋ दुर्गह राजाके पुत्र पुरुकुत्स एक बार कारागारमें रुद्ध हो गये। उनकी महिषीने राज्यमें अराजकता देखकर पुत्र लाभके लिये स्वेच्छागत सप्तर्षिकी पूजा की। उन्होंने प्रसन्न होकर इन्द्र और वरुणका विशेष रूपसे यज्ञ किया। अनन्तर राज्ञीने त्रसदस्युको प्राप्त किया। —सायण।

पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्धव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्धदेवम् ॥९॥
राया वयं ससवांसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।
तां धेनुमिन्द्रावरुणा युवन्नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् ॥१०॥

◆

४३ सूक्त

अश्विद्वय देवता । सुहोत्रके पुत्र पुरुमीह्ल और अजमीह्ल ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

क उ श्रवत् कतमो यज्ञियानां वन्दारु देवः कतमो जुषाते ।
कस्येमां देवीममृतेषु प्रेष्ठां हृदि श्रेषाम सुष्टुतिं सुहव्याम् ॥१॥
को मृलाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शम्भविष्ठः ।
रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहितावृणीत ॥२॥

---

९ हे इन्द्र और वरुण, ऋषि द्वारा प्रेरित होनेपर पुरुकुत्सकी पत्नीने तुम दोनोंको, हव्य और स्तुति द्वारा, प्रसन्न किया था। अनन्तर तुम दोनोंने उसे शत्रुनाशक अर्द्ध देव राजा त्रसदस्युको दान दिया था।

१० हम लोग तुम दोनोंकी स्तुति करके धन द्वारा परितृप्त होंगे। देवगण हव्य द्वारा तृप्त हों और गौएँ तृणादि द्वारा परितृप्त हों । हे इन्द्र और वरुण, तुम दोनों विश्वके हन्ता हो । तुम दोनों हम लोगोंको सदा अहिंसित धन दान करो।

१ यज्ञार्ह देवोंके मध्यमें कौन देव इसे सुनेंगे? कौन देव इस बन्दनशील स्तोत्रका सेवन करेंगे? देवताओंके मध्य किस देवके हृदयमें हम इस प्रियतरा, द्योतमाना, हव्ययुक्ता शोभन स्तुतिको सुनावें अर्थात् अश्विद्वयके अतिरिक्त स्तुतिके स्वामी कौन देव होंगे ?

२ कौन देवता हम लोगोंको सुखी करेंगे? कौन देवता हमारे यज्ञमें सबकी अपेक्षा अधिक आगमन करते हैं? देवोंके मध्यमें कौन देवता हम लोगोंको सबकी अपेक्षा अधिक सुखी करते हैं? इस तरह उपर्युक्त गुणोंसे विशिष्ट अश्विद्वय ही हैं । कौन रथ वेगवान् अश्वयुक्त और शीघ्रगामी हैं, जिसका सूर्यकी पुत्रीने सम्भजन किया था ?

मक्षू हि ष्मा गच्छथ ईवतो द्यूनिन्द्रो न शक्तिं परितक्म्यायाम् ।
दिव आजाता दिव्या सुपर्णा कया शचीनां भवथः शचिष्ठा ॥३॥
का वां भूदुपमातिः कया न अश्विना गमथो हूयमाना ।
को वां महश्चित्त्यजसो अभीक उरुष्यतं माध्वी दस्रा न ऊती ॥४॥
उप वां रथः परि नक्षति द्यामा यत् समुद्रादभि वर्तते वाम् ।
मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन्यत्सीं वां पृक्षो भुरजन्त पक्वाः ॥५॥
सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान् घृणा वयोरुषासः परि ग्मन् ।
तदू षु वामजिरं चेति यानं येन पती भवथ सूर्यायाः ॥६॥
इहेय यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७॥

---

३ रात्रिके व्यतीत होनेपर इन्द्र जिस तरहसे अपनी शक्ति प्रदर्शित करते हैं, हे गमनशील अश्विद्वय तुम दोनों भी उसी तरहसे अभिषवण-कालमें गमन करो । तुम दोनोंने द्युलोकसे आगमन किया हैं। तुम दोनों दिव्य और शोभन गतिसे विशिष्ट हो । तुम दोनोंके कर्मोंके मध्यमें कौन कर्म सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है ?

४ कौन स्तुति तुम दोनोंके समान हो सकती हैं ? किस स्तुति द्वारा आहूयमान होनेपर तुम दोनों हमारे निकट आगमन करोगे ? कौन तुम दोनोंके महान् क्रोधका सहन कर सकता है ? हे मधुर जलके सृष्टिकर्त्ता शत्रुविनाशक अश्विद्वय, तुम दोनों हम लोगोंको, आश्रय-दान द्वारा, रक्षित करो ।

५ हे अश्विद्वय, तुम दोनोंका रथ द्युलोककी चारो तरफ विस्तृत भावसे गमन करता है । वह समुद्रसे तुम दोनोंके अभिमुख गमन करता है। तुम दोनोंके लिये पके जौके साथ सोमरस संयोजित हुआ है। हे मधुर जलके सृष्टिकर्ता, शत्रु-विनाशक अश्विद्वय, अध्वर्युगण मधुर दुग्धके साथ सोमरसको मिश्रित कर रहे हैं ।

६ मेघ या उदक-रस द्वारा तुम दोनोंके अश्वोंका सेचन हुआ है । पक्षिसदृश अश्वगण दीप्ति द्वारा दीप्यमान होकर गमन करते हैं । जिस रथ द्वारा तुम दोनों सूर्याके पालयिता हुए थे, तुम दोनोंका वह शीघ्रगामी रथ प्रसिद्ध है ।

७ हे अश्विद्वय, इस यज्ञमें तुम दोनों समान मनवाले अर्थात् सदृश हो । हम स्तुति द्वारा तुम दोनोंको संयुक्त करते हैं। वह शोभन स्तुति हम लोगोंके लिये फलवती हो । हे रमणीय अन्नवाले अश्विद्वय, तुम दोनों स्तोताकी रक्षा करो । हे नासत्यद्वय, हमारी अभिलाषा तुम दोनोंके निकट जानेसे पूर्ण होती है ।

४४ सूक्त

अश्विद्वय देवता । पुरुमीह्ल और अजमीह्ल ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना सङ्गतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति बन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥१॥
युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम् ॥२॥
को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥३॥
हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोमस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥४॥
आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः सं यद्दे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥५॥

---

१ अश्विनीकुमारो, हम आज तुम्हारे विख्यात वेगवाले और गोसङ्गत या गोप्रद रथका आह्वान करते हैं । वह रथ सूर्याको धारण करता है। उसके निवासाधारभूत (बैठनेकी जगहका) काष्ठ बन्धुर हैं । वह रथ स्तुतिवाहक, प्रभूत और धनवान् है।

२ हे आदित्य या द्युलोकके पुत्रस्थानीय अश्विनीकुमारो, तुम दोनों देवता हो । तुम दोनों कम द्वारा प्रसिद्ध शोभाका सम्भोग करते हो । तुम दोनोंके शरीरको सोमरस प्राप्त करता है। महान् अश्व (या स्तुतियाँ) तुम दोनोंके रथका वहन करते हैं ।

३ कौन सोमदाता यजमान, आज, रक्षाके लिये. सोमपानके लिये यज्ञकी पूर्त्तिके लिये अथवा सम्भजनके लिये तुम दोनोंकी स्तुति करता है ? हे अश्विद्वय, कौन नमस्कार करनेवाला तुम दोनोंको यज्ञके प्रति आवर्तित करता है।

४ हे नासत्यद्वय, तुम दोनों बहुविध हो । इस यज्ञमें हिरण्मय रथ द्वारा तुम दोनों आओ। मधुर सोमरसका पान करो एवम् परिचर्या करनेवालेको अर्थात् हमें रमणीय धन दान करो।

५ शोभन आवर्तनवाले हिरण्मय रथ द्वारा तुम दोनों द्युलोक या पृथिवीसे हमारे अभिमुख आगमन करते हो । तुम दोनोंकी इच्छा करनेवाले दूसरे यजमान तुम दोनोंको नहीं रोक रखें; अतएव हमने पूर्वमें ही स्तुति अर्पित की है ।

नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद्वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीह्लासो अग्मन् ॥६॥
इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७॥

४५ सूक्त

अश्विद्वय देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

एषस्य भानुरुदियर्ति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि
पृक्षासो अस्मिन्मिथुना अधि त्रयो दृतिस्तुरीयो मधुनो विरप्शते ॥१॥
उद्वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु ।
अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ॥२॥

---

६ हे दस्रद्वय, तुम लोग हम दोनों (पुरुमीह्ल और अजमीह्ल) को शीघ्र ही बहुपुत्रयुक्त प्रभूत धन दान करो । हे अश्विद्वय, पुरुमीह्लके ऋत्विकोंने तुम दोनोंको स्तोत्र द्वारा प्राप्त किया है एवम् अजमीह्लके ऋत्विकोंकी स्तुति भी उसीके साथ सङ्गत हुई हैं ।

७ अश्विद्वय, इस यज्ञमें तुम दोनों समान मनवाले हो अर्थात् सदृश हो । हम जिस स्तुति द्वारा तुम दोनोंको संयुक्त करते हैं, वह शोभन स्तुति हम लोगोंके लिये फलवती हो। हे रमणीय अन्नवाले अश्विद्वय, तुम दोनों स्तोताकी रक्षा करो । हे नासत्यद्वय, हमारी अभिलाषा तुम दोनोंके निकट जानेसे पूर्ण होती है ।

१ यह दीप्तिमान् आदित्य उदित होते हैं । हे अश्विद्वय, तुम दोनोंका रथ चारों तरफ गमन करता है । वह द्युतिमान् आदित्यके साथ समुच्छ्रित प्रदेशमें मिलित होता है । इस रथके ऊपरी भागमें मिथुनीभूत त्रिविध (अशन, पान, खाद) अन्न है एवम् सोमरसपूर्ण चर्ममय पात्र चतुर्थ रूपमें शोभा पाता है।

२ उषाके आरम्भ—कालमें तुम दोनोंका त्रिविधान्नवान्, सोमरसोपेत, अश्वयुक्त रथ चारो तरफ व्याप्त अन्धकारको दूर करता हुआ और सूर्यकी तरह दीप्त तेजको विस्तारित करता हुआ उन्मुख होकर गमन करता है ।

मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिरुत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम्।
आ वर्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना ॥३॥
हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो हिरण्यपर्णा उहुवः उषर्बुधः।
उदप्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मक्षः सवनानि गच्छथः ॥४॥
स्वध्वरासो मधुमन्तो अग्नयः उस्रा जरन्ते प्रति वस्तोरश्विना।
यन्निक्तहस्तस्तरणिर्विचक्षणः सोमं सुषाव मधुमन्तमद्रिभिः ॥५॥
आकेनिपासो अहभिर्दविध्वतः स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः।
सूरश्चिदश्वान्युयुजान ईयते विश्वाँ अनु स्वधया चेतथस्पथः ॥६॥
प्र वामवोचमश्विना धियन्धा रथः स्वश्वो अजरो यो अस्ति।
येन सद्यः परि रजांसि याथो हविष्मन्तं तरणिं भोजमच्छ ॥७॥

---

३ सोमपान करने योग्य मुख द्वारा तुम दोनों सोमरसका पान करो। सोमरसके लाभके लिये प्रिय रथकी योजना करो एवम् यजमानके गृहमें आगमन करो। गमनमार्गको सोम द्वारा प्रीत करो। तुम दोनों सोमपूर्ण चर्ममय पात्र धारण करो।

४ तुम दोनोंको शीघ्रगामी, माधुर्ययुक्त, द्रोहरहित, हिरण्मय (रमणीय) पक्षविशिष्ट, वहनशील, उषाकालमें जागरणकारी, जलप्रेरक, हर्षयुक्त एवम् सोमस्पर्शी अश्व हैं, जिनके द्वारा तुम लोग हमलोगोंके सवनोंमें आगमन करते हो, जैसे मधुमक्षिका मधुके समीप गमन करती है।

५ जब कर्म करनेवाले अध्वर्युगण अभिमन्त्रित जलसे हस्त शोधन करते हुए, प्रस्तरखण्ड द्वारा, मधुयुक्त सोम अभिषव करते हैं, तब यज्ञके साधनभूत, सोमवान् गार्हपत्यादि अग्नि एकत्र निवासकारी अश्विद्वयकी, प्रत्यह, स्तुति करते हैं।

६ समीपमें निपतित होनेवाली रश्मियाँ दिवस द्वारा अन्धकारको ध्वंस करती हुई सूर्यकी तरह दीप्त तेजको विस्तारित करती हैं। सूर्य अश्वयोजना करके गमन करते हैं। हे अश्विद्वय, तुम दोनों सोमरसके साथ, उनका अनुगमन करके, समस्त पथ प्रज्ञापित करो।

७ हे अश्विनीकुमारो, यज्ञ करनेवाले हम तुम दोनोंकी स्तुति करते हैं। तुम दोनोंका सुन्दर अश्वयुक्त, नित्य तरुण जो रथ है एवम् जिस रथ द्वारा तुम दोनों क्षण मात्रमें लोकत्रयका परिभ्रमण करते हो, उसी रथ द्वारा तुम दोनों हव्य-युक्त, शीघ्र अतिवाही एवम् भोगप्रद यज्ञमें आगमन करो।

४६ सूक्त

५ अनुवाक। प्रथम ऋचाके वायु देवता, अवशिष्टके इन्द्र और वायु देवता। वामदेव ऋषि। गायत्री छन्द।

अग्रं पिबा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु। त्वं हि पूर्वपा असि ॥१॥
शतेना नो अभिष्टिभिर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः। वायो सुतस्य तृम्पतम् ॥२॥
आ वाँ सहस्रं हरय इन्द्रवायू अभिप्रयः। वहन्तु सोमपीतये ॥३॥
रथं हिरण्यन्बधुरमिन्द्रवायू स्वध्वरम्। आहिस्थाथो दिविस्पृशम् ॥४॥
रथेन पृथुपाजसा दाश्वांसं समुप गच्छतम्। इन्द्रवायू इहा गतम् ॥५॥
इन्द्रवायू अयं सुतस्तं देवेभिः सजोषसा। पिबतं दाशुषो गृहे ॥६॥
इह प्रयाणमस्तु वामिन्द्रवायू विमोचनम्। इह वां सोमपीतये ॥७॥

---

१ हे वायु, स्वर्ग-प्रापक यज्ञमें तुम सर्वप्रथम अभिषुत सोमरसका पान करो; क्योंकि तुम पूर्वपा हो।

२ हे वायु, तुम नियुद्वान् हो और इन्द्र तुम्हारे सारथि हैं। तुम अपरिमित कामनाको पूर्ण करनेके लिये आगमन करो। तुम अभिषुत सोमका पान करो।

३ हे इन्द्र और वायु, तुम दोनोंको, सहस्रसंख्यक अश्व, त्वरायुक्त होकर, सोमपानके लिये ले आवें।

४ हे इन्द्र और वायु, तुम दोनों हिरण्मय निवासाधार काष्ठसे युक्त, द्युलोकस्पर्शी और शोभन यज्ञशाली रथपर आरोहण करो।

५ हे इन्द्र और वायु, तुम दोनों प्रभूत बलसम्पन्न रथ द्वारा हव्यदाता यजमानके निकट आगमन करो एवम् उसी लिये इस यज्ञमें आगमन करो।

६ हे इन्द्र और वायु, यह सोम अभिषुत हुआ है, तुम दोनों देवोंके साथ समान प्रीतियुक्त होकर हव्यदाता यजमानकी यज्ञशालामें उसका पान करो।

७ हे इन्द्र और वायु, इस यज्ञमें तुम दोनोंका आगमन हो। इस यज्ञमें तुम लोगोंके सोमपानके लिये अश्व विमुक्त हों

४७ सूक्त

इन्द्र और वायु देवता । वामदेव ऋषि । अनुष्टुप् छन्द ।

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥१॥
इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः ।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२॥
वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥३॥
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
अस्मे ता यज्ञवाहसेन्द्रवायू नि यच्छतम् ॥४॥

---

१ हे वायु, व्रतचर्यादिके द्वारा दीप्त (पवित्र) होकर हम द्युलोक जानेकी अभिलाषासे तुम्हारे लिये मधुर सोमरसका प्रथम आनयन करते हैं। हे वायुदेव, तुम स्पृहणीय हो। तुम अपने नियुद् (अश्व) वाहन द्वारा सोमपानके लिये आगमन करो।

२ हे वायु, तुम और इन्द्र इस गृहीत सोमके पानयोग्य हो, तुम दोनों ही सोमको प्राप्त करते हो; क्योंकि जल जिस तरहसे गर्तकी ओर गमन करता है, उसी तरहसे सकल सोमरस तुम दोनोंके अभिमुख गमन करते हैं।

३ हे वायु, तुम इन्द्र हो। तुम दोनों बलके स्वामी हो। तुम दोनों पराक्रमशाली और नियुद्गणसे युक्त हो। तुम दोनों एक ही रथपर आरोहण करके, हम लोगोंको आश्रय प्रदान करनेके लिये और सोमपान करनेके लिये यहाँ आओ।

४ हे नेता तथा यज्ञवाहक इन्द्र और वायु, तुम दोनोंको जो बहुतेरे लोगों द्वारा स्पृहणीय नियुद्गण हैं, उन्हें हमें दे दो। हम तुम दोनोंको हवि देनेवाले यजमान हैं।

४८ सूक्त

वायु देवता । वामदेव ऋषि ।

विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्यः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥१॥
निर्युवाणो अशस्तीर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥२॥
अनु कृष्णे वसुधिती येमाते विश्वपेशसा ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥३॥
वहन्तु त्वा मनोयुजो युक्तासो नवतिर्नव ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥४॥
वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम् ।
उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजसा ॥५॥

* * *

१ हे वायु, शत्रुओंके प्रकम्पक राजाकी तरह तुम पूर्वमें ही दूसरेके द्वारा अपीत सोमका पान करो एवम् स्तोताओंके धनका सम्पादन करो। हे वायु, तुम सोमपानके लिये आह्लादकर रथ द्वारा आगमन करो।

२ हे वायु तुम अभिशस्तिका निःशेष नियोग करते हो। तुम नियुद्गणसे युक्त हो और इन्द्र तुम्हारे सारथि हैं। हे वायु, तुम सोमपानके लिये आह्लादकर रथ द्वारा आगमन करो।

३ हे वायु, कृष्णवर्ण, वसुओंकी धात्री, विश्वरूपा द्यावापृथिवी तुम्हारा अनुगमन करती हैं। हे वायु, तुम सोमपानके लिये आह्लादकर रथ द्वारा आगमन करो।

४ हे वायु, मनकी तरह वेगवान्, परस्पर संयुक्त, नव-नवतिसंख्यक (९९) अश्व तुम्हारा आनयन करते हैं। हे वायु, तुम सोमपानके लिये आह्लादकर रथ द्वारा आगमन करो।

५ हे वायु, तुम शतसंख्यक पोषणीय अश्वोंको रथमें योजित करो अथवा सहस्रसंख्यक अश्वोंको रथमें योजित करो। उनसे युक्त होकर तुम्हारा रथ वेगपूर्वक आवे।

४९ सूक्त

इन्द्र और बृहस्पति देवता । वामदेव ऋषि गायत्री छन्द ।

इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती । उक्थं मदश्च शस्यते ॥१॥
अयं वां परिषिच्यते सोम इन्द्राबृहस्पती । चारुर्मदाय पीतये ॥२॥
आ न इन्द्राबृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् । सोमपा सोमपीतये ॥३॥
अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम् । अश्वावन्तं सहस्रिणम् ॥४॥
इन्द्राबृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥५॥
सोममिन्द्राबृहस्पती पिबतं दाशुषो गृहे । मादयेथां तदोकसा ॥६॥

* * *

५० सूक्त

१—९ ऋचाओंके बृहस्पति देवता, १०—११ के इन्द्र और बृहस्पति देवता । वामदेव ऋषि ।

त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरोविप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥१॥

---

१ हेन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनोंके मुँहमें हम इस प्रिय सोमरूप हविका प्रक्षेप करते हैं। हम तुम दोनोको उक्थ (शस्त्र) और मदजनक सोमरस प्रदान करते हैं।

२ हे इन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनोंके मुँहमें पानके लिये और हर्षके लिये यह मनोहर सोम भली भाँतिसे दिया जाता है।

३ हे सोमपा इन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनों सोमपानके लिये हमारे यज्ञ-गृहमें आगमन करो।

४ हे इन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनों हमें शतसंख्यक गोयुक्त और सहस्रसंख्यक अश्वयुक्त धन दान करो।

५ हे इन्द्र और बृहस्पति, सोमके अभिषुत होनेपर हम, स्तुति द्वारा, तुम दोनोका सोमपानके लिये आह्वान करते हैं।

६ हे इन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनों हव्यदाता यजमानके गृहमें सोम पान करो और उसके गृहमें निवास करके हृष्ट होओ।

---

१ वेद या यज्ञके पालयिता बृहस्पति देवने बलपूर्वक पृथिवीकी दसो दिशाओ को स्तम्भित किया था। वे शब्द द्वारा तीनो स्थानोंमें वर्तमान हैं। उन आह्लादक जिह्वाविशिष्ट बृहस्पति देवको पुरातन, द्युतिमान् मेधावियोंने पुरोभागमें स्थापित किया है।

धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥२॥
बृहस्पते या परमा परावदत आत ऋतस्पृशो निषेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥३॥
बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्य स्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥४॥
स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन बलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥५॥
एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥

---

२ हे प्रभूत प्रज्ञावान् बृहस्पति, जिनकी गति शत्रुओंको कँपानेवाली है, जो तुम्हें हृष्ट करते हैं और जो तुम्हारी स्तुति करते हैं, उनके लिये तुम फलप्रद, वर्द्धनशील और अहिंसित होते हो एवम् तुम उनके विस्तीर्ण यज्ञकी रक्षा करते हो।

३ हे बृहस्पति, जो अत्यन्त दूरवर्ती स्वर्गनामक उत्कृष्ट स्थान है, उस स्थानसे तुम्हारे अश्व यज्ञमें आगमन करके निषण्ण होते हैं। खात कूपके चारो तरफसे जैसे जलस्राव होता है, उसी तरहसे तुम्हारे चारो तरफ, स्तुतियोंके साथ, प्रस्तर द्वारा, अभिषुत सोम मधुर रसका सिञ्चन करता है।

४ मन्त्राभिमानी बृहस्पतिदेव जब महान् आदित्यके निरतिशय आकाशमें प्रथम जायमान हुए थे, तब सप्त छन्दोमय मुख-विशिष्ट होकर और बहुप्रकारसे सम्भूत होकर तथा शब्दयुक्त एवम् गमनशील तेजोविशिष्ट होकर उन्होंने अन्धकारका नाश किया था।

५ बृहस्पतिने दीप्तियुक्त और स्तुतिशाली अङ्गिरागणके साथ, शब्द द्वारा, बल नामक असुरको विनष्ट किया था। उन्होंने शब्द करके भोगप्रदात्री और हव्यप्रेरिका गौओंको बाहर किया था।

६ हम लोग इस प्रकारसे पालक, सर्वदेवतास्वरूप और अभीष्टवर्षी बृहस्पतिकी, यज्ञ द्वारा, हव्य द्वारा और स्तुति द्वारा, परिचर्या करेंगे। हे बृहस्पति, हम लोग जिससे सुपुत्रवान्, वीर्यशाली और धनके स्वामी हो सकें।

स इन्द्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण ।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम् ॥७॥
स इत् क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इला पिन्वते विश्वदानीम् ।
तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन् ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ॥८॥
अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या ।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ॥९॥
इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥१०॥
बृहस्पत इन्द्र वर्धतं नः सचा सा वां सुमतिर्भूत्वस्मे ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धोर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥११॥

७ जो बृहस्पति (पुरोहित)को सुन्दर रूपसे पोषण करता है एवम् उन्हें प्रथम हव्यग्राही कहकर उनकी स्तुति करता है और नमस्कार करता है, वह राजा अपने वीर्य द्वारा शत्रुओंके बलको अभिभूत करके अवस्थिति करता है।

८ जिस राजाके निकट ब्रह्मा (ब्रह्मणस्पति) प्रथम गमन करते हैं, वह सुतृप्त होकर अपने गृहमें निवास करता है। पृथिवी उसके लिये सब कालमें फल प्रसव करती है। प्रजागण स्वयम् उसके निकट अवनत रहते हैं।

९ जो राजा रक्षणकुशल और धनरहित ब्राह्मण या बृहस्पतिको धन दान करता है, वह अप्रतिहत रूपसे शत्रुओं और प्रजाओंका धन जीतता है एवम् महान् होता है। देवगण उसीकी रक्षा करते हैं।

१० हे बृहस्पति, तुम और इन्द्र इस यज्ञमें हृष्ट होकर यजमानोंको धन दान करो। सर्वव्यापक सोम तुम दोनोंके शरीरमें प्रवेश करे। तुम दोनों हमलोगोंको पुत्र-पौत्रादियुक्त धन दान करो।

११ हे बृहस्पति और इन्द्र, तुम दोनों हम लोगोंको वर्द्धित करो। हम लोगोंके प्रति तुम दोनोंका अनुग्रह एक समयमें ही प्रयुक्त हो। तुम दोनों हमलोगोंके यज्ञकी रक्षा करो, हमारी स्तुतिसे जागरित होओ और स्तोताओंके शत्रुओंके साथ युद्ध करो।

सप्तम अध्याय समाप्त

अष्टम अध्याय

५१ सूक्त

उषा देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

इदमुत्यत् पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात् ।
नूनं दिवो दुहितरो विभातीर्गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥१॥
अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु ।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥२॥
उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्राधोदेयायोषसो मघोनीः ।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥३॥
कुवित् स देवीः सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य ।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥४॥

---

१ हम लोगोंके द्वारा स्तुत, सर्वप्रसिद्ध, अत्यन्त प्रभूत और कान्तिशाली तेज पूर्व दिशासे, अन्धकारके मध्यसे उत्थित होता है। आदित्य-दुहिता और दीप्तिमती उषा यजमानोंके गमन-कार्यमें सचमुच सामर्थ्ययुक्ता हों।

२ यज्ञ-खातके यूपकाष्ठकी तरह शोभमाना होकर विचित्रा उषा पूर्व दिशाको व्याप्त कर अवस्थिति करती हैं। वे बाधाजनक अन्धकारके द्वारका उद्घाटन करके एवम् दीप्त और पवित्र हो करके प्रकाशित होती हैं।

३ आज तमोनिवारिका और धनवती उषा भोज्यदाता यजमानको, सोमादि धन प्रदान करनेके लिये, उत्साहित करती हैं। अत्यन्त गाढ़ अन्धकारके मध्यमें, बनियोंकी तरह अदातृगण अप्रबुद्धभावसे, निद्रित हों।

४ हे द्योतमान उषाओ, जिस रथ द्वारा तुम लोगोंने सप्तछन्दोयुक्त मुखवाले नवग्व और दशग्व अङ्गिराओंको धनशाली रूपसे प्रदीप्त किया था, हे धनवती उषाओ, तुम लोगोंका वही पुरातन अथवा नूतन रथ आज इस यज्ञ-गृहमें बहु बार आगमन करे।

यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम् ॥५॥
क्व स्विदासां कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणाम् ।
शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः ॥६॥
ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः ।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप ॥७॥
ता आ चरन्ति समना पुरस्तात् समानतः समना पप्रथानाः ।
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥८॥
ता इन्न्वेव समना समानीरमीतवर्णा उषसश्चरन्ति ।
गूहन्तीरभ्वमसितं रुशद्भिः शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः ॥९॥

---

५ हे द्युतिमती उषाओ, तुम लोग निद्रित द्विपदों और चतुष्पदोंको, अर्थात् मनुष्यों और गौओं आदिको अपने-अपने गमन आदि कार्योंमें प्रबोधित करके, यज्ञमें गमनकारी अश्वोंके द्वारा, भुवनोंका क्षण मात्रमें परिभ्रमण करो।

६ जिन उषाके लिये ऋभुओंने चमस आदिका निर्माण किया था, वह पुरातन उषा कहाँ हैं ? दीप्त, नित्य नूतन, समान रूपविशिष्ट उषाएँ जब दीप्ति प्रकाश करती हैं, तब वे विज्ञात नहीं होता हैं अर्थात् वे सब दिनोंमें एकरूप—सदृश—रहती हैं; इसलिये यह पुरातन और यह नूतन उषा हैं, इस तरहसे वे पहचानी नहीं जा सकती हैं।

७ यज्ञकारिगण जिन उषाओंका उक्थों द्वारा स्तुति करके एवम् स्तोत्रों और शस्त्रों द्वारा उच्चारण करके शीघ्र धन लाभ करते हैं, वे ही कल्याणकारिणी उषाएँ पुरातन कालसे ही अभिगमन करके धन दान करें। वे यज्ञके लिये उत्पन्न हुई हैं और सत्य फल प्रदान करती हैं।

८ एकरूप-विशिष्ट और समान विख्यात उषाएँ पूर्व दिशामें, एक मात्र अन्तरिक्ष देशसे, सर्वत्र विचरण करती हैं। द्युतिमती उषाएँ यज्ञगृहको प्रबोधित करके जलसृष्टिकारिणी रश्मियोंकी तरह स्तुत होती हैं।

९ उषाए समान, एकरूपविशिष्ट, अपरिमित वर्णयुक्त, दीप्त, शुद्ध और कान्तिपूर्ण शरीर द्वारा दीप्तियुक्त हैं। वे अत्यन्त महान् अन्धकारका गोपन करके विचरण करती हैं।

रयिं दिवो दुहितरो विभातीः प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः ।
स्योनादावः प्रतिबुध्यमानाः सुवीर्य्यस्य पतयः स्याम ॥१०॥
तद्वो दिवो दुहितरो विभातीरुप ब्रुव उषसो यज्ञकेतुः ।
वयं स्याम यशसो जनेषु तद्द्यौश्च धत्तां पृथिवी च देवी ॥११॥

५२ सूक्त

उषा देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री छन्द ।

प्रतिष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः । दिवो अदर्शि दुहिता ॥१॥
अश्वेव चित्रारुषी माता गवा मृतावरी । सखाभूदश्विनोरुषाः ॥२॥
उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि । उतोषो वस्व ईशिषे ॥३॥
यावयद्द्वेष्टसन्त्वा चिकित्वित् सूनृतावरि । प्रतिस्तोमैरभूत्स्महि ॥४॥

---

१० हे द्योतमान आदित्यकी दुहिताओ, तुम हम लोगोंको पुत्र-पौत्रादिसे युक्त धन दान करो। हे देवियो हम लोग सुख लाभके लिये तुम लोगोंको प्रतिबोधित करते हैं, जिससे हम लोग पुत्र-पौत्रादिसे युक्त धनके पति हो सकें।

११ हे द्योतमान आदित्यकी दुहिताओ, हम लोग यज्ञके प्रज्ञापक हैं। तुम्हारे निकट हम लोग प्रार्थना करते हैं, जिससे लोगोंके मध्यमें हम लोग कीर्ति और अन्नके स्वामी हो सकें। द्युलोक और द्युतिमती पृथिवी वह यश धारण कर।

१ वह आदित्य-दुहिता उषा दृष्ट होती है। वह स्तुत हैं और प्राणियोंकी नेत्री है एवम् सुन्दर फलोंकी उत्पादयित्री है। वह भगिनीस्वरूपा रात्रिके पर्यवसानकालमें अन्धकारका विनाश करती है।

२ अश्वकी तरह मनोहरा, दीप्तिमती, रश्मियोंकी माता और यज्ञवती उषा अश्विद्वयके साथ स्तूयमाना हो अर्थात् अश्विद्वयसे बन्धुत्व करे।

३ तुम अश्विद्वयकी बन्धु और रश्मियोंकी माता हो। हे उषा, तुम धनकी ईश्वरी हो।

४ हे सुनृता (सत्यवचन) उषा, तुम शत्रुओंको पृथक् कर दो, तुम संज्ञा दान करो। हम स्तुतियों द्वारा तुम्हें प्रबोधित करते हैं।

प्रति भद्रा अदृक्षत गवां सर्गा न रश्मयः । ओषा अप्रा उरु ज्रयः ॥५॥
आपप्रुषी विभावरि व्यावर्ज्योतिषा तमः । उषो अनु स्वधामव ॥६॥
आ द्यां तनोषि रश्मिभिरान्तरिक्षमुरु प्रियम् । उषः शुक्रेण शोचिषा ॥७॥

५३ सूक्त

सविता देवता । वामदेव ऋषि । जगती और सावित्री छन्द ।

तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महद्वृणीमहे असुरस्य प्रचेतसः ।
छर्दिर्येन दाशुषे यच्छति त्मना तन्नो महाँ उदयान्देवो अक्तुभिः ॥१॥
दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापतिः पिशङ्गं द्रापिं प्रति मुञ्चते कविः ।
विचक्षणः प्रथयन्नापृणन्नुर्वजीजनत् सविता सुम्नमुक्थ्यम् ॥१॥

---

५ स्तुतियोग्य रश्मियाँ दृष्ट होती हैं । उषाने जगत्को वर्षाकी धाराकी तरह महान् तेजसे परिपूर्ण किया है ।

६ हे कान्तिमती उषा, तुम जगत्को तेज द्वारा परिपूर्ण करो, तेज द्वारा अन्धकारको दूर करो उसके अनन्तर नियमानुसारसे हविर्लक्षण अन्नकी रक्षा करो ।

७ हे उषा, तुम दीप्त तेजोयुक्त होकरके रश्मि द्वारा द्युलोकको एवम् विस्तीर्ण और प्रिय अन्तरिक्षको व्याप्त करो ।

---

१ हम लोग असुर (बलवान्) और बुद्धिमान् प्रेरक सविता देवके उस वरणीय एवम् पूज्य धनकी प्रार्थना करते हैं, जिसे वे यजमान हव्यदाताको स्वेच्छापूर्वक देते हैं । महान् सविता हम लोगोंको वह धन सब दिनोंमें दें ।

२ द्युलोक एवम् समस्त लोकके धारक, प्रजाओंको प्रकाश-वृष्टि आदिके द्वारा पालन करनेवाले, कवि सविता, देव हिरणमय कवच परिधान करते हैं । विचक्षण सविता प्रख्यात होकर भी जगत्को तेज द्वारा परिपूर्ण करते हैं और स्तुतियोग्य प्रभूत, सुख उत्पादन करते हैं ।

आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे ।
प्र बाहू अस्राक् सविता सवीमनि निवेशयन् प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ॥२॥
अदाभ्यो भुवनानि प्रचाकशद्व्रतानि देवः सविताभि रक्षते ।
प्रास्राग्बाहू भुवनस्य प्रजाभ्यो धृतव्रतो महो अज्मस्य राजति ॥३॥
त्रिरन्तरिक्षं सविता महित्वना त्री रजांसि परिभूस्त्रीणि रोचना ।
तिस्रो दिवः पृथिवीस्तिस्र इन्वति त्रिभिर्व्रतैरभि नो रक्षति त्मना ॥४॥
बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्थातुरुभस्य यो वशी ।
स नो देवः सविता शर्म यच्छत्वस्मे क्षयाय त्रिवरूथमंहसः ॥५॥
आगन्देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम् ।
स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु ॥६॥

---

३ सविता देव तेज द्वारा द्युलोक और पृथिवीलोकको परिपूर्ण करते हैं एवम् अपने कार्यकी प्रशंसा करते हैं। वे प्रतिदिन जगत्को अपने-अपने कार्यमें स्थापन करते हैं और प्रेरण करते हैं। वे सृजनकार्यके लिये बाहुको प्रसारित करते हैं।

४ सविता देव अहिंसित होकर भुवनोंको प्रदीप्त करते हैं और व्रतोंकी रक्षा करते हैं। वे भुवनस्थ प्रजाओंके लिये बाहु प्रसारण करते हैं। धृतव्रत सविता देव महान् जगत्के ईश्वर हैं।

५ सविता देव महिमा द्वारा परिभव करते हुए अन्तरिक्षत्रय (वायु, विद्युत् और वरुण नामक लोकत्रय अन्तरिक्षके भेद हैं)को व्याप्त करते है। वे लोकत्रयको व्याप्त करते हैं। वे दीप्तिमान् अग्नि, वायु और आदित्यको व्याप्त करते हैं। वे तीन द्युलोक (इन्द्र, प्रजापति, और सत्य नामक लोकत्रय)को व्याप्त करते हैं। वे तीन पृथिवीको व्याप्त करते हैं। वे तीन व्रतों (ग्रीष्म, वर्षा और हिम) द्वारा हम लोगोंका अनुग्रहपूर्वक पालन करें।

६ जिन्हें प्रभूत धन हैं, जो कर्मोंका प्रसव करते है, जो सबके लिये गन्तव्य हैं एवम् जो स्थावर और जङ्गम दोनोंको वशमें रखते हैं, वह सविता देव, हम लोगोंके पापक्षयके लिये, हम लोगोंको लोकत्रयस्थित सुख दान करें।

७ सविता देव ऋतुओंके साथ आगमन करें। हम लोगोंके गृहको वर्द्धित करें। हम लोगोंको पुत्र-पौत्रादि युक्त अन्न दान करें। वे दिन और रात्रि दोनोंमें हम लोगोंके प्रति प्रीत हों। वे हम लोगोंको अपत्ययुक्त धन दान करें।

५४ सूक्त

सविता देवता। वामदेव ऋषि। सावित्री और त्रिष्टुप् छन्द।

अभूद्देवः सविता वन्द्यो नु न इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः।
वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् ॥१॥
देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम्।
आदिद्दामानं सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥२॥
अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः ॥३॥
न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद्यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति।
यत्पृथिव्या वरिमन्ना स्वंगुरिर्वर्ष्मन्दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ॥४॥
इन्द्रज्येष्ठान् बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः।
यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवैव तस्थुः सवितः सवाय ते ॥५॥

---

१ सविता देव प्रादुर्भूत हुए हैं। हम शीघ्र ही उनकी वन्दना करेंगे। वे इस समय और तृतीय सवनमें होताओं द्वारा स्तुत हों। जो मानवोंको रत्न दान करते हैं, वह सविता देव हम लोगोंको इस यज्ञमें श्रेष्ठ धन दान कर।

२ तुम पहले यज्ञार्ह देवोंके लिये अमरत्वके साधनभूत सोमके उत्कृष्टतम भागको उत्पन्न करो। हे सविता, उसके अनन्तर तुम हव्यदाताको प्रकाशित करो एवम् पिता, पुत्र और पौत्रादि क्रमसे मनुष्योंको जीवन दान करो।

३ हे सविता देव, अज्ञानतावश अथवा दुर्बल वा बलशाली लोगोंके प्रमादवश अथवा ऐश्वयके गर्वसे या परिजनके गर्वसे तुम्हारे प्रति अथवा देव या मनुष्योंके प्रति हमने जो अपराध किया है, इस यज्ञमें तुम हमें उससे निष्पाप करो।

४ सविता देवका वह कर्म हिंसायोग्य नहीं है; क्योंकि वे विश्व भुवन धारण करते हैं। वे सुन्दर अङ्गुलिविशिष्ट होकर पृथ्वीको विस्तीर्ण होनेके लिये प्रेरित करते हैं एवम् द्युलोकको भी विस्तीर्ण होनेके लिये प्रेरित करते हैं। सविता देवका यह कर्म सचमुच अवध्य है।

५ हे सविता, परमैश्वर्यवान् इन्द्र हम लोगोंके मध्यमें पूजनीय हैं। तुम हम लोगोंको महान् पर्वतोंकी अपेक्षा भी उन्नत करो। इन सम्पूर्ण यजमानोंको गृहविशिष्ट निवास (ग्राम, नगर आदि) प्रदान करो। वे सब गमनकालमें जिससे तुम्हारे द्वारा नियत हों और तुम्हारी आज्ञाके अनुसार अवस्थिति करें।

ये ते त्रिरहन् सवितः सवासो दिवेदिवे सौभगमासुवन्ति ।
इन्द्रो द्यावापृथिवी सिन्धुरद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥६॥

५५ सूक्त

विश्वदेवगण देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री और त्रिष्टुप् छन्द ।

को वस्त्राता वसवः को वरूता द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः ।
सहीयसो वरुण मित्र मर्तात् को वोऽध्वरे वरिवो धाति देवाः ॥१॥
प्र ये धामानि पूर्व्याण्यर्चान्वि यदुच्छान्वियोतारो अमूराः ।
विधातारो वि ते दधुरजस्रा ऋतधीतयो रुरुचन्त दस्माः ॥२॥
प्र पस्त्या मदितिं सिन्धुमर्कैः स्वस्तिमीड़े सख्याय देवीम् ।
उभे यथा नो अहनी निपात उषासानक्ता करतामदब्धे ॥३॥

---

६ हे सविता, जो यजमान तुम्हारे उद्देशसे प्रतिदिन तीन बार करके, सौभाग्यजनक सोमका अभिषव करता है, इन्द्र, द्यावापृथिवी, जलविशिष्ट सिन्धु, देवता और आदित्योंके साथ अदिति, उस यजमानको और हमें सुख दान करें ।

---

१ हे वसुओ, तुम लोगोंके मध्यमें कौन त्राणकर्ता है ? कौन दुःखोंका निवारक है ? हे अखण्डनीया द्यावापृथिवी हम लोगोंकी रक्षा करो । हे वरुण, हे मित्र, तुम दोनों अभिभवकर मनुष्योंसे हम लोगोंकी रक्षा करो । हे देवो, यज्ञमें, तुम लोगोंके मध्यमें कौन देव धन दान करता है ?

२ जो देव स्तोताओंको पुरातन स्थान प्रदान करते हैं, जो दुःखोंके अमिश्रयिता हैं, जो अमूढ़ हैं और जो अन्धकारका विनाश करते हैं, वही देव विधाता (सम्पूर्ण फलके कर्ता) हैं और नित्य अभीष्ट फल प्रदान करते हैं । वे सत्यकर्मविशिष्ट और दर्शनीय होकर शोभा पाते हैं ।

३ सबके द्वारा गन्तव्य देवमाता अदिति, सिन्धु और स्वस्ति (सुखसे निवास करनेवाली) देवीकी हम, मन्त्र द्वारा, सखिताके लिये स्तुति करते हैं, जिससे द्यावापृथिवी हम लोगोंको विशेष रूपसे पालन करें, उसोके लिये स्तुति करते हैं । उषा और अहोरात्राभिमानी देव हम लोगोंके अभिमतका सम्पादन करें ।

ऽर्यमा वरुणश्चेति पन्थामिषस्पतिः सुवितं गातुमग्निः ।
इन्द्राविष्णू नृवदुषुस्तवाना शर्म नो यन्तममवद्वरूथम् ॥४॥
आ पर्व्वतस्य मरुतामवांसि देवस्य त्रातुरव्रि भगस्य ।
पात् पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत् ॥५॥
नू रोदसी अहिना बुध्न्येन स्तुवीत देवी अप्येभिरिष्टैः ।
समुद्रं न सञ्चरणे सनिष्यवो घर्म्मस्वरसो नद्यो अपव्रन् ॥६॥
देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
नहि मित्रस्य वरुणस्य धासिमर्हामसि प्रमियं सान्वग्नेः ॥७॥
अग्निरीशे वसव्यस्याग्निर्म्महः सौभगस्य । तान्यस्मभ्यं रासते ॥८॥
उषो मघोन्या वह सूनृते वार्य्या पुरु । अस्मभ्यं वाजिनीवति ॥९॥

---

४ अर्यमा और वरुणदेवने यज्ञमार्ग ज्ञापित कर दिया है। हविर्लक्षण अन्नके पति अग्निने सुखकर मार्ग दिखा दिया हैं। इन्द्र और विष्णु सुन्दर रूपसे स्तुत होकर हम लोगोंको पुत्र-पौत्रादियुक्त और बलयुक्त रमणीय सुख दान करें।

५ इन्द्रके सखा पर्वत, मरुद्गण तथा भगदेवसे हम रक्षाकी याञ्चा करते हैं। स्वामी वरुणदेव जन-सम्बन्धियोंके पापसे हमारी रक्षा करें और मित्रदेव मित्रभावसे हम लोगोंकी रक्षा करें।

६ हे द्यावापृथिवीरूप देवीद्वय, जैसे धनाभिलाषी व्यक्ति समुद्रके मध्यमें जानेके लिये समुद्रकी स्तुति करता है, उसी तरह हम भो अभिलषित कायलाभके लिये अहिबुध्न्य नामक देवताके साथ तुम दोनोंकी स्तुति करते हैं। वे देवगण दीप्त ध्वनियुक्त नदियोंको अपावृत करें।

७ देवमाता अदिति देवो अन्य देवोंके साथ हम लोगोंका पालन करें। त्राता इन्द्र अप्रमत्त होकर हम लगोंका पालन कर। मित्र, वरुण और अग्निके सोमादिरूप समुच्छ्रित अन्नकी हम लोग हिंसा नहीं कर सकते हैं; किन्तु अनुष्ठानोंके द्वारा संवर्द्धित कर सकते हैं।

८ अग्नि धनके ईश्वर हैं और महान् सौभाग्यके ईश्वर हैं; अतएव वे हम लोगोंको धन और सौभाग्य प्रदान कर ।

९ हे धनवती, हे प्रिय सत्यरूप वचनकी अभिमानिनी और हे अन्नवती उषा, हम लोगोंको तुम बहुत रमणीय धन दान करो।

तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा । इन्द्रो नो राधसा गमत् ॥१०॥

५६ सूक्त

द्यावापृथिवी देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री और त्रिष्टुप् छन्द ।

मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयद्भिरर्कैः ।
यत् सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वन्रुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः ॥१॥
देवी देवेभिर्यजते यजत्रैरमिनती तस्थतुरुक्षमाणे ।
ऋतावरी अद्रुहो देवपुत्रे यज्ञस्य नेत्री शुचयद्भिरर्कैः ॥२॥
स इत् स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजान ।
उर्व्वी गभीरे रजसी सुमेके अवंशे धीरः शच्या समैरत् ॥३॥
नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः ।
उरूची विश्वे यजते नि पातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥४॥

---

१० जिस धनके साथ सविता, भग, वरुण, मित्र, अर्यमा और इन्द्र आगमन करते हैं, उस धनको वे सब हमें दें ।

---

१ महती और श्रेष्ठा द्यावापृथिवी इस यज्ञमें दीप्तिकर मन्त्र और सोमादिसे युक्त होकर दीप्तिविशिष्ट हों । जिस लिये कि, सेचनकारी पर्जन्य विस्तीर्ण और महती द्यावापृथिवीको स्थापित करते हुए, प्रथमान और गमनशील मरुतोंके साथ सर्व्वत्र शब्द करते हैं ।

२ यजनयोग्य, अहिंसक, अभीष्टवर्षी, सत्यशील, द्रोहरहित, देवोंके उत्पादक और यज्ञोंके निर्वाहक द्यावापृथिवी रूप देवोद्वय यष्टव्य देवोंके साथ दीप्तिकर मन्त्रों या हविर्लक्षण अन्नोंसे युक्त हों ।

३ जिन्होंने इस द्यावापृथिवीको उत्पन्न किया है; जिन धीमान्‌ने विस्तीर्ण, अविचला सुरूपा और आधाररहिता द्यावापृथिवीको, सम्यग्रूपसे कुशल कर्मद्वारा परिचालित किया है, वे ही भुवनोंके मध्यमें शोभनकर्मा हैं ।

४ हे द्यावापृथिवी, तुम दोनों हम लोगोंके लिये अन्न दानकी अभिलाषिणी और परस्पर सङ्गता हो । विस्तीर्णा, व्याप्ता एवम् यागयोग्या होकर तुम दोनों हमें पत्नीयुक्त महान् गृह दो एवम् हम लोगोंकी रक्षा करो । हम लोग कर्मबल द्वारा रथ और दास लाभ करें ।

प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे। शुची उप प्रशस्तये ॥५॥
पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः। ऊह्याथे सनादृतम् ॥६॥
मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम्। परि यज्ञं निषेदथुः ॥७॥

* * *

५७ सूक्त

प्रथम तीन ऋचाओंके क्षेत्रपति देवता, चतुर्थके शुन देवता, पञ्चम और अष्टमके शुनासीर देवता तथा षष्ठ और सप्तमके सीता देवता। वामदेव ऋषि। उष्णिक्, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द।

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृड़ातीदृशे ॥१॥
क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृड़यन्तु ॥२॥

---

५ हे द्युतिमती द्यावापृथिवी, हम लोग तुम दोनोंके उद्देशसे महान् स्तोत्रका सम्पादन करेंगे। तुम दोनों विशुद्ध हो। हम लोग प्रशंसा करनेके लिये तुम्हारे निकट गमन करते हैं।

६ हे देवियो, तुम दोनों अपनी मूर्तियों और बल द्वारा परस्पर प्रत्येकको शोधित करके शोभमाना होओ एवम् सर्वदा यज्ञ वहन करो।

७ हे महती द्यावापृथिवी, तुम दोनों मित्रभूत स्तोताके अभिमतका साधन करो एवम् अन्नको विभक्त और पूर्ण करके यज्ञके चतुर्दिक् उपविष्ट होओ।

---

१ हम यजमान बन्धुसदृश क्षेत्रपति देवके साथ क्षेत्र जय करेंगे। वे हम लोगोंकी गौओं और अश्वोंको पुष्टि प्रदान कर। वे देव हम लोगोंको उक्त प्रकारसे दातव्य धन देकर सुखी करें।

२ हे क्षेत्रपति, धेनु जिस तरहसे दुग्ध दान करती है, उसी तरहसे तुम मधुस्रावी, सुपवित्र, घृततुल्य और माधुर्ययुक्त प्रभूत जल दान करो। यज्ञके या उदकके स्वामी हम लोगोंको सुखी करें।

मधुमती रोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
दोत्रस्य पतिर्म्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥३॥
शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥४॥
शुनाषीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः ।
तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥५॥
अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥६॥
इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥७॥

३ व्रीहि और प्रियङ्गु आदि ओषधियाँ हम लोगोंके लिये मधुयुक्त हों। तीनों द्युलोक, जलसमूह और अन्तरिक्ष हम लोगोंके लिये मधुयुक्त हों। क्षेत्रपति हम लोगोंके लिये मधुयुक्त हों। हम लोग शत्रुओं द्वारा अहिंसित होकर उनका अनुसरण करें।

४ बलीवर्दगण सुखका वहन करें। मनुष्यगण सुखपूर्वक कृषि कार्य करें। लाङ्गल सुखपूर्वक कर्षण करे। प्रग्रहसमूह सुखपूर्वक बद्ध हों। प्रतोद सुख प्रेरण करें।*

५ हे शुन, हे सीर, तुम दोनों हमारी इस स्तुतिका सेवन करो। तुम दोनोंने द्युलोकमें जिस जलको सृष्ट किया है, उसीके द्वारा इस पृथिवीको सिक्त करो।†

६ हे सौभाग्यवती सीता, तुम अभिमुखी होओ। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हम लोगोंको सुन्दर धन प्रदान करो और सुन्दर फल करो। इसीसे हम तुम्हारी बन्दना करते हैं।

७ इन्द्रदेव सीता‡धार काष्ठको ग्रहण करें। पूषा उस सीताको नियमित करें। वह उदकवती द्यौ संवत्सरके उत्तर संवत्सरमें शस्य दोहन करें।

---

* इस ऋचामें सुख शब्द "शुन" के अर्थमें आया है। इन्द्र या वायुके अन्यतम सुखकर देवताका नाम शुन है। उन्हींके अनुग्रहसे यह समस्त सुख सम्पन्न होता है। —सायण।

† शौनकके विचारसे "शुन" द्युदेवताका नाम है; अतः ये इन्द्र हुए। "सीर" वायुको कहते हैं। यास्कके विचारसे "शुन" वायु और "सीर" आदित्य हैं।—सायण।

‡ सीता लाङ्गलपद्धतिः" (शुक्ल यजुर्वेद)–महीधर। हल द्वारा चिह्नित भूमिकी रेखाका नाम सीता है।

शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः ।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥८॥

सूक्त ५८

अग्नि, सूर्य, जल, गो अथवा घृत देवता। वामदेव ऋषि। जगती और त्रिष्टुप् छन्द।

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥१॥
वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुः शृङ्गोऽवमीद्गौर एतत् ॥२॥
चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश ॥३॥

---

८ फाल (भूमिविदारक काष्ठ) सुख-पूवक भूमिकर्षण करे। रक्षकगण बलीवर्दोंके साथ अभिगमन करें। पर्जन्य मधुर जल द्वारा पृथिवीको सिक्त करें। हे शुन, सीर (इन्द्र- वायु या वायु-आदित्य), हम लोगोंको सुख प्रदान करो।

१ समुद्र (अग्नि, अन्तरिक्ष, आदित्य अथवा गौओंके ऊधःप्रदेश)से मधुमान् ऊर्मि उद्भूत होती है। मनुष्य किरण द्वारा अमृतत्व प्राप्त करते हैं। घृतका जो गोपनीय नाम है, वह देवोंकी जिह्वा और अमृतकी नाभि है।

२ हम यजमान घृतके नामकी स्तुति करते हैं। इस यज्ञमें नमस्कार द्वारा उसे धारण करते हैं। परिवृद्ध देव इस स्तवका श्रवण करें। वेदचतुष्टय रूप शृङ्गविशिष्ट गौरवर्ण देव इस जगत्का निर्वाह करते हैं।

३ इस यज्ञात्मक अग्निको चार शृङ्ग हैं अर्थात् शृङ्गस्थानीय चार देव हैं। इसे सवनस्वरूप तीन पाद हैं। ब्रह्मोदन एवम् प्रवर्ग्य-स्वरूप दो मस्तक हैं। छन्दःस्वरूप सात हाथ हैं। ये अभीष्टवर्षी हैं। ये मन्त्र, कल्प एवम् ब्राह्मण द्वारा तीन प्रकारसे बद्ध हैं। ये अत्यन्त शब्द करते हैं। वह महान् देव मर्त्योंके मध्यमें प्रवेश करते हैं। *

---

* सायणने इस ऋचाका एक आदित्यात्मक अर्थ भी किया है। आदित्य-पक्षमें दिक्-चतुष्टय शृङ्ग, वेदत्रय पाद, अहोरात्र मस्तक, सप्त रश्मि हाथ एवम् ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त तीन बन्धन हैं।

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः ॥४॥
एता अषन्ति हृद्यात् समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥५॥
सम्यक् स्रवन्ति सरिते न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥६॥
सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धाराः अरुषो न वाजी काष्ठाः भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥७॥
अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥८॥

---

४ प्राणियोंने गौओंके मध्यमें तीन प्रकारके दीप्त पदार्थों (क्षीर, दधि और घृत)को छिपाकर रखा था । देवोंने उन्हें प्राप्त किया था । इन्द्रने एक क्षीरको उत्पन्न किया था। सूर्यने भी एकको उत्पन्न किया था । देवोंने कान्तिमान् अग्नि या गमनशील वायुको निकटसे अन्न द्वारा और एक पदार्थ घृतको निष्पन्न किया था ।

५ अपरिमित गतिविशिष्ट यह जल हृदयङ्गम अन्तरिक्षसे अधोदेशमें निपतित होता है। प्रतिबन्धकारी शत्रु उसे नहीं देख सकता है । उस सकल घृतधाराको हम देख सकते हैं । इसके मध्यमें अग्निको भी देख सकते हैं।

६ घृतकी धारा प्रीतिप्रद नदीकी तरह क्षरित होती है । यह सकल जल हृदयमध्यगत चित्तके द्वारा पूत होता है । घृतकी ऊर्मि प्रवाहित होती है । जैसे व्याधाके निकटसे मृग पलायित होता है।

७ नदीका जल जैसे निम्न देशको तरफ शीघ्र गमन करता है, वैसे हो वायुकी तरह वेगशालिनो होकर महती घृत-धारा द्रुत वेगसे गमन करती है । यह घृत-राशि परिधि भेद करके ऊर्मि द्वारा वर्द्धित होती है, जैसे गर्ववान् अश्व गमन करता है ।

८ कल्याणी और हास्यवदना योषित जैसे एकचित्त होकर पतिके प्रति आसक्त होती है, उसी तरह घृतधारा अग्निके प्रति गमन करती है । वह सम्यग्रूपसे दीप्तिप्रद होकर सर्वत्र व्याप्त होती है। जातवेदा प्रीत होकर इस सकल धाराकी कामना करते हैं।

कन्याइव वहतुमेतवा ऊ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभितत् पवन्ते ॥९॥
अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ते ॥१०॥
धामन्ते विश्वं भुवनमधिश्रितमन्तः समुद्रे हृद्यं तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥११॥

---

९ कन्या (अनूढ़ा बालिका) जिस तरहसे पतिके निकट जानेके लिये वेश-विन्यास करती है, हम देखते हैं, यह सकल घृतधारा उसी तरहसे करती है। जिस स्थलमें सोम अभिषुत होता है अथवा जिस स्थलमें यज्ञ विस्तीर्ण होता है, उसीको लक्ष्य कर वह धारा गमन करती है।

१० हे हमारे ऋत्विको, गौओंके निकट गमन करो, उनकी शोभन स्तुति करो। हम यजमानोंके लिये वह स्तुतियोग्य धन धारण करें। हमारे इस यज्ञको देवोंके निकट ले जायँ। घृतकी धारा मधुर-भावसे गमन करती है।

११ तुम्हारा तेज समुद्रके मध्यमें वड़वाग्नि रूपसे, अन्तरिक्षके मध्यमें सूर्यमण्डल रूपसे हृदय-मध्यमें वैश्वानर रूपसे, अन्नमें आहार रूपसे, जलसमूहमें वैद्युताग्नि रूपसे और संग्राममें शौर्याग्नि रूपसे अवस्थित है। समस्त भूतजात उसके अधिश्रित है। उसमें जो घृतरूप रस स्थापित हुआ है, उस मधुर रसको हम व्याप्त करते हैं।

चतुर्थ मण्डल समाप्त

पञ्चम मण्डल

३ अष्टक । ५ मण्डल । ८ अध्याय । ६ अनुवाक ।

१ सूक्त

अग्नि देवता । अत्रिवंशीय बुध और गविष्ठिर ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वाइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥१॥
अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान्देवस्तमसो निरमोचि ॥२॥
यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥३॥

---

१ धेनुकी तरह आगमनकारिणी उषाके उपस्थित होनेपर अग्नि अध्वर्युओंके काष्ठ द्वारा प्रवुद्ध होते हैं। उनका शिखासमूह महान् है एवम् शाखा-विस्तारकारी वृक्षकी तरह वह अन्तरिक्षाभिमुख प्रसृत होता है।

२ होता अग्नि देवोंके यजनके लिये प्रवुद्ध होते हैं। अग्नि प्रातःकालमें प्रसन्न मनसे ऊर्द्ध्वाभिमुख उत्थित होते हैं। समिद्ध अग्निका दीप्तिमान् बल दृष्ट होता है। इस तरहके महान् देव अन्धकारसे मुक्त होते हैं।

३ जब अग्नि सङ्घात्मक जगत्के रज्जु रूप अन्धकारको ग्रहण करते हैं, तब वे प्रदीप्त होकरके दीप्त रश्मि द्वारा जगत्को प्रकाशित करते हैं। इसके अनन्तर वे प्रवृद्धा और अन्नाभिलाषिणी घृतधाराके साथ युक्त होते हैं एवम् उन्नत होकर ऊपरी भागमें विस्तृत उस घृतधाराको जुहू द्वारा पीते हैं।

अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सञ्चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ॥४॥
जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता निषसादा यजीयान् ॥ ५ ॥
अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उलोके ।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥६॥
प्रणु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमीलते नमोभिः ।
आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥७॥
मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।
सहस्रशृङ्गो वृषभस्तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान् ॥८॥

---

४ प्राणियोंका चक्षु जिस तरहसे सूर्यके अभिमुख सञ्चरण करता हैं उसी तरहसे यजमानोंका मानस अग्निके अभिमुख सञ्चरण करता है। जब विरूपा द्यावापृथिवी उषाके साथ अग्निको उत्पन्न करती है, तब प्रकृष्ट वर्ण (श्वेत)से युक्त होकर वाजी स्वरूप (वेजनवान्) अग्नि, प्रातःकालमें, उत्पन्न-होते हैं।

५ उत्पादनीय अग्नि उदय कालमें प्रादुर्भूत होते हैं और दीप्तियुक्त होकर बन्धुभूत वनसमूहमें स्थापित होते हैं। इसके अनन्तर वे रमणीय सात ज्वाला (शिखा) धारण करके होता और यागयोग्य होकर प्रत्येक गृहमें उपवेशन करते हैं ।

६ होता और यष्टव्य होकरके अग्नि माता पृथिवीकी गोदमें, आज्य आदिसे सुगन्ध युक्त वेदीरूप स्थानपर, उपविष्ट होते हैं। वे पुत्र, कवि, बहुस्थान-विशिष्ट यज्ञवान् और सबके धारक हैं। यजमानोंके मध्यमें समिद्ध होकरके रहते हैं।

७ जो द्यावापृथिवीको उदक द्वारा विस्तारित करते हैं, उन मेधावी, यज्ञफलसाधक और होता अग्निकी स्तुति द्वारा, यजमानगण शीघ्र स्तुति करते हैं । यजमानगण अन्नवान् अग्निकी, घृत द्वारा, नित्य परिचर्या करते है।

८ संमार्जनीय अग्नि अपने स्थानमें पूजित होते हैं। वे दान्त(प्रशान्त)मना हैं । कविगण उनकी स्तुति करते हैं । वे हम लोगोंके लिये अतिथिकी तरह पूज्य और सुखकर हैं। उन्हें अपरिमित शिखाएँ हैं। वे अभीष्टवर्षी और प्रसिद्ध बलशाली हैं। हे अग्नि, तुम अपनेसे अतिरिक्त अन्य सब लोगोंको बल द्वारा परिभूत करते हैं

प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यानाविर्यस्मै चारुतमो बभूथ ।
ईलेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ॥९॥
तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ट बलिमग्ने अन्तित ओतदूरात् ।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धिबृहत्ते अग्ने महिशर्म भद्रम् ॥१०॥
आद्य रथं भानुमो भनुमन्तमग्नेतिष्ठ यजतेभिः समन्तम् ।
विद्वान् पथीनामुर्वन्तरिक्षमेह देवान् हविरद्याय वक्षि ॥११॥
अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥१२॥

* * *

९ हे अग्नि, तुम यज्ञको प्राप्त कर जिसके निकट चारुतम रूपसे आविर्भूत होते हो, उसके निकटसे तुम, शीघ्र हो, दूसरोंको अतिक्रान्त करके गमन करते हो। तुम स्तुतियोग्य, दीप्तिकर एवम् विशिष्ट दीप्तिमान् हो। तुम प्राणियोंके प्रिय और मनुष्योंके अतिथि (पूज्य) हो ।

१० हे युवतम अग्नि, मनुष्यगण निकटसे और दूसरे तुम्हारी पूजा करते हैं। जो तुम्हारी अधिक स्तुति करता है, तुम उसीकी स्तुति ग्रहण करते हो। हे अग्नि, तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख बृहत्, महान् और स्तुतियोग्य है ।

११ हे दीप्तिमान् अग्नि, तुम आज दीप्तिमान् और समीचीन प्रान्तयुक्त रथपर देवोंके साथ आरोहण करो । तुम्हें पथ अवगत है। प्रभूत अन्तरिक्ष प्रदेश होकर तुम देवोंको हव्य भक्षणके लिये इस स्थानमें ले आते हो ।

१२ हम अत्रिवंशी लोग मेधावी, पवित्र, अभिष्टवर्षी और युवा अग्निके उद्देश्यसे वन्दनायोग्य स्तोत्रका उच्चारण करते हैं। गविष्ठिर ऋषि आकाशमें दीप्यमान, विस्तीर्ण गतिविशिष्ट, आदित्यके सदृश अग्निके उद्देशसे नमस्कारयुक्त स्तोत्रका उच्चारण करते हैं ।

प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे । शुची उप प्रशस्तये ॥५॥
पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः । ऊह्याथे सनादृतम् ॥६॥
मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् । परि यज्ञं निषेदथुः ॥७॥

* * *

५७ सूक्त

प्रथम तीन ऋचाओंके क्षेत्रपति देवता, चतुर्थके शुन देवता, पञ्चम और अष्टमके शुनासीर देवता तथा षष्ठ और सप्तमके सीता देवता । वामदेव ऋषि । उष्णिक्, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द ।

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृड़ातीदृशे ॥१॥
क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृड़यन्तु ॥२॥

---

५ हे द्युतिमती द्यावापृथिवी, हम लोग तुम दोनोंके उद्देशसे महान् स्तोत्रका सम्पादन करेंगे। तुम दोनों विशुद्ध हो । हम लोग प्रशंसा करनेके लिये तुम्हारे निकट गमन करते हैं ।

६ हे देवियो, तुम दोनों अपनी मूर्तियों और बल द्वारा परस्पर प्रत्येकको शोधित करके शोभमाना होओ एवम् सर्वदा यज्ञ वहन करो ।

७ हे महती द्यावापृथिवी, तुम दोनों मित्रभूत स्तोताके अभिमतका साधन करो एवम् अन्नको विभक्त और पूर्ण करके यज्ञके चतुर्दिक् उपविष्ट होओ ।

---

१ हम यजमान बन्धुसदृश क्षेत्रपति देवके साथ क्षेत्र जय करेंगे। वे हम लोगोंकी गौओं और अश्वोंको पुष्टि प्रदान कर। वे देव हम लोगोंको उक्त प्रकारसे दातव्य धन देकर सुखी करें।

२ हे क्षेत्रपति, धेनु जिस तरहसे दुग्ध दान करती है, उसी तरहसे तुम मधुस्रावी, सुपवित्र, घृततुल्य और माधुर्ययुक्त प्रभूत जल दान करो। यज्ञके या उदकके स्वामी हम लोगोंको सुखी करें।

मधुमती रोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
दोत्रस्य पतिर्म्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥३॥
शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥४॥
शुनाषीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः ।
तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥५॥
अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥६॥
इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां षूषानु यच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥७॥

---

३ व्रीहि और प्रियङ्गु आदि ओषधियाँ हम लोगोंके लिये मधुयुक्त हों। तीनों द्युलोक, जलसमूह और अन्तरिक्ष हम लोगोंके लिये मधुयुक्त हों। क्षेत्रपति हम लोगोंके लिये मधुयुक्त हों। हम लोग शत्रुओं द्वारा अहिंसित होकर उनका अनुसरण करें।

४ बलीवर्दगण सुखका वहन करें। मनुष्यगण सुखपूर्वक कृषि कार्य करें। लाङ्गल सुखपूर्वक कर्षण करे। प्रग्रहसमूह सुखपूर्वक बद्ध हों। प्रतोद सुख प्रेरण करें। *

५ हे शुन, हे सीर, तुम दोनों हमारी इस स्तुतिका सेवन करो। तुम दोनोंने द्युलोकमें जिस जलको सृष्ट किया है, उसीके द्वारा इस पृथिवीको सिक्त करो। †

६ हे सौभाग्यवती सीता, तुम अभिमुखी होओ। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हम लोगोंको सुन्दर धन प्रदान करो और सुन्दर फल करो। इसीसे हम तुम्हारी बन्दना करते हैं।

७ इन्द्रदेव सीता‡धार काष्ठको ग्रहण करें। पूषा उस सीताको नियमित करें। वह उदकवती द्यौ संवत्सरके उत्तर संवत्सरमें शस्य दोहन करें।

---

* इस ऋचामें सुख शब्द "शुन" के अर्थमें आया है। इन्द्र या वायुके अन्यतम सुखकर देवताका नाम शुन है। उन्हींके अनुग्रहसे यह समस्त सुख सम्पन्न होता है। —सायण।

† शौनकके विचारसे "शुन" द्युदेवताका नाम है; अतः ये इन्द्र हुए। "सीर" वायुको कहते हैं। यास्कके विचारसे "शुन" वायु और "सीर" आदित्य हैं।—सायण।

‡ सीता लाङ्गलपद्धतिः" (शुक्ल यजुर्वेद)–महीधर। हल द्वारा चिह्नित भूमिकी रेखाका नाम सीता है।

शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः ।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥८॥

सूक्त ५८

अग्नि, सूर्य, जल, गो अथवा घृत देवता । वामदेव ऋषि । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥१॥
वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुः शृङ्गोऽवमीद्गौर एतत् ॥२॥
चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आ विवेश ॥३॥

---

८ फाल (भूमिविदारक काष्ठ) सुख-पूवक भूमिकर्षण करे । रक्षकगण बलीवर्दोंके साथ अभिगमन करें । पर्जन्य मधुर जल द्वारा पृथिवीको सिक्त करें । हे शुन, सीर (इन्द्र- वायु या वायु-आदित्य), हम लोगोंको सुख प्रदान करो ।

१ समुद्र (अग्नि, अन्तरिक्ष, आदित्य अथवा गौओंके ऊधःप्रदेश)से मधुमान् उाम उद्भूत होती है । मनुष्य किरण द्वारा अमृतत्व प्राप्त करते हैं । घृतका जो गोपनीय नाम है, वह देवोंकी जिह्वा और अमृतकी नाभि है ।

२ हम यजमान घृतके नामकी स्तुति करते हैं । इस यज्ञमें नमस्कार द्वारा उसे धारण करते हैं । परिवृद्ध देव इस स्तवका श्रवण करें । वेदचतुष्टय रूप श्रृङ्गविशिष्ट गौरवर्ण देव इस जगत्का निर्वाह करते हैं ।

३ इस यज्ञात्मक अग्निको चार श्रृङ्ग हैं अर्थात् श्रृङ्गस्थानीय चार देव हैं । इसे सवनस्वरूप तीन पाद हैं । ब्रह्मोदन एवम् प्रवर्ग्य-स्वरूप दो मस्तक हैं । छन्दःस्वरूप सात हाथ हैं । ये अभीष्टवर्षी हैं । ये मन्त्र, कल्प एवम् ब्राह्मण द्वारा तीन प्रकारसे बद्ध हैं । ये अत्यन्त शब्द करते हैं । वह महान् देव मर्त्योंके मध्यमें प्रवेश करते हैं । *

---

* सायणने इस ऋचाका एक आदित्यात्मक अर्थ भी किया है । आदित्य-पक्षमें दिक्-चतुष्टय श्रृङ्ग, वेदत्रय पाद, अहोरात्र मस्तक, सप्त रश्मि हाथ एवम् ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त तीन बन्धन हैं ।

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः ॥४॥
एता अर्षन्ति हृद्यात् समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥५
सम्यक् स्रवन्ति सरिते न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥६॥
सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धाराः अरुषो न वाजी काष्ठाः भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥७॥
अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥८॥

---

४ प्राणियोंने गौओंके मध्यमें तीन प्रकारके दीप्त पदार्थों (क्षीर, दधि और घृत)को छिपाकर रखा था । देवोंने उन्हें प्राप्त किया था । इन्द्रने एक क्षीरको उत्पन्न किया था। सूर्यने भी एकको उत्पन्न किया था । देवोंने कान्तिमान् अग्नि या गमनशील वायुको निकटसे अन्न द्वारा और एक पदार्थ घृतको निष्पन्न किया था ।

५ अपरिमित गतिविशिष्ट यह जल हृदयङ्गम अन्तरिक्षसे अधोदेशमें निपतित होता है। प्रतिबन्धकारी शत्रु उसे नहीं देख सकता है । उस सकल घृतधाराको हम देख सकते हैं । इसके मध्यमें अग्निको भी देख सकते हैं।

६ घृतकी धारा प्रीतिप्रद नदीकी तरह क्षरित होती है । यह सकल जल हृदयमध्यगत चित्तके द्वारा पूत होता है । घृतकी ऊर्मि प्रवाहित होती है । जैसे व्याधाके निकटसे मृग पलायित होता है।

७ नदीका जल जैसे निम्न देशको तरफ शीघ्र गमन करता है, वैसे हो वायुकी तरह वेगशालिनी होकर महती घृत-धारा द्रुत वेगसे गमन करती है । यह घृत-राशि परिधि भेद करके ऊर्मि द्वारा वर्द्धित होती है, जैसे गर्ववान् अश्व गमन करता है ।

८ कल्याणी और हास्यवदना योषित जैसे एकचित्त होकर पतिके प्रति आसक्त होती है, उसी तरह घृतधारा अग्निके प्रति गमन करती है । वह सम्यग्रूपसे दीप्तिप्रद होकर सर्वत्र व्याप्त होती है। जातवेदा प्रीत होकर इस सकल धाराकी कामना करते हैं।

कन्याइव वहतुमेतवा ऊ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभितत् पवन्ते ॥९॥
अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ते ॥१०॥
धामन्ते विश्वं भुवनमधिश्रितमन्तः समुद्रे हृद्यं तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥११॥

---

९ कन्या (अनूढ़ा बालिका) जिस तरहसे पतिके निकट जानेके लिये वेश-विन्यास करती है, हम देखते हैं, यह सकल घृतधारा उसी तरहसे करती है। जिस स्थलमें सोम अभिषुत होता है अथवा जिस स्थलमें यज्ञ विस्तीर्ण होता है, उसीको लक्ष्य कर वह धारा गमन करती है।

१० हे हमारे ऋत्विको, गौओंके निकट गमन करो, उनकी शोभन स्तुति करो। हम यजमानोंके लिये वह स्तुतियोग्य धन धारण करें। हमारे इस यज्ञको देवोंके निकट ले जायँ। घृतकी धारा मधुर-भावसे गमन करती है।

११ तुम्हारा तेज समुद्रके मध्यमें वड़वाग्नि रूपसे, अन्तरिक्षके मध्यमें सूर्यमण्डल रूपसे हृदय-मध्यमें वैश्वानर रूपसे, अन्नमें आहार रूपसे, जलसमूहमें वैद्युताग्नि रूपसे और संग्राममें शौर्याग्नि रूपसे अवस्थित है। समस्त भूतजात उसके अधिश्रित है। उसमें जो घृतरूप रस स्थापित हुआ है, उस मधुर रसको हम व्याप्त करते हैं।

चतुर्थ मण्डल समाप्त

पञ्चम मण्डल

३ अष्टक । ५ मण्डल । ८ अध्याय । ६ अनुवाक ।

१ सूक्त

अग्नि देवता । अत्रिवंशीय बुध और गविष्ठिर ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वाइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥१॥
अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान्देवस्तमसो निरमोचि ॥२॥
यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्यत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥३॥

---

१ धेनुकी तरह आगमनकारिणी उषाके उपस्थित होनेपर अग्नि अध्वर्युओंके काष्ठ द्वारा प्रबुद्ध होते हैं। उनका शिखासमूह महान् है एवम् शाखा-विस्तारकारी वृक्षकी तरह वह अन्तरिक्षाभिमुख प्रसृत होता है।

२ होता अग्नि देवोंके यजनके लिये प्रबुद्ध होते हैं। अग्नि प्रातःकालमें प्रसन्न मनसे ऊद्ध्वाभिमुख उत्थित होते हैं। समिद्ध अग्निका दीप्तिमान् बल दृष्ट होता है। इस तरहके महान् देव अन्धकारसे मुक्त होते हैं।

३ जब अग्नि सङ्घात्मक जगत्के रज्जु रूप अन्धकारको ग्रहण करते हैं, तब वे प्रदीप्त होकरके दीप्त रश्मि द्वारा जगत्को प्रकाशित करते हैं। इसके अनन्तर वे प्रवृद्धा और अन्नाभिलाषिणी घृतधाराके साथ युक्त होते हैं एवम् उन्नत होकर ऊपरी भागमें विस्तृत उस घृतधाराको जुहू द्वारा पीते हैं।

अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सञ्चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ॥४॥
जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानोग्निर्होता निषसादा यजीयान् ॥ ५ ॥
अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उलोके ।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥६॥
प्रणु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमीलते नमोभिः ।
आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥७॥
मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।
सहस्रश्रृङ्गो वृषभस्तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान् ॥८॥

---

४ प्राणियोंका चक्षु जिस तरहसे सूर्यके अभिमुख सञ्चरण करता है उसी तरहसे यजमानोंका मानस अग्निके अभिमुख सञ्चरण करता है। जब विरूपा द्यावापृथिवी उषाके साथ अग्निको उत्पन्न करती है, तब प्रकृष्ट वर्ण (श्वेत)से युक्त होकर वाजी स्वरूप (वेजनवान्) अग्नि, प्रातःकालमें, उत्पन्न होते हैं।

५ उत्पादनीय अग्नि उदय कालमें प्रादुर्भूत होते हैं और दीप्तियुक्त होकर बन्धुभूत वनसमूहमें स्थापित होते हैं। इसके अनन्तर वे रमणीय सात ज्वाला (शिखा) धारण करके होता और यागयोग्य होकर प्रत्येक गृहमें उपवेशन करते हैं ।

६ होता और यष्टव्य होकरके अग्नि माता पृथिवीकी गोदमें, आज्य आदिसे सुगन्ध युक्त वेदीरूप स्थानपर, उपविष्ट होते हैं। वे पुत्र, कवि, बहुस्थान-विशिष्ट यज्ञवान् और सबके धारक हैं। यजमानोंके मध्यमें समिद्ध होकरके रहते हैं।

७ जो द्यावापृथिवीको उदक द्वारा विस्तारित करते हैं, उन मेधावो, यज्ञफलसाधक और होता अग्निको स्तुति द्वारा, यजमानगण शीघ्र स्तुति करते हैं । यजमानगण अन्नवान् अग्निकी, घृत द्वारा, नित्य परिचर्या करते है ।

८ संमार्जनीय अग्नि अपने स्थानमें पूजित होते हैं। वे दान्त(प्रशान्त)मना हैं । कविगण उनकी स्तुति करते हैं । वे हम लोगोंके लिये अतिथिकी तरह पूज्य और सुखकर हैं। उन्हें अपरिमित शिखाएँ हैं। वे अभीष्टवर्षी और प्रसिद्ध बलशाली हैं। हे अग्नि, तुम अपनेसे अतिरिक्त अन्य सब लोगोंको बल द्वारा परिभूत करते हैं

प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यानाविर्यस्मै चारुतमो बभूथ।
ईलेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ॥९॥
तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ट बलिमग्ने अन्तित ओतदूरात्।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धिबृहत्ते अग्ने महिशर्म भद्रम् ॥१०॥
आद्य रथं भानुमो भनुमन्तमग्नेतिष्ठ यजतेभिः समन्तम्।
विद्वान् पथीनामुर्वन्तरिक्षमेह देवान् हविरद्याय वक्षि ॥११॥
अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णो।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥१२॥

* * *

९ हे अग्नि, तुम यज्ञको प्राप्त कर जिसके निकट चारुतम रूपसे आविर्भूत होते हो, उसके निकटसे तुम, शीघ्र हो, दूसरोंको अतिक्रान्त करके गमन करते हो। तुम स्तुतियोग्य, दीप्तिकर एवम् विशिष्ट दीप्तिमान् हो। तुम प्राणियोंके प्रिय और मनुष्योंके अतिथि (पूज्य) हो।

१० हे युवतम अग्नि, मनुष्यगण निकटसे और दूसरे तुम्हारो पूजा करते हैं। जो तुम्हारी अधिक स्तुति करता है, तुम उसीकी स्तुति ग्रहण करते हो। हे अग्नि, तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख बृहत्, महान् और स्तुतियोग्य है।

११ हे दीप्तिमान् अग्नि, तुम आज दीप्तिमान् और समीचीन प्रान्तयुक्त रथपर देवोंके साथ आरोहण करो। तुम्हें पथ अवगत है। प्रभूत अन्तरिक्ष प्रदेश होकर तुम देवोंको हव्य भक्षणके लिये इस स्थानमें ले आते हो।

१२ हम अत्रिवंशी लोग मेधावी, पवित्र, अभिष्टवर्षी और युवा अग्निके उद्देश्यसे वन्दनायोग्य स्तोत्रका उच्चारण करते हैं। गविष्ठिर ऋषि आकाशमें दीप्यमान, विस्तीर्ण गतिविशिष्ट, आदित्यके सदृश अग्निके उद्देशसे नमस्कारयुक्त स्तोत्रका उच्चारण करते हैं।

२ सूक्त

अग्नि देवता। अत्रिपुत्र कुमार ऋषि अथवा जरपुत्र वृश ऋषि अथवा इस सूक्तके ये दोनों ही ऋषि हैं।
शक्करी और त्रिष्टुप् छन्द।

कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा विभर्ति न ददाति पित्रे।
अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरतौ ॥१॥
कमेतं त्वं युवते कुमारं पेषी विभर्षि महिषी जजान।
पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्धापश्यञ्जातं यदसूत माता ॥२॥

१ कुमारको उत्पन्न करनेवाली यौवनवती माताने मार्गमें सञ्चरण करनेवाले कुमारको, रथचक्र द्वारा निहत देखकर, गुहामध्यमें धारण किया, उसके जनकको नहीं दिया। लोग उसे हिंसित रूपमें नहीं देख सके; किन्तु अरणिस्थानमें स्थापित होनेपर उसे फिर देख सके। +

२ (उत्पाद्यमान होनेके कारण यहाँ कुमार शब्दसे अग्निका व्यवहार है) हे युवती, तुम पिशाची होकर किस कुमारको धारण करती हो ? पूजनीय अरणिने इसे उत्पन्न किया है। अनेक संवत्सर पर्यन्त अरणि-सम्बन्धी गर्भ बर्धित हुआ था। इसके अनन्तर माता अरणिने जिस पुत्रको उत्पन्न किया था, उसे हमने देखा था।

+ शाट्यायन-ब्राह्मणमें इस ऋचाके सम्बन्धमें इस तरहका इतिहास वर्णित हुआ है—इक्ष्वाकुवंशीय राजा त्र्यरुण पुरोहित वृशके साथ एक रथपर गमन कर रहे थे। रथका सञ्चालन वृश ही करते थे। रथचक्रके सङ्घर्षसे मार्गमें खेलते हुए एक कुमारकी मृत्यु हो गयी। पुरोहित और राजामें यह विवाद होने लगा कि, कौन इस हत्याका अपराधी है; रथस्वामी राजा दोषी हैं या रथचालक पुरोहित। इस तरह लड़ते-झगड़ते वे दोनों वृद्ध इक्ष्वाकुओंके पास पूछने आये। उन दोनोंके पूछनेपर वृद्ध इक्ष्वाकुओंने कहा कि, रथचालक वृश ही इसके हन्ता हैं। पुरोहित वृशने वार्शसाम्नातके द्वारा उस कुमारको फिर जिला दिया; किन्तु उन्होंने इक्ष्वाकुवंशीयोंको पक्षपाती कहकर यह शाप भी दिया कि, तुम लोगोंके घरसे अग्निका तेज निर्गत हो-जायगा। अग्निके विनष्ट हो जानेपर, पाकादिके अभावसे, इक्ष्वाकुवंशीयोंको जब बहुत कष्ट होने लगा, तब वे लोग पुरोहितको प्रसन्न करके अपने पापके अपनोदनकी चेष्टा करने लगे। वृशने आकर देखा कि, ब्रह्महत्याका पाप त्रसदस्यु राजाकी भार्या होकर, पिशाच वेशसे, अग्निके हरको अपहृत करके वस्त्र मध्यमें छिपाये हुआ है। ऋषिने नाना प्रकारसे प्रसन्न करके उसे फिर अग्निके मध्यमें स्थापित किया। पाकादि कार्य पूर्ववत् होने लगा। इसी तरहकी कथा ताण्ड-ब्राह्मणमें भी है।—सायण।

हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात् क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम् ।
ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत् किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः ॥३
क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्तं सुमद्यूथं न पुरु शोभमानम् ।
न ता अगृभ्रन्नजनिष्ठ हि षः पलिक्नीरिद्युवतयो भवन्ति ॥४॥
के मे मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास ।
ये ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान् ॥५॥
वसां राजानं वसतिं जनानामरातयो निदधुर्मर्त्येषु ।
ब्रह्माण्यत्रेरव तं सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ॥६॥
शुनश्चिच्छेपं नि दितं सहस्राद्यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः ।
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान् होतश्चिकित्व इह तू निषद्य ॥७॥

---

३ हमने समीपवर्ती प्रदेशसे हिरण्यदन्त (हिरण्य सदृश ज्वालायुक्त), प्रदीप्त वर्ण और आयुधस्थानीय ज्वाला निर्माण करनेवाले अग्निको देखा था । हम (वृश) ने उन्हें सर्वतोव्याप्त और अविनाशी स्तोत्र प्रदान किया है । जो इन्द्र (परमैश्वर्ययुक्त अग्नि) को नहीं मानते हैं और जो उनकी स्तुति नहीं करते हैं, वे हमारा क्या कर लेंगे ?

४ हम (वृश) ने गोसमूहकी तरह क्षेत्रमें निगूढ़भावसे सञ्चरण करनेवाले एवम् अनेक प्रकारसे स्वयम् शोभमान अग्निको देखा है। पिशाचीके आक्रमण-कालवाली निर्वीर्य ज्वालाको वे ग्रहण नहीं करते हैं। अग्नि पुनर्वार प्रादुर्भूत होते हैं एवम् उनकी वृद्धा ज्वाला युवती होती है।

५ कौन हमारे राष्ट्रको गौओंके साथ नियुक्त करता है ? उन्हें क्या रक्षक नहीं था ? जो हमारे राष्टसमूहपर आक्रमण करता है, वह विनष्ट हो । अग्नि हम लोगोंकी अभिलाषाको जानते हैं, वे हम लोगोंके पशुओंके निकट गमन करते हैं ।

६ प्राणियोंके स्वामी और लोगोंके आवासभूत अग्निको शत्रुगण मर्त्योंके मध्यमें छिपाकर रखते हैं। अत्रिगोत्रोत्पन्न वृशका स्तोत्र उन्हें मुक्त करे। निन्दक लोग निन्दनीय हों ।

७ हे अग्नि, तुमने अत्यन्त बद्ध शुनःशेप ऋषिको सहस्र यूपसे मुक्त किया था; क्योंकि उन्होंने तुम्हारा स्तव किया था। हे होता और विद्वान् अग्नि, तुम इस वेदीपर उपवेशन करो। इस तरह हम लोगोंको सकल पाशसे मुक्त करो ।

हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इन्द्रो विद्वाँ अ नु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥८॥
वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ॥९॥
उत स्वानासो दिविषन्त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ ।
मदे चिदस्य प्र रुजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवी ॥१०॥
एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ।
यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम ॥११॥
तुविग्रीवो वृषभो वावृधानोशत्र्वं यः समजाति वेदः ।
इतीममग्निममृता अवोचन् बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्धविष्मते
मनवे शर्म यंसत् ॥१२॥

---

८ हे अग्नि, तुम जब क्रुद्ध होते हो, तब हमारे निकटसे अपगत होते हो। देवोंके व्रतपालक इन्द्रने हमसे यह कहा था। वे विद्वान् हैं उन्होंने तुम्हें देखा है। हे अग्नि, उनके द्वारा अनुशिष्ट होकर हम तुम्हारे निकट आगमन करते हैं।

९ अग्नि महान् तेज द्वारा विशेष रीतिसे दीप्त होते हैं। वे अपनी महिमाके बलसे सकल पदार्थोंको प्रकट (प्रकाशित) करते हैं। अग्निदेव प्रवृद्ध होकरके दुःखजनक आसुरी मायाको पराभूत करते हैं। राक्षसोंको विनष्ट करनेके लिये वे शृङ्ग (ज्वाला) को तीक्ष्ण करते हैं।

१० अग्निकी शब्द करनेवाली ज्वाला, तीक्ष्ण आयुधकी तरह, राक्षसोंको विनष्ट करनेके लिये, द्युलोकमें प्रादुर्भूत होती है। हर्षके उत्पन्न होनेपर अग्निका क्रोध या दीप्तिसमूह राक्षसोंको पीड़ा देता है। बाधा देनेवाली आसुरी सेना उन्हें बाधा नहीं दे सकती।

११ हे बहुभाव-प्राप्त अग्नि, हम तुम्हारे स्तोता हैं। धीर और कर्मकुशल व्यक्ति जिस तरहसे रथ निर्माण करता है, उसी तरहसे हम तुम्हारे लिये इस स्तोत्रका निर्माण करते हैं। हे अग्निदेव, यदि तुम इस स्तोमको ग्रहण करो, तो हम बहु व्याप्त जय लाभ करें।

१२ बहु ज्वाला विशिष्ट, अभीष्टवर्षी, वर्द्धमान अग्नि निष्कण्टक भावसे शत्रुओंके धनका संग्रह करते हैं। इस बातको देवोंने अग्निसे कहा था कि, वे यज्ञ करनेवाले मनुष्योंको सुख दान करें एवम् हव्य देनेवाले मनुष्यों (यजमानों) को भी सुख दान करें?

३ सूक्त

अग्नि देवता । अत्रिवंशीय वसुश्रुत ऋषि । त्रिष्टप् छन्द ।

त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत् समिद्धः ।
ते विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय ॥१॥
त्वमर्यमा भवसि यत् कनीनां नाम स्वधावन् गुह्यं विभर्षि ।
अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि ॥२॥
तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्ते जानम चारु चित्रम् ।
पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नामगोनाम् ॥३॥
तव श्रिया सुदृशो देव देवाः पुरु दधाना अमृतं सपन्त ।
होतारमग्निं मनुषो निषेदुर्द शस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥ ४ ॥
न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्न काव्यैः परो अस्ति स्वधावः ।
विशश्च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद्देव मर्तान् ॥ ५ ॥

---

१ हे अग्नि, तुम उत्पन्न होते हो वरुण (अन्धकारके निवारक रात्र्यभिमानी देव) होते हो। समिद्ध होकर तुम मित्र (हितकारी) होते हो। समस्त देवगण तब तुम्हारा अनुवर्तन करते हैं। हे बलपुत्र, तुम हव्य दाता यजमानके इन्द्र हो ।

२ हे अग्नि, तुम कन्याओंके सम्बन्धमें अर्यमा (सबके नियामक) होते हो। हे हव्यवान् अग्नि, तुम गोपनीय नाम (वैश्वानर) धारण करते हो। जब तुम दम्पतीको एक मनवाले बना देते हो, तब वे तुम्हें बन्धुकी तरह, गव्य द्वारा, सिक्त करते हैं ।

३ हे अग्नि, तुम्हारे आश्रयके लिये मरुद्गण अन्तरिक्षका मार्जन करते हैं। हे रुद्र, तुम्हारे लिये वैद्युत लक्षण, अति विचित्र और मनोहर जो विष्णु (व्यापन शील देव) का अगम्य पद (अन्तरिक्ष) है, वह स्थापित हुआ है। उसके द्वारा तुम उदकके गुह्य नामका पालन करो ।

४ हे अग्निदेव, तुम्हारी समृद्धिके द्वारा इन्द्रादि देवगण दर्शनीय होते हैं। वे देवगण तुम्हारे प्रति अत्यन्त प्रीति धारण करके अमृतका स्पर्श करते हैं। ऋत्विग्गण फलाभिलाषी यजमानके लिये हव्य वितरण करते हुए होता अग्निकी परिचर्या करते है ।

५ हे अग्नि, तुमसे भिन्न कोई अन्य होता नहीं है, यज्ञकारी नहीं है और कोई पुरातन भी नहीं है। हे अन्नवान्, भविष्यत्कालमें भी तुम्हारी अपेक्षा कोई स्तुतियोग्य नहीं होगा। हे देव, तुम जिस ऋत्विक्के अतिथि होते हो, वह यज्ञ द्वारा शत्रु मनुष्योंको विनष्ट करता है ।

वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः ।
वयं समर्ये विदथेष्वह्नां वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान् ॥ ६ ॥
यो न आगो अभ्येनो भरात्यधीदघमघशंसे दधात ।
जहीचिकित्वो अभिशस्तिमेतामग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन ॥ ७ ॥
त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः ।
संस्थे यदग्न ईयसे रयीणां देवो मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः ॥ ८ ॥
अव स्पृधि पितरं योधि विद्वान् पुत्रो यस्ते सहसः सूनऊहे ।
कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नाऽग्ने कदाँ ऋतचिद्यातयासे ॥ ९ ॥
भूरि नाम बन्दमानो दधाति पिता वसो यदि तज्जोषयासे ।
कुविद्देवस्य सहसा चकानः सुम्नमग्निर्वनते वावृधानः ॥ १० ॥

---

६ हे अग्नि, हम तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर शत्रुओंको पीड़ा दान करेंगे । हम धनाभिलाषी हैं । हम लोग तुम्हें हव्य द्वारा प्रवृद्ध करते हैं । हम लोग युद्धमें जय लाभ करें और प्रतिदिन यज्ञमें बल प्राप्त करें । हे वलपुत्र, हम लोग धनके साथ पुत्र लाभ करें ।

७ जो मनुष्य हम लोगोंके प्रति अपराध या पाप करता है, उस पापकारी व्यक्तिके प्रति अग्नि पापाचरण करें—उसे पापी बनावें । हे विद्वान् अग्नि, जो हम लोगोंको अपराध और पाप द्वारा बाधा देता है, उस पापकारीको विनष्ट करो ।

८ हे देव, पुरातन यजमान तुम्हें देवोंका दूत बना करके, उषाकालमें यज्ञ करते हैं । हे अग्नि, हव्य संग्रह होनेके अनन्तर तुम द्युतिमान् होकर भी निवासप्रद मनुष्यों द्वारा समिद्ध होकर गमन करते हो ।

९ हे वलपुत्र, तुम पिता हो । जो विद्वान् पुत्र तुम्हारे लिये हव्य वहन करता है, तुम उसे पार कर देते हो और उसे पापसे पृथक् करते हो । हे विद्वान् अग्नि, कब तुम हम लोगोंको देखोगे ? हे यज्ञके प्रेरक कब तुम हम लोगोंको सन्मार्गमें प्रेरित करोगे ?

१० हे निवासप्रद अग्नि, तुम पालक हो । यदि तुम उस हविका सेवन करते हो, तो तुम्हारे नामकी वन्दना करके, देनेके लिये, (पुत्र) प्रभूत हव्य धारण करता है । यजमानके बहुत हव्यकी अभिलाषा करनेवाले और बर्द्धमान अग्नि बलयुक्त होकर सुख दान करते हैं ।

त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ विश्वान्यग्ने दुरिताति पर्षि ।
स्तेना अदृश्रन्रिपवो जनासो ज्ञातकेता वृजिना अभूवन् ॥ ११ ॥
इमे यामासस्त्वद्रिगभूवन्वसवे वा तदिदागो अवाचि ।
नाहायमग्निरभिशस्तये नो न रीषते वावृधानः परादात् ॥१२ ॥

—*—*—

४ सूक्त

अग्नि देवता । वसुश्रुत ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

त्वामग्ने वसुपतिं वसूनामभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन् ।
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमाभिष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम् ॥ १ ॥
हव्यवाडग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे ।
सुगार्हपत्याः सर्मिषो दिदीह्यस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि ॥ २ ॥

---

११ हे स्वामी, हे युवतम अग्नि, तुम स्तोताको अनुगृहीत करनेके लिये समस्त दुरितों (विघ्न) से पार कर देते हो। तस्करगण दृष्टि होते हैं। अपरिज्ञात चिह्नवाले शत्रुभूत मनुष्य हमारे द्वारा वर्जित होते हैं।

१२ ये स्तोम तुम्हारे अभिमुख गमन करते हैं अथवा हम निवासप्रद अग्निके निकट उस याचमान अपराधका उच्चारण करते हैं। अग्नि हमारी स्तुति द्वारा वर्द्धित होकर हमें निन्दकों अथवा हिंसकोंके हाथमें नहीं सौंपें।

---

१ हे धनसमूहके स्वामी अग्नि, हम तुम्हारे उद्देशसे यज्ञमें स्तुति करते हैं। हे राजा, हम अन्नाभिलाषी हैं। तुम्हारी अनुकूलतासे हम अन्न लाभ करें और मनुष्य सेनाको अभिभूत करें।

२ हव्यवाहक अग्नि जरारहित होकर हम लोगोंके पालक हों। हम लोगोंके निकट वे सर्वव्याप्त दीप्तिमान् और दर्शनीय हों। हे अग्नि, तुम शोभन गार्हपत्ययुक्त अन्नको भली भाँतिसे प्रकाशित करो अथवा प्रदान करो। तुम हम लोगोंको प्रचुर परिमाणमें अन्न प्रदान करो।

विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम् ।
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे सदेवेषु वनते वार्याणि ॥ ३ ॥
जुषस्वाग्न इलया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्य्यस्य ।
जुषस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान् हविरद्याय वक्षि ॥ ४ ॥
जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामाभरा भोजनानि ॥ ५ ॥
वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस्तन्वे स्वायै ।
पिपर्षि यत् सहसस्पुत्र देवान्त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान् ॥ ६ ॥
वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे ।
अस्मे रयिं विश्ववारं समिन्वास्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि ॥ ७ ॥

---

३ हे ऋत्विको, तुम लोग मनुष्योंके स्वामी, मेधावी, विशुद्ध, दूसरोंको शुद्ध करनेवाले, घृतपृष्ठ, होमनिष्पादक और सर्वविद् अग्निको धारण करो। अग्निदेव देवोंके मध्यमें संग्रहणीय धनको, हम लोगोंके लिये सम्भक्त करते हैं।

४ हे अग्नि, इला (वेदीभूमि) के साथ समान प्रीतियुक्त होकर और सूर्यकी रश्मियों द्वारा यतमान होकर तुम (स्तुतिकी) सेवा करो। हे जातवेदा, हम लोगोंके काष्ठ (समिध्) की सेवा करो। हव्य भोजन करनेके लिये देवोंका आह्वान करो और हव्य वहन करो।

५ तुम पर्याप्त, दान्तमना और गृहागत अतिथिकी तरह पूज्य होकर हम लोगोंके इस यज्ञमें आगमन करो। हे विद्वान् अग्नि, तुम समस्त शत्रुओंको विनष्ट करो और शत्रुताचरण करनेवालोंका धन अपहरण करो ।

६ हे अग्नि, तुम अपने यजमानादिरूप पुत्रको अन्न दान करते हो और आयुध द्वारा दस्युओंको विनष्ट करते हो। हे बलपुत्र, जिस कारण तुम देवोंको तृप्त करते हो, उसी कारणसे हे नेतृश्रेष्ठ अग्नि, तुम हम लोगोंकी, संग्राममें, रक्षा करो।

७ हे अग्नि, हम लोग शस्त्र द्वारा तुम्हारी परिचर्या करेंगे। हम लोग हव्य द्वारा तुम्हारी परिचर्या करेंगे। हे शोधक, तथा हे कल्याणकर-दीप्तिविशिष्ट अग्नि, तुम हम लोगोंको सबके द्वारा वरणीय धन दो। हम लोगोंको समस्त धन प्रदान करो।

अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिषधस्थ हव्यम् ।
वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस्त्रिवरूथेन पाहि ॥ ८ ॥
विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरितातिपर्षि ।
अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानो स्माकं बोध्यविता तनूनाम् ॥ ९ ॥
यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यमर्त्यो जोहवीमि ।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ॥ १० ॥
यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति ॥ ११ ॥

५ सूक्त

आप्री देवता । वसुश्रुत ऋषि । गायत्री छन्द ।

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥ १ ॥

---

८ हे अग्नि, हम लोगोंके यज्ञकी सेवा करो। हे बलपुत्र, हे क्षिति आदि तीनों स्थानोंमें रहनेवाले अग्नि, तुम हव्यकी सेवा करो। हम लोग देवोंके मध्यमें सुकर्मकारी होंगे। तुम हम लोगोंकी, वाचिकादि भेदसे तीन प्रकारके सर्ववरणीय सुख द्वारा अथवा त्रितलविशिष्ट गृह द्वारा, रक्षा करो।

९ हे जातवेदा, नाविक नौका द्वारा जिस तरहसे नदी पार करता है, उसी तरहसे तुम हम लोगोंको समस्त दुःसह दुरितोंसे पार करो। हे अग्नि, अत्रिकी तरह हम लोगोंके स्तोत्रों द्वारा स्तुति होकर तुम हम लोगोंके शरीररक्षक रूपसे अवगत होओ।

१० ह अग्नि, हम मरणशील हैं और तुम अमर हो। हम स्तुतियुक्त हृदयसे स्तव करके तुम्हारा पुनः पुनः आह्वान करते हैं। हे जातवेदा, हम लोगोंको सन्तानदान करो। हम जिससे सन्ततियोंके अविच्छेदसे अमरत्व लाभ कर सकें।

११ हे जातवेदा अग्नि, तुम जिस सुकर्मकृत यजमानके प्रति सुखकर अनुग्रह करते हो, वह यजमान अश्वयुक्त, पुत्रयुक्त, वीर्ययुक्त और गोयुक्त होकर अक्षय धन लाभ करता है।

---

१ हे ऋत्विको, जातवेदा, दीप्तिमान् और सुसमिद्ध नामक अग्निके लिये तुम प्रभूत घृतसे हवन करो।

नराशंसः सुषूदतीमं यज्ञमदाभ्यः । कविर्हि मधुहस्त्यः ॥ २ ॥
ईलितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । सुखै रथेभिरूतये ॥ ३ ॥
ऊर्णम्रदा वि प्रथस्वाभ्यर्का अनूषत । भवा नः शुभ्र सातये ॥ ४ ॥
देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये । प्र प्र यज्ञं पृणीतन ॥ ५
सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा । दोषामुषासमीमहे ॥ ६ ॥
वातस्य पत्मन्नीलिता दैव्या होतारा मनुषः । इमं नो यज्ञमा गतम् ॥७॥
इला सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥८॥
शिवस्त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना । यज्ञेयज्ञे न उदव ॥ ९ ॥
यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि । तत्र हव्यानि गामय ॥१०॥

---

२ नराशंस (मनुष्योंके द्वारा शंसनीय) नामक अग्नि इस यज्ञको प्रदीप्त करें। वे अहिंसनीय, मेधावी एवम् हस्त-विशिष्ट हैं।

३ हे अग्नि, तुम स्तुत हो। हम लोगोंकी रक्षाके लिये विचित्र एवम् प्रिय इन्द्रको सुखकर रथ द्वारा इस यज्ञमें लाओ।

४ हे बर्हि, तुम कम्बलकी तरह मृदुभावसे विस्तृत होओ। स्तोता लोग स्तुति करते हैं। हे दीप्त, तुम हम लोगोंके लिये धनप्रद होओ।

५ हे सुगमन-साधिका यज्ञद्वारकी अभिमानिनी देवियो, तुम सब विमुक्त होओ और हम लोगोंकी रक्षाके लिये यज्ञको सम्पूर्ण करो।

६ सुरूपा, अन्नवर्द्धयित्री, महती और यज्ञ या उदककी निर्मात्री रात्रि तथा उषा देवीकी हम लोग स्तुति करते हैं।

७ हे अग्नि-आदित्यसे समुद्भूत होतृद्वय, तुम दोनों स्तुत होकर वायुपथसे गमन करते हो। हम यजमानोंके इस यज्ञमें आगमन करो।

८ इला, सरस्वती और मही नामक तीनो देवियाँ सुख उत्पन्न करें। वे हिंसाशून्य होकरके हम यजमानोंके इस यज्ञमें आगमन करें।

९ हे त्वष्टृदेव, तुम सुखकर होकरके इस यज्ञमें आगमन करो। तुम पोषक रूपमें व्याप्त हो। सब यज्ञोंमें तुम हम लोगोंकी, उत्कृष्ट रूपसे, रक्षा करो।

१० हे वनस्पति (यूपाभिमानी देव), तुम जिस स्थानमें देवोंके गुप्त नामको जानते हो, उस स्थानमें हव्य प्रेरित करो।

स्वाहाग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः । स्वाहा देवेभ्यो हविः ॥११॥

६ सूक्त

अग्नि देवता । वसुश्रुत ऋषि । पङ्क्ति छन्द ।

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥
सो अग्निर्यो वसु गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥
अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४॥

---

११ यह हव्य अग्नि और वरुणको स्वाहा (आहुत) रूपसे प्रदत्त है, इन्द्र और मरुतोंको स्वाहा रूपसे प्रदत्त है तथा देवोंको स्वाहा रूपसे प्रदत्त है ।

१ जो निवासप्रद हैं, जो सबके लिये गृहकी तरह आश्रयभूत हैं और जिन्हें गौएँ, शीघ्रगामी घोड़े तथा नित्य प्रवृत्त हव्य देनेवाले यजमान प्रसन्न करते हैं, हम उन अग्निकी स्तुति करते हैं। हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो ।

२ जो अग्नि निवासप्रद रूपसे स्तुत होते हैं, जिनके निकट गौए होमार्थ समागत होती हैं, द्रुतगामी घोड़ समागत होते हैं और सत्कुलोत्पन्न मेधावी समागत होते हैं, वही अग्नि हैं। हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो ।

३ सबके कर्मोंके दर्शक अग्नि यजमानोंको अन्नयुक्त पुत्र प्रदान करते हैं। अग्नि प्रीत होकर सर्वत्र व्याप्त और सबके द्वारा वरणीय धन देनेके लिये गमन करते हैं। हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो ।

४ हे अग्निदेव, तुम दीप्तिमान् और जरारहित हो । तुम्हें हम सर्वतोभावसे प्रदीप्त करते हैं तुम्हारी वह स्तुतियोग्य दीप्ति द्युलोकमें दीप्त होती है । हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो ।

आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ।
प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
ते हिन्विरे त इन्विरे त इषण्यंत्यानुषगिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥६॥
तव त्ये अग्ने अर्चयो महि व्राधन्त वाजिनः ।
ये पत्वभिः शफानां व्रजा भूरन्त गोनामिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥७॥
नवा नो अग्न आ भर स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः ।
ते स्याम य आनृचुस्त्वादूतासो दमेदम इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥८॥
उभे सुश्चन्द्र सपिषो दर्व्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत् पुपूर्या उक्थेषुः शवस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥९॥

---

५ हे दीप्ति-समूहके स्वामी, आह्लादक, शत्रुओंके विनाशक, प्रजापालक और हव्यवाहक अग्नि, तुम दीप्त हो। तुम्हारे उद्देशसे मन्त्रोंके साथ हव्य हुत होता है। हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो।

६ ये लौकिकाग्नि गार्हपत्यादि अग्निमें समस्त वरणीय या अपेक्षित धनका पोषण करते हैं। ये प्रीतिदान करते हैं, ये चारो तरफ व्याप्त होते हैं और ये अनवरत अन्नकी इच्छा करते हैं। हे अग्नि स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो।

७ हे अग्नि, तुम्हारी वे रश्मियाँ अत्यन्त अधिक अन्नयुक्त होकर वर्द्धित हो। वे रश्मियाँ, पतनके द्वारा, खुरयुक्त गोसमूहकी इच्छा करें अर्थात् होमकी आकाङ्क्षा करें। हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो।

८ हे अग्नि, हम सब तुम्हारे स्तोता हैं। तुम हम लोगोंको नूतन गृहयुक्त अन्न दान करो। हम लोग जिससे तुम्हारी, प्रत्येक यज्ञ-गृहमें, अर्चना करके तुम्हें दूत रूपसे लाभ कर सकें। हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो।

९ हे आह्लादक अग्नि, तुम घृतपूर्ण दर्वीद्वयको मुखमें ग्रहण करत हो। हे बलके पालयिता, तुम यज्ञमें हम लोगोंको फल द्वारा पूर्ण करो। हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो।

एवाँ अग्निमजुर्यमुर्गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक् ।
दधदस्मे सुवीर्य्यमुत्य यदाश्वश्व्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१०॥

⁂

७ सूक्त

अग्नि देवता । इष ऋषि । अनुष्टुप् और पङ्क्ति छन्द ।

सखायः सं वः सम्यञ्चमिषं स्तोमं चाग्नये ।
वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥१॥
कुत्रा चिद्यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने ।
अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते संजनयन्ति जन्तवः ॥२॥
सं यदिषो वनामहे सं हव्या मानुषाणाम् ।
उत द्युम्नस्य शवसा ऋतस्य रश्मिमा ददे ॥३॥
सः स्मा कृणोति केतुमा नक्तं चिद्दूर आ सते ।
पावको यद्वनस्पतीन् प्र स्मा मिनात्यजरः ॥४॥
आव स्म यस्य वेषणे स्वेदं पथिषु जुह्वति ।
अभीमह स्वजेन्यं भूमा पृष्ठेव रुरुहुः ॥५॥

---

१० इस प्रकारसे लोग अनुषक्त अग्निके निकट स्तुति और यज्ञके साथ गमन करते हैं और उन्हें स्थापित करते हैं। वे हम लोगोंको शोभन पुत्र-पौत्रादि और वेगवान् अश्व दान करें। हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो।

---

१ हे सखिभूत ऋत्विको, तुम यजमानोंके लिये अत्यन्त प्रवृद्ध, बलके पुत्र और बलशाली अग्निके उद्देशसे अर्चना योग्य अन्न और स्तुति प्रदान करो।

२ जिन्हें प्राप्त करके ऋत्विग्गण प्रीत होते हैं, यज्ञगृहमें पूजा करके जिन्हें प्रदीप्त करते हैं एवम् जिनके लिये जन्तुओंका उत्पादन करते हैं, वह अग्नि कहाँ हैं ?

३ जब हम अग्निको अन्न प्रदान करते हैं और जब वे हम मनुष्योंके हव्यकी सेवा करते हैं, तब वे द्योतमान अन्नकी सामर्थ्यसे उदक-ग्राहक रश्मिको ग्रहण करते हैं।

४ जब पावक और जरारहित अग्नि वनस्पतियोंको दग्ध करते हैं, तब वे रात्रि कालमें भी दूरस्थित व्यक्तिको प्रज्ञापित करते हैं।

५ अग्निकी परिचर्याके कार्यमें क्षरित घृतोंको अध्वर्यु आदि ज्वालाओंके मध्यमें प्रक्षिप्त करते हैं। पुत्र जिस तरहसे पिताके अङ्कमें आरोहण करता है, उसी तरहसे घृतधारा इन अग्निके ऊपर आरोहण करती है।

यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विदद्विश्वस्य धायसे ।
प्र स्वादनं पितूनामस्ततातिं चिदायवे ॥६॥
स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः ।
हिरिश्मश्रुः शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषिः ॥७॥
शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत् प्र स्वधितीव रीयते ।
सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम् ॥८॥
आ यस्ते सर्पिरासुतेऽग्ने शमस्ति धायसे ।
ऐषु द्युम्नमुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः ॥९॥
इति चिन्मन्युमध्रिजस्त्वादातमा पशुं ददे ।
आदग्ने अपृणतोऽत्रिः सासह्याद्दस्यूनिषः सासह्यान्नॄन् ॥१०॥

* * *

---

६ यजमान अग्निको जानते हैं। अग्नि अनेकों द्वारा स्पृहणीय, सबके धारक अन्नोंके आस्वादक और यजमानोंके निवासप्रद हैं ।

७ अग्नि तृणच्छेदक पशुओंकी तरह निर्जल एवम् तृणकाष्ठपूर्ण प्रदेशको छिन्न करते हैं। वे सुवर्ण-श्मश्रु विशिष्ट, उज्ज्वलदन्त, महान् और अप्रतिहत बल-सम्पन्न हैं।

८ जिनके निकट लोग अत्रिकी तरह गमन करता है, जो कुठारकी तरह वृक्षादिका विनाश करते हैं, वह अग्नि दीप्त हैं। जो अन्न ग्रहण करते हैं और जो जगत्के उपकारक हैं, माता अरणिने उन्हीं अग्निका प्रसव किया था।

९ हे हव्यभोजी अग्नि, तुम सबके धारक हो । हम लोगोंकी स्तुतियोंसे तुम्हें सुख हो । तुम स्तोताओंको धन दान करो, अन्न दान करो और अन्तःकरण दान करो ।

१० हे अग्नि, इसी प्रकारसे दूसरोंके द्वारा अकृत्य स्तोत्रोंके उच्चारणकारी ऋषि तुमसे पशु ग्रहण करते हैं। जो अग्निको हव्य दान नहीं करता है, उस दस्युको अत्रि पुनः पुनः अभिभूत करें और विरोधियोंको पुनः पुनः अभिभूत करें।

— ——

८ सूक्त

अग्नि देवता । इष ऋषि । जगती छन्द ।

त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नास ऊतये सहस्कृत ।
पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम् ॥१॥
त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः शोचिष्केशं गृहपतिं निषेदिरे ।
बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं सुशर्माणं स्ववसं जर द्विषम् ॥२॥
त्वामग्ने मानुषीरीड़ते विशो होत्राविदं विविचं रत्नधातमम् ।
गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम् ॥३॥
त्वामग्ने धर्णसिं विश्वधा वयं गीर्भिर्गृणन्तो नमसोप सेदिम ।
स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो देवो मर्त्तस्य यशसा सुदीतिभिः ॥४॥
त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत ।
पुरूण्यन्ना सहसा वि राजसि त्विषिः सा ते तित्विषाणस्य नाधृषे ॥५॥

---

१ हे बलकर्ता अग्नि, तुम पुरातन हो । पुरातन यज्ञकारी आश्रय लाभके लिये तुम्हें भली भाँतिसे प्रदीप्त करते हैं । तुम अत्यन्त प्रीतिदायक, यागयोग्य, बहु अन्न-विशिष्ट, गृहपति और वरणीय हो ।

२ हे अग्नि, यजमानोंने तुम्हें गृहस्वामीके रूपसे स्थापित किया है । तुम अतिथिकी तरह पूज्य हो । तुम पुरातन, दीप्तशिखाविशिष्ट, प्रभूत केतुविशिष्ट, बहुरूप, धनदाता, सुखप्रद, सुरक्षक और जीर्ण वृक्षोंके ध्वंसकारी हो ।

३ हे सुन्दर धनविशिष्ट अग्नि मनुष्यगण तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम होमविद्, विवेचक, रत्नदाताओंके मध्यमें श्रेष्ठ, गुहास्थित, सबके दर्शनयोग्य, प्रभूत ध्वनियुक्त यज्ञकारी और घृतग्राहक हो ।

४ हे अग्नि, तुम सबके धारक हो । हम लोग बहुत प्रकारके स्तोत्र और नमस्कार द्वारा स्तुति करके तुम्हारे निकट उपस्थित होते हैं । तुम हम लोगोंको धन प्रदान करके प्रीत करो । हे अङ्गिराके पुत्र अग्नि देव, तुम भली भाँतिसे प्रदीप्त होकरके शिखाओंके साथ, यजमानोंके अन्न द्वारा प्रीत होओ ।

५ हे अग्नि, तुम बहुरूपयुक्त होकरके समस्त यजमानोंको पुराकालकी तरह अन्न दान करते हो । ह बहुस्तुत, तुम अपने बलसे ही बहुत अन्नोंके स्वामी होते हो । तुम दीप्तिमान् हो । तुम्हारी दीप्ति दूसरोंके द्वारा अधृष्य है ।

त्वामग्ने समिधानं यविष्ठ्य देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम् ।
उरुज्रयसं घृतयोनिमाहुतं त्वेषं चक्षुर्दधिरे चोदयन्मति ॥६॥
त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतैः सुम्नयवः सुषमिधा समीधिरे ।
स वावृधान ओषधीभिरुक्षितोभि ज्रयांसि पार्थिवा वि तिष्ठसे ॥६॥

---

६ हे युवतम अग्नि, तुम सम्यग्रूपसे प्रदीप्त हो। देवोंने तुम्हें हव्यवाहक किया था। देवों और मनुष्योंने प्रभूत वेगशाली, घृतयोनि और आहूत अग्निको बुद्धिप्रेरक, दीप्त और चक्षुः स्थानीय बनाकर धारण किया था ।

७ हे अग्नि, घृत द्वारा आहूत करके पुरातन, सुखाभिलाषी यजमान तुम्हें सुन्दर काष्ठों द्वारा प्रदीप्त करते हैं । तुम वर्द्धित होकरके, ओषधियों द्वारा सिक्त होकरके और पार्थिव अन्नोंको व्यक्त करके अवस्थिति करते हो ।

अष्टम अध्याय समाप्त

तृतीय अष्टक समाप्त

हिन्दीमें ऋग्वेद-संहिता पढ़िये

चतुर्थ अष्टक छप रहा है—

—तीन अष्टक छप गये !

प्रत्येक अष्टकका मूल्य २) रु०

ऐसा ग्रन्थ आपने नहीं देखा होगा

अत्यन्त सरल हिन्दीमें सम्पूर्ण ऋग्वेदका सरल-सुन्दर अनुवाद। इस कार्यके लिये संसार भरकी भाषाओंमें ऋग्वेदके सम्बन्धमें जितनी पुस्तकें, निबन्ध-प्रबन्ध और आलोचना-ग्रन्थ छपे हैं, उन सबका संग्रह कर लिया गया है। आज ही मनी आर्डरसे ६) रु० भेजकर तीनों अष्टक मँगा लीजिये। शेष अष्टक आपको घर-बैठे मिल जायँगे। प्रत्येक अष्टकमें विस्तृत-गवेषणा-पूर्ण टिप्पनियाँ और कितनी ही ज्ञातव्य वैदिक बातें भी दी जाती हैं। ॥) भेजकर स्थायी ग्राहक बननेवालोंसे और ५) रु० वार्षिक मूल्य भेजकर "गंगा"के ग्राहक बननेवालोंसे डाकखर्च नहीं लिया जाता।

आर्यजातिकी मर्यादा और सभ्यताका अध्ययन कीजिये।

मैनेजर, वैदिकपुस्तकमाला, सुलतानगंज (ई० आई० आर०)

वार्षिक मूल्य २)] **साप्ताहिक "हलधर"** [एक अंकका ॥)

यह प्रति मंगलबारको भागलपुरसे प्रकाशित होता है।

'हलधर' किसानोंको बतावेगा कि, उनके अधिकार क्या है? 'हलधर' सलझावेगा कि, किसान अपने संगठन कर देशमें हलचल मचा सकते हैं। 'हलधर' किसानोंको उन्नतिका उपाय बतावेगा 'हलधर' नवाभिनव कृषि-यन्त्रों और खादोंकी उपतोगिताके वर्णन बराबर छापेगा। 'हलधर' प्रजा या किसानोंसे प्रेम करेगा; परन्तु राजा या जमींदारोंसे द्वेष नहीं। 'हलधर' सबकी विषमताओंको दूर कर सबमें समता स्थापित करनेकी चेष्टा करेगा। प्रत्येक राजा, जमींदार, साहित्यिक, किसान और पटवारी आदिको इसका ग्राहक बनाना चाहिये। नमूना मुफ्त मँगा देखिये।

—व्यवस्थापक, हलधर, खलीफाबाग, भागलपुर

युगान्तर पैदा करनेवाला विशेषांक

"गंगा" का "पुरातत्त्वांक"

ब्रिटिश म्युजियम (लंदन), भारत-मन्त्री और भारत
सरकारके अनमोल चित्रों तथा अरब, तिब्बत, सीरिया,
लंका आदिके अप्राप्य चित्रों एवम् शिला-लेखों,
चौरासी सिद्धोंके चित्रों, ताम्रपत्रों, मूर्तियों,
मुद्राओं, ईंटों और लिपियोंके चित्रोंसे
सुसज्जित "पुरातत्त्वांक" की छटा
छहर रही है।

आप "पुरातत्त्वांक" हाथमें लेते ही फड़क उठेंगे!

क्या आप जानते हैं कि, मनुष्य कैसे और कब उत्पन्न हुआ? क्या आपको मालूम है कि, किस स्थितिमें मनुष्यने भाषा बनायी? क्या आप सारे ब्रह्माण्डका मूल इतिहास जानते हैं? क्या आप आर्य-सभ्यताका, सृष्टिसे लेकर आज तकका, इतिहास जानना चाहते हैं? क्या आप संसारभरकी भाषाओं, लिपियों, बोलियों, अजायबघरों, संवतों और सामाजिक आचार-विचारोंका राई-रत्ती हाल जानना चाहते हैं? क्या आपको पता है कि, इतिहासका प्राण "पुरातत्त्व" है? क्या आपको मालूम है कि, भारत-भरकी खोदाइयोंमें कैसे-कैसे अमूल्य रत्न मिले हैं और कितने लाख खर्च हुए हैं? क्या आप हिन्दीकी प्राचीनतम कविताओंका रहस्य समझना चाहते हैं? क्या आप लाखों वर्षोंके वृक्ष और पचास हजार वर्षोंके मनुष्यको जानना चाहते हैं? इन सब प्रश्नोंके उत्तर देनेके लिये—

३)रु० भेजकर "गंगा" का पुरातत्त्वांक खरीद लीजिये

**५) रु० वार्षिक मूल्य भेजकर १९३३ की "गङ्गा" की फाइल
खरीदनेवालोंको "पुरातत्त्वांक" मुफ्त मिलेगा।**

"गंगा" कार्यालय, कृष्णगढ़, सुलतानगंज (ई० आई० आर०)

वैदिकपुस्तकमाला—चतुर्थ पुष्प

ऋग्वेद-संहिता

(सरल-हिन्दी-टीका-सहित)

चतुर्थ अष्टक

टीकाकार

पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री

(त्र-परिचय”, “हिन्दी-विष्णु-पुराण”, “हिन्दीपुस्तक-कोष”, “राजर्षि प्रह्लाद”, “भक्त ध्रुव”, “महासती
दालसा”, “रत्नावली” आदिके लेखक, “आर्यमहिला”, “विश्वदूत” (रंगून) “सेनापति” आदिके
भूतपूर्व सम्पादक, “गीता-प्रचारक-महामण्डल” (मोरिशस) के जन्मदाता,
“दक्षिण अफ्रीकन सनातन-धर्म-महामण्डल” (डरबन, नेटाल) के
आजीवन सभापति, “गङ्गा”के प्रधान सम्पादक तथा
सनातनधर्मके महोपदेशक),

पण्डित गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ

(प्राइवेट सेक्रेटरी, बनैलीराज्याधिपति साहित्य-विभूषण कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुर
तथा “गङ्गा” और “वैदिकपुस्तकमाला”के अन्यतम जन्मदाता एवम् अध्यक्ष)

—और—

साहित्याचार्य पण्डित महेन्द्र मिश्र “मग”

(‘गङ्गा’’-सम्पादक)

प्रकाशक
पण्डित गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ
संचालक, “वैदिकपुस्तकमाला”, सुलतानगंज (ई० आई० आर०)

मूल्य २) } फाल्गुन, १९९१ विक्रमीय { प्रथम संस्करण
२०००

वेद क्यों पढ़ना चाहिये ?

इसलिये कि—

(१) वेद हिन्दूधर्मकी मूल पुस्तक है,

(२) वेद मनुष्यजातिकी सबसे प्राचीन पुस्तक है,

(३) सदाचार, वीरता, परोपकार, देश-सेवा, सत्य, त्याग आदि मनु जातिकी जितनी उच्चतम गुणावली है, सबका वेदमें बड़ा ही सु विवरण है,

(४) वेद हमारी जातिके प्राचीन इतिहास, कला, विज्ञान, धर्म-ग्र समाज-व्यवस्था, राष्ट्रधर्म, यज्ञ-रहस्य आदि आदिको दर्पणकी त दिखाता है ।

इसलिये जिस प्रकार हर एक ईसाई बाइबिलको और हर एक मुसल मान कुरानको, गाड और खुदाकी विमल वाणी समझकर, अपने प रखता है, उसी प्रकार ईश्वरका पवित्र उपदेश जानकर वेदको अपने प रखना हर एक हिन्दूका आवश्यक कर्त्तव्य है ।

लज्जाकी बात है कि, जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका, इंगलैंड आदिके विद्वा ने तो वेदकी सारी पुस्तकोंको छपा डाला और हिन्दीमें एक भी ऋग्वेद सरल अनुवाद नहीं । इसी अभावकी पूर्त्तिके लिये हमने "वैदिक-पुस्तकमा द्वारा सरस-सरल हिन्दीमें चारो वेदोंका अनुवाद कराना निश्चित किया है अबतक ऋग्वेदके तीन अष्टक निकल चुके हैं और और चौथा अष्ट आपके सामने है । प्रत्येक अष्टकका मूल्य सिर्फ लागत भर २) रु० है चारो अष्टकोंका मूल्य ८) रु० है । पाँचवां अष्टक छप रहा है ।

॥) देकर "वैदिक-पुस्तकमाला"के स्थायी ग्राहक बननेवालोंको क भी डाक खर्च नहीं देना होता है और पुस्तक निकलते ही, सूचना दे वी० पी० से भेज दी जाती है ।

व्यवस्थापक, "वैदिक-पुस्तकमाला", सुलतानगंज (ई० आई० आर०

वैदिक-पुस्तकमाला—चतुर्थ पुष्प

ऋग्वेद-संहिता

(सरल-हिन्दी-टीका-सहित)

चतुर्थ अष्टक

टीकाकार

पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री

("दर्शनपरिचय," "हिन्दीविष्णुपुराण," "हिन्दीपुस्तककोष," "राजर्षि प्रह्लाद," "भक्त ध्रुव," "महासती मदालसा," "रत्नावली" आदिके लेखक, "आर्यमहिला," "विश्वदूत" (रंगून) 'सेनापति," आदिके भूतपूर्व सम्पादक, "गीताप्रचारक-महामण्डल" (मोरिशस) के जन्मदाता, "दक्षिण अफ्रीकन सनातन-धर्ममहामण्डल" (डरबन, नेटाल) के आजीवन सभापति, "गङ्गा"के प्रधान सम्पादक तथा सनातनधर्मके महोपदेशक),

पण्डित गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ

(प्राइवेट सेक्रेटरी, बनैली-राज्याधिपति साहित्य-विभूषण कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुर तथा "गङ्गा" और "वैदिक-पुस्तक-माला"के
(अन्यतम जन्मदाता एवम् अध्यक्ष)

—* और *—

साहित्याचार्य पण्डित महेन्द्र मिश्र "मग"

("गंगा"-सम्पादक)

प्रकाशक
पण्डित गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ
संचालक, "वैदिक-पुस्तकमाला," सुलतानगंज (ई० आई० आर०)

मूल्य २) { फाल्गुन, १९९१ विक्रमीय } प्रथम संस्करण ३०००

श्रीमिथिला प्रेस,
खलीफाबाग, भागलपुरमें मुद्रित

आत्म-निवेदन

हिन्दुओंके सर्व-श्रेष्ठ धर्म-शास्त्र-विधाता मनु महराजने लिखा है—

"योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥"

इसका तात्पर्य यह है कि, जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) वेद न पढ़कर किसी भी अन्य शास्त्र, ग्रन्थ या कर्ममें परिश्रम करता है, वह जीते जो, अपने कुलके साथ, बहुत जल्दी, शूद्र हो जाता है।

इस श्लोकसे वेदके अध्ययनका महत्त्व विदित होता है। वेदाध्ययनका इतना महत्त्व क्यों? इसके कई कारण हैं। पहला कारण यह है कि, हिन्दू वेदको पुस्तक नहीं मानते; पुस्तकके रूपमें वे उसे नित्य, शाश्वत, अप्रमेय और ज्ञानाकर मानते हैं। कौषतकि-ब्राह्मण (१०।३।) का मत है कि, वेदके मन्त्र तपःपूत ऋषियों द्वारा आविर्भूत हुए हैं या देखे गये हैं, बनाये नहीं गये। ऐतरेय ब्राह्मण (३।१६) का कहना है कि, गौरवीतिने सूक्तों या मन्त्र-समूहोंको देखा था। ये दोनों ग्रन्थ स्वयं वैदिक साहित्यके महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ हैं। इनसे विदित होता है कि, सनातन कालसे ही वेदोंको हिन्दू या आर्य नित्य मानते हैं। कल्पसूत्रों, दर्शनों, धर्मशास्त्रों, पुराणोंने भी वेद-नित्यता स्वीकार की है। यही नहीं, संस्कृत-साहित्यमें जितने ग्रन्थ हैं, प्रायः सब वेदोंको नित्य मानते हैं। भारतकी देशी भाषाओंके ग्रन्थ भी वेदोंको लगभग शाश्वत मानते हैं। भट्टभास्कर, स्कन्द स्वामी, सायणाचार्य, शङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, बल्लभाचार्य आदि भी वेद-नित्यता स्वीकार करते हैं। स्वामी दयानन्दकी तो वेद-नित्यतापर दृढ़ धारणा है। असंख्य हिन्दू वेदोंको हिरण्यगर्भ (Cosmic Egg) से सम्भूत स्वीकार करते हैं। बौद्धों, जैनों, सिखोंकी दृष्टिमें भी वेद-ज्ञाताकी खासी प्रतिष्ठा है।

दूसरा कारण है वेदोंका ऐतिहासिक महत्त्व। कुछ नयी शैलीके ऐसे विद्वान् हैं, जो वेदोंको नित्य तो नहीं स्वीकार करते; किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिसे उनका अतीव महत्त्व स्वीकार करते हैं। वेदोंसे मनुष्यजातिकी प्राचीनतम रीति-नीतियाँ जानी जाती हैं; इसलिये ऐतहासिक हिन्दू वेदोंको रत्नराजिकी तरह संचित करते हैं। ऐसी ही दृष्टि विदेशियोंकी भी है। कितने हो धार्मिक हिन्दू भी वेदोंकी ऐतिहासिक महत्ता स्वीकार करते हैं। यह ठीक ही है; क्योंकि वैदिक साहित्यके कितने ही ग्रन्थ और संस्कृत-साहित्यके दर्जनों ग्रन्थ भी इतिहासको एक विद्या ही मानते हैं। शतपथ-ब्राह्मण (१४।५।४।१०) और अथर्ववेद इतिहासको एक कला मानते हैं। मनुस्मृति (२।७२) में भी इतिहासकी महिमा है। छन्दोग्योपनिषद् और कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें इतिहासको पञ्चम वेद माना गया है। महाभारत (१।१।८३) में इतिहासको मोहान्धकार दूर करनेवाला बताया गया है। वैदिक संहिताओंमें विविध ऋषियों और राजाओंके वंशोंका विवरण है। शतपथमें मिथिला, विदेह, दुष्यन्त, भरत, जनमेजय, उग्रसेन आदिका वर्णन है। ताण्ड्य-ब्राह्मणमें भी विदेह आदिकी कथाएँ हैं। तैत्तिरीयमें कालकञ्ज असुर और वाराहावतारकी बातें हैं। ऐतरेय ब्राह्मण, तैत्तिरीय और शाङ्खायन आरण्यकोंमें शुनःशेप, अहिल्या, खाण्डव, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, काशी, पाञ्चाल आदिकी स्पष्ट कथाएँ हैं। ऋग्वेदमें उर्वशी-पुरुरवा, यम-यमी आदिकी कथाएँ हैं। ऋग्वेदका "दाशराज्ञ-

युद्ध" सूर्य-चन्द्र वंशियोंका प्रसिद्ध युद्ध है। इस प्रकार वेदों और वैदिक साहित्यमें अति प्राचीन ऐतिहासिकता और ऐतिहासिक महत्त्व रहनेके कारण, ऐतिहासिकोंकी दृष्टिमें, वेद-विद्याका अध्ययन अनिवार्य होना चाहिये ।

परन्तु इन सब कारणोंसे बढ़कर हिन्दुओंके लिये जबर्दस्त कारण है—"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" वाली धारणा। हिन्दुओंका विश्वास है कि, हिन्दूधर्म (और हिन्दू संस्कृति तथा सभ्यताकी भी), अथसे इतितक, सारी बातें वेदोंमें हैं। बहुत तो यह भी मानते हैं कि, मनुष्यजातिकी समस्त उच्चतम सम्पत्ति वेदोंमें है और जो वेदोंमें नहीं, वह कहीं भी नहीं । सारांश यह कि, जैसे ईसाई और मुसलमान बाइबिल और कुरानको अपने-अपने धर्मोंका मूल ग्रन्थ कहते हैं, वैसे ही हिन्दू भी मानते हैं—"वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ।"

हमारे निवेदनका तात्पर्य यह है कि, किसी भी दृष्टिसे देखिये, हिन्दुओंके लिये वेदाध्ययन अत्यावश्यक और अनिवार्य है । परन्तु हिन्दीमें वेदोंका संक्षिप्त और सरल अनुवाद न रहनेके कारण अधिकांश हिन्दू वेदाध्ययनसे वञ्चित रह जाते हैं । इसी भयंकर अभावकी पूर्त्तिके लिये समय, श्रम और शक्तिका यथेष्ट व्यय कर हमने चारो वैदिक संहिताओंका अनुवाद करना निश्चित किया है। सर्व-प्रथम प्रथम वेद (ऋग्वेद) का अनुवाद किया जा रहा है। इस चतुर्थ अष्टक या भागके साथ ऋग्वेदका आधा अनुवाद समाप्त होता है—आधा अवशिष्ट हैं। अब आगेसे ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि, प्रत्येक मास पन्द्रह फार्मोंमें नियमित वेदानुवाद निकाला जाय और लागत भर १) मासिक मूल्य रखा जाय। इसी क्रमसे चारो वेद निकाले जायँगे। पाठकोंसे निवेदन हैं कि, वे भी दो-दो, एक-एक स्थायी ग्राहक बनाकर इस विशाल यज्ञमें हमारा हाथ बँटानेका कष्ट करें।

होलिकोत्सव, १९९१
कृष्णगढ़, सुलतानगंज

रामगोविन्द त्रिवेदी,
गौरीनाथ झा,
साहित्याचार्य "भ्रम"

चतुर्थ अष्टकके मन्त्रोंमें पौराणिक कथाओंका अङ्कुर

गौ, अग्नि और सूर्यका अग्निसे उत्पन्न होना	५।'४४
अग्निद्वारा बव्रि ऋषिकी दुर्दशाका अपनोदन	५।१९।१
अरुणका महादान	५।२७।२
कुत्सके साथ एक रथपर आरूढ़ इन्द्र द्वारा शुष्णासुरका बध	५।२९।३
इन्द्रके द्वारा शम्बरासुरका बध	५।२९।६
गौओंकी रक्षाके लिये इन्द्रका असुरोंसे युद्ध	५।३०।४
मरुतोंके प्रभावसे द्यावापृथिवीका चक्रकी तरह घूमना	५।३०।८
नमुचिकी स्त्री-सेना	५।३०।९
एतशके संग्राममें सूर्यके रथका चक्रापहरण	५।३१।११
वृत्रके शरीरसे वलवान् असुरका जन्म	५।३२।३
यष्टा द्वारा पिता, माता और भ्राताका बध	५।३४।४
श्रुतरथ राजाका गोधनु-दान	५।३६।६
अत्रिकी ऋचाओं द्वारा सूर्यका प्रकाशित होना	५।४०।४
अवत्सारके यज्ञमें सुतम्भरऋषिने फलोंको टिकाऊ किया	५।४४।१३
सप्ताश्व सूर्य	५।४५।९
सुसज्जित मरुद्गण	५।५४।११
शशीयसी और श्यावाश्व	५।६१।५
मित्र और वरुणका अर्चनानाके प्रति प्रसन्न होना	५।६४।७
मित्रावरुणका रातहव्यके मार्ग की रक्षा करना	५।६६।३
मित्रावरुणकी आज्ञासे गौओंका दुग्धवती होना	५।६९।२
अश्विनीकुमारों द्वारा सूर्यकी मूर्तिका प्रदीप्त होना	५ ७३।२
जराजीर्ण च्यवनका तरुण होना	५।७४।५
सप्तध्रिके पिताका तुषाग्नि कुण्डसे मुक्तिलाभ	५।७८।४
सप्तवध्रिका बाक्समें बन्द होना	५।७८।५
इन्द्र और अग्नि द्वारा गौओंका उद्धार	५।८६।३
एत्रया ऋषिकी स्तुति	५।८७।१
अग्निका दौत्य-कार्य	६ १५।९
अथर्वा ऋषि द्वारा अग्नि-मन्थन	६।१५।१७
दुष्यन्त-तनय भरत	६।१६।४
दिवोदास और भरद्वाजको धनप्रदान	६ १६।५
त्रिपुरासुरके तीनों पुरोंका भस्म होना	६।१६।३९
त्वष्टा द्वारा इन्द्रका वज्र-निर्माण	६।१७।१०
चुमुर, धुनि, पिप्रु, शम्बर और शुष्णका विनाश	६।१८।८
राजा क्षत्रश्रीका शत्रु-विनाश	६।२६।८
हरियूपीयाके तीरपर रहनेवाले वरशिखका बध	६।२७।५
अङ्गिराओंके साथ पणियोंका संहार	६।३३।२
इन्द्रका कुवित्सको गोशालामें गमन	६।४५।२४
प्रस्तोकका दान और शम्बरका समर	६।४७।२२

किस मन्त्रकी टिप्पनीमें क्या है ?

अग्निके सम्बन्धमें असुर शब्द	५ १२।१
स्त्रियोंका वेदाधिकार	५।२८
वृत्रके शरीरसे शुष्णासुरका जन्म	५।३२।३
गङ्गा आदि सप्त नदियाँ	५।४३।१
पतिके साथ स्त्रियोंका अग्न्यधिकार	५।४३।१५
उनचास मरुतोंका जन्म	५।५२।१७
सूर्यादि देवोंके अश्वोंका नाम	५।५६ ६
मांहलुषा	५।५६ ९
श्यावाश्वका ऋषित्व	५।६१
विशाल गृहसे स्वर्गका संकेत	५ ६५।४

मित्रावरुणका राज्य	५।६६।६
मधु विद्या	५।७५।१
सप्तबन्धु ऋषिको बाक्समें बन्द करना	५।७८।५
अश्लील उपमा	५।७८।५
गर्भजात शिशुके लिये प्रार्थना	५।७८।७
सुखप्रसवकी कामना	५।७८।६
प्रजा, पशु और गृह महाकल्याणकर वस्तुएँ हैं	५।८२।५
अतिवृष्टिको विमुक्त करनेवाली ऋचा	५।८३।१०
श्रीसूक्त (परिशिष्ट)	५।८७
सूर्यका अग्निमें प्रवेश	६।२।२
लोहेके अर्थमें अयस् शब्द	६।३।५
बलपुत्र अग्नि	६।५।१
गङ्गा आदि सप्त नदियाँ	६।७।६
आध्यात्मिक अर्थ	६।६।३
दीर्घतमाकी माता ममता	६।१०।२
हेमन्त ऋतुसे संवत्सरारम्भ	६।१२।७
अग्निसे सुवर्णकी उत्पत्ति	६।१३।१
अग्निका द्युलोक और पृथिवीमें संचरण	६।१५।६
पद्मपत्रके ऊपर संसारकी सृष्टि	६।१६।१३
रुद्राग्निमें अभेद	६।१६।३६
सूर्यके दर्शनका अलाभ	६।१७।३
वेतसुके साथ तुग्रासुरका मारा जाना	६।२६।४
सोमरसमें गव्यका मिलाया जाना	६।२८।५
इन्द्र द्वारा सूर्यके रथचक्रका अपहरण	६।३१।३
यज्ञकर्मके विरोधी बल आदि असुर	६।३३।३
इन्द्रका धन-दान	६।३४।३
गङ्गा और वृबु	६।४५।३१
गो-रहित अनार्य-देशोंमें आर्योंका गमन	६।४७।२०

चतुर्थ अष्टककी जानने योग्य बातें

पञ्चजन इत्यादि	६ ६ ६ ६	११ ४६ ५१ ६१	१ १ २ ३
मनुष्यकी परमायु	५ ६ ६ ६	५४ ४ १० ४८	३ १ २ १
पतिके साथ पत्नी यज्ञ कर सकती है	५	४३	१
ऋग्वेदकी ऋषि, ऋत्विक् और मन्त्र उच्चारण करनेवाली स्त्रियाँ	५	२८	१
राजकुमारियोंका ऋषियोंके साथ विवाह	५	६१	१
विवाह-कालमें वरका वेष	५	६०	१
कण्ठमें पहननेका निष्क	५	१६	१
धातुओंका गलाना	६	२	१
कर्मकारोंकी भाथी	५	६	२
मुद्राका प्रचलन	५ ५	२७ ३३	१ २
लौह-कलस	५	३०	२
धान्य-बीज और धान्य	५ ६ ६	५३ १३ २६	३ १ १
तानी और भरनी	६	६	१
तीन धातुओंका घर	६	४६	२
गोधन	६	२८	१
दधि, सुरा आदि रखनेका चर्म-भाण्ड,	६	४८	४
वर्या, वाशी (खड्ग), धनुष्, इषु निषंग, हिरण्मय कवच वर्म, लौह अस्त्रादि	५ ५ ५ ६ ६ ६ ६	५२ ५५ ५७ २७ ४६ २ ४७	१ १ २ ३ ३ २ ४

अञ्जि (आभरण), स्त्रक् (माला), रुक्म (छातीपर धारण करनेका एक स्वर्णाभरण), खादि (बाला) एवम् मस्तकका एक आभूषण (शिप्र)	५	५३	१
	५	५४ ११	२
	५	५८	१
महिष-मांस-रन्धन और भक्षण	५	२६	१
	६	१७	१
गौओं और वृषोंका आहूति-रूपमें प्रदान करना एवम् उनका भक्षण	६	१६	३
	६	२८	१
	६	३८	१
आर्य्य-नार्य्य अथवा दस्यु	५	३४१ और	२
	५	७०	१
	६	१८	१
	६	२२	२
	६	२५	१
	६	४७	६
नासा और भाषासे रहित अनार्य	५	२९	२
	५	४५	१

युद्धके घोड़े	६	४६	४
युद्ध रथका गोचर्म-आवरण	६	४७	८
युद्ध-दुन्दुभि	६	४७	९
नदी-कूल और उर्वरा भूमिके लिये युद्ध	६	२५	२
मरुभूमि	६	१२	१
यमुना और गङ्गा नदी	५	५२	५
	६	४५	१
रसा, अनितभा, कुभा, सिन्धु और सरयू नदियाँ	५	५३	२
गोमती नदी	५	६१	३
हरियूपीया और यव्यावती नदी	६	२७	२
सरस्वती नदीका तट	६	६१	४
सप्त नदियाँ	६	७	१
	६	६१	२
दक्षिणायनके साथ वर्षारम्भ	६	३२	१

धर्म और देवताओंके सम्बन्धमें

ऐश्वरिक शक्तिकी एकता, एक ईश्वरका अनुभव	५	८५	१
स्वर्ग-प्राप्तिकी कथा	५	१८	२
	५	६५	१
	५	६६	२
	६	१	२
	६	४७	३
	६	५१	३
इन्द्रका श्रद्धाविहीन लोक और इन्द्रके अस्तित्वमें सन्देह	५	३	१
	५	३४	३
	६	१८	२
इन्द्रने सूर्यके रथ-चक्रका हरण किया	५	३१	१
उनचास मरुत्	५	५२	४
पूषा	६	५४	२
दिति और अदिति	५	६२	८
ऋभु और ऋभुगण	६	४५	२
पथ्या और रेवती देवी	५	५१	१

उर्वशी	५	४१	२
सूर्यग्रहण	५	४१	२
केवल एक ही बार			
स्वर्ग और पृथ्वीकी सृष्टि	६	४८	५
अथर्वा और उनके पुत्र दधीचिका किया हुआ अग्नि-पूजा-प्रचार	६	१६	२
ऋषियों और सर्व साधारण मनुष्योंकी सोम-प्रियता	५	४४	१
ऋषियोंकी परस्पर प्रतिद्वन्द्विता और शत्रुता	६	५२	१
ऋषिगण संसारी और युद्ध-कालमें योद्धा थे	५	२३	१
	६	२०	१
ऋषियों द्वारा वंशक्रमानुसार अभ्यास और उच्चारण द्वारा मन्त्रोंकी रक्षा	५	१८	१
की इन्द्रने वृषके पुत्रका बध किया	६	६'	१
"असुर"	५	१२	१
"असूर्य्य"	५	६६	१

वैदिक-पुस्तकमालाकी नियमावली

(१) इस "माला"में हिन्दी-अनुवाद-सहित चारो वेद और विशेषतः वैदिक-ग्रन्थ-पुष्प ही गूँथे जायँगे।

(२) ॥) भेजकर "माला"के स्थायी ग्राहक बननेवालोंको किसी भी पुस्तकपर डाक खर्च नहीं देना पड़ेगा।

(३) स्थायी ग्राहकोंको "माला"में प्रकाशित सभी पुस्तकोंको खरीदना होगा।

(४) "माला"में प्रकाशित पुस्तकें, सूचना देकर, वी० पी० से भेजी जायँगी।

संचालक, "वैदिक-पुस्तकमाला,"
सुलतानगंज (ई० आई० आर०)

वैदिकपुस्तकमाला—चतुर्थ पुष्प

ओं तत्सत्

ऋग्वेद-संहिता

(हिन्दी टीका और टिप्पनियोंसे युक्त)

४ अष्टक । ५ मण्डल । १ अध्याय । १ अनुवाक ।

६ सूक्त

अग्नि देवता । अत्रिके अपत्य गय ऋषि । पङ्क्ति और अनुष्टुप् छन्द ।

त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्तास ईलते ।
मन्ये त्वा जातवेदसं स हव्या वद्यानुषक् ॥१॥

---

१ हे अग्नि, तुम दीप्यमान देव हो। होमसाधक द्रव्यसे युक्त होकर मर्त्य लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम चराचर भूतजातको जानते हो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हवन-साधन हव्यका, निरन्तर, वहन करते हो ।

अग्निर्होता दास्वतः क्षयस्य वृक्तबर्हिषः ।
सं यज्ञासश्चरन्ति यं सं वाजासः श्रवस्यवः ॥२॥
उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणी ।
धर्तारं मानुषीणां विशामग्निं स्वध्वरम् ॥३॥
उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम् ।
पुरू यो दग्धासि वनाग्ने पशुर्न यवसे ॥४॥
अध स्म यस्यार्चयः सम्यक् संयन्ति धूमिनः ।
यदीमह त्रितो दिव्युपध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरी यथा ॥५॥
तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः ।
द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ॥६॥

२ निखल यज्ञ जिन अग्निके साथ गमन करते हैं, यजमानकी प्रभूत कीर्तिके सम्पादक हव्य जिन अग्निको प्राप्त करते हैं, वह अग्नि हव्यदाता और कुशच्छेदक यजमानके यज्ञके लिये देवोंके आह्वाता होते हैं।

३ आहारादिके पाक द्वारा मनुष्योंके पोषक और यज्ञ-शोभाकारी अग्निको अरणिद्वय नव शिशुकी तरह उत्पन्न करते हैं।

४ हे अग्नि, कुटिलगति सर्प या वक्रगति अश्वके शिशुकी तरह तुम कष्टपूर्वक धारण करनेके योग्य हो। तृणमध्यमें परित्यक्त पशु जिस तरहसे तृण भक्षण करता है, उसी तरहसे तुम समग्र वनके दाहक होते हो।

५ धूमवान् अग्निकी शिखाएँ शोभन रूपसे सर्वत्र व्याप्त होती हैं। तीनों स्थानोंमें व्याप्त अग्नि अपनी ज्वालाको स्वयमेव अन्तरिक्षमें उपवर्द्धित करते हैं, जैसे भस्त्रादिके द्वारा कर्मकार अग्निको संवर्द्धित करते हैं। अग्नि कर्मकार द्वारा सन्धुक्षित अग्निकी तरह अपनेको तीक्ष्ण करते हैं।

६ हे अग्नि, तुम सबके मित्र-स्वरूप हो। तुम्हारी रक्षा द्वारा और तुम्हारा स्तव करके हम शत्रुभूत मनुष्योंके पापसाधन कर्म्मोंसे उत्तीर्ण हों। तुम्हारी रक्षा और तुम्हारे स्तोत्रोंके द्वारा हम वाह्याभ्यन्तर शत्रुओंसे उत्तीर्ण हों।

तं नो अग्ने अभी नरो रयिं सहस्व आभर ।
स क्षेपयत् स पोषयद्भुवद्वाजस्य सातय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥७॥

* * *

१० सूक्त

अग्नि देवता । गय ऋषि । ४-७ पङ्क्ति छन्द ।

अग्न ओजिष्ठमाभर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
प्र नो राया परीणसा रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥१॥
त्वं नो अग्ने अद्भुत क्रत्वा दक्षस्य मंहना ।
त्वे असुर्यमारुहत् क्राणा मित्रो न यज्ञियः ॥२॥

---

७ हे अग्नि, तुम बलवान् और हव्यवाहक हो । तुम हम लोगोंके निकट प्रसिद्ध धन आहरण करो । हम लोगोंके शत्रुओंको पराभूत करके हम लोगोंका पोषण करो । अन्न प्रदान करो और युद्धमें हम लोगोंकी समृद्धिका विधान करो ।

* * *

१ हे अग्नि, तुम हम लोगोंके लिये अत्युत्कृष्ट (कटक-मुकुटादिरूप) धन आहरण करो । तुम अप्रतिहत-गति हो । तुम हम लोगोंको सर्वत्र व्याप्त धनसे युक्त करो और अन्न-लाभके लिये हम लोगोंके पथका आविष्कार करो ।

२ हे अग्नि, तुम सबके मध्यमें आश्चर्यभूत हो । तुम हम लोगोंके यज्ञादि व्यापारसे प्रसन्न होकरके हम लोगोंके लिये बल या धनका नाम दान करो । तुम्हारा बल असुरोंको विनष्ट करनेवाला है । तुम सूर्यकी तरह यज्ञकार्यका सम्पादन करो ।

त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय ।
ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यानशुः ॥३॥
ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
शुष्मेभिः शुष्मिणो नरो दिवश्चिद्येषां बृहत् सुकीर्तिर्बोधति त्मना ॥४॥
तव त्ये अग्ने अर्चयो भ्राजन्तो यन्ति धृष्णुया ।
परिज्मानो न विद्युतः स्वानो रथो न वाजयुः ॥५॥
नू नो अग्न ऊतये सबाधसश्च रातये ।
अस्माकासश्च सूरयो विश्वा आशास्तरीषणि ॥६॥
त्वं नो अग्ने अङ्गिरः स्तुतः स्तवान आ भर ।
होतर्विभ्वासहं रयिं स्तोतृभ्यः स्तवसे च न उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥७॥

* * *

---

३ हे अग्नि, प्रसिद्ध स्तवकारी मनुष्यगण तुम्हारी स्तुति करके उत्कृष्ट (गौ आदि) धन लाभ करते हैं। हम भी तुम्हारी स्तुति करते हैं। हम लोगोंके लिये धन और पुष्टिका वर्द्धन करो।

४ हे आनन्ददायक अग्नि, जो लोग सुन्दर रूपसे तुम्हारी स्तुति करते हैं, वे अश्वधन लाभ करते हैं और बलशाली होकर अपने बलसे शत्रुओंको विनष्ट करते हैं एवम् स्वर्गसे भी बड़ी सुकीर्ति लाभ करते हैं। गय ऋषिने तुम्हें स्वयम् जागरित किया है।

५ हे अग्नि, तुम्हारी अत्यन्त प्रगल्भ और दीप्तिमती रश्मियाँ सर्वत्र व्याप्त विद्युत्की तरह, शब्दायमान रथकी तरह और अन्नार्थियोंकी तरह सर्वत्र गमन करती हैं। (इससे आहुति-विषयक अभिलाष उक्त हुआ है।)

६ हे अग्नि, तुम शीघ्र ही हम लोगोंकी रक्षा करो और धन दान करके दारिद्र्य दुःखका अपनोदन करो। हमारे पुत्र और मित्र तुम्हारी स्तुति करके पूर्ण-मनोरथ हों।

७ हे अङ्गिरा, पुरातन महर्षियोंने तुम्हारी स्तुति की है और इस समयके महर्षि भी तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं। धन महान् व्यक्तियोंको भी अभिभूत करनेवाला है, वह धन हमारे लिये लाओ। हे देवोंके आह्वानकारी, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हमें स्तुतिसामर्थ्य प्रदान करो एवम् युद्धमें हमारी समृद्धिका विधान करो।

११ सूक्त

अग्नि देवता । अत्रिके अपत्य सुतम्भर ऋषि । जगती छन्द ।

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥१॥
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे ।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥२॥
असम्मृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर्मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः ।
घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुतधूमस्ते केतुरभवद्दिविश्रितः ॥३॥
अग्निर्नो यज्ञमुपवेतु साधुयाग्निं नरो विभरन्ते गृहेगृहे ।
अग्निर्दूतो अभवद्धव्यवाहनोग्निं वृणाना वृणते कविक्रतुम् ॥४॥

१ लोगोंके रक्षक, सदा प्रवुद्ध और सबके द्वारा श्लाघनीय बलवाले अग्नि लोगोंके नूतन कल्याणके लिये उत्पन्न हुए हैं। घृत द्वारा प्रज्वलित होनेपर तेजोयुक्त और शुद्ध अग्नि ऋत्विकोंके लिये द्युतिमान् होकर प्रकाशित होते हैं।

२ अग्नि यज्ञके केतुस्वरूप हैं अर्थात् प्रज्ञापक हैं। अग्नि यजमानों द्वारा पुरस्कृत होते हैं—पुरोभागमें स्थापित होते हैं। अग्नि इन्द्रादि देवोंके समकक्ष हैं। ऋत्विकोंने तीन स्थानोंमें अग्निको समिद्ध किया था। शोभनकर्मा और देवोंके आह्वानकारी अग्नि उस कुशयुक्त स्थानपर यज्ञके लिये प्रतिष्ठित हुए थे।

३ हे अग्नि, तुम जननी स्वरूप अरणिद्वयसे, निर्विघ्न होकर, जन्म ग्रहण करते हो। तुम पवित्र, कवि और मेधावी हो। तुम यजमानोंसे उदित होते हो। पूर्व महर्षियोंने घृत द्वारा तुम्हें वर्द्धित किया था। हे हव्यवाहक, तुम्हारा अन्तरिक्षव्यापी धूम केतुस्वरूप है—तुम्हारा प्रज्ञापक या अनुमापक है।

४ सब पुरुषार्थोंके साधक अग्नि हमारे यज्ञमें अगामन करें। मनुष्य प्रतिगृहमें अग्नि-संस्थापन करते हैं। हव्यवाहक अग्नि देवोंके दूत-स्वरूप हैं। यज्ञसम्पादक कहकर लोक अग्निका सम्भजन करते हैं।

तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं वचस्तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे ।
त्वां गिरः सिन्धुमिवावनीर्महीरापृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च ॥५॥
त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविंदञ्छिश्रियाणं वने वने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥६॥

१२ सूक्त

अग्नि देवता । सुतम्भर ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्राग्नये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म ।
घृतं न यज्ञ आस्ये सुपूतं गिरं भरे वृषभाय प्रतीचीम् ॥१॥

---

५ हे अग्नि, तुम्हारे उद्देशसे यह सुमधुर वाक्य प्रयुक्त होता है । यह स्तुति तुम्हारे हृदयमें सुख उत्पन्न करे। महानदियाँ जिस तरहसे समुद्रको पूर्ण और सबल करती हैं, उसी तरहसे स्तुतियाँ तुम्हें पूर्ण और सबल करती हैं ।

६ हे अग्नि, तुम गुहामध्यमें निगूढ़ होकर और वन (वृक्ष) का आश्रय ग्रहण करके अवस्थान करते हो । अङ्गिराओंने तुम्हें प्राप्त (आविष्कृत) किया है। हे अङ्गिरा, तुम विशेष बलके साथ मथित होनेपर उत्पन्न होते हो; इसी लिये सब तुम्हें बलपुत्र कहते हैं ।

१ अग्नि सामर्थ्यातिशयसे महान्, याग-योग्य और जल-वर्षणकारी, असुर (बलवान्) * और अभीष्टवर्षी हैं । यज्ञमें, अग्निके मुखमें हुत परम पवित्र घृतकी तरह हमारी स्तुतियाँ अग्निके लिये प्रीतिकर हों।

---

* चतुर्थ अष्टकमें असुर शब्द १२ बार व्यवहृत हुआ है—

५ मण्डल,	१२ सूक्त,	१ ऋक्	असुर शब्द	अग्निके	सम्बन्धमें
”	१५ ”	१ ”	”	अग्नि	”
”	२७ ”	१ ”	”	अरुण अग्नि वाजपुत्र	”

ऋतं चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्ध्यृतस्य धारा अनु तृन्धिपूर्वीः ।
नाहं यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं सपाम्यरुषस्य वृष्णः ॥ २ ॥
कया नो अग्न ऋतयन्नृतेन भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः ।
वेदा मे देव ऋतुपा ऋतूनां नाहं पतिं सनितुरस्य रायः ॥ ३ ॥
के ते अग्ने रिपवे बन्धनासः के पायवः सनिषन्त द्युमन्तः ।
के धासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वचसः सन्ति गोपाः ॥ ४॥

---

२ हे अग्नि, हम यह स्तुति करते हैं, तुम इसे जानो एवम् इसका अनुमोदन करो तथा प्रचुर वारि-वर्षणके लिये अनुकूल होओ। हम बलपूर्वक यज्ञमें विघ्नोत्पादक कार्य नहीं करते हैं और न अवैध वैदिक कार्यमें प्रवृत्त होते हैं। तुम दीप्तिमान् हो, कामनाओंके पूरक हो। हम तुम्हारी ही स्तुति करते हैं।

३ हे जलवर्षणकारी अग्नि, तुम स्तुति-योग्य हो। हम लोगोंके किस सत्य कार्य द्वारा तुम हम लोगोंकी स्तुतिके ज्ञाता होओगे? ऋतुओं (वसन्त आदि) के रक्षाकर्त्ता और दीप्तमान् अग्नि हमें जानें। हम अग्निके सम्भजनकर्ता हैं। हमारे पशु आदि धनके स्वामी अग्निको हम नहीं जानते हैं।

४ हे अग्नि, कौन शत्रुओंका बन्धनकारी है? कौन लोकरक्षक है? कौन दीप्तिमान् और दानशील है? कौन असत्यधारकोंका आश्रयदाता है? अथवा कौन अभिशापादि-रूप दुष्ट वचनका उत्साहदाता है? अर्थात् अग्नि-सम्बन्धी कोई भी पुरुष इस तरहका नहीं है।

,,	४१	,,	३	,,	,,	रुद्र, सूर्य या वायु	,,
,,	४२	,,	१	,,	,,	वायु	,,
,,	४२	,,	११	,,	,,	रुद्र	,,
,,	४९	,,	२	,,	,,	सविता	,,
,,	५१	,,	११	,,	,,	पूषा	,,
,,	६३		३	,,	,,	मित्र और वरुण	,,
,,	६३	,,	७	,,	,,	मित्र और वरुण	,,
,,	८३	,,	६	,,	,,	पर्जन्य	,,
६	१२	,,	४	,,	(असुरघ्न शब्द)	इन्द्र	,,

पुराणोंमें असुर शब्द जिस अर्थका द्योतक है, उसी अर्थमें षष्ठ मण्डलके बारहवें सूक्तका 'असुरघ्न' शब्द व्यवहृत हुआ है। नहीं तो इसके पहले असुर शब्द बलवाचक अर्थके लिये ही व्यवहृत हुआ है। यहाँ भी असुरघ्नका अर्थ "बलियोंके विनाशक" हो सकता है।

सखायस्ते विषुणा अग्न एते शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन् ।
अधूर्षत स्वयमेते वचोभिर्ऋजूयते वृजिनानि ब्रुवन्तः ॥५॥
यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः ।
तस्य क्षयः पृथुरा साधुरेतु प्रसर्स्राणस्य नहुषस्य शेषः ॥६॥

१३ सूक्त

अग्नि देवता । सुतम्भर ऋषि । गायत्री छन्द ।

अर्चन्तस्त्वा हवामहेर्चन्तः समिधीमहि । अग्ने अर्चन्त ऊतये ॥१॥
अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ॥२॥
अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥३॥

---

५ हे अग्नि, सर्वत्र व्याप्त तुम्हारे ये बन्धुगण पूर्वमें तुम्हारी उपासनाके त्यागसे असुखी हुए थे, पश्चात् तुम्हारी आराधना करके फिर सौभाग्यशाली हुए। हम सरल आचरण करते हैं; फिर भी जो हमें, असाधुभावसे, कुटिलाचारी कहता है, वह हमारा शत्रु स्वयम् अपना अनिष्ट उत्पादन करता है।

६ हे अग्नि, तुम दीप्तिमान् और अभीष्टपूरक हो। जो हृदयसे तुम्हारी स्तुति करता है और तुम्हारे लिये यज्ञ-रक्षा करता है, उस यजमानका गृह विस्तीर्ण होता है। जो भली भाँतिसे तुम्हारी परिचर्या करता है, उस मनुष्यको कामनाओंको सिद्ध करनेवाला पुत्र होता है।

———

१ हे अग्नि, हम तुम्हारी पूजा करके आह्वान करते हैं एवम् स्तुति करके हम लोग अपनी रक्षाके लिये तुम्हें प्रज्वलित करते हैं ।

२ आज हम लोग धनार्थी होकर दीप्तिमान् और आकाशस्पर्शी अग्निकी पुरुषार्थ-साधक स्तुतिका पाठ करते है।

३ जो अग्नि मनुष्योंके मध्यमें अवस्थान करके देवोंका आह्वान करते हैं, वह अग्नि हम लोगोंकी स्तुतियोंको ग्रहण कर एवम् यज्ञीय द्रव्यजातको देवोंके समक्ष वहन करें ।

त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥४॥
त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्द्धन्ति सुष्टुतम् । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥५॥
अग्ने नेमिरराँ इव देवाँस्त्वं परिभूरसि । आ राधश्चित्रमृञ्जसे ॥६॥

१४ सूक्त

अग्नि देवता । सुतम्भर ऋषि । गायत्री छन्द ।

अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥१॥
तमध्वरेष्वीड़ते देवं मर्ता अमर्त्यम् । यजिष्ठं मानुषे जने ॥२॥
तं हि शश्वन्त ईड़ते स्रुचा देवं घृतश्चुता । अग्निं हव्याय वोह्लवे ॥३॥
अग्निर्जातो अरोचत घ्नन्दस्यून् ज्योतिषा तमः । अविन्दद्गा अपः स्वः ॥४॥

---

४ हे अग्नि, तुम सर्वदा प्रीत हो । तुम होता और लोगों द्वारा वरणीय होकर स्थूल (पृथु) होते हो । तुम्हें प्राप्त कर यजमान यज्ञ सम्पादन करते हैं ।

५ हे अग्नि, तुम अन्नदाता और स्तुतियोग्य हो । मेधावी स्तोता समुचित स्तुति द्वारा तुम्हें संवर्द्धित करते हैं । तुम हम लोगोंको उत्कृष्ट बल प्रदान करो ।

६ हे अग्नि, नेमि जिस तरहसे चक्रके अरों (कीलों) को वेष्टित करती है, उसी तरहसे तुम देवोंको व्याप्त करते हो । तुम हम लोंगोको नाना प्रकारका धन प्रदान करो ।

* * *

१ हे यजमान, तुम अमर अग्निको स्तोत्र द्वारा प्रबोधित करो । अग्निके प्रदीप्त होनेपर वे देवों समक्ष हम लोगोंके लिये हव्य वहन करेंगे ।

२ मनुष्यगण दीप्तिमान्, अमर और मनुष्येंके मध्यमें परमाराध्य अग्निकी, यज्ञस्थलमें, स्तुति करते हैं ।

३ यज्ञस्थलमें बहुतेरे स्तोता घृतसिक्त स्रुक्के सहित, देवोंके निकट हव्य वहनार्थ, दीप्तिमान् अग्निकी स्तुति करते हैं ।

४ अरणि-मन्थनसे उत्पन्न अग्नि अपने तेजःप्रभावसे अन्धकारको और यज्ञविघातक दस्युओंको विनष्ट कर प्रदीप्त होते हैं । गौ, अग्नि और सूर्य अग्निसे ही उत्पन्न हुए हैं ।

अग्निमीलेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत । वेतु मे शृणवद्धवम् ॥५॥
अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम् । स्वाधीभिर्वचस्युभिः ॥६॥

१५ सूक्त

अग्नि देवता । अङ्गिराके अपत्य धरुण ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरम्भरे यशसे पूर्व्याय ।
घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः ॥ १ ॥
ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।
दिवो धर्मन्धरुणे सेदुषो नॄ ञ्जातैरजातॉं अभि ये ननक्षुः ॥ २ ॥
अंहोयुवस्तन्वस्तन्वते वि वयो महद्दुष्टरं पूर्व्याय ।
स संवतो नवजातस्तुतुर्यात्सिंहं न क्रुद्धमभितः परिष्ठुः ॥

५ हे मनुष्यो, तुम उस ज्ञानी और आराध्य अग्निकी पूजा करो, जो ऊर्द्धर्व भागमें घृताहुति द्वारा प्रदीप्त होते हैं। अग्नि हमारे इस आह्वानको सुनें और जानें ।

६ ऋत्विग्गण घृत और स्तोम द्वारा स्तुत्यभिलाषी और ध्यानगम्य देवोंके साथ सर्वदर्शी अग्निको संवर्द्धित करते हैं ।

१ हविस्वरूप घृतसे अग्नि प्रसन्न होते हैं। वे बलवान्, सुखस्वरूप, धनके अधिपति, हविर्वाहक गृहदाता, विधाता, क्रान्तदर्शी, स्तुतियोग्य, यशस्वी और श्रेष्ठ हैं। ऐसे अग्निके लिये हम स्तुति प्रणयन करते हैं।

२ जो यजमान द्युलोकके धारक, यज्ञस्थलमें आसीन, नेता देवोंको ऋत्विकों द्वारा प्राप्त करते हैं, वे यजमान यज्ञधारक, सत्यस्वरूप अग्निको, यज्ञके लिये उत्तम स्थानमें अर्थात् उत्तम वेदीपर, स्तोत्र द्वारा, धारण करते हैं।

३ जो यजमान मुख्य अग्निके लिये राक्षसों द्वारा दुष्प्राप्य हविस्वरूप अन्न प्रदान करते हैं, वे यजमान निष्पापकलेवर होते हैं। नवजात अग्नि क्रुद्ध सिंहकी तरह संगत शत्रुओंको दूर करें। सर्वत्र वर्तमान शत्रु मुझे छोड़कर दूरमें अवस्थिति करें।

मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनंजनं धायसे चक्षसे च।
वयोवयो जरसे यद्दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि॥ ४॥
वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तमुरुं दोघं धरुणं देव रायः।
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः॥ ५॥

१६ सूक्त

अग्नि देवता। अत्रिके पुत्र पुरु ऋषि। पङ्क्ति और अनुष्टुप् छन्द।

बृहद्वयो हिं भानवेऽर्चा देवायाग्नये।
यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्त्तासो दधिरे पुरः॥ १॥
स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः।
वि हव्यमग्निरानुषग्भगो न वारमृण्वति॥ २॥

---

४ सर्वत्र प्रख्यात अग्नि जननीकी तरह निखिल जनको धारण करते हैं। धारण करनेके लिये और दर्शन देनेके लिये सब कोई उनकी प्रार्थना करते हैं। जब वे धार्यमाण होते हैं, तब वे सब अन्नको जीर्ण कर देते हैं। नानारूप होकर अग्नि सर्वभूतजातका परिगमन करते हैं।

५ हे द्योतमान अग्नि, पृथु कामनाओंके पूरक और धनधारक हविर्लक्षण अन्न तुम्हारे सम्पूर्ण बलकी रक्षा करे। तस्कर जिस तरहसे गुहामध्यमें छिपाकर अपहृत धनकी रक्षा करता है, उसी तरह तुम प्रचुर धन लाभके लिये सन्मार्गको प्रकाशित करो और अत्रि मुनिको प्रीत करो।

---

१ मनुष्यगण जिन सखिभूत अग्निकी, प्रकृष्ट स्तुतियों द्वारा, स्तुति करके पुरोभागमें स्थापित करते हैं, उन द्योतमान् अग्निको महान् हविर्लक्षण अन्न दिया जाता है।

२ जो अग्नि देवोंके लिये हव्य वहन करते हैं, जो बाहुबलकी द्युतिसे युक्त हैं, वे अग्नि यजमानोंके लिये देवोंका आह्वान करते हैं। वे सूर्यकी तरह मनुष्योंको विशेष रूपसे वरणीय धन प्रदान करते हैं।

अस्य स्तामे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः ।
विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः ॥३॥
अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना ।
तमिद्यह्वं न रोदसी परि श्रवो वभूवतुः ॥४॥
नू न एहि वार्यमग्ने गृणान आ भर ।
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचोतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५॥

१७ सूक्त

अग्नि देवता पुरु ऋषि । पङ्क्ति और अनुष्टुप् छन्द ।

आ यज्ञैर्देव मर्त्यः इत्था तव्यांसमूतये ।
अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुरीळीतावसे ॥१॥
अस्य हि स्वयशस्तरः आसा विधर्मन्मन्यसे ।
तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया ॥२॥

---

३ सब ऋत्विक् हव्य और स्तोत्र द्वारा जिन बहुशब्दविशिष्ट स्वामी अग्निमें बलका आधान, भली भाँतिसे, करते हैं; हम लोग उन्हीं प्रवृद्ध तेजवाले और धनवान् अग्निकी स्तुति करते हैं। हम लोग उनके साथ मित्रता करते हैं।

४ हे अग्नि, हम यजमानोंको तुम सबके द्वारा स्पृहणीय बल प्रदान करो। द्यावापृथिवीने सूर्यकी तरह श्रवणीय अग्निको परिगृहीत किया है।

५ हे अग्नि, हम यजमान तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम शीघ्र ही हमारे यज्ञमें आओ और हमारे लिये वरणीय धनका सम्पादन करो। हम यजमान स्तोता तुम्हारे लिये स्तुति करते हैं। हम लोगोंको तुम युद्धमें समृद्धियुक्त करो।

---

१ हे देव, ऋत्विग्गण अपने तेजसे प्रवृद्ध अग्निको, स्तोत्रों द्वारा तृप्त करनेके लिये, आहूत करते हैं। मनुष्य स्तोता यज्ञकालमें रक्षाके लिये अग्निकी स्तुति करते हैं।

२ हे धर्मविशिष्ट स्तोता, तुम्हारा यश श्रेष्ठ है। तुम प्रकृष्ट बुद्धि द्वारा उन्हीं अग्निकी, वचनसे स्तुति करते हो, जिन्हें दुःख नहीं है, जिनका तेज विचित्र है और जो स्तुति-योग्य हैं।

अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा ।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥३॥
अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ ।
अधा विश्वासु हव्योग्निर्विक्षु प्रशस्यते ॥४॥
नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः ।
ऊर्जो नपाद्भिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५॥

* * *

१८ सूक्त

अग्नि देवता । अत्रिके अपत्य द्वित ऋषि । अनुष्टुप् और पङ्क्ति छन्द ।

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशस्तवेतातिथिः ।
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥१॥
द्विताय मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त आनुषक् स्तोता चित्ते अमर्त्य ॥२॥

---

३ जो अग्नि जगद्रक्षणसमर्थ बलसे और स्तुतिसे युक्त हैं, जो आदित्यकी तरह द्योतमान हैं,
जिन अग्निकी प्रभासे जगद् व्याप्त है, जिन अग्निकी वृहती दीप्ति प्रकाशित होती है, उन्हीं अग्निकी प्रभासे
यह आदित्य प्रभावान् होते हैं प्राप्त करते हैं।

४ सुन्दर मतिवाले ऋत्विक् दर्शनीय अग्निका यज्ञ (पूजा) करके धन और रथ
यज्ञार्थ आहूत होनेवाले अग्नि उत्पन्न होते ही, सम्पूर्ण प्रजा द्वारा, स्तुत होते हैं । तुम्हारी

५ हे अग्नि, हम लोगोंको शोघ्र ही वही वरणीय धन दान करो, जिस धनको स्तोता लोग
स्तुति करके प्राप्त करते हैं । हे बलपुत्र, हमें अभिलषित अन्न प्रदान करो, हम लोगोंकी रक्षा करो । हम
मङ्गलकारक पशु आदिकी याचना तुमसे करते हैं। हे अग्नि, तुम संग्राममें हम लोगोंकी समृद्धिके
लिये, होओ ।

---

१ अग्नि बहुप्रिय हैं, यजमानोंके लिये धनदाता हैं और यजमानोंके गृहमें अभिगमन करते हैं ।
इस तरहके अग्नि प्रातःकालमें स्तुत होते हैं । अमरणशील अग्नि यजमानोंके मध्यमें स्थित निखिल हव्यकी
कामना करते हैं ।

२ हे अग्नि, अत्रिपुत्र द्वित ऋषि विशुद्ध हव्य वहन करते हैं, तुम उन्हें अपना बल प्रदान करो;
क्योंकि वे सब कालमें तुम्हारे लिये सोमरसका आनयन करते हैं और तुम्हारी स्तुति करते हैं ।

तं वो दीर्घायु शोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन्नीयते ॥३॥
चित्र वा येषु दीधितिरासन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ॥४॥
ये मे पञ्चाशतं ददुरश्वानां सधस्तुति ।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत् कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम् ॥५॥

१६ सूक्त

अग्नि देवता। अत्रिके अपत्य वव्रि ऋषि। गायत्री और अनुष्टुप् छन्द।

अभ्यवस्थाः प्रजायन्ते प्रवव्रेर्वव्रिश्चिकेत ।
उपस्थे मातुर्विचष्टे ॥१॥
जुहुरे विचितयन्तोनिमिषं नृम्णं पान्ति ।
आदृह्लां पुरं विविशुः ॥२॥

---

३ हे अग्नि, हे अश्वदाता, तुम दीर्घगमन-दीप्तिवाले हो। धनिकोंके लिये हम तुम्हारा आह्वान, स्त्रोत्र द्वारा, करते हैं, जिससे धनिकोंका रथ शत्रुओं द्वारा अहिंसित होकर युद्धमें गमन करे।

४ जिन ऋत्विकों द्वारा नानाविध यज्ञ-विषयक कार्य सम्पादन होता है, जो मुख (उच्चारण) द्वारा स्तोत्रोंकी रक्षा करते हैं, उन ऋत्विकों द्वारा, यजमानोंके स्वर्गप्रापक यज्ञमें, विस्तीर्ण कुशोंके ऊपर अन्न स्थापित होता है।

५ हे अमर अग्नि, तुम्हारी स्तुतिके अनन्तर जो धनदाता मुझे पचास अश्व प्रदान करते हैं, तुम उन धनिक मनुष्योंको दीप्तिशील परिचारकयुक्त महान् अन्न प्रदान करो।

१ जो अग्नि माता पृथिवीके समीप स्थित होकर पदार्थजातको देखते हैं, वे ही अग्नि वव्रि ऋषिकी अशोभन दशाको जानें और उनके हव्यको ग्रहण कर उसका अपनोदन करें।

२ तुम्हारे प्रभावको जानकर जो लोग, यज्ञके लिये, सदा तुम्हारा आह्वान करते हैं तथा जो लोग हवि और स्तोत्रके द्वारा तुम्हारे बलकी रक्षा करते हैं, वे शत्रुओं द्वारा अशक्य (दुर्गम्य) पुरीमें प्रवेश करते हैं।

आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टयः
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एनामध्वा न वाजयुः ॥१॥
प्रियं दुग्धं न काम्यमजामि जाम्योः सचा ।
घर्मो न वाजजठरोदब्धः शश्वतो दभः ॥४॥
क्रीड़न्नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः ।
ता अस्य सन्धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ॥५॥

२० सूक्त

अग्नि देवता । अत्रिके अपत्य प्रयस्वत् ऋषि । अनुष्टुप् और पङ्क्ति छन्द ।

यमग्ने वाजसातम त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।
तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥१॥

---

३ महान् स्तोत्र करनेवाले, अन्नाभिलाषी, सुवर्णालङ्कारको कण्ठमें धारण करनेवाले, जायमान (उत्पन्नशील) मनुष्य (ऋत्विगादि) स्तोत्र द्वारा, अन्तरिक्षवर्ती वैद्युत अग्निके दीप्तिमान् बलको वर्धित करते हैं ।

४ पयोमिश्रित हव्यकी तरह जिन अग्निके जठरमें अन्न है अर्थात् जो हव्यजठर हैं, जो स्वयम् शत्रुओं द्वारा अहिंसित होकर सदा शत्रुओंके हिंसक हैं, द्यावापृथिवीके सहायभूत वे ही अग्नि दुग्धकी तरह कमनीय और निर्दोष होकर हमारे स्तोत्रको सुनें ।

५ हे प्रदीप्त अग्नि, तुम अपने द्वारा किये गये भस्मसे वनमें क्रीड़ा करते हो । प्रेरक वायु द्वारा भली भाँतिसे ज्ञायमान होकर तुम हमारे अभिमुख होओ । तुम्हारी शत्रुनाशक ज्वालाएँ हम यजमानोंके निकट सुकोमल हों ।

* * *

१ हे अग्नि, हे अत्यन्त अन्नप्रद, हम लोगों द्वारा प्रदत्त जो हविस्वरूप अन्न तुम्हारा अभिमत है, हम लोगोंकी स्तुतियोंके साथ उसी हव्यधनको तुम देवोंके निकट ले जाओ ।

ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः ।
अप द्वेषो अपह्वरोन्यव्रतस्य सश्चिरे ॥२॥
होतारं त्वा वृणीमहेग्ने दक्षस्य साधनम् ।
यज्ञेषु पूर्व्यां गिरा प्रयस्वन्तो हवामहे ॥३॥
इत्था यथा त ऊतये सहसावन्दिवेदिवे ।
राय ऋताय सुक्रतो गोभिःष्याम सधमादो वीरैः स्याम सधमादः ॥४॥

२१ सूक्त

अग्नि देवता । अत्रिके अपत्य सस ऋषि । अनुष्टुप् और पङ्क्ति छन्द ।

मनुष्वत्त्वा निधीमहि मनुष्यत् समिधीमहि ।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान्देवयते यज ॥१॥
त्वं हि मानुषे जनेग्ने सुप्रीत इध्यसे ।
स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक् सुजात सर्पिरासुते ॥२॥

---

२ हे अग्नि, जो व्यक्ति पशुआदि धनसे समृद्ध होकर तुम्हें हव्य प्रदान नहीं करता है, वह अन्न या बलसे अत्यन्त हीन होता है । जो व्यक्ति वेद-भिन्न अन्य कर्म करता है, वह असुर तुम्हारा विरोध-भाजन होता है और तुम्हारे द्वारा हिंसित होता है ।

३ हे अग्नि, तुम देवोंके आह्वाता और बलके साधयिता हो । हम लोग प्रयस्वत् (अन्नवान) तुम्हारा वरण करते हैं । यज्ञमें हम श्रेष्ठ अग्निकी, स्तुतिरूप वचनसे, स्तवन करते है ।

४ हे बलवान् अग्नि, प्रतिदिन जिससे हम तुम्हारी रक्षा प्राप्त करें, वैसा करो । हे सुक्रतु, हम लोग जिससे धन लाभ कर सकें और यज्ञ कर सकें, वैसा करो । हम लोग जिससे गौओंको प्राप्त करें और वीर पुत्रोंको प्राप्त कर सुखी हों, वैसा करो ।

१ हे अग्नि, मनुकी तरह हम तुम्हें स्थापित और संदीप्त करते हैं । हे अङ्गारात्मक अग्नि, देवाभिलाषी मनुष्य यजमानोंके लिये तुम देवोंका यजन करो ।

२ हे अग्नि, स्तोत्रों द्वारा सुप्रीत होकर तुम मनुष्योंके लिये दीप्त होते हो । हे सुजात, घृतयुक्तान्न, हव्य-विशिष्ट पात्र तुम्हें निरन्तर प्राप्त करता है ।

त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।
सपर्य्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीडते ॥३॥
देवं वो देवयज्ययाग्निमीड़ीत मर्त्यः ।
समिद्धः शुक्र दीदिह्यृतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः॥४॥

२२ सूक्त

अग्नि देवता । अत्रिके अपत्य विश्वसामा ऋषि । अनुष्टुप् और पङ्क्ति छन्द ।

प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे ।
यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ॥१॥
न्यग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् ।
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ॥२॥
चिकित्विन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये ।
वरेण्यस्य तेवस इयानासो अमन्महि ॥३॥
अग्ने चिकिद्ध्यस्य न इदं वचः सहस्य ।
तं त्वा सुशिप्र दम्पते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ॥४॥

---

३ हे क्रान्तदर्शी अग्नि, प्रसन्न होकरके सब देवोंने तुम्हें दूत बनाया था; इसीलिये परिचर्या करनेवाले यजमान तुम्हारा (अग्नि देवका), यज्ञमें देवोंको बुलानेके लिये, यजन करते हैं।

४ हे दीप्तिशील अग्नि, मनुष्य लोग देवयज्ञके लिये तुम्हारी स्तुति करते हैं। हवि द्वारा प्रवृद्ध होकर तुम दीप्त होओ। तुम सत्यभूत सस ऋषिके स्वर्गसाधन यज्ञस्थलमें देवरूपसे ठहरो।

हे विश्वसामा ऋषि, तुम अत्रिकी तरह शोधक दीप्तिवाले उन अग्निकी अर्चना करो, जो यज्ञमें सब ऋत्विकों द्वारा स्तुत्य हैं, देवोंके आह्वाता हैं और जो अत्यन्त स्तवनीय हैं।

२ हे यजमानो, तुम सब जातवेदा, द्योतमान् और यज्ञकारक अग्निको धारण करो—संस्थापित करो, जिससे आज देवोंके प्रिय, यज्ञसाधन और हम लोगोंके द्वारा प्रदत्त हव्य अग्निको प्राप्त करे।

३ हे दीप्तिशील अग्नि, तुम्हारा हृदय ज्ञानसम्पन्न है। तुम्हारे निकट हम लोग रक्षाके लिये उपस्थित होते हैं। हम मनुष्य सम्भजनीय अग्निको तृप्त करनेके लिये स्तवन करते हैं।

४ हे बलपुत्र अग्नि, तुम हमारे इस परिचरण स्तवनको जानो। हे सुन्दर हनू-नासिकावाले, हे गृहपति, अत्रिके पुत्र स्तोत्रों द्वारा तुम्हें वर्द्धित करते हैं और वचनों द्वारा अलङ्कृत करते हैं।

अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् ।
अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ॥५॥
अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ॥६॥
यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥७॥
तव द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत् ।
उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः ॥८॥
एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।
स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ॥९॥

२६ सूक्त

अग्नि देवता । वसुयु ऋषि । गायत्री छन्द ।

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया ।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥१॥

---

५ हवि देनेवाले यजमानोंको अग्नि एक ऐसा पुत्र प्रदान करें, जो बहुविध अन्नोंसे युक्त, बहुत स्तोत्रवाला, उत्तम, शत्रुओं द्वारा अहिंसित और अपने कर्मसे पिता-पितामह आदिके यशको प्रख्यात करनेवाला हो ।

६ अग्नि हम लोगोंको उस तरहका पुत्र दें, जो सत्यका पालन करनेवाला हो और अपने परिजनोंके साथ, युद्धमें, शत्रुओंको पराभूत करनेवाला हो एवम् द्रुत वेगवाला और शत्रुओंको जीतनेवाला घोड़ा भी दें ।

७ जो श्रेष्ठतम स्तोत्र है, वह अग्निके लिये ही किया जाता है । हे तेजोधन अग्नि, हम लोगोंको बहुत धन प्रदान करो; क्योंकि तुम्हारे समीपसे ही महान् धन उत्पन्न हुए हैं और निखिल अन्न भी तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं ।

८ हे अग्नि, तुम्हारी शिखाएँ दीप्तिमती हैं । तुम सोमलतापेषक पत्थरकी तरह महान् कहे जाते हो । तुम द्योतमान् हो । तुम्हारा शब्द मेघगर्जनकी तरह ऊपरमें व्याप्त होता है ।

९ हम (वसुयुगण) इस प्रकारसे बलवान् अग्निका स्तवन करते हैं । शोभनकर्मा अग्नि हम लोगोंको निखिल शत्रुओंसे उत्तीर्ण करें, जैसे नौका द्वारा नदी पार की जाती है ।

---

१ हे शोधक और द्योतमान् अग्नि, तुम अपनी दीप्तिसे और देवोंको प्रहृष्ट करनेवाली जिह्वासे, यज्ञमें देवोंका आनयन करो और उनका यजन करो ।

तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् ।
देवाँ आ वीतये वह ॥२॥
वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि ।
अग्ने बृहन्त मध्वरे ॥३॥
अग्ने विश्वेभिरागहि देवेभिर्हव्यदातये ।
होतारं त्वा वृणीमहे ॥४॥
यजमनाय सुन्वत अग्ने सुवीर्यं वह ।
देवैरासत्सि बर्हिषि ॥५॥
समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि । देवानाँ दूत उक्थ्यः ॥६॥
न्यग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम् । दधाता देव मृत्विजम् ॥७॥
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः । स्तृणीत बर्हिरासदे ॥८॥
एदं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः । देवासः सर्वया विशा ॥९॥

---

२ हे घृतोत्पन्न और हे बहुविध रश्मिवाले अग्नि, तुम सर्वंद्रष्टा हो । हम लोग तुमसे याचना करते हैं कि, हव्य भक्षणके लिये तुम देवोंका वहन करो ।

३ हे क्रान्तदर्शी (ज्ञानसम्पन्न) अग्नि, तुम हव्य-भक्षणशील, दीप्तिमान् और महान् हो । हम लोग तुम्हें यज्ञस्थलमें सन्दीप्त करते हैं ।

४ हे अग्नि, सब देवोंके साथ तुम हव्यदाता यजमानके यज्ञमें उपस्थित होओ । तुम देवोंके आह्वानकारी हो । हम लोग तुमसे प्रार्थना करते हैं ।

५ हे अग्नि, अभिषव (यज्ञस्नान) करनेवाले यजमानको तुम शोभन बल प्रदान करो एवम् देवोंके साथ कुशपर उपवेशन करो ।

६ हे सहस्रोंको जीतनेवाले अग्नि, हवि द्वारा प्रज्वलित होकर, प्रशस्यमान होकर और देवोंके दूत होकर तुम हम लोगोंके यज्ञकर्मका पोषण करते हो ।

७ हे यजमानो, तुम लोग अग्निको संस्थापित करो । वे भूतजातको जाननेवाले, यज्ञके प्रापक, युवतम द्योतमान और ऋत्विक् (यष्टा) हैं ।

८ प्रकाशमान स्तोताओं द्वारा प्रदत्त हविरन्न आज देवोंके निकट निरन्तर गमन करे । हे ऋत्विक् तुम अग्निके उपवेशनार्थ (बैठनेके लिये) कुश विस्तृत करो--बिछाओ ।

९ मरुद्गण, देवभिषक् अश्विद्वय, सूर्य, वरुण आदि देव अपने परिजनोंके साथ कुशपर उपवेशन करें ।

२७ सूक्त

अग्नि देवता। ६ के अग्नि और इन्द्र देवता। अत्रि ऋषि अथवा त्रिवृष्णके अपत्य त्र्यरुण, पुरुकुत्सके अपत्य त्रसदस्यु और भरतके अपत्य अश्वमेध ऋषि। त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द।

अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः।
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत ॥१॥
यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति।
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानोऽग्ने अच्छ त्र्यरुणाय शर्म ॥२॥
एवा ते अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः।
यो मे गिरस्तुविजातस्य पूर्वीर्युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति ॥३॥
यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये।
ददृचा सनिं यते ददन्मेधामृतायते ॥४॥
यस्य मा परुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युक्षणः।
अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः ॥५॥

---

१ हे मनुष्योंके नेता अग्नि, तुम साधुओंके पालक, ज्ञानसम्पन्न, बलवान् और धनवान् हो। त्रिवृष्णके पुत्र त्र्यरुण नामक राजर्षिने शकट-संयुत दो वृषभ और दस सहस्र सुवर्ण मुझे प्रदान करके ख्यातिलाभ किया था अर्थात् उसी दानके कारण सब लोगोंने उन्हें जाना था।

२ जिस त्र्यरुणने मुझे सौ सुवर्ण, बीस गौएँ और रथसे युक्त भार वहन करनेवाले दो घोड़े दिये थे, हे वैश्वानर अग्नि, हम लोगोंके द्वारा स्तुत होकर और हवि द्वारा वर्द्धमान होकर तुम उस त्र्यरुणको सुख प्रदान करो।

३ हे अग्नि, हम बहुत सन्तानवालोंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर त्र्यरुणने जैसे हमें कहा था, "यह ग्रहण करें, यह ग्रहण करें।" हे स्तुतियोग्य अग्नि, वैसे ही तुम्हारी स्तुति कामना करनेवाले त्रसदस्युने भी हमसे प्रार्थना की थी कि, "यह ग्रहण करें, यह ग्रहण करें।"

४ हे अग्नि, जब कोई भिक्षाभिलाषी, तुम्हारी स्तुतिके साथ, धनदाता राजर्षि अश्वमेधके निकट जाकर कहता है कि, "हमें धन दो," तब वे उस याचकको धन देते हैं। हे अग्नि, यज्ञकी इच्छा करनेवाले अश्वमेधको तुम यज्ञ करनेकी बुद्धि प्रदान करो।

५ राजर्षि अश्वमेध द्वारा प्रदत्त, अभिलाषाओंके पूरक सौ बैलोंने हमें प्रमुदित किया है। हे अग्नि, दही, सत्तू और दूध आदि तीन द्रव्योंसे मिश्रित सोमकी तरह वे बैल तुम्हारी प्रीतिके लिये हों।

इन्द्राग्नी शतदाव्न्यश्वमेधे सुवीर्यम् ।
क्षत्रं धारयतं बृहद्दिवि सूर्यमिवाजरम् ॥६॥

२८ सूक्त

अग्नि देवता। अत्रिगोत्रोत्पन्ना विश्ववारा ऋषि।* त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और गायत्री छन्द।

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत् प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया विभाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईलाना हविषा घृताची ॥१॥
समिध्यमानो अमृतस्य राजसी हविष्कृवन्तं सचसे स्वस्तये ।
विश्वं स धत्ते द्रविणं यामिन्वस्या तिथ्यमग्ने नि च धत्त इत् पुरः ॥२॥
अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभीतिष्ठा महांसि ॥३॥

६ हे इन्द्र और अग्नि, तुम दोनों याचकोंके लिये, अपरिमित धनके दाता राजर्षि अश्वमेधको अन्तरिक्ष-स्थित सूर्यकी तरह, शोभन बलके साथ (दीप्तिमान्), महान् और जरारहित (अक्षय) धन प्रदान करो।

१ भलीभाँतिसे दीप्त अग्नि द्योतमान अन्तरिक्षमें तेजको प्रकाशित करते हैं और उषाके अभिमुख विस्तृत होकर विशेष शोभा पाते हैं। इन्द्र आदि देवोंका स्तवन करती हुई और पुरोडाश आदिसे युक्त स्रुक्को लेकर विश्ववारा पूर्वकी ओर मुँह करके अग्निके अभिमुख गमन करती है।

२ हे अग्नि, तुम भली भाँतिसे प्रज्वलित होकर उदकके ऊपर प्रभुत्व करते हो और हव्यदाता यजमान द्वारा, मङ्गलार्थ, सेवित होते हो। तुम जिस यजमानके निकट गमन करते हो, वह पशु आदि समस्त धनको धारण करता है। हे अग्नि, तुम्हारे आतिथ्य-योग्य हव्यको वह यजमान तुम्हारे सम्मुख स्थापित करता है।

३ हे अग्नि, तुम हम लोगोंके प्रभूत ऐश्वर्यके लिये और शोभन धनके लिये शत्रुओंको दमन करो। तुम्हारे धन या तेज उत्कृष्ट हों। हे अग्नि, तुम दाम्पत्य कार्यको, अच्छी तरहसे, सुनियमित करो और शत्रुओंके तेजको आक्रान्त करो।

---

* उस समय स्त्रियाँ विदुषी होती थीं, वेद पढ़ती थीं, वेद-मन्त्रोंको सङ्कलित करती थीं और पतिके साथ यज्ञसम्पादन करती थीं। इस सूक्तके ऊपर विचार करनेसे ये बातें स्पष्ट हो जाती हैं।

समिद्धस्य प्रमहसोग्ने वन्दे तव श्रियम् ।
वृषभो द्युम्नवाँ असि समध्वरेष्विध्यसे ॥४॥
समिद्धो अग्न आहुत देवान् यक्षि स्वध्वर ।
त्वं हि हव्यवालसि ॥५॥
आ जुहोता दुवस्याग्निं प्रयत्यध्वरे ।
वृणीध्वं हव्यवाहनम् ॥६॥

२६ सूक्त

इन्द्र देवता एवम् नवम ऋक्के प्रथम चरणके उशना देवता । शक्तिगोत्रोत्पन्ना गौरिवीति ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द ।

त्र्यर्यमा मनुषो देवताता त्री रोचनादिव्या धारयन्तः ।
अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षास्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः ॥१॥
अनु यदीं मरुतो मन्दसानमार्चन्निन्द्रं पपिवांसं सुतस्य ।
आदत्त वज्रमभि यदहिं हन्नपो यह्वीरसृजत्सर्तवा उ ॥२॥

---

४ हे अग्नि, जब तुम प्रज्वलित और दीप्तिमान् होते हो, तब हम यजमान तुम्हारी दीप्तिका स्तवन करते हैं। तुम कामनाओंके पूरक, धनवान् और यज्ञस्थलमें भली भाँतिसे दीप्त होते हो ।

५ हे अग्नि, हे यजमानों द्वारा आहूत, हे शोभन यज्ञवाले, भली भाँतिसे दीप्त होकर तुम इन्द्र आदि देवोंका यजन करो; क्योंकि तुम हव्यका वहन करते हो ।

६ हे ऋत्विको, तुम लोग हमारे यज्ञमें प्रवृत्त होकर हव्यवाहक अग्निमें हवन करो और उनका परिचरण तथा सम्भजन करो एवम् देवोंके निकट हव्य वहनार्थ उनका वरण करो ।

१ मनुसम्बन्धी यज्ञमें जो तीन तेज हैं तथा अन्तरिक्षमें उत्पन्न होनेवाले जो रोचमान वायु, अग्नि और सूर्यात्मक तेज हैं, उनको मरुतोंने धारण किया है । हे इन्द्र, शुद्ध बलवाले मरुद्गण तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम बुद्धिमान् हो, इन मरुतोंको देखो ।

२ जब मरुतोंने अभिषुत सोमरसके पानसे तृप्त इन्द्रकी स्तुति की, तब इन्द्रने वज्र ग्रहण किया और वृत्रको मारा एवम् वृत्रनिरुद्ध महान् जल-राशिकों, स्वेच्छानुसारसे, बहनेके लिये मुक्त किया ।

उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः ।
तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्ददहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य ॥३॥
आद्रोदसी वितरं विष्कभायत् संविव्यानश्चिद्भियसे मृगं कः ।
जिगर्त्तीमिन्द्रो अपजगु राणः प्रति श्वसन्तमव दानवंहन् ॥४॥
अध क्रत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयम् ।
यत् सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः ॥५॥
नव यदस्य नवतिं च भोगान्त्साकं वज्रेण मघवा विवृश्चत् ।
अर्चन्तीन्द्रं मरुतः सधस्थे त्रैष्टुभेन वचसा वाधत द्याम् ॥६॥
सखा सख्ये अपचत्तूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि ।
त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद्वृत्रहत्याय सोमम् ॥७॥
त्रीयच्छता महिषाणामघोमास्त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः ।
कारं न विश्वे अह्वन्त देवाभरमिन्द्राय यदहिं जघान ॥८॥

---

३ हे वृहत् मरुतो, तुम सब और इन्द्र भली भाँतिसे हमारे इस अभिषुत सोमरसका पान करो। तुम लोगोंके द्वारा यह सोमात्मक हव्य पिया जाय, जिससे मनुष्य यजमान गौओंको प्राप्त करे। इस सोमरसको पीकर इन्द्रने वृत्रको मारा था।

४ सोमपानके अनन्तर इन्द्रने द्यावापृथिवीको निश्चल किया था। गमनशील होकर इन्द्रने मृगवत् पलायमान वृत्रको भयभीत किया था। दनुपुत्र (वृत्र) छिप रहा था और भयसे श्वास ले रहा था। इन्द्रने उसे आच्छादनविहीन करके मारा था।

५ हे धनवान् इन्द्र, तुम्हारे इस कर्मसे वह्नि आदि निखिल देवोंने तुम्हें अनुक्रमसे सोमरस, पानके लिये, दिया था। तुमने एतशके लिये सम्मुखवर्ती सूर्यके अश्वोंका गतिरोध किया था।

६ जब धनवान् इन्द्रने वज्र द्वारा शम्बरके ९९ नगरोंको एक कालमें ही विनष्ट किया था, तब मरुतोंने संग्राम-भूमिमें ही इन्द्रकी स्तुति, त्रिष्टुप् छन्दमें, की थी। इस तरहसे मरुतोंके मन्त्रों द्वारा स्तुत होनेपर दीप्त इन्द्रने शम्बर असुरको पीड़ित किया था।

७ इन्द्रके मित्रभूत अग्निने मित्र इन्द्रके कार्यके लिये सौ महिषोंको शीघ्र ही पकाया था। परमैश्वर्ययुक्त इन्द्रने वृत्रको मारनेके लिये मनु-सम्बन्धी तीन पात्रोंमे स्थित सोमरसको एक कालमें ही पिया था।

८ हे इन्द्र, जब तुमने तीन सौ महिषोंके मांसका भक्षण किया था, धनवान् होकर जब तुमने तीन पात्रोंमें स्थित सोमरसका पान किया था, जब तुमने वृत्रका बध किया था, तब सब देवोंने युद्धके लिये सोमपानसे पूर्ण इन्द्रका आह्वान किया था, जैसे स्वामी दासका आह्वान करते हैं।

उशना यत्सहस्यैरयातं गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः ।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम् ॥९॥
प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद्वरिवो यातवेकः ।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचः ॥१०॥
स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरंधयो वैदथिनाय पिप्रुम् ।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन्पक्तीरपिवः सोममस्य ॥११॥
नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्तर्कैः ।
गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन् ॥१२॥
कथो नु ते परि चराणि विद्वान्वीर्या मघवन्या चकर्थ ।
या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम ॥१३॥

---

९ हे इन्द्र, तुम और कवि (उशना) जब अभिभवनशील एवम् द्रुतगामी अश्वोंके साथ कुत्सके गृहमें उपस्थित हुए थे, तब तुमने शत्रुओंको हिंसित करके कुत्स और देवोंके साथ एक रथपर आरूढ़ हुए थे। हे इन्द्र, शुष्णनामक असुरको तुमने ही मारा है।

१० हे इन्द्र, पहले ही तुमने सूर्यके दो चक्रोंमेंसे एक चक्केको पृथक् किया था एवम् दूसरे एक चक्केको तुमने धन-लाभके लिये कुत्सको दिया था। तुमने शब्द-रहित असुरोंको हतबुद्धि करके वज्र द्वारा संग्राममें मारा था।

११ हे इन्द्र, गौरिवीति ऋषिके स्तोत्र तुम्हें वर्द्धित करें। तुमने विदथिपुत्र ऋजिश्वाके लिये पिप्रु नामक असुरको वशीभूत किया था। ऋजिश्वा नामवाले किसी ऋषिने तुम्हारी सखिताके लिये पुरोडाश आदिको पकाकर तुम्हें अभिमुख किया था। तुमने ऋजिश्वाके सोमका पान किया था।

१२ नौ महीनोंमें समाप्त होनेवाले और दस महीनोंमें समाप्त होनेवाले यज्ञको करनेवाले अङ्गिरा लोग सोमाभिषव करके अर्चनीय स्तोत्रों द्वारा इन्द्रकी स्तुति करते हैं। स्तुति करनेवाले अङ्गिरा लोगोंने असुरों द्वारा आच्छादित गो-समूहको उन्मुक्त किया था।

१३ हे धनवान् इन्द्र, तुमने जिस वीर्य (पराक्रम) को प्रकट किया था, हम उसको जानते हुए भी किस प्रकारसे तुम्हारे लिये प्रकट करें—क्योंकर स्तवन करें? हे बलवान् इन्द्र, तुम जिस नूतन वीर्य (पराक्रम) को प्रकट करोगे, हम यज्ञमें तुम्हारे उस वीर्यका कीर्तन करेंगे।

एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्यपरीतो जनुषा वीर्येण ।
या चिन्नु वज्रिन् कृणवो. दधृष्वान्न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्या ॥१४॥
इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म ।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ॥१५॥

३० सूक्त

इन्द्र देवता और कहीं ऋणञ्चय राजा देवता । बभ्रु ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

क्वस्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं सुखरथमीयमानं हरिभ्याम् ।
यो राया वज्री सुतसोममिच्छन्तदोको गन्ता पुरुहूत ऊती ॥१॥
अवाचचक्षं पदमस्य सस्वरुग्रं निधातुरन्वायमिच्छन् ।
अपृच्छमन्याँ उत ते म आहुरिन्द्रं नरो बुबुधाना अशेम ॥२॥
प्र नु वयं सुते या ते कृतानींद्र ब्रवाम यानि नो जुजोषः ।
वेददविद्वाञ्छृणवच्च विद्वान्वहतेयं मघवा सर्वसेनः ॥३॥

---

१४ हे इन्द्र, तुम शत्रुओं द्वारा दुर्द्धर्ष्य हो । तुमने अपने प्रकृत बलसे प्रत्यक्ष दृश्यमान बहुतेरे भुवनजातको किया है । हे वज्रधर, शत्रुओंको शीघ्र ही विनष्ट करते हुए तुम जो कुछ करते हो, तुम्हारे उस बल या कर्मका निवारण कोई भी नहीं कर सकता है ।

१५ हे अतिशय बलवान् इन्द्र, हम लोगोंने आज तुम्हारे लिये जिन नूतन स्तोत्रोंको किया है, हम लोगों द्वारा विहित उन सकल स्तोत्रोंको तुम ग्रहण करो । हम धीमान्, शोभन कर्म करनेवाले और धनाभिलाषी हैं । इन भजनीय स्तोत्रोंको हम वस्त्र और रथकी तरह तुम्हें अर्पित करते हैं ।

१ वज्रधर, बहुतों द्वारा आहूत इन्द्र दान योग्य धनके साथ सोमाभिषव करनेवाले यजमानकी इच्छा करते हुए, रक्षाके लिये यजमानके गृहमें जाते हैं । वह पराक्रमी इन्द्र कहाँ विद्यमान हैं ? अपने दोनों घोड़ों द्वारा आकृष्ट सुखकर रथपर जानेवाले इन्द्रको किसने देखा है ?

२ हमने इन्द्रके अन्तर्हित और उग्र स्थानको देखा है । अन्वेषण करते हुए हम आधारभूत इन्द्रके स्थानमें गये हैं । हमने अन्य विद्वानोंसे भी इन्द्रके सम्बन्धमें पूछा है । पूछे जानेपर यज्ञके नेता और ज्ञानाभिलाषियोंने हमें कहा कि, हम लोगोंने इन्द्रको प्राप्त किया है ।

३ हे इन्द्र, तुमने जिन कार्यों को किया है, सोमाभिषव करनेपर हम स्तोता उनका वर्णन करते हैं । तुमने भी हमारे लिये जिन कर्मोंका सेवन किया है, उन कर्मोंको इसके पहले नहीं जाननेवाले लोग जानें । जो लोग जानते हैं, वे नहीं जाननेवालोंको सुनावें । सब सेनाओंसे युक्त होकर धनवान् इन्द्र अश्वपर आरोहण कर उन जाननेवाले और सुननेवालेके पास गमन करे ।

स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित्।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम् ॥४॥
परो यत्त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम बिभ्रत्।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद्दासपत्नीः ॥५॥
तुभ्येदेत मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः।
अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः ॥६॥
विषूमृधोजनुषा दानमिन्वन्नहन् गवा मघवन्त्सञ्चकानः।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥७॥
युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन्।
अश्मानं चित्स्वर्यं वर्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ॥८॥

---

४ हे इन्द्र, उत्पन्न होते ही तुमने सब शत्रुओंको जीतनेके लिये चित्तको स्थिर [दृढ़ संकल्प] किया था। हे इन्द्र, अकेले ही तुमने बहुतेरे राक्षसोंसे युद्ध करनेके लिये गमन किया था। गौओंके आवरक पर्वतको तुमने बल द्वारा विदीर्ण किया था। तुमने क्षीरदायिनी गौओंके समूहको प्राप्त किया था।

५ हे इन्द्र तुम सर्व-प्रधान और उत्कृष्टतम हो। दूरसे ही श्रवणीय नामको धारण करके जब तुम उत्पन्न हुए थे, तब अग्नि आदि देवता इन्द्रसे भयभीत हुए थे। वृत्र द्वारा पालित सकल उदकको इन्द्रने वशीभूत किया था।

६ ये स्तुतिपाठ करनेवाले सुखी मरुद्गण स्तोत्र द्वारा सुख उत्पन्न करते हैं। हे इन्द्र, ये तुम्हारा ही स्तवन करते हैं और सोमलक्षण अन्न प्रदान करते हैं। जो वृत्र समस्त जलराशिको आच्छन्न करके निद्रित था, अपनी शक्ति द्वारा इन्द्रने उस कपटी और देवोंको बाधा पहुचानेवाले वृत्रको अभिभूत किया था।

७ हे धनवान् इन्द्र, हम लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम देवपीड़क वृत्रको वज्र द्वारा पीड़ित करो। तुमने जन्मसे ही शत्रुओका संहार किया है। हे इन्द्र, इस युद्धमें तुम हमारे सुखके लिये दास नमुचिके सिरको चूर्ण करो।

८ हे इन्द्र, तुमने शब्द करनेवाले और भ्रमण-शील मेघकी तरह, दास नमुचि असुरके मस्तकको चूर्ण करके हमारे साथ मैत्री की थी। उस समय मरुतोंके प्रभावसे द्यावापृथिवी चक्रकी तरह घूमने लगी थी।

स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः ।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्रः ॥९॥
समत्र गावोभितोनवन्ते हेह वत्सैर्व्वियुतायदासन् ।
सन्ता इन्द्रो असृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन् ॥१०॥
यदीं सोमा बभ्रूधूता अमन्दन्नरोरवीद्वृषभः सादनेषु ।
पुरन्दरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्त्रियाणाम् ॥११॥
भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन् गवां चत्वारि ददतः सहस्रा ।
ऋणञ्चयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम् ॥१२॥
सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने ।
तीव्रा इन्द्रमममन्दुः सुतासोक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्याया ॥१३॥
औच्छत्सा रात्री परितक्म्या याँ ऋणञ्चये राजनि रुशमानाम् ।
अत्यो न वाजीरघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा ॥१४॥

---

९ दास नमुचिने स्त्रियोंको युद्धसाधन (सेना) बनाया था । असुरकी वह स्त्री-सेना मेरा क्या कर लेगी ? इस तरह सोचकर इन्द्रने उन सेनाओंके मध्यसे उस असुरकी दो प्रेयसी स्त्रियोंको, गृह-मध्यमें, रख लिया और नमुचिसे लड़नेके लिये प्रस्थान किया ।

१० जब गौएँ बछड़ोंसे वियुक्त हुई थीं, तब उस समय वे नमुचि द्वारा अपहृत गौएँ इधर-उधर सर्वत्र भटक रही थीं । बभ्रु ऋषि द्वारा अभिषुत सोमसे जब इन्द्र प्रहृष्ट हुए, तब समर्थ मरुतोंके साथ इन्द्रने बभ्रुकी गौओंको बछड़ोंके साथ मिला दिया ।

११ जब बभ्रुके अभिषुत सोमने इन्द्रको प्रहृष्ट किया, तब कामनाओंके पूरक इन्द्रने, संग्राममें, महान् शब्द किया । पुरन्दर [नगर-विनाशक] इन्द्रने सोम पान किया और बभ्रुको फिरसे दुग्ध देनेवाली गौएँ दीं ।

१२ हे अग्नि, ऋणञ्चय राजाके किंकर रुशम देशवासियोंने मुझे चार सहस्र गौएँ देकर कल्याण-कारक कर्म किया था । नेताओंके बीच श्रेष्ठ नेता ऋणञ्चय राजा द्वारा प्रदत्त गोरूप रत्नोंको मैंने ग्रहण किया है ।

१३ हे अग्नि, ऋणञ्चय राजाके किंकर रुशम देशवासियोंने मुझे अलङ्कार और आच्छादन आदिसे सुसज्जित गृह तथा हजार गौएँ दी हैं । रात्रिके बीतनेपर अर्थात् उषाकालमें सरस सोमने इन्द्रको प्रसन्न किया था [गौओंको पाकर बभ्रुने तुरत ही इन्द्रको सोमरस पिलाया था] ।

१४ रुशम देशके राजा ऋणञ्चयके समीपमें ही सर्वत्र गमन करनेवाली रात्रि बीत गयी । बुलाये जानेपर बभ्रु ऋषिने वेगवान् घोड़ेकी तरह चार सहस्र शीघ्रगामिनी गौओंको प्राप्त किया ।

चतुः सहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने ।
घर्मश्चित्तप्तः प्रवृजे य आसीदयस्मयस्तम्वादाम विप्राः ॥१५॥

३१ सूक्त

इन्द्र देवता। अत्रिके अपत्य अवस्यु ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द

इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम् ।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन् ॥१॥
आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः पिशङ्गराते अभि नः सचस्व ।
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्त्यमेनांश्चिज्जनिवतश्चकर्थ ॥२॥
उद्यत्सहः सहस आजनिष्ट देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा ।
प्राचोदयत्सुदुघा वव्रे अन्तर्वि ज्योतिषा सम्ववृत्वत्तमोवः ॥३॥
अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥४॥

---

१५ हे अग्नि, हमने रुशम देशवासियोंसे चार सहस्र गौएँ प्राप्त की हैं। हम मेधावी हैं। यज्ञके लिये महावीरकी तरह सन्तप्त हिरण्मय कलशको, हमने रुशम देशवासियोंसे दूध दूहने के लिये, ग्रहण किया है।

——

१ धनवान् इन्द्र जिस रथ पर अधिष्ठान करते हैं, उस रथका संचालन भी करते हैं । गोपालक जिस तरहसे पशुओंके समूहको प्रेरित करते हैं, उसी तरहसे इन्द्र शत्रुसेनाओंको प्रेरित करते हैं। शत्रुओं द्वारा अहिंसित और देव-श्रेष्ठ इन्द्र शत्रुओंके धनकी कामना करते हुए गमन करते हैं।

२ हे हरिनामक अश्ववाले, तुम हम लोगोंके अभिमुख भली भाँतिसे गमन करो; किन्तु हम लोगोंके प्रति हीनमनोरथ—उदासीन—मत होओ। हे बहुविध धनवाले इन्द्र, तुम हम लोगोंका सेवन करो। हे इन्द्र, दूसरी कोई भी वस्तु तुमसे श्रेष्ठ नहीं है। अपत्नीकोंको तुम स्त्री प्रदान करते हो।

३ जब सूर्यका तेज उषाके तेजसे बढ़ जाता है, तब इन्द्र यजमानोंको निखिल धन प्रदान करते हैं। वे निवारक पर्वतके मध्यसे दुग्धदायिनी निरुद्ध गौओंको मुक्त करते हैं और तेज द्वारा संवरणशील (सर्वत्र व्याप्त) अन्धकारको दूर करते हैं।

४ हे बहुजनाहूत इन्द्र, ऋभुओंने तुम्हारे रथको घोड़ोंसे संयुक्त होनेके योग्य बनाया है, त्वष्टाने तुम्हारे वज्रको द्युतिमान् किया है। इन्द्रकी पूजा करनेवाले अङ्गिरा लोगोंने अथवा मरुतोंने वृत्रवधके लिये लिये, स्तोत्रों द्वारा, इन्द्रको संवर्द्धित किया है।

वृषणे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।
अनश्वासो ये पवयोरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥५॥
प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन्या चकर्थ ।
शक्तीवो यद्विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः ॥६॥
तदिन्नूते करणं दस्म विप्राहिं यद्घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः ।
शुष्णस्यचित् परिमाया अगृभ्णाः प्रपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः ॥७॥
त्वमपो यदवे तुर्वशायारमयः सुदुघाः पारइन्द्र ।
उग्रमयातमवहोह कुत्सं सं ह यद्वामुशनारन्तदेवाः ॥८॥
इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेनावात्या अपि कर्णे वहन्तु ।
निष्षीमद्भ्योधमथोनिष् षधस्थान्मघोनो हृदोवरथस्तमांसि ॥९॥

५ हे इन्द्र, तुम अभिलाषाओंके पूरक हो। सेचनसमर्थ मरुतोंने जब तुम्हारी स्तुति की थी, तब सोमाभिषव करनेवाले पत्थर भी प्रसन्न होकर संगत हुए थे। इन्द्र द्वारा प्रेषित होनेपर अश्वहीन और रथहीन मरुतोंने अभिगमन करके शत्रुओंको अभिभूत किया था।

६ हे इन्द्र, हम तुम्हारे पुरातन तथा नूतन कर्मोंका स्तवन करते हैं। हे धनवान् इन्द्र, तुमने जिन कार्योंको किया है, हम उसे कहते हैं। हे वज्रधर इन्द्र, तुम द्यावापृथिवीको वशीभूत करके मनुष्योंके लिये विचित्र जल धारण करते हो।

७ हे दर्शनीय तथा बुद्धिमान् इन्द्र, वृत्रको मार करके तुमने जो अपने बलको इस लोकमें प्रकाशित किया है, वह तुम्हारा ही कर्म है। तुमने शुष्ण असुरकी युवतीको ग्रहण किया है। हे इन्द्र, युद्धस्थलमें जाकर तुमने असुरोंको विनष्ट किया है।

८ हे इन्द्र, नदीके तीरमें प्रवृद्ध होकर अर्थात् अवस्थान करके यदु और तुर्वश राजाओंको तुमने वनस्पतियोंको बढ़ानेवाला जल दिया है। हे इन्द्र, कुत्सके प्रति आक्रमण करनेवाले भयानक शुष्णको मारकर तुमने कुत्सको अपने गृहमें पहुँचा दिया था। तब उशना (भार्गव) और देवोंने तुम दोनोंका सम्भजन किया था।

९ हे इन्द्र और कुत्स, एक रथपर आरूढ़ तुम दोनोंको अश्वगण यजमानोंके निकट आनयन करें। तुम दोनोंने शुष्णको उसके आवासभूत जलसे दूर किया था। तुम दोनोंने धनवान् यजमानोंके हृदयसे अज्ञान-रूप अन्धकारको, दूर किया था।

वातस्य युक्तान्त्सुयुजश्चिदश्वान् कविश्चिदेषो अजगन्नवस्युः ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सखाय इन्द्र ब्राह्माणितविषीमवर्धन् ॥१०॥
सूरश्चिद्रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जूजुवांसम् ।
भरश्चक्रमेतशः संरिणाति पुरोदधत् सनिष्यति क्रतुं नः ॥११॥
आयं जना अभिचक्षे जगामेन्द्रः सखायं सुतसोममिच्छन् ।
वदन्ग्रावव वेदिं भ्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्चरन्ति ॥१२॥
ये चाकनन्त चाकन्त नू ते मर्ता अमृत मोते अहं आरन् ।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेह्योजोजनेषु येषु ते स्याम ॥१३॥

३२ सूक्त

इन्द्र देवता । अत्रिके अपत्य गातुऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

अदर्दरुत्समसृजो विखानित्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वियद्वः सृजोविधारा अवदानवं हन् ॥१॥

---

१० विद्वान् अवस्यु नामक ऋषिने वायुकी तरह वेगवान् और रथमें भली भाँतिसे युक्त करनेके योग्य अश्वोंको प्राप्त किया है। हे इन्द्र, अवस्युके मित्रभूत सकल स्तोताओंने, स्तोत्रों द्वारा, तुम्हारे बलको संवर्द्धित किया है ।

११ पूर्वमें जब एतश ऋषिके साथ सूर्यका संग्राम हुआ था, तब इन्द्रने सूर्यके वेगवान् रथकी गतिको अवरुद्ध किया था। इन्द्रने पूर्वमें द्विचक्र रथके एक चक्रको हरण किया था। उसी चक्र द्वारा इन्द्र शत्रुओंको विनष्ट करते हैं। हम लोगोंको पुरस्कृत करके इन्द्र हम लोगोंके यज्ञका सम्भजन करें।

१२ हे मनुष्यो, तुम लोगोंको देखनेके लिये इन्द्र सोमाभिषव करनेवाले मित्रस्वरूप यजमानोंकी इच्छा करते हुए आये हैं। अध्वर्यु गण जिस पत्थरका प्रेरण करते हैं, वह सोमाभिषव करनेवाला पत्थर शब्द करता हुआ वेदीके ऊपर आरोहण करता है।

१३ हे इन्द्र, हे अमरणशील, जो मनुष्य तुम्हारी कामना करता है और शीघ्रतापूर्वक तुम्हारी अभिलाषा करता है, उस मरणशील मनुष्यका कोई अनर्थ नहीं हो। तुम यजमानोंका सम्भजन करो—उनके प्रति प्रसन्न होओ। जिन मनुष्योंके मध्यमें हमलोग स्तोता हैं, वे सब तुम्हारे हों। हे इन्द्र, तुम उन मनुष्योंको बल प्रदान करो।

१ हे इन्द्र, तुमने बरसनेवाले मेघको विदीर्ण किया है और मेघस्थ जलके निर्गमन द्वारको विसृष्ट किया है—बनाया है। हे इन्द्र, तुमने प्रभूत मेघको उद्घाटित करके जल बरसाया है एवम् दनुपुत्र वृत्रका संहार किया है।

Digitization by Arya Samaj Foundation, Chennai

त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्धधानाँ अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन् ।
अहिंचिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः ॥२॥
त्यस्य चिन्महतोनिर्मृगस्य वधर्जघान तविषीभिरिन्द्रः ।
य एक इद प्रतिर्मन्यमान आदस्माद्न्यो अजनिष्ट तव्यान् ॥३॥
त्यं चिदेषां स्वधया मदन्तं मिहो नपातं सुवृधन्तमोगाम् ।
वृषप्रभर्म्मा दानवस्य भामं वज्रेण वज्रीनि जघान शुष्णम् ॥४॥
त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तममर्मणो विददिदस्य मर्म ।
यदीं सुक्षत्रप्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः ॥५॥
त्यं चिदित्था कत्पयं शयानमसूर्ये तमसि वावृधानम् ।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्योच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥६॥

---

२ हे वज्रवान् इन्द्र, तुम वर्षाकालमें निरुद्ध मेघोंको बन्धनमुक्त करो। तुम मेघको बलसम्पन्न करो। हे उग्र, जलमें शयन करनेवाले वृत्रको तुमने मारा है और अपने बलको प्रख्यात किया है अर्थात् वृत्रवधके अनन्तर इन्द्र लोगोंके मध्य प्रख्यात होते हैं।

३ अप्रतिद्वन्द्वी एक मात्र इन्द्रने ही प्रभूत मृगकी तरह शीघ्रगामी उस वृत्रके आयुधोंको अपने बल द्वारा विनष्ट किया। उस समय वृत्रके शरीरसे दूसरा अतिशय बलवान् असुर प्रादुर्भूत हुआ। *

४ वर्षणशील मेघके ऊपर प्रहार करनेवाले वज्रधर इन्द्रने वज्र द्वारा बलवान् शुष्णको मारा था। शुष्ण वृत्रासुरके क्रोधसे उत्पन्न होकर अन्धकारमें विचरण करता था और सेचन-समर्थ मेघकी रक्षा करता था। वह सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्नको स्वयम् खाकर प्रमुदित होता था।

५ हे इन्द्र, हे बलवान्, मादक सोमरसके पानसे हृष्ट होकर तुमने अन्धकारमें निमग्न युद्धाभिलाषी वृत्रको जाना था। अपनेको मर्महीन (अवध्य) समझनेवाले वृत्रके प्राणस्थानको तुमने उसके कार्यों द्वारा जाना था।

६ वृत्र सुखकर उदकके साथ जलमें शयन करता हुआ अन्धकारमें वर्द्धमान हो रहा था। अभिषुत सोमपानसे हृष्ट होकर अभिलाषाओंके पूरक इन्द्रने वज्रको ऊपर उठाकर उसे मारा था।

---

* इन्द्रसे युद्ध करते समय भग्नायुध वृत्रके शरीरसे महान् बलवान् शुष्ण नामका एक दूसरा असुर प्रकट हुआ। इन्द्रने वृत्रको मारकर शुष्णको भी मारा।—सायण।

उद्यदिन्द्रो महते दानवाय वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम् ।
यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जन्तोरधमञ्चकार ॥७॥
त्यं चिदर्णं मधुपं शयानमसिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः ।
अपादमत्रं महता वधेन निदुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचम् ॥८॥
को अस्य शुष्मन्तविषीं वरात एकोधना भरते अप्रतीतः ।
इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते ॥ ९ ॥
न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे ।
संयदोजो युवते विश्वमाभिरनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त ॥ १० ॥
एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि जशसं जनेषु ।
तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषा वस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ॥ ११ ॥
एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं मघ विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि ।
किं ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया नि दधुः काममिन्द्र ॥१२॥

---

७ जब इन्द्रने उस प्रभूत दानव वृत्रके प्रति विजयी वज्रको उठाया था, जब वज्रके द्वारा उसके ऊपर प्रहार किया था, तब सब प्राणियोंके बीच उसे नीच बनाया था।

८ उग्र इन्द्रने महान्, गमनशील मेघको घेरकर शयन करनेवाले, जल-रक्षक, शत्रुओंके संहारक और सबको आच्छादित करनेवाले वृत्रको ग्रहण किया और उसके अनन्तर संग्राममें पाद-रहित, परिमाण-रहित और जृम्भाभिभूत वृत्रको अपने प्रभूत वज्र द्वारा भली भाँतिसे मारा।

९ इन्द्रके शोषक बलका निवारण कौन कर सकता है? किसीके द्वारा भी अप्रतीयमान इन्द्र अकेले ही शत्रुओंके धनको हरण करते हैं। द्योतमान द्यावा-पृथिवी वेगवान् इन्द्रके बलसे भीत होकर शीघ्र ही चलायमान होती हैं।

१० स्वयम् धार्यमाण और द्योतमान द्युलोक इन्द्रके लिये नीचभावसे गमन करता है। भूमि अभिलाषिणी स्त्रीकी तरह इन्द्रके लिये आत्म-समर्पण करती है। जब इन्द्र अपने समस्त बलको प्रजाओंके मध्यमें स्थापित करते हैं, तब मनुष्यगण अनुक्रमसे, बलवान् इन्द्रके लिये नमस्कार करते हैं।

११ हे इन्द्र, हमने ऋषियोंसे सुना है कि, तुम मनुष्योंके मध्यमें मुख्य हो, सज्जनोंके पालक हो, पञ्चजन मनुष्योंके हितके लिये उत्पन्न हुए हो और यशोयुक्त हो। दिन-रात स्तुति करनेवाली और अपनी अभिलाषाओंको कहनेवाली हमारी सन्तान स्तुतियोग्य इन्द्रको प्राप्त करे।

१२ हे इन्द्र, हमने सुना है कि, तुम समय-समयपर जन्तुओंको प्रेरित करते हो और स्तोताओंको धन प्रदान करते हो, यह झूठ ही मालूम पड़ता है। हे इन्द्र, जो स्तोता तुममें अपनी अभिलाषा स्थापित करते हैं, तुम्हारे वे महान् सखा तुमसे क्या प्राप्त करते हैं?

प्रथम अध्याय समाप्त

द्वितीय अध्याय

३३ सूक्त

३ अनुवाक । इन्द्र देवता । प्रजापतिके अपत्य सम्वरण ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

महिमहे तवसे दीध्ये नॄनिंद्रायेत्था तवसे अतव्यान् ।
यो अस्मै सुमतिं वाजसातौ स्तुतो जने समर्यश्चिकेत ॥१॥
स त्वं न इन्द्र धियसानो अर्कैर्हरीणां वृषन्योक्त्रमश्रेः ।
या इत्था मघवन्ननु जोषं वक्षो अभि प्रार्यः सक्षि जनान् ॥२॥
न ते त इन्द्राभ्य स्मदृष्वायुक्तासो अब्रह्मता यदसन् ।
तिष्ठारथमधितं वज्रहस्ता रश्मिन्देव यमसे स्वश्वः ॥३॥
पुरू यत्त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन् ।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित् ॥४॥

---

१ हम सम्वरण ऋषि अत्यन्त दुर्बल हैं । हम महाबलवान् इन्द्रके लिये प्रभूत स्तोत्र करते हैं, जिससे हमारी तरहके मनुष्य बलवान् हों । संग्राममें अन्न लाभके लिये स्तुत होनेपर इन्द्र स्तोताओंके साथ हमारे (सम्बरणके) प्रति अनुग्रह प्रदर्शन करें ।

२ हे अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले इन्द्र, तुम हम लोंगोंका ध्यान करते हुए एवम् जो स्तोत्र तुम्हें प्रीति उत्पन्न करें, उन स्तोत्रों द्वारा रथमें जुते हुए घोड़ोंकी लगामको ग्रहण करते हो । हे मघवा, इस तरहसे तुम हमारे शत्रुओंको पराभूत करो ।

३ हे तेजोविशिष्ट इन्द्र, जो मनुष्य तुम्हारे भक्तोंसे भिन्न है और जो तुम्हारे साथ नहीं रहता है, ब्रह्मकर्मसे हीन होनेके कारण वह मनुष्य तुम्हारा नहीं है । हे वज्रधारी इन्द्र, इस लिये तुम हमारे यज्ञमें आनेके लिये उस रथपर आरोहण करो, जिस रथका सञ्चालन तुम स्वयम् करते हो ।

४ हे इन्द्र, तुम्हारे स्वविषयक अनेक स्तोत्र हैं; इसीलिये तुम उर्वरा भूमिके ऊपर जल वर्षण करनेके लिये वृष्टि-निरोधकारकोंका संहार करते हो । तुम कामनाओंके पूरक हो । तुम सूर्यके अपने स्थानमें वृष्टिप्रतिबन्धकारक दासोंके साथ युद्ध करके, उनके नामतकको नष्ट कर देते हो ।

वयं ते त इन्द्र ये च नरः शर्धो जज्ञाना याताश्च रथाः ।
अस्माञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः ॥५॥
पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे ह्योजो नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः ।
स न एनीं वसवानो रयिं दाः प्रार्यः स्तुषे तुविमघस्य दानम् ॥६॥
एवा न इन्द्रोतिभिरव पाहि गृणतः शूर कारून् ।
उत त्वचं ददतो वाजसातौ पिप्रीहि मध्वः सुषुतस्य चारोः ॥७॥
उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः ।
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे ॥८॥
उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वा मघासो विदथस्य रातौ ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत् ॥९॥

---

५ हे इन्द्र, हम लोग जो ऋत्विक् यजमान आदि हैं, वे सब तुम्हारे हैं । यज्ञ करके हम लोग तुम्हारे बलको वर्द्धित करते हैं और होम करनेके लिये तुम्हारे निकट उपस्थित होते हैं । हे इन्द्र, तुम्हारा बल सर्वव्यापी है। तुम्हारे अनुग्रहसे युद्ध-क्षेत्रमें भगकी तरह प्रशंसनीय (चारु) विश्वस्त भृत्य आदि हमारे निकट आवें ।

६ हे इन्द्र, तुम्हारा बल पूजनीय है । तुम सर्वव्यापी और अमरणशील हो । अपने तेजसे तुम जगत्को आच्छादित करके श्वेतवर्णका प्रभूत धन हम लोगोंको दो । हम लोग प्रभूत धनवाले दाताके दानकी स्तुति करते हैं।

७ हे शूर इन्द्र, हम लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं और यजन करते हैं । रक्षा द्वारा तुम हम लोगोंका पालन करो । संग्राममें तुम अपने आच्छादक रूपको प्रदान करके हमारे अभिषुत सोमरसके द्वारा सन्तुष्ट होओ।

८ गिरिक्षित-गोत्रोत्पन्न पुरुकुत्सके पुत्र त्रसदस्यु हिरण्यवान् और प्रेरक हैं । उन्होंने हमें जो दस अश्व प्रदान किया था, वे शुभ्रवर्णवाले दसो अश्व हमें वहन करें । रथनियोजनादि कार्यों द्वारा हम शीघ्र ही गमन करें ।

९ मरुताश्वके पुत्र विदथने हमारे लिये जिन रक्तवर्ण और श्रेष्ठ (शीघ्रगामी) अश्वोंको प्रदान किया था, वे हमें वहन करें। उन्होंने हम पूज्यको सहस्र परिमित धन दिया है और अपने शरीरका अलङ्कार प्रदान किया है ।

उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः ।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन् ॥१०॥

३४ सूक्त

इन्द्र देवता । सम्वरण ऋषि । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते ।
सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन ॥१॥
आ यः सोमेन जठरमपिप्रतामन्दत मघवा मध्वो अन्धसः ।
यदीं मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् ॥२॥
यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनि सोमं सुनोति भवति द्युमाँ अह ।
अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः ॥३॥
यस्यावधीत् पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते ।
वेतीद्वस्य प्रयता यतङ्करो न किल्बिषादीषते वस्व अकरः ॥४॥

---

१० लक्ष्मणके पुत्र ध्वन्यने हमें जो दीप्तिमान् और कर्मक्षम अश्व प्रदान किया था, वे हमें वहन करें। गौएँ जैसे गोचरण-स्थान (गोष्ठ) को प्राप्त करती हैं, उसी तरहसे उनके (ध्वन्य) द्वारा प्रदत्त महान् धन सम्बरण ऋषिके गृहमें उपस्थित हो ।

१ जिनके शत्रु उत्पन्न नहीं हुए हैं और जो शत्रुओंका विनाश करते हैं, उन्हें अक्षीण, स्वर्गप्रद और अपरिमित हव्य प्राप्त करते हैं। हे ऋत्विको, उन्हीं इन्द्रके लिये तुम लोग पुरोडाश आदिका पाक करो और अपने उचित कर्मको धारण करो । इन्द्र स्तोत्रवाहक हैं और बहुस्तुत हैं ।

२ इन्द्रने सोमरस द्वारा अपने जठरको परिपूर्ण किया था और मधुर सोमपानसे प्रमुदित हुए थे, जब कि, मृगनामक असुरको मारनेकी इच्छा करके उन्होंने अपरिमित तेजवाले महान् वज्रको ऊपर उठाया था ।

३ जो यजमान इन्द्रके लिये अहर्निश सोमाभिषव करते हैं, वे द्युतिमान् होते हैं। जो यजमान यज्ञ नहीं करते हैं; लेकिन धर्म-सन्ततिकी कामना करते हैं और शोभनीय अलङ्कार आदि धारण करते हैं तथा धनवान् होकर कुत्सित पुरुषोंका साहाय्य करते हैं, समर्थ इन्द्र उन्हें छोड़ देते हैं ।

४ समर्थ इन्द्रके जिस यष्टाने पिता, माता और भ्राताका बध किया है, उस यष्टाके निकटसे भी इन्द्र दूर नहीं जाते हैं और उसके द्वारा प्रदत्त हव्यकी कामना भी करते हैं। शासक और धनाधिपति इन्द्र पापसे भी विचलित नहीं होते हैं ।

न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन ।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे ॥५॥
वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः ।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः ॥६॥
समीम्पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनरं वसु ।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत् ॥७॥
सं यज्ञनौ सुधनौ विश्वशर्द्धसाववेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु ।
युजं ह्यन्यमकृत प्रवेपन्युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः ॥८॥
सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः ।
तस्मा आपः संयतः पीपयन्त तस्मिन् क्षत्रममवत्त्वेषमस्तु ॥९॥

---

५ शत्रुओंको मारनेके लिये इन्द्र पाँच या दस सहायकोंकी कामना नहीं करते हैं। जो सोमाभिषव नहीं करता है और बन्धुओंका पोषण नहीं करता है, उसके साथ इन्द्र संगति नहीं करते हैं। शत्रुओंके कम्पक इन्द्र उसे बाधा पहुँचाते हैं और उसका बध करते हैं। इन्द्र यज्ञ करनेवाले यजमानोंके गोष्ठको गोविशिष्ट करते हैं।

६ संग्राममें शत्रुओंको क्षीण करनेवाले इन्द्र रथचक्रको वेगवान् करते है। सोमाभिषव नहीं करनेवाले यजमानसे वे दूर रहते हैं और सोमाभिषव करनेवाले यजमानको वर्द्धित करते हैं। विश्व-शिक्षक और भयजनक स्वामी इन्द्र यथेच्छ दासकर्म करनेवालेको अपने वशमें लाते हैं।

७ इन्द्र बनियों (लोभियों) की तरह अन्न चुरानेके लिये गमन करते हैं और मनुष्योंकी शोभाको बढ़ानेवाले उस धनको तथा बहुविध अन्य धनको लाकर यजन करनेवाले यजमानोंको देते हैं अर्थात् यज्ञ नहीं करनेवालोंका धन यज्ञ करनेवालोंको देते हैं। जो व्यक्ति इन्द्रके बलको क्रुद्ध करता है अर्थात् बली इन्द्रको कोपयुक्त करता है, वह सकल व्यक्ति महाविपदुमें स्थापित होता है।

८ शोभन धनवाले और बृहत् साहाय्यवाले दो व्यक्ति जब शोभन गौओंके लिये परस्पर प्रतिद्वन्द्वी होते हैं, तब ऐसा जानकर इन्द्र यज्ञ करनेवाले यजमानकी सहायता करते हैं। मेघोंको कपानेवाले इन्द्र उस यज्ञकारी यजमानको गोसमूह प्रदान करते हैं।

९ हे अङ्गनादि गुणविशिष्ट इन्द्र, हम अपरिमित धनके दाता, अग्निवेशके पुत्र प्रसिद्ध शत्रिनामक राजर्षिकी स्तुति करते हैं। वे उपमानभूत और प्रख्यात हैं। जलराशि उन्हें अच्छी तरहसे सन्तुष्ट करें। उनका धन बलवान् और दीप्तिमान् हो।

३५ सूक्त

इन्द्र देवता । अङ्गिराके अपत्य प्रभूवसु ऋषि । अनुष्टुप् छन्द ।

यस्ते साधिष्ठो वस इन्द्र क्रतुष्टमाभर ।
अस्मभ्यं चषणीसहं सस्निं वाजेषु दुष्टरम् ॥१॥
यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः ।
यद्वा पञ्च क्षितीनामवस्तत् सु न आ भर ॥२॥
आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमेस्य हूमहे ।
वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिन्द्र तुर्वणिः ॥३॥
वृषाह्यसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः ।
स्व क्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम् ॥४॥
त्वं तमिन्द्र मर्त्यममित्रयन्तमद्रिवः ।
सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥५॥

---

१ हे इन्द्र, तुम्हारा जो अतिशय साधक कर्म (प्रज्ञा) है, वह हम लोगोंकी रक्षाके लिये हो। तुम्हारा कर्म सब मनुष्योंको अभिभव करनेवाला है, शुद्ध है और संग्राममें दूसरोंके द्वारा अनभिभवनीय है।

२ हे इन्द्र चार वर्णों में जो तुम्हारा रक्षाकार्य है हे शूर, तीन लोकोंमें जो तुम्हारा रक्षाकार्य विद्यमान है और जो पञ्चजन-सम्बन्धी तुम्हारा रक्षाकार्य है, उस समस्त रक्षाकार्यको तुम हमलोगोंके लिये भलोभाँतिसे आहरण करो।

३ हे इन्द्र, तुम अभिमत फलके निरतिशय साधक, वृष्टिकर्ता और शीघ्र शत्रुसंहारक हो। हे इन्द्र, तुम्हारा रक्षणकार्य वरणीय है। हम उसका आह्वान करते हैं। तुम सर्वव्यापी मरुतोंके साथ मिलित होकर प्रदान करो।

४ हे इन्द्र, तुम अभीष्ट फलवर्षक हो। यजमामोंको धन देनेके लिये तुमने जन्म ग्रहण किया हैं। तुम्हारा बल फल वर्षण करता है। तुम्हारा मन स्वभावसे ही बलवान् है और विरोधियोंका दमनकारी है। हे इन्द्र, तुम्हारा पौरुष संघविनाशक है।

५ हे इन्द्र, तुम वज्रधारी हो। तुम्हारा रथ सर्वत्र अप्रतिहतगतिसे गमन करता है। तुम सौ यज्ञोंके अनुष्ठानकर्त्ता हो और बलके अधिपति हो। जो मनुष्य तुम्हारे प्रति शत्रुताका आचरण करता है, तुम उसके विरुद्ध यात्रा करते हो।

त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्त बर्हिषः ।
उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ॥६॥
आस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु ।
सयावानं धनेधने वाजयन्तमवारथम् ॥७॥
अस्माकमिन्द्रेहिनो रथमवापुरन्ध्या ।
वयं शविष्ठ वार्यं दिविश्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे ॥८॥

३६ सूक्त

इन्द्र देवता । अङ्गिराके अपत्य प्रभूवसु ऋषि । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद्दातुं दामनो रयीणाम् ।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाणश्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम् ॥१॥
आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत् सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे ।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन् गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे ॥२॥

---

६ हे शत्रुओंके हन्ता इन्द्र, यज्ञ करनेवाले मनुष्य संग्राममें तुम्हारा ही आह्वान करते हैं; क्योंकि तुम उद्यतायुध और बहुत प्रजाके मध्यमें पुरातन हो ।

७ हे इन्द्र, तुम हमारे रथकी रक्षा करो । यह रथ संग्राममें सब प्रकारके धनकी इच्छा करता है, अनुचरोंके साथ गमन करता है, दुर्निवार्य है और रणसंकुल है।

८ हे इन्द्र, हमारे निकट तुम आत्मीय होकर आओ। अपनी उत्कृष्ट बुद्धि द्वारा हमारे रथकी रक्षा करो । तुम निरतिशय बलशाली और दीप्तिमान् हो। तुम्हारे अनुग्रहसे हम वरणीय धन या कीर्ति तुममें स्थापित करते हैं । तुम द्योतमान् हो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं।

१ इन्द्र हमारे यज्ञमें आगमन करें। जो देव धन देनेके लिये जानते हैं, वे किस तरहके हैं? इन्द्र धनके दाता हैं अथवा स्वभावसे ही दानी हैं। धनुष्के साथ गमन करनेवाले धानुष्ककी तरह साहसपूर्ण गमन करनेवाले और अत्यन्त तृषित इन्द्र अभिषुत सोमपान करें।

२ हे अश्वद्वय-सम्पन्न शूर इन्द्र, हम लोगोंके द्वारा दिया गया सोमरस पर्वत शिखरकी तरह तुम्हारे संहारक हनुप्रदेशमें आरोहण करे। हे राजमान इन्द्र, तृण द्वारा जैसे घोड़े तृप्त होते हैं, उसी तरहसे हम तुम्हें स्तुतियों द्वारा प्रीत करते हैं। हे इन्द्र, तुम बहुस्तुत हो।

चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनोभिया मे अमतेरिदद्रिवः ।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन्पुरूवसुः ॥३॥
एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रेयर्ति वाचं बृहदाशुषाणः ।
प्र सव्येन मघवन्यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः ॥४॥
वृषा त्वा वृषणं वर्धतु द्यौर्वृषा वृषभ्यां वहसे हरिभ्याम् ।
स नो वृषा वृषरथः सुशिप्र वृषक्रतो वृषा वज्रिन् भरे धाः ॥५॥
यो रोहितौ वाजिनौ वाजिनावान्त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट ।
यूने समस्मै क्षितयो नमन्तां श्रुतरथाय मरुतो दुवोया ॥६॥

३७ सूक्त

इन्द्र देवता । अत्रि ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

सं भानुना यतते सूर्यस्याजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वश्वाः ।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान्य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥१॥

---

३ हे बहुस्तुत, हे वज्रवान् इन्द्र, भूमिमें वर्तमान चक्रकी तरह हमारा हृदय दारिद्र्य-भयसे काँप रहा है। हे सर्वदा वर्द्धमान इन्द्र, स्तोता पुरुवसु ऋषि शीघ्र ही बहुलतासे तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम रथाधिरूढ़ हो।

४ हे इन्द्र, प्रभूत फलको भोगनेवाले स्तोता अभिषव करनेवाले पत्थरकी तरह तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे धनवान् और हरिनामक अश्ववाले इन्द्र, तुम वामहस्तसे धन दान करते हो और दक्षिण हस्तसे भी धन दान करते हो। तुम हमें विफलमनोरथ मत करो।

५ हे इन्द्र, तुम अभिलाषाओंके पूरक हो। अभीष्टवर्षी द्यावापृथिवी तुम्हें संवर्द्धित करें। तुम वर्षणकारी हो। घोड़े तुम्हें यज्ञस्थलमें वहन करते हैं। हे शोभन हनुवाले, हे वज्रधर इन्द्र, तुम्हारा रथ कल्याणवर्षी है। संग्राममें तुम हम लोगोंकी रक्षा करो।

६ हे इन्द्रके सहायक मरुतो, अन्नवान् श्रुतरथ राजाने हमें लोहित वर्णवाले दो अश्व और तीन सौ धेनुरूप धन दिया था। नित्य तरुण उस श्रुतरथ राजाके लिये सकल प्रजा परिचर्यासम्पन्न होकर प्रणाम करती है।

१ यथाविधि आहूत अग्निमें हव्य प्रदान करनेसे अग्नि प्रदीप्त होकर सूर्यरश्मिके साथ आहूयमान होते हैं। जो यजमान "इन्द्रके लिये होम करो" यह कहता है, उस यजमानके लिये उषा अहिंसित होती हैं।

समिद्धाग्निर्वनवत् स्तीर्णबर्हिर्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते ।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्त्ययदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम् ॥२॥
बधूरियं पतिमिच्छंत्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम् ।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्त्तयाते ॥३॥
न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्रस्तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम् ।
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन् ॥४॥
पुष्यात् क्षेमे अभि योगे भवात्युभे वृतौ संयती संजयाति ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति य इन्द्राय सुतसोमो ददाशत् ॥५॥

३८ सूक्त

इन्द्र देवता । अत्रि ऋषि । अनुष्टुप् छन्द ।

उरोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वीरातिः शतक्रतो ।
अधा नो विश्वचर्षणे द्युम्ना सुक्षत्र मंहय ॥१॥

---

२ अग्निको प्रदीप्त करनेवाले और कुशको विस्तृत करनेवाले यजमान सम्भजन करते हैं। पाषाणोत्तोलनपूर्वक जिन्होंने सोमरस निःसृत किया है, वे स्तुति करते है। जिस अध्वर्युके पाषाणसे सुमधुर शब्द होता है, वह अध्वर्यु हव्य लेकर नदीमें अवगाहन करते हैं।

३ पत्नी पतिकी इच्छा करती हुई यज्ञमें उसका अनुगमन करती है। इन्द्र इसी प्रकारसे अनुगामिनी महिषीका आनयन करते हैं। इन्द्रका रथ हम लोगोंके निकट प्रचुर धन वहन करे। वह अधिक शब्द करता है। वह चारो तरफ सहस्र धन निक्षेप करे।

४ जिनके यज्ञमें इन्द्र दुग्धमिश्रित मदजनक सोमरस पान करते हैं, वह राजा कभी व्यथित नहीं होते हैं। वह राजा अनुचरोंके साथ सर्वत्र गमन करते हैं, शत्रुओंका संहार करते हैं, प्रजाओंकी रक्षा करते हैं और सुख-सम्भोगसे युक्त होकर इन्द्रकी स्तुतिका पोषण करतें हैं।

५ जो इन्द्रको अभिषुत सोम प्रदान करता है, वह बन्धुबान्धवोंका पोषण करता है, वह प्राप्त धनकी रक्षा करनेमें और अप्राप्त धनकी प्राप्तिमें समर्थ होता है। वह वर्तमान तथा नियत अहोरात्रको जीतता है। वह सूर्य और अग्नि दोनोंका ही प्रियपात्र होता है।

---

१ हे इन्द्र, तुमने बहुत कर्म किया है। तुम प्रभूत धनका महान् दान करते हो। हे सर्वदर्शी, हे शोभन धनवाले, तुम हम लोगोंको महान् धन प्रदान करो ।

यदीमिन्द्र श्रवाय्यमिषं शविष्ठ दधिषे ।
प्रप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥२॥
शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः ।
उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः ॥३॥
उतो नो अस्य कस्य चिद्दक्षस्य तव वृत्रहन् ।
अस्मभ्यं नृम्णमाभरास्मभ्यं नृमणस्यसे ॥४॥
नू त आभिरभिष्टिभिस्तव शर्मञ्छतक्रतो ।
इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः ॥५॥

———

३९ सूक्त

इन्द्र देवता । अत्रि ऋषि । अनुष्टुप् और पङ्क्ति छन्द ।

यदिन्द्र चित्रमेहनास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्याभर ॥१॥
यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदाभर ।
विद्याम तस्य वयमकूपारस्य दावने ॥२॥

---

२ हे महाबलशाली हिरण्यवर्ण इन्द्र, यद्यपि तुम सुप्रसिद्ध प्रचुर अन्नके अधिपति हो; तथापि यह अत्यन्त दुर्लभ रूपसे सर्वत्र कीर्तित होता है।

३ हे वज्रधर इन्द्र, पूजनीय एवम् विख्यात कर्मवाले मरुद्गण तुम्हारे बलस्वरूप हैं। तुम और वे (इन्द्र-मरुत) दोनों ही पृथ्वीके ऊपर स्वेच्छाविहारी होकर शासन करते हो।

४ हे वृत्रहन्ता इन्द्र, हम लोग तुम्हारी उपासना करते हैं। तुम हम लोगोंको किसी क्षमताशाली का धन लाकर देते हो; क्योंकि तुम हम लोगोंको धनाढ्य करनेके अभिलाषी हो।

५ हे सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र, तुम्हारे अभिगमनसे हम शीघ्र ही समृद्ध हों। हे इन्द्र, तुम्हारे सुखमें हम अंशभागी हों। हे शूर, तुम्हारे द्वारा हम सुरक्षित हों।

———

१ हे इन्द्र, हे वज्रधर, तुम्हारा रूप अत्यन्त विचित्र है। देनेके लिये तुम्हारे पास जो महामूल्य धन है, हे धनवान् इन्द्र, उसे तुम हम लोगोंको, दोनों हाथोंसे, प्रदान करो।

२ हे इन्द्र, जिस अन्नको तुम श्रेष्ठ समझते हो, वह अन्न हम लोगोंको प्रदान करो। हम तुम्हारे उस श्रेष्ठ अन्नके दानपात्र हों।

यत्ते दित्सु प्राध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृड्हा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥३॥
मंहिष्ठं वो मघोनां राजानं चर्षणीनाम् ।
इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वीभिर्जुजुषे गिरः ॥४॥
अस्मा इत् काव्यं वच उक्थमिन्द्राय शंस्यम् ।
तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरो वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥५॥

---

४० सूक्त

प्रथम ४ ऋक्के इन्द्र देवता, ५के सूर्य और अवशिष्ट ४ ऋक्के अत्रि देवता ।

अत्रि ऋषि । अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द ।

आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥१॥
वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥२॥

---

३ हे इन्द्र, तुम्हारा मन दान देनेके लिये विश्रुत और महान् है। हे वज्रधर, तुम हम लोगोंको सारवान अन्न प्रदान करनेके लिये आदर प्रदर्शित करते हो।

४ इन्द्र हविर्लक्षण धनसे युक्त हैं। वे तुम लोगोंके अत्यन्त पूजनीय हैं। वे मनुष्योंके अधिपति हैं। स्तोता लोग प्राचीन स्तोत्रों द्वारा प्रशंसा करनेके लिये उनकी सेवा करते हैं।

५ इन्द्रके लिये ही यह काव्य, वाक्य और उकूथ उचार्य हुआ है। वे स्तोत्रवाहक हैं। अत्रिपुत्र उनके निकटमें ही स्तोत्रोंको उच्चस्वरसे उच्चारित करते हैं और उद्दीपित करते।

---

१ हे इन्द्र, तुम हम लोगोंके यज्ञमें आओ। हे सोमके स्वामी इन्द्र, आकर पत्थरों द्वारा अभिषुत सोमका पान करो। हे फलवर्षक, हे शत्रुओंके अतिशय हन्ता, फलवर्षी मरुतोंके साथ तुम सोम पान करो।

२ अभिषवसाधन पाषाण वर्षणकारी है। सोमपान-जनित हर्ष वर्षणकारी है। यह अभिषुत सोम वर्षणकारी है। हे फलवर्षक, हे शत्रुओंके अतिशय हन्ता, फलवर्षी मरुतोंके साथ तुम सोम पान करो।

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥३॥
ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट् शुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ्माध्यन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥४॥
यत्त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः ॥५॥
स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्तमाना अवाहन् ।
गूड़्हं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः ॥६॥
मा मामिमं तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा निगारीत् ।
त्वं मित्रो असि सत्यराधास्ता मेहावतं वरुणश्च राजा ॥७॥

---

३ वज्रधर इन्द्र, तुम सोमरसके सेचनकर्त्ता और अभीष्टवर्षी हो । हम विचित्र रक्षाके लिये तुम्हारा आह्वान करते हैं। हे फलवर्षक, हे शत्रुओंके अतिशय हन्ता, फलवर्षी मरुतोंके साथ तुम सोम पान करो ।

४ इन्द्र ऋजीषी (सोमरसकी सिट्ठीवाले) और वज्रधर हैं । इन्द्र अभीष्टवर्षी, शत्रु-संहार-कर्त्ता, बलवान्, सबके ईश्वर, वृत्रहन्ता और सोमपानकर्ता हैं । इस तरहके इन्द्र घोड़ोंको रथमें युक्त करके हम लोगोंके अभिमुख आवें और माध्यन्दिन सवनमें सोमपानसे हृष्ट हों ।

५ हे सूर्य (प्रेरक देव), स्वर्भानु नामक असुरने जब तुम्हें अन्धकारसे आच्छन्न कर लिया था, तब उस समय सकल भवन उसी तरहसे दीख रहा था, जैसे वहाँवाले सब लोग अपने-अपने स्थानको नहीं जान रहे हैं और मूढ़ हैं ।

६ हे इन्द्र, जब तुमने सूर्यके अधोदेशमें वर्तमान, स्वर्भानु असुरकी द्योतमान मायाको दूरमें ही अपसारित किया था, तब व्रतविघातक अन्धकार द्वारा समाच्छन्न सूर्यको अत्रिने चार ऋचाओं द्वारा प्रकाशित किया था ।

७ (सूर्यवाक्य—) हे अत्रि, ऐसी अवस्थावाले हम तुम्हारे हैं । अन्नकी इच्छासे द्रोह करनेवाले असुर भयजनक अन्धकार द्वारा हमें नहीं निगल जायँ; अतः तुम और वरुण दोनों ही हमारी रक्षा करो। तुम हमारे मित्र और सत्यपालक हो ।

ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन् कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन् ।
अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात् स्वर्भानोरप माया अघुक्षत् ॥८॥

यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्यन्ये अशक्नुवन् ॥९॥

---

४१ सूक्त

विश्वेदेव देवता । अत्रिके अपत्य भौम ऋषि । जगती, विराट् और त्रिष्टुप् छन्द ।

को नु वां मित्रावरुणावृतायन्दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे ।
ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् ॥१॥

ते नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतो जुषन्त ।
नमोभिर्वा ये दधते सुवृक्तिं स्तोमं रुद्राय मीढ़ूषे सजोषाः ॥२॥

आ वां येष्ठाश्विना हुवध्यै वातस्य पत्मन्रथ्यस्य पुष्टौ ।
उत वा दिवो असुराय मन्म प्रान्धांसीव यज्यवे भरध्वम् ॥३॥

---

८ उस समय ऋत्विक् अत्रिने सूर्यको उपदेश दिया, प्रस्तरखण्डोंका घर्षण करके इन्द्रके लिये सोमाभिषव किया, स्तोत्रों द्वारा देवीकी पूजा की और मन्त्र-प्रभावसे अन्तरिक्षमें सूर्यके चक्षुको संस्थापित किया। उस समय उन्होंने स्वर्भानुकी समस्त मायाको दूरसें अपसारित किया।

९ असुर स्वर्भानुने जिस सूर्यको अन्धकार द्वारा आच्छन्न किया था, अत्रिपुत्रने अवशेषमें उन्हें मुक्त किया। दूसरे कोई समर्थ नहीं हुए।

---

१ हे मित्रावरुण देव, तुम दोनोंके यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाला कौन यजमान समर्थ होता है? तुम दोनों स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्षके किस स्थानमें रहकर हम लोगोंकी रक्षा करते हो और हव्यदाता यजमानको पशु तथा धन प्रदान करते हो।

२ हे मित्र, वरुण, अर्यमा, आयु; इन्द्र, ऋभुक्षा और मरुद्गण, तुम सब देव हमारे शोभन और पापवर्जित स्तोत्रका सेवन करो। तुम सब रुद्रके साथ प्रीयमाण होकर पूजा ग्रहण करो।

३ हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों दमनकारी हो। हम तुम्हारे रथको वायुवेग द्वारा वेगवान् करनेके लिये तुम दोनोंका आह्वान करते हैं। हे ऋत्विको, तुम लोग द्योतमान और प्राणापहारक रुद्रके लिये स्तोत्र और हव्यका सम्पादन करो।

प्र सक्षणो दिव्यः कण्वहोता त्रितो दिवः सजोषा वतो अग्निः ।
पूषा भगः प्रभृथे विश्वभोजा आजिं न जग्मुराश्वश्वतमाः ॥४॥
प्र वो रयिं युक्ताश्वं भरध्वं राय एषेऽवसे दधीत धीः ।
सुशेव एवैरौशिजस्य होता ये व एवा मरुतस्तुराणाम् ॥५॥
प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वं प्रदेवं विप्रं पनितारमर्कैः ।
इषुध्यव ऋतसापः पुरन्धीर्वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः ॥६॥
उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः ।
उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हावहतो मर्त्याय यज्ञम् ॥७॥
अभि वो अर्चे पोष्यावतो नॄन्वास्तोष्पतिं त्वष्टारं रराणः ।
धन्या सजोषा धिषणा नमोभिर्वनस्पतीँरोषधीराय एषे ॥८॥

---

४ मेधावी लोग जिनका आह्वान करते हैं, जो यज्ञका सेवन करते हैं, शत्रुओंका विनाश करते हैं और स्वर्गीय हैं, वे (वायु, अग्नि, पूषा) क्षिति आदि तीनों स्थानोंमें जायमान होकर सूर्यके साथ तुल्यरूपसे प्रीति उत्पन्न करते हैं। ये सकल विश्वरक्षक देव यज्ञस्थलमें शीघ्र आगमन करें जैसे वेगवान् अश्व संग्राममें वेगसे प्रधावित होते हैं।

५ हे मरुतो, तुम लोग अश्वसहित धनका सम्पादन करो। स्तोता लोग गो, अश्व आदि धन लाभके लिये और प्राप्त धनकी रक्षाके लिये तुम लोगोंकी स्तुति करते हैं। उशिजपुत्र कक्षीवान्के होता अत्रि गमनशील अश्वों द्वारा सुखी हों। जो घोड़े वेगवान् और तुम्हारे हैं।

६ हे हमारे ऋत्विको, तुम लोग द्योतमान, कामनाओंके विशेषपूरक या विप्रवत् पूज्य और स्तुति-योग्य अथवा फलप्रदाता वायुदेवको यज्ञमें जानेके लिये अर्चनीय स्तोत्रों द्वारा रथाधिरूढ़ करो। गमनवती, यज्ञग्रहणकारिणी, रूपवती और प्रशंसनीय देवपत्नियाँ हमारे यज्ञमें आगमन करें।

७ हे अहोरात्राभिमानी देवो, तुम दोनों महान् हों। वन्दनीय स्वर्गस्थ देवोंके साथ हम तुम दोनोंको सुखदायक और ज्ञापक मन्त्रोंके साथ हव्य प्रदान करते हैं। हे देवो, तुम दोनों सब कर्मजातको जानकर यजमानके यज्ञाभिमुख आगमन करो।

८ तुम सब बहुत लोगोंके पोषक और यज्ञके नेता हो। स्तोत्र आदिके द्वारा अथवा हवि देकर हम तुम्हारी स्तुति, धन लाभके लिये, करते हैं। वास्तुपति त्वष्टाकी हम स्तुति करते हैं। धन देनेवाली और अन्यान्य देवोंके साथ गमन करनेवाली या आनन्दित होनेवाली धिषणा (वाणी) की हम स्तुति करते हैं। वनस्पतियों और औषधियोंकी हम स्तुति करते हैं।

तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः ।
पनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शंसं नर्यो अभिष्टौ ॥९॥
वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपां सुवृक्ति ।
गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना ॥१०॥
कथा महे रुद्रियाय ब्रवाम कद्राये चिकितुषे भगाय ।
आप ओषधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः ॥११॥
श्रृणोतु न ऊर्जां पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा ।
श्रृण्वन्त्वापः पुरो न शुभ्राः परिस्रुचो बबृहाणस्याद्रेः ॥१२॥
विदा चिन्नु महान्तो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः ।
वयश्चन सुभ्व आवयन्ति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः ॥१३॥

---

९ वीरोंकी तरह जगत्के संस्थापक मेघ, विस्तृत दानके विषयमें, हम लोगोंके प्रति अनुकूल हों। वे स्तुतियोग्य, आप्त्य, यजनीय, मनुष्योंके हितकारी और हम लोगोंकी स्तुतिसे सदा प्रसन्न होकर हम लोगोंको समृद्ध करें।

१० हम वर्षणकारी, अन्तरिक्ष (मेघ) के गर्भस्थानीय जलके रक्षक वैद्युत अग्निकी, पापवर्जित शोभन स्तोत्रों द्वारा, स्तुति करते हैं। अग्नि तीन स्थानोंमें व्याप्त और त्रिविध हैं। मेरे गमनकालमें अग्नि सुखकर रश्मियों द्वारा मेरे ऊपर क्रुद्ध नहीं होते हैं; किन्तु प्रदीप्त ज्वाला धारण कर वे जंगलोंको जलाते हैं।

११ हम अत्रिगोत्रोत्पन्न किस प्रकारसे महान् रुद्रपुत्र मरुतोंकी स्तुति करें? सर्वविद् भगदेवको, धन लाभके लिये, कौनसा स्तोत्र कहें। जलदेवता, ओषधियाँ, द्यु देवता, वन और वृक्ष जिनके केशस्वरूप हैं, वे पर्वत हम लोगोंकी रक्षा करें।

१२ बल अथवा अन्नके अधिपति और अकाशचारी वायु हमारी स्तुतियोंको सुनें। नगरकी तरह उज्ज्वल, बड़े पर्वतके चतुर्दिक् सरणशील वारिधारा हमारी वाणी सुने।

१३ हे महान् मरुतो, तुम लोग शीघ्र ही स्तोत्रोंको जानो। हे दर्शनीयो, तुम्हारी स्तुति करनेवाले हम लोग श्रेष्ठ हव्य धारण करके तुम्हारी स्तुति करते हैं। मरुद्गण अनुकूल भावसे आगमन करके, क्षोभ द्वारा अभिभूत मनुष्य वैरियोंको अस्त्रों द्वारा मार करके, हम लोगोंके निकट उपस्थित हों।

आ दैव्यानि पार्थिवानि जन्मापश्चाच्छा सुमखाय वोचम् ।
वर्द्धन्तां द्यावो गिरश्चन्द्राग्रा उदा वर्धन्तामभिषाता अर्णाः ॥१४॥
पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरूत्री वा शक्रा या पायुभिश्च ।
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत्सूरिभिर्ऋजुहस्त ऋजुवनिः ॥१५॥
कथा दाशेम नमसा सुदानूनेवया मरुतो अच्छोक्तौ प्रश्रवसो मरुतो अच्छोक्तौ ।
मा नोहिर्बुध्न्योरिषे धादस्माकं भूदुपमातिवनिः ॥१६॥
इति चिन्नु प्रजायै पशुमत्यै देवासो वनते मर्त्यो व आ देवासो वनते मर्त्यो वः ।
अत्रा शिवां तन्वो धासिमस्या जरां चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत ॥१७॥
तां वो देवाः सुमतिमूर्जयन्तीमिषमश्याम वसवः शसा गोः ।
सा नः सुदानुर्मृड़यन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुविताय गम्याः ॥१८॥

---

१४ हम देवसम्बन्धी और पृथ्वीसम्बन्धी जन्म तथा जल लाभ करनेके लिये सुन्दर यज्ञवाले मरुतोंकी स्तुति करते हैं। हमारी स्तुतियाँ वर्द्धमान हों। प्रीतिदायक स्वर्ग समृद्धि-सम्पन्न हों। मरुतों द्वारा परिपुष्ट नदियाँ जलपूर्ण हों।

१५ हम सदा स्तुति करते हैं। जो उपद्रवोंका निवारण करके हम लोगोंकी रक्षा करनेमें समर्थ होती है, वह सबकी निर्मात्री, पूज्या भूमि हम लोगोंकी स्तुतिको ग्रहण करें। प्रशस्त वचनवाले मेधावी स्तोताओंके प्रति वह प्रसन्न हो और अनुकूल हस्त होकर हम लोगोंको कल्याण प्रदान करे।

१६ हम लोग किस प्रकारसे दानशील मरुतोंका समुचित स्तवन करें? किस प्रकार वर्तमान स्तोत्र द्वारा मरुतोंके योग्य उपासना करें? वर्तमान स्तोत्र द्वारा मरुतोंका स्तवन कैसे सम्भव है? अहिर्बुध्न्य देव हम लोगोंका अनिष्ट नहीं करें; शत्रुओंको विनष्ट करें।

१७ हे देवो, मनुष्य यजमान सन्तानके लिये और पशुओंके लिये शीघ्र ही तुम लोगोंकी उपासना करते हैं। हे देवो, मनुष्य लोग तुम्हारी उपासना करते हैं। इस यज्ञमें निर्ऋति देवता कल्याणकर अन्न द्वारा हमारे शरीरका पोषण करें और जरा दूर करें।

१८ हे द्योतमान वसुओ, हम लोग तुम्हारी उस सुमति धेनुसे बलकारक और हृदय-पोषक अन्न लाभ करें। वह दानशीला और सुखदायिनी देवी हम लोगोंके सुखके लिये शीघ्र आगमन करे।

अभि न इड़ा यूथस्य माता स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु ।
उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः ॥१६॥
सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः ॥२०॥

४२ सूक्त

विश्वदेवगण देवता । भौम ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र शन्तमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः ।
पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः ॥१॥
प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात् सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम् ।
ब्रह्म प्रियं देवहितं यदस्त्यहं मित्रे वरुणे यन्मयोभु ॥२॥
उदीरय कवितमं कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन ।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥३॥

---

१६ गोसंघकी निर्मात्री इड़ा और उवशी नदियोंके साथ हम लोगोंके प्रति अनुकूल हों । निरतिशय दीप्तिशालिनी उर्वशी हम लोगोंके यज्ञ आदि कार्यकी प्रशंसा करके यजमानोंको दीप्ति द्वारा समाच्छादित करके उपस्थित हो ।

२० पोषक ऊर्जव्य राजाका देवसंघ हम लोगोंका सेवन करे ।

---

१ प्रदत्त हव्यके साथ हमलोगोंका निरतिशय सुखदायक स्तोत्र वरुण, मित्र, भग और आदित्यके निकट उपस्थित हो । जो प्राण आदि पञ्च वायुके साधक हैं, जो विविध वर्णके अन्तरिक्षमें अवस्थान करते हैं, जिनकी गति अप्रतिहत है, जो प्राणदाता और सुखसम्पादक हैं, वह वायु हम लोगोंका स्तोत्र श्रवण करें ।

२ हमारे हृदयङ्गम और सुखकर स्तोत्रको अदिति देवता ग्रहण करें, जैसे जननी अपने पुत्रको ग्रहण करती है। अहोरात्राभिमानी देव मित्र और वरुणके उद्देशसे हम मनोहर, आनन्ददायक और देवग्राह्य स्तोत्र (मन्त्र जात)प्रदान करते हैं ।

३ हे ऋत्विको, तुम लोग अतिशय क्रान्तदर्शी और पुरोवर्ती;अग्नि अथवा सविताको उद्दीप्त करो—प्रमुदित करो। मधुर सोमरस और घृत द्वारा इन्हें अभिषिक्त करो—तृप्त करो। वे सविता देव हम लोगोंको शुद्ध, हितकर तथा आलादक हिरण्य प्रदान कर ।

समिन्द्रणो मनसा नेषि गोभिः संसूरिभिर्हरिवः संस्वस्ति ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम् ॥४॥
देवो भगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य सञ्जितो धनानाम् ।
ऋभुक्षा वाज उत वा पुरन्धिरवन्तु नो अमृतासस्तुरासः ॥५॥
मरुत्वतो अप्रतीतस्य जिष्णोरजूर्यतः प्र ब्रवामा कृतानि ।
न ते पूर्वे मघवन्नापरासो न वीर्यं नूतनः कश्चनाप ॥६॥
उपस्तुहि प्रथमं रत्नधेयं बृहस्पतिं सनितारं धनानाम् ।
यः शंसते स्तुवते शम्भविष्ठः पुरूवसुरागमज्जोहुवानम् ॥७॥
तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः ।
ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः ॥८॥

---

४ हे इन्द्र, तुम हमलोगोंको प्रसन्न मनसे गौएँ प्रदान करते हो। हे अश्वद्वय-सम्पन्न इन्द्र, तुम हम लोगोंको मेधावी पुत्र अथवा ऋत्विक्, कल्याण, देवताओंके हितकर अन्न और यज्ञीय देवोंका अनुग्रह प्रदान करते हो।

५ भगदेव, धनस्वामी सविता, वृत्रहन्ता इन्द्र, भली भाँतिसे धनके विजेता ऋभुक्षा, वाज और पुरन्धि आदि समस्त अमर शीघ्र ही हम लोगोंके यज्ञमें उपस्थित होकर हम लोगोंकी रक्षा करें।

६ हम यजमान मरुद्वान् इन्द्रके कार्योंका वर्णन करते हैं। वे युद्धसे कभी पलायमान नहीं होते हैं। वे जयनशील और जरारहित हैं। हे इन्द्र, तुम्हारे पराक्रमको किसी पुरातन पुरुषने नहीं पाया है, उनके पीछे होनेवालोंने भी नहीं पाया है। और क्या, आश्चर्यभूत किसी नवीनने भी तुम्हारे पराक्रमको नहीं पाया है।

७ हे अन्तरात्मा, तुम अतिशय श्रेष्ठ और रमणीय धनदाता वृहस्पति (मन्त्रपति) की स्तुति करो। वे हविर्लक्षण धनके विभागकर्ता हैं। वे स्तोत्रकर्त्ता यजमानको महान् सुख प्रदान करते हैं। आह्वान करनेवाले यजमानके निकट वे प्रभूत धन लेकर आगमन करते हैं।

८ हे वृहस्पति, तुम्हारे द्वारा रक्षित होनेपर मनुष्य लोग अहिंसित, धनवान् और सुन्दर पुत्रोंसे युक्त होते हैं। तुम्हारे द्वारा अनुगृहीत होकर जो कोई धनवान् अश्व, गौ और वस्त्र दान करता है, वह धन लाभ करे।

विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थैः ।
अपव्रतान् प्रसवे वावृधानान् ब्रह्मद्विषः सूर्याद्यावयस्व ॥९॥
य ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्तं मरुतो नि यात ।
यो वः शमीं शशमानस्य निन्द्रात्तु च्छयान् कामान् करते सिष्विदानः॥१०॥
तमुष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य ।
यक्ष्वामहे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य ॥११॥
दमुनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः ।
सरस्वती बृहद्दिवोतराका दशस्यन्तीर्वरिवस्यन्तु शुभ्राः ॥१२॥
प्र सू महे सुशरणाय मेधाङ्गिरम्भरे नव्यसीं जायमानाम् ।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः ॥१३॥

---

९ हे बृहस्पति, जो स्तुतिप्रतिपादक हमलोगोंको नहीं दान देकर स्वयम् उपभोग करता है, जो व्रत धारण नहीं करता है, जो मन्त्रविद्वेषी है, उसके धनको तुम नष्ट करो। सन्ततिसम्पन्न होकर; यद्यपि वह मनुष्यलोकमें वर्द्धमान हो रहा है; तथापि तुम उसे सूर्यसे पृथक् करो अर्थात् अन्धकारमें रखो।

१० हे मरुतो, जो यजमान देवयज्ञमें राक्षसोंको बुलाता है अर्थात् अनुष्ठानको आसुरी बना देता है, अन्न, अश्व, कृषि आदिके द्वारा उत्पन्न भोगके लिये, जो अपनेको क्लेश देता [घर्माक्त करता] है और जो तुम्हारी स्तुति करनेवालेकी निन्दा करता है, उस यजमानको चक्रविहीन रथ द्वारा तुम लोग अन्धकारमें निमग्न कर देते हो।

११ हे आत्मा, तुम रुद्रदेवकी स्तुति करो, जिनके वाण और धनुष् सुन्दर हैं—विरोधियोंके नाशक हैं। जो समस्त औषधोंके ईश्वर है, उन्हीं रुद्रका यजन करो और महान् कल्याणके लिये द्योतमान और बलवान् या प्राणदाता रुद्रकी परिचर्या करो ।

१२ दान्त मनवाले और चमस-अश्व-रथ-गौ आदिके निर्माणमें कुशलहस्त ऋभुगण, वर्षणकारी इन्द्रकी पत्नी गङ्गा आदि नदियाँ, विभु द्वारा कृत सरस्वती नदी और दीप्तिमती राका आदि अभीष्टवर्षी तथा दीप्त हैं। ये हमलोगोंको धन प्रदान करें।

१३ महान् और शोभन रक्षक इन्द्र या पर्जन्यके लिये हम अतिशय स्तुत्य और सद्योजात स्तुति प्रदान करते हैं। इन्द्र वर्षणकारी हैं। वे कन्यारूप पृथिवीके हितके लिये नदियोंका रूप-विधान करते हैं और हमलोगोंको जल प्रदान करते हैं।

प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तमिड़स्पतिं जरितर्नूनमश्याः ।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः ॥१४॥
एष स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँ रुदश्याः ।
कामो राये हवते मा स्वस्त्युप स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः ॥१५॥
प्रैषः स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतीँरोषधी राये अश्याः ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मानो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१६॥
उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥१७॥
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥१८॥

* * *

१४ हे स्तोताओ, तुम्हारी शोभन स्तुति गर्जनशील और शब्दकारी उदकस्वामी पर्जन्यके पास पहुँचती है। वे मेघोंको धारण करते हैं और वारिवर्षण करके द्यावापृथिवीको वैद्युतालोकसे आलोकित करके गमन करते हैं।

१५ हमारे द्वारा सम्पादित स्तोत्र रुद्रके तरुण पुत्र मरुतोंके अभिमुख भली भाँतिसे उपस्थित हो। हे मन, धनेच्छा हम लोगोंको निरन्तर उत्तेजित करती है। विविध (पृषत्) वर्णके अश्वपर आरोहण करके, जो यज्ञमें गमन करते हैं, उनकी स्तुति करो।

१६ धनके लिये हमारे द्वारा विहित यह स्तोत्र पृथिवी, स्वर्ग, वृक्ष और ओषधियोंके निकट गमन करे। हमारे लिये सब देवोंका सुन्दर आह्वान् हो। माता पृथिवी हम लोगोंको दुर्मतिमें मत स्थापित करे।

१७ हे देवो, हमलोग निरन्तर निर्विघ्न महा सुखका भोग करें।

१८ हम लोग अश्विद्वयकी उस रक्षाको प्राप्त करें, जिसका पहले किसीने भी अनुभव नहीं किया है, जो आनन्ददायक तथा सुखसम्पन्न है। हे अमरणशील अश्विनीकुमारो, तुम दोनों हम लोगोंको ऐश्वर्य, वीर पुत्र और समस्त सौभाग्य प्रदान करो।

४३ सूक्त

विश्वदेवगण देवता । अत्रि ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा ।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति ॥१॥
आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे ।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम् ॥२॥
अध्वर्यवश्चकृवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम् ।
होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय ॥३॥
दशक्षिपो युञ्जते बाहू अद्रिं सोमस्य या शमितारा सुहस्ता ।
मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठां चनिश्चदद्दुहे शुक्रमंशुः ॥४॥

१ द्रुतगामिनी नदियाँ अहिंसित होकर (कोई अनिष्ट नहीं उत्पन्न करके) मधुर रसके साथ हम लोगोंके निकट आगमन करें। विशेष प्रीति उत्पन्न करनेवाले स्तोता महान् धन लाभके लिये आनन्ददायक सप्त महा नदियोंका आह्वान करें। *

२ हम अन्न लाभके लिये शोभन स्तव और हव्य द्वारा हिंसारहित द्यावा पृथिवीको प्रसन्न करनेकी इच्छा करते हैं। प्रियवचन, शोभनहस्त और यशोयुक्त मातृपितृस्वरूप द्यावापृथिवी सम्पूर्ण संग्राम या यज्ञमें हम लोगोंकी रक्षा करें।

३ हे अध्वर्युओ, तुम लोग मधुर आज्य आदि हव्य प्रस्तुत करो और वह रमणीय तथा दीप्त सोम सर्वप्रथम वायुको, अर्पित करो। हे वायु, तुम होताकी तरह इस सोमको अन्य देवोंसे पहले पियो। हे वायुदेव, यह मधुर सोमरस तुम्हारे हर्षके लिये देते हैं।

४ ऋत्विकोंकी सोमपेषक दसो अंगुलियाँ और सोमरस-निस्सारणपटु दोनों बाहु पाषाण ग्रहण करते हैं। कुशलाङ्गुलियुक्त ऋत्विक् आनन्दित होकर मधुर सोमसे शैलज रस दोहन करते हैं एवम् सोमसे निर्मल रस निःसृत होता है।

---

* यहाँ भी गंगा आदि सात नदियोंके लिये सङ्केत है। "इमं मे गङ्गे" ऋ० १० । ७५ । ५ ।

असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय ।
हरी रथे सुधुरा योगे अर्वागिन्द्र प्रिया कृणुहि हूयमानः ॥५॥
आ नो महीमरमतिं सजोषा ग्नां देवीं नमसा रातहव्याम् ।
मधोर्मदाय बृहतीमृतज्ञामाग्ने वह पथिभिर्देवयानैः ॥६॥
अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा वपावन्तं नाग्निना तपन्तः ।
पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठ आ घर्मो अग्निमृतयन्नसादि ॥७॥
अच्छामही बृहती शन्तमा गीर्दूतो न गन्त्वश्विना हुवध्यै ।
मयोभुवा सरथा यातमर्वाग्गन्तं निधिं धुरमाणिर्न नाभिम् ॥ ८ ॥
प्र तव्यसो नम उक्तिं तुरस्याहं पूष्ण उत वायोरदिक्षि ।
या राधसा चोदितारा मतीनां या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन् ॥ ९ ॥

---

५ हे इन्द्र, तुम्हारी सेवाके लिये, वृत्रबधादि कार्यके लिये, बलके लिये और महान् हर्षके लिये सोमरस समर्पित किया जाता है। हे इन्द्र, इसलिये हम लोग तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम प्रिय, सुशिक्षित और विनम्र अश्वद्वयको रथमें युक्त करके हम लोगोंके निकट आगमन करो।

६ हे अग्नि, तुम हम लोगोंके साथ प्रीयमाण होकर मधुर सोमपानसे प्रहृष्ट होनेके लिये देवगन्तव्य मार्ग द्वारा ग्ना देवीको हम लोगोंके निकट लाओ। वह बलशालिनी देवी सर्वत्र गमन करे और समस्त यज्ञको जाने। स्तोत्रके साथ उस देवीको हव्य समर्पित हो।

७ मेधावी अध्वर्युओंने अग्निके ऊपर हव्यपात्र स्थापित किया है, जैसे पिताकी गोदमें प्रियतम पुत्र हो। मालूम पड़ता है जैसे स्थूलकाय पशुको वे सब अग्नि द्वारा दग्ध कर रहे हैं।

८ हम लोगोंका यह पूजनीय, महान् और सुखदायक स्तोत्र अश्विद्वयको इस स्थानमें आह्वान करनेके लिये दूतकी तरह गमन करे। हे सुखदायक अश्विद्वय, तुम दोनों एक रथपर आरोहण करके अर्पित सोमके निकट भारवाहक कीलकी तरह आगमन करो। जैसे विना कीलवाली नाभिसे रथका निर्वहण नहीं होता है, उसी तरहसे विना तुम्हारे सोमयागका निर्वाह नहीं होता है।

९ हम (ऋषि) बलवान् और वेगपूर्वक गमन करनेवाले पूषा तथा वायुदेवकी स्तुति करते हैं। ये दोनों देव धन और अन्नके लिये लोगोंकी बुद्धिको प्रेरित करें अथवा जो देव संग्रामके प्रेरक है, वे धन प्रदान करें।

आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वाना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः ।
यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गन्तु मरुतो विश्व ऊती ॥१०॥
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥११॥
आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम् ।
सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम ॥१२॥
आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः ।
ग्ना वसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातुशृङ्गो वृषभो वयोधाः ॥१३॥
मातुष्पदे परमे शुक्र आयोर्विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन् ।
सुशेव्यं नमसा रातहव्याः शिशुं मृजन्त्यायवो न वासे ॥१४॥

---

१० हे उत्पन्न मात्रको जाननेवाले अग्नि, हम लोगोंके द्वारा आहूयमान होकर तुम विविध (इन्द्र वरुण आदि) नामधारी और विभिन्नाकृति निखिल मरुतोंका यज्ञमें वहन करते हो। हे मरुतो, तुम सब रक्षाके साथ यजमानके यज्ञमें, शोभन फलवाली स्तुतिमें और पूजामें उपस्थित होओ।

११ हम लोगों द्वारा यष्टव्य सरस्वती द्योतमान द्युलोकसे यज्ञस्थलमें आगमन करे तथा महान् मेघसे आगमन करे। हमारी स्तुतिसे प्रसन्न होकर वह स्वेच्छापूर्वक हमारे सम्पूर्ण सुखकर स्तोत्रोंको सुने।

१२ बलवान्, पुष्टिकारक और स्निग्धाङ्ग बृहस्पतिको यज्ञगृहमें स्थापित करो। वे गृहके मध्यमें अवस्थित होकर सर्वत्र प्रभा विस्तृत करते हैं। वे हिरण्यवर्ण और दीप्तिमान् हैं। हम लोग उनकी पूजा करते हैं।

१३ अग्नि सबको धारण करते हैं। वे अत्यन्त दीप्तिशाली, अभीष्टवर्षी तथा शिखा और औषधिसमूह द्वारा आच्छादित हैं। वे अप्रतिहतगति और त्रिविध शृङ्गविशिष्ट (लोहित, शुक्ल और कृष्णवर्णकी ज्वालाओंसे व्याप्त) हैं। वे वर्षणकारी और अन्नदाता हैं। हम लोग उनका आह्वान करते हैं। वे सम्पूर्ण रक्षाके साथ आगमन करें।

१४ यजमानके होता, हव्यपात्रधारी ऋत्विगगण जननीस्वरूप पृथिवीके उज्ज्वल और अत्युत्कृष्ट स्थान (उत्तर वेदी) पर गमन करते हैं। जीवनवृद्धिके लिये जैसे लोग शिशुके अङ्गोंका घर्षण करते हैं, उसी तरह वे नवजात कोमलप्रकृति अग्निका पोषण, स्तुतियोंके साथ हव्य प्रदान करके, करते हैं।

बृहद्वयो बृहते तुभ्यमग्ने धियाजुरो मिथुनासः सचन्त ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१५॥
उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥१६॥
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥१७॥

४४ सूक्त

विश्वदेवगण देवता । कश्यपके अपत्य अवत्सार ऋषि ।

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम् ।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराशुं जयन्तमनु यासु वर्द्धसे ॥१॥

१५ हे अग्नि, तुम वृहत्स्वरूप हो । धर्म-कार्य द्वारा जीर्ण होकर स्त्री-पुरुष (दम्पति) एक साथ ही तुम्हें प्रभूत अन्न प्रदान करते हैं ।* देवगण हमारे द्वारा भलीभाँतिसे आहूत हों । जननी-स्वरूप पृथिवी हमारे प्रति विरुद्ध बुद्धि नहीं धारण करें ।

१६ हे देवो, हम लोग निर्मर्याद और बाधा-शून्य सुख प्राप्त करें ।

१७ हम लोग अश्विद्वयकी उस रक्षाको प्राप्त करें, जिसका पहले किसीने भी अनुभव नहीं किया है, जो आनन्द-दायक तथा सुख-सम्पन्न है । हे अमरणशील अश्विनीकुमारो, तुम दोनों हम लोगोंको ऐश्वर्य, वीरपुत्र और समस्त सौभाग्य प्रदान करो ।

१ प्राचीन यजमानगण, हमारे पूर्ववर्ती लोग, समस्त प्राणी और आधुनिक लोग जिस तरहसे इन्द्रकी स्तुति करके पूर्णमनोरथ हुए हैं, हे अन्तरात्मा, उसी तरहसे तुम भी उनकी स्तुति करके पूर्णमनोरथ होओ । वे देवोंके मध्यमें जेष्ठ, कुशासीन, सर्वज्ञ, हम लोगोंके सम्मुखवर्ती, बलशाली, वेगवान् और जयशील हैं । इस तरहकी स्तुति द्वारा तुम उन्हें संवर्द्धित करो ।

---

* पतिके साथ स्त्रियोंको भी अग्न्यधिकार है ।

श्रिये सुदृशीरुपरस्य याः स्वर्विरोचमानः ककुभामचोदते ।
सुगोपा असि न दभाय सुक्रतो परो मायाभिर्ऋत आस नाम ते ॥२॥
अत्यं हविः सचते सच्च धातु चारिष्टगातुः स होता सहोभरिः ।
प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशुर्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः ॥३॥
प्र व एते सुयुजो यामन्निष्टये नीचीरमुष्मै यम्य ऋतावृधः ।
सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामानि प्रवणो मुषायति ॥४॥
सञ्जर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः ।
धारवाकेष्वृजुगाथशोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे ॥५॥
यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते सञ्छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा ।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत्सुवीरमनपच्युतं सहः ॥६॥

---

२ हे इन्द्र, तुम स्वर्गमें प्रभा विस्तारित करते हो । अवर्षणकारी मेघके मध्यमें जो सुन्दर जलराशि है, उसे मनुष्योंके हितके लिये समस्त दिशाओंमें प्रेरित करते हो । वृष्टि आदि सुन्दर कर्म द्वारा तुम मनुष्योंकी रक्षा करो । प्राणियोंके बधके लिये तुम मत होओ । शत्रुओंकी मायाका तुम अतिक्रम करते हो । तुम्हारा नाम सत्यलोकमें विद्यमान है ।

३ अग्नि नित्य, फलसाधक और विश्वधारक हव्यको सतत वहन करते हैं । अग्नि अप्रतिहत-गति, होमनिर्वाहक और बल-विधायक हैं । वे विशेषतः कुशके ऊपर होकर गमन करते हैं । फलवर्षण-कारी, शिशु , तरुण, जरारहित और औषधियोंके मध्यमें स्थित हैं ।

४ इन यजमानोंके लिये यज्ञको बढ़ानेवाली ये सूर्यकी किरणें परस्पर भलीभाँतिसे संयुक्त होकर यज्ञभूमिमें गमन करनेकी अभिलाषासे अवतीर्ण होती हैं। वेगपूर्वक गमन करनेवाली और सबका नियमन करनेवाली इन समस्त किरणों द्वारा आदित्य जलराशिको निम्न देशमें प्रेरण करते हैं।

५ हे अग्नि, तुम्हारा स्तोत्र अत्यन्त मनोहर है। जब निःसृत सोमरस काष्ठमय पात्रमें गृहीत होता है एवम् तुम उस सोमरसको ग्रहण करके मनोहर स्तोत्रको सुनकर उल्लासित होते हो, तब उपासकोंके मध्यमें तुम्हारी विशेष शोभा होती है। हे जीवनदाता, यज्ञमें तुम रक्षण करने-वाली शिखाको सर्वत्र वर्द्धित करो ।

६ यह वैश्वदेवी जिस प्रकार दृष्ट होती है, उसी प्रकार वर्णित भी होती है। साधक दीप्तिके साथ वह जलके मध्यमें अपना रूप या स्तुति धारण करती है। वे देवता हमलोगोंके द्वारा पूज्य प्रभूत धन, महावेग, असंख्य वीर्यशाली पुत्र और अक्षय बल प्रदान करें।

वेत्यग्रुर्जनिवान्वा अति स्पृधः समर्यता मनसा सूर्यः कविः ।
घ्रंसं रक्षन्तं परि विश्वतो गयमस्माकं शर्म वनवत्स्वासुः ॥७॥
ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते ।
यादृश्मिन्धायि तमपस्यया विदद्य उ स्वयं वहते सो अरं करत् ॥८॥
समुद्रमासामवतस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता ।
अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी ॥९॥
स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिरेवावदस्य यजतस्य सध्रेः ।
अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठं वाजं विदुषा चिदर्ध्यम् ॥१०॥
श्येन आसामदितिः कक्ष्यो मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः ।
समन्यमन्यमर्थयन्त्येतवे विदुर्विषाणां परिपानमन्ति ते ॥११॥

---

७ यह सवदर्शी, अग्रगामी सूर्य असुरोंके साथ युद्धाभिलाषी होकर पत्नी उषाके समभिव्याहारके लिये साहसपूर्वक अग्रसर होते हैं। धन इन्हींके अधीन है। वे हमलोगोंको उज्ज्वल और सर्वत्र रक्षाकारी गृह तथा पूर्ण सुख प्रदान करें।

८ हे देवश्रेष्ठ सूर्य या अग्नि, यजमान तुम्हारे निकट गमन करते हैं। तुम उदयादि लक्षण द्वारा परिज्ञात होते हो। ऋषि लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं, जिससे तुम्हारा नाम वर्द्धित होता है। वे जिस विषयकी कामना करते हैं, कार्य द्वारा उसे प्राप्त करते हैं। एवम् जो अपनी इच्छासे पूजा करते हैं, वे प्रचुर पुरस्कार प्राप्त करते हैं।

९ हम लोगोंके इन समस्त स्तोत्रोंके मध्यमें प्रधान स्तोत्र समुद्र-तुल्य सूर्यके निकट उपस्थित हो। यज्ञ-गृहमें जो उनका स्तोत्र विस्तीर्ण होता है, वह नष्ट नहीं होता है। जिस स्थानमें (स्तोताओंके गृहमें) पवित्र सूर्यके प्रति चित्त समर्पित होता है, वहाँ उपासकोंका हृदयगत अभिलाष विफल नहीं होता है।

१० वह सविता देव सबके द्वारा स्तुत्य हैं—सबकी कामनाओंके पूरक हैं। उनके निकटसे हम क्षत्र, मनस, अवद, यजत, सध्रि और अवत्सार नामक ऋषि ज्ञानियों द्वारा भोगयोग्य बलवान् अन्नको चिन्ता द्वारा पूर्ण करते हैं।

११ विश्ववार, यजत और मायी ऋषिका सोमरस-जनित मद शंसनीय-गमन श्येन पक्षीकी तरह शीघ्रगामी है, अदितिकी तरह विस्तृत और कक्षापूरक है। वे सोमपान करनेके लिये परस्पर प्रार्थना करते हैं और प्रचुर पान करके अतिरिक्त मत्तता लाभ करते हैं।

Digitization by Arya Samaj Foundation, Chennai

सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद्बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा ।
उभा स बरा प्रत्येति भाति च यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः ॥१२॥
सुतम्भरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः ।
भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयोनु ब्रुवाणो अध्येति न स्वपन् ॥१३॥
यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१४॥
अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१५॥

---

१२ सदापृण, यजत, बाहुवृक्त, श्रुतवित् और तर्य ऋषि तुम लोगोंके साथ मिलित होकर शत्रु-संहार करें। वे ऋषि इहलोक और परलोक दोनों लोकोंकी सकल श्रेष्ठ कामना लाभ कर दीप्तिमान् हों; क्योंकि वे सुमिश्रित हव्य या स्तोत्र द्वारा विश्वदेवोंकी उपासना करते हैं।

१३ यजमान अवत्सारके यज्ञमें सुतम्भर ऋषि सुन्दर फलोंके पालयिता होते हैं। समस्त यज्ञ-कार्यको ऊर्द्ध्वमें उन्नीत करते हैं। गौएँ सुन्दर रसयुक्त दुग्ध प्रदान करती हैं। यह दुग्ध वितरित होता है। इस क्रमसे घोषणा करके अवत्सार निद्रा-परित्याग-पूर्वक अध्ययन करते हैं।

१४ जो देव सर्वदा गृहमें जागरित रहते हैं, ऋचाए उनकी कामना करती हैं। जो देव सदा जागरूक रहते हैं, साम (स्तोत्र आदि) उन्हें प्राप्त करता है। जो देव सर्वदा जागरित रहते हैं, उनसे यह अभिषुत सोम कहे कि, “हमें स्वीकार करें। हे अग्नि, हम तुम्हारे नियत स्थानमें सहवास करें ।”

१५ अग्निदेव सर्वदा गृहमें जागरित रहते हैं, ऋचाएँ उनकी कामना करती हैं। अग्निदेव सदा जागरूक रहते हैं, साम (स्तोत्र आदि) उन्हें प्राप्त करता है। अग्निदेव सर्वदा जागरित रहते हैं, उनसे यह अभिषुत सोम कहे कि, “हमें स्वीकार करें। हे अग्नि, हम तुम्हारे नियत स्थानमें सहवास करें।”

४५ सूक्त

४ अनुवाक । विश्वदेवगण देवता । सदापृण ऋषि । त्रिष्टुप छन्द ।

विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थैरायत्या उषसो अर्चिनो गुः ।
अपावृत व्रजिनीरुत्स्वर्गाद्वि दुरो मानुषीर्देव आवः ॥१॥
वि सूर्यो अमतिं न श्रियं सादोर्वाद्गवां माता जानती गात् ।
धन्वर्णसो नद्यः स्वादो अर्णाः स्थूणेव सुमिता दृंहत द्यौः ॥२॥
अस्मा उक्थाय पर्वतस्य गर्भो महोनां जनुषे पूर्व्याय ।
वि पर्वतो जिहीत साधत द्यौराविवासन्तो दसयन्त भूम ॥३॥
सूक्तेभिर्वो वचोभिर्देवजुष्टैरिन्द्रा न्वग्नीः अवसे हुवध्यै ।
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति ॥४॥

---

१ अङ्गिराओंकी स्तुतियोंसे इन्द्रने स्वर्गसे वज्र निक्षेप करके पणियों द्वारा अपहृत निगूढ़ धेनुओंका पुनरुद्धार किया था। आगामिनी उषाकी रश्मियाँ सर्वत्र व्याप्त होती हैं। पुञ्जीभूत अन्धकार (निशा) को विनष्ट करके सूर्य उदित होते हैं। मनुष्योंके गृहद्वारोंको उन्होंने उन्मुक्त किया है।

२ पदार्थ (घट-पट आदि) जिस प्रकारसे भिन्न-भिन्न रूप (नील-पीत आदि) प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकारसे सूर्य अपनी दीप्ति विस्तारित करते हैं। किरण-जालकी जननी उषा सूर्यके आगमनकी उत्प्रेक्षा करके विस्तृत अन्तरिक्षसे अवतीर्ण होती हैं। तटको विध्वंस करनेवाली नदियाँ प्रवहमान वारिराशिके साथ प्रवाहित होती हैं। गृहमें स्थापित सुघटित स्तम्भकी तरह स्वर्ग सुदृढ़ भावसे अवस्थान करता है।

३ महान् स्तोत्रोंके उत्पादक प्राचीनोंकी तरह जबतक हम स्तुति करते हैं, तबतक मेघके गर्भमें स्थित वारि-राशि हमारे ऊपर पतित होती है। मेघसे जल पतित होता है। अकाश अपने कार्यका साधन करता है। सर्वत्र परिचर्या करनेवाले अङ्गिरा लोग कर्मानुष्ठान द्वारा नितान्त परिश्रान्त होते हैं।

४ हे इन्द्र, हे अग्नि, हम परित्राणके लिये देवोंके द्वारा सेवनीय उत्कृष्ट स्तोत्रोंसे तुम दोनोंका आह्वान करते हैं। भली भाँतिसे यज्ञ करनेवाले मरुतोंकी तरह कर्मतत्पर-परिचरण करनेवाले ज्ञानी लोग, स्त्रोत्र द्वारा, तुम दोनोंकी उपासना करते हैं।

एतो न्वद्य सुध्यो भवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः।
आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामायाम प्राञ्चो यजमानमच्छ ॥ ५ ॥
एता धियं कृणवाम सखायोप या माताँ ऋणुत व्रजं गोः।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम् ॥६॥
अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिरार्चन्येन दश मासो नवग्वाः।
ऋतं यती सरमा गा अविन्दद्विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार ॥७॥
विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः सं यद्गोभिरङ्गिरसो नवन्त।
उत्स आसां परमे सधस्थ ऋतस्य पथा सरमा विदद्गाः ॥८॥
आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे।
रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा युवा कविर्दीदयद्गोषु गच्छन् ॥९॥

५ इस यज्ञदिनमें शीघ्र आगमन करो। हम लोग शोभन कर्म करनेवाले होते हैं। विशेष रूपसे शत्रुओंकी हिंसा करते हैं। प्रच्छन्न शत्रुओंको दूर करते हैं और यजमानोंके अभिमुख शीघ्र गमन करते हैं।

६ हे मित्रो, आओ। हम लोग स्त्रोत्र पाठ करें। जिसके द्वारा अपहृत धेनुओंका गोष्ठ उद्घाटित हुआ था। जिसके द्वारा मनुने हनुविहीन शत्रुको जीता था। जिसके द्वारा वणिक्‌की तरह बहु-फलाकांक्षी कक्षीवान्‌ने जलकी इच्छासे वनमें जाकर जल लाभ किया था।

७ इस यज्ञमें ऋत्विकोंके हस्त द्वारा संचालित पाषाण-खण्डसे शब्द उत्थित होता है जिसके द्वारा नवग्वों और दशग्वोंने इन्द्रकी पूजा की थी। यज्ञमें उपस्थित होकर सरमाने गौओंको प्राप्त किया था और अङ्गिराओंके सकल स्तवादि कर्म सफल हुए थे।

८ इस पूजनीय उषाके उदयकालमें जब अङ्गिरा लोग प्राप्त धेनुओंके साथ मिलित हुए थे, तब उस उत्कृष्ट यज्ञशालामें उपयुक्त दुग्धस्राव होने लगा; क्योंकि सत्य मार्गसे सरमाने गौओंको देख पाया था।

९ सात अश्वोंके अधिपति सूर्य हम लोगोंके सम्मुख उपस्थित हों; क्योंकि उन्हें आयास-साध्य पथ द्वारा एक सुदूरवर्ती गन्तव्य स्थानमें उपस्थित होना होगा। वे श्येन पक्षीकी तरह शीघ्रगामी होकर प्रदत्त हव्यके उद्देशसे अवतरण करते हैं। वे स्थिर-यौवन तथा दूरदर्शी देव निज रश्मिके मध्यमें अवस्थान करके प्रभा विस्तारित करते हैं।

आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णोयुक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः ।
उद्रा न नावमनयन्त धीरा आशृण्वतीरापो अर्वागतिष्ठन् ॥१०॥
धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षां ययातरं दशमासो नवग्वाः ।
अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्यामात्यंहः ॥११॥

४६ सूक्त

प्रथम ६ ऋक्के विश्वदेवगण देवता और सप्तम तथा अष्टमके देवपत्नी देवता ।
प्रतिक्षत्र ऋषि । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम् ।
नास्या वश्मि विमुचं नावृतं पुनर्विद्वान्पथः पुरः एत ऋजुनेषति ॥१॥

---

१० उज्ज्वल वारिराशिके ऊपर सूर्य आरोहण करते हैं। जब वे कान्तपृष्ठवाले अश्वोंको रथमें युक्त करते हैं, तब उन्हें धीमान् यजमान्, जैसे जलके ऊपर नाव हो, उसी तरहसे आनयन करते हैं। वारिराशि उनके आदेशको श्रवण करके अवनत होती है।

११ हे देवो, हम जलके लिये तुम लोगोंके सर्वदायक स्तोत्रका पाठ करते हैं। नवग्वगणने जिसके द्वारा दशमास-साध्य यज्ञका सम्पादन किया था। जिस स्तोत्र-पाठसे हमलोग देवोंके द्वारा रक्षणीय हों और पापकी सीमाका अतिक्रमण करें।

---

१ सर्वज्ञ प्रतिक्षत्रने यज्ञभारमें अपनेको शकटमें अश्वकी तरह नियोजित किया है। हम होता अथवा अध्वर्यु उस अलौकिक रक्षाविधायक भारको वहन करते हैं। इस भारवहनसे हम छुटकारा पानेकी इच्छा नहीं करते हैं। यह भार बारम्बार हमारे प्रति समर्पित हो, ऐसी कामना भी हम नहीं करते हैं। मार्गाभिज्ञ, अन्तर्यामी देव पुरोगामी होकर सरल पथ द्वारा मनुष्योंको ले जायँ।

अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्द्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।
उभा नासत्या रुद्रो अधः ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥२॥
इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ अपः ।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पति भगं नु शंसं सवितारमूतये ॥३॥
उत नो विष्णुरुत वातो अस्रिधो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत् ।
उत ऋभव उत राये नो अश्विनोत त्वष्टोत विभ्वानु मंसते ॥४॥
उत त्यन्नो मारुतं शर्द्धं आ गमद्दिविक्षयं यजतं बर्हिरासदे ।
बृहस्पतिः शर्म पूषोत नो यमद्वरूथ्यं वरुणो मित्रो अर्यमा ॥५॥
उत त्ये नः पर्व्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्य स्त्रामणे भुवन् ।
भगो विभक्ता शवसावसा गमदुरुव्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम् ॥६॥

---

२ हे अग्नि, इन्द्र वरुण और मित्र आदि देवो, तुम सब हमें बल प्रदान करो। विष्णु और मरुत् बल प्रदान करें। नासत्यद्वय, रुद्र, देवपत्नियाँ. पूषा, भग और सरस्वती हम लोगोंकी पूजासे प्रसन्न हों।

३ हम रक्षाके लिये इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण, अदिति, आदित्य, द्यावापृथिवी, मरुद्गण, पर्वत, जल, विष्ण, पूषा, ब्रह्मणस्पति और सविताका आह्वान करते हैं।

४ विष्णु अथवा अहिंसाकारी वायु अथवा धनदाता सोम हम लोगोंको सुख प्रदान करें। ऋभुगण, अश्विद्वय, त्वष्टा और विभु हम लोगोंको ऐश्वर्य प्रदान करनेके लिये अनुकूल हों।

५ पूजनीय तथा स्वर्गलोकमें वर्त्तमान मरुद्गण कुशके ऊपर उपवेशन करनेके लिये हम लोगोंके निकट आगमन करें। बृहस्पति, पूषा, वरुण, मित्र और अर्यमा हम लोगोंको सम्पूर्ण गृहसम्बन्धी सुख प्रदान करें।

६ शोभन स्तुतिवाले पर्वत और दानशीला नदियाँ हम लोगोंकी रक्षा करें। धनदाता भगदेव अन्न और रक्षाके साथ आगमन करें। सर्वत्र व्याप्त होनेवाली देवमाता अदिति हमारे स्तोत्र या आह्वानको श्रवण करें।

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत ॥७॥
उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्नाय्यश्विनी राट् ।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥८॥

---

७ इन्द्र आदि देवोंकी पत्नियाँ हमलोगोंके स्तोत्रकी कामना करके हमलोगोंकी रक्षा करें। वे हम लोगोंकी इस तरहसे रक्षा करें, जिससे हमलोग बलवान् पुत्र तथा प्रभूत अन्न लाभ करें। देवियो, तुम सब पृथिवीपर रहो या अन्तरिक्षमें उदकव्रत (कर्म) में निरत रहो; परन्तु हमलोग तुम्हारा सुन्दर आह्वान करते हैं। तुम सब हमलोगोंको सुख प्रदान करो।

८ देवियाँ, देवपत्नियाँ हव्य भक्षण करें। इन्द्राणी, अग्नायी, दीप्तिमती अश्विनी, रोदसी, वरुणानी आदि प्रत्येक हमलोगोंकी स्तुतिको श्रवण करें। देवियाँ हव्य भक्षण करें। देवपत्नियोंके मध्यमें जो ऋतुओंकी अधिष्ठात्री देवी हैं, वह स्तोत्र श्रवण करें और हव्य भक्षण करें।

द्वितीय अध्याय समाप्त

तृतीय अध्याय

४७ सूक्त

विश्वदेवगण देवता । प्रतिरथ ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रयुञ्जती दिव एति बुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती ।
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना ॥१॥
अजिरासस्तदप ईयमाना आतस्थिवाँसो अमृतस्य नाभिम् ।
अनन्तास उरवो विश्वतः सीं परि द्यावापृथिवी यन्ति पन्थाः ॥२॥
उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥३॥
चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तो दशगर्भञ्चरसे धापयन्ते ।
त्रिधातवः परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान् ॥४॥

---

१ परिचर्याकारिणी, नित्य तरुणी, पूजनोया और पूजिता उषा आहूत होकर शक्तिमती जननीकी तरह कन्या-स्वरूप पृथिवीका चेतन्य विधान करती हैं, मानवोंके कार्यको प्रवर्तित करती हैं और द्युलोकसे रक्षाकारी देवोंके साथ यज्ञगृहमें आगमन करती हैं।

२ असीम और सर्वव्यापिनी रश्मियाँ प्रकाशन रूप अपने कर्तव्यका सम्पादन करके, अमर सूर्य-मण्डलके साथ एकत्र उपवेशन करके द्यावापृथिवी और अन्तरिक्षमें परितः गमन करती हैं।

३ उदक अथवा कामनाओंके सेचक, देवोंके आनन्द-विधायक, दीप्तिमान् और द्रुतगामी रथने जनक-स्वरूप पूर्व दिशामें प्रवेश किया था। पश्चात् स्वर्गके मध्यमें निहित विभिन्नवर्ण और सर्वव्यापी सूर्य अन्तरिक्षके उभय प्रान्तमें अग्रसर हुए थे और जगत्की रक्षा की थी।

४ अपनी कल्याण-कामना करके चार ऋत्विक् सूर्यको हवि द्वारा धारण करते हैं। दसो दिशा निज गर्भजात आदित्यको दैनिक गतिके लिये प्रेरित करती हैं। आदित्यकी, शीत, ग्रीष्म और वर्षाके भेदसे, त्रिविध रश्मियाँ अन्तरिक्षकी सीमामें द्रुतवेगसे परिभ्रमण करती हैं।

इदं वपुर्निवचनं जनासश्चरन्ति यन्नद्यस्तस्थुरापः ।
द्वे यदीं विभृतो मातुरन्ये इहेह जाते यम्या सबन्धू ॥५॥
वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ।
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ ॥६॥
तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शंयोरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥७॥

४८ सूक्त

विश्वदेवगण देवता । अत्रिके अपत्य प्रतिभानु ऋषि । जगती छन्द ।

कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम् ।
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आँ अपो वृणाना वितनोति मायिनी ॥१॥

---

५ हे ऋत्विको, यह पुरोभागमें दृश्यमान शरीरमण्डल अतिशय स्तवनीय है । इसी मण्डलसे नदियाँ प्रवाहित होती हैं । जलराशि इसमें अवस्थान करती है। अन्तरिक्षसे अन्य युग्मभूत समानबल अहोरात्र इसीसे उत्पन्न हुए हैं । वे इसे धारण करते हैं।

६ इसी सूर्यके लिये यजमान स्तोत्र और यज्ञका विस्तार करते हैं । इसी पुत्रस्वरूप सूर्यके लिये मातायें (उषा या दिशायें) तेजोरूप वस्त्र बुनती हैं। वर्षणकारी सूर्यके सम्पर्कसे हृष्ट होकर पत्नी-स्वरूप रश्मियाँ आकाश-मार्ग होकर हमलोगोंके निकट उपस्थित हों ।

७ हे मित्र और वरुण, इस स्तोत्रको ग्रहण करो । हे अग्नि, हमलोगोंके मिश्र (विशुद्ध) सुखके लिये इस स्तोत्रको ग्रहण करो। हमलोग स्थिति और प्रतिष्ठा लाभ करें । हम दीप्तिमान्, शक्तिमान् और सबके आश्रयभूत सूर्यको नमस्कार करते हैं।

---

१ सबके प्रिय और पूजनीय उस वैद्युत तेजकी कब हम पूजा करेंगे ? जो स्वाधीन बल है और जिसके सब अन्न अपने हैं । जब आच्छादनकारिणी या सेव्यमाना आग्नेय शक्ति प्रभावती होकर परिमेय अन्तरिक्षमें मेघके ऊपर वृष्टिजलको विस्तारित करती है ।

Digitization by Arya Samaj Foundation, Chennai

ता अत्नत वयूनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः ।
अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः ॥२॥
आ ग्रावभिरहन्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं वज्रमाजिघर्ति मायिनि ।
शतं वा यस्य प्रचरन्त्स्वे दमे संवर्तयन्तो वि च वर्तयन्नहा ॥३॥
तामस्य रीतिं परशोरिव प्रत्यनीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः ।
सचा यदि पितुमन्तमिव क्षयं रत्नं दधाति भरहूतये विशे ॥४॥
स जिह्वया चतुरनीक ऋञ्जते चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम् ।
न तस्य विद्म पुरुषत्वता वयं यतो भगः सविता दाति वार्यम् ॥५॥

* * *

---

२ ऋत्विकों द्वारा प्राप्त करने योग्य ज्ञानको ये उषा विस्तारित करती हैं क्या ? एक प्रकारकी आवरक दीप्ति द्वारा सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करती हैं । देवाभिलाषी लोग निवृत्त (व्यतीत) और आगामिनी उषाओंको त्याग कर वर्तमान उषाके द्वारा अपनी बुद्धिको वर्द्धित करते हैं ।

३ अहोरात्रमें निष्पन्न सोम द्वारा हृष्ट होकर इन्द्र मायावी वृत्रके लिये दीर्घ वज्रको दीप्त करते है । इन्द्रात्मक आदित्यकी शतसंख्यक रश्मियाँ दिवसोंको भलीभाँतिसे निवर्तित और प्रवर्तित करके अपने गृह आकाशमें विचरण करती हैं ।

४ परशुकी तरह अग्निकी उस स्वाभाविक जातिको हम देखते हैं । रूपवान् आदित्यके रश्मिसमूहका कोर्त्तन हम भोगके लिये करते हैं । वह देव (आदित्य) सहायक होकर यज्ञस्थलमें आह्वानकारी यजमानको अन्नपूर्ण गृह तथा रत्न प्रदान करते हैं

५ रमणीय तेजसे आच्छादित होकर अग्नि अन्धकार और शत्रुओंको विनष्ट करते हैं तथा चारो तरफ ज्वालाको विस्तारित करके जिह्वा द्वारा घृतादिको प्राप्त करते हैं । पुरुषत्व द्वारा कामनाओंके पूरक अग्निको हम नहीं जानते हैं; क्योंकि ये महान् भजनीय सविता देव वरणीय धन प्रदान करते हैं ।

४९ सूक्त

विश्वदेवगण देवता । अत्रिके अपत्य प्रतिप्रभ ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायोः ।
आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन् ॥१॥
प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान्त्सूक्तैर्देवं सवितारं दुवस्य ।
उप ब्रुवीत नमसा विजानन् ज्येष्ठं च रत्नं विभजन्तमायोः ॥२॥
अदत्रया दयते वार्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः ।
इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्निरहानि भद्रा जनयन्त दस्माः ॥३॥
तन्नो अनर्वा सविता वरूथं तत्सिन्धवः इषयन्तो अनु ग्मन् ।
उप यद्वोचे अध्वरस्य होता रायः स्याम पतयो वाजरत्नाः ॥४॥
प्र ये वसुभ्य ईवदा नमो दुर्ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः ।
अवैत्वभ्यं कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम ॥५॥

---

१ अभी हम तुम यजमानोंके लिये सविता और भगदेवके समीप उपस्थित होते हैं। वे मनुष्य यजमानोंको धन प्रदान करते हैं। हे नेतृस्वरूप बहुभोगकर्ता अश्विद्वय, तुम दोनोंसे मैत्रीकी कामना करके हम प्रतिदिन तुम दोनोंकी उपस्थिति-प्रार्थना करते हैं।

२ हे अन्तरात्मा, शत्रुओंके निवारक सविताका प्रत्यागमन जानकर सूक्तों द्वारा उनकी परिचर्या करो। वे मनुष्योंको श्रेष्ठ धन दान करते हैं। नमस्कार अथवा हविर्विशेषसे उनका स्तवन करो।

३ पोषक, भजनीय तथा अखण्डीय अग्नि जिह्वा द्वारा वरणीय काष्ठको दहन करते हैं अथवा वरणीय अन्न यजमानको प्रदान करते हैं। सूर्य तेजको आच्छादित करते हैं। इन्द्र, विष्णु, वरुण, मित्र और अग्नि आदि दर्शनीय देव शोभन (याग-दानादिविशिष्ट) दिवसको उत्पन्न करते हैं।

४ किसीके द्वारा भी अतिरस्कृत सविता देव हमलोगोंको अभिमत धन प्रदान करें। उस धनको देनेके लिये स्पन्दनशील नदियाँ गमन करें। इसीलिये हम यज्ञके होता स्तोत्र पाठ करते हैं। हम बहुविध धनके स्वामी हों, अन्न और बलसे रमणीय हों।

५ जिन यजमानोंने वसुओंको (यज्ञमें निवास करनेवाले देवोंको) गमनशील अन्न दिया है और जिन्होंने मित्र तथा वरुणके लिये स्तोत्र पाठ किया है, उन्हें महान् तेज प्राप्त हो। हे देवो, उन्हें दीर्घतर सुख प्रदान करो। हम द्यावा-पृथवीकी रक्षा प्राप्त कर हृष्ट हों।

५० सूक्त

विश्वदेवगण देवता। अत्रिके अपत्य स्वति ऋषि। अनुष्टुप् और पंक्ति छन्द।

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्त्तो वुरीत सख्यम्।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे ॥१॥
ते ते देव नतर्ये चेमाँ अनुशसे। ते राया ते ह्या पृचे सचेमहि सचथ्यैः॥२॥
अतो न आ नॄनतिथीनतः पत्नीर्दशस्यत।
आरे विश्वं पथेष्ठां द्विषो युयोतु यूयुविः ॥३॥
यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद्द्रोण्यः पशुः।
नृमणा वीरपस्त्योर्णा धीरेव सनिता ॥ ४ ॥
एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः।
शं राये शं स्वस्तय इषः स्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥५॥

---

१ सम्पूर्ण मनुष्य सविता देवसे सखिताको प्रार्थना करते हैं। सम्पूर्ण मनुष्य उनसे धन चाहते हैं। उनके अनुग्रहसे सब लोग, पुष्टिके लिये, पर्याप्त धन प्राप्त करते हैं।

२ हे नेता, हे देव, तुम्हारे उपासक हम यजमान तथा इन्द्रादिके उपासक होता प्रभृति तुम्हारे ही हैं। हम और वे दोनों ही धनयुक्त हों। हमलोगोंकी कामना सिद्ध हो।

३ इसलिये इस यज्ञमें हम ऋत्विजोंके, अथितिकी तरह, पूज्य देवोंकी परिचर्या करो। इसलिये इस यज्ञमें हविः प्रदान करके देवपत्नियोंकी परिचर्या करो। हे देवो, पृथक्कर्ता देव-समूह या सविता दूर मार्गमें वर्तमान समस्त वैरियोंको या अन्य शत्रुओंको दूर करें।

४ जिस यज्ञमें यज्ञको वहन करनेवाला, यूपयोग्य पशु यूपके निकट उपस्थित होता है, उस यज्ञमें सविता यजमानको कुशल तथा धीर स्त्रीकी तरह गृह, पुत्र, भृत्यादि और धन प्रदान करते हैं।

५ हे नेता, हे सविता देव, तुम्हारा यह धनवान् और सबको पालन करनेवाला रथ हम लोगोंका कल्याण करे। हम सब स्तुतियोग्य सविताके स्तोता हैं। हम धनके लिये, सुखके लिये तथा अविनष्ट होनेके लिये उनकी स्तुति करते हैं एवम हम सविता देवके स्तोता उनकी स्तुति करते हैं।

५१ सूक्त

विश्वदेवगण देवता । स्वस्ति ऋषि । गायत्री, जगती, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।

अग्ने सुतस्य पीतये विश्वैरूमेभिरागहि । देवेभिर्हव्यदातये ॥१॥

ऋतधीतय आगत सत्यधर्माणो अध्वरम् । अग्नेः पिबत जिह्वया ॥२॥

विप्रेभिर्विप्र सन्त्य प्रातर्यावभिरागहि । देवेभिः सोमपीतये ॥३॥

अयं सोमश्चमू सुतोमत्रे परिषिच्यते । प्रिय इन्द्राय वायवे ॥४॥

वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये । पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥५॥

इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पोतिमर्हथः । ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः ॥६॥

सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः ।
निम्नं नयन्ति सिन्धवोभि प्रयः ॥७॥

---

१ हे अग्नि, तुम सोमपानके लिये इन्द्र आदि सम्पूर्ण रक्षक देवोंके साथ हव्य देनेवाले हम यजमानोंके समीप आओ ।

२ हे सत्यस्तुतिवाले अथवा अबाध्य कर्म करनेवाले देवो, हे सत्यको धारण करनेवालो, तुम सब हमारे यज्ञमें आगमन करो और अग्निकी जिह्वा द्वारा आज्य अथवा सोमरस आदिका पान करो ।

३ हे मेधाविन् अथवा विविध कामनाओंके पूरक सम्भजनीय अग्नि, प्रातःकालमें आनेवाले मेधावी देवोंके साथ तुम सोमपानके लिये आगमन करो ।

४ यह पुरोभागमें वर्तमान सोम अभिषवण फलक द्वारा अभिषुत हुआ है और पात्रमें पूर्ण किया गया है । यह इन्द्र और वायुके लिये प्रिय है । हे इन्द्र और वायु, इस सोमरसको पीनेके लिये आगमन करो ।

५ हे वायु, हवि देनेवाले यजमानके लिये प्रीयमाण होकर तुम सोमपान करनेके लिये आगमन करो । आकरके अभिषुत सोमरूप अन्नका भक्षण करो ।

६ हे वायु, तुम और इन्द्र इस अभिषुत सोमको पान करनेके योग्य हो; इसीलिये अहिंसक होकर तुम दोनों इस सोमरसका सेवन करो और सोमात्मक अन्नके उद्देशसे आगमन करो ।

७ इन्द्र तथा वायुके लिये दधिमिश्रित सोम अभिषुत हुआ है—सम्पादित हुआ है । हे इन्द्र और वायु, निम्नगामिनी नदियोंकी तरह वह सोम तुम दोनोंके अभिमुख गमन करता है।

सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः । आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥८॥
सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना । आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥९॥
सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना । आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥१०॥

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥११॥
स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तये आदित्यासो भवन्तु नः ॥१२॥
विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥१३॥

८ हे अग्नि, तुम सम्पूर्ण देवोंके साथ मिलकर तथा अश्विद्वय और उषाके साथ समाम प्रीति स्थापित करके आगमन करो । यज्ञमें जैसे अत्रि रमण करते हैं, वैसे ही तुम भी अभिषुत सोममें रमण करो ।

९ हे अग्नि, तुम मित्र, वरुण, सोम तथा विष्णुके साथ मिलकर आगमन करो । यज्ञमें जैसे अत्रि रमण करते हैं, वैसे ही तुम भी अभिषुत सोममें रमण करो ।

१० हे अग्नि, तुम आदित्य, वसुगण, इन्द्र और वायुके साथ मिलकर आगमन करो। यज्ञमें जैसे अत्रि रमण करते है, वैसे ही तुम भी अभिषुत सोममें रमण करो।

११ हम लोगोंके लिये अश्विद्वय अविनश्वर कल्याण करें, भग कल्याण करें तथा देवी अदिति कल्याण करें। बलवान् अथवा सत्यशील और शत्रु-संहारक अथवा बलदाता पूषा हम लोगोंका मङ्गल करें । शोभन ज्ञानविशिष्ट द्यावापृथिवी हम लोगोंकोका मङ्गल करें।

१२ कल्याणके लिये हमलोग वायुका स्तवन करते हैं और सोमका भी स्तवन करते हैं। सोम निखिल लोकके पालक हैं। सब देवोंके साथ मन्त्रपालक बृहस्पतिकी स्तुति कल्याणके लिये करते हैं । अदितिके पुत्र देवगण अथवा अरुणादि द्वादश देव हम लोगोंके लिये कल्याणकर हों ।

१३ इस यज्ञ दिनमें सम्पूर्ण देव हमलोगोंके लिये कल्याण करें और रक्षा करें । मनुष्योंके नेता और गृहदाता अग्नि हम लोगोंके लिये कल्याण करें और रक्षा करें । दीप्तिमान् ऋभुगण भी हमलोगोंके कल्याणकी रक्षा करें । रुद्रदेव हम लोगोंके कल्याणकी, पापसे, रक्षा करें ।

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥१४॥
स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥१५॥

* * *

५२ सूक्त

मरुद्गण देवता । अत्रिके अपत्य श्यावाश्व ऋषि । अनुष्टुप् और पङ्क्ति छन्द ।

प्र श्यावाश्व धृष्णुयार्चा मरुद्भिर्ऋक्वभिः ।
ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञियाः ॥१॥
ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया ।
ते यामन्ना धृषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वतः ॥२॥

---

१४ हे अहोरात्राभिमानी मित्र और वरुण देव, तुम दोनों मङ्गल करो । हे हितमार्गाभिमानिनी धनवती देवी, कल्याण करो । इन्द्र और अग्नि दोनों हो हम लोगोंका कल्याण करें । हे अदिति देवी; तुम हम लोगोंका कल्याण करो ।

१५ सूर्य और चन्द्र जिस तरहसे निरालम्ब मार्गमें राक्षसादिके उपद्रवके विना सञ्चरण करते हैं, उसी तरहसे हम लोग भी मार्गमें सुखपूर्वक विचरण करें । प्रवासमें चिरकाल ह जानेसे भी अक्रुद्ध और स्मरण करनेवाले बन्धुओंसे हम मिलित हों ।

१ हे श्यावाश्व ऋषि, तुम धीरतासे स्तुतियोग्य मरुतोंकी अर्चना करो। यागयोग्य मरुद्गण प्रतिदिन हविर्लक्षण अहिंसक अन्नको प्राप्त करके प्रमुदित होते हैं।

२ वे अविचलित बलके सखा हैं, वे धीर है, वे मार्गमें परिभ्रमण करते हैं और स्वेच्छापूर्वक हमारे पुत्र-भृत्यादिकी रक्षा करते हैं।

ते स्पन्द्रासो नोक्षणोऽतिस्कन्दन्ति शर्वरीः ।
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥३॥
मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ॥४॥
अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः ।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ॥५॥
आ रुक्मैरायुधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत ।
अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः ॥६॥
ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ ।
वृजने वा नदीनां सधस्थे वा महो दिवः ॥७॥
शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम् ।
उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजत त्मना ॥८॥

---

३ स्पन्दनशील और जलवर्षक मरुद्गण रात्रिको अतिक्रम करके गमन करते हैं। जिस लिये वे इस प्रकारके हैं; इसीलिये हम अभी मरुतोंके द्युलोक और भूमिमें वर्तमान तेजकी स्तुति करते हैं।

४ हे होताओ, तुम लोग धीरतापूर्वक मरुतोंको किस लिये स्तवन और हव्य प्रदान करते हो? इसीलिये कि, वे सम्पूर्ण मरणशील मनुष्योंको सब कालमें हिंसकोंसे बचाते हैं।

५ हे होताओ, जो पूजनीय, सुन्दर दानविशिष्ट, कर्मके नेता और अधिक बलवाले हैं, ऐसे यागयोग्य द्योतमान मरुतोंको यज्ञसाधन हव्य प्रदान करो।

६ वृष्टिके नेता महान् मरुद्गण रोचमान आभरण-विशेषसे तथा आयुध-विशेषसे शोभित होते हैं। मेघभेदनके लिये वे आयुध-विशेषको प्रक्षिप्त करते हैं। विद्युत् शब्द करनेवाली जलराशिकी तरह मरुतोंका अनुगमन करती है। द्योतमान् मरुतोंकी दीप्ति स्वयम् निःसृत होती है।

७ जो पृथ्वी-सम्बन्धी मरुद्गण हैं, और वर्द्धमान होते हैं, जो महान् अन्तरिक्षमें वर्द्धमान होते हैं, वे नदियोंके बल (धारा) में तथा महान् द्युलोकके मध्यमें वृद्धि प्राप्त करें। इस प्रकार वृष्टिके लिये सर्वत्र वर्द्धमान मरुत् मेघभेदनके लिये आयुध-विशेषको प्रक्षिप्त करते हैं।

८ हे स्तोताओ, मरुतोंके उत्कृष्ट बलकी स्तुति करो। वह बल अत्यन्त प्रवृद्ध तथा सत्य मूल है। वृष्टिके नेता मरुद्गण, गमनशील होकर सबकी रक्षा-बुद्धिसे, जलके लिये, स्वयम् परिश्रान्त होते हैं।

उत स्मा ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः।
उत पव्या रथानामद्रि भिन्दन्त्योजसा ॥९॥
आपथयो विपथयोन्तस्पथा अनुपथाः।
एतेभिर्मह्यं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ॥१०॥
अधा नरो न्योहतेधा नियुत ओहते।
अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥११॥
छन्दः स्तुभः कुभन्यव उत्समा कारिणो नृतुः।
ते मे के चिन्नतायव ऊमा आसन्दृशि त्विषे ॥१२॥
य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥१३॥
अच्छ ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा।
दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥१४॥

---

९ मरुद्गण परुष्णी नामक नदीमें वर्तमान रहते हैं और सबको शुद्ध करनेवाली दीप्ति द्वारा अपनेको आच्छादित करते हैं। वे अपने रथचक्रके द्वारा या बलके द्वारा मेघ अथवा पर्वतको विदीर्ण करते हैं।

१० जो मरुद्गण हम लोगोंके अभिमुख मार्गसे गमन करते हैं, जो सर्वत्र गमन करते हैं, जो गिरि-कन्दराओंमें गमन करते हैं और जो अनुकूल मार्गगामी हैं, वे उपर्युक्त चारो नामवाले मरुद्गण विस्तृत होकर हमारे लिये यज्ञ वहन करते हैं।

११ अभिमत वृष्ट्यादिके नेता जगत्का अतिशय वहन करते हैं। स्वयम् सम्मिलित करनेवाले जगत्का अतिशय वहन करते हैं। दूर देश अन्तरिक्षमें वे ग्रह, तारा, मेघ आदिको धारण करते हैं। इस प्रकारसे उनके रूप नानाविध और दर्शनीय होते हैं।

१२ छन्द द्वारा स्तुति करनेवाले और जलकी इच्छा करनेवाले स्तोता लोगोंने मरुतोंकी स्तुति की थी तथा तृषित गोतमके पनार्थ कूपका आनयन किया था। उनमें कुछ मरुतोंने अदृश्य तस्करकी तरह स्थित होकर हमारी रक्षा की थी तथा कितने ही प्राण रूपसे दृश्यमान होकर शरीरका बल साधन किया था।

१३ हे श्यावाश्व ऋषि, जो मरुद्गण दर्शनीय, विद्युद् रूपी आयुधसे विद्योतमान, मेधावी और सबके विधाता हैं, उन मरुद्गणकी, रमणीय स्तुतिसे, तुम परिचर्या करो।

१४ हे ऋषि, तुम हविर्दान तथा स्तुतिके साथ मरुतोंके निकट आदित्यकी तरह उपस्थित होओ। हे बल द्वारा पराभूत करनेवाले मरुतो, तुमलोग द्युलोकसे अथवा अन्य दोनों लोकोंसे हमारे यज्ञमें आगमन करो। हम सब तुम्हारी स्तुति करते हैं।

नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा ।
दाना सचेत सूरिभिर्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः ॥१५॥
प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम् ।
अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥१६॥
सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः ।
यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे ॥१७॥

* * *

५३ सूक्त

मरुद्गण देवता । अत्रिके अपत्य श्यावाश्व ऋषि । ककुभ्, बृहती, गायत्री, अनुष्टुप्, और उष्णिक् छन्द ।

को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम् ।
यद्युयुज्रे किलास्यः ॥१॥

---

१५ स्तोता शीघ्रतासे मरुतोंकी स्तुति करके अन्य देवोंकी अभिप्राप्ति-कामना नहीं करते हैं। स्तोता ज्ञानसम्पन्न, शीघ्र गमनमें प्रसिद्ध तथा फलदाता मरुतोंसे अभिमत दान प्राप्त करते हैं।

१६ जिन प्रेरक मरुतोंने हमें अपने बन्धुओंके अन्वेषणमें यह वचन कहा था। उन्होंने द्यु देवता अथवा पृश्निवर्ण गौको माता बताया था और अन्नवान् अथवा गमनवान् रुद्रको अपना पिता बताया था, वे समर्थ हैं।

१७ सप्त-सप्त-सङ्ख्यक * सर्वसमर्थ मरुद्गण एक-एक होकर हमें शतसंख्यक गौ-अश्व आदि दें इनके द्वारा प्रदत्त गोसमूहात्मक प्रसिद्ध धनको हम यमुना तीरमें प्राप्त करें। उनके द्वारा प्रदत्त-अश्व समूहात्मक धनको प्राप्त करें।

१ कौन पुरुष मरुतोंकी उत्पत्तिको जानता है ? कौन पहले मरुतोंके सुखमें वर्तमान था ? जब उन्होंने पृषतीको रथमें युक्त किया था, तब इनके बललक्षक सुखको कौन जानता था ?

---

* अदितिके गर्भमें वर्तमान वायुको इन्द्रने जाकर सात टुकड़ा किया था; फिर एक-एक टुकडे को सात-सात खण्ड किया था। वे ही उनचास मरुत हुए। —सायण।

ऐतान्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः।
कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इलाभिर्वृष्टयः सह ॥२॥
ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे।
नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्नितिष्टुहि ॥३॥
ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु।
श्राया रथेषु धन्वसु ॥४॥
युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः।
वृष्टी द्यावो यतीरिव ॥५॥
आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥६॥
ततृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा।
स्यन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तत एन्यः ॥७॥

---

२ ये मरुद्गण रथपर उपविष्ट हुए हैं, यह किसने सुना है अथवा इनकी रथध्वनिको किसने सुना है? यह किस प्रकार गमन करते हैं, यह कौन जानता है? अथवा देव आदि किस प्रकार इनका अनुगमन करें? किस दानशीलके लिये बन्धुभूत वर्षक मरुद्गण, बहुत अन्नके साथ, अवतीर्ण होंगे?

३ सोमपान-जनित हर्षके लिये द्युतिमान् अश्वोंपर आरोहण करके जो मरुत् हमारे निकट आये थे, उन्होंने कहा था—वे नेता, मनुष्योंके हितकर्ता और मूर्त्तिहीन हैं। उस प्रकार हम लोगोंको स्थित देखकर उन्होंने कहा कि, हे ऋषि, स्तवन करो।

४ हे मरुतो, जो दीप्ति तुमलोगोंके आभरणके आश्रयभूत है, जो आयुधोंमें है जो माला-विशेषमें है, जो उरोभूषणमें है और जो हस्त-पादस्थित कटकमें हैं एवम् जो दीप्ति रथ तथा धनुष्में विद्यमान है उन समस्त दीप्तियोंकी हम बन्दना करते हैं।

५ हे शीघ्र दान देनेवाले मरुतो, वृष्टिकी सर्वत्र गमनशील दीप्तिकी तरह तुम लोगोंके दृश्यमान रथको देखकर हम प्रमुदित होते हैं और स्तुति करते हैं।

६ नेता तथा शोभन दानवाले मरुद्गण हवि देनेवाले यजमानके लिये अन्तरिक्षसे जलधारक मेघको बरसाते हैं। वे द्यावापृथिवीके लिये मेघको विमुक्त करते है। इसके अनन्तर वृष्टिप्रद मरुत सर्वत्र गमनशील उदकके साथ व्याप्त होते हैं।

७ निर्भिद्यमान मेघसे निःसृत जलराशि उदकके साथ अन्तरिक्षमें प्रसारित होती है, जैसे दुग्ध सिञ्चन करनेवाली नवप्रसूता गौ हो। मार्गमें जानेके लिये विमुक्त शीघ्रगामी अश्वकी तरह नदियाँ महावेगसे प्रधावित होती हैं।

आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत ।
माव स्थात परावतः ॥८॥
मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मावः सिन्धुर्नि रीरमत् ।
मा वः परिष्ठात् सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत् सुम्नमस्तु वः ॥९॥
तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥ १० ॥
शर्धं शर्धं व एषां व्रातं व्रातं गणङ्गणं सुशस्तिभिः ।
अनु क्रामेम धीतिभिः ॥ ११ ॥
कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः ।
एना यामेन मरुतः ॥ १२ ॥
येन तोकाय तनयाय धान्यं बीजं वहध्वे अक्षितम् ।
अस्मभ्यं तद्धत्तन यद्व ईमहे राधो विश्वायु सौभगम् ॥१३॥

---

८ हे मरुतो, तुम लोग द्युलोकसे, अन्तरिक्षसे अथवा इसी लोकसे आगमन करो। दूर देश द्युलोक इत्यादिमें अवस्थान नहीं करो।

९ हे मरुतो, रसा, अनितभा और कुभा नामकी नदियाँ एवम् सर्वत्र गमनशील सिन्धु (समुद्र) तुम लोगोंको नहीं रोकें। जलमयी सरयू तुम लोगोंको निरुद्ध नहीं करें। हम सब तुम्हारे आगमन-जनित सुख प्राप्त करें।

१० तुमलोगोंके प्रेरक नूतन रथके बलकर और दीप्त मरुद्गणका हम स्तवन करते हैं। वृष्टि मरुतोंका अनुगमन करती है अथवा वृष्टिप्रद मरुद्गण सर्वत्र गमन करते हैं।

११ हे मरुतो, हम शोभन स्तुति और हविः प्रदानादि लक्षण कार्य द्वारा तुम्हारे बलको, अविवक्षित गणका और सप्त-सप्त-समुदायात्मक गणका अनुसरण करते हैं।

१२ आजके दिन किस हव्य देनेवाले यजमानके निकट, प्रकृष्ट रथ द्वारा, मरुद्गण गमन करेंगे ?

१३ जिस दयायुक्त हृदयसे तुम लोग पुत्र और पौत्रको अक्षीण धान्यबीज बहु वार प्रदान करते हो, उसी चित्तसे हम लोगोंको भी वह धान्यबीज प्रदान करो। क्योंकि हम लोग तुम्हारे निकट सर्वान्नोपेत अथवा आयुर्युक्त तथा सौभाग्यात्मक धनकी याचना करते हैं।

अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वावद्यमरातीः ।
वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह ॥१४॥
सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः समर्त्यः ।
यं त्रायध्वे स्याम ते ॥१५॥
स्तुहि भोजान्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे ।
यतः पूर्वा इव सखीँरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥ १६ ॥

५४ सूक्त

मरुद्गण देवता । श्यावाश्व ऋषि । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते ।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥१॥

---

१४ हे मरुतो, हम लोग कल्याण द्वारा पापको परित्याग करके निन्दक शत्रुओंको जीतें। तुम्हारे द्वारा वृष्टिके प्रेरित होनेपर हम सुख, पाप-निवारक उदक और गोयुक्त औषध प्राप्त करें।

१५ हे पूजित और नेता मरुतो, तुम लोग जिसकी रक्षा करते हो, वह देवों द्वारा अनुगृहीत और शोभन पुत्र-पौत्रादिसे युक्त होता है । हम लोग उसी व्यक्तिकी तरह हों; क्योंकि हम लोग तुम्हारे ही हैं ।

१६ हे ऋषि, स्तुति करनेवाले इस यजमानके यज्ञमें तुम दाता मरुद्गणकी स्तुति करो। तृणादि भक्षण करनेके लिये गमन करनेवाली गौओंकी तरह मरुद्गण आनन्दित होते हैं । पुरातन बन्धुकी तरह गमनशील मरुतोंका आह्वान करो । स्तवनकी इच्छा करनेवाले मरुतोंकी, वचन द्वारा, स्तुति करो ।

१ मरुत्सम्बन्धी बलके लिये इस क्रियमाण स्तुतिको प्रेषित करो अर्थात् मरुतोंके बलकी प्रशंसा करो । वे स्वयम् तेजोविशिष्ट पर्वतोंको विदिर्ण करनेवाले, धर्मशोषक, द्युलोकसे आगत और द्योतमान अन्नवाले हैं । इन्हें प्रचुर अन्न प्रदान करो ।

प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः ।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोवना परिज्रयः ॥२॥
विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः ।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृत स्तनयदमा रभसा उदोजसः ॥३॥
व्यक्तून्रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्यंतरिक्षं विरजांसि धूतयः ।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ॥४॥
तद्वी ं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम् ।
एता न यामे अगृभीतशोचिषोऽनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम् ॥५॥
अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ॥६॥

---

२ हे मरुतो, तुम्हारे गण प्रादुर्भूत होते हैं। वे दीप्तिमान्, जगद्रक्षणार्थं जलाभिलाषी, अन्नके वर्द्धयिता, गमन करनेके लिये अश्वोंको रथमें युक्त करनेवाले सर्वत्र गमनशील और विद्युत्के साथ सम्मिलित होनेवाले हैं। उसी समय त्रित (मेघ या मरुद्गण) शब्द करते है और चतुर्दिक् गमन करनेवाली जलराशि भूमिपर पतित होती हैं।

३ विद्योतमान तेजवाले, वृष्टि आदिके नेता, आयुधसे युक्त (पत्थर रूप आयुधवाले), प्रदीप्त, पर्वत अथवा मेघको विदीर्ण करनेवाले, बारम्बार उदक-दाता, वज्रक्षेपक, एकत्र शब्द करनेवाले, उद्धतबल, मरुद्गण वृष्टिके लिये प्रादुर्भूत होते हैं।

४ हे रुद्रपुत्र मरुतो, तुम लोग अहोरात्रको प्रवर्तित करो। हे सर्वसमर्थ, तुम लोग अन्तरिक्ष तथा लोकोंको विक्षिप्त करो। हे कम्पनकारी, तुम लोग समुद्रगर्भस्थ नौकाकी तरह मेघोंको कम्पित करो। तुम लोग शत्रुओंके नगरोंको विध्वस्त करो। हे मरुतो, हिंसा मत करो।

५ हे मरुतो, सूर्य जिस तरहसे बहुत दूरतक अपनी दीप्तिको विस्तारित करते हैं अथवा देवोंके अश्व जिस तरहसे गमनमें दीर्घताको विस्तारित करते हैं, उसी तरहसे तुम्हारे सुप्रसिद्ध वीर्य और महिमाको स्तोता लोग दूरतक विस्तारित करते हैं।

६ हे वृष्टिके विधाता मरुतो, तुम लोग उदकवान् मेघको ताड़ित करते हो। तुम्हारा बल शोभमान होता है। हे परस्पर समान प्रीतिवाले मरुतो, नयन जिस तरहसे मार्गप्रदर्शनमें नायक होता है, उसी तरहसे तुम लोग हमें सुगम मार्ग द्वारा धनादिके समीप ले जाओ।

न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति ।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥७॥
नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कबन्धिनः ।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन्व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ॥८॥
प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः ।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः ॥९॥
यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः ।
न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ ॥१०॥
अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः ।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ॥११॥

---

७ हे मरुतो, तुम लोग जिस मन्त्रद्रष्टा ब्राह्मण या राजाको सत्कर्ममें प्रेरित करते हो, वह दूसरोंके द्वारा न पराभूत होता है और न हिंसित होता है। वह न कभी क्षीण होता है, न पीड़ित होता है और न कोई बाधा प्राप्त करता है। उसका धन और उसकी रक्षा कभी नष्ट नहीं होती है।

८ नियुत्संज्ञक अश्वोंसे युक्त, संघात्मक पदार्थोंके विश्लेषयिता (मिलित पदार्थोंको पृथक् करनेवाले), नराकार अथवा नेता अथवा ग्रामजेता मनुष्यकी तरह और आदित्यकी तरह दीप्त मरुद्गण उदकवान् होते हैं। जब वे अधिपति होते हैं, तब कूपादि निम्न प्रदेशको अथवा मेघको जलपूर्ण करते हैं और शब्दायमान होकर सुमधुर तथा सारभूत जलसे पृथ्वीको सिंचित करते हैं।

९ यह पृथिवी मरुतोंके लिये विस्तीर्ण प्रदेशवाली होती है अर्थात् सम्पूर्ण पृथिवी मरुतोंकी है। द्युलोक भी मरुतोंके संचारणके लिये विस्तीर्ण होता है। अन्तरिक्षस्थित मार्ग मरुतोंके गमनके लिये विस्तीर्ण होता है। मरुतोंके लिये ही मेघ या पर्वत शीघ्र वर्षक होते हैं।

१० हे महाबलवाले सबके नेता मरुतो तथा हे द्युलोकके नेता, तुम लोग सूर्यके उदित होनेपर सोमपानके लिये हृष्ट होते हो, उस समय तुम लोगोंके अश्व गमनकार्यमें शिथिल नहीं होते हैं। तुम लोग भी तीनों लोकोंके सम्पूर्ण मार्गको पार करते हो।

११ हे मरुतो, तुम लोगोंके स्कन्ध प्रदेशमें आयुध शोभमान होते हैं। पैरोंमें कटक, वक्षःस्थलमें हार और रथके ऊपर शोभमान दीप्ति है। तुम लोगोंके हस्तद्वयमें अग्निदीप्त रश्मियाँ हैं और मस्तकपर विस्तीर्ण हिरणमयी पगड़ी है।

तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत्पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ ।
समच्यन्त वृजनातित्विषन्त यत्स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः ॥१२॥
युष्माद्त्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो वयस्वतः ।
न यो युच्छति तिष्यो यथा दिवो स्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम् ॥१३॥
यूयं रयिं मरुतः स्पार्हवीरं यूयमृषिमवथ सामविप्रम् ।
यूयमर्वन्तं भरताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ॥१४॥
तद्वो यामि द्रविणं सद्य ऊतयो येना स्वर्ण ततनाम नॄँरभि ।
इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमाः ॥१५॥

* * *

---

१२ हे मरुतो, जब तुम लोग गमन करते हो, तब अप्रतिहत दीप्तिशाली स्वर्ग और समुज्ज्वल वारिराशि विचलित हो जाती हैं। जब तुम लोग हमारे द्वारा प्रदत्त हव्यको खाकर बलशाली होते हो और उज्ज्वल भावसे दीप्ति प्रकाशित करते हो एवम् जब तुम लोग उदकवर्षणकी अभिलाषा प्रकट करते हो, तब तुम लोग भीषण रूपसे गर्जना करते हो ।

१३ हे विविध बुद्धिवाले मरुतो, हम लोग रथाधिपति हैं। हम लोग तुम्हारे द्वारा प्रदत्त अन्नवान् धनके स्वामी हों। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त धन कभी नष्ट नहीं होता है, जैसे आकाशसे सूर्य कभी नहीं बिलग होते है। हे मरुतो, हम लोगोंको अपरिमित धन द्वारा आनन्दित करो ।

१४ हे मरुतो, तुम लोग धन और स्पृहणीय पुत्र-भृत्यादि प्रदान करो । हे मरुतो, तुम लोग सोमसहित विप्रकी रक्षा करो । हे मरुतो, तुम लोग श्यावाश्वको धन और अन्न प्रदान करो । वे देवोंका यजन करते हैं। हे मरुतो, तुम लोग राजाको सुखयुक्त करो ।

१५ हे सद्यः रक्षणशील मरुतो, तुम लोगोंसे हम धनकी याचना करते हैं। सूर्य जिस तरहसे अपनी रश्मिको दूरतक विस्तारित करते हैं, उसी तरहसे हम भी अपने पुत्र-भृत्यादिको उसी धनसे विस्तारित करें । हे मरुतो, तुम लोग हमारे इस स्तोत्रकी कामना करो, जिससे हम सौ हेमन्त अतिक्रमण करें अर्थात् सौ वष जीवित रहें ।

५५ सूक्त

मरुद्गण देवता । श्यावाश्व ऋषि । त्रिष्टुप और जगती छन्द ।

प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः ।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥१॥
स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥२ ॥
साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः ।
विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥३॥
आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम् ।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥४॥
उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥५॥

---

१ अतिशय यष्टव्य और दीप्त आयुधवाले मरुद्गण यौवन रूप प्रभूत अन्न धारण करते हैं। वे वक्षःस्थलपर हार धारण करते हैं । सुखपूर्वक नियमन योग्य (विनीत) तथा शीघ्रगामी अश्व उन्हें वहन करते हैं । शोभनभावसे अथवा उदकके प्रति गमन करनेवाले मरुतोंके रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं ।

२ हे मरुतो, तुम लोग जैसा जानते हो अर्थात् जो उचित समझते हो, वैसी सामर्थ्य स्वयम् धारण करते हो—तुम्हारी सामर्थ्य अप्रतिबद्ध है । हे मरुतो, तुम लोग महान् और दीर्घ होकर शोभमान होओ; अन्तरिक्षको बल द्वारा व्याप्त करो । शोभमान भावसे अथवा उदकके प्रति गमन करनेवाले मरुतोंके रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं ।

३ महान् मरुद्गण एक साथ ही उत्पन्न हुए हैं और एक साथ ही वर्षक होते हैं । वे अतिशय शोभाके लिये सर्वत्र वर्द्धमान हुए हैं । सूर्यरश्मिकी तरह वे यागादि कार्यके नेता तथा शोभासम्पन्न हैं । शोभमानभावसे अथवा उदकके प्रति गमन करनेवाले मरुतोंके रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं ।

४ हे मरुतो, तुम लोगोंकी महत्ता स्तवनीय है । तुम लोगोंका रूप सूर्यकी तरह दर्शनीय हैं । हमारे मोक्षमें अर्थात् स्वर्ग प्राप्तिके विषयमें तुम लोग हमारे सहायक होओ । शोभमानभावसे अथवा उदकके प्रति गमन करनेवाले मरुतोंके रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं ।

५ हे मरुतो, तुम लोग अन्तरिक्षसे वृष्टिको प्रेरित करो । हे जलसम्पन्न, तुम लोग वर्षण करो । हे दर्शनीयो अथवा शत्रुसंहारको, तुम्हारे प्रीणयिता (सन्तुष्ट करनेवाले) मेघ कभी भी शुष्क नहीं होते हैं । शोभमानभावसे अथवा उदकके प्रति गमन करनेवाले मरुतोंके रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं ।

यदश्वान्धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान् प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम् ।
विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥६॥
न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत् ।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥७॥
यत्पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते ।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥८॥
मृड़त नो मरुतो मा वधिष्टनास्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातनम् शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥९॥
यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥

---

६ हे मरुतो, जब तुम लोग रथके अग्र भागमें पृषती (मरुतोंके घोड़ेका नाम अथवा पृषद्वर्णवाली घोड़ी) अश्वको युक्त करते हो, तब हिरण्य वर्णवाले कवचको उतार देते हो। तुम लोग सब संग्रामोंमें विजय प्राप्त करते हो। शोभमानभावसे अथवा उदकके प्रति गमन करनेवाले मरुतोंके रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं।

७ हे मरुतो, पर्वत तथा नदियाँ तुम लोगोंके लिये प्रतिरोधक नहीं हों। तुम लोग जिस किसी यज्ञादि स्थानमें जानेके लिये सङ्कल्प करते हो, वहाँ जाते ही हो। वृष्टिके लिये तुम लोग द्यावा-पृथिवीमें व्याप्त होते हो। शोभमानभावसे अथवा उदकके प्रति गमन करनेवाले मरुतोंके रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं।

८ हे मरुतो, जो यागादि कार्य पूर्वमें अनुष्ठित हुआ है और जो अभी हो रहा है, हे वसुओ, जो कुछ मन्त्र गीत होता है तथा जो कुछ स्तोत्र पाठ होता है, तुम लोग वह सब जानो। शोभनभावसे अथवा उदकके प्रति गमन करनेवाले मरुतोंके रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं।

९ हे मरुतो, तुम लोग हमें सुखी करो। हम लोगोंके द्वारा किसी अनिष्ट कार्यके हो जानेसे, जो तुम्हें कोप उत्पन्न हुआ है, उससे हम लोगोंको बाधा मत पहुँचाओ। हम लोगोंको अत्यन्त सुख प्रदान करो। स्तुतिको अवगत करके हम लोगोंके साथ मैत्री करो। शोभन भावसे अथवा उदकके प्रति गमन करनेवाले मरुतोंके रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं।

१० हे मरुतो, तुम लोग हमें ऐश्वर्यके अभिमुख ले जाओ। हम लोगोंके स्तोत्रसे प्रसन्न होकर हम लोगोंको पापसे उन्मुक्त करो। हे यजनीय मरुतो, तुम लोग हम लोगोंके द्वारा प्रदत्त हव्य ग्रहण करो, जिससे हम लोग बहुविध धनके अधिपति हों।

५६ सूक्त

मरुद्गण देवता । श्यावाश्व ऋषि । बृहती छन्द ।

अग्ने शर्द्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ॥१॥
यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः ।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्तान्वर्द्ध भीमसंदृशः ॥२॥
मीह्लुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्योत्यस्मदा ।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥३॥
नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुर ।
अश्मानं चित्स्वर्यं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥४॥
उत्तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम् ।
मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥५॥

---

१ हे अग्नि, रोचमान आभरणोंसे युक्त और शत्रुओंको पराभूत करनेवाले अथवा यज्ञके प्रति उत्साहित होनेवाले मरुतोंका आह्वान करो। आज यज्ञ दिनमें दीप्तिमान् स्वर्गसे हम लोगोंके अभिमुख आनेके लिये मरुतोंका आह्वान करते हैं।

२ हे अग्नि, जिस प्रकारसे तुम मरुतोंको अत्यन्त पूजित जानते हो—उनका आदर करते हो, उसी प्रकारसे वे हम लोगोंके निकट उपकारक-भावसे आगमन करें। जो तुम्हारे आह्वान-श्रवण मात्रसे ही आगमन करते हैं, उन भयङ्कर-दर्शनवाले मरुतोंको हव्य प्रदान द्वारा वर्द्धित करो।

३ पृथ्वीपर अधिष्ठित मनुष्य दूसरे व्यक्ति द्वारा अभिभूत होनेपर जैसे अपने प्रबल स्वामीके निकट गमन करता है, उसी प्रकार मरुत्सेना उल्लासित होकर हम लोगोंके निकट आगमन करती है। हे मरुतो, तुम लोग अग्निकी तरह कर्मक्षम और भीषणकी तरह दुर्द्धर्ष हो।

४ दुर्द्धर (कठिनतासे हिंसनीय) अश्वकी तरह जो मरुद्गण अपने बलसे विना आयासके ही, शत्रुओंको विनष्ट करते हैं, वे गमन द्वारा शब्दायमान, व्याप्त और संसारको पूर्ण करनेवाले जलसे युक्त मेघको जलके लिये प्रेरित करते हैं।

५ हे मरुतो, तुम लोग उत्थित होओ। हम लोग स्तोत्र द्वारा वर्द्धित, वारिराशिकी तरह समृद्धिशाली, बलसम्पन्न और अपूर्व मरुतोंका (स्तोत्र द्वारा) आह्वान करते हैं।

युङ्ध्वं ह्यरुषो रथे युङ्ध्वं रथेषु रोहितः ।
युङ्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोह्लवे बहिष्ठा धुरि वोह्लवे ॥६॥
उतस्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः ।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत् प्र तं रथेषु चोदत ॥७॥
रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमाहुवामहे ।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि विभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥८॥
तं वः शर्द्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।
यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीह्लुषी ॥९॥

◆

६ हे मरुतो, तुम लोग रथमें अरुषी (रोचमान वड़वा)को युक्त करो। रथसमूहमें रोहित वर्ण अश्वको युक्त करो। भारवहनके लिये शीघ्र गमनवाले हरिद्वयको युक्त करो।* जो वहनकार्यमें सुदृढ़ हैं, उन्हें भार वहनके लिये युक्त करो।

७ हे मरुतो, रथमें नियोजित, दीप्तिमान् प्रभूत ध्वनिकारी और दर्शनीय वह अश्व तुम लोगोंकी यात्राके सम्बन्धमें विलम्बोत्पादन नहीं करे। रथमें नियुक्त उस अश्वको तुम लोग इस प्रकारसे प्रेरित करो, जिससे वह विलम्बोत्पादन नहीं करे।

८ हम लोग मरुद्गणके उस अन्नपूर्ण रथका आह्वान करते हैं, जिस रथके ऊपर सुरमणीय जलको धारण करके मरुतोंके साथ रोदसी (रुद्रकी पत्नी अथवा मरुतोंकी माता या वायुपत्नी, माध्यमिका देवी) अवस्थित हैं।

हे मरुतो, हम तुम लोगोंके उस रथका आह्वान करते हैं, जो शोभाकारी, दीप्तिमान् और स्तुति-योग्य हैं। जिसके मध्यमें सुजाता, सौभाग्यशालिनी मीह्लुषी ❀ मरुतोंके साथ पूजित होती है।

---

* सूर्यके अश्वका नाम अरुष, अग्निके अश्वका नाम रोहित और इन्द्रके अश्वका नाम हरि है।

❀ मरुन्माता, रुद्रपत्नी, रोदसी।

५७ सूक्त

५ अनुवाक । मरुद्गण देवता । श्यावाश्व ऋषि । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत्प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥१॥
वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः ।
स्वश्वा स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथनाशुभम् ॥२॥
धूनुथ द्यां पर्वतान्दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया ।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् । ३॥
वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमा इव सुसदृशः सुपेशसः ॥
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥४॥
पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसंदृशो अनवभ्रराधसः ।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे ॥५॥

---

१ हे परस्पर सदयचित्त, सुवर्णमय रथारूढ़, इन्द्रके अनुचर रुद्रपुत्रो, तुम लोग सुगम्य यज्ञमें आगमन करो। हम तुम लोगोंके उद्देशसे यह स्तोत्र पाठ करते हैं। तुम लोग तृषार्त और जलाभिलाषी गोतमके निकट जिस प्रकार स्वर्गसे जल लाये थे, उसी प्रकार हम लोगोके निकट भी आगमन करो।

२ हे सुबुद्धि मरुतो, तुम लोगोंको भक्षणसाधन आयुध, छुरिका, उत्कृष्ट धनुर्वाण, तूणीर और श्रेष्ठ अश्व तथा रथ हैं। तुम लोग अस्त्र द्वारा सुसज्जित होओ। हे पृश्निपुत्रो, हम लोगोंके कल्याण-विधानार्थ आगमन करो।

३ हे मरुतो, तुमलोग अन्तरिक्षमें मेघोंको विक्षिप्त करो, हव्य-दाताको धन प्रदान करो। तुम लोगोंके आगमन-भयसे वन विकम्पित होते हैं। हे पृश्निपुत्रो, हे कोपनशील बलवालो, जब तुमलोग जलके लिये अपने पृषती अश्वको रथमें युक्त करते हो, तब पृथवीके ऊपर कोप प्रकाशित करते हो।

४ मरुद्गण दीप्तिमान्, वृष्टिशोधक, यमजकी तरह तुल्यरूप, दर्शनीय-मूर्ति, श्यामवर्ण और अरुण-वर्ण, अश्वोंके अधिपति, निष्पाप और शत्रु क्षयकारी हैं। वे विस्तृत आकाशकी तरह विस्तीर्ण हैं।

५ प्रभूत वारि वर्षणकारी, आवरणधारी, दानशील, उज्ज्वलमूर्ति, अक्षय धनसम्पन्न, सुजन्मा, वक्षःस्थलपर हार धारण करनेवाले और पूजनीय मरुद्गण द्युलोकसे आगमन करके अमरण-साधक उदक (अमृत) प्राप्त करते हैं।

ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम् ।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ॥६॥
गोमदश्वावद्रथवत्सुवीरं चन्द्रवद्राधो मरुतो ददा नः ।
प्रशस्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ॥७॥
हये नरो मरुतो मृड़ता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८॥

५८ सूक्त

मरुद्गण देवता । श्यावाश्व ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

तमु नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
य आश्वश्वा अमवद्वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥१॥
त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम् ।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वंदस्व विप्र तुविराधसो नॄन् ॥२॥

---

६ हे मरुतो, तुम लोगोंके स्कन्धदेशमें आयुध-विशेष, बाहुद्वयमें शत्रुनाशक बल, शिरोदेशमें सुवर्णमय उष्णीष, रथके ऊपर आयुध प्रभृति और अङ्गोंमें शोभा अवस्थित है ।

७ हे मरुतो, तुम लोग हम लोगोंको बहुत गौ, अश्व, रथ, प्रशस्त पुत्र और हिरण्यके साथ अन्न प्रदान करो । हे रुद्रपुत्रो, तुम लोग हम लोगोंकी समृद्धिको वर्द्धित करो । हम तुम लोगोंकी स्वर्गीय रक्षाका भोग करें ।

८ हे मरुतो, तुम लोग हम लोगोंके प्रति अनुकूल होओ । तुम लोग नेता, अतुल ऐश्वर्यशाली, अविनश्वर, वारिवर्षक, सत्य फलसे प्रसिद्ध, ज्ञानसम्पन्न, तरुण, प्रचुर स्तुतियुक्त और प्रभूत वर्षणकारी हो ।

१ आज यज्ञ दिनमें हम दीप्तिमान् और स्तुतियोग्य मरुतोंका स्तवन करते हैं। मरुद्गण शीघ्रगामी अश्वोंके अधिपति, बलपूर्वक सर्वत्र गतिशील, जलके अधिपति और निज प्रभा द्वारा प्रभान्वित हैं ।

२ हे होता, तुम दीप्तिमान् बलशाली, बलय-मण्डित-हस्त, कम्पन-विधायक, ज्ञानसम्पन्न और धनदाता मरुतोंकी पूजा करो । जो सुखदाता हैं, जिनका महत्त्व अपरिमित है, जो अतुल ऐश्वर्यसम्पन्न नेता हैं, उन मरुतोंकी वन्दना करो ।

आ वो यन्तूद्वाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥३॥
यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः ।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत्सदश्वो मरुतः सुवीरः ॥४॥
अरा इवेद्चरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः ।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः ॥५॥
यत्प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैर्वीलुपविभि मरुतो रथेभिः
क्षोदन्त आपो रिणते वनान्यावो स्त्रिय वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥६॥
प्रथिष्ट यामन्पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः ।
वातान्ह्यश्वान्धुर्यायुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥७॥

---

३ जो विश्वव्यापी मरुद्गण वृष्टि प्रेरित करते हैं, वे जलवाहक मरुद्गण अभी तुमलोगोंके निकट
उपस्थित हों। हे तरुण और ज्ञानसम्पन्न मरुतो, तुमलोगोंके लिये जो अग्नि प्रज्वलित हुआ है,
उसीके द्वारा तुम लोग प्रीति लाभ करो ।

४ हे पूजनीय मरुतो, तुम लोग यजमानको अथवा राजाको एक पुत्र प्रदान करो, जो दीप्ति-
मान्, शत्रुसंहारक और विभ्व द्वारा विर्मित हो। हे मरुतो, तुम लोगोंसे ही अपने भुजबल द्वारा
शत्रुहन्ता, शत्रुओंके प्रति बाहुप्रेरक और असंख्य अश्वोंके अधिपति पुत्र उत्पन्न होते हैं।

५ रथके शङ्कु (कील) की तरह तुमलोग एक साथ ही उत्पन्न हुए हो। दिवसोंकी तरह
परस्पर समान हो। पृश्निके पुत्र समान रूपसे ही उत्पन्न हुए हैं, कोई भी दीप्तिके विषयमें
निकृष्ट नहीं हैं। वेगगामी मरुद्गण स्वतः प्रवृत्त होकर भली भाँतिसे वारिवषण करते हैं।

६ हे मरुतो, जब तुमलोग पृषती अश्व द्वारा आकृष्ट दृढ़चक्र रथपर आरोहण करके
आगमन करते हो, तब वारिराशि पतित होती है, वन भग्न होते हैं और सूर्य-किरणसे सम्पृक्त
वारिवर्षणकारी पर्जन्य अधोमुख होकर वृष्टिके लिये शब्द करते हैं।

७ मरुतोंके आगमनसे पृथ्वी उर्बरता प्राप्त करती है। पति जिस तरहसे भार्याका गर्भ
उत्पादन करते हैं, उसी तरह मरुद्गण पृथ्वीके ऊपर गर्भस्थानीय सलिल स्थापित करते हैं।
रुद्रके पुत्र शीघ्रगामी अश्वोंको रथके अग्र भागमें युक्त करके वृष्टि उत्पन्न करते हैं।

हये नरो मरुतो मृडतो नस्तुवोमघासो अमृतो ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८॥

५९ सूक्त

मरुद्गण देवता । श्यावाश्व ऋषि । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र वः स्पलक्रन्त्सुविताय दावनेर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे ।
उक्षन्ते अश्वान्तरुषन्त आ रजोनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥१॥
अमादेषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती ।
दूरेदृशो ये चितयन्त एमभिरन्तर्महे विदथे येतिरे नरः ॥२॥
गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने ।
अत्या इव सुभ्वश्चारवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः ॥३॥
को वो महान्ति महतामुदश्नवत्कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या ।
यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद्भरध्वे सुविताय दावने ॥४॥

---

८ हे मरुतो, तुम लोग हमारे प्रति अनुकूल होओ । तुम लोग नेता, विपुल ऐश्वर्यशाली, अविनश्वर, वारिवर्षक, सत्य फलसे प्रसिद्ध, ज्ञानसम्पन्न, तरुण, प्रचुर स्तुतियुक्त और प्रभूत वर्षणकारी हो।

१ हे मरुतो, कल्याणके लिये हव्यदाता होता तुम लोगोंका स्तवन भली भाँतिसे करते हैं । हे होता, तुम द्योतमान द्युदेवका स्तवन करो । हे आत्मा, हम पृथ्वीका स्तवन करते हैं । मरुद्गण सर्वव्यापिनी वृष्टिको पातित करते हैं। वे अन्तरिक्षमें सर्वत्र सञ्चरण करते हैं और मेघोंके साथ अपने तेजको प्रकाशित करते हैं।

२ प्रणियोंसे पूर्ण नौका जैसे जलमध्यमें कम्पित होकर गमन करती है, वैसे ही मरुतोंके भयसे पृथिवी कम्पित होती है। वे दूरसे ही दृश्यमान होनेपर भी गति द्वारा परिज्ञात होते हैं। नेता मरुद्गण द्यावापृथिवीके मध्यमें अधिक हव्य भक्षणके लिये चेष्टा करते हैं।

३ हे मरुतो, तुमलोग शोभाके लिये गोशृङ्गकी तरह उत्कृष्ट शिरोभूषण धारण करते हो। दिवसके नेता सूर्य जिस प्रकारसे निज रश्मि विकीर्ण करते हैं, उसी तरह तुमलोग वृष्टिके लिये सर्वप्रकाशक तेज धारण करते हो। तुमलोग अश्वोंकी तरह वेगवान् और मनोहर हो। हे नेता मरुतो, यजमान आदि जैसे यज्ञादि कार्यको जानते हैं, वैसे ही तुमलोग भी जानते हो।

४ हे मरुतो, तुम सब पूजनीय हो। तुमलोगोंकी पूजा कौन कर सकता है? कौन तुमलोगोंके स्तोत्र-पाठमें समर्थ हो सकता है? कौन तुम लोगोंके वीरत्वकी घोषणा कर सकता है? क्योंकि तुमलोगोंके द्वारा वृष्टिपात होनेसे भूमि किरणकी तरह कम्पित होने लगती है।

अश्वा इवेदरुषासः सबन्धवः शूरा इव प्रयुधः प्रोत युयुधुः।
मर्या इव सुवृधो वावृधुर्नरः सूर्यस्य चक्षुः प्रमिनन्ति वृष्टिभिः ॥५॥
ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोमध्यमासो महसा वि वावृधुः।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥६॥
वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसान्तान्दिवो बृहतः सानुनस्परि।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः ॥७॥
मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम्।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥८॥

६० सूक्त

अग्नि और मरुद्गण देवता। श्यावाश्व ऋषि। जगती और त्रिष्टुप् छन्द।

ईले अग्निं स्ववसं नमोभिरिह प्रसत्तो वि चयत्कृतं नः।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम् ॥१॥

---

५ अश्वोंकी तरह वेगगामी, दीप्तिमान, समान बन्धुवाले मरुद्गण वीरोंकी तरह युद्ध कार्यमें व्याप्त हैं। समृद्धि-सम्पन्न मनुष्योंकी तरह नेता मरुद्गण अत्यन्त शक्तिशाली होकर, वृष्टि द्वारा, सूर्यके चक्षुको आवृत करते हैं।

६ मरुतोंके मध्यमें कोई भी किसीकी अपेक्षा, ज्येष्ठ या कनिष्ठ नहीं हैं। शत्रुसंहारक मरुतोंके मध्यमें कोई भी मध्यम नहीं हैं। सब तेजोविशेषसे वर्द्धमान हैं। हे सुजन्मा, मानवोंके हितकारी, पृश्निपुत्र मरुतो, तुमलोग द्युलोकसे हमलोगोंके अभिमुख आगमन करो।

७ हे मरुतो, तुमलोग पङ्क्तिबद्ध होकर उड़नेवाले पक्षीकी तरह बलपूर्वक विस्तीर्ण और समुन्नत नभोमण्डलके उपरि भाग होकर अन्तरिक्षके पर्यन्त भागमें गमन करते हो। तुम्हारे अश्व मेघसे वृष्टि पातित करते हैं—यह देव और मनुष्य दोनों ही जानते हैं।

८ द्यावापृथिवी हमलोगोंकी पुष्टिके लिये वृष्टि उत्पादन करें। निरतिशय दानशीला उषा हमलोगोंके कल्याणके लिये यत्न कर। हे ऋषि, ये रुद्रपुत्र तुम्हारे स्तवनसे प्रसन्न होकर स्वर्गीय वृष्टि-वर्षण कर।

१ हम श्यावाश्व ऋषि स्तोत्र द्वारा रक्षाकारी अग्निकी स्तुति करते हैं। वे अभी यज्ञमें उपस्थित होकर प्रसन्नतापूर्वक उस स्तोत्रको जानें। जैसे रथ अभिमत स्थानको प्राप्त कराता है, उसी तरहसे हम अन्नाभिलाषी स्तोत्रों द्वारा अपने अभीष्टका सम्पादन करते हैं। प्रदक्षिणा करके हम मरुतोंके स्तोत्रको वर्द्धित करें।

आ ये तस्थुः पृषतीषु श्रुतासु सुखेषु रुद्रा मरुतो रथेषु ।
वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवी चिद्रेजते पर्वतश्चित् ॥२॥
पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः ।
यत्क्रीळथ मरुतः ऋष्टिमन्त आप इव सध्र्यञ्चो धवध्वे ॥३॥
वरा इवेद्रैवतासो हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे ।
श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु ॥४॥
अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥५॥
यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद्वावमे सुभगासो दिविष्ठ ।
अतो नो रुद्रा उत वा न्वस्याग्ने वित्ताद्धविषो यद्यजाम ॥६॥

---

२ हे उद्यतायुध रुद्रपुत्र मरुतो, तुम लोग प्रसिद्ध अश्वों द्वारा आकृष्ट, शोभन तथा अक्ष-समन्वित रथपर आरूढ़ होकर गमन करो। जब तुम लोग रथाधिरूढ़ होते हो, तब वन तुम्हारे भयसे कम्पित होते हैं।

३ हे मरुतो तुम लोगोंके द्वारा भयङ्कर शब्द किये जानेपर अत्यन्त वर्द्धमान पर्वत भी भीत हो जाते हैं और अन्तरिक्षके उन्नत या विस्तृत प्रदेश भी कम्पित हो जाते है। हे मरुतो, तुम सब आयुधवान् हो। जब तुम लोग क्रीड़ा करते हो, तब उदककी तरह प्रधावित होते हो।

४ विवाहके योग्य धनवान् युवा जिस प्रकार सुवर्णमय-अलङ्कार तथा उदकके द्वारा अपने शरीरको भूषित करता है, उसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ, बलशाली मरुद्गण रथके ऊपर समवेत होकर अपने शरीरकी शोभाके लिये तेज धारण करते हैं।

५ ये मरुद्गण एक साथ ही उत्पन्न हुए हैं अथवा समान बलवाले हैं। परस्पर ज्येष्ठ और कनिष्ठभावसे वर्जित हैं। ये मरुद्गण परस्पर भ्रातृभावसे सौभाग्यके लिये वर्द्धमान होते हैं। नित्य तरुण तथा सत्कर्मके अनुष्ठानकारी मरुतोंके पिता रुद्र और जननी-स्वरूपा दोहनयोग्या पृश्नि (गो देवता) मरुतोंके लिये शोभन दिन उत्पन्न करें।

६ हे सौभाग्यशाली मरुतो, तुम लोग उत्तम (उत्कृष्ट) द्युलोकमें, मध्यम द्युलोकमें अथवा अधोद्युलोकमें वर्तमान होते हो। हे रुद्रो, उन स्थानों (तीनों द्युलोकों)से हमलोगोंके लिये आगमन करो। हे अग्नि, हम आज जो हवि प्रदान करते हैं, उसे तुम जानो।

अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो दिवो वहध्व उत्तरादधिष्णुभिः ।
ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते ॥७॥
अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः ।
पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिर्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः ॥८॥

६१ सूक्त*

मरुद्गण, तरन्त राजाकी भार्या शशीयसी, पुरुमीहूल, तरन्त और रथवीति देवता ।
श्यावाश्व ऋषि । गायत्री, अनुष्टुप और बृहती छन्द ।

के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा य एक एक आयय । परमस्याः परावतः ॥१॥

७ हे सर्वज्ञ मरुतो, तुम लोग और अग्नि द्युलोकके उत्कृष्टतर उपरि प्रदेशमें अवस्थान करते हो । तुम लोग हमारे स्तवन और हव्यसे प्रसन्न होकर शत्रुओंको कम्पित तथा विनष्ट करो और अभिषव करनेवाले यजमानोंको अभिलषित धन प्रदान करो ।

८ हे वैश्वानर अग्नि, पुरातन ज्वाल-पुञ्जसे युक्त होकर तुम शोभमान, पूजनीय, गणभावका आश्रय (समवेत) करनेवाले, पवित्रताविधायक, प्रीतिदायक और दीर्घजीवी मरुतोंके साथ सोमपानकरो ।

१ हे श्रेष्ठतम नेताओ, तुमलोग कौन हो ? दूर देश अर्थात् अन्तरिक्षसे तुमलोग एक-एक करके उपस्थित होओ ।

---

* आगम-पारदर्शियोंने एक आश्चर्यजनक इतिहास बताया है कि, दर्भपुत्र रथवीतिने अत्रिवंशज अर्चनानाको होतृकार्यमें नियुक्त किया था । अर्चनानाने राजपुत्रीको अपने पिताके समीप देख करके अपने पुत्र श्यावाश्वके साथ उसका विवाह कर देनेके लिये राजासे प्रार्थना की । राजी होकर राजाने अपनी महिषीसे इस विषयमें पूछा । उसने कहा कि, हमारे कुलकी कन्याका विवाह ऋषियोंके साथ होता है और यह श्यावाश्व ऋषि नहीं हैं; अतः इनके साथ मेरी कन्याका विवाह कैसे हो सकता हैं ?

श्यावाश्वने राजकुमारीको प्राप्त करनेके लिये दारुण तप आरम्भ किया । एक दिन भिक्षा माँगते-माँगते वे तरन्तकी महिषी शशीयसीके निकट पहुँचे । शशीयसीने उन्हें अपने पतिने सम्मुख उपस्थित कर दिया । राजाने उनका समुचित आतिथ्य सत्कार किया । शशीयसीने उन्हें गोयूथ और आभरण प्रदान किये । राजाने उन्हें अभिलषित धन प्रदान करके अपने अनुज पुरुमीढके पास भेज दिया । रास्तेमें श्यावाश्वका मरुद्गण मिले । भीत होकर श्यावाश्व मरुतोंकी स्तुति करने लगे । मरुतोंने प्रसन्न होकर उन्हें ऋषिकी पदवी प्रदान की । मरुतोंके प्रसादसे श्यावाश्व सूक्त-द्रष्टा ऋषि हुए । इसके बाद रथवीति और उनकी महिषीने श्यावाश्वके साथ अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया । पुरुमीहूल तरन्त, शशीयसी, रथवीति और मरुतोंने सन्तुष्ट होकर श्यावाश्वको जो-जो दिया था, वही इस सूक्तमें वर्णित है । —सायण

क्व वोऽश्वाः क्वाभीशवः कथं शेक कथा यय ।
पृष्ठे सदो नसोर्यमः ॥२॥
जघने चोद एषां वि सक्थानि नरो यमुः ।
पुत्र कृथे न जनयः ॥३॥
परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः ।
अग्नितपो यथासथ ॥४॥
सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम् ।
श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥५॥
उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी ।
अदेवत्रादराधसः ॥६॥
वि या जानाति जसुरिं वितृष्यन्तं वि कामिनम् ।
देवत्रा कृणुते मनः ॥७॥

---

२ हे मरुतो, तुम लोगोंके अश्व कहाँ हैं ? लगाम कहा हैं ? शीघ्र गमनमें समर्थ होते हो? किस प्रकारका गमन है ? अश्वोंके पृष्ठ देशपर आस्तरण और नासिकाद्वयमें बन्धनरज्जु लक्षित होते हैं।

३ अश्वोंके जघन देशमें शीघ्र गमनके लिये कशा (कोड़ा) घात होता है। पुत्रोत्पादन (संगम) कालमें जैसे रमणियाँ उरुद्वयको विवृत करती हैं, उसी प्रकार नेता मरुद्गण अश्वोंको, उरुद्वय विवृत करनेके लिये, बाध्य करते हैं।

४ हे वीरो, शत्रुसंहारको, हे मनुष्योंके लिये कल्याण करनेवालो, हे शोभन जन्मवालो, मरुत्पुत्रो, तुम लोग अग्नितप्त ताम्रकी तरह प्रदीप्त दृष्ट होते हो।

५ श्यावाश्व (हम) ने जिसकी स्तुति की है, जिसने वीर तरन्तको भुजपाशमें बद्ध किया है, वही तरन्त महिषी शशीयसी हमें अश्व, गौ और शतमेषात्मक पशुयूथ प्रदान करती हैं।

६ जो पुरुष देवोंकी आराधना और धन दान नहीं करता है, उस पुरुषका अपेक्षा स्त्री शशीयसी सर्वांशमें श्रेष्ठ है ।

७ वह शशीयसी व्यथित (ताडित-उपेक्षित) को जानती है, तृष्णार्तको जानती है और धनाभिलाषीको जानती है अर्थात् कृपावश हो अभिमत धन प्रदान करती है। वह देवोंके प्रीत्यर्थ प्रदान-बुद्धि करती है अर्थात् देवोंके प्रति अपने चित्तको समर्पित करती है ।

उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुव पणिः ।
स वैरदेय इत्समः ॥८॥
उत मेरपद्यु वतिर्ममन्दुषी प्रति श्यावाय वर्तनिम् ।
वि रोहिता पुरुमीह्ळाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे ॥९॥
यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथा ददत् ।
तन्रत इव मंहना ॥१०॥
य ईं वहन्त आशुभिः पिबन्तो मदिरं मधु ।
अत्र श्रवांसि दधिरे ॥११॥
येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा ।
दिवि रुक्म इवोपरि ॥१२॥
युवा स मारुतो गणस्त्वेषरथो अनेद्यः ।
शुभंयावाप्रतिष्कुतः ॥१२॥

---

८ शशीयसीके अर्द्धाङ्गभूत पुरुष तरन्तकी स्तुति करके भी हम बोलते हैं कि, उनका समुचित स्तव नहीं हुआ है; क्योंकि वे दानके विषयमें सब समयमें एकत्रध हैं।

९ यौवनवता शशीयसीने मुदितमनसे श्यावाश्वको (हमें) पथ प्रदर्शित किया था। उसके द्वारा प्रदत्त लोहित वर्णवाले दोनों अश्व हमें यशस्वी, विज्ञ, पुरुमीह्ळके निकट वहन करते हैं अर्थात् सज्जित रथपर बैठाकर उसने ही हमें पुरुमीह्ळके घरतक पहुँचा दिया था।

१० विददश्वके पुत्र पुरुमीह्ळने भी हमें तरन्तकी ही तरह शत धेनु और महामूल्यवान् धन आदि प्रदान किया था।

११ जो मरुद्गण शीघ्रगामी अश्वोंपर आरूढ़ होकर हर्षविधायक सोमरसको पान करते हुए इस स्थानमें आगत हुए थे, वे मरुद्गण इस स्थानपर विविध स्तव धारण करते हैं।

१२ जिन मरुतोंकी कान्तिसे द्यावापृथिवी व्याप्त होती है। ऊपर द्युलोकमें रोचमान आदित्यकी तरह वे मरुद्गण रथके ऊपर विशेष दीप्त होते हैं।

१३ वे मरुद्गण नित्य तरुण, दीप्त रथविशिष्ट, अनिन्द्य, शोभन रूपसे गमन करनेवाले और अप्रतिहत गति हैं।

को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः ।
ऋतजाता अरेपसः ॥१४॥
यूयं मर्त्यं विपन्यवः प्रणेतार इत्था धिया ।
श्रोतारो यामहूतिषु ॥१५॥
ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः ।
आ यज्ञियासो ववृत्तन ॥१६॥
एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परा वह ।
गिरो देवि रथीरिव ॥१७॥
उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ ।
न कामो अप वेति मे ॥१८॥
एष क्षेति रथवीतिर्मघवा गोमतीरनु ।
पर्वतेष्वपश्रितः ॥१९॥

---

१४ जलवर्षणार्थ उत्पन्न अथवा यज्ञमें प्रादुर्भूत, शत्रुओंके कम्पक और निष्पाप मरुद्गण जिस स्थानपर हृष्ट हुए थे, मरुतोंके उस स्थानको कौन व्यक्ति जानता है ?

१५ हे स्तवाभिलाषी मरुतो, जो मनुष्य यजमान इस प्रकार स्तुतिकर्म द्वारा तुमलोगोंको प्रसन्न करता है, उसे तुम लोग अभिमत स्वर्गादि स्थान प्रदर्शित करते हो। यज्ञमें आहूत होनेपर तुमलोग उस आहवानको श्रवण करते हो।

१६ हे शत्रुसंहारक, पूजनीय, विविध धनशाली मरुतो, तुमलोग हम लोगोंको अभिवाञ्छित धन प्रदान करो।

१७ हे रात्रि देवी, तुम हमारे निकटसे रथवीतिके निकट इस मरुत्स्तुतिको प्रापित करो। यह स्तुति मरुतोंके लिये की गयी है। हे देवी, रथी जिस प्रकारसे रथके ऊपर विविध वस्तु रख करके गन्तव्य स्थानपर उसे ले जाता है, उसी प्रकार तुम हमारे इस सकल स्तवका वहन करो।

१८ हे रात्रि देवी, सोम यज्ञ सम्पन्न होनेपर रथवीतिको तुम यह कहना कि, तुम्हारी पुत्रीके प्रति हमारी कामना नहीं कमी है।

१९ यह धनवान् रथवीति गोमतीके तीरमें निवास करते हैं और हिमवान् पर्वतके प्रान्तमें उनका गृह अवस्थित है।

६२ सूक्त

मित्र और बरुण देवता । अत्रिके अपत्य श्रुतविद ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान् ।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम् ॥१॥
तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे ।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त ॥२॥
अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः ।
वर्द्धयतमोषधीः पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू ॥३॥
आ वामश्वासः सुयुजो वहन्तु यतरश्मय उप यन्त्वर्वाक् ।
घृतस्य निर्णिगनु वर्तते वामुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति ॥४॥
अनुश्रुताममतिं वर्द्धदुर्वीं बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा ।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेड़ास्वन्तः ॥५॥

१ हम तुम लोगोंके आवासभूत, उदक द्वारा आच्छादित, शाश्वत और सत्यभूत सूर्यमण्डलका दर्शन करते हैं। उस स्थानमें अवस्थित अश्वोंको स्तोता लोग मुक्त करते हैं। उस मण्डलमें सहस्र-संख्यक रश्मियाँ अवस्थिति करती हैं। तेजोवान् अग्नि आदि शरीरवान् देवोंके मध्यमें हमने सूर्यके उस श्रेष्ठ मण्डलको देखा है।

२ हे मित्र और बरुण, तुम दोनोंका यह माहात्म्य अत्यन्त प्रशस्त है, जिसके द्वारा निरन्तर परिभ्रमणकारी सूर्य दैनिक गतिसे सम्बद्ध स्थावर जलराशिको दूहते हैं। तुम लोग स्वयं भ्रमणकारी सूर्यकी प्रीतिदायक दीप्तिको वर्द्धित करते हो। तुम दोनोंका एक मात्र रथ अनुक्रमसे परिभ्रमण करता है।

३ हे मित्र और बरुण, स्तोता लोग तुम्हारे अनुग्रहसे राजपद प्राप्त करते हैं। तुम दोनों अपनी सामर्थ्यसे द्यावापृथिवीको धारण करके अवस्थित हो। हे शीघ्र दानकर्त्ताओ, तुम लोग ओषधियों और धेनुओंको वर्द्धित करो एवम् वृष्टि वर्षण करो।

४ हे मित्र और बरुण, तुम दोनोंके अश्व रथमें भली भाँतिसे युक्त होकर तुम दोनोंको वहन करें। सारथिके द्वारा नियन्त्रित होकर अनुवर्तन करें। जलका रूप (मूर्तिमान् जल) तुम दोनोंका अनुसरण करता है। तुम दोनोंके अनुग्रहसे पुरातन नदियाँ प्रवाहित होती हैं।

५ हे अन्नवान् तथा बलसम्पन्न मित्र और बरुण, तुम दोनों विश्रुत शरीर-दीप्तिको वर्द्धित करते हो। यज्ञ जैसे मन्त्र द्वारा रक्षित होता है, उसी प्रकार तुम दोनों भी पृथ्वीका पालन करो। तुम दोनों यज्ञ-भूमिके मध्यस्थित रथपर आरोहण करो।

अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यन्त्रासाथे बरुणेड़ा स्वन्तः ।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं विभृथः सह द्वौ ॥६॥
हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्यश्वाजनीव ।
भद्रे क्षेत्रे निमता तिल्विले वा सनेममध्वो अधिगर्त्यस्य ॥७॥
हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयः स्थूणामुदिता सूर्यस्य ।
आ रोहथो बरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च ॥८॥
यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा ।
तेन नो मित्राबरुणा वविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ॥९॥

६ हे मित्र और बरुण, तुम दोनों यज्ञभूमिमें जिस यजमानकी रक्षा करते हो, शोभन स्तुति करनेवाले उस यजमानके प्रति तुम दोनों दानशील होओ और उसकी रक्षा करो। तुम दोनों राजा और क्रोधविहीन होकर धन एवम् सहस्र स्तम्भसमन्वित सौध (मंजिलवाला मकान) धारण करते हो।

७ इनका रथ हिरण्मय है और कीलकादि भी हिरण्मय ही है। यह रथ विद्युत्की तरह अन्तरिक्षमें शोभा पाता है। हम लोग कल्याणकर स्थानमें अथवा यूपयष्टि-समन्वित यज्ञभूमिमें, रथके ऊपर, सोमरस स्थापन करें।

८ हे मित्र और बरुण, तुम लोग उषाकालमें सूर्यके उदित होनेपर लौहकील-समन्वित सुवर्णमय रथपर यज्ञमें जानेके लिये आरोहण करो एवम् अदिति अर्थात् अखण्डनीय भूमि और दिति अर्थात् खण्डित प्रजाका अवलोकन करो।

९ हे दानशील तथा विश्वरक्षक मित्र और बरुण, जो सुख व्याघातरहित, अछिन्न और बहुतम है, उस सुखको तुम दोनों धारण करते हो। उसी सुखसे हम लोगोंकी रक्षा करो। हम लोग अभिलक्षित धन लाभ करें और शत्रु विजयी हों।

तृतीय अध्याय समाप्त

चतुर्थ अध्याय

६३ सूक्त

मित्रावरुण देवता । अत्रिके अपत्य अर्चनाना ऋषि । जगती छन्द ।

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि ।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते दिवः ॥१॥
सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा ।
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः ॥२॥
सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी ।
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ॥३॥
माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम् ।
तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्यद्रप्सा मधुमन्त ईरते ॥४॥

---

१ हे उदकके रक्षक सत्य धर्मवाले मित्र और वरुण, तुम दोनों हमारे यज्ञमें आनेके लिये निरतिशय आकाशमें रथके ऊपर अधिरोहण करते हो । हे मित्र और वरुण, इस यज्ञमें तुम दोनों जिस यजमानकी रक्षा करते हो, उस यजमानके लिये मेघ द्युलोकसे सुमधुर वारिवर्षण करता है।

२ हे स्वर्गके द्रष्टा मित्र और वरुण, इस यज्ञमें राजमान होकर तुम दोनों भुवनका शासन करते हो । हम लोग तुम दोनोंके निकट वृष्टि रूप धन तथा स्वर्गकी प्रार्थना करते हैं। तुम दोनोंकी विस्तृत रश्मियाँ द्यावापृथिवीके मध्यमें विचरण करती हैं ।

३ हे मित्र और वरुण, तुम दोनों अत्यन्त राजमान, उद्यतबल, वारिवर्षक, द्यावापृथिवीके पति और सर्वद्रष्टा हो । तुम दोनों महानुभाव विचित्र मेघोंके साथ स्तुति श्रवण करनेके लिये आगमन करो। पश्चात् वृष्टिविधायक पर्जन्यकी सामर्थ्य द्वारा द्युलोकसे वृष्टि पातित करो ।

४ हे मित्र और वरुण, जब तुम दोनोंके अस्त्रभूत ज्योतिर्मय सूर्य अन्तरिक्षमें परिभ्रमण करते हैं, तब तुम दोनोंकी माया (सामर्थ्य) स्वर्गमें आश्रित (प्रकटित) होती है। तुम दोनों द्युलोकमें मेघ और वृष्टि द्वारा सूर्यकी रक्षा करते हो । हे पर्जन्य देव, मित्र और वरुण, द्वारा प्रेरित होनेपर तुम्हारे द्वारा सुमधुर वारिबिन्दु पतित होता है ।

रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्ठिषु ।
रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम् ॥५॥
वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम् ।
अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥६॥
धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया ।
ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम् ॥७॥

—

६४ सूक्त

मित्र और बरुण देवता। अर्चनाना ऋषि। अनुष्टुप् और पङ्क्ति छन्द।

बरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे ।
परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वांसा स्वर्णरम् ॥१॥

---

५ हे मित्र और बरुण, वीर जिस प्रकारसे युद्धके लिये अपने रथको सज्जित करता है, उसी प्रकार मरुद्गण तुम दोनोंके अनुग्रहसे वृष्टिके लिये सुखकर रथको सज्जित करते हैं। वारिवर्षण करनेके लिये मरुद्गण विभिन्न लोकमें सञ्चरण करते हैं। हे राजमान देवो, तुम दोनों मरुतोंके साथ द्युलोकसे हम लोगोंके ऊपर वारिवर्षण करो।

६ हे मित्र और बरुण, तुम दोनोंके अनुग्रहसे ही मेघ अन्नसाधक, प्रभाव्यञ्जक और विचित्र गर्जन शब्द करता है। मरुद्गण अपनी प्रज्ञाके बलसे मेघोंकी रक्षा, भली भाँतिसे, करते हैं। उनके साथ तुम दोनों अरुणवर्ण तथा निष्पाप आकाशसे वृष्टि पातित करते हो।

७ हे विद्वान् मित्र और बरुण, तुम दोनों जगत्के उपकारक वृष्ट्यादि कार्य द्वारा यज्ञकी रक्षा करते हो। जलके वर्षक पर्जन्यकी प्रज्ञा द्वारा उदक या यज्ञसे समस्त भूतजातको दीप्त करते हो। पूज्य और वेगवान् सूर्यको द्युलोकमें धारण करो।

—

१ हे मित्र और बरुण, हम इस मन्त्रसे तुम दोनोंका आह्वान करते हैं। बाहुबलसे गोयूथके सञ्चालकद्वयकी तरह तुम दोनों शत्रुओंको अपसारित करो और स्वर्गके पथको प्रदर्शित करो।

ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते ।
शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे ॥२॥
यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा ।
अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे ॥३॥
युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा ।
यद्ध क्षये मघोनां स्तोतृणां च स्पूर्धसे ॥४॥
आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ ।
स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे ॥५॥
युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च विभृथः ।
उरु णो वजसातये कृतं राये स्वस्तये ॥६॥
उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि ।
सुतं सोमं न हस्तिभिरा पड्भिर्धावतं नरा विभ्रतावचनानसम् ॥७॥

---

२ तुम दोनों प्रज्ञासम्पन्न हो । तुम दोनों हम स्तुतिकर्ताको अभिमत सुख प्रदान करो । हम शोभन हस्त द्वारा स्तुति करते हैं । तुम दोनों द्वारा प्रदत्त स्तुति-योग्य सुख सब स्थानमें व्याप्त है ।

३ हम अभी गमन (सङ्गति) प्राप्त करें । मित्रभूत अथवा मित्र द्वारा दर्शित मार्गसे हम गमन करें । अहिंसक मित्रका प्रिय सुख हमें गृहमें प्राप्त हो ।

४ हे मित्र और बरुण, हम तुमं दोनोंकी स्तुति करके इस प्रकार धन धारण करेंगे कि, धनिकों और स्तुतिकर्ताओंके घरमें ईर्ष्याका उदय होगा ।

५ हे मित्र, हे बरुण, तुम दोनों सुन्दर दीप्तिसे युक्त होकर हमारे यज्ञमें उपस्थित होओ । ऐश्वर्यशाली यजमानोंके गृहमें एवम् तुम दोनोंके मित्रोंके अर्थात् हमारे गृहमें समृद्धि वर्द्धन करो ।

६ हे मित्र और बरुण, हमारी स्तुतियोंके निमित्त तुम दोनों हमारे लिये प्रचुर अन्न तथा बल धारण करते हो । तुम दोनों हमें अन्न, धन और कल्याण विशेष रूपसे प्रदान करो ।

७ हे अधिनायक मित्र और बरुण, उषा कालमें, सुन्दर किरणसे युक्त प्रातःसवनमें, देव-बलविशिष्ट गृहमें तुम दोनों पूजनीय होते हो । उस गृहमें हमारे द्वारा अभिषुत सोमका तुम दोनों अवलोकन करो । तुम दोनों अर्चनानाके प्रति प्रसन्न होकर गमनसाधन अश्वोंपर आरोहण करके अभी आगमन करो ।

६५ सूक्त

मित्र और बरुण देवता। अत्रिके अपत्य रातहव्य ऋषि। पङ्क्ति और अनुष्टुप् छन्द।

यश्चिकेत स सुक्रतुर्देवत्रा स ब्रवीतु नः।
बरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः ॥१॥
ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा।
ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जनेजने ॥२॥
ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा।
स्वश्वासः सुचेतुना वाजाँ अभि प्र दावने ॥३॥
मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते।
मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः ॥४॥
वयं मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे।
अनेहसस्त्वोतयः सत्रा बरुण शेषसः ॥५॥

१ जो स्तोता देवोंके मध्यमें तुम दोनोंकी स्तुति जानता है, वही शोभन कर्म (अनुष्ठान) करने वाला है। वह शोभनकर्मा स्तोता हमें स्तुतिविषयक उपदेश दें, जिनकी स्तुतिको सुन्दर मूर्तिवाले मित्र और बरुण, ग्रहण करते हैं।

२ प्रशस्त तेजवाले और ईश्वरभूत मित्राबरुण दूर देशसे आहूत होनेपर भी आह्वान श्रवण कर लेते हैं। यजमानोंके स्वामी और यज्ञके वर्द्धयिता वे दोनों प्रत्येक स्तोताके कल्याण-विधानार्थ विचरण करते हैं।

३ तुम दोनों पुरातन हो। हम तुम दोनोंके निकट उपस्थित होकर रक्षाके लिये स्तवन करते हैं। वेगवान् अश्वोंके अधिपति होकर हम अन्नप्रदानार्थ तुम दोनोंकी स्तुति करते हैं। तुम दोनों शोभन ज्ञानवाले हो।

४ मित्रदेव पापी स्तोताको भी विशाल गृहमें * निवास करनेका उपाय बताते हैं। हिंसक परिचारकके लिये भी मित्रदेवकी शोभन बुद्धि है।

५ हम यजमान दुःखनिवारक मित्र देवकी विपुल रक्षाके अधिकारी हों। हम तुम्हारे द्वारा रक्षित और निष्पाप होकर हम सब एक कालमें ही वरूणके पुत्र स्वरूप हों।

---

* यहाँ विशाल गृहका अर्थ स्वर्ग हो सकता है; क्योंकि ५।६४।६, ५।६३।२ और ५।६५।५ ऋचाओंमें एतद्विषयक अति पवित्र चिन्ताएँ देखी जाती हैं।

युवं मित्रेमं जनं यतथः सं च नयथः ।
मा मघोनः परि ख्यतं मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुष्यतम् ॥६॥

---

६६ सूक्त

मित्र और वरुण देवता। अत्रिके अपत्य यजत ऋषि। अनुष्टुप् छन्द।

आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा ।
वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे ॥१॥
ता हि क्षत्रमविह्रुतं सम्यगसुर्यमाशाते ।
अध व्रतेव मानुषं स्वर्ण धायि दर्शतम् ॥२॥
ता वामेषे रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम् ।
रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक्स्तोमैर्मनामहे ॥३॥

---

६ हे मित्र और वरुण हम तुम दोनोंकी स्तुति करते हैं। तुम दोनों हमारे निकट आगमन करो। आकर समस्त अभिलषित वस्तु प्राप्त कराओ। हम अन्नसम्पन्न हैं। हमारा परित्याग नहीं करना। ऋषियोंके अर्थात् हमारे पुत्रोंका परित्याग नहीं करना। सुतसोम यज्ञमें हम लोगोंकी रक्षा करना।

---

१ हे स्तुति विज्ञाता मनुष्य, तुम शोभन कर्मको करनेवाले और शत्रुओंके हिंसक देवद्वयका आह्वान करो। उदकस्वरूप, हविर्लक्षण, अन्नवान् और पूजनीय वरुणको हव्य प्रदान करो।

२ तुम दोनोंका बल अहिंसनीय और असुर-विघातक है अर्थात् तुम दोनों महान् बलवाले हो। सूर्य जिस प्रकार अन्तरिक्षमें दृश्यमान होते हैं, उसी प्रकार मनुष्योंके मध्यमें तुम दोनोंका दर्शनीय बल यज्ञमें स्थापित होता है।

३ हे मित्र और वरुण, तुम दोनों रातहव्यकी प्रकृष्ट स्तुतिसे शत्रुपराभवकारी बल लाभ करके हम लोगोंके इस रथके सम्मुख बहुत दूरतक मार्गरक्षार्थ गमन करते हो। तुम दोनों हम लोगोंके द्वारा स्तुति होते हो।

अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता ।
नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ॥४॥
तद्दतं पृथिवि बृहच्छ्रव एष ऋषीणाम् ।
ज्रयसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभिः ॥५॥
आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः ।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥ ६ ॥

६७ सूक्त

मित्र और बरुण देवता। अत्रिके अपत्य यजत ऋषि। अनुष्टुप् छन्द।

वड़ित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत् ।
बरुण मित्रार्यमन्वर्षिष्ठं क्षत्र माशाथे ॥१॥
आ यद्योनिं हिरण्ययं बरुण मित्र सदथः ।
धर्तारा चर्षणीनां यन्तं सुम्नं रिशादसा ॥२॥

४ हे स्तुतियोग्य और हे शुद्ध बलवाले देवद्वय, हम प्रवृद्धमानकी पूरक स्तुतिसे तुम दोनों अत्यन्त आश्चर्यभूत हो। तुम दोनों अनुकूल मनसे यजमानोंके स्तोत्रको जानते हो।

५ हे पृथिवी देवी, हम ऋषियोंके प्रयोजनको सिद्ध करनेके लिये तुम्हारे ऊपर प्रभूत जल अवस्थित है। गमनशील देवद्वय निज गतिविधि द्वारा अति प्रचुर परिमाणमें वारि-वर्षण करते हैं।

६ हे दूरदर्शी मित्र और बरुण, हम और स्तोता लोग तुम दोनोंका आह्वान करते हैं। हम तुम्हारे सुविस्तीर्ण और बहुतों द्वारा गन्तव्य अथवा बहुतोंके द्वारा रक्षितव्य राज्यमें * गमन करें।

१ हे द्योतमान अदितिपुत्र मित्र, बरुण और अर्यमा, तुम सब अभी वर्तमान प्रकारसे यजनीय, बृहत् और अत्यन्त प्रवृद्ध बल धारण करते हो।

२ हे मित्र और बरुण, हे मनुष्योंके रक्षक तथा शत्रु संहारक, जब तुम लोग आनन्दजनक यज्ञभूमिमें आगमन करते हो, तब तुम लोग हमें सुखी करते हो।

---

* मित्रावरुणका राज्य विस्तीर्ण स्वर्गधाम हो सकता है।

विश्वे हि विश्ववेदसो बरुणो मित्रो अर्यमा ।
व्रता पदेव सश्चिरे पान्ति मर्त्यं रिषः ॥३॥
ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने ।
सुनीथासः सुदानवोंहोश्चिदुरुचक्रयः ॥४॥
को नु वां मित्रास्तुतो बरुणो वा तनूनां ।
तत्सु वामेषते मतिरत्रिभ्य एषते मतिः ॥५॥

६८ सूक्त

मित्र और बरुण देवता । यजत ऋषि । गायत्री छन्द।

प्र वो मित्राय गायत बरुणाय विपा गिरा ।
महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥
सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा बरुणश्च ।
देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥

---

३ सर्वविद् मित्र, बरुण, अर्यमा अपने-अपने पद (स्थान) के अनुरूप हमारे यज्ञमें संगत होते हैं और हिंसकोंसे मनुष्योंकी रक्षा करते हैं।

४ वे सत्यदर्शी, जलवर्षी और यज्ञरक्षक हैं। वे प्रत्येक यजमानको सत्पथ प्रदर्शित करते हैं और प्रचुर दान करते हैं। वे महानुभाव बरुणादि पापी स्तोताको प्रभूत धन प्रदान करते हैं।

५ हे मित्र और बरुण, तुम दोनोंके मध्यमें सबके द्वारा स्तुतियोंसे कौन अस्तूयमान है? अर्थात् दोनों ही स्तुतियोग्य हैं। हम लोग अल्प बुद्धि हैं। हम लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं। अत्रिगोत्रज लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

१ हे हमारे ऋत्विको, तुम लोग उच्चस्वरसे मित्र और बरुणका भली भाँतिसे स्तवन करो। हे प्रभूत बलशाली मित्र और बरुण, तुम दोनों इस महायज्ञमें उपस्थित होओ।

२ जो मित्र और बरुण दोनों ही परस्परापेक्षा सबके स्वामी, जलके उत्पादक, द्योतमान और देवोंके मध्यमें अतिशय स्तुत्य हैं, हे ऋत्विजो, तुम लोग उन दोनोंकी स्तुति करो।

ता नः शक्तम्पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।
महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥
ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते ।
अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥ ४ ॥
वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः ।
बृहन्तं गर्तमाशाते ॥ ५ ॥

---

६९ सूक्त

मित्र और बरुण देवता । अत्रिके अपत्य उरुचक्रि ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

त्री रोचना बरुण त्रीरुत द्यून्त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि ।
वावृधानावमतिं क्षत्रियस्यानु व्रतं रक्षमाणावजुर्यम् ॥१॥

---

३ वे दोनों देव हम लोगोंको पार्थिव धन तथा दिव्य धन दोनों ही देनेमें समर्थ हैं। हे मित्र और बरुणदेव, तुम दोनोंका पूजनीय बल देवोंके मध्यमें प्रसिद्ध है । हम लोग उसका स्तवन करते हैं।

४ उदक द्वारा यज्ञका स्पर्शन करके वे दोनों देव अन्वेषणकारी प्रवृद्ध यजमानको अथवा हव्यको व्याप्त करते हैं। हे द्रोहरहित मित्रावरुण देव, तुम दोनों प्रवृद्ध होते हो ।

५ जिन दोनोंके द्वारा अन्तरिक्ष वर्षणकारी होता है, जो दोनों अभिमत फलके प्रापक हैं, वृष्टिप्रद होनेसे जो अन्नके अधिपति हैं, और जो दाताके प्रति अनुकूल हैं, वे दोनों महानुभाव यज्ञके लिये महान रथपर अधिष्ठित होते हैं।

---

१ हे बरुण हे मित्र, तुम दोनों रोचमान तीन द्युलोकको धारण करते हो, तीन अन्तरिक्ष लोकको धारण करते हो और तीन भूलोकको धारण करते हो । तुम दोनों क्षत्रिय यजमानके अथवा इन्द्रके रूप और कर्मकी अविरत रक्षा करते हो ॥

इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद्वां सिन्धवो मित्र दुह्रे ।
त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः ॥२॥
प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
राये मित्राबरुणा सर्वतातेळे तोकाय तनयाय शं योः ॥३॥
या धर्तारा रजसो रोचनस्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्राबरुणा ध्रुवाणि ॥४॥

७० सूक्त

मित्र और बरुण देवता । उरुचक्रि ऋषि । गायत्री छन्द ।

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां बरुण ।
मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥ १ ॥
ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धायसे ।
वयं ते रुद्रा स्याम ॥ २ ॥

---

२ हे मित्र और बरुण, तुम दोनोंकी आज्ञासे गौएँ दुग्धवती होती हैं। स्यन्दनशील मेघ वा नदियाँ सुमधुर जल प्रदान करती हैं। तुम दोनोंके अनुग्रहसे जलवर्षक और उदकधारक तथा द्युतिमान् अग्नि, वायु और आदित्य नामक तीन देव पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोकके स्वामी होकर प्रत्येक अधिष्ठित होते हैं।

३ प्रातःकालमें और सूर्यके समृद्धि कालमें अर्थात् माध्यन्दिन सवनमें हम ऋषि देवोंकी द्योतमान जननी अदितिका आह्वान करते हैं। हे मित्र और बरुण, हम धन, पुत्र, पौत्र, अरिष्ट-शान्ति और सुखके लिये तुम दोनोंका स्तवन, यज्ञमें, करते हैं।

४ हे द्युलोकोत्पन्न अदिति-पुत्रद्वय, तुम दोनों द्युलोक तथा भूलोकके धारणकर्ता हो। हम तुम दोनोंका स्तवन करते हैं। हे मित्र और बरुण, तुम्हारे कार्य स्थिर हैं, उन कार्योंकी हिंसा इन्द्र आदि अमर देवगण भी नहीं कर सकते हैं।

१ हे मित्र और बरुण, तुम दोनोंका रक्षण-कार्य निश्चय ही अत्यन्त दीर्घतर है। हे बरुण और मित्र, हम तुम दोनोंकी अनुग्रह बुद्धिका सम्भजन करें।

२ हे द्रोहविवर्जित देवद्वय, हम तुम दोनोंके निकटसे भोजनके लिये अन्न लाभ करें। हे रुद्रो, हम लोग तुम्हारे स्तोता हों। समृद्ध हों अथवा तुम्हारे ही हों।

पातं नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा ।
तुर्याम दस्यून्तनूभिः ॥ ३ ॥
मा कस्याद्भुतक्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः ।
मा शेषसा मा तनसा ॥ ४ ॥

७१ सूक्त

मित्र और बरुण देवता । बाहुवृक्त ऋषि । गायत्री छन्द ।

आ नो गन्तं रिशादसा बरुण मित्र बर्हणा ।
उपेमं चारुमध्वरम् ॥ १ ॥
विश्वस्य हि प्रचेतसा बरुण मित्र राजथः ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥
उप नः सुतमा गतं बरुण मित्र दाशुषः ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

---

३ हे रुद्ररूप देवद्वय, तुम दोनों रक्षा द्वारा हमारी रक्षा करो। शोभन त्राण द्वारा पालन करो, अर्थात् इष्टकी प्राप्ति हो, अनिष्टका निराकरण हो और अभिमत फल लाभ हो। हम अपने पुत्रोंके साथ अथवा अपने शरीरसे ही शत्रुओंको हिंसित करें।

४ हे आश्चर्य-जनक कर्म करनेवालो, हम अपने शरीर द्वारा किसीके पूजित (श्रेष्ठ) धनका भी उपभोग नहीं करते हैं। हम तुम्हारे अनुग्रहसे समृद्ध हैं—किसीके धनसे शरीर पोषण भी नहीं करते हैं। पुत्र-पौत्रोंके साथ भी हम दूसरे (तुम्हारे व्यतिरिक्त) के धनका उपभोग नहीं करते हैं। हमारे कुलमें कोई भी दूसरेके धनका उपभोग नहीं करता है।

१ हे बरुण हे मित्र, तुम दोनों शत्रुओंके प्रेरक और हन्ता हो। तुम दोनों हमारे इस हिंसा-वर्जित यज्ञमें आगमन करो।

२ हे प्रकृष्ट ज्ञानयुक्त मित्र और बरुण, तुम दोनों सबके स्वामी होते हो। हे हमारे ईश्वरद्वय, फलप्रदान द्वारा हमारे कर्मोंका तुम दोनों पालन करो।

३ हे मित्राबरुण, तुम दोनों हमारे अभिषुत सोमके प्रति आगमन करो। हम हवि देनेवाले हैं। हमारे इस सोमको पीनेके लिये आगमन करो।

७२ सूक्त

मित्र और बरुण देवता । बाहुवृक्त ऋषि गायत्री छन्द ।

आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् ।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ १ ॥
व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्म्मणा यातयज्जना ।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ २ ॥
मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये ।
नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये ॥ ३ ॥

७३ सूक्त

६ अनुवाक । अश्विद्वय देवता । अत्रिके अपत्य पौर ऋषि । अनुष्टुप् छन्द

यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना ।
यद्वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥ १ ॥

---

१ हमारे गोत्र प्रवर्तक अत्रिकी तरह हम लोग मन्त्र द्वारा तुम दोनोंका आह्वान करते हैं । इसलिये मित्रावरुण सोमपानके लिये कुशके ऊपर उपवेशन करें ।

२ हे मित्र और वरुण, जगद्धारक कर्मके द्वारा तुम दोनोंके स्थान विचलित नहीं होते हैं । अर्थात् तुम दोनों स्थानच्युत नहीं होते हो । ऋत्विक् लोग तुम दोनोंको यज्ञ प्रदान करते हैं । इसलिये मित्रावरुण सोमपानके लिये कुशके ऊपर उपवेशन करें ।

३ हे मित्र और वरुण, तुम दोनों हमारे यज्ञको अभिलाष-पूर्वक ग्रहण करो और आकर सोमपानके लिये कुशके ऊपर उपवेशन करो ।

१ हे अगणित यज्ञमें भोजन करनेवाले, अश्विनीकुमारो, यद्यपि इस समय तुम दोनों अत्यन्त दूर देश द्युलोकमें वर्तमान हो, गमनशक्य अन्तरिक्षमें वर्तमान हो अथवा बहुतेरे प्रदेशमें वर्तमान हो; तथापि उन सब स्थानोंसे यहाँ आगमन करो ।

इह त्या पुरुभूतमा पुरु दंसांसि विभूता ।
वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥ २ ॥
ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः ।
पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः ॥३॥
तदू षु वामेना कृतं विश्वा यद्वामनु ष्टवे ।
नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयथुः ॥४॥
आ यद्वां सूर्या रथं तिष्ठद्रघुष्यदं सदा ।
परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥५॥
युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।
घर्मं यद्वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥६॥

---

२ हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों बहुत यजमानोंके उत्साह-दाता, विविध कर्मोंके धारणकर्ता, वरणीय, अप्रतिहतगति और अनिरुद्धकर्मा हो । इस यज्ञमें हम तुम दोनोंके समीप उपस्थित होते हैं । प्रभूततम भोग और रक्षाके लिये हम तुम दोनोंका आह्वान करते हैं ।

३ हे अश्विनीकुमारो, सुर्यकी मूर्तिको प्रदीप्त करनेके लिये तुम दोनोंने रथके एक दीप्तिमान् चक्रको नियमित किया है । अपनी सामर्थ्यसे मनुष्योंके अहोरात्रादि कालको निरूपित करनेके लिये अन्य चक्र द्वारा (तीनों) लोकोंमें परिभ्रमण करते हो ।

४ हे व्यापक देवद्वय, हम जिस स्तोत्र द्वारा तुम दोनोंका स्तवन करते हैं, वह तुम दोनोंका स्तोत्र इस पुरवासोके द्वारा सुसम्पादित हो । हे पृथक् उत्पन्न तथा निष्पाप देवद्वय, तुम दोनों हमें प्रचुर परिमाणमें अन्न प्रदान करो ।

५ हे अश्विनीकुमारो, जब तुम दोनोंकी पत्नी सूर्या तुम दोनोंके सर्वदा शीघ्रगामी रथपर आरोहण करती है, तब आरोचमान और दीप्त आतप (दीप्तियाँ) तुम दोनोंके चतुर्दिक् विस्तृत होते हैं ।

६ हे नेता अश्विद्वय, हम लोगोंके पिता अत्रिने तुम दोनोंका स्तवन करके जब अग्निके उत्तापको सुखसेव्य समझा था, तब उन्होंने अग्निदाहोपशम रूप सुख हेतु कृतज्ञ चित्तसे तुम दोनोंके उपकारको स्मरण किया था ।

उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु सन्तनिः ।
यद्वां दंसोभिरश्विनात्रिर्नरावर्वतति ॥७॥
मध्व ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी ।
यत्समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥८॥
सत्यमिद्वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा ।
ता यामन्यामहूतमा यामन्ना मृलयत्तमा ॥९॥
इमा ब्रह्माणि वर्धनाश्विभ्यां सन्तु शन्तमा ।
या तक्षाम रथाँ इवावोचाम बृहन्नमः ॥१०॥

७४ सूक्त

अश्विद्वय देवता । पौर ऋषि । अनुष्टुप् छन्द ।

कूष्ठो देवावश्विनाद्या दिवो मनावसू ।
तच्छ्रवथो वृषणवसू अत्रिर्वामा विवासति ॥१॥

७ तुम दोनोंका दृढ़, उन्नत, गमनशील, सतत विघूर्णित रथ यज्ञमें प्रसिद्ध है । हे नेता अश्विद्वय, तुम दोनोंके ही कार्य द्वारा हमारे पिता अत्रि आवर्तमान होते हैं अर्थात् तुम दोनोंके कार्य द्वारा उन्होंने परित्राण पाया था ।

८ हे मधुर सोमरसके मिश्रयिता देवो, हम लोगोंकी पुष्टिकर स्तुति तुम लोगोंके ऊपर मधुर रस सिंचन करता है। तुम लोग अन्तरिक्षकी सीमाका अतिक्रमण करते हो । सुपक्व हव्य तुम दोनोंका पोषण करता है ।

९ हे अश्विनीकुमारो, पुराविद्गण (पण्डित लोग) तुम दोनोंको जो सुखदाता कहते हैं, वह निश्चय ही सत्य हैं। हमारे यज्ञमें सुखदानार्थ आहूत होनेपर तुम दोनों अतिशय सुखदाता होओ ।

१० शिल्पी जिस प्रकार रथोंको प्रस्तुत करता है, उसी प्रकार हम लोग अश्विद्वयको संवर्द्धित करनेके लिये स्तुति प्रस्तुत करते हैं । वे स्तुतियाँ उन्हें प्रीतिकर हों ।

१ हे स्तुतिधन, धनवर्षणकारी देवद्वय, आज इस यज्ञ दिनमें तुम दोनों द्युलोकसे आगमन करके भूमिपर ठहरो और उस स्तोत्रको श्रवण करो, जिसे तुम्हारे उद्देशसे अत्रि सर्वदा पाठ करते हैं ।

कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या ।
कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥२॥
कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् ।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥३॥
पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः ।
यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥४॥
प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः ।
युवा यदी कृथः पुनराकाममृण्वे वध्वः ॥५॥
अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां संदृशि श्रिये ।
नू श्रुतं म आगतमवोभिर्वाजिनीवसू ॥६॥

---

२ वे दीप्तिमान् नासत्यद्वय कहाँ है ? आज इस यज्ञ दिनमें वे द्युलोकके किस स्थानमें श्रुत हो रहे हैं ? हे देवद्वय, तुम दोनों किस यजमानके निकट आगमन करते हो ? कौन स्तोता तुम दोनोंकी स्तुतियोंका सहायक है ?

३ हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों किस यजमान या यज्ञके प्रति गमन करते हो ? जाकर किसके साथ मिलित होते हो ? किसके अभिमुखवर्ती होनेके लिये रथमें अश्वयोजना करते हो ? किसके स्तोत्र तुम दोनोंको प्रीत करते हैं ? हम लोग तुम दोनोंको पानेकी कामना करते हैं ।

४ हे पौर-सम्बन्धी अश्विनीकुमारो, तुम दोनों पौरके निकट पौरको अर्थात् वारिवाहक मेघको प्रेरित करो । जङ्गलमें व्याधगण जैसे सिंहको ताड़ित करते हैं, वैसे ही यज्ञकममें व्याप्त पौरके निकट तुम दोनों इसे ताड़ित करो ।

५ तुम दोनोंने जराजीर्ण च्यवनके हेय, पुरातन, रूपको कवचकी तरह विमोचित किया था । जब तुम दोनोंने उन्हें पुनर्बार युवा किया था, तब उन्होंने सुरूपा कामिनीके द्वारा वाञ्छित मूर्त्तिको पाया था ।

६ हे अश्विद्वय, इस यज्ञस्थलमें तुमदोनोंके स्तोता विद्यमान हैं । हम लोग समृद्धिके लिये तुम दोनोंके दृष्टिपथमें अवस्थान करें । आज तुम लोग हमारा आह्वान श्रवण करो । तुम लोग अन्नरूप धनसे धनवान् हो । तुम लोग रक्षाके साथ यहाँ आगमन करो ।

को वामद्य पुरूणामा वव्ने मर्त्यानाम् ।
को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञैर्वाजिनीवसू ॥७॥
आ वां रथो रथानां येष्ठो यात्वश्विना ।
पुरू चिदस्मयुस्तिर आंगूषो मर्त्येष्वा ॥८॥
शमू षु वां मधूयुवास्माकमस्तु चर्कृतिः ।
अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥९॥
अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
वस्वीरू षु वां भुजः पृंचन्ति सु वां पृचः ॥१०॥

७५ सूक्त

अश्विद्वय देवता । अतृके अपत्य अवस्यु ऋषि । पङ्क्ति छन्द ।

प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रतिभूषति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥१॥

---

७ हे अन्नरूप धनवान् अश्विद्वय, असंख्य मर्त्योंके मध्यमें कौन व्यक्ति आज सर्वापेक्षा तुम दोनोंको अधिक प्रसन्न करता है! हे ज्ञानियों द्वारा बन्दित अश्विद्वय, कौन ज्ञानी व्यक्ति तुम दोनोंकी सर्वापेक्षा अधिक प्रसन्न करता है अथवा कौन यजमान ही यज्ञ द्वारा तुम दोनोंको अधिक तृप्त करता है।

८ हे अश्विद्वय अन्य देवताओंके रथोंके मध्यमें सर्वापेक्षा वेगगामी और असंख्य शत्रु-संहारी एवं सम्पूर्ण मनुष्य यजमानों द्वारा स्तुत तुम दोनोंका रथ हम लोगोंकी हित-कामना करके इस स्थानमें आगमन करे।

९ हे मधुमान् अश्विद्वय, तुम दोनोंके लिये पुनः पुनः सम्पादित स्तोत्र हम लोगोंके लिये सुखोत्पादक हो। हे विशिष्ट ज्ञानसम्पन्न अश्विद्वय, तुम दोनों श्येन पक्षीकी तरह सर्वत्र गमनशील अश्वपर आरूढ़ होकर हम लोगोंके अभिमुख आगमन करो।

१० हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों जिस-किसी स्थानमें अवस्थान करो; किन्तु हमारा यह आह्वान श्रवण करो। तुम दोनोंके निकट गमन करनेकी कामनावाला यह उत्कृष्ट हव्य तुम दोनोंके निकट उपस्थित हो।

---

१ हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनोंके स्तुतिकारी अवस्यु ऋषितुम दोनोंके फलवर्षणकारी और धनपूर्ण रथको अलङ्कृत करते हैं। हे मधुविद्याको जाननेवालो,* तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो।

---

* मधुविद्याके सम्बन्धमें १।११६।१२ में लिखा जा चुका है।

अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिंधुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥२॥
आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥३॥
सुष्टुभो वां वृषण्वसूरथे वाणीच्याहिता ।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥४॥
बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता ।
विभिश्च्यवानमश्विना नियाथो अद्वायविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥५॥
आ वां नरा मनोयुजोऽश्वासःप्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥६॥

२ हे अश्विद्वय, तुम दोनों सब यजमानोंको अतिक्रमण करके इस स्थानमें आगमन करो, जिससे हम समस्त विरोधियोंको पराभूत करें । हे शत्रुसंहारक, सुवर्णमय-रथारूढ़, प्रशस्त-धनसम्पन्न, नदियोंको वेग-प्रवाहित करनेवालो एवम् मधुविद्या-विशारद अश्विद्वय, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो ।

३ हे अश्विद्वय, तुम दोनों हमारे लिये रत्न लेकर आगमन करो । हे हिरण्य-रथाधिरूढ़, स्तुति-योग्य, अन्न-रूप धनवालों, यज्ञमें अधिष्ठान करनेवालो एवम् मधुविद्याविशारद अश्विद्वय, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो ।

४ हे धनवर्षणकारी अश्विद्वय, तुम दोनोंके स्तोताका (मेरा) स्तोत्र तुम दोनोंके उद्देशसे उच्चारित होता है । तुम दोनोंका प्रसिद्ध, मूर्तिमान् यजमान एकाग्रचित होकर तुम दोनोंको हव्य प्रदान करता है । हे मधुविद्या-विशारद, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो ।

५ हे अश्विद्वय, तुम दोनों विज्ञ मनवाले, रथाधिरूढ़, द्रुतगामी एवम् स्तोत्र-श्रवणकर्ता हो । तुम दोनों शीघ्र ही अश्वपर आरोहण करके कपटताविहीन च्यवनके निकट उपस्थित हुए थे । हे मधु-विद्याविशारद, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो ।

६ हे नेता अश्विद्वय, तुम दोनोंके सुशिक्षित, द्रुतगामी और विचित्रमूर्त्ति अश्व सोमपानके लिये ऐश्वर्यके साथ इस स्थानमें तुम दोनोंका आनयन करें । हे मधुविद्याविशारद, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो ।

अश्विना वेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥७॥
अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती ।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥८॥
अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः ।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥९॥

---

७६ सूक्त

अश्विद्वय देवता । अत्रिके अपत्य भौम ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥१॥

---

७ हे अश्विद्वय, तुम दोनों इस स्थानमें आगमन करो । हे नासत्यद्वय, तुम दोनों प्रतिकूल नहीं होना । हे अजेय प्रभु, तुम दोनों प्रच्छन्न प्रदेशसे हमारे यज्ञगृहमें आगमन करो । हे मधुविद्याविशारद, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो ।

८ हे जलके अधिपति अजेय अश्विद्वय, इस यज्ञमें तुम दोनों स्तवकारी अवस्युके लिये अनुग्रह प्रदर्शन करो । हे मधुविद्याविशारद, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो ।

९ उषा विकसित हुई है । समुज्ज्वल किरणसम्पन्न अग्नि वेदीके ऊपर संस्थापित हुए हैं । हे धनवर्षणकारी, शत्रुसंहारक अश्विद्वय, तुम दोनोंके अक्षय्य रथमें अश्व युक्त हों । हे मधुविद्याविशारद, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो ।

---

१ उषाकालमें प्रबुध्यमान अग्नि दीप्ति होते हैं । मेधावी स्तोताओंके देवाभिलाषी स्तोत्र उद्गीत होते हैं । हे रथाधिपति अश्विद्वय, तुम दोनों आज इस यज्ञस्थानमें अवतीर्ण होकर इस सोमरसपूर्ण समृद्ध यज्ञमें आगमन करो ।

न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठांति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥२॥
उता यातं सङ्गवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥३॥
इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम् ।
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादाभ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥४॥
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५॥

७७ सूक्त

अश्विद्वय देवता । भौम ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुषः पिबातः ।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्रशंसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥१॥

---

२ हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों संस्कृत यज्ञको हिंसा नहीं करो; किन्तु यज्ञके समीप शीघ्र आगमन करके स्तुति-भाजन होओ। प्रातःकालमें रक्षाके साथ तुम दोनों आगमन करो, जिससे अन्नाभाव नहीं हो। आकर हव्यदाता यजमानको सुखी करो।

३ तुम दोनों रात्रिके शेषमें, गोदोहन-कालमें, प्रातःकालमें, सूर्य जिस समय अत्यन्त प्रवृद्ध होते हैं अर्थात् अपराह्न कालमें; सायाह्नमें, रात्रिमें अथवा जिस किसी समयमें सुखकर रक्षाके साथ आगमन करो। अश्विनीकुमारोंको छोड़कर दूसरे देव सोमपानके लिये प्रवृत्त नहीं होते ।

४ हे अश्विनीकुमारो, यह उत्तर वेदी तुम दोनोंका निवासयोग्य प्राचीन स्थान है। ये समस्त गृह और आलय तुम दोनोंके ही हैं। तुम दोनों वारिपूर्ण मेघद्वारा समाकीर्ण अन्तरीक्षसे अन्न और बलके साथ हम लोगोंके निकट आगमन करो ।

५ हम सब अश्विनीकुमारकी श्रेष्ठ रक्षा तथा सुखदायक अगामनके साथ सङ्गत हों। हे अमरणशील देवद्वय, तुम दोनों हमें धन, सन्तति और समस्त कल्याण प्रदान करो ।

१ हे ऋत्विको, अश्विद्वय प्रातः कालमें ही सब देवोंसे प्रथम ही उपस्थित होते हैं, तुम सब उनका यजन करो। वे अभिकाङ्क्षी और नहीं देनेवाले राक्षस प्रभृतिके पूर्व ही हव्य पान करते हैं। अश्विद्वय प्रात कालमें यज्ञका संभजन करते हैं। पूर्वकालीन ऋषिगण प्रातः कालमें ही उनकी प्रशंसा करते हैं ।

प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम् ।
उतान्यो अस्मद्यजते वि चावः पूर्वः पूर्वो यजमानो वनीयान् ॥२॥
हिरण्यत्वङ्मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम् ।
मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥३॥
यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे ।
स तोकमस्य पीपरच्छमीभिरनूर्ध्वभासः सद्‌मित्तु तुर्यात् ॥४॥
समश्विनो रवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
या नो रयिं वहतमोत वीराणा विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५॥

---

२ हे हमारे पुरुषो, प्रातः कालमें ही तुम लोग अश्विनीकुमारोंका पूजन करो । उन्हें हव्य प्रदान करो । सायंकालीन हव्य देवोंके निकट जानेवाला नहीं होता है। देवगण उसे स्वीकृत नहीं करते हैं, वह हव्य असेवनीय हो; जाता है । हमसे अन्य जो कोई सोमद्वारा उनका यजन करता है और हव्य द्वारा उन्हें तृप्त करता है; जो व्यक्ति हम लोगोंसे और दूसरोंसे पहले उनका यजन करता है, वह व्यक्ति देवोंका सम्भजनीय या संभाव्य (अभिमत) होता है ।

३ हे अश्विद्वय, तुम दोनोंका हिरण्य द्वारा आच्छादित, मनोहर वर्ण, जल वर्षण करनेवाला मनकी तरह वेगवाला, वायुके सदृश वेगपूर्ण और अन्नको धारण करनेवाला रथ आगमन करता है। उस रथके द्वारा तुम दोनों सम्पूर्ण दुर्गम मार्गोंका अतिक्रमण करते हो ।

४ जो यजमान हविर्विभाग होनेवाले यज्ञमें अश्विनीकुमारोंको विपुल अन्न या हव्य प्रदान करता है, वह यजमान कर्म द्वारा अपने पुत्रका पालन करता है। जो अग्निको उद्दीप्त नहीं करते हैं अर्थात् अयष्टा हैं, उनकी सदा हिंसा करते हैं ।

५ हम सब अश्विनीकुमारकी श्रेष्ठ रक्षा तथा सुखदायक आगमनके साथ संगत हों । हे अमरणशील देवद्वय, तुम दोनों हमें धन, सन्तति और समस्त कल्याण प्रदान करो ।

* * *

७८ सूक्त

अश्विद्वय देवता । अत्रिके अपत्य सप्तवध्रि ऋषि । उष्णिक्, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा विवेनतम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥१॥
अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥२॥
अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥३॥
अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा ।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शन्तमेन ॥४॥

---

१ हे अश्विनीकुमारो, इस यज्ञमें तुम दोनों आगमन करो । हे नासत्यद्वय, तुम दोनों स्पृहाशून्य मत होओ। जैसे हंसद्वय निर्मल उदकके प्रति आगमन करते हैं, उसी प्रकार तुम दोनों अभिषुत सोमके प्रति आगमन करो ।

२ हे अश्विनीकुमारो, हरिण और गौर मृग जैसे घासका अनुधावन करते हैं एवम् जैसे हंसद्वय निर्मल उदकके प्रति आगमन करते हैं, उसी प्रकार तुम दोनों अभिषुत सोमके प्रति आगमन करो ।

३ हे अन्नके निमित्त निवासप्रद अश्विद्वय, तुम दोनों हमारे यज्ञमें अभीष्टसिद्धिके लिये आगमन करो । जैसे हंसद्वय निर्मल उदकके प्रति आगमन करते हैं, उसी प्रकार तुम दोनों अभिषुत सोमके प्रति आगमन करो।

४ हे अश्विनीकुमारो, विनय करनेपर स्त्री जैसे पतिको प्रसन्न करती है, उसी प्रकार हम लोगोंके पिता अत्रिने तुम्हारी स्तुति करके तुषाग्नि-कुण्डसे मुक्ति-लाभ किया था। तुम दोनों श्येन पक्षीके नवजात वेगसे सुखकर रथ द्वारा हम लोगोंकी रक्षाके लिये आगमन करो ।

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥५॥
भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥६॥
यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः ।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ॥७॥
यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥८॥
दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधिमातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥९॥

५ हे वनस्पति-विनिर्मित पेटिके (काठके बने बक्स), प्रसव करनेके लिये उद्यत रमणीकी योनिकी तरह तुम विवृत (विस्तृत) होओ या फैल जाओ। × खुले हुए बक्सकी ओर सङ्केत है। तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो। हम सप्तवध्रि ऋषिको मुक्त करो।⁂

६ हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों भीत और निर्गमनके लिये प्रार्थना करनेवाले ऋषि सप्तवध्रिके लिये माया द्वारा पेटिका (बक्स) को संगत और विभक्त करते हो।

७ वायु जिस प्रकार सरोवर आदिको संचालित करती है, उसी प्रकार तुम्हारा गर्भ संचालित हो। + दस मासके अनन्तर गर्भस्थ जीव निर्गत हो।

८ वायु, वन और समुद्र जिस प्रकार कम्पित होते हैं, उसी प्रकार दस मास पर्यन्त गर्भस्थ जीव जरायु-वेष्ठित होकर पतित हो।

९ दस मास पर्यन्त जननीके जठरमें अवस्थित जीव जीवित तथा अक्षत रूपसे जीविता जननीसे उत्पन्न हो। †

× पुराविदोंने ऐसा इतिहास बताया है कि, सप्तवध्रि ऋषिके भाई सप्तवध्रिको रातमें बक्समें बन्द करके रोज रख देते थे; इस लिये कि, वे स्त्री-सहवास नहीं कर सकें। दुःखित होकर उन्होंने अश्विद्वयकी स्तुति की। आकर उन्होंने बक्स खोल दिया। वे स्त्रीसे मिलकर फिर बक्समें बन्द हो गये। सायण।

⁂ जहाँ दूसरी उपमाएँ सुलभतासे मिल सकती हों, वहाँ भी वैदिक ऋचाओंमें इसी प्रकारकी उपमाएँ बहुतायतसे संगृहीत हुई हैं। + सप्तवध्रि ऋषि अपनी गर्भिणी स्त्रीके लिये अश्विनीकुमारसे प्रार्थना करते हैं। † "दशमासानुषित्वासौ जननीजठरे सुखम्। निर्गच्छतु सुखं जीवो जननी चापि जीवतु !"

७९ सूक्त

उषा देवता । अत्रिके अपत्य सत्यश्रवा ऋषि । पङ्क्ति छन्द ।

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥१॥
या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥२॥
सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३॥
अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति बह्नयः ।
मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ॥४॥
यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये ।
परिचिद्वष्टयो दधुर्ददतो राधो अह्रयं सुजाते अश्वसूनृते ॥५॥

---

१ हे दीप्तिमती उषा, तुमने हम लोगोंको जैसे पहले प्रबोधित किया था, उसी प्रकार आज भी प्रचुर धन-प्राप्तिके लिये प्रबोधित करो। हे शोभन प्रादुर्भाववाली अश्वप्राप्तिके लिये लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम वय्यपुत्र सत्यश्रवाके प्रति अनुग्रह करो।

२ हे सूर्यतनया उषा, तुमने शुचद्रथके पुत्र सुनीथिका अन्धकार दूर किया था। हे शोभन प्रादुर्भाववाली, अश्वप्राप्तिके लिये लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम वय्यपुत्र अतिशय बलवान् सत्यश्रवाका तमो-निवारण करो।

३ हे द्युलोककी दुहिता, तुम धन आहरण करनेवाली हो। तुम आज हम लोगोंका तमोनिवारण करो। हे सुजाता, अश्वप्राप्तिके लिये लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुमने वय्यपुत्र अतिशय बलवान् सत्यश्रवाका तमोनाश किया था।

४ हे प्रकाशवती, उषा, जो ऋत्विक् स्तोत्र द्वारा तुम्हारा स्तवन करते हैं, वे ऐश्वर्य द्वारा समृद्धि-सम्पन्न और दानशील होते हैं। हे धनशालिनी सुजाता उषा, लोग अश्वलाभके लिये तुम्हारा स्तवन करते हैं।

५ हे उषा, धन प्रदान करनेके लिये तुम्हारे सम्मुख उपस्थित ये उपासकगण अक्षय हव्यरूप धन प्रदान करके हम लोगोंके प्रति अनुकूल हुए थे। हे शोभन उत्पन्नवाली, अश्व-प्राप्तिके लिये लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

ऐषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु ।
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥६॥
तेभ्यो द्युम्नं बृहद्यश उषो मघोन्या वह ।
ये नो राधांस्यश्व्या गव्य भजन्त सूरयः सुजाते अश्वसूनृते ॥७॥
उत नो गोमतारिष आ वहा दुहितर्दिवः ।
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते ॥८॥
व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।
नेत्त्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते ॥९॥
एतावद्वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि ।
या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते ॥१०॥

---

६ हे धनशालिनी उषा देवी, तुम यजमान स्तोताओंको वीर पुत्रादिसे युक्त अन्न प्रदान करो, जिससे वे धनवान् होकर हमलोगोंको प्रचुर परिमाणमें धन प्रदान करें। हे शोभन उत्पन्नवाली, अश्वप्राप्तिके लिये लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

७ हे धनशालिनी उषा, जिस धनवान्ने हमलोगोंको अश्व और धेनुओंसे युक्त धन प्रदान किया था, उस सम्पूर्ण यजमानको तुम धन और प्रभूत अन्न प्रदान करो। हे शोभन उत्पन्नवाली, अश्व-प्राप्तिके लिये लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

८ हे द्युलोककी दुहिता उषा, तुम सूर्यकी शुभ्र रश्मि एवम् प्रज्वलित अग्निकी प्रदीप्त ज्वालाके साथ हम लोगोंके निकट अन्न और धेनुओंका आनयन करो। हे शोभन उत्पन्नवाली, अश्वप्राप्तिके लिये लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

९ हे द्युलोककी दुहिता उषा, तुम विभात (प्रकाश) उत्पादन करो। हम लोगोंके प्रति विलम्ब नहीं करना। राजा चोर या शत्रुको जिस प्रकार सन्तप्त करते हैं, उसी प्रकार सूर्य तुम्हें रश्मि द्वारा सन्तप्त नहीं करें। हे शोभन उत्पन्नवाली, अश्वप्राप्तिके लिये लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

१० हे उषा, जो प्रार्थित हुआ है और जो प्रार्थित नहीं हुआ है, वह सब हमें प्रदान करनेमें तुम समर्थ हो। हे दीप्तिमती, तुम स्तोताओंका तमोनाश करती हो और उनकी हिंसा नहीं करती हो। हे शोभन उत्पन्नवाली, अश्वप्राप्तिके लिये लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

८० सूक्त

उषा देवता । सत्यश्रवा ऋषि त्रिष्टुप् छन्द ।

द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥१॥
एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान्पथः कृण्वती यात्यग्रे ।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् ॥२॥
एषा गोभिररुणेभिर्युजानास्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे ।
पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति ॥३॥
एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥४॥

---

१ दीप्तिमान् रथपर आरूढ़, सर्वव्यापिनी, यज्ञमें भली भाँतिसे पूजित, अरुणवर्ण, सूर्यकी पुरोवर्तिनी और दीप्तिमती उषाका स्तवन ऋत्विक् लोग स्तोत्रों द्वारा करते हैं।

२ दर्शनीय उषा प्रसुप्त जनोंको प्रबोधित करती हैं और मार्गोंको सुगम करके विस्तृत (प्रभूत) रथपर आरोहण करती हैं एवम् सूर्यके पुरोभागमें गमन करती हैं। महती और विश्वव्यापिनी उषा दिवसके आरम्भमें दीप्ति विस्तार करती हैं।

३ रथमें अरुण वर्णके बलीवर्दोंको युक्त करके वे अक्षीण धनोंको अविचलित करती हैं। दीप्तिमती, बहुस्तुता और सबके द्वारा वरणीया उषा मार्गोंको प्रकाशित करके शोभमान या प्रकाशित होती हैं।

४ प्रथम और मध्यम स्थानमें अर्थात् ऊर्द्ध और मध्य अन्तरिक्षमें अवस्थिति करके उषा अपनी मूर्तिको पूर्व दिशामें प्रकटित करती हैं। विशेष श्वेतवर्णवाली उषा अभी ब्रह्माण्डको प्रबोधित करके आदित्यके मार्गका भली भाँतिसे अनुधावन करती हैं। वे दिशाओंकी हिंसा नहीं करती हैं; बल्कि दिशाओंको प्रकाशित करती हैं।

एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात् ।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥५॥
एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन्योषेव भद्रानि रिणीते अप्सः ।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥६॥

८१ सूक्त

सविता देवता। अत्रिके अपत्य श्यावाश्व ऋषि। जगती छन्द।

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥१॥
विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योनु प्रयाणमुषसो वि राजति ॥२॥

---

५ सुन्दर अलङ्कारसे युक्त रमणीकी तरह अपने शरीरको प्रकाशित करती हुई और स्नान कर चुकनेवालीकी तरह उषा हम लोगोंके पुरोभागमें पूर्वकी ओर उदित होती हैं। द्युलोककी दुहिता उषा द्वेषक अन्धकारको बाधित करके तेजके साथ आगमन करती हैं।

६ द्युलोककी दुहिता उषा पश्चिमाभिमुखी होकर कल्याणकारक वेश धारण करनेवाली रमणी की तरह अपने रूपको प्रेरित करती हैं। वह हव्य देनेवाले यजमानको वरणीय धन प्रदान करती हैं। नित्य यौवनवाली उषा पूर्वकी तरह अपनी दीप्ति प्रकाशित करती हैं।

१ ऋत्विक् यजमान लोग अपने मनको सब कर्मोंमें लगाते हैं। मेधावी, महान् और स्तुतियोग्य सविताकी आज्ञासे यज्ञकार्यमें निविष्ट होते हैं। वे होताओंके कार्योंको जानकर उन्हें यज्ञकार्यमें प्रेरित करते हैं। सविता देवकी स्तुति अत्यन्त प्रभूत है अर्थात् उनकी महिमा स्तुतिके अगोचर है।

२ मेधावी सविता स्वयं सम्पूर्ण रूप धारण करते हैं। वे मनुष्यों तथा पशुओंके गमनादि-विषयक कल्याणको जानते हैं। सबके प्रेरक वरणीय सविता देव स्वर्गको प्रकाशित करते हैं। वे उषाके उदित हनेके पश्चात् प्रकाशित होते हैं।

यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥३॥
उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनोत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि ।
उत रात्री मुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ॥४॥
उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः ।
उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ॥५॥

८२ सूक्त

सविता देवता । अत्रिके अपत्य श्यावाश्व ऋषि । अनुष्टुप् और गायत्रीछन्द ।

तत् सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् ।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥१॥
अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम् ।
न मिनन्ति स्वराज्यम् ॥२॥

---

३ अग्नि आदि अन्यान्य देवगण द्योतमान सविताका अनुगमन करके महिमा और बल प्राप्त करते हैं अर्थात् सूर्यके उदित होनेपर ही अग्नि-होत्रादि कार्य होता है। जो सविता देव अपने माहात्म्यसे पृथिव्यादि लोकको परिच्छिन्न करते हैं, वे शोभमान होकर विराजमान हैं ।

४ हे सविता, रोचमान तीनों लोकोंमें तुम गमन करते हो और सूर्यकी किरणोंसे मिलित होते हो तुम रात्रिके उभय पार्श्व होकर गमन करते हो। हे सविता देव, तुम जगद्धारक कर्म द्वारा मित्र नामक देव होते हो।

५ हे सविता देव, अकेले तुम ही सब (लौकिक) या वैदिक कर्मोंके अनुशासनमें समर्थ हो। हे देव, गमन द्वारा तुम पूषा (पोषक) होओ। तुम समस्त भुवनजातको धारण करनेमें समर्थ हो। हे सविता देव, श्यावश्व ऋषि तुम्हारा स्तवन करते हैं ।

१ हम लोग सविता देवसे प्रसिद्ध और भोगयोग्य धनके लिये प्रार्थना करते हैं। सविता देवके अनुग्रहसे हम भगके निकटसे श्रेष्ठ, सर्व-भोगप्रद और शत्रुसंहारक धन लाभ करें ।

२ सविताके स्वयम् असाधारण, सर्वप्रिय और राजमान ऐश्वर्यको कोई असुर आदि भी नष्ट नहीं कर सकता है।

स हि रत्नाति दाशुषे सुवाति सविता भगः ।
तं भागं चित्रमीमहे ॥३॥
अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् ।
परा दुष्वप्न्यं सुव ॥४॥
विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥५॥
अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे ।
विश्वा वामानि धीमही ॥६॥
आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे ।
सत्यसवं सवितारम् ॥७॥

३ वह सविता और भजनीय भग देव हम हव्यदाताको रमणीय धन प्रदान करते हैं । हम उस भजनीय भग देवसे रमणीय धनकी याचना करते हैं ।

४ हे सविता देव, आज यज्ञ-दिनमें तुम हम लोगोंको पुत्रादिसे युक्त सौभाग्य (धन) प्रदान करो एवम् हम लोगोंके दुस्वप्नजनित दारिद्र्यको दूर करो ।

५ हे सविता देव, तुम हम लोगोंके समस्त अमङ्गलको दूर करो एवम् प्रजा,पशु और गृहादि रूप कल्याणको हम लोगोंके अभिमुख प्रेरित करो । *

६ हम अनुष्ठान करनेवाले प्रेरक सविता देवकी आज्ञासे अखण्डनीया देवी (भूमि) अदितिके निकट निरपराधी हों । हम सम्पूर्ण रमणीय या वाञ्छित धन धारण करें ।

७ आज हम लोग इस यज्ञ-दिनमें, सूक्तों (स्तोत्रों) के द्वारा सर्व देवस्वरूप, अनुष्ठाताओंके पालक और सत्य शासक या रक्षक सविता देवका संभजन अथवा उपासना करते हैं ।

---

* प्रजा, पशु और गृह महाकल्याणकर वस्तु है । —सायण ।

य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् ।
स्वाधीर्देवः सविता ॥८॥
य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन ।
प्र च सुवाति सविता ॥९॥

८३ सूक्त

पर्जन्य देवता । अत्रिके अपत्य भौम ऋषि । जगती, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द ।

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद्वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥१॥
वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥२॥
रथीव कशयाश्वां अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्यां अह ।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं नभः ॥३॥

---

८ जो सविता देव भली भाँतिसे ध्यान करनेके योग्य हैं या सुन्दर कर्मवाले हैं। जो अप्रमत्त होकर दिन और रातके पुरोभागमें गमन करते हैं, उन सविता देवका हम इस यज्ञ-दिनमें, सूक्तोंके द्वारा संभजन अथवा उपासना करते हैं।

९ जो सविता देव समस्त उत्पन्न प्राणियोंके निकट यश सुनाते हैं अर्थात् सविता देवके यशको सब सुनते हैं, जो सब प्राणियोंको प्रेरित करते है, उन सविता देवका इस यज्ञदिनमें हम सूक्तोंके द्वारा संभजन अथवा उपासना करते हैं।

१ हे स्तोता, तुम बलवान् पर्जन्य देवके अभिमुखवर्ती होकर उनकी प्रार्थना करो। स्तुति वचनोंसे उनका स्तवन करो। हविर्लक्षण अन्नसे उनकी परिचर्या करो। जलवर्षक, दानशील, गर्जनकारी पर्जन्य वृष्टिपात द्वारा ओषधियोंको गर्भयुक्त करते हैं।

२ पर्जन्य वृक्षोंको नष्ट करते हैं, राक्षसोंका बध करते हैं और महान् बध द्वारा समग्र भुवनको भय प्रदर्शित करते है। गरजनेवाले पर्जन्य पापियोंका संहार करते हैं; अतएव निरपराधी भी वर्षण करनेवाले पर्जन्यके निकटसे भीत होकर पलायमान हो जाते हैं।

३ रथी जिस प्रकारसे कशाघात द्वारा अश्वोंको उत्तेजित करके योद्धाओंको आविष्कृत करते हैं, उसी प्रकार पर्जन्य भी मेघोंको प्रेरित करके वारि-वर्षक मेघोंको प्रकटित करते हैं। जबतक पर्जन्य जलदसमूहको अन्तरिक्षमें व्याप्त करते हैं, तबतक सिंहकी तरह गरजनेवाले मेघका शब्द दूरमें ही उत्पन्न होता है।

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥४॥
यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥५॥
दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥६॥
अभिक्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परिदीया रथेन ।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥७॥
महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥८॥

४ जबतक पर्जन्य वृष्टि द्वारा पृथिवीकी रक्षा करते हैं, तबतक वृष्टिके लिये हवा बहती रहती है, चारो तरफ बिजलियाँ चमकती रहती हैं, ओषधियाँ बढ़ती रहती हैं, अन्तरिक्ष श्रवित होता रहता है और सम्पूर्ण भुवनकी हितसाधनामें पृथिवी समर्थ होती रहती है ।

५ हे पर्जन्य, तुम्हारे ही कर्मसे पृथिवी अवनत होती हैं, तुम्हारे ही कर्मसे पाद-युक्त या खुरविशिष्ट पशु समूह पुष्ट होते हैं या गमन करते हैं । तुम्हारे ही कर्मसे ओषधियाँ विविध वर्ण धारण करती हैं। तुम हम लोगोंको महान् सुख प्रदान करो ।

६ हे मरुतो, तुमलोग अन्तरिक्षसे हमलोगोंके लिये बृष्टि प्रदान करो । वर्षणकारी और सर्वव्यापी मेघकी उदकधाराको क्षरित करो (वर्षाओ)। हे पर्जन्य, तुम जलसेचन करके गर्जनशील मेघके साथ हम लोगोंके अभिमुख आगमन करो । तुम वारिवर्षक और हमलोगोंके पालक हो ।

७ पृथिवीके ऊपर तुम शब्द करो—गर्जन करो, उदक द्वारा ओषधियोंको गर्भ-धारण कराओ, वारिपूर्ण रथ द्वारा अन्तरिक्षमें परिभ्रमण करो, उदकधारक मेघको वृष्टिके लिये आकृष्ट करो या विमुक्तबन्धन करो, उस बन्धनको अधोमुख करो, उन्नत और निम्नतम प्रदेशको समतल करो। अर्थात् सब उदकपूर्ण हो ।

८ हे पर्जन्य, तुम कोशस्थानीय (जल-भाण्डार) महान् मेघको ऊर्ध्व भागमें उत्तोलित करो एवम् वहाँसे उसे नीचेकी ओर क्षारित करो अर्थात् वारि-वर्षण कराओ । अप्रतिहत वेगशालिनी नदियाँ पूर्वाभिमुख या पुरोभागमें प्रवाहित हों । जल द्वारा द्यावापृथिवीको क्लिन्न (आर्द्र) करो । गौओंके लिये पानयोग्य सुन्दर जल प्रचुर मात्रामें हो ।

यत् पर्जन्य कनिक्रदत्स्तनयन् हंसि दुष्कृतः ।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किं च पृथिव्यामधि ॥९॥
अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभाया कर्धन्वान्यत्येतवा उ ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योविदो मनीषाम् ॥१०॥

८४ सूक्त

पृथिवी देवता । अत्रिके पुत्र भौम ऋषि । अनुष्टुप् छन्द ।

बलित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि ।
प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥१॥
स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः ।
प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥२॥
दृह्ला चिद्या वनस्पतीन्दमया दर्धर्ष्योजसा ।
यत्त अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः ॥३॥

९ हे पर्जन्य, जब तुम गम्भीर गर्जन करके पापिष्ठ मेघोंको विदीर्ण करते हो, तब यह सम्पूर्ण विश्व और भूमिमें अधिष्ठित चराचरात्मक पदार्थ हृष्ट होते हैं अर्थात् वृष्टि होनेसे सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न होता है।

१० हे पर्जन्य, तुमने वृष्टि की है। अभी वृष्टि संहारण करो। तुमने मरुभूमियोंको सुगम्य बनानेके लिये जलयुक्त किया है। मनुष्योंके भोगके लिये ओषधियोंको उत्पन्न किया है। प्रजाओंके समीपसे तुमने स्तुतियाँ प्राप्त की हैं। †

१ हे पृथिवी (हे मध्य स्थानकी देवी,) तुम यहाँ अन्तरिक्षमें पर्वतों या मेघोंके भेदनको धारण करती हो। तुम बलशालिनी और श्रेष्ठ हो; क्योंकि तुम माहात्म्य द्वारा पृथिवीको प्रसन्न करती हो।

२ हे विविध प्रकारसे गमन करनेवाली पृथिवी देवी, स्तोता लोग गमनशील स्तोत्रों द्वारा तुम्हारा स्तवन करते हैं। हे अर्जुनी (शुभ्रवर्णे या गमनशीले,) तुम शब्द करनेवाले अश्वकी तरह जलपूर्ण मेघको प्रक्षिप्त करते हो।

३ हे पृथिवी, जबकी विद्योतमान अन्तरिक्षसे तुहारे सम्बन्धी मेघ वृष्टि पातित करते हैं, तब तुम दृढ़ भूमिके साथ वनस्पतियोंको धारण करती हो अथवा वनस्पतियोंको दृढ़ करके धारण करती हो।

---

* यह अतिवृष्टिको विमुक्त करनेवाली ऋचा है।—सायण।

८५ सूक्त

वरुण देवता । अत्रि ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय ।
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथीवीं सूर्याय ॥१॥
वनेषु व्यंतरिक्षं ततान वाजमर्वत्सुपय उस्रियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्वग्निं दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥२॥
नीचीनवारं वरुणः कवन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम ॥३॥
उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित् ।
समभ्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः ॥४॥
इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्रवोचम् ।
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥५॥

१ हे अत्रि, तुम भली भाँतिसे राजमान, सर्वत्र विश्रुत (प्रसिद्ध) और उपद्रवोंके निवारक वरुण देवके लिये प्रभूत, दुरवगाह (बहुतअर्थसे युक्त) और प्रिय स्तोत्रका उच्चारण करो। पशु-हन्ता जिस प्रकारसे निहत पशुओंके चर्मको विस्तृत करता है, उसी प्रकार वे सूर्यके आस्तरणार्थ अन्तरिक्षको विस्तारित करते हैं।

२ वरुणदेव वृक्षोंके उपरिभागमें अन्तरिक्षको विस्तारित करते हैं । अश्वोंमें बल, गौओंमें दुग्ध और हृदयमें सङ्कल्प विस्तारित करते हैं। वे जलमें अग्नि, अन्तरिक्षमें सूर्य और पर्वतों पर सोमलता स्थापित करते हैं ।

३ वरुणदेव स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्षके हितके लिये मेघके निम्न भागको सछिद्र करते हैं। वृष्टि जिस प्रकारसे यव आदि शस्यको सिक्त करती है, उसी प्रकार अखिल भुवनके अधिपति वरुणदेव समग्र भूमिको आर्द्र करते हैं ।

४ वरुणदेव जब वृष्टि रूप दुग्धकी कामना करते हैं, तब वे पृथिवी अन्तरिक्ष और स्वर्गको आर्द्र करते हैं । अनन्तर पर्वतसमूह वारिदोंके द्वारा शिखरोंको आवृत करते हैं । मरुद्गण अपने बलसे उल्लासित होकर मेघोंको शिथिल करते हैं।

५ हम प्रसिद्ध असुरहन्ता वरुणदेवकी इस महती प्रज्ञाकी घोषणा करते हैं । जो वरुणदेव अन्तरिक्षमें अवस्थित होकर मानदण्डकी तरह सूर्य द्वारा पृथिवी और अन्तरिक्षको परिच्छिन्न करते हैं।

इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दधर्ष ।
एकं यदुद्रा न पृणंत्येनीरासिंचन्तीरवनयः समुद्रम् ॥६॥
अर्यम्यं बरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद्भ्रातरं वा ।
वेशं वा नित्यं बरुणारणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् ॥७॥
कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।
सर्वा ता वि ष्व शिथिरेव देवाधा ते स्याम बरुण प्रियासः ॥८॥

८६ सूक्त

इन्द्र और अग्नि देवता । अत्रि ऋषि । अनुष्टुप् और विराट् छन्द ।

इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यम् ।
दृह्ला चित् स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः ॥१॥
या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या ।
या पञ्च चर्षणीरभीन्द्राग्नी ता हवामहे ॥२॥

---

६ प्रकृष्ट ज्ञानसम्पन्न और द्योतमान बरुणदेवकी सर्वप्रसिद्ध महती प्रज्ञाकी हिंसा (खण्डन) कोई नहीं कर सकता है । जल-सेचनकारिणी शुभ्र नदियाँ वारि द्वारा एक मात्र समुद्रको भी पूर्ण नहीं कर सकती हैं । यह बरुणका महान् कर्म है ।

७ हे बरुण, यदि हमलोग कभी भी कोई दाता, मित्र, वयस्य, भ्राता, पड़ोसी अथवा मूकके प्रति कोई अपराध करें, तो उन लोगोंका विनाश करो ।

८ हे वरुणदेव, द्यूतक्रीड़ा द्वारा प्रवञ्चनाकारी पाशक्रीड़ककी तरह यदि हमलोग ज्ञानपूर्वक या अज्ञानपूर्वक कोई अपराध करें, तो तुम शिथिल बन्धनकी तरह उन्हें मुक्त करो । हे देव, अनन्तर हम तुमरे प्रियपात्र हों ।

१ हे इन्द्र और अग्नि, तुम दोनों संग्राममें मर्त्यकी रक्षा करो। वे शत्रुसम्बन्धी द्योतमान धनको अतिशय भिन्न करते हैं । वे प्रतिवादियोंके वाक्यका खण्डन करते हैं और शत्रुओंके वाक्यकी तरह तीनों स्थानोंमें वर्तमान रहते हैं।

२ जो इन्द्र और अग्नि संग्राममें अनभिभवनीय हैं, जो संग्राममें या अन्नके विषयमें स्तवनीय हैं और जो पञ्चश्रेणीके मनुष्योंकी रक्षा करते हैं, उन दोनों महानुभावोंका हम लोग स्तवन करते हैं ।

तयोरिदमवच्छवस्तिग्मा दिद्युन्मघोनोः ।
प्रति द्रुणा गभस्त्योर्गवां वृत्रघ्न एषते ॥३॥
ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे ।
पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥४॥
ता वृधन्तावनु द्यून्मर्ताय देवावदभा ।
अर्हन्ता चित्पुरो दधेंशेव देवावर्वते ॥५॥
एवेन्द्राग्निभ्यामहावि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः ।
ता सूरिषु श्रवो बृहद्रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम् ॥६॥

८७ सूक्त

मरुद्गण देवता । अत्रिके अपत्य एवयामरुत् ऋषि । जगतीछन्द ।

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।
प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥१॥

---

३ इन दोनोंका बल शत्रुओंको पराभूत करनेवाला है । जब ये दोनों देव एक रथपर आरूढ़ होकर धेनुओंके उद्धारार्थ और वृत्रके विनाशार्थ गमन करते हैं, तब इन दोनों धनवानोंके हाथोंमें तीक्ष्ण वज्र विराजमान रहता है ।

४ हे गमनशील, धनके अधिपति, सर्वज्ञ तथा निरतिशय वन्दनीय इन्द्र और अग्नि, युद्धमें रथ प्रेरित करनेके लिये हमलोग तुम दोनोंका आह्वान करते हैं ।

५ हे अहिंसनीय देवद्वय, हमलोग अश्वलाभके लिये तुम दोनोंका स्तवन करते हैं । तुम दोनों मनुष्योंकी तरह सर्वदा वर्द्धमान होते हो एवम् आदित्यद्वयको तरह दीप्तिमान् हो ।

६ पत्थरों द्वारा पिसे हुए सोमरसकी तरह बलकारक हव्य सम्प्रति प्रदत्त हुआ है । तुम दोनों ज्ञानियोंको अन्न प्रदान करो । स्तवकारियोंको प्रभूत धन और अन्न प्रदान करो ।

* * *

१ एवया ऋषिके वचन-निष्पन्न स्तोत्र मरुतोंके साथ विष्णुके निकट उपस्थित हों एवम् वे ही स्तोत्र बलशाली, पूजनीय, शोभनालङ्कृत, शक्ति-सम्पन्न, स्तुतिप्रिय, मेघसञ्चालनकारी और द्रुतगामी मरुतोंके निकट उपस्थित हों ।

प्र ये जाता महिना ये च नु स्वयं प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत् ।
क्रत्वा तद्वो मरुतो नाधषे शवो दाना मह्ना तदेषामधृष्टासो नाद्रयः ॥२॥
प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत् ।
न येषामिरी सधस्थ इष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम्॥३॥
स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरुत् ।
यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिर्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति शेवृधो नृभिः॥४॥
स्वनो न वोमवानेजयद्वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत् ।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास इष्मिणः ॥५॥
अपारो वो महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोवत्त्वेवयामरुत् ।
स्थातारो हि प्रसितौ सन्दृशि स्थन तेन उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः ।६।

---

२ जो महान् इन्द्रके सहित प्रादुर्भूत हुए हैं, जो यज्ञ-गमन-विषयक ज्ञानके साथ प्रादुर्भूत हुए हैं, उन मरुतोंका एवयामरुत् स्तवन करते हैं । हे मरुतो, तुम लोगोंका बल अभिमत फल दानसे महान् है और अनभिभवनीय है। तुम लोग पर्वतकी तरह अटल हो ।

३ जो दीप्त और स्वच्छन्दतया विस्तीर्ण स्वर्गसे आह्वान श्रवण करते हैं, अपने गृहमें अवस्थिति करनेपर जिन्हें चालित करनेमें कोई समर्थ नहीं है, जो अपनी दीप्ति द्वारा दीप्तिमान् हैं, जो अग्निकी तरह नदियोंको सञ्चालित करते हैं । एवयामरुत् स्तुति द्वारा उनकी उपासना करते हैं ।

४ मरुतोंके स्वेच्छानुसार गमन करनेवाले अश्व जब रथमें युक्त होते हैं, तब एवयामरुत् उनके लिये अपेक्षा करते हैं । सर्वव्यापी मरुद्गण महान् तथा सर्वसाधारण स्थान अन्तरिक्षसे निर्गत हुए हैं । परस्पर स्पर्द्धाकारी, बलशाली और सुखदाता मरुद्गण निर्गत हुए हैं ।

५ हे मरुतो, तुमलोग स्वाधीनतेजा, स्थिरदिप्ति, स्वर्गाभरणभूषित और अन्नदाता हो। तुम लोग जिस शब्दसे शत्रुओंको अभिभूत करके अपना कार्यसाधन करते हो, वह प्रबल वारिवर्षणकारी, दीप्त, विस्तृत और प्रवृद्ध ध्वनि एवयामरुत्को कम्पित नहीं करे ।

६ हे समधिक बलशाली मरुतो, तुम लोगोंकी महिमा अपार है, निरवधि है । तुम लोगोकी शक्ति एवायामरुत्की रक्षा करे । नियमयुक्त यज्ञके सन्दर्शन-विषयमें तुम लोग ही नियामक हो । तुम लोग प्रज्वलित अग्निके सदृश दीप्त हो । निन्दकोंसे तुम लोग हमारी रक्षा करो ।

ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत् ।
दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भूतैनसाम् ॥७॥
अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत् ।
विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद्रथ्यो न दंसनाप द्वेषांसि सनुतः ॥८॥
गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत् ।
ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः ।९।

---

७ हे पूजनीय और अग्निकी तरह प्रभूत दीप्तिशाली रुद्रपुत्रो, एवयामरुत्‌की रक्षा करो। अन्तरिक्ष-सम्बन्धी दीर्घ और विस्तीर्ण गृह मरुतोंके द्वारा विख्यात होता है। निष्पाप मरुद्‌गण गमनकालमें प्रभूतशक्ति प्रकाशित करते हैं।

८ हे विद्वेषहीन मरुतो, तुम लोग हमारे स्तोत्रके सन्निहित होओ एवं स्तवनकारी एवयामरुत्‌का आह्वान श्रवण करो। हे इन्द्रके साथ एकत्र यज्ञभाग प्राप्त करनेवाले मरुतो, योद्धा लोग जिस प्रकारसे शत्रुओंको अपसारित करते हैं, उसी प्रकार तुम लोग हमारे गूढ़ शत्रुओंको दूर करो।

९ हे यजनयोग्य मरुतो, तुम लोग हमारे यज्ञमें आगमन करो, जिससे यह यज्ञ सुसम्पन्न हो। तुम लोग रजोवर्जित या निर्विघ्न हो। हमारा आह्वान श्रवण करो। हे प्रकृष्ट ज्ञानसम्पन्न मरुतो, अत्यन्त वर्द्धमान विन्ध्यादि पर्वतकी तरह अन्तरिक्षमें अवस्थान करके तुमलोग निन्दकोंका शासन करते हो।

॥ परिशिष्ट ॥

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजां। चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥
तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्। यस्यां हिरण्यं विंदेयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥ १ ॥
अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्। श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मादेवी जुषताम् ॥ २ ॥
कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयंतीम्।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ ३ ॥
चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणमहं प्रपद्ये लक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ॥ ४ ॥
आदित्यवर्णे तपसोधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोथबिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरायाश्च बाह्या अलक्ष्मीः ॥ ५॥
उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोस्मि राष्ट्रेस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ॥ ६ ॥

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ॥ ७ ॥
गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ ८ ॥
मनसः काममाकूतं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥ ९ ॥
कर्दमेन प्रजाभूता मयि सम्भव कर्दम ।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥ १० ।
आपस्सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥ ११ ॥
आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥ १२ ॥
आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥ १३ ॥
तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावोदास्योश्वान् विन्देयं पुरुषानहम् ॥ १४ ॥
यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥ १५॥
पद्मानने पद्मऊरू पद्माक्षी पद्मसम्भवे ।
तन्मे भजसि पद्माक्षी येन सौख्यं लभाम्यहम् ॥ १६ ॥
अश्वदायी गोदायी धनदायी महाधने ।
धनं मे जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे ॥ १७ ॥
पद्मानने पद्मविपद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षी ।
विश्वप्रिये विश्वमनोनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि संनिधत्स्व ॥ १८ ॥
पुत्रपौत्रधनं धान्यं हस्त्यश्वादिगवेरथम् ।
प्रजानां भवसी माता आयुष्मन्तं करोतु मे ॥ १९ ॥
धनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः ।
धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणं धनमस्तु ते ॥ २० ॥
वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा ।
सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः ॥ २१ ॥
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः ।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां श्रीसूक्तं जपेत् ॥ २२ ॥

सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभे ।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम् ॥ २३ ॥
विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम् ।
लक्ष्मीं प्रियसखीं देवीं नमाम्यच्युतवल्लभाम् ॥ २४ ॥
महालक्ष्मी च विद्महे विष्णुपत्नी च धीमहि ।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥ २५ ॥
श्रीवर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधाच्छो भमानं महीयते ।
धान्यं धनं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ॥ २६ ॥

पञ्चम मण्डल समाप्त

षष्ठ मण्डल

१ सूक्त

४ अष्टक । ४अध्याय । १नुवाक । अग्नि देवता । बृहस्पतिके अपत्य भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता ।
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥१॥
अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीड्यः सन् ।
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनुग्मन् ॥२॥
वृते व यन्तं बहुभिर्वसव्यै स्त्वे रयिं जागृवांसो अनुग्मन् ।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥३॥
पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त सन्दृष्टौ ॥४॥

---

१ हे अग्नि, तुम देवताओंके मध्यमें प्रकृष्टतम हो । देवताओंका मन तुममें सम्बद्ध है। हे दर्शनीय, इस यज्ञमें तुम्हीं देवोंके आह्वान करनेवाले होते हो। हे अभीष्टवर्षी, समस्त बलशाली शत्रुओंको पराभूत करनेके लिये तुम हमें अनिवार्य बल प्रदान करो।

२ हे अग्नि, तुम अतिशय यज्ञकर्ता और होमनिष्पादक हो। तुम हव्य ग्रहण करके स्तुतियोग्य होते हो। तुम वेदी रूप स्थानपर उपवेशन करो। धर्मानुष्ठानकारी ऋत्विक् लोग महान् धन प्राप्त करनेकी आशासे देवोंके मध्यमें प्रथम ही तुम्हारा अनुसरण करते हैं।

३ हे अग्नि, तुम दीप्तिमान्, दर्शनीय, महान् हव्यभोजी और सम्पूर्ण कालमें दीप्तिमान् हो। तुम वसुओंके मार्गसे अर्थात् अन्तरिक्षसे गमन करते हो। धनाभिलाषी यजमान तुम्हारा अनुसरण करते हैं।

४ अन्नाभिलाषी होकर यजमान लोग स्तोत्रके साथ दीप्तिमान् अग्निके आहवनीय स्थानमें गमन करते हैं और अप्रतिहत भावसे अथवा अबाध्य रूपसे प्रचुर अन्न प्राप्त करते हैं। हे अग्नि, दर्शन होनेपर वे स्तुतियोंसे आनन्दित होते हैं और तुम्हारे यागयोग्य नामोंको धारण करते हैं—जातवेदा, वैश्वानर इत्यादि नामोंका संकीर्तन करते हैं।

त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम् ।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ॥५॥
सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्वग्निर्होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान् ।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ॥ ६ ॥
तं त्वा वयं सुध्यो नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ॥७॥
विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् ।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥८॥
सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम् ।
य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत् स वामा दधते त्वोतः ॥९॥

---

५ हे अग्नि, मनुष्यगण तुम्हें वेदीके ऊपर वर्द्धित करते हैं। तुम यजमानोंके पशु और अपशु रूप दोनों प्रकारके धनको वर्द्धित करते हो। अध्वर्यु आदि भी उभय विध धन प्राप्त करनेके लिये तुम्हें वर्द्धित करते हैं। हे दुःखविनाशक अग्नि, तुम स्तुतिभाजन होकर मनुष्योंके रक्षक और पितृ-मातृ-स्थानीय हो।

६ पूजनीय, अभीष्टवर्षी, प्रजाओंके मध्यमें होमनिष्पादक, मोहप्रद और अतिशय यजनीय अग्नि वेदीके ऊपर उपविष्ट होते हैं। हे अग्नि, तुम गृहमें प्रज्वालित होते हो। हम लोग जानुको अवनत करके, स्तोत्रके साथ, तुम्हारे निकट उपस्थित होते हैं।

७ हे अग्नि, तुम स्तुतियोग्य हो। हम शोभन बुद्धिवाले, सुखाभिलाषी और तुम्हारी कामना करनेवाले हैं। हम तुम्हारा स्तवन करते हैं। हे अग्नि, तुम दीप्यमान हो। महान् रोचमान मार्गसे अर्थात् आदित्यमार्गसे तुम हम स्तोताओंको स्वर्ग पहुँचाओ।

८ नित्यस्वरूप ऋत्विक् यजमान आदिके स्वामी, ज्ञानसम्पन्न, शत्रुविनाशक, कामनाओंके पूरक, स्तोता मनुष्योंके प्राप्तव्य, अन्नविधायक, शुद्धता-सम्पादक, धनार्थियोंके द्वारा यष्टव्य और दीप्यमान अग्निका हमलोग स्तवन करते हैं।

९ हे अग्नि, जो यजमान तुम्हारा यजन करता है, जो स्तवन करता है, जो यजमान प्रज्वलित इन्धनके साथ तुम्हें हव्य प्रदान करता है, जो स्तुतिके साथ तुम्हें आहुति प्रदान करता है, वह यजमान तुम्हारे द्वारा रक्षित होता है और समस्त अभिलषित धन प्राप्त करता है।

अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रयां सुमतौ यतेम ॥१०॥
आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्यस्तरुत्रः ।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥११॥
नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥१२॥
पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन्वसुता ते अश्याम् ।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार संत्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे ॥१३॥

१० हे अग्नि, तुम महान् हो। हम नमस्कार, इन्धन और हव्यके द्वारा तुम्हारी परिचर्या करते हैं। हे बलपुत्र, हमलोग स्तोत्र और शस्त्रके साथ वेदीके ऊपर तुम्हारी अर्चना करते हैं। हमलोग तुम्हारा शोभन अनुग्रह प्राप्त करनेके लिये यत्न करते हैं। हम लोग सफल हों।

११ हे अग्नि, दीप्ति द्वारा तुमने द्यावा-पृथिवीको विस्तृत किया है। तुम परित्राणकर्ता और स्तुति द्वारा पूजनीय हो। तुम प्रचुर अन्न और विशिष्ट धनके साथ हम लोगोंके निकट भलीभाँतिसे दीप्त होओ।

१२ हे धनवान् अग्नि, मनुष्योंसे युक्त अर्थात् पुत्र-पौत्रादिसे युक्त धन तुम हमें प्रदान करो। हमारे पुत्र-पौत्रोंको प्रभूत पशु प्रदान करो। कामनाओंके पूरक और पापरहित पर्याप्त अन्न तथा सौभाग्य हमें प्राप्त हो।

१३ हे दीप्तिमान् अग्नि, हम तुम्हारे निकटसे गो-अश्वादिरूप बहुविध धन प्राप्त करें। तुम धनवान् हो। + हे सर्ववरणीय अग्नि, तुम शोभमान हो। तुममें बहुविध धन निहित है।

+ यहाँ सायणने अपने पूर्ववर्ती भाष्यकार भरतस्वामी तथा भट्टभास्कर मिश्रका नामोल्लेख किया है।

चतुर्थ अध्याय समाप्त

पञ्चम अध्याय

२ सूक्त

अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । अनुष्टुप् और शक्वरी छन्द ।

त्वं हि क्षैतवद्यशोग्ने मित्रो न पत्यसे ।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥१॥
त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीड़ते ।
त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः ॥२॥
सजोषस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते ।
यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे ॥३॥
ऋधद्यस्ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते ।
ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥४॥

१ हे अग्नि, तुम मित्रदेवकी तरह शुष्क काष्ठके द्वारा हविके ऊपर अभिपतित होते हो; अतएव हे सर्वदर्शी, धनसम्पन्न अग्नि, तुम अन्न और पुष्टि द्वारा हमलोगोंको वर्द्धित करो।

२ हे अग्नि, मनुष्यगण हव्यसाधन हव्य और स्तुतिके द्वारा तुम्हारी अर्चना करते हैं। हिंसावर्जित, जलके प्रेरक अथवा लोकोंमें अभिगमन करनेवाले, सर्वद्रष्टा सूर्यदेव तुम्हारा अभिगमन करते हैं। *

३ हे अग्नि, समान प्रीति धारण करनेवाले ऋत्विक् लोग तुम्हें समिद्ध अर्थात् प्रज्वालित करते हैं। तुम यज्ञके प्रज्ञापक हो। मनुके अपत्य यजमान लोग सुखाभिलाषी होकर यज्ञमें तुम्हारा आह्वान करते हैं।

४ हे अग्नि, तुम दानशील हो। जो मरणशील यजमान यज्ञकर्ममें रत होकर तुम्हारा स्तवन करता है, वह समृद्धिशाली हो। हे अग्नि, तुम दीप्तियुक्त हो। वह यजमान तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर भीषण पापकी तरह शत्रुओंको पराभूत करे।

---

* रात्रिमें सूर्यदेव अग्निमें प्रवेश करते हैं; इसीसे अग्नि, दूरसे ही, रात्रिमें दीख पड़ते हैं।
तै० ब्रा० २।१।२

समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत् ।
वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम् ॥५॥
त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि षञ्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥६॥
अधा हि विद्वीड्योसि प्रियो नो अतिथिः ।
रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः ॥७॥
ऋत्वा हि द्रोणे अज्यसेग्ने वाजो न कृत्व्यः ।
परिज्मेव स्वधा गयोत्यो न ह्वार्यः शिशुः ॥८॥
त्वं त्या चिद्च्युताग्ने पशुर्न यवसे ।
धामा ह यत्ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ॥९॥
वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशाम् ।
समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ॥१०॥

---

५ हे अग्नि, जो मनुष्य काष्ठ द्वारा तुम्हारी मन्त्र-संस्कृत आहुतिको व्याप्त (पुष्ट) करता है, वह मनुष्य पुत्र-पौत्रादिसे युक्त गृहमें सौ बरसोंतक आयुका भोग करता है ।

६ हे अग्नि, तुम दीप्तिशाली हो। तुम्हारा शुभ्र वर्णका धूम अन्तरिक्षमें विस्तृत होता है और मेघरूपमें परिणत होता है। हे पावक (शुद्धिविधायक), तुम स्तोत्र द्वारा प्रसन्न होकर सूर्यकी तरह दीप्ति द्वारा रोचमान होते हो ।

७ हे अग्नि, तुम प्रजाओंके स्तुतिभाजन हो; क्योंकि, तुम अतिथिकी तरह हमलोगोंके प्रिय हो । नगरमें वर्तमान हितोपदेष्टा वृद्धकी तरह तुम आश्रययोग्य हो एवम् पुत्रकी तरह पालनीय हो ।

८ हे अग्नि, अरणिमन्थन रूप कर्मसे तुम्हारी विद्यमानता प्रकाशित होती है । अश्व जिस प्रकारसे अपने आरोहीका वहन करता हैं, उसी प्रकार तुम हव्य वहन करो। तुम वायुकी तरह सर्वत्र गमन करते हो । तुम अन्न और गृह प्रदान करो। तुम शिशु और अश्वकी तरह कुटिलगामी हो ।

९ हे अग्नि, तृण आदि चरनेके लिये विसृष्ट (छोड़ा गया) पशु जिस प्रकार सम्पूर्ण तृण भक्षण कर लेता है, उसी प्रकार तुम प्रौढ़ काष्ठोंको क्षण मात्रमें भक्षण कर लेते हो । हे अविनश्वर अग्नि, तुम दीप्तिशाली हो । तुम्हारी शिखाएँ अरण्योंको छिन्न कर देती हैं ।

१० हे अग्नि, तुम यज्ञाभिलाषी यजमानोंके गृहमें होता रूपसे प्रविष्ट होते हो। हे मनुष्योंके पालक अग्नि, तुम हम लोगोंका समृद्धि-विधान करो। हे अङ्गार-रूप अग्नि, तुम हमारे हव्यको स्वीकार करो।

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता
तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥११॥

३ सूक्त

अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण बरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ॥१॥
ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर्ऋधद्वारायाग्नये ददाश ।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर्नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः ॥२॥
सूरो न यस्य दृशतिररेपा भीमा यदेति शुचतस्त आ धीः ।
हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः कुत्राचिद्रण्वा वसतिर्वनेजाः ॥३॥

---

११ हे अनुकूल दीप्तिवाले, देव-दानवादि गुणयुक्त और द्यावापृथिवीमें वर्तमान अग्निदेव, तुम देवोंके निकट हम लोगोंकी स्तुतिका उच्चारण करो। हम स्तोताओंको शोभन निवास युक्त सुखमें ले जाओ। हमलोग शत्रुओं, पापों और कष्टोंका अतिक्रमण करें। हमलोग जन्मान्तरमें कृत पापोंसे मुक्त हों। हे अग्नि, तुम्हारी रक्षाके द्वारा हम शत्रु आदिसे उद्धार पावें।

१ हे अग्नि, वह यजमान चिर काल पर्यन्त जीवन धारण करे, जो यजमान यज्ञका पालन करता है और यज्ञके निमित्त उत्पन्न हुआ है। बरुण और मित्रके साथ समान प्रीति धारण करके, तेज द्वारा तुम पापसे जिसकी रक्षा करते हो, वह देवाभिलाषी यजमान तुम्हारी विस्तीर्ण ज्योति प्राप्त करता है।

२ वरणीय धनसे समृद्धिवान् अग्निके लिये जो यजमान हव्य प्रदान करता है, वह सम्पूर्ण यज्ञके द्वारा यज्ञवान् अर्थात् सफल-यज्ञ होता है। तथा कृच्छ्र चान्द्रायणादि कर्म द्वारा शान्त होता है यानी अग्निकर्म द्वारा वह सम्पूर्ण फल प्राप्त करता है। वह यजमान यशस्वी पुत्रोंके अभावको भी नहीं प्राप्त करता है। उसे पाप तथा अनर्थक गर्व नहीं छूते।

३ सूर्यके सदृश जिस अग्निका दर्शन पापरहित है। हे अग्नि, तुम्हारी प्रज्वलित ज्वाला भयङ्कर है और सर्वत्र गमन करती है। अग्निदेव रात्रिमें शब्दायमान धेनुकी तरह विस्तृत होते हैं। सबके आवासभूत अर्थात् निवासप्रद और अरण्यजात अग्नि पर्वतके अग्रभागमें रमणीय होते हैं।

तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥४॥
स इदस्तेव प्रति धादसिष्यञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोर्वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ॥५॥
स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः ।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नॄनमर्त्यो अरुषो यो दिवा नॄन् ॥६॥
दिवो न यस्य विधतो नवीनोद्वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत् ।
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन्ना रोदसी वसुना दं सुपत्नी ॥७॥

४ अग्निका मार्ग तीक्ष्ण है। इनका रूप अत्यन्त दीप्तिमान् हैं। अग्नि अश्वकी तरह मुख द्वारा तृणादिको प्राप्त करते हैं। कुठार जैसे अपनी धाराको काष्ठपर प्रक्षिप्त करता है, उसी प्रकार अग्नि अपनी ज्वालाको तरु-गुल्म आदिपर प्रक्षिप्त करते हैं। स्वर्णकार जैसे सुवर्ण आदिको द्रवीभूत करता है, उसी प्रकार अग्नि सम्पूर्ण वनको द्रवित करते हैं अर्थात् सम्पूर्ण वस्तुको अग्नि भस्मीभूत कर डालते हैं।

५ वाण चलानेवाला जैसे लक्ष्यके अभिमुख वाण चलाता है, वैसे ही अग्नि अपनी ज्वालाको प्रक्षिप्त करते हैं। कुठार आदिको चलानेवाला जैसे कुठार आदिकी धारको तीक्ष्ण करता है वैसे ही अग्नि भी अपनी ज्वालाको फेंकते समय तीक्ष्ण करते हैं। वृक्षके ऊपर निवास करनेवाले और लघुपतन-समर्थ पाद-विशिष्ट पक्षीकी तरह विचित्रगति अग्नि रात्रिका अतिक्रमण करते हैं अर्थात् धीरे-धीरे अन्धकारका विनाश करते हैं। *

६ वे अग्नि स्तवनीय सूर्यकी तरह दीप्त ज्वालाको आच्छादित करते हैं। सबके अनुकूल प्रकाशको विस्तारित करके वे तेज द्वारा अत्यन्त शब्द करते हैं। अग्नि रात्रिमें शोभमान होकर मनुष्योंको दिवसकी तरह अपने-अपने कार्योंमें लगाते हैं। अमरणशील और रोचमान अग्नि द्योतमान तेज द्वारा अपनी किरणोंको नेताओंके लिये प्रेरित करते है। अथवा आरोचमान अग्नि दिनमें देवोंको हविके साथ संयुक्त करते हैं।

७ दीप्यमान सूर्यकी तरह रश्मिविस्तीर्ण करनेवाले जिस अग्निका महान् शब्द हुआ है, वह अभीष्टवर्षी और दीप्त अग्नि ओषधियोंके (जलाने योग्य) मध्यमें अत्यन्त शब्द करते हैं। जो दीप्त और गमनशील तथा इतस्ततः ऊर्द्धगामी तेज द्वारा गमन करते हैं, वह अग्नि हमारे शत्रुओंको दमन करते हुए शोभनपति-सम्पन्न स्वर्ग और पृथ्वीको धन द्वारा पूर्ण करते हैं।

---

* यहाँ अयस् शब्द लोहेके अर्थमें व्यवहृत हुआ हैं।

धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दविद्योत्स्वेभिः शुष्मैः ।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ॥८॥

---

४ सूक्त

अग्नि देवता। भरद्वाज ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि ।
एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥१।
स नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोरग्निर्वन्दारु वेद्यश्चनो धात् ।
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषूषर्भुद्दतिथिर्जातवेदाः ॥२॥
द्यावो न यस्य पनयन्त्यभ्वं भासांसि वस्ते सूर्यो न शुक्रः ।
वि य इनोत्यजरः पावकोऽश्नस्य चिच्छिश्नथत् पूर्व्याणि ॥३॥

---

८ जो अग्नि अश्वकी तरह स्वयमेव युज्यमान अर्चनीय दीप्तिके साथ गमन करते हैं, वह अग्नि अपने तेजके द्वारा विद्युत्की तरह चमकते हैं। जो अग्नि मरुतोंके बलको स्वल्प करते हैं, वह निरतिशय दीप्तिशाली, सूर्यकी तरह प्रदीप्त और वेगसम्पन्न अग्नि प्रकाशमान होते हैं।

---

१ हे देवोंके आह्वान करनेवाले बलपुत्र अग्नि, जिस प्रकार प्रजापति (यजमान)के यज्ञमें तुमने हव्य द्वारा देवोंका यजन किया था, उसी प्रकार हमलोगोंके इस यज्ञमें आज यजनीय इन्द्रादि देवोंको अपने समान समझकर तुम उनका शीघ्र यजन करो।

२ जो दिनके प्रकाशक हैं, जो सूर्यकी तरह अत्यन्त दीप्यमान है, जो सबके बोधगम्य हैं, जो सबके जीवनभूत हैं, अविनश्वर हैं' अतिथि हैं, जातवेदा हैं और जो मनुष्योंके मध्यमें उषाकालमें प्रबुद्ध होते हैं, वह अग्नि हमलोगोंको वन्दनीय (उत्कृष्ट) धन प्रदान करें।

३ स्तोता लोग अभी जिस अग्निके महान् कर्मकी स्तुति करते हैं, वह सूर्यकी तरह शुभ्रवर्ण अग्नि अपने तेजको आच्छादित करते है। जरारहित और पवित्र बनानेवाले अग्नि दीप्ति द्वारा सब पदार्थोंको प्रकाशित करते हैं और व्यापनशील राक्षसादिको तथा पुरातन नगरोंकी हिंसा करते है।

वद्मा हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्नम् ।
स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेष्यन्तः ॥४॥
नितिक्ति यो वारणमन्नमत्ति वायुर्न राष्ट्र्यत्येत्यक्तून् ।
तुर्याम यस्त आदिसामरातीरत्यो न ह्रुतः पततः परिह्रुत् ॥५॥
आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैरग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा ।
चित्रो नयत्परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन् ॥६॥
त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने ।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥७॥
नू नो अग्ने वृकेभिः स्वस्ति वेषि रायः पथिभिः पर्ष्यंहः ।
ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्नं मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥८॥

---

४ हेसवके प्रेरक अग्नि, तुम वन्दनीय हो । अग्नि हव्यके ऊपर आसीन होकर स्वभावतः ही उपासकोंको गृह और अन्न प्रदान करते हैं । हे अन्नप्रदायक अग्नि, तुम हम लोगोंको अन्न प्रदान करो तथा राजाकी तरह हमारे शत्रुओंको जीतो एवम् उपद्रव-शून्य हमारे अग्न्यागारमें निवास करो।

५ जो अग्नि अन्धकारके निवारक हैं, जो अपने तेजको तीक्ष्ण करते हैं, जो हविका भक्षण करते हैं और जो वायुकी तरह सबपर शासन करते हैं, वह अग्नि रात्रिका अतिक्रमण करते हैं अर्थात् रात्रिके अन्धकारका विनाश करते हैं। हे अग्नि, हम तुम्हारे प्रसादसे उस व्यक्तिको जीतें, जो तुम्हें हव्य प्रदान नहीं करता है। तुम अश्वकी तरह वेगगामी होकर हमारे आक्रमण करनेवाले शत्रुओंको विनष्ट करो ।

६ हे अग्नि, तुम द्यावापृथिवीको विशेष रूपसे आच्छादित करते हो जैसे सूर्यदेव अपनी दीप्तिमान् और पूजनीय किरणोंसे द्यावापृथिवीको आच्छादित करते हैं । अपने पथसे गमन करनेवाले सूर्यकी तरह विचित्र अग्नि अन्धकारोंको दूर करते हैं ।

७ हे अग्नि, तुम अत्यन्त स्तवनीय, पूजार्ह और दीप्तियुक्त हो। हम लोग तुम्हारा सम्भजन करते हैं; इसलिये तुम हमारे महान् स्तोत्रका श्रवण करो। हे अग्नि, नेता रूप ऋत्विक् लोग तुम्हें हविर्लक्षण धनसे सन्तुष्ट करते हैं। तुम बलमें वायुके सदृश और इन्द्रकी तरह देवस्वरूप हो ।

८ हे अग्नि, तुम शीघ्र ही वृकसे रहित मार्ग द्वारा हम लोगोंको निर्विघ्न पूर्वक ऐश्वर्यके समीप ले जाओ। पापसे हम लोगोंका उद्धार करो। तुम स्तोताओंको जो सुख प्रदान करते हो, वही सुख हमें प्रदान करो। हम लोग शोभन सन्तति-सम्पन्न होकर सौ वर्ष पर्यन्त सुख भोग करें।

५ सूक्त

अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

हुवे वः सूनुं सहसो युवानमद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम् ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक् ॥१॥
त्वे वसूनि पूर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः ।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सं सौभगानि दधिरे पावके ॥२॥
त्वं विक्षु प्रदिवः सीद आसु क्रत्वा रथोरभवो वार्याणाम् ।
अत इनोषि विधते चिकित्वो व्यानुषग्जातवेदो वसूनि ॥३॥
यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात् ।
तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान् ॥४॥

---

१ हे अग्नि, हम स्तोत्रों द्वारा तुम्हारा आह्वान करते हैं । तुम बलपुत्र, ❀ नित्य तरुण, प्रशस्त स्तुति द्वारा स्तवनीय, अतिशय युवा, प्रकृष्ट ज्ञानवाले, बहुस्तुत और द्रोह-रहित हो । इस प्रकारके अग्नि स्तोताओंको अभिलषित धन प्रदान करते हैं ।

२ हे बहु-ज्वाला-विशिष्ट देवोंके आह्वान करनेवाले अग्नि, यागयोग्य यजमान तुममें हव्य रूप धनको अहर्निश समर्पित करते हैं । देवोंने जिस प्रकार सम्पूर्ण जीवोंको पृथ्वीपर स्थापित किया था, उसी प्रकार अग्निमें सम्पूर्ण धनको रखा था ।

३ हे अग्नि, तुम प्राचीन तथा परिदृश्यमान प्रजाओंमें सर्वतोभावसे अवस्थान करते हो एवम् अपने कार्य द्वारा यजमानोंको वाञ्छित धन प्रदान करते हो । हे ज्ञानी जातवेदा, अतएव तुम परिचर्याकारी यजमानको निरन्तर धन प्रदान करो ।

४ हे अनुकूल दीप्तिवाले अग्नि, जो शत्रु अन्तर्हित देशमें बर्तमान होकर हम लोगोंको बाधित करता है और जो शत्रु अभ्यन्तरवर्ती होकर हम लोगोंको बाधित करता है, उन दोनों प्रकारके शत्रुओंको तुम अपने तेज द्वारा दग्ध करो । तुम्हारा तेज जरारहित, वृष्टि-हेतुभूत और असाधारण है ।

❀ बलपूर्वक अरणि-मन्थन करनेसे अग्नि उत्पन्न होते हैं; अतएव अग्नि बलपुत्र हैं । —सायण ।

यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत् ।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति ॥५॥
स तत्कृधीषितस्तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान् ।
यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वचोभिस्तज्जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म ॥६॥
अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिं रयिवः सुवीरम् ।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरन्ते ॥७॥

६ सूक्त

अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र नव्यसा सहसः सूनुमच्छा यज्ञेन गातुमव इच्छमानः ।
वृश्चद्वनं कृष्णयामं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति ॥१॥

---

५ हे बलपुत्र अग्नि, जो यजमान यज्ञ द्वारा तुम्हारा परिचर्या करता है, जो इन्धन, शस्त्र और अर्चनीय स्तोत्रों द्वारा तुम्हारी परिचर्या करता है हे अमर अग्नि, वह यजमान मनुष्योंके मध्यमें प्रकृष्ट ज्ञानसे युक्त होता है और धन तथा द्योतमान अन्नसे अतिशय शोभित होता है ।

६ हे अग्नि, तुम जिस कार्यके लिये प्रेषित हुए हो, उस कार्यको शीघ्र ही करो । तुम बलवान् हो; अतएव दूसरोंको अभिभूत करनेवाले बलसे शत्रुओंका विनष्ट करो । स्तुतिरूप वचनसे जो स्तोता तुम्हारा स्तवन करता है, उस स्तोताके उच्चारित स्तोत्रका तुम सेवन करो । अग्नि, द्योतमान तेजसे युक्त हैं ।

७ हे अग्नि, तुम्हारी रक्षा द्वारा हम अभिलषित फल प्राप्त करें । हे धनाधिपति, हम शोभन पुत्र आदिसे युक्त धन प्राप्त करें । अन्नाभिलाषी होकर हम तुम्हारे द्वारा प्रदत्त अन्न लाभ करें । हे जरारहित अग्नि, हम तुम्हारे अजर और द्योतमान यश लाभ करें ।

१ स्तुतिके योग्य, बलपुत्र अग्निके निकट अन्नकी अभिलाषा करनेवाले यजमान (स्तोता) नवीन यज्ञसे युक्त होकर गमन करते हैं । अग्नि वनको दग्ध करनेवाले, कृष्णवर्त्मा, श्वेतवर्ण, कमनीय, होता और स्वर्गीय हैं ।

सः श्वितानस्तन्यतू रोचनस्था अजरेभिर्नानदद्भिर्यविष्ठः ।
यः पावकः पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन् ॥२॥
वि ते विष्वग्वातजूतासो अग्ने भामासः शुचे शुचयश्चरन्ति ।
तुविम्रक्षासो दिव्या नवग्वा वना वनन्ति धृषता रुजन्तः ॥३॥
ये ते शुक्रासः शुचयः शुचिष्मः क्षां वपन्ति विषितासो अश्वाः ।
अध भ्रमस्त उर्विया वि भाति यातयमानो अधि सानु पृश्नेः ॥४॥
अध जिह्वा पापतीति प्रवृष्णो गोषुयुधो नाशनिः सृजाना ।
शूरस्येत्र प्रसितिः क्षतिरग्नेर्दुर्वर्तुर्भीमो दयते वनानि ॥५॥
आ भानुना पार्थिवानि ज्रयांसि महस्तोदस्य धृषता ततन्थ ।
स बाधस्वाप भया सहोभिः स्पृधो वनुष्यन्वनुषो नि जूर्व ॥६॥

---

२ अग्नि श्वेतवर्ण, शब्दकारी, अन्तरिक्षमें वर्तमान, अजर और अत्यन्त शब्दकारी मरुतोंके साथ मिलित एवम् युवतम हैं। अग्नि पावक और सुमहान् हैं। वे असङ्ख्य स्थूल काष्ठोंको भक्षण करके अनुगमन करते हैं।

३ हे विशुद्ध अग्नि, तुम्हारी प्रदीप्त शिखाएँ पवन द्वारा सञ्चालित होकर बहुत काष्ठोंको भक्षण करती हैं और सर्वत्र व्याप्त होती हैं। प्रदीप्त अग्निसे सम्भूत नत्रोत्पन्न रश्मियाँ धर्षणकारी दीप्ति द्वारा वनोंको मज्जित करती हुई दग्ध करती हैं।

४ हे दीप्तिसम्पन्न अग्नि, तुम्हारी जो सम्पूर्ण शुभ्र रश्मियाँ पृथ्वीके केशस्थानीय ओषधियोंको दग्ध करती हैं, वे विमुक्त अश्वोंकी तरह इतस्ततः गमन करती हैं। तुम्हारी भ्रमणशील शिखाएँ विचित्र रूप पृथ्वीके ऊपर स्थित उन्नत प्रदेशपर आरोहण करके अभी विराजित होती हैं।

५ वर्षणकारी अग्निकी शिखाएँ बारम्बार निर्गत होती हैं। जैसे, धेनुओंके लिये युद्ध करने वाले इन्द्रके द्वारा प्रयुक्त वज्र बारम्बार निर्गत होता है। वीरोंके पौरुष (बन्धन) की तरह अग्निकी शिखा दुःसह, दुर्निवार है। भयङ्कर अग्नि वनोंको दग्ध करते हैं।

६ हे अग्नि, तुम प्रबल और उत्तेजक रश्मि द्वारा पृथ्वीके गन्तव्य स्थानोंको दीप्ति द्वारा आच्छन्न करो। तुम सम्पूर्ण विपत्तियोंको दूर करो एवम् अपने तेजःप्रभावसे स्पर्द्धा-कारियोंको अभिभूत करके शत्रुओंको विनष्ट करो।

स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम् ।
चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्र चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ॥७॥

७ सूक्त

वैश्वानर अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥१॥
नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सन्नवन्त ।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥२॥
त्वद्विप्रो जायते वाज्यग्ने त्वद्वीरासो अभिमातिषाहः ।
वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन्स्पृहयाय्याणि ॥३॥

---

७ हे विचित्र अद्भुत बल-सम्पन्न, आनन्द-दायक अग्नि, हमलोग आह्लादक स्तोत्रों द्वारा तुम्हारा स्तवन करते हैं । तुम अद्भुत, अत्यद्भुत, यशस्कर, अन्नप्रद, अन्नदायक और पुत्र-पौत्रादिसमन्वित विपुल ऐश्वर्य प्रदान करो ।

१ वैश्वानर अग्नि स्वर्गके शिरोभूत, भूमिमें गमन करनेवाले, यज्ञके लिये उत्पन्न, ज्ञानसम्पन्न, भली भाँतिसे राजमान, यजमानोंके अतिथिस्वरूप, मुखस्वरूप (अग्नि-लक्षण मुखसे ही देवगण भोजन करते हैं) और रक्षाविधायक हैं। देवों, स्तोताओं या ऋत्विकोंने अग्निको उत्पन्न किया है।

२ स्तोता लोग यज्ञके बन्धक, धनके स्थान और हव्यके आश्रयस्वरूप अग्निका, भली भाँतिसे, स्तवन करते हैं। देवगण यज्ञीय द्रव्योंके वहनकारी और यज्ञके केतुस्वरूप वैश्वानर अग्निको उत्पन्न करते हैं।

३ हे अग्नि, हवीरूप अन्नसे युक्त पुरुष तुम्हारे समीपसे ही ज्ञानवान् होता है । वीर लोग तुम्हारे समीपसे ही शत्रुओंको अभिभूत करनेवाले होते हैं । इसलिये हे दीप्तिशाली वैश्वानर, तुम हमलोगोंको वाञ्छित धन प्रदान करो ।

त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सन्नवन्ते ।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्वैश्वानर यत् पित्रोरदीदेः ॥४॥
वैश्वानर तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरादधर्ष ।
यज्जायमानः पित्रोरुपस्थेविन्दः केतुं वयुनेष्वह्नाम् ॥५॥
वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना ।
तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्द्धनि वयाइव रुरुहुः सप्त विस्रुहः ॥६॥
वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो वि दिवो रोचना कविः ।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथेदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता ॥७॥

* * *

४ हे अमरणाशील अग्नि, तुम पुत्रकी तरह अरणिद्वयसे उत्पन्न हुए हो । समस्त देवगण तुम्हारा स्तवन करते हैं । हे वैश्वानर, जब तुम पालक द्यावापृथिवीके मध्यमें दीप्यमान होते हो, तब यजमान लोग तुम्हारे यज्ञकार्य द्वारा अमरत्व लाभ करते हैं ।

५ हे वैश्वानर, तुम्हारे उन प्रसिद्ध महान् कर्मोंमें कोई भी बाधा उपस्थित नहीं कर सकता है । पितृ-मातृ-स्वरूप द्यावापृथवीके क्रोड़भूत अन्तरिक्ष-मार्गमें उत्पन्न होकर तुमने दिवसोंके प्रज्ञापक सूर्यको अन्तरिक्ष-पथमें संस्थापित किया है ।

६ वैश्वानरके वारिप्रज्ञापक तेज द्वारा द्युलोकके उन्नत स्थल (नक्षत्र आदि अथवा मेघ) निर्मित हुए हैं । वैश्वानरके शिरःस्थान (मेघ रूपमें परिणत धूम) में वारिराशि अवस्थान करती हैं एवं उससे सात नदियाँ शाखाकी तरह उद्भूत होती हैं ।[†] अर्थात् आहुति द्वारा सम्पूर्ण जगत् अग्निसे उत्पन्न होता है ।

७ शोभन कर्म करनेवाले जिन वैश्वानर अग्निने उदक अथवा लोकोंका निर्माण किया था, ज्ञान-सम्पन्न होकर जिन्होंने द्युलोकके दीप्तिमान् नक्षत्रोंको सृष्ट किया था और जिन्होंने समस्त भूत-जातको चतुर्दिक् प्राप्त किया था, वे अजेय, पालक और वारिरक्षक अग्नि विराजमान होते हैं ।

[†] यहाँ भी गङ्गा आदि सात नदियोंकी ओर सङ्केत है ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai

८ सूक्त

वैश्वानर अग्निदेवता । भरद्वाज ऋषि । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वोचं विदथा जातवेदसः ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ॥१॥
स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत ।
व्यन्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥२॥
व्यस्तभ्नाद्रोदसी मित्रो अद्भुतोऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः ।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम् ॥३॥
अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुपतस्थुर्ऋग्मियम् ।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः ॥४॥
युगेयुगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम् ।
पव्येव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा ॥५॥

१ हमलोग सर्वव्यापी, वारिवर्षक और दीप्तिमान् जातवेदाके बलके लिये इस यज्ञमें भली भाँतिसे स्तवन करते हैं। वैश्वानर अग्निके अभिमुख नवीन, निर्मल और शोभन स्तोत्र सोमरसकी तरह निर्गत होता है।

२ सत्कर्मपालक वैश्वानर उत्कृष्ट आकाशमें जायमान होकर लौकिक तथा वैदिक दोनों कर्मोंकी रक्षा करते हैं और अन्तरिक्षका परिमाण करते हैं। शोभन कर्म करनेवाले वैश्वानर अपने तेजोंसे द्युलोकका स्पर्शन करते हैं।

३ सबके मित्रभूत और महान् आश्चर्यभूत वैश्वानरने द्यावापृथिवीको अपने-अपने स्थानपर विशेष रूपसे स्तम्भित किया है। तेज द्वारा उन्होंने अन्धकारको अन्तर्हित किया है। आधारभूत द्यावा-पृथिवीको उन्होंने पशुचर्मकी तरह विस्तृत किया है। वैश्वानर अग्नि समस्त वीर्य धारण करते हैं।

४ महान् मरुतोंने अन्तरिक्षके मध्यमें अग्निको धारण किया था और मनुष्योंने पूजनीय स्वामी कहकर इनकी स्तुति की थी। देवोंके दूत या वेगवान् मातरिश्वा (वायु) दूर देशस्थित सूर्यमण्डलसे वैश्वानर अग्निको इस लोकमें लाये हैं।

५ हे अग्नि, तुम यागयोग्य हो। तुम्हारे उद्देशसे जो नवीन स्तोत्रका उच्चारण करते हैं, उन्हें तुम धन और यशस्वी पुत्र प्रदान करो। हे जरारहित और हे राजमान अग्नि, तुम अपने तेज द्वारा शत्रुको उसी प्रकार निपातित करो, जैसे वज्र वृक्षको निपातित करता है।

अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः ॥६॥
अदब्धेभिस्तव गोपाभिरिष्टेस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन् ।
रक्षा च नो ददुषां शर्धो अग्ने वैश्वानर प्र च तारीः स्तवानः ॥७॥

६ सूक्त

वैश्वानर अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि त्रिष्टुप् छन्द ।

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तते रजसी वेद्याभिः ।
वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि ॥१॥
नाहं तन्तुं न वि जानात्योतुं न यं वयन्ति समरेतमानाः
कस्य स्वित् पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥२॥

६ हे अग्नि, हमलोग हविर्लक्षण धनसे युक्त हैं । हमें तुम अनपहार्य, अक्षय और सुवीर्य धन प्रदान करो । हे वैश्वानर अग्नि, हम तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर शत-सहस्र प्रकार अन्न लाभ करें ।

७ हे तीनों लोकोंमें वर्तमान यागार्ह अग्नि, किसीके द्वारा भी अहिंसित और रक्षाकारी बल द्वारा तुम हम स्तोताओंकी रक्षा करो । हे वैश्वानर अग्नि, तुम हम हव्यदाताओंके बलकी रक्षा करो । हमलोग तुम्हारा स्तवन करते हैं, तुम हमें प्रवर्द्धित करो ।

१ कृष्णवर्ण रात्रि और शुक्लवर्ण दिवस अपनी-अपनी ज्ञातव्य प्रवृत्ति द्वारा सम्पूर्ण जगत्को रञ्जित करके नियत परिवर्तित हाते हैं । वैश्वानर अग्नि राजाकी तरह प्रकाशित होकर दीप्ति द्वारा तमोनाश करते हैं ।

२ हम तन्तु (सुत्र) अथवा ओतु (तिरश्चीन सूत्र) नहीं जानते हैं एवम् सतत चेष्टा द्वारा जो वस्त्र वयन किया जाता है, वह भी हमें कुछ अवगत नहीं है । इस लोकमें अवस्थित पिता द्वारा उपदिष्ट होकर किसका पुत्र अन्य जगत्के वक्तव्य वाक्योंको बोलनेमें समर्थ होता है ? *

---

* तन्तु=गायत्री आदि छन्द, ओतु=यजुः और अध्वर्यु, वस्त्र=यज्ञ; अथवा तन्तु=सूक्ष्म, ओतु=स्थूल, वस्त्र=प्रपञ्च । —सायण ।

स इत्तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति ।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन्परो अन्येन पश्यन् ॥३॥
अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोमर्त्यंस्तन्वा वर्द्धमानः ॥४॥
ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः ।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥५॥
वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।
वि मे मनश्चरति दूरआधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ॥६॥
विश्वे देवा अनमस्यन्भियानास्त्वामग्ने तमसि तस्थिवांसम् ।
वैश्वानरोऽवतूतये नोऽमर्त्योऽवतूतये नः ॥७॥

---

३ एक मात्र वैश्वानर ही तन्तु एवम् ओतुको जानते हैं। वे समय-समयपर वक्तव्योंको कहते हैं। वारिरक्षक और भूलोकमें सञ्चरण करनेवाले अग्नि अन्तरिक्षमें सूर्य रूपसे सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करते हुए इन परिदृश्यमान भूतोंको अवगत करते हैं।

४ ये वैश्वानर अग्नि आदि होता है। हे मनुष्यो, तुम लोग अग्निका भजन करो। अमरणशील अग्नि मरणशील शरीरमें जाठर रूपसे वर्तमान रहते हैं। निश्चल, सर्वव्यापी, अक्षय अग्नि शरीर, धारण-पूर्वक उत्पन्न और वर्द्धमान होते हैं।

५ मनकी अपेक्षा भी अतिशय वेगवान् (वैश्वानरकी) निश्चल ज्योति सुखके पथोंको प्रदर्शित करनेके लिये जङ्गम-जीवोंमें अन्तर्निहित रहती है। सम्पूर्ण देवगण एकमत और समान-प्रज्ञ होकर सम्मानके साथ, प्रधान कर्म-कर्ता वैश्वानरके अभिमुखवर्ती होते हैं।

६ तुम्हारे गुणको श्रवण करनेके लिये हमारे कर्णद्वय और तुम्हारे रूपको देखनेके लिये हमारे चक्षु धावित होते हैं। हृदय कमलमें जो ज्योति (बुद्धि) निहित है, वह भी तुम्हारे स्वरूपको अवगत करनेके लिये समुत्सुक होता है। दूरस्थ-विषयक चिन्तासे युक्त हमारा हृदय तुम्हारे अभिमुख धावित होता है। हम वैश्वानरके किस प्रकारके स्वरूपका वर्णन करें। अथवा किस रूपमें उन्हें हृदयमें धारण करें।

७ हे वैश्वानर, सम्पूर्ण देवगण तुम्हें नमस्कार करते हैं। तुम अन्धकारमें अवस्थित हो। वैश्वानर अपनी रक्षा द्वारा हम लोगोंकी रक्षा करें। अमर अग्नि अपनी रक्षा द्वारा हम लोगोंका रक्षा करें।

१० सूक्त

अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । विराट् और त्रिष्टुप् छन्द ।

पुरो वो मन्द्रं दिव्यं सुवृक्तिं प्रयति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम् ।
पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः ॥१॥
तमु द्युमः पुर्वणीक होतरग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः
स्तोमं यमस्मै ममतेव शूषं घृतं न शुचि मतयः पवन्ते ॥२॥
पीपाय सः श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः ।
चित्राभिस्तमूतिभिश्चित्रशोचिर्व्रजस्य साता गोमतो दधाति ॥३॥
आ यः पप्रौ जायमान उर्वी दूरेदृशा भासा कृष्णाध्वा ।
अध बहु चित्तम ऊर्म्यायास्तिरः शोचिषा ददृशे पावकः ॥४॥
नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवद्भ्यश्च धेहि ।
ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान्त्सुवीर्येभिश्चाभि सन्ति जनान् ॥५॥

१ हे यजमानो, तुमलोग इस प्रवर्तमान, विघ्न-रहित यज्ञमें स्तवनीय, स्वर्गोद्भव और सब प्रकारसे दोष-विवर्जित अग्नि को, स्तोत्र द्वारा, सम्मुखमें स्थापित करो; क्योंकि जातवेदा यज्ञमें हमलोगों-का समृद्धि-विधान करते है ।

२ हे दीप्तिमान, बहुज्वाला-विशिष्ट, देवोंके अह्वानकर्ता अग्नि, अपने अवयवभूत अन्य अग्नियोंके साथ समिद्धमान होकर तुम मनुष्य स्तोताके इस स्तोत्रका श्रवण करो। स्तोता लोग ममता की * तरह अग्निके उद्देश्यसे मनोहर स्तोत्रको घृतकी तरह अर्पित करते हैं ।

३ जो यजमान स्तोत्रके साथ अग्निमें हव्य प्रदान करता है, वह मनुष्योंके मध्यमें अग्नि द्वारा समृद्धि लाभ करता है। विचित्र दीप्तिवाले अग्नि, विचित्र या आश्चर्यभूत रक्षाके द्वारा उस यजमानको गोयुक्त गोष्ठके भोगका अधिकारी बनाते हैं ।

४ प्रादुर्भूत होकर कृष्णवर्त्मा अग्निने दूरसे ही दृश्यमान दीप्ति द्वारा विस्तीर्ण द्यावापृथिवीको पूर्ण किया है। वह पावक अग्नि रात्रिके सघन अन्धकारको अपनी दीप्ति द्वारा नष्ट करते हैं और परिदृश्यमान होते हैं।

५ हे अग्नि, हमलोग हविर्लक्षण धनसे युक्त हैं । हमें तुम शीघ्र ही बहुत अन्न और रक्षाके साथ विचित्र धन प्रदान करो । धन, अन्न और उत्कृष्ट वीर्य द्वारा अन्य मनुष्योंको जो पराजित कर सके ऐसा पुत्र हमें प्रदान करो ।

---

* ममता दीर्घतमाकी माता थी। दीर्घतमाका उल्लेख तृतीय अष्टकमें हो चुका है।

इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन्यंत आसानो जुहुते हविष्मान् ।
भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिमवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ ॥६॥
वि द्वेषांसीनुहि वर्द्धयेड़ां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥७॥

११ सूक्त

अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । तृिष्टुप् छन्द ।

यजस्व होतरिषितो यजीयानग्ने बाधो मरुतां न प्रयुक्ति ।
आ नो मित्राबरुणा नासत्या द्यावा होत्राय पृथिवी ववृत्याः ॥१॥
त्वं होता मन्द्रतमो नो अध्रुगन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु ।
पावकया जुह्वा वह्निरासाग्ने यजस्व तन्वं तव स्वाम् ॥२॥

६ हे अग्नि, बैठकर जो हव्ययुक्त यजमान तुम्हारे लिये हवन करता है, तुम हव्याभिलाषी होकर उस यज्ञ-साधन अन्नको स्वीकार करो। भरद्वाज-वंशीयोंके निर्दोष स्तोत्रको ग्रहण करो। उनके प्रति अनुग्रह करो, जिससे वे नाना प्रकारका अन्न प्राप्त कर सकें।

७ हे अग्नि, शत्रुओंको विलीन करो। हम लोगोंके अन्नको वर्द्धित करो। हमलोग शोभन पुत्र पौत्रादिसे युक्त होकर शत हेमन्त पर्यन्त सुख भोग कर सकें। *

१ हे देवोंके आह्वानकारी तथा यजन करनेवालोंमें श्रेष्ठ, हमलोग तुम्हारी प्रार्थना करते हैं। तुम अभी हमलोगोंके इस आरब्ध यज्ञमें शत्रुबाधक मरुतोंका यजन करो। तुम मित्र, बरुण, नासत्यद्वय और द्यावापृथवीको हमारे यज्ञके लिये लाओ।

२ हे अग्नि, तुम अतिशय स्तवनीय, हम लोगोंके प्रति द्रोह-रहित और दानादि गुणसे युक्त हो। हे अग्नि, तुम हव्य वहन करनेवाले हो। तुम शुद्धि-विधायक और देवोंके मुखस्वरूप ज्वालाके द्वारा अपने शरीरका यजन करो।

---

* पहले हेमन्त ऋतुसे ही संवत्सर आरम्भ होता था। ऋग्वेदके अनुसार मनुष्योंकी परमायु सौ वर्षोंकी ही है।

धन्या चिद्धि त्वे धिषणा वष्टि प्र देवाञ्जन्म गृणते यजध्यै ।
वेपिष्ठो अङ्गिरसां यद्ध विप्रो मधुच्छन्दो भनति रेभ इष्टौ ॥३॥
अदिद्युतत्स्वपाको विभावाग्ने यजस्व रोदसी उरूची ।
आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः ॥४॥
वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्नावयामि स्रुग्घृतवती सुवृक्तिः ।
अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः ॥५॥
दशस्या नः पुर्वणोक होतर्देवेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।
रायः सूनो सहसो वावसाना अति स्रसेम वृजनं नांहः ॥६॥

---

३ हे अग्नि, धनाभिलाषिणी स्तुति तुम्हारी कामना करती है; क्योंकि तुम्हारे प्रादुर्भावसे इन्द्रादि देवोंके यजनमें यजमान समर्थ होते हैं। ऋषियोंके मध्यमें अङ्गिरा स्तुतिके अतिशय प्रेरयिता हैं और मेधावी भरद्वाज यज्ञमें हर्षकारक स्तोत्रका उच्चारण करते हैं।

४ बुद्धिमान् और दीप्तिमान् अग्नि भली भाँतिसे शोभा पाते हैं। हे अग्नि, तुम विस्तृत द्यावा-पृथिवीका हव्य द्वारा पूजन करो। तुम शोभन हव्यसम्पन्न हो। मनुष्य यजमानकी तरह अग्निको, हवि देनेवाले ऋत्विक्-यजमान आदि हव्य द्वारा, तृप्त करते हैं।

५ जब अग्निके समीप हव्यके साथ कुश आनीत होता है एवम् दोषवर्जित घृतपूर्ण स्रुक् कुशके ऊपर रखा जाता है, तब भूमिके ऊपर अग्निके लिये आधारभूत वेदि रचित होती है। सूर्य जिस प्रकारसे तेजोराशिको समवेत करते हैं, उसी प्रकार यजमानका यज्ञकार्य समाश्रित होता है।

६ हे बहुज्वाला-विशिष्ट देवोंके आह्वानकर्ता अग्नि, तुम दीप्तिशाली अन्य अग्नियोंके साथ प्रदीप्त होकर हम लोगोंको धन प्रदान करो। हे बलपुत्र, हमलोग हवि द्वारा तुम्हें आच्छादित करते हैं। शत्रुतुल्य पापसे हमलोग मुक्त हों।

१२ सूक्त

अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो राडग्निस्तोदस्य रोदसी यजध्यै ।
अयं स सूनुः सहस ऋतावा दूरात्सूर्यो न शोचिषा ततान ॥१॥
आ यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन्त्सर्वतातेव नु द्यौः ।
त्रिषधस्थस्ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै ॥२॥
तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराट् तोदो अध्वन्न वृधसानो अद्यौत् ।
अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन्नमर्त्योवर्त्र ओषधीषु ॥३॥
सास्माकेभिरेतरी न शूषैरग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
द्र्वन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वोस्रः पितेव जारयायि यज्ञैः ॥४॥
अध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत्तक्षदनुयाति पृथ्वीम् ।
सद्यो यः स्पन्द्रो विषितो धवीयानृणो न तायुरति धन्वा राट् ॥५॥

---

१ देवोंके आह्वानकारी और यज्ञके अधिपति अग्नि द्यावापृथिवीका यजन करनेके लिये यजमानके गृहमें अवस्थित होते हैं। यज्ञ-सम्पन्न, बलपुत्र अग्नि दूरसे ही दीप्तिके द्वारा सम्पूर्ण जगत्को सूर्यकी तरह प्रकाशित करते हैं।

२ हे यागार्ह, दीप्तिसम्पन्न अग्नि, तुम बुद्धिसम्पन्न हो । सम्पूर्ण यजमान तुममें आग्रहपूर्वक प्रचुर हव्य समर्पण करते हैं । तुम त्रिभुवनमें अवस्थित होकर मनुष्यदत्त उत्कृष्ट हव्यको देवोंके निकट वहन करनेके लिये सूर्यकी तरह वेगशाली होओ ।

३ जिनकी सर्वव्यापिनी और अतिशय तेजस्विनी ज्वाला वनमें दीप्त होती है, वह प्रवृद्धमान अग्नि सूर्यकी तरह अन्तरिक्ष मार्गमें विराजमान होते हैं । सबके कल्याण-विधायक वायुकी तरह अक्षय और अनिवार्य अग्नि ओषधियोंके मध्यमें वेगपूर्वक गमन करते हैं और अपनी दीप्ति द्वारा सम्पूर्ण जगत्को प्रबुद्धमान करते हैं।

४ जातवेदा अग्नि याजकोंके सुखादायक स्तोत्रकी तरह हमलोगोंके स्तोत्र द्वारा हमारे यज्ञ-गृहमें स्तुत होते हैं । यजमान लोग द्रुमभोजी, अरण्याश्रयकारी और वत्सोंके पिता वृषभकी तरह क्षिप्रकर्म द्वारा अग्निका स्तवन करते हैं।

५ जब अग्नि अनायास ही वनोंको भस्म करके पृथ्वीके ऊपर विस्तृत होते हैं, तब स्तोता लोग इस लोकमें अग्निकी शिखाओंका स्तवन करते हैं। अप्रतिहत भावसे विचरण करनेवाले और चोरकी तरह द्रुतगमन करनेवाले अग्नि मरुभूमिके ऊपर विराजित होते हैं ।

स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।
वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६॥

* * *

१३ सूक्त

अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

त्वद्विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः ।
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपम् ॥१॥
त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः ।
अग्ने मित्रो न बृहत् ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः ॥२॥
स सत्पतिः शवसा हंति वृत्रमग्ने विप्रो वि पणेर्भर्ति वाजम् ।
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि ॥३॥

---

६ हे शीघ्र गमन करनेवाले अग्नि, तुम समस्त अग्नियोंके साथ प्रज्वलित होकर हमलोगोंकी निन्दासे रक्षा करो । तुम हम लोगोंको धन प्रदान करो । दुःखदायक शत्रु-सैन्यको दूर करो । हमलोग शोभन पुत्र-पौत्रसे युक्त होकर शत हेमन्त अर्थात् सौ वर्षपर्यंन्त सुख भोग करें ।

१ हे शोभन धनवाले अग्नि, विविध प्रकारके धन तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं । * जैसे वृक्षसे विविध प्रकारकी शाखाएँ उत्पन्न होती हैं । तुमसे पशुसमूह शीघ्र ही उत्पन्न होता है । संग्राममें शत्रुओंको जीतनेके लिये बल भी तुमसे ही उत्पन्न होता है । अन्तरिक्षकी वृष्टि तुमसे ही उत्पन्न होती है, अतएव तुम सबके स्तवनीय हो ।

२ हे अग्नि, तुम संभजनीय हो । तुम हमें रमणीय धन प्रदान करो । हे दर्शनीय-दीप्ति, तुम सर्वव्यापी वायुकी तरह सर्वत्र अवस्थिति करो । हे दीप्तिमान् अग्नि, तुम मित्रकी तरह प्रचुर यज्ञ और पर्याप्त वाञ्छित धन प्रदान करो ।

३ हे प्रकृष्ट ज्ञान-सम्पन्न और यज्ञके लिये समुद्भूत अग्नि, तुम वारिपुत्र वैद्युताग्निके साथ संगत होकर धनके लिये जिस व्यक्तिको प्रेरित करते हो, वह साधुओंका रक्षाकारी और बुद्धिमान् व्यक्ति बल द्वारा शत्रुओंका संहार करता है एवं पणिको शक्तिका अपहरण करता है ।

---

* सुवर्ण ही जब अग्निसे उत्पन्न हुआ है, तब सोनेके विनिमयसे कौनसी चीज नहीं खरीदी जा सकती ?

यस्ते सूनो सहसो गोभिंरुक्थैर्यज्ञैर्मर्तो निशितिं वेद्यानट् ।
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं पत्यते वसव्यैः ॥४॥
ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीराग्ने सूनो सहसः पुष्यसे धाः ।
कृणोषि यच्छवसा भूरि पश्वो वयो वृकायारये जसुरये: ॥५॥
वद्मा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजिनो दाः ।
विश्वाभिर्गीर्भिरभिपूर्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६॥

१४ सूक्त

अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । शक्करी और त्रिष्टुप् छन्द ।

अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः ।
भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे ॥१॥

---

४ हे बलपुत्र और द्योतमान अग्नि, जो यजमान स्तुति, उपासना और यज्ञ द्वारा यज्ञभूमिमें तुम्हारी तीक्ष्ण दीप्तिको आकृष्ट करता है; वह मनुष्य समस्त प्राचुर्य और धान्य धारण करता है एवं धन सम्पन्न होता है ।

५ हे बलपुत्र अग्नि, तुम हमलोगोंके पोषणार्थ, शत्रुओंसे लाकर, उत्कृष्ट पुत्रोंके साथ शोभन अन्न प्रदान करो । विद्वेषपूर्ण शत्रुओंसे बल द्वारा जो पशुसम्बन्धी दध्यादि अन्न तुम आहरण करते हो, वह प्रचुर परिमाणमें हमें प्रदान करो ।

६ हे बलपुत्र अग्नि, तुम बलशाली हो । तुम हमलोगोंके उपदेष्टा होओ । हमलोगोंको अन्नके साथ पुत्र और पौत्र प्रदान करो । हम स्तुतियोंके द्वारा पूर्णमनोरथ हों । हमलोग शोभन पुत्र-पौत्रों के साथ शत हमन्त अर्थात् सौ वर्ष पर्यन्त सुख भोग करें ।

---

१ जो मनुष्य स्तोत्रके साथ अग्निकी परिचर्या करता है और यागादि कार्य करता है, वह मनुष्योंके मध्यमें शीघ्र ही प्रधान होकर प्रकाशमान होता है । अपने पुत्र आदिकी रक्षाके लिये वह शत्रुओंके समीपसे प्रचुर अन्न प्राप्त करता है ।

अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः ।
अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः ॥२॥
नाना ह्यग्नेवसे स्पर्द्धन्ते रायो अर्यः ।
तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम् ॥३॥
अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम् ।
यस्य त्रसन्ति शवसः संचक्षि शत्रवो भिया ॥४॥
अग्निर्हि विद्मना निदो देवो मर्त मुरुष्यति ।
सहावा यस्यावृतो रयिर्वाजेष्ववृतः ॥५॥
अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता
तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥६॥

---

२ एक मात्र अग्नि ही प्रकृष्ट ज्ञानसे युक्त हैं और दूसरा कोई भी नहीं है । वे यज्ञकार्यके अतिशय निर्वाहक और सर्वद्रष्टा हैं । यजमानोंके पुत्र आदि (ऋत्विग्गण) यज्ञमें अग्निको देवोंके आह्वानकर्ता कहकर स्तवन करते हैं ।

३ हे अग्नि, शत्रुओंका धन उनके निकटसे पृथक् होकर तुम्हारे स्तोताओंकी रक्षा करनेके लिये परस्पर स्पर्द्धा करते हैं । शत्रु विजयी तुम्हारे स्तोता लोग तुम्हारा यज्ञ करके व्रतविरोधियोंको पराभूत करनेकी इच्छा करते हैं ।

४ अग्नि स्तोताओंको सुन्दर कार्य करनेवाला, शत्रुविजयी और साधुजनोचित कार्योंका पालन करनेवाला पुत्र प्रदान करते हैं, जिसे देखकर ही शत्रुगण उसके बलसे भीत होकर कम्पित होने लगते हैं ।

५ जिस मनुष्यका हव्य रूप धन यज्ञमें राक्षसोंके द्वारा अनावृत (निर्विघ्न) होता है और अन्यान्य यजमानोंके द्वारा असंभक्त होता है, बलशाली और ज्ञानसम्पन्न अग्निदेव उस यजमानकी निन्दकोंसे रक्षा करते हैं ।

६ हे अनुकूल दीप्तिवाले, दानादिगुणयुक्त और द्यावापृथिवीमें वर्तमान अग्निदेव, तुम देवोंके निकट हमलोगोंकी स्तुतिका उच्चारण करो । हम स्तोताओंको शोभन निवास युक्त सुखमें ले जाओ । हमलोग शत्रुओं, पापों और कष्टोंका अतिक्रमण करें । हमलोग जन्मान्तरमें कृत पापोंसे मुक्त हों । हे अग्नि, हम तुम्हारी रक्षाके द्वारा शत्रुओंसे उद्धार पावें

१५ सूक्त

अग्नि देवता। अङ्गिराके पुत्र वीतहव्य अथवा भरद्वाज जगती, शक्करी, अतिशक्करी, अनुष्टुप् वृहती
और त्रिष्टुप् छन्द।

इममू षु वो अतिथिमुषर्बुधं विश्वासां विशां पतिमृञ्जसे गिरा।
वेतीद्दिवो जनुषा कच्चिदा शुचिर्ज्योक्चिदत्ति गर्भो यद्च्युतम् ॥१॥
मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वनस्पतावीड्यमूर्द्ध्वशोचिषम्।
स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे ॥२॥
स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः।
रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय
सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः ॥३॥
द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरमग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम्।
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर्हव्यवाहमरतिं देव मृञ्जसे ॥४॥

---

१ हे वीतहव्य अथवा भरद्वाज ऋषि, तुम उषाकालमें प्रबुद्ध, लोकरक्षक और जन्मसे ही अथवा स्वभावसे हो शुद्ध या निर्मल अतिथि रूप अग्निको प्रसन्न करो। अग्नि सब समयमें द्युलोकसे अवतीर्ण होते हैं और अक्षय हव्य भक्षण करते है।

२ हे अद्‌भुत् अग्नि, तुम अरणिके मध्यमें निहित, स्तवा हैं और ऊर्द्ध्व ज्वालावाले हो। तुम्हें भृगुलोग (महर्षि) गृहमें सखाकी तरह स्थापित करते हैं। वीतहव्य अथवा भरद्वाज प्रतिदिन उत्कृष्ट स्तोत्र द्वारा तुम्हारी पूजा करते हैं। तुम उनके प्रति प्रसन्न होओ।

३ हे अग्नि, जो यागादिके अनुष्ठानमें निपुण हैं, उसे तुम समृद्ध बनाते हो और दूरस्थ, तथा समीपस्थ शत्रुसे उसकी रक्षा करते हो। हे महान् अग्नि तुम मनुष्योंके मध्यमें भरद्वाजको धन और गृह प्रदान करो।

४ हे वीतहव्य, तुम शोभन स्तुतिद्वारा हव्यवाहक, दिप्तिमान्, अथिथिवत् पूजनीय; स्वर्गप्रदर्शक मनुके यज्ञमें देवोंका आह्वान करने वाले यज्ञसम्पादक, मेधावी और ओजस्वी वक्ता अग्नि देवको प्रसन्न करो।

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रु रुच उषसो न भानुना ।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ॥५॥
अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्यत प्रियं प्रियं वो अतिथिं गृणीषणि ।
उप वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि
वार्यं देवो देवेषु वनते हि नो वः ॥६॥
समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥७॥
त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥८॥
विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥९॥

५ जैसे उषा प्रकाशसे शोभित होती है, वैसे ही जो पृथिवीके ऊपर पवित्रताकारक और चेतनाविधायक दीप्तिके द्वारा विराजित होते हैं, जो संग्राममें शत्रुसंहार-कारक वीरके सदृश एतश ऋषिकी सहायता करनेके लिये शीघ्र प्रदीप्त हुए थे और जो सर्वभक्षणशील तथा क्षयरहित हैं हे वीतहव्य, उन्हें तुम प्रसन्न करो।

६ हे हमारे स्तोताओ, अत्यन्त प्रिय और अतिथिकी तरह पूजनीय अग्निका इन्धन द्वारा तुम लोग निरन्तर पूजन करो। देवोंके मध्यमें दानादि गुणसम्पन्न अग्नि इन्धन ग्रहण करते हैं और हम लोगोंका पूजन ग्रहण करते हैं; इसलिये अविनश्वर अग्निके सम्मुख होकर स्तोत्र द्वारा उनकी पूजा करो।

७ हम समिधसे प्रदीप्त अग्निको, स्तुति द्वारा, प्रसन्न करते हैं। स्वतः शुद्ध, पवित्रता-विधायक और निश्चल अग्निको हम यज्ञमें स्थापित करते हैं। ज्ञान-सम्पन्न देवोंको बुलानेवाले, सबके द्वारा वरणीय, सदाशयसम्पन्न, सर्वदर्शी और सर्ण-भूतज्ञ अग्निका हम सुखकर स्तोत्रसे सम्भजन करते हैं अथवा अग्निके, निकट धनके लिये प्रार्थना करते हैं।

८ हे अग्नि, देवता और मनुष्य तुमको दूत बनाते हैं। तुम अमरणशील, प्रत्येक समयमें हव्य वहन करनेवाले, पालक और स्तवनीय हो। वे दोनों (वीतहव्य और भरद्वाज)जागरणशील, व्याप्त और प्रजाओंके पालक अग्निको, नमस्कार द्वारा अथवा हव्य द्वारा, स्थापित करते हैं।

९ हे अग्नि, तुम देवों और मनुष्योंको विशेष प्रकारसे अलङ्कृत करके और यज्ञमें देवोंका दूत होकरके द्यावापृथिवीमें सञ्चरण करते हो।* हम लोग शोभन स्तुति द्वारा और यज्ञ द्वारा तुम्हारा सम्भजन करते हैं; अतएव तुम त्रिभुवनर्ती होकर हमारे लिये सुखविधान करो।

---

* देवोंको बुलानेके लिये अग्नि द्युलोकमें सञ्चरण करते हैं और हवि ले जानेके लिये पृथिवीमें सञ्चरण करते हैं।

तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम ।
स यक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान् प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् ॥१०॥
तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम् ।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित् पृणक्षि शवसोत राया ॥११॥
त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥१२॥
अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः ।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा ॥१३॥
अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावकशोचे वेष्ट्वं हि यज्वा ।
ऋता यजासि महिना वि यद्भूर्हव्या वह यविष्ठ या ते अद्य ॥१४॥

---

१० हम अल्प बुद्धिवाले सर्वज्ञ, शोभनाङ्ग, मनोज्ञमूर्ति और गमनशील अग्निदेवका परिचरण करते हैं। ज्ञातव्य वस्तुओंको जाननेवाले अग्नि देवोंका यजन करें और देवोंके मध्यमें हमारे हव्यको प्रचारित करें।

११ हे शौर्यसम्पन्न अग्नि, तुम दूरदर्शी हो । जो पुरुष तुम्हारा स्तवन करता है, तुम उसकी रक्षा करते हो और उसका मनोरथ पूर्ण करते हो । जो यज्ञसम्पादन करता है और जो हव्य उत्क्षेप (प्रदान) करता है, उसको तुम बल और धनसे पूर्ण करते हो।

१२ हे अग्नि, तुम शत्रुओंसे हम लोगोंकी रक्षा करो । हे बलसम्पन्न अग्नि, तुम हम लोगोंको पापसे परित्राण करो । तुम्हारे समीप हमारे द्वारा प्रदत्त निर्दोष हव्य उपस्थित हो। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सहस्र प्रकारका धन हमारे समीप उपस्थित हो ।

१३ देवोंको बुलानेवाले, दीप्तिमान् अग्नि गृहके अधिपति और सर्वज्ञ हैं; अतएव वे सम्पूर्ण प्राणियोंको जानते हैं। जो अग्नि देवों और मनुष्योंके मध्यमें अतिशय यज्ञकारी हैं, वह सत्य-सम्पन्न अग्नि उत्तम रूपसे यज्ञ करें।

१४ हे यज्ञनिष्पादक और शोधक दीप्तिवाले अग्नि, इस समय जो यजमानका कर्तव्य है, उसकी तुम कामना करो। तुम देवोंका यजन करनेवाले हो, अतएव तुम यज्ञमें देवोंका यजन करो। हे युवतम अग्नि, तुम अपने माहात्म्यसे सर्वव्यापी हो। आज तुम्हारे लिये जो हव्य प्रदान करते हैं, उसे तुम स्वीकार करो।

अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो नि त्वा दधीत रोदसी यजध्यै ।
अवा नो मघवन्वाजसातावग्ने विश्वानि दुरिता तरेम
ता तरेम तवावसा तरेम ॥१५॥
अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम् ।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥१६॥
इममु त्यमथर्ववदग्निं मन्थन्ति वेधसः ।
यमङ्कूयन्तमानयन्नमूरं श्याव्याभ्यः ॥१७॥
जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये ।
आ देवान्वक्ष्यमृताँ ऋतावृधो यज्ञं देवेषु पिस्पृशः ॥१८॥
वयमु त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम् ।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशाधि ॥१९॥

---

१५ हे अग्नि, वेदीके ऊपर यथाविधि स्थापित हव्यको देखो । यजमानने तुम्हें द्यावापृथिवीमें यज्ञके लिये स्थापित किया है। हे ऐश्वर्यसम्पन्न अग्नि, तुम संग्राममें हम लोगोंकी रक्षा करो, जिससे हम समस्त पापसे परित्राण पावें ।

१६ हे शोभन शिखासम्पन्न अग्नि, तुम समस्त देवोंके सहित सर्वाग्रगण्य होकर ऊर्णा (कम्बल) युक्त, कुलायसदृश और घृतसंयुक्त उत्तर वेदीपर अवस्थान करो । हव्यदाता यजमानके यज्ञको समुचित रूपसे देवोंके निकट ले जाओ ।

१७ कर्मका विधान करनेवाले ऋत्विक् लोग अथर्वा ऋषिकी तरह अग्निका मन्थन करते थे। देव-तासे निर्गत होकर इतस्ततः पलायमान और बुद्धिमान् अग्निको रात्रिके अन्धकारोंसे आनयन करते थे।

१८ हे अग्नि, देवाभिलाषी यजमानके कल्याणको अविनश्वर करनेके लिये तुम यज्ञमें मथ्य मान होकर प्रादुर्भूत होओ । यज्ञवर्द्धक और अमरणशील देवोंका आनयन करो। अनन्तर, देवोंके निकट हमारे यज्ञको पहुँचा दो ।

१९ हे यज्ञपालक अग्नि, प्राणियोंके मध्यमें हम लोग ही तुम्हें इन्धन द्वारा महान् बनाते हैं। अतएव हम लोगोंके गार्हपत्य अग्नि पुत्र, पशु और धनादि द्वारा सम्पूर्णता लाभ करें। तीक्ष्ण तेज द्वारा तुम हम लोगोंको योजित करो ।

१६ सूक्त

२ अनुवाक । अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । गायत्री, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द ।

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ।
देवेभिर्मानुषे जने ॥१॥
स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजामहः ।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥२॥
वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा ।
अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥३॥
त्वामीळे अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम् ।
ईजे यज्ञेषु यज्ञियम् ॥४॥
त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते ।
भरद्वाजाय दाशुषे ॥५॥

---

१ हे अग्नि, तुम सम्पूर्ण यज्ञके होमनिष्पादक हो अथवा देवोंके अह्वानकर्ता हो। तुम मनुसम्बन्धी मनुष्यके यज्ञमें देवों द्वारा होतृकार्यमें नियुक्त हो ।

२ हे अग्नि, तुम हमलोगोंके यज्ञमें मदकारक ज्वाला द्वारा महान् देवोंका यजन करो। इन्द्रादि देवोंका आनयन करो और उन्हें हव्य प्रदान करो ।

१ हे विधाता, हे शोभन कर्म करनेवाले दानादि गुणविशिष्ट अग्नि, तुम दर्शपूर्णमासादि यज्ञमें महान् और क्षुद्र मार्गोंको वेग द्वारा जानते हो; अतः यज्ञमार्गसे भ्रष्ट यजमानको पुनः सन्मार्गाधिरूढ़ करो ।

४ हे अग्नि, दुष्यन्ततनय भरत हव्यदाता ऋत्विकोंके साथ सुखके उद्देश्यसे तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुमसे इष्टकी प्राप्ति और अनिष्टका निवारण होता है। स्तवनके उपरान्त तुम्हारा यजन करते हैं। तुम यागयोग्य हो ।

५ हे अग्नि, सोमाभिषवकारी राजा दिवोदासको तुमने जिस प्रकारसे बहुविध रमणीय धन प्रदान किया था, उसी प्रकारसे हव्य प्रदान करनेवाले भरद्वाज ऋषिको बहुविध रमणीय धन प्रदान करो ।

त्वं दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्यं जनम् ।
शृण्वन्विप्रस्य सुष्टुतिम् ॥६॥
त्वामग्ने स्वाध्यो मर्तासो देववीतये ।
यज्ञेषु देवमीड़ते ॥७॥
तव प्र यक्षि सद्दशमुत क्रतुं सुदानवः
विश्वे जुषन्त कामिनः ॥८॥
त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः ।
अग्ने यक्षि दिवो विशः ॥ ९ ॥
अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१०॥
तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि ।
बृहच्छोचा यविष्ठय ॥११॥

६ हे अग्नि, तुम अमरणशील और दूत हो। मेधावी भरद्वाज ऋषिकी शोभन स्तुति श्रवण कर तुम हमारे यज्ञमें देवोंको ले आओ।

७ हे द्योतमान अग्नि, सुन्दर चिन्ता करनेवाले मनुष्य देवोंको तृप्त करनेके लिये यज्ञमें तुम्हारा स्तवन करते हैं अथवा तुमसे याचना करते हैं।

८ हे अग्नि, हम तुम्हारे दर्शनीय तेजका पूजन भली-भाँतिसे करते हैं और तुम्हारे शोभन दानशील कार्यका भी पूजन करते हैं। अकेले हम ही नहीं; किन्तु दूसरे यजमान लोग भी तुम्हारे अनुग्रहसे सफलाभिलाष होकर तुम्हारे यज्ञ या कार्यका सेवन करते हैं।

९ हे अग्नि, होतृकार्यमें मनुने तुम्हें नियुक्त किया है। तुम ज्वाला रूप मुख द्वारा हव्य वहन करनेवाले और अतिशय विद्वान् हो। तुम द्युलोक-सम्बन्धिनी प्रजाओं (देवों)का यजन करो।

१० हे अग्नि, तुम हव्य भक्षण करनेके लिये आगमन करो और देवोंके समीप हव्य वहन करनेके लिये, स्तुति-भाजन होकर होता रूपसे कुशके ऊपर उपवेशन करो।

११ हे अङ्गार रूप अग्नि, हमलोग काष्ठ और आज्य द्वारा तुम्हें प्रवर्द्धित करते हैं; इसलिये हे युवतम अग्नि, तुम अत्यन्त दीप्तिमान् होओ।

स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि ।
बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥१२॥
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत ।
मूर्द्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥१३॥
तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः ।
वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥ १४ ॥
तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् ।
धनञ्जयं रणेरणे ॥ १५ ॥
एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः ।
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ १६ ॥
यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् ।
तत्रा सदः कृणवसे ॥ १७ ॥

१२ हे द्योतमान अग्नि, तुम हमलोगोंको विस्तीर्ण, प्रशंसनीय और महान् धन प्रदान करो।

१३ हे अग्नि. मस्तककी भाँति संसारके धारक पुष्करपत्रके ऊपर अरणिद्वयके मध्यसे तुम्हें अथर्वा ऋषिने उत्पन्न किया है। *

१४ हे अग्नि, अथर्वाके पुत्र दध्यङ् ऋषिने तुम्हें समुज्ज्वालित किया था। तुम आवरणकारी शत्रुओंके हननकर्ता और असुरोंके नगर विनाशक हो।

१५ हे अग्नि, पाथ्य वृषा नामक किसी ऋषिने तुम्हें समुद्दीपित किया है। तुम दस्युहन्ता और प्रत्येक युद्धमें धनके जेता हो।

१६ हे अग्नि, तुम यहाँ आगमन करो; क्योंकि हम तुम्हारे लिये जिस प्रकारका स्तोत्र उच्चारित करते हैं, उसे तुम श्रवण करो। यहाँ आकर तुम इन सोमरसों द्वारा वर्द्धमान होओ।

१७ हे अग्नि, तुम्हारा अनुग्रहात्मक अन्तःकरण जिस देशमें और जिस यजमानमें वर्तमान होता है, वह श्रेष्ठ बल और अन्न धारण करता है। तुम उसी यजमानमें अपना स्थान बनाते हो।

---

* प्रजापतिके द्वारा पद्मपत्रके ऊपर संसारकी सृष्टि हुई है। यही शास्त्रीय कथा सायणके भाष्यमें दृष्ट होती हैं।

नहि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां वसो ।
अथा दुवो वनवसे ॥ १८ ॥
आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः ।
दिवोदासस्य सत्पतिः ॥ १९ ॥
स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं द दाशन्महित्वना ।
वन्वन्नवातो अस्तृतः ॥ २० ॥
स प्रत्नवन्नवीयसाग्ने द्युम्नेन संयता ।
बृहत्ततन्थ भानुना ॥ २१ ॥
प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
अर्च गाय च वेधसे ॥ २२॥
स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः ।
दूतश्च हव्यवाहनः ॥२३॥

---

१८ हे अग्नि, तुम्हारा दीप्तिपुञ्ज नेत्र-विघातक नहीं हो, वह सदा हमें दर्शनसमर्थ बनावे। हे कतिपय यजमानोंके गृहप्रदाता, तुम हम यजमानोंके द्वारा विहित परिचरणको ग्रहण करो।

१९ स्तुतियोंके द्वारा हमलोग अग्निका अभिगमन करते हैं। अग्नि हविके स्वामी, दिवोदास राजाके शत्रुओंको विनष्ट करनेवाले, सर्वज्ञ और यजमानोंके पालक हैं।

२० अग्नि अपनी महिमाके द्वारा हमलोगोंको सम्पूर्ण पार्थिव धन (भूतजात) प्रचुर परिणाममें प्रदान करें। अग्नि अपने तेजसे शत्रुओं या काष्ठोंके विनाशक, शत्रुओंके द्वारा अजेय और किसीके भी द्वारा अहिंसित हैं।

२१ हे अग्नि, तुम प्राचीनवत् नवीन दीप्ति द्वारा इस विस्तीर्ण अन्तरिक्षको विस्तारित करते हो।

२२ हे मित्रभूत ऋत्विग्गण, तुम लोग शत्रुहन्ता और विधातास्वरूप अग्निका स्तोत्र गान करो एवम् यज्ञसाधन हव्य प्रदान करो।

२३ वह अग्नि हमारे यज्ञमें कुशोंके ऊपर उपवेशन करें, जो अग्नि देवोंके आह्वाता, अतिशय बुद्धिमान्, मनुष्यसम्बन्धी यज्ञकालमें देवोंके दूत और हव्यके वाहक हैं।

ता राजाना शुचिव्रतादित्यान्मारुतं गणम् ।
वसो यक्षीह रोदसी ॥२४॥
वस्वी ते अग्ने सन्दृष्टिरिषयते मर्त्याय ।
ऊर्जो नपादमृतस्य ॥२५॥
क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः ।
मर्त आनाश सुवृक्तिम् ॥२६॥
ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः ।
तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अरातीः ॥२७॥
अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वन्यत्रिणम् ।
अग्निर्नो वनते रयिम् ॥२८॥
सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे ।
जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥२९॥

२४ हे गृहप्रदाता अग्नि, तुम इस यज्ञमें प्रसिद्ध, राजमान, सुन्दर कर्म करनेवाले मित्रावरुण, अदिति पुत्र, मरुद्गण और द्यावापृथिवीका यजन करो ।

२५ हे बलपुत्र अग्नि, तुम मरणरहित हो । तुम्हारी प्रशस्त दीप्ति मनुष्य यजमानोंको अन्न प्रदान करती हैं ।

२६ हे अग्नि, आज हवि देनेवाले यजमान परिचरण कर्म द्वारा तुम्हारा संभजन करके अतिशय प्रशंसनीय और शोभन धनवाले हों । वह मनुष्य तुम्हारी स्तुतिका सर्वदा स्तोता हो ।

२७ हे अग्नि, तुम्हारे स्तोता लोग तुम्हारे द्वारा रक्षित होते हैं, वे सब अभिलाषी होकर सम्पूर्ण आयु और अन्न प्राप्त करते हैं । वे आक्रमणकारी शत्रुओंको पराजित और विनष्ट करते हैं ।

२८ अग्नि अपने तीक्ष्ण तेजके द्वारा सब वस्तुओंके भोजन-कर्ता, राक्षसोंके संहारकर्ता और हम लोगोंके धन-प्रदाता है ।

२९ हे जातवेदा अग्नि, तुम शोभन पुत्र-पौत्रादिसे युक्त धन आहरण करो । हे शोभन कर्म करनेवाले तुम राक्षसोंका विनाश करो ।

त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः।
रक्षाणो ब्रह्मणस्कवे ॥३०॥
यो नो अग्ने दुरेव आ मर्त्तो बधाय दाशति ।
तस्मान्नः पह्यंहसः ॥३१॥
त्वं तं देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतम् ।
मर्तो यो नो जिघांसति ॥३२॥
भरद्वाजय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य ।
आग्ने वरेण्यं वसु ॥३३॥
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया ।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥३४॥
गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे ।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥३५॥

---

३० हे जातवेदा, तुम पापसे हमलोगोंको रक्षा करो । हे स्तुतिरूपमन्त्रोंके कर्ता * अग्नि, तुम विद्वेषकारियोंसे हमारी रक्षा करो ।

३१ हे अग्नि, जो मनुष्य दुष्ट अभिप्रायसे हमलोगोंको मारनेके लिये आयुध प्रदर्शित करता है अर्थात् आयुध द्वारा हमारी हिंसा करता है, उस मनुष्यसे और पापसे तुम हमारी रक्षा करो ।

३२ हे द्योतमान अग्नि, जो मनुष्य हमलोगोंको मारनेकी इच्छा करता है, उस दुष्कर्मकारी मनुष्यको तुम ज्वाला द्वारा परिवाधित करो ।

३३ हे शत्रुओंको अभिभूत करनेवाले अग्नि, तुम हमें अर्थात् भरद्वाज ऋषिको विस्तीर्ण (विपुल) सुख अथवा गृह प्रदान करो और वरणीय धन भी दो ।

३४ भली भाँतिसे दीप्त; अतएव शुक्लवर्ण और हवि द्वारा आहुत अग्नि स्तुतिसे स्तूयमान होकर हविकी इच्छा करते हैं । अग्नि शत्रुओंका अथवा अन्धकारका विनाश करें।

३५ माता पृथ्वीकी गर्भस्थानीय और क्षरणरहित वेदीपर अग्नि विद्योतमान होते हैं और हवि द्वारा द्युलोकके पालक अग्नि यज्ञकी उत्तर वेदीपर उपविष्ट होकर शत्रुओंका विनाश करते हैं ।

---

* मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतं । मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम् ॥

ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे ।
अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥३६॥
उप त्वा रण्वसन्दृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत ।
अग्ने ससृज्महे गिरः ॥३७॥
उप छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् ।
अग्ने हिरण्यसन्दृशः ॥३८॥
य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः ।
अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥३९॥
आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति ।
विशामग्निं स्वध्वरम् ॥४०॥

३६ हे सर्वदर्शी जातवेदा, तुम पुत्र-पौत्रोंके साथ उस अन्नका आनयन करो, जो अन्न द्युलोकमें देवोंके मध्यमें प्रशस्त अन्न होकर शोभमान हो ।

३७ हे बल द्वारा उत्पाद्यमान अग्नि, तुम्हारा दर्शन अत्यन्त रमणीय है । हवीरूप अन्न लेकर हम लोग तुम्हारे समीप स्तोत्रोंका उच्चारण करते हैं ।

३८ हे अग्नि, तुम्हारा तेज सुवर्णकी तरह रोचमान है और तुम दीप्तिसम्पन्न हो। हम लोग तुम्हारी शरणमें उसी तरह प्राप्त होते हैं, जैसे कि घर्मार्त्त पुरुष छायाका आश्रय ग्रहण करता है ।

३९ अग्नि प्रचण्ड बलशाली धानुष्ककी तरह बाणों द्वारा शत्रुओंके हन्ता हैं और तीक्ष्ण-शृङ्ग वृषभकी तरह हैं । हे अग्नि तुमने त्रिपुरासुरके तीनों पुरोंको भग्न किया है।❀

४० अध्वर्यु लोग अरणिमन्थनसे उत्पन्न जिस सद्योजात अग्निको पुत्रकी तरह हाथमें यानी अभिमुख धारण करते हैं, उस हव्य-भक्षक और मनुष्योंके शोभन यज्ञके निष्पादक अग्निका हे ऋत्विक्गण तुमलोग परिचरण करो ।

❀ रुद्र और अग्निमें कोई भेद नहीं है । यद्यपि त्रिपुर-दहन महादेव द्वारा हुआ है; तथापि वह अग्निकृत ही कहलाता है । अथवा त्रिपुर-दहन करनेवाले बाणमें अग्नि वर्तमान थे; अतः वह अग्निजन्य कार्य हुआ ।—सायण ।

प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् ।
आ स्वे योनौ नि षीदतु ॥४१॥
आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् ।
स्योन आ गृहपतिम् ॥४२॥
अग्ने युद्क्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।
अरं वहन्ति मन्यवे ॥४३॥
अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये ।
आ देवान्त्सोमपीतये ॥४४॥
उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् ।
शोचा वि भाह्यजर ॥४५॥
वीती यो देवं मर्तो दुवस्येदग्निमीलीताध्वरे हविष्मान् ।
होतारं सत्ययजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत् ॥४६॥

---

४१ हे अध्वर्युगण, तुमलोग देवोंके भक्षणार्थ आहवनीय अग्निमें प्रक्षेप करो। अग्नि द्योतमान और धनोंके ज्ञाता है। अग्नि अपने आहवनीय स्थानमें उपवेशन करें।

४२ हे अध्वर्युओ, प्रादुर्भूत, अतिथिकी तरह प्रिय और गृहस्वामी अग्निको ज्ञानप्रदायक और सुखकर आहवनीय अग्निमें संस्थापित करो।

४३ हे द्योतमान अग्नि, तुम उन समस्त सुशील अश्वोंको अपने रथमें युक्त करो, जो तुम्हें यज्ञके प्रति पर्याप्त रूपसे वहन करते हैं।

४४ हे अग्नि, तुम हमारे अभिमुख आगमन करो। हव्य-भोजन और सोमपान करनेके लिये तुम देवोंका आनयन करो।

४५ हे हव्यवाहक अग्नि, तुम अत्यन्त ऊदुर्ध्व तेज होकर दीप्यमान होओ। हे जरारहित अग्नि, तुम अजस्र द्योतमान तेजसे प्रकाशित होओ। तुम पहले उद्दीप्त होओ और पश्चात् अपने तेजसे सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करो।

४६ हविसे युक्त जो यजमान हविर्लक्षण अन्न द्वारा जिस किसी देवताकी परिचर्या करता हैं, उस यज्ञमें भी अग्नि स्तुत होते हैं अर्थात् अग्निकी पूजा सब यज्ञोंमें होती है। अग्नि द्यावापृथिवीमें वर्तमान देवोंके आह्वानकर्ता और सत्य रूप हवि द्वारा यष्टव्य है। यजमान लोग बद्धाञ्जलि होकर नमस्कार-पूर्वक ऐसे अग्निको परिचर्या करें।

आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि ।
ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत ॥४७॥
अग्निं देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तमम् ।
येना वसून्याभृता तृह्ला रक्षांसि वाजिना ॥४८॥

४७ हे अग्नि, हम तुम्हें संस्कृत ऋक् रूप हव्य प्रदान करते हैं। अर्थात् ऋचाको ही हव्य बनाकर प्रदान करते हैं। ऋक् स्वरूप वह हवि तुम्हारे भक्षणके लिये सेचनसमर्थ वृषभ और गौ रूपमें परिणत हो।

४८ जिस बलवान् अग्निने यज्ञविरोधक राक्षसोंका संहार किया है, जिस अग्निने असुरोंके समीपसे धन आहरण किया है, उस वृत्रहन्ता प्रधान अग्निको देवगण उद्दीप्त करते हैं।

पञ्चम अध्याय समाप्त

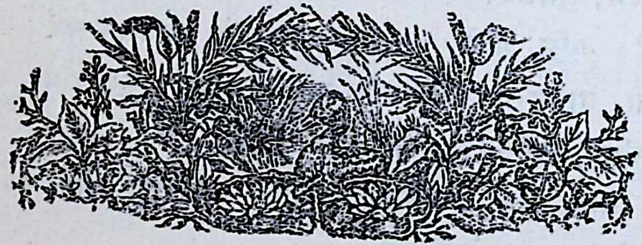

षष्ठ अध्याय

१७ सूक्त

इन्द्र देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् और द्विपदा त्रिष्टुप् छन्द ।

पिबा सोममभि यमुग्र तर्द ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र ।
वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभिः ॥१॥
स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो यः शिप्रवान्वृषभो यो मतीनाम् ।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्यो हरिष्ठाः स इन्द्र चित्राँ अभि तृन्धि वाजान् ॥२॥
एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभिगा इन्द्र तृन्धि ॥३॥
ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम् ।
महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम् ॥४॥

१ हे उद्यतायुध या प्रचण्ड बलशाली इन्द्र, अङ्गिराओं द्वारा स्तूयमान होकर तुमने सोमपान करनेके लिये पणियों द्वारा अपहृत गौओंको प्रकाशित किया था । तुम सोमपान करो । हे शत्रुओंके विनाशक वज्रधर इन्द्र, बलसे युक्त होकर तुमने सम्पूर्ण शत्रुओंका विनाश किया है।

२ हे रसविहीन सोमके पानकर्ता इन्द्र, तुम शत्रुओंसे त्राण करनेवाले, शोभन कपोलवाले और स्तोताओंकी कामनाके पूरक हो । तुम इस सोमरसका पान करो । हे इन्द्र, तुम वज्रधर, पर्वतों या मेघोंके विदारक और अश्वोंके संयोजक हो । तुम हम लोगोंके विचित्र अन्नको प्रकाशित करो ।

३ हे इन्द्र, तुमने जैसे प्राचीन सोमरस पान किया था, वैसे ही हमारे इस सोमरसको पियो । यह सोमरस तुम्हें प्रसन्न करे । हमारे स्तोत्रको सुनो और स्तुतियों द्वारा वर्द्धमान होओ । सूर्यको आविष्कृत करो । ॐ हम लोगोंको अन्न भोजन कराओ । हमारे शत्रुओंका विनाश करो और पणियों द्वारा अपहृत गौओंको प्रकाशित करो ।

४ हे अन्नवान् इन्द्र, तुम दीप्तिमान् हो । यह पिया गया मादक सोमरस तुम्हें अतिशय सिंचित करे। हे इन्द्र, यह मदकारक सोमरस तुम्हें अतिशय हर्षित करे । तुम महान्, निखिल-गुणवान्, प्रवृद्ध, विभववान् और शत्रुओंको पराभूत करनेवाले हो ।

ॐ सूर्यके दर्शन बहुत कम होनेके कारण इस तरहकी स्तुति की गयी हैं ।

अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१५॥

१८ सूक्त

इन्द्र देवता भरद्वाज । ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः ।
अषाह्ळमुग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥१॥
स युध्मः सत्वा खजकृत्समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी ।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टीनामभवत्सहावा ॥२॥
त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय ।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः ॥३॥
सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य ।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयोऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव ॥४॥

---

१५ इस स्तुतिके द्वारा हमलोग द्योतमान इन्द्र द्वारा प्रदत्त अन्न लाभ करें। हमलोग शोभन पुत्र-पौत्रोंसे युक्त होकर सौ वर्ष प्रयन्त प्रमुदित हों।

---

१ हे भरद्वाज, तुम अनभिभूत तेजवाले, शत्रुओंको हिंसा करनेवाले, अधृष्य और बहुतोंके द्वारा आहूत इन्द्रका स्तवन करो। तुम इन स्तोतों द्वारा अनभिभूत, ओजस्वो, शत्रुविजयी और मनुष्योंके अभीष्ट-पूरक इन्द्रको संवर्द्धि करो।

२ इन्द्र संग्राममें रेणुओंके उत्थापक, मुख्य, बलवान, योद्धा, दाता, युद्धमें संलग्न, सहानुभूति-सम्पन्न, वृष्टि द्वारा बहुतोंके उपकारक, शब्दविधयक, तीनों सवनोंमें सोमपान करनेवाले और मनुको सन्तानोंकी रक्षा करनेवाले हैं।

३ हे इन्द्र, तुम कर्मविहीन मनुष्योंको शीघ्र हो वशीभुत करो। अकेले तुमने ही कर्मानुष्ठानकारी आर्योंको पुत्र-दासादि प्रदान किया था। हे इन्द्र, तुममें इस प्रकारकी पूर्वोक्त सामर्थ्य है अथवा नहीं ? तुम समय-समयपर अपने वोर्यका विशेष परिचय प्रदान करो।

४ तथापि हे बलवान् इन्द्र, तुम संसारके बहुत यज्ञोंमें प्रादुर्भूत हुए हो और हमारे शत्रुओंका विनाश किया है। तुममें प्रचण्ड और प्रवृद्ध बल है हम ऐसा समझते हैं। तुम ओजस्वी, समृद्धि सम्पन्न, शत्रुओं द्वारा अजेय तथा जयशील शत्रुओंके निधनकर्ता हो।

तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे इत्था वदद्भिर्बलमङ्गिरोभिः ।
हन्नच्युतच्युद्दस्मेषयन्तमृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ॥५॥
स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महति वृत्रतूर्ये ।
स तोकसाता तनये स वज्री वितन्तसाय्यो अभवत्समत्सु ॥६॥
स मज्मना जनिम मानुषाणाममर्त्येन नाम्नाति प्र सर्स्रे ।
स द्युम्नेन स शवसोत राया स वीर्येण नृतमः समोकाः ॥७॥
स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तु नामा चुमुरिं धुनिं च ।
वृणक्पिप्रुं शम्बरंशुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित् ॥८॥
उदावता त्वक्षसा पन्यसा च वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ ।
धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्राभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः ॥९॥

५ हे अविचलित पर्वतादिके संचालनकर्ता और मनोज्ञदर्शन इन्द्र, हम लोगोंका चिरकालानुवर्ती सख्य चिरस्थायी हो। तुमने स्तवकारी अङ्गिराओंके साथ अस्त्र निक्षेप करनेवाले बल नामक असुरका बध किया था एवं उसके नगरों और नगरोंके द्वारोंको उद्घाटित किया था।

६ ओजस्वी और स्तोताओंकी सामर्थ्यको करनेवाले इन्द्र महान् संग्राममें स्तोताओं या स्तुतियों द्वारा आहूत होते हैं। पुत्रलाभके लिये इन्द्र आहूत होते हैं। वज्रधारी इन्द्र संग्राममें विशेष रूपसे वन्दनीय होते हैं।

७ इन्द्रने विनाशरहित और शत्रुओंको अभिभूत करनेवाले बल द्वारा मनुष्योंके जन्मको अतिशय प्राप्त किया है। इन्द्र यश द्वारा समान स्थानवाले होते हैं और नेतृतम इन्द्र धन तथा सामर्थ्यके द्वारा समान स्थानवाले होते हैं।

८ जो इन्द्र संग्राममें कभी भी कर्तव्य-विमूढ़ नहीं होते हैं, जो कभी भी वृथा वस्तुओंको उत्पन्न नहीं करते हैं; किन्तु जो प्रख्यात नामवाले हैं, वही इन्द्र शत्रुओंके नगरोंको विनष्ट करनेके लिये और शत्रुओंको मारनेके लिये शीघ्र ही कार्यरत होते हैं। हे इन्द्र, तुमने चुमुरि, धुनि, पिप्रु, शम्बर और शुष्ण नामक असुरोंको विनष्ट किया है।

९ हे इन्द्र, तुम ऊर्ध्वगामी और शत्रुओंके संहारकर्ता हो। तुम स्तवनीय बलसे युक्त होकर शत्रुओंको मारनेके लिये अपने रथपर आरोहण करो। दक्षिण हस्तमें अपने अस्त्र वज्रको धारण करो। हे बहु-धनवाले इन्द्र, तुम जाकर आसुरी मायाको विशेष प्रकारसे उच्छिन्न करो।

अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र हेती रक्षो नि धक्ष्यशानिर्न भीमा ।
गम्भीरय ऋष्वया यो रुरोजाध्वानयद्दुरिता दम्भयच्च ॥१०॥
आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक् ।
याहि सूनो सहसो यस्य नू चिद्‌देव ईशे पुरुहूत योतोः ॥११॥
प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः ।
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥१२॥
प्र तत्ते अद्या करणं कृतं भूत्कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै ।
पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षामुत्तूर्वयाणं धृषता निनेथ ॥१३॥
अनु त्वाहिघ्ने अध देव हवो मदन्विश्वे कवितमं कवीनाम् ।
करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥१४॥

---

१० हे इन्द्र, अग्नि जिस प्रकारसे नीरस वृक्षोंको दग्ध करते हैं, उसी प्रकार तुम्हारा वज्र शत्रुओंको नष्ट करता है। तुम वज्रकी तरह भयङ्कर हो। तुम वज्र द्वारा राक्षसोंको अतिशय भस्मसात् करो। इन्द्रने अनभिभूत और महान् वज्र द्वारा शत्रुओंको भग्न किया है। इन्द्र संग्राममें शब्द करते हैं और समस्त दुरितोंका भेदन करते हैं।

११ हे बहुधनसम्पन्न, बहुतोंके द्वारा आहूत, बलपुत्र इन्द्र, कोई भी असुर तुम्हें बलसे पृथक् करनेमें समर्थ नहीं हो सकता है। धनसे युक्त होकर तुम असंख्य बलशाली वाहनोंके द्वारा हमारे अभिमुख आगमन करो।

१२ बहुत धनवाले या बहुत यशवाले, शत्रुओंके निहन्ता और प्रवृद्धमान इन्द्रकी महिमा द्यावापृथिवीसे भी महान् है। बहुत बुद्धिवाले और शत्रुओंको अभिभूत करनेवाले इन्द्रका कोई शत्रु नहीं है, कोई प्रतिनिधि नहीं है और न कोई आश्रय है।

१३ हे इन्द्र, तुम्हारा वह कर्म प्रकाशित होता है। तुमने शुष्णनामक राक्षससे कुत्सको और शत्रुओंके समीपसे आयु तथा दिवोदासकी रक्षा की थी। तुमने हम अतिथिग्वको शम्बरके समीपसे बहुत धन प्रदान किया था। हे इन्द्र, तुमने विजयी वज्र द्वारा शम्बरको मार करके पृथिवीमें वर्तमान शीघ्र गमन करनेवाले दिवोदासको विपद्से बचाया था।

१४ हे द्योतमान इन्द्र, सम्पूर्ण स्तोता लोग अभी मेघको विनष्ट करनेके लिये अर्थात् वृष्टि प्रदान करनेके लिये तुम्हारा स्तवन कर रहे हैं। तुम सम्पूर्ण मेधावियोंमें श्रेष्ठ हो। स्तोताओंके स्तवनसे प्रसन्न होकर तुम दारिद्रयादिसे पीड़ित यजमानों और उनके पुत्रोंको धन प्रदान करते हो।

अनु द्यावापृथिवी तत्त ओजोमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवोयो जनयस्व यज्ञैः ॥१५॥

१६ सूक्त

इन्द्र देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥१॥
इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद्बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
अषाह्लेन शवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद्यो वावृधे असामि ॥२॥
पृथु करस्ना बहुला गभस्ती अस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि ।
यूथेव पश्वः पशुपा दमूना अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ ॥३॥

---

१५ हे इन्द्र, द्यावापृथिवी और अमर देव तुम्हारे बलको स्वीकार करते हैं । हे बहुत कार्यके करनेवाले इन्द्र, तुम असम्पादित कार्योंका अनुष्ठान करो और उसके अनन्तर यज्ञमें नवीनतर स्तोत्रको उत्पन्न करो ।

* * *

१ राजाकी तरह स्तोता मनुष्योंकी कामनाओंके पूरक प्रभूत इन्द्र आगमन करें । दोनों लोकोंके ऊपर पराक्रमको विस्तारित करनेवाले और शत्रुओं द्वारा अहिंसनोय इन्द्र हम लोगोंके निकट वीरत्व प्रकाशित करनेके लिये वर्द्धित होते हैं । इन्द्र विस्तीर्ण शरीरवाले और प्रख्यात गुणवाले हैं । वे यजमानों द्वारा भली भाँतिसे परिचित होते हैं ।

२ इन्द्र उत्पन्न होते ही अत्यधिक वर्द्धमान होते हैं । हमारी स्तुति दानके लिये इन्द्रको धारण करती है । इन्द्र महान्, गमनशील, जरारहित, युवा और शत्रुओं द्वारा अनभिभूत होनेवाले बलसे वर्द्धमान हैं ।

३ हे इन्द्र, तुम अन्नदान करनेके लिये हम लोगोंके अभिमुख अपने विस्तीर्ण, कार्यकर्ता और अतिशय दानशील हाथोंको करो । हे इन्द्र, तुम शान्त मनवाले हो । पशुपालक जिस प्रकारसे पशुओंके समूहको संचारित करता है, उसी प्रकार तुम संग्राममें हम लोगोंको संचारित करो ।

तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकैरिह नूनं वाजयन्तो हुवेम ।
यथा चित्पूर्वे जरितार आसुरनेद्या अनवद्या अरिष्टाः ॥४॥
धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः ।
संजग्मिरे पथ्या रायो अस्मिन्त्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ॥५॥
शविष्ठं न आ भर शूर शव ओजिष्ठमोजो अभिभूतउग्रम् ।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणामस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै ॥ ६ ॥
यस्ते मदः पृतनाषाडमृध्र इन्द्र तं न आ भर शूशुवांसम् ।
येन तोकस्य तनयस्य सातौ मंसीमहि जिगीवांसस्त्वोताः ॥ ७ ॥
आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून्तवोतिभिरुत जामीँरजामीन् ॥ ८ ॥

---

४ हम स्तोतालोग अन्नाभिलाषी होकर इस यज्ञमें समर्थ सहायक मरुतोंके साथ शत्रु निहन्ता प्रसिद्ध इन्द्रका स्तवन करते हैं। हे इन्द्र, तुम्हारे पुरातन स्तोताकी तरह हमलोग भी अनिन्द्य, पापरहित और अहिंसित हों।

५ जिस तरह नदियाँ प्रवाहित होकर समुद्रमें निपतित होती हैं, उसी प्रकार स्तोताओंका हितकर धन इन्द्रके प्रति गमन करता है। इन्द्र धनसे कर्म करनेवाले, वांछित धनके स्वामी और सोमरस द्वार प्रवृद्धमान हैं।

६ हे पराक्रमशाली इन्द्र, तुम हमलोगोंको प्रकृष्टतम बल प्रदान करो। हे शत्रुओंको अभिभूत करनेवाले इन्द्र, तुम हमलोगोंको असह्य और अतिशय ओजस्वी दीप्ति प्रदान करो। हे अश्ववाले इन्द्र, तुम हमलोगोंको सेचन-समर्थ, द्योतमान और मनुष्योंके भोग्यके लिये कल्पित सम्पूर्ण धन प्रदान करो।

७ हे इन्द्र, तुम हमलोगोंको शत्रु-सेनाओंको अभिभूत करने वाला और अहिंसित हर्ष प्रदान करो। तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर हमलोग जयशील हों। पुत्र-पौत्रके लाभके निमित्त हमलोग उसी हर्षसे तुम्हारा स्तवन करें।

८ हे इन्द्र, तुम हमलोगोंको अभिलाषपूरक सेनारूप बल प्रदान करो। वह (बल) धनका पालक, प्रवृद्ध और शोभन बल हो। हे इन्द्र, तुम्हारी रक्षा द्वारा हम संग्राममें जिस बलसे आत्मीय तथा अपरिचित शत्रुओंका वध कर सकें।

आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ ९ ॥
नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः ।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन्धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम् ॥ १० ॥
मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारि दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ११ ॥
जनं वज्रिन्महि चिन्मन्यमानमेभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वस्मि ।
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु ॥ १२ ॥
वयन्त एभिः पुरुहूत सख्यैः शत्रोः शत्रोरुत्तर इत्स्याम ।
घ्नन्तो वृत्राण्युभयानि शूर राया मदेम बृहता त्वोताः ॥ १३ ॥

९ हे इन्द्र, तुम्हारा अभिष्टवर्षी बल पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और पूर्वकी ओरसे हमारे अभिमुख आगमन करे । वह प्रत्येक दिशा होकर हमारे निकट आगमन करे । तुम हम लोगोंको सब प्रकारके साथ धन प्रदान करो ।

१० हे इन्द्र, परिचारकोंसे युक्त और श्रोतव्य यशके साथ हमलोग श्रेष्ठ धनका उपभोग, तुम्हारी रक्षाके द्वारा, करते हैं । हे राजमान इन्द्र, तुम पार्थिव और दिव्य धनके अधिपति हो; अतएव तुम हमलोगोंको महान्, असीम एवम् गुणयुक्त रत्न प्रदान करो ।

११ हमलोग अभिनव रक्षाके लिये इस यज्ञमें प्रसिद्ध इन्द्रका आह्वान करते हैं । वे मरुतोंके साथ युक्त, अभीष्टवर्षी, समृद्ध, शत्रुओंके द्वारा अकुत्सित (अकदर्य), दीप्तिमान्, शासनकारी, लोकका अभिभव करनेवाले, प्रचण्ड और बलप्रद हैं ।

१२ हे वज्रधर, हम जिन मनुष्योंके मध्यमें वर्तमान हैं, उन मनुष्योंसे अपनेको अधिक माननेवाले व्यक्तिको तुम वशीभूत करो । हमलोग अभी इस लोकमें युद्धके समयमें एवम् पुत्र, पशु और उदक लाभके निमित्त तुम्हारा आह्वान करते हैं ।

१३ हे बहुजनाहूत इन्द्र, हमलोग इन स्तोत्र रूप सखिकर्मके द्वारा तुम्हारे साथ समुदित शत्रुओंका संहार करें और उनकी अपेक्षा प्रबल हों । हे पराक्रमवान् इन्द्र, हमलोग तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर महान् धनसे प्रसन्न हों ।

* * *

महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्णः ।
उरु ष सरथं सारथये करिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ ॥ ५ ॥
प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति ॥ ६ ॥
वि पिप्रोरहिमायस्य दृह्लाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः ।
सुदामन्तद्रेक्णो अप्रमृष्यमजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ॥ ७ ॥
स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः ।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ॥ ८ ॥
स इं स्पृधो वनते अप्रतीतो विभृद्वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा बृहत इन्द्रमृष्वम् ॥ ९ ॥

---

५ वज्रके पतित होनेसे जब शुष्णने प्राण त्याग किया, तब महान् द्रोही शुष्णका सम्पूर्ण बल नष्ट हो गया। इन्द्रने सूर्यका संभजन करनेके लिये सारथीभूत कुत्सको अपने रथको विस्तृत करनेके लिये कहा ।

६ इन्द्रने प्राणियोंको उपद्रुत करनेवाले नमुचि नामक असुरके मस्तकको चूर्ण किया एवम् सपके पुत्र निद्रित नमी ऋषिकी रक्षा करके उन्हें पशु आदि धन तथा अन्नसे युक्त किया । उस समय श्येन पक्षीने इन्द्रके लिये मदकर सोमका आनयन किया था ।

७ हे वज्रधर इन्द्र. तुमने दुरन्त मायावाले पिप्रु नामक असुरके दृढ़ दुर्गोंको बल द्वारा विदीर्ण किया था / हे शोभन दानसम्पन्न इन्द्र, तुमने हव्य रूप धन प्रदान करनेवाले राजर्षि ऋजिश्वाको अप्रतिबाध धन प्रदान किया था ।

८ अभिलषित सुख-प्रदाता इन्द्रने वेतसु. दशोणि, तूतुजि, तुग्र और इभ नामक असुरोंको राजा द्योतनके निकट सर्वदा गमन करनेके लिये उसी तरह वशीभूत किया था, जैसे कि माताके निकट गमन करनेमें पुत्र वशीभूत होते हैं ।

९ शत्रुओं द्वारा नहीं निरस्त होनेवाले इन्द्र हाथमें शत्रुओंको मारनेवाले अपने आयुधको धारण करते हुए स्पर्द्धाकारी वृत्रादि शत्रुओंका विनाश करते हैं । शूर जिस प्रकारसे रथपर आरोहण करता है, उसी प्रकार वे अपने अश्वोंपर आरोहण करते हैं । वचन मात्रसे पूज्यमान होकर वे दोनों घोड़े महान् इन्द्रका वहन करें ।

सनेम तेऽवसा नव्य इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः ।
सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥ १० ॥
त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नुशने काव्याय ।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वन्नपातम् ॥ ११ ॥
त्वं धुनिरिन्द्र धूनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत् समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ १२ ॥
तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनी चुमुरी या ह सिष्वप् ।
दीदयदित्तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन्दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्यर्कैः ॥१३॥

---

१० हे इन्द्र, तुम्हारी रक्षाके द्वारा हम स्तोता लोग नवीन धनके लिये सम्भजन करते हैं। मनुष्य स्तोता लोग इस प्रकारसे युक्त यज्ञोंके द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं कि, यज्ञविद्वेषी प्रजाओंकी हिंसा करते हुए पुरुकुत्स राजाको धन प्रदान करते हैं। हे इन्द्र, तुमने शरत् नामक असुरकी सात पुरियोंको वज्र द्वारा विदीर्ण किया है।

११ हे इन्द्र, धनाभिलाषी होकर तुम कविपुत्र उशनाके लिये प्राचीन उपकारक हुए थे अर्थात् स्तोताओंके वर्द्धक हुए थे तुमने नववास्त्व नामक असुरका बध किया और क्षमताशाली पिता उशनाके निकट उसके देय पुत्रको समर्पित किया।

१२ हे इन्द्र, तुम शत्रुओंको कँपानेवाले हो। तुमने धुनिनामक असुर द्वारा निरुद्ध जलको नदीकी तरह प्रवहणशील बनाया था अर्थात् धुनिका हनन करके निरुद्ध जलराशिको बहाया था। हे वीर इन्द्र, जब तुम समुद्रका अतिक्रमण करके उत्तीर्ण होते हो, तब समुद्रके पारमें वर्तमान तुर्वंश और यदुको समुद्र पार कराते हो।

१३ हे इन्द्र, संग्राममें उस तरहके सब कार्य तुम्हारे ही है। धुनी और चुमुरी नामक असुरोंको तुमने संग्राममें सुलाया है अर्थात् मार डाला है। हे इन्द्र, इसके अनन्तर हव्यपाक करनेवाले, इन्धनके भर्ता और तुम्हारे निमित्त सोमाभिषव करनेवाले राजर्षि दभीतिने हवीरूप अन्नसे तुम्हें दीप्त किया है।

२० सूक्त

इन्द्र देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप छन्द ।

द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्यस्तस्थौ रयिः शवसा पृत्सु जनान् ।
तं नः सहस्रभरमुर्वरासां दद्धि सूनो सहसो वृत्रतुरम् ॥ १ ॥
दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रासुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम् ।
अहिं यद्वृत्रमपो वव्रिवांसं हन्नृजीषिन्विष्णुना सचानः ॥ २ ॥
तूर्वन्नोजीयान्तवसस्तवीयान्कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः ।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दर्त्नुमावत् ॥ ३ ॥
शतैरपद्रन्पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ ।
बधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत् किं चन प्र ॥४॥

---

१ हे बलपुत्र इन्द्र, सूर्य जिस प्रकारसे अपनी दीप्ति द्वारा पृथिवीको आक्रान्त करते हैं उसी प्रकार संग्राममें शत्रुओंको आक्रान्त करनेवाला पुत्र रूप धन तुम हमें प्रदान करो । वह सहस्र प्रकारके धनका भर्ता, शस्यपूर्ण भूमिका अधिपति और शत्रुओंका निहन्ता हो ।

२ हे इन्द्र, स्तोताओंने स्तोत्र द्वारा सूर्यकी तरह तुममें सचमुच समस्त बल अर्पित किया था । हे नीरस सोमपान करनेवाले इन्द्र, तुमने विष्णुके साथ युक्त होकर बल द्वारा वारिनिरोधक आदि वृत्रका बध किया था ।

३ जब इन्द्रने सम्पूर्ण शत्रु-पुरियोंके विदारक बज्रको प्राप्त किया, तब वे मधुर सोमरसके स्वामी हुए । इन्द्र हिंसकोंकी हिंसा करनेवाले अतिशय ओजस्वी, बलवान्, अन्न देनेवाले और प्रवृद्ध तेजवाले हैं ।

४ हे इन्द्र, युद्धमें बहुत अन्न प्रदान करनेवाले और तुम्हारी सहायता करने वाले मेधावी कुत्ससे भीत होकर शतसंख्यक सेनाओंके साथ पणि नामक असुरने पलायन किया था । इन्द्रने बलशाली शुष्ण नामक असुरको कपटताको आयुध द्वारा नष्ट करके उसके समस्त अन्नको अपहृत किया था ।

२१ सूक्त

इन्द्र देवता। नवम और एकादश ऋचाके विश्वदेवगण देवता। भरद्वाज ऋषि। त्रिष्टप् छन्द।

इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीर हव्या हवन्ते ।
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या ॥१॥
तमु स्तुष इन्द्र यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम् ।
यस्य दिवमति मह्ना पृथिव्याः पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम् ॥२॥
स इत्तमोवयुनं ततन्वत्सूर्येण वयुनवच्चकार ।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ॥३॥
यस्ता चकार स कुह स्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु ।
कस्ते यज्ञो मनसे शम्बराय को अर्क इन्द्र कतमः स होता ॥४॥

---

१ हे शूर इन्द्र, बहुत कार्यकी अभिलाषा करनेवाले, स्तोता भरद्वाजकी प्रशंसनीय स्तुतियाँ तुम्हारा आह्वान करती हैं। इन्द्र रथपर स्थित, जरारहित और नवीनतर हैं। श्रेष्ठ विभूति [हविर्लक्षण धन] इन्द्रका अनुगमन करती है।

२ जो सब जानते हैं अथवा जो सबके द्वारा जाने जाते हैं, जो स्तुतियों द्वारा प्रापणीय हैं और जो यज्ञ द्वारा प्रवृद्धमान होते हैं, उन इन्द्रका हम स्तवन करते हैं। बहुत प्रज्ञावाले इन्द्रका माहात्म्य द्यावा-पृथिवीका अतिक्रमण करता है।

३ इन्द्रने ही वृत्र द्वारा विस्तीर्ण और अप्रज्ञात (अप्रकाशित) अन्धकारको सूर्य्य द्वारा प्रकाशित किया था। हे बलवान् इन्द्र, तुम अमरणशील हो। मनुष्यगण तुम्हारे स्वर्ग नामक स्थानका (वहाँ रहनेवालों देवोंका) सर्वदा यजन करना चाहते हैं। वे किसी प्राणीकी हिंसा नहीं करते।

४ जिन इन्द्रने उन वृत्र-बधादि प्रसिद्ध कार्योंको किया है, वे अभी कहाँ वर्तमान हैं, किस देश और किन प्रजाओंके मध्यमें वर्तमान हैं (अतिशय विभूतिके कारण यह निश्चय किया जा सकता है कि, वे कहाँ है।) हे इन्द्र, किस तरहका यज्ञ तुम्हारे चित्तके लिये सुखकर होता है? तुम्हारा वरण करनेमें किस तरहका मन्त्र समर्थ होता है? तुम्हारा वरण करनेमें जो आह्वता समर्थ होता है, वह कौन है?

इदा हि ते वेविषतः पुराजाः प्रत्नास आसुः पुरुकृत्सखायः ।
ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥५॥
तं पृच्छन्तोऽवरासः पराणि प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः ।
अर्चामसि वीर ब्रह्मबाहो यादेव विद्म तात्त्वा महान्तम् ॥६॥
अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत्सु तिष्ठ ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व ॥७॥
स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः ।
त्वं ह्यापिः प्रदिवि पितॄणां शश्वद्बभूथ सुहव एष्टौ ॥८॥
प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य ।
प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरन्धिं सवितारमोषधीः पर्वताँश्च ॥९॥

---

५ हे बहुत कार्योंके करनेवाले इन्द्र, पूर्वकालोत्पन्न पुरातन अङ्गिरा आदि आजकलकी तरह कार्य करते हुए तुम्हारे स्तोता हुए थे। मध्यकालीन और नवीन [आजकलवाले] भी तुम्हारे स्तोता हुए हैं; अतएव हे बहुजनाहूत इन्द्र, तुम मुझ अर्वाचीनकी स्तुतिको समझो [सुनो]।

६ हे शूर और मन्त्र द्वारा प्रापणीय इन्द्र, अर्वाचीन मनुष्यगण, उक्त गुणोंसे युक्त, तुम्हारी अर्चना करते हैं। तुम्हारे प्राचीन और उत्कृष्ट महान् कार्योंको स्तुतिरूप वचनोंमें बाँधते हैं। तुम्हारे जिन कार्योंको हमलोग जानते हैं, उन्हींसे हमलोग तुम्हारी अर्चना करते हैं। तुम महान् हो।

७ हे इन्द्र, राक्षसोंका बल तुम्हारे अभिमुख प्रतिष्ठित है। तुम भी उस प्रादुर्भूत महान् बलके अभिमुख स्थिर होओ। हे शत्रुओंके धर्षक इन्द्र, स्थिर होकर तुम अपने वज्र द्वारा उस बलका अपनोदन करो। तुम्हारा वज्र पुरातन, योजनीय और नित्य सहायक है।

८ हे स्तोताओंके धारक वीर इन्द्र, तुम हमारे स्तोत्रको शीघ्र सुनो। हम इदानीन्तन [आधुनिक] और स्तोत्र करनेकी इच्छा रखनेवाले हैं। हे इन्द्र, यज्ञमें तुम शोभन आह्वानवाले होकर पूर्व कालमें अङ्गिराओंके चिरकालतक बन्धु हुए थे। इसलिये तुम हमारे स्तोत्रको सुनो।

९ हे भरद्वाज, तुम अभी हमलोगोंकी तृप्ति और रक्षाके लिये रात्र्यभिमानी वरुण, दिनाभिमानी मित्र, इन्द्र, मरुद्गण, पूषा, सर्वव्यापी विष्णु, बहु कर्मकारी अग्नि, सबके प्रेरक सविता, ओषधियोंके अभिमानी देव और पर्वतोंको स्तुतिके अभिमुख करो।

इम उ त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावाँ अन्यो अमृतत्वदस्ति ॥१०॥
नू म आ वाचमुप याहि विद्वान्विश्वेभिः सूनो सहसो यजत्रैः ।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनुं चक्रुरुपरं दसाय ॥११॥
स नो बोधि पुरएता सुगेषूत दुर्गेषु पथिकृद्विदानः ।
ये अश्रमास उरवो वहिष्ठास्तेभिर्न इन्द्राभि वक्षि वाजम् ॥१२॥

२२ सूक्त

इन्द्र देवता। भरद्वाज ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥१॥

---

१० हे बहुत शक्तिवाले अतिशय यजनीय इन्द्र, ये स्तोता लोग अर्चनीय स्तोत्रोंके द्वारा तुम्हारा स्तवन करते हैं। हे अमरणशील इन्द्र, स्तूयमान होकर तुम स्तुति करनेवाले मेरे स्तोत्रको सुनो; क्योंकि तुम्हारे सदृश दूसरे देव नहीं हैं।

११ हे बलपुत्र इन्द्र, तुम सर्वज्ञ हो। तुम सम्पूर्ण यजनीय देवोंके साथ शीघ्र ही मेरे स्तुतिरूप वचनके अभिमुख आगमन करो। जो देव अग्नि-जिह्व हैं, जो यज्ञमें भोजन करते हैं और जिन्होंने राजर्षि मनुको, शत्रुओंको नष्ट करनेके लिये, दस्युवोंके ऊपर किया है, उन्हींके साथ आगमन करो।

१२ हे इन्द्र, तुम मार्गनिर्माता और विद्वान् हो। तुम सुख-पूर्वक जाने योग्य मार्गमें तथा दुःखसे जाने योग्य मार्गमें हमलोगोंके अग्रसर होओ। श्रमरहित, महान् और वाहक श्रेष्ठ जो तुम्हारे अश्व हैं, उनके द्वारा हे इन्द्र, तुम हमलोगोंके लिये अन्न आहरण करो।

—

१ जो इन्द्र प्रजाओंकी आपत्तियोंमें एकमात्र आह्वान करनेके योग्य हैं। जो स्तोताओंके प्रति आगमन करते हैं। जो अभीष्टवर्षक, बलवान्, सत्यवादी, शत्रुपीड़क, बहुप्रज्ञ और अभिभवकर्ता हैं उन इन्द्रकी स्तुतियों द्वारा स्तवन करतेहैं।

तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥२॥
तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥३॥
तन्नो वि वोचो यदि त पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥४॥
तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥५॥
अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद्वीलिता स्वोजो रुजो वि दृह्ला धृषता विरप्शिन् ॥६॥

---

२ पुरातन, नौ महीनोंमें यज्ञ करनेवाले, सप्त-सङ्ख्यक मेधावी, हमारे पिता अङ्गिरा आदिने इन्द्रको बलवान् अथवा अन्नवान् करते हुए स्तुतियों द्वारा उनका स्तवन किया था। इन्द्र गमनशील, शत्रुओंके हिंसक, पर्वतोंपर अवस्थिति करने वाले और अनुल्लंघनीय शासन हैं।

३ बहुत पुत्र-पौत्रोंसे युक्त, परिचारकोंके साथ और पशुओंके साथ हमलोग इन्द्रके निकट अविच्छिन्न, अक्षय और सुखदायक धनकी प्रार्थना करते हैं। हे अश्वोंके अधिपति, तुम हमलोगोंको सुखी करनेके लिये वह धन आहरण करो।

४ हे इन्द्र, जब पूर्व कालमें तुम्हारे स्तोताओंने सुख लाभ किया था, तब हमलोगोंको भी वह सुख बताओ। हे दुर्द्धर्ष, शत्रु-विजयी, ऐश्वर्यशाली, बहुजनाहूत इन्द्र, तुम असुरोंके मारनेवाले हो। तुम्हारे लिये यज्ञमें कौन भाग और कौन हव्य कल्पित हुआ है?

५ यागादि लक्षण कर्मसे युक्त और गुणवाचक स्तुति करनेवाले यजमान वज्रधारण करनेवाले और रथपर अवस्थिति करनेवाले इन्द्रकी अर्चना करते हैं। इन्द्र बहुतोंके ग्रहण करनेवाले [आश्रयदाता] बहुत कर्म करनेवाले और बलके दाता है। वह यजमान सुख प्राप्त करता है और शत्रुके अभिमुख गमन करता है।

६ हे निज बलसे बलवान् इन्द्र, तुमने मनकी तरह गमन करनेवाले और बहुत पर्व [गाँठ] वाले वज्रसे माया द्वारा प्रवृद्ध उस वृत्रको चूर्ण किया था। हे शोभन तेजवाले महान् इन्द्र, तुमने धर्षक वज्र द्वारा नाश-हीन, अशिथिल और दृढ़ पुरियोंको भग्न किया था।

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुब्रह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥७॥
आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपऽयोन्तरिक्षा ।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥८॥
भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसन्दृक् ।
धिष्व वज्रन्दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः॥९॥
आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥१०॥
स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमामद्र्यद्रिक् ॥११॥

---

७ हे इन्द्र, हम चिरन्तन ऋषियोंकी तरह नवीन स्तुतियोंके द्वारा तुम्हें (तुम्हारे गौरवका) विस्तारित करते हैं। तुम अतिशय बलवान् और प्राचीन हो। अपरिमाण और शोभन वहनकारी इन्द्र हम लोगोंकी, समस्त विघ्नोंसे, रक्षा करें।

८ हे इन्द्र, तुम साधु-द्रोही राक्षसोंके लिये द्यावापृथिवी और अन्तरिक्षस्थित स्थानोंको सन्तप्त करते हो। हे कामनाओंके वर्षक इन्द्र, तुम अपनी दीप्ति द्वारा सर्वत्र विद्यमान उन राक्षसोंको भस्मीभूत करो। ब्राह्मणद्वेषी राक्षसोंको दग्ध करनेके लिये पृथिवी और अन्तरिक्षको दीप्त करो।

९ हे दीप्त-दर्शन इन्द्र, तुम स्वर्गीय तथा पार्थिव जनके ईश्वर होते हो। हे अतिशय स्तवनीय इन्द्र, तुम दक्षिण हस्तमें वज्र धारण करते हो और असुरोंकी मायाको उच्छिन्न करते हो।

१० हे इन्द्र, तुम हम लोगोंको महान्, अहिंसित, संगच्छमान और कल्याणयुक्त सम्पत्ति प्रदान करो, जिससे शत्रुगण धर्षण करनेमें समर्थ नहीं हों। हे वज्रधर इन्द्र, जिस कल्याणके द्वारा तुमने कर्महीन मनुष्योंको कर्मयुक्त बनाया था और मनुष्य-सम्बन्धी शत्रुओंको शोभन हिंसासे युक्त किया था।

११ हे बहुजनाहूत, विधाता, अतिशय यजनीय इन्द्र, तुम सबके द्वारा सम्भजनीय अश्वोंके द्वारा हमारे निकट आगमन करो। जिन अश्वोंका निवारण देव या असुर कोई भी नहीं करते हैं, इन अश्वोंके साथ तुम शीघ्र ही हमारे अभिमुख आगमन करो।

२३ सूक्त

इन्द्र देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप छन्द ।

सुत इत्त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे ।
यद्वा युक्ताभ्यां मघवन् हरिभ्यां बिभ्रद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि ॥१॥
यद्वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ ।
यद्वा दक्षस्य बिभ्युषो अबिभ्यदरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून् ॥२॥
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती ।
कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित् ॥ ३ ॥
गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः ।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ॥ ४ ॥

---

१ हे इन्द्र, सोमके अभिषुत होनेपर और महान् स्तोत्रके उच्चार्यमाण होनेपर एवम् शास्त्र [वैदिक स्तुति] विहित होनेपर तुम रथमें अपने अश्वको संयुक्त करते हो । हे धनवान् इन्द्र, तुम दोनो हाथोंमें वज्र धारण करके रथमें योजित अश्वद्वयके साथ आगमन करते हो ।

२ हे इन्द्र, तुम स्वर्गमें शूरों द्वारा सम्भजनीय संग्राममें उपस्थित होकर अभिषवकारी यजमानकी रक्षा करते हो एवम् निर्भीक होकर धार्मिक तथा सन्त्रस्त यजमानके विघ्नकारी दस्युओंको वशीभूत करते हो ।

३ इन्द्र अभिषुत सोमके पानकर्ता होते हैं । भीषण इन्द्र स्तवकारीको [निरापद] मार्गसे ले आते हैं । इन्द्र यज्ञ करनेमें दक्ष तथा सोमाभिषव करनेवाले यजमानको स्थान प्रदान करते हैं एवम् स्तोत्र करनेवालेको धन प्रदान करते हैं ।

४ इन्द्र अपने अश्वद्वयके साथ हृदयस्थानीय तीनों सवनोंमें गमन करते हैं । इन्द्र वज्र धारण करनेवाले, अभिषुत सोमके पान करनेवाले, गोदाता, मनुष्यों हितके लिये बहु पुत्रोपेत पुत्र प्रदान करनेवाले और स्तवकारी यजमानके स्तोत्रको श्रवण करनेवाले तथा स्वीकार करनेवाले हैं ।

अस्मै वयं यद्वावान तद्विविष्म इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः ।
सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्थेन्द्राय ब्रह्म वर्द्धनं यथासत् ॥ ५ ॥
ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत्त इन्द्र मतिभिर्विविष्मः ।
सुते सोमे सुतपाः शन्तमानि रान्द्र्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः॥६॥
स नो बोधि पुरोलाशं रराणः पिबा तु सोमं गोऋजीकमिन्द्र ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदोरुं कृधि त्वायत उ लोकम् ॥ ७ ॥
स मन्दस्वा ह्यनु जोषमुग्र प्र त्वा यज्ञास इमे अश्नुवन्तु ।
प्रेमे हवासः पुरुहूतमस्मे आ त्वेयं धीरवस इन्द्र यम्याः ॥ ८ ॥
तं वः सखायः सं यथा सुतेषु सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
कुवित्तस्मा असति नो भराय न सुष्विमिन्द्रोऽसे मृधाति ॥ ९ ॥

---

५ जो पुरातन इन्द्र हम लोगोंके लिये पोषणादि कर्म करते हैं, उन्हीं इन्द्रके अभिलिषित स्तोत्रका हमलोग उच्चारण करते हैं। सोमाभिषुत होनेपर हमलोग इन्द्रका स्तवन करते हैं। उक्थोंका उच्चारण करते हुए हमलोग इन्द्रको हविर्लक्षण अन्न उस प्रकारसे देते हैं, जिससे उनका वर्द्धन हो।

६ हे इन्द्र, जिस लिये तुमने स्तोत्रोंको स्वयं बढ़ाया है; अतः हमलोग उस तरहके स्तोत्रोंका, तुम्हारे उद्देशसे, बुद्धिपूर्वक, उच्चारण करते हैं। (हमारे स्तोत्र जिस प्रकारसे वर्द्धमान हों, तुमने वैसा ही किया है)। हे अभिषुत-सोमपान-कर्त्ता इन्द्र, तुम्हारे उद्देश्यसे सोमाभिषव होनेपर तुम्हारे उद्देश्यसे निरतिशय सुखदायक, कमनीय और हविसे युक्त स्तोत्रोंका उच्चारण करते हैं।

७ हे इन्द्र, प्रमुदित होकर तुम हमलोगोंके पुरोडाशको स्वीकार करो। दही आदिसे संस्कृत सोमरसको शीघ्र पियो। सोमपान करनेके लिये यजमान-सम्बन्धी कुशोंपर बैठो। तदनन्तर तुम्हारी इच्छा करनेवाले यजमानके स्थानको विस्तीर्ण करो।

८ हे उद्यतायुध इन्द्र, तुम अपनी इच्छाके अनुसार प्रमुदित होओ। यह सोमरस तुम्हें प्राप्त हों। हे बहुजनाहूत इन्द्र, हमारे स्तोत्र तुम्हें प्राप्त हों। यह स्तुति हमलोगोंकी रक्षाके लिये तुम्हें नियुक्त (प्रवृत्त) करें।

९ हे स्तोताओ, सोमाभिषव होनेपर तुमलोग दाता इन्द्रको, सोमरस द्वारा, यथाभिलाष पूर्ण करो। इन्द्रके लिये वह [सोम] बहुत परिमाणमें हो, जिससे वह हम लोगोंका पोषण करें। इन्द्र अभिषवणशील यजमानकी तृप्ति [सुख] में बाधा नहीं देते हैं।

एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।
असद्यथा जरित्र उत सूरिरिन्द्रो राया विश्ववारस्य दाता ॥ १० ॥

२४ सूक्त

३ अनुवाक । इन्द्र देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

वृषा मद इन्द्रे श्लोक उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी ।
अर्चत्र्यो मघवा नृभ्य उक्थैर्द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः ॥१॥
ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः ।
वसुः शंसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् । २ ।
अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन् प्र ते मह्ना रिरिच रोदस्योः ।
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यूतयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥ ३ ॥

---

१० सोमाभिषव होनेपर हवीरूप धनवाले और यजमानके ईश्वर इन्द्र स्तोताके सन्मार्ग-प्रदर्शक और वरणीय धन-प्रदाता जैसे हों, वैसा ही जानकर भरद्वाज ऋषिने स्तुति की ।

* * *

१ सोमवान् यज्ञमें इन्द्रका सोमपान-जनित हर्ष यजमानकी कामनाओंका पूरक हो और वैदिकोपासना-सहित स्तोत्र अभिलाष-वर्षक हो । अभिषुत सोमरस पान करनेवाले, नीरस सोमका भी त्याग नहीं करनेवाले धनवान् इन्द्र स्तुतिकारकोंकी स्तुतियों द्वारा अर्चनीय होते हैं । द्युलोक-निवासी और स्तुतिओंके अधिपति इन्द्र रक्षक होते हैं ।

२ शत्रुओंके हिंसक, विक्रमवान्, मनुष्योंके हितकर्ता, विवेकशील, हमलोगोंके स्तोत्रको सुननेवाले स्तोताओंके अतिशय रक्षक, गृहप्रदाता, स्तोताओं द्वारा प्रशंसनीय, स्तोताओंके धारक यज्ञमें स्तूयमान होनेपर हमलोगोंको अन्न प्रदान करते हैं ।

३ हे विक्रान्त इन्द्र, चक्रद्वयके अक्षकी तरह (रथ-सम्बन्धी अक्ष जैसे पहियोंसे बाहर हो जाता है) तुम्हारी बृहत् महिमा द्यावापृथिवीको अतिक्रान्त करती है । हे बहुजनाहूत, वृक्षकी शाखाओंकी तरह तुम्हारा रक्षण-कार्य वर्द्धमान होता है ।

शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः सञ्चरणीः ।
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥४॥
अन्यदद्य कर्वरमन्यदु श्वोसच्च सन्मुहुराचक्रिरिन्द्रः ।
मित्रो नो अत्र वरुणश्च पूषार्यो वशस्य पर्येतास्ति ॥५॥
वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः ।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ॥६॥
न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतामस्य तनूः स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥७॥
न वीलवे नमते न स्थिराय न शर्द्धते दस्युजूताय स्तवान् ।
अज्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृष्वा गम्भीरे चिद्भवति गाधमस्मै ॥८॥

४ हे बहुकर्मा इन्द्र, तुम प्रज्ञावान् हो। तुम्हारी शक्तियाँ (अथवा कर्म) उसी तरहसे सर्वत्र विचरण करती हैं, जैसे धेनुओंके मार्ग सर्वत्र सञ्चारी होते हैं। हे शोभन दानवाले इन्द्र, बछड़ोंकी डोरियोंकी तरह तुम्हारी शक्तियाँ स्वयम् अनिरुद्ध होकर बहुत शत्रुओंको बन्धनयुक्त करती हैं।

५ इन्द्र आज एक कर्म करते हैं, तो दूसरे दिन इससे कुछ विलक्षण ही कार्य करते हैं। वे पुनः-पुनः सत् और असत् कार्योंका अनुष्ठान करते हैं। इन्द्र, मित्र, वरुण, पूषा, सविता इस यज्ञमें हम लोगोंकी कामनाओंके पूरक हों।

६ हे इन्द्र, तुम्हारे समीपसे शस्त्र और हविके द्वारा स्तोता लोग कामनाओंको प्राप्त करते हैं, जैसे पर्वतके उपरिभागसे जल प्राप्त होता है। हे स्तुतियों द्वारा बन्दनीय इन्द्र, अश्वगण जैसे वेगपूर्वक संग्राममें उपस्थित होते हैं, वैसे ही स्तुति करनेवाले अन्नाभिलाषी भरद्वाज आदि स्तुतियोंके साथ तुम्हारे निकट गमन करते हैं।

७ संवत्सर और मास आदि जिस इन्द्रको वृद्ध नहीं बना सकते हैं; दिवस जिस इन्द्रको अल्प (दुर्बल) नहीं बना सकते हैं, उस प्रवृद्धमान इन्द्रका शरीर हम लोगोंकी स्तुतियों और स्तोत्रों द्वारा स्तूयमान होकर प्रवृद्ध हो।

८ हम लोगोंकी स्तुति द्वारा स्तूयमान इन्द्र दृढ़गात्र, संग्राममें अविचलित और दस्युओं (कर्मविवर्जितों) द्वारा उत्साहित तथा प्रेरित यजमानके वशीभूत नहीं होते हैं। अर्थात् यद्यपि स्तोता बहुत गुणवाले हैं; तथापि इन्द्र दस्यु-सहित स्तोताके वशीभूत नहीं होते हैं। महान् पर्वत भी इन्द्रके लिये सुगम हैं और अगाध स्थान भी इन्द्रके लिये विषयीभूत हैं।

गम्भीरेण न उरुणामत्रिन्प्रेषा यन्धि सुतपावन्वाजान् ।
स्था ऊ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्यन्नक्तोऽर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम् ॥९॥
सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषा मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१०॥

----

२५ सूक्त

इन्द्र देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

या त ऊतिरवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति ।
ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न एभिश्च वाजैर्महान्न उग्र ॥१॥
आभिः स्पृधोमिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र ।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽव तारीर्दासीः ॥२॥

---

९ हे बलवान् और सोमपानकर्त्ता इन्द्र, तुम किसीके द्वारा भी अनवगाहनीय उदार चित्तसे हम लोगोंको अन्न और बल प्रदान करो। हे इन्द्र, तुम दिन-रात हम लोगोंकी रक्षाके लिये तत्पर रहो।

१० हे इन्द्र, तुम संग्राममें स्तुति-कर्त्ताकी रक्षाके लिये उनका सेवन करो। निकटस्थ या दूरस्थ शत्रुओंसे उनकी रक्षा करो। गृहमें अथवा काननमें रिपुओंसे उनकी रक्षा करो। शोभन पुत्रवाले होकर हम लोग सौ वर्षोंतक प्रमुदित हों।

* * *

१ हे बलवान् इन्द्र, तुम संग्राममें हम लोगोंका, अधम, उत्तम और मध्यम सब प्रकारकी रक्षा द्वारा, भली भाँतिसे, पालन करो। हे भीषण इन्द्र, तुम महान् हो। तुम हम लोगोंको भोज्य साधन अन्नोंसे युक्त करो।

२ हे इन्द्र, तुम हमारी स्तुतियोंसे शत्रुसेनाओंको नष्टकरनेवाली हमारी सेनाकी रक्षा करते हुए संग्राममें विद्यमान शत्रुके कोपको नष्ट करो। यज्ञादि कार्य करनेवाले यजमानके लिये तुम कार्योंको विनष्ट करनेवाली सम्पूर्ण प्रजाओंको स्तुतियों द्वारा विनष्ट करो।

इन्द्र जामय उत येऽजामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युयुज्रे ।
त्वमेषां विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुहि पराचः ॥३॥
शूरो वा शूरं वनते शरीरैस्तनूरुचा तरुषि यत्कृण्वैते ।
तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते ॥४॥
नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णुर्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध ।
इन्द्र न किष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि ॥५॥
स पत्यत उभयोर्नृम्णमयोर्यदी वेधसः समिथे हवन्ते ।
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते ॥६॥
अध स्मा ते चर्षणयो यदेजानिन्द्र त्रातोत भवा वरूता ।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः ॥७॥

३ हे इन्द्र, ज्ञातिरूप निकटस्थ अथवा दूर देशस्थित जो शत्रु हमारे अभिमुखीन होकर हिंसाके लिये उद्यत होते हैं, उन दोनों प्रकारके शत्रुओंके बलको तुम नष्ट करो। इनके वीर्योंको नष्ट करो और इन्हें पराङ्मुख करो।

४ हे इन्द्र, तुम्हारे द्वारा अनुगृहीत वीर अपने शरीरसे शत्रुवीरोंको विनष्ट करता है। जब कि, वे दोनों परस्पर विरोधी, शोभमान शरीरसे संग्राममें प्रवृत्त होते हैं। जब कि, वे पुत्र, पौत्र, धेनु, जल और उर्वरा (उपजाऊ भूमिके) लिये हल्ला मचाते हुए विवाद करते हैं।

५ हे इन्द्र, विक्रान्त जन, शत्रुनिहन्ता, विजयी और युद्धमें प्रकुपित योद्धा तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें समर्थ नहीं होता है। हे इन्द्र, इनके मध्यमें कोई भी तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। तुम इन व्यक्तियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ हो।

६ महान् शत्रुओंका निरोध करनेके लिये अथवा परिचारकोंसे युक्त गृहके लिये जो दो व्यक्ति परस्पर युद्ध करते हैं, उन दोनोंके मध्यमें वही जन, धन लाभ करता है, जिसके यज्ञमें ऋत्विक् लोग इन्द्रका हवन करते हैं।

७ हे इन्द्र, तुम्हारे पुरुष [स्तोता] जब कम्पित हों, तब तुम उनके पालक होओ। उनके रक्षक होओ। हे इन्द्र, हमारे जो नेतृतम पुरुष तुम्हें प्राप्त करनेवाले होते हैं, तुम उनके त्राता होओ। हे इन्द्र, जिन स्तोताओंने हमें पुरोभागमें स्थापित किया है, तुम उनके त्राता होओ।

अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥८॥
एवा नः स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम् ॥९॥

२६ सूक्त

इन्द्र देवता। भरद्वाज ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द

श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि त्वा महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः ।
सं यद्विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहन्दाः ॥१॥
त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन् ॥२॥

८ हे इन्द्र, तुम महान् हो। शत्रुबधके लिये तुममें समस्त शक्ति अर्पित हुई है। हे यजनीय इन्द्र, युद्धमें समस्त देवोंने तुम्हें शत्रुओंको अभिभूत करनेवाला बल और विश्वधारक बल प्रदान किया था।

९ हे इन्द्र, इस प्रकारसे स्तुत होकर तुम संग्राममें हमलोगोंको शत्रुओंको मारनेके लिये प्रोत्साहित करो और प्रेरित करो। तुम हमलोगोंके लिये हिंसा करनेवाली असुर-सेनाको वशीभूत करो। हे इन्द्र, तुम्हारी स्तुति करनेवाले हम भरद्वाज अन्नके साथ अवश्य ही निवास प्राप्त करें।

१ हे इन्द्र, हम स्तोता लोग अन्न लाभ करनेके लिये सोमरसके द्वारा तुम्हारा सिंचन करते हुए तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम हम लोगोंके आह्वानको श्रवण करो। जब मनुष्यगण युद्धके लिये गमन करेंगे, तब तुम हम लोगोंकी भली भाँतिसे रक्षा करना।

२ हे इन्द्र, सबके द्वारा प्रापणीय और महान् अन्न लाभ करनेके लिये वाजिनी-पुत्र भरद्वाज अन्नवान् होकर तुम्हारा स्तवन करते हैं। हे इन्द्र तुम सज्जनोंके पालक और दुर्जनोंके विघातक हो। उपद्रुत होनेपर भरद्वाज तुम्हारा आह्वान् करते हैं। वे मुष्टिबल द्वारा शत्रुओंको विनष्ट करनेवाले हैं। जब वे गौओंके लिये युद्ध करते हैं, तब तुम्हारे ऊपर निर्भर रहते हैं।

त्वं कविं चोदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क् ।
त्वं शिरो अमर्मणः पराहन्नतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥३॥
त्वं रथं प्र भरो योधमृष्वमावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन्त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र तूतोः ॥४॥
त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि ।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन्प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती ॥५॥
त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप् ।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन् ॥६॥
अहं चन तत्सूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः ।
त्वया यत्स्तवन्ते सधवीर वीरास्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ ॥७॥

३ हे इन्द्र, अन्नलाभ करनेके लिये तुम भार्गव ऋषि को प्रेरित करो। हव्यदाता कुत्सके लिये तुमने शुष्णासुरका छेदन किया था। तुमने अतिथिग्व [दिवोदास] को सुखी करनेके लिये शम्बरासुरका शिरच्छेदन किया था। वह अपनेको मर्महीन [दुर्भेद्य] समझता था।

४ हे इन्द्र, तुमने वृषभ नामक राजाको युद्धसाधन महान् रथ प्रदान् किया था। जब वे शत्रुओंके साथ दस दिनोंतक युद्ध कर रहे थे, तब तुमने उनकी रक्षा की थी। वेतसु * राजाके सहायभूत होकर तुमने तुग्रासुरको मारा था। तुमने स्तवकर्ता तुजि राजाकी समृद्धिको बढ़ाया था।

५ हे इन्द्र, तुम शत्रु निहन्ता हो। तुमने प्रशंसनीय कार्योंका सम्पादन किया है; क्योंकि हे वीर इन्द्र, तुमने शत-शत और सहस्र-सहस्र शम्बर-सेनाओंको विदीर्ण किया है। तुमने पर्वतसे निर्गत, यज्ञादि कार्योंके विघातक शम्बरासुरका वध किया है। बिचित्र रक्षा द्वारा तुमने दिवोदासकी रक्षा की है।

६ हे इन्द्र, श्रद्धापूर्वक अनुष्ठित कार्यों द्वारा और सोमरस द्वारा मोदमान होकर तुमने दभीति राजाके लिये चुमुरि नामक असुरका वध किया था। हे इन्द्र, तुमने पिठीनस्को रजि नामक कन्या या राज्य प्रदान किया था। तुमने बुद्धिसे साठ हजार योद्धाओंको एक कालमें ही विनष्ट किया था।

७ हे वीरोंके साथी बलबत्तम इन्द्र, तुम त्रिभुवनोंके रक्षक और शत्रु विजयी हो। स्तोता लोग तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख और बलकी स्तुति करते हैं। हे इन्द्र, हम भरद्वाज तुम्हारे द्वारा प्रदत्त उत्कृष्ट सुख और बलको अपने स्तोताओंके साथ प्राप्त करें।

---

* वेतसु नामका कोई असुर भी था। ऐसी जगह ऐसा अर्थ करना चाहिये—वेतसुके साथ तुग्रासुरको मारा था।—सायण

वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः ।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घनेवृत्राणां सनये धनानाम् ॥८॥

२७ सूक्त

इन्द्र देवता, किन्तु अष्टम ऋचाके दान देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

किमस्य मदे किम्बस्य पीताविन्द्रः किमस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि किं ते अस्य पुरा विविद्रे किमु नूतनासः ॥१॥
सदस्य मदे सद्वस्य पीताविन्द्रः सदस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि सत्ते अस्य पुरा विविद्रे सदु नूतनासः ॥२॥
न हि नु ते महिमनः समस्य न मघवन्मघवत्त्वस्य विद्म ।
न राधसोराधसो नूतनस्येन्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियन्ते ॥३॥

---

८ हे पूजनीय इन्द्र, हम लोग तुम्हारे मित्रभूत और स्तोता हैं । धनलाभार्थ किये गये इन स्तोत्रों द्वारा हमलोग तुम्हारे निरतिशय प्रीतिभाजन हों । प्रातर्दनके पुत्र हमारे राजा क्षत्रश्री शत्रुओंका बध और धन लाभ करके सबसे उत्कृष्ट हों ।

* * *

१ सोमरससे प्रसन्न होकर इन्द्रने क्या किया ? इस सोमरसको पान करके क्या किया ? इस सोमरसके साथ मैत्री करके उन्होंने क्या किया ? पुरातन और आधुनिक स्तोताओंने सोमगृहमें तुमसे क्या प्राप्त किया ?

२ सोमपानसे प्रमुदित होकर इन्द्रने सुन्दर (सोभन) कार्योंको किया था । सोमपान करके उन्होंने सुन्दर कर्म किया था । इसके साथ उन्होंने शुभ कार्य किया था । हे इन्द्र, पुरातन तथा इदानीन्तन स्तोताओंने सोमगृहमें तुमसे शुभ कर्मको प्राप्त किया है ।

३ हे धनवान् इन्द्र, तुम्हारे तुल्य दूसरेकी महिमा हमें अवगत नहीं है । तुम्हारे तुल्य धनिकत्व और धन भी हमें अवगत नहीं । हे इन्द्र, तुम्हारी तरह सामर्थ्य कोई भी नहीं दिखा सकता है ।

एतत्त्यत्त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः ।
वज्रस्य यत्ते निहतस्य शुष्मात्स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार ॥४॥
वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषोऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन् ।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन्पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त् ॥५॥
त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या ।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दानान्यर्थान्यायन् ॥६॥
यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा ।
स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद्वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ॥७॥
द्वयाँ अग्ने रथिनो विंशतिं गा बधूमतो मघवा मह्यं सम्राट् ।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम् ॥८॥

---

४ हे इन्द्र, तुमने जिस वीर्य द्वारा वरशिख नामक असुरके पुत्रोंका संहार किया था, तुम्हारा वह वीर्य हम लोगोंके द्वारा अवगत नहीं है। हे इन्द्र, बल-पूर्वक निक्षिप्त तुम्हारे वज्रके शब्दसे ही बलिष्ठतम वरशिखके पुत्र विदीर्ण हुए थे।

५ इन्द्रने चायमान राजाके अभ्यवर्ती नामक पुत्रको अभिलषित धन देते हुए वरशिख नामक असुरके पुत्रोंका संहार किया था। हरियूपिया नामक नदी या नगरीके पूर्व भागमें अवस्थित वरशिखके गोत्रोत्पन्न वृचीवान्के पुत्रोंका इन्द्रने बध किया था। तब अपर भागमें अवस्थित वरशिखके श्रेष्ठ पुत्र भयसे विदीर्ण हुए थे।

६ हे बहुजनाहूत इन्द्र, युद्धमें तुम्हें जीत (मार) कर अन्न अथवा यश प्राप्त करें ऐसी कामना करनेवाले, यज्ञपात्रोंका भञ्जन करनेवाले और कवच धारण करनेवाले वरशिखके एक सौ तीस पुत्र यव्यावती (हरियूपिया) के निकट आगमन करके एक कालमें ही विनष्ट हुए थे।

७ जिनके रोचमान, शोभन तृणाभिलाषी पुनः-पुनः घासका आस्वादन करनेवाले अश्वगण द्यावापृथिवीके मध्यभागमें विचरण करते हैं। वे इन्द्र सृञ्जय नामक राजाके निकट तुर्वश (राजा) को समर्पित करते हैं और देववाक-बंशोत्पन्न अभ्यवर्ती राजाके निकट वरशिखके पुत्रोंको वशीभूत किया था।

८ हे अग्नि, अतिशय धन देनेवाले और राजसूय यज्ञ करनेवाले चयमानके पुत्र राजा अभ्यवर्त्तीने हमें (भरद्वाजको) स्त्रियोंसे युक्त रथ और बीस गौऐ दी थीं। पृथुके वंशधर राजा अभ्यवर्तीकी यह दक्षिणा किसीके भी द्वारा अविनाशनीय है।

२८ सूक्त

गो देवता, किन्तु द्वितीय तथा अष्टम ऋचाके कुछ अंशका इन्द्र देवता। भरद्वाज ऋषि। अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द।

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥१॥
इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षत्युपेद्ददाति न स्वं मुषायति ।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥२॥
न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।
देवाँश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ॥३॥
न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥४॥

---

१ गौएँ हमारे घर आवें और हमारा कल्याण करें। वे हमारे गोष्ठमें उपवेशन करें और हमारे ऊपर प्रसन्न हों। इस गोष्ठमें नाना वर्णवाली गौएँ सन्ततिसम्पन्न होकर उषाकालमें इन्द्रके लिये दुग्ध प्रदान करें।

२ इन्द्र यज्ञ करनेवाले और स्तुति करनेवालेको अपेक्षित धन प्रदान करते हैं। वे उन्हें सर्वदा धन प्रदान करते हैं। और उनके स्वकीय धनको कभी भी नहीं लेते हैं। वे निरन्तर उनके धनको बढ़ाते है और उन इन्द्राभिलाषीको शत्रुओंके द्वारा दुर्भेद्य स्थानमें स्थापित करते है।

३ गौएँ हमारे समीपसे नष्ट नहीं हों। चोर हमारी गौओंको नहीं चुरावें। शत्रुओंका शस्त्र हमारी गौओंपर पतित नहीं हों। गोस्वामी यजमान जिन गौओंसे इन्द्रादिका यजन करते हैं और जिन गौओंको इन्द्रके लिये प्रदान करते हैं उन गौओंके साथ वे चिर कालतक सङ्गत हों।

४ रेणुओंके उद्भेदक और युद्धार्थ आगमन करनेवाले अश्व उन्हें (गौओंको) नहीं प्राप्त करें। वे गौएँ विशसनादि संस्कारको नहीं प्राप्त करें। यागशील मनुष्यकी गौएँ निर्भय और स्वाधीन भावसे विचरण करती है।

गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनासा चिदिन्द्रम् ॥५॥
यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥६॥
प्रजावतीः सुयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥७॥
उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यताम्।
उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥८॥

५ गौएँ हमारे लिये धन हों। इन्द्र हमें गौएँ प्रदान करें। गौएँ हव्य-श्रेष्ठ सोमरसका भक्षण प्रदान करें। ❋ हे मनुष्यो, ये गौएँ ही इन्द्र होती हैं, श्रद्धायुक्त मनसे हम जिनकी कामना करते हैं।

६ हे गौओ, तुम हमें पुष्ट करो। तुम क्षीण और अमङ्गल अङ्गको सुन्दर बनाओ। हे कल्याण-युक्त वचनवाली गौओ, हमारे घरको कल्याणयुक्त करो अर्थात् गौओंसे युक्त करो। हे गौओ, याग-सभामें तुम्हारा महान् अन्न ही कीर्तित होता है।

७ हे गौओ, तुम सन्तानयुक्त होओ। शोभन तृणका भक्षण करो और सुखसे प्राप्त करने योग्य तड़ागादिका निर्मल जल पान करो। तुम्हारा शासक चोर नहीं हो और व्याघ्रादि तुम्हारा ईश्वर नहीं हो अर्थात् हिंसक जन्तु तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं करे। कालात्मक परमेश्वरका आयुध तुमसे दूर रहे।

८ हे इन्द्र, तुम्हारे बलाधानके निमित्त गौओंकी पुष्टि प्रार्थित हो एवम् गौओंके गर्भाधानकारी वृषभोंका बल प्रार्थित हो अर्थात् गौओंके पुष्ट (सन्तुष्ट) होनेपर तत्सम्बन्धी क्षीरादि द्वारा इन्द्र आप्यायित (सन्तुष्ट) होते हैं।

❋ सोमरसमें आज्यादि गव्य मिलाया जाता है। —सायण।

षष्ठ अध्याय समाप्त

सप्तम अध्याय

२९ सूक्त

इन्द्र देवता। भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमतये चकानाः ।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ॥१॥
आ यस्मिन् हस्ते नर्या मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः ।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयोराध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः ॥२॥
श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान् ।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वर्ण नृतविषिरो बभूथ ॥३॥
स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद्यस्मिन् पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः ॥४॥

---

१ हे यजमानो, तुम्हारे नेतृ-स्वरूप ऋत्विक् लोग सखि-भावसे इन्द्रको परिचर्या करते हैं। वे महान् स्तोत्रोंका उच्चारण करते हैं और उनकी बुद्धि शोभन तथा अनुग्रहात्मिका है ; क्योंकि वज्रपाणि इन्द्र महान् धन प्रदान करते हैं; इसलिये रमणीय और महान् इन्द्रकी पूजा, रक्षाके लिये, करो ।

२ जिस इन्द्रके हाथमें मनुष्योंके हितकर धन सञ्चित हैं, जो रथपर चढ़नेवाले इन्द्र सुवर्णमय रथपर आरूढ़ होते हैं, जिनके विशाल बाहुओंमें रश्मियाँ नियमित हैं, जिन इन्द्रको सेचन करनेवाले (बलिष्ठ) और रथमें युक्त अश्वगण वहन करते हैं, हम उन इन्द्रका स्तवन करते हैं ।

३ हे इन्द्र, ऐश्वर्यलाभके लिये भरद्वाज तुम्हारे चरणोंमें परिचरण समर्पित करते हैं। तुम बल द्वारा शत्रुओंको पराजित करते हो, वज्र धारण करते हो और स्तोताओंको धन देनेवाले हो । हे नेता इन्द्र, तुम सबके दर्शनार्थ प्रशस्त और सतत-गमनशील रूप धारण करके सूर्यकी तरह परिभ्रमणशील होते हो ।

४ सोमके अभिषुत होनेपर वह भली भाँति मिश्रित हुआ है, जिसके अभिषुत होनेपर पाकयोग्य पुरोडाशादि पकाया जाता है। भुने जौ हविके लिये संस्कृत होते हैं । हविर्लक्षण अन्नके कर्ता ऋत्विक् लोग स्तोत्रोंके द्वारा इन्द्रका स्तवन करते हैं। शस्त्रोंका उच्चारण करते हुए वे देवताके निकटस्थ होते हैं।

न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य वि तु बाबधे रोदसी महित्वा ।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ॥५॥
एवेदिन्द्रः सुहव ऋष्वो अस्तूती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा ।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥६॥

३० सूक्त

इन्द्र देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

भूय इद्वावृधे वीर्यायँ एको अजुर्यो दयते वसूनि ।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥१॥
अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति ।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद्वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात् ॥२॥

---

५ हे इन्द्र, तुम्हारे बलका अवसान नहीं है अर्थात् तुम्हारे बलको हमलोग नहीं जानते। द्यावापृथिवी जिस महान् बलसे भीत होती है, गोपालके जैसे जल द्वारा गौओंको तृप्त करता है, उसी प्रकार स्तोता शीघ्र ही तृप्तिकारक हव्य द्वारा भली भाँति यज्ञ करके तुम्हें तृप्त करते हैं।

६ हरित नासावाले महेन्द्र इस प्रकारसे सुखपूर्वक आह्वान करनेके योग्य होते हैं। इन्द्र स्वयं उपस्थित अथवा अनुपस्थित हों; किन्तु स्तोताओंको धन प्रदान करते हैं। इस प्रकारसे प्रादुर्भूत होकर उत्कृष्टतर बलवाले इन्द्र बहुतेरे वृत्रादि राक्षसोंको तथा शत्रुओंको मारते हैं।

* * *

१ वृत्रबधादि वीरकार्य करनेके लिये इन्द्र पुनः प्रवृद्ध हुए हैं। मुख्य (श्रेष्ठ) और जरारहित इन्द्र स्तोताओंको धन प्रदान करें। इन्द्र द्यावापृथिवीका अतिक्रमण करते हैं। इन्द्रका आधा भाग ही द्यावापृथिवीके बराबर है अर्थात् प्रतिनिधि है।

२ अभी हम इन्द्रके बलका स्तवन करते हैं। वह बल असुरोंके हननमें कुशल है। इन्द्र जिन कर्मोंको धारण करते हैं, उनकी हिंसा कोई भी नहीं करता। वे प्रतिदिन वृत्रावृत सूर्यको दर्शनीय बनाते हैं। शोभन कर्म करनेवाले इन्द्रने भुवनोंको विस्तीर्ण किया है।

अद्या चिन्नू चित्तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र ।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदुस्त्वया दृह्लानि सुक्रतो रजांसि ॥३॥
सत्यमित्तन्न त्वावाँ अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णोवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥४॥
त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृह्ळमरुजः पर्वतस्य ।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन्द्यामुषासम् ॥५॥

* * *

३१ सूक्त

इन्द्र देवता। सुहोत्र ऋषि शकरी और त्रिष्टुप् छन्द।

अभूरेको रयिपते रयीणामा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
वि तोके अप्सु तनये च सूरेवोचन्त चर्षणयो विवाचः ।

---

३ हे इन्द्र, पहलेकी तरह आज भी तुम्हारा नदी-सम्बन्धिक कार्य विद्यमान हैं। नदियोंको बहनेके लिये तुमने मार्ग बनाया है। भोजनार्थ उपविष्ट मनुष्योंकी तरह पर्वतगण तुम्हारी आज्ञासे निश्चल भावसे उपविष्ट हैं। हे शोभन कर्म करनेवाले इन्द्र, सम्पूर्ण लोक तुम्हारे द्वारा स्थिर हुए हैं।

४ हे इन्द्र, तुम्हारे सदृश अन्य देव नहीं हैं, यह एकदम सत्य है। तुम्हारे सदृश कोई दूसरा मनुष्य भी नहीं है। तुमसे अधिक न कोई देव है, न मनुष्य, यह जो कहा जाता है, सो एकदम सत्य है। वारिराशिको आवृत करके सोनेवाले मेघको तुमने बध किया था। वारिराशिको समुद्रमें पतित होनेके लिये तुमने मुक्त किया था।

५ हे इन्द्र, वृत्रसे आवृत जलको सर्वत्र प्रवाहित होनेके लिये तुमने मुक्त किया था। तुमने मेघके दृढ़ बन्धनको छिन्न किया था। तुम सूर्य, द्युलोक और उषाको एक कालमें ही प्रकाशित करके जगत्-सम्बन्धी प्रजाओंके राजा हुओ।

* * *

१ हे धनके पालक इन्द्र, तुम धनके प्रधान स्वामी हो। हे इन्द्र, तुम अपने बाहुद्वयमें प्रजाओंको धारण करते हो अर्थात् सम्पूर्ण जगत् तुम्हारी आज्ञाका अनुवर्ती है। मनुष्यगण विविध प्रकारसे तुम्हारा स्तवन, पुत्र, शत्रु विजयी पौत्र और वृष्टिके लिये, करते हैं।

त्वद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वाच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि ।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृह्ळं भयते अज्मन्नाते ॥२॥
त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्राशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ॥३॥
त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्था प्रतीनि दस्योः ।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय
सुन्वते सुतक्रे भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥४॥
स सत्यसत्वन्महते रणाय रथमा तिष्ठ तुविनृम्ण भीमम् ।
याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक् प्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः ॥५॥

२ हे इन्द्र, तुम्हारे भयसे व्यापक और अन्तरिक्षोद्भव उदक पतनयोग्य नहीं होनेपर भी मेघ द्वारा बरसाये जाते हैं। हे इन्द्र, तुम्हारे आगमनसे द्यावापृथिवी, पर्वत, वृक्ष और सम्पूर्ण स्थावर प्राणिजात भीत होते हैं।

३ हे इन्द्र, कुत्सके साथ प्रवृत्त शुष्णके विरुद्ध तुमने युद्ध किया था अर्थात् कुत्सके साहाय्यार्थ तुमने शुष्णके साथ युद्ध किया था। संग्राममें तुमने कुयवका बध किया था। संग्राममें तुमने सूर्यके रथ-चक्रका हरण किया था। तबसे सूर्यका रथ हा एक चक्रका हो गया है। पापकारी राक्षसोंको तुमने मारा था। *

४ हे इन्द्र, तुमने दस्यु शम्बरासुरके सौ नगरोंको उच्छिन्न किया था। हे प्रज्ञावान् तथा अभिषुत सोम द्वारा क्रीत इन्द्र, उस समय तुमने सोमाभिषव करनेवाले दिवोदासको प्रज्ञापूर्वक धन प्रदान किया था तथा स्तुति करनेवाले भरद्वाजको धन प्रदान किया था।

५ हे अबध्य भटवाले तथा विपुल धनवाले इन्द्र, तुम महान् संग्रामके लिये अपने भयङ्कर रथपर आरोहण करो। हे प्रकृष्ट मार्गवाले इन्द्र, तुम रक्षाके साथ हमारे अभिमुख आगमन करो। हे विख्यात इन्द्र, प्रजाओंके मध्यमें हमें प्रख्यात करो।

---

* जब एतश ऋषिका सूर्यके साथ युद्ध हुआ था, तब सहायताके लिये गये हुए इन्द्रने सूर्यके रथका एक चक्र ले लिया था—सायण

३२ सूक्त

इन्द्र देवता । सुहोत्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यासा स्थविराय तक्षम् ॥१॥
स मातरा सूर्येणा कवीनामवासयद्रुजदद्रिं गृणानः ।
स्वाधीभिर्ऋक्वभिर्वावशान उदुस्रियाणामसृजन्निदानम् ॥२॥
स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन्मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय ।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्दृह्ला रुरोज कविभिः कविः सन् ॥३॥
स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीनामा गिर्वणः सुविताय प्र याहि ॥४॥
स सर्गेण शवसातक्तो अत्यैरप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट् ।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम् ॥५॥

---

१ हमने महान्, विविध शत्रुओंका मारनेवाले, बलवान्, वेगसम्पन्न, विशेष प्रकारसे स्तुति-योग्य, वज्रधारी और प्रवृद्ध इन्द्रके लिये, मुख द्वारा, अपूर्व, सुविस्तीर्ण और सुखदायक स्तोत्रोंको पढ़ा है ।

२ इन्द्रने मेधावी अङ्गिराओंके लिये जननीस्वरूप स्वर्ग और पृथिवीको सूर्य द्वारा प्रकाशित किया था एवम् अङ्गिराओं द्वारा स्तूयमान होकर पर्वतोंको चूर्ण किया था । इन्द्रने शोभन ध्यानशील स्तोता अङ्गिराओं द्वारा बारम्बार प्रार्थित होनेपर धेनुओंके बन्धनको मुक्त किया था ।

३ बहुत कर्म करनेवाले इन्द्रने हवन करनेवाले, स्तुति करनेवाले और सङ्कुचित-जानु अङ्गिराओंके साथ मिलित होकर धेनुओंके लिये शत्रुओंको पराजित किया था । मित्रभूत, मेधावी अङ्गिराओंके साथ मित्राभिलाषी और दूरदर्शी होकर इन्द्रने असुरपुरियोंको भग्न किया था ।

४ हे कामनाओंके पूरक, हे स्तुति द्वारा संभजनीय इन्द्र, तुम महान् अन्न, महान् बल और बहुत वत्सवती युवती वड़वाके साथ अपने स्तुतिकर्ताको मनुष्योंके मध्यमें सुखी करनेके लिये उनके अभिमुख आगमन करते हो ।

५ हिंसकोंके अभिभवकर्ता इन्द्र सदा उद्यत बल द्वारा सतत गमनशील तेजसे युक्त होकर सूर्यके दक्षिणायन होनेपर जलको मुक्त करते हैं। इस प्रकार विसृष्ट वारिराशि उस क्षोभशून्य समुद्रमें प्रतिदिन पतित होती है, जिससे वारिराशिका पुनः प्रत्यावर्तन नहीं होता ।

३३ सूक्त

इन्द्र देवता । शुनहोत्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन्त्स्वभिष्टिर्दास्वान् ।
सौवश्व्यं यो वनवत्स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान् ॥१॥
त्वां हीन्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ।
त्वं विप्रेभिर्विपणींरशायस्त्वोत इत्सनिता वाजमर्वा ॥२॥
त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥३॥
स त्वं न इन्द्राकवाभिरूती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः ।
स्वर्षाता यद्ध्वयामसि त्वा युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर ॥४॥
नूनं न इन्द्रापराय च स्या भवा मृलीक उत नो अभिष्टौ ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन्दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः ॥५॥

१ हे अभीष्टवर्षक इन्द्र, तुम हमलोगोंको बलवत्तम, स्तुतियों द्वारा स्तवनकर्ता, शोभन-यज्ञ-कर्ता और हव्य प्रदान करनेवाला एक पुत्र प्रदान करो। वह पुत्र उत्कृष्ट अश्वपर आरूढ़ होकर संग्राममें शोभन अश्वों और प्रतिकूलताचारी शत्रुओंको पराभूत करे ।

२ हे इन्द्र, विविध-स्तुति रूप वचनवाले मनुष्यगण, युद्धमें रक्षाके लिये, तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुमने मेधावी अङ्गिराओंके साथ पणियोंका संहार किया था। तुम्हारा संभजन करनेवाला पुरुष तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर अन्न लाभ करता है।

३ हे शूर इन्द्र, तुम दस्युओं अथवा आर्यों -दोनों * प्रकारके शत्रुओंका संहार करते हो। हे नेतृश्रेष्ठ, जैसे काष्ठ छेदक कुठारादिसे वृक्षोंको छिन्न कर देता है, उसी प्रकार तुम संग्राममें भली भाँति प्रयुक्त अस्त्रों द्वारा शत्रुओंका विदारण करते हो ।

४ हे इन्द्र, तुम सर्वत्र गमन करने वाले हो। तुम श्रेष्ठ रक्षाके द्वारा हमलोगोंकी समृद्धिके वर्द्धक तथा मित्र होओ। कुछ पुरुषोंसे युक्त संग्राममें युद्ध करनेवाले हम लोग धन-लाभके लिये तुम्हारा आह्वान करते हैं।

५ हे इन्द्र, इस समयमें तथा दूसरे समयमें तुम निश्चय ही हमारे होओ। हमलोगोंकी अवस्थाके अनुसार सुख-प्रदाता होओ इस प्रकारसे स्तुति करनेवाले हम लोग गौओंके संभजन करनेवाले होकर तुम्हारे सम्बन्धी द्योतमान सुखमें अवस्थान करें। तुम महान् हो।

---

* यज्ञादि कर्मके विरोधी बल प्रभृति असुर और कर्मानुष्ठानकारी, किन्तु आवरक वृत्रादि ।

३४ सूक्त

इन्द्र देवता। शुनहोत्र ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वीर्वि च त्वद्यन्ति विभ्वो मनीषाः।
पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पृध्रे इन्द्रे अध्युक्थार्का ॥१॥
पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वाँ एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः।
रथो न महे शवसे युजानोऽस्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत् ॥२॥
न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीरिन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः।
यदि स्तोतारः शतं यत्सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै ॥३॥
अस्मा एतद्दिव्यर्चेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः।
जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः ॥४॥
अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि।
असद्यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ॥५॥

१ हे इन्द्र तुममें असङ्ख्य स्तोत्र संगत होते हैं। तुमसे स्तोताओंकी पर्याप्त प्रशंसा निर्गत होती है पूर्व कालमें और इस समयमें भी ऋषियोंको स्तोत्र, उपासना और मन्त्र, इन्द्रकी पूजाके विषयमें परस्पर स्पर्द्धा करते हैं।

२ हमलोग सर्वदा इन्द्रको प्रसन्न करते हैं वे बहुजनाहूत, बहुतोंके द्वारा प्रबोधित, महान्, अद्वितीय एवम् यजमानों द्वारा भली भाँति स्तुत हैं। हमलोग महान् लाभ करनेके लिये रथकी तरह इन्द्रके प्रति अनुरक्त होकर सर्वदा उनका स्तवन करें।

३ समृद्धि-विधायक स्तोत्र इन्द्रके अभिमुख गमन करे। कर्म और स्तुतियां इन्द्रको बाधित नहीं करतीं * शत-सहस्र-स्तव-कारी स्तुतिभाजन इन्द्रको स्तुति करके प्रीति उत्पन्न करते हैं।

४ इस यज्ञ-दिनमें स्तोत्रकी तरह पूजाके साथ प्रदत्त होनेके लिये इन्द्रके निमित्त मिश्रित सोमरस प्रस्तुत हुआ है। मरुद्देशके अभिमुख गमन करनेवाला जल जिस प्रकार प्राणियोंका पोषण करता है, उसी प्रकार हव्यके साथ स्तोत्र उन्हें वर्द्धित करें।

५ सर्वत्र गन्ता इन्द्र महान् संग्राममें हम लोगोंके रक्षक और समृद्धि विधायक जिससे हों; अतः स्तोताओंका स्तोत्र आग्रहके साथ इन्द्रके प्रति उक्त होता है।

---

* दरिद्र व्यक्ति धन देनेमें असमर्थ होनेके कारण स्तुतिसे खिन्न हो जाता है; परन्तु इन्द्र स्तुतियोंसे खिन्न नहीं होते। सबको धन देते हैं। —सायण

३५ सूक्त

इन्द्र देवता । नर ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

कदा भुवन्रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः ।
कदा स्तोमं वासयाऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः ॥१॥
कर्हि स्वित्तदिन्द्र यन्नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्नीलयासे जयाजीन् ।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥२॥
कर्हि स्वित्तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः ॥३॥
स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः ।
पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः ॥४॥
तमा नूनं वृजनमन्यथा चिच्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे ।
मा निररं शुक्रदुघस्य धेनोराङ्गिरसान्ब्रह्मणा विप्र जिन्व ॥५॥

---

१ हे इन्द्र, तुम रथाधिरूढ़के निकट हमारे स्तोत्र कब उपस्थित होंगे? कब तुम मुझ स्तोत्र करनेवालेको सहस्र पुरुषोंके पोषक गोसमूह या पुत्र प्रदान करोगे? कब तुम मुझ स्तोताके स्तोत्रको धन द्वारा पुरस्कृत करोगे? कब तुम अग्नि-होत्रादि कार्यको अन्नसे रमणीय बनाओगे?

२ हे इन्द्र, कब तुम हमारे पुरुषोंके साथ शत्रुओंके पुरुषोंको तथा हमारे पुत्रोंके साथ शत्रुओंके पुत्रोंको मिलित कराओगे? (युद्धमें इस तरहका संश्लेषण कब होगा?) हमारे लिये तुम कब संग्राम में जय प्राप्त करोगे? कब तुम गमनशील शत्रुओंसे क्षीर, दधि और घृतादि धारण करनेवाली गौओंको जीतोगे? हे इन्द्र, कब तुम हम लोगोंको व्याप्त धन प्रदान करोगे?

३ हे बलवत्तम इन्द्र, कब तुम स्तोताको विविध अन्न प्रदान करोगे? कब तुम अपनेमें यज्ञ और स्तोत्रको युक्त करोगे? कब तुम स्तोत्रोंको गोदायक करोगे?

४ हे इन्द्र, तुम गोदायक, अश्वों द्वारा आह्लादित करनेवाला और बल द्वारा प्रसिद्ध अन्न हम स्तुति करनेवाले भरद्वाज-पुत्रोंको प्रदान करो। तुम अन्नोंको तथा सुगमतासे दोहन योग्य गौओंको परिपुष्ट करो। वे गौएँ जिससे शोभन दीप्तिवाली हों, वैसा तुम करो।

५ हे इन्द्र, तुम हमारे शत्रुको अन्य प्रकारसे (जीवनके विपरीत अर्थात् मरण पथसे) युक्त करो। हे इन्द्र, तुम शक्तिमान्, वीर और शत्रु निहन्ता हो, इस प्रकारसे हम लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं। हे इन्द्र, तुम विशुद्ध वस्तुओंके प्रदानकर्ता हो। हम तुम्हारे स्तोत्रके उच्चारण करनेमें विरत नहीं हों। हे प्राज्ञ इन्द्र, तुम अङ्गिराओंको अन्न द्वारा तृप्त (प्रसन्न) करो।

३६ सूक्त

इन्द्र देवता। नर ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः सत्रा रायोऽध ये पार्थिवासः ।
सत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद्देवेषु धारयथा असूर्यम् ॥१॥
अनु प्र येजे जन ओजो अस्य सत्रा दधिरे अनु वीर्याय ।
स्यूमगृभे दुधयेर्वते च क्रतुं वृञ्जन्त्यपि वृत्रहत्ये ॥२॥
तं सध्रीचीरूतयो वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम् ।
समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आ विशन्ति ॥३॥
स रायस्खामुप सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः ।
पतिर्बभूथासमो जनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥४॥
स तु श्रुधि श्रुत्या यो दुवोयुर्द्यौर्न भूमाभि रायो अर्यः ।
असो यथा नः शवसा चकानो युगेयुगे वयसा चेकितानः ॥५॥

---

१ हे इन्द्र, तुम्हारा सोमपान-जनित हर्ष निश्चय ही सब लोगोंके लिये हितकर होता है। त्रिभुवनमें अवस्थित तुम्हारा धनसमूह सचमुच सब लोगोंके लिये हितकर है। तुम सचमुच अन्नदाता हो। देवोंके मध्यमें तुम बल धारण करते हो।

२ यजमान विशेष प्रकारसे इन्द्रके बलकी पूजा करते हैं। वीरत्व प्राप्तिके लिये अथवा वीर कर्म करनेके लिये यजमान इन्द्रको पुरोभागमें धारण करते हैं। अविच्छिन्न शत्रु-श्रेणीके निरोधकर्त्ता, हिंसाकारी और आक्रमणकारी इन्द्र वृत्र (शत्रु) का संहार करेंगे; अतः यजमान उनको परिचर्या करते हैं।

३ संगत होकर मरुद्गण इन्द्रका सेवन करते हैं एवम् वीर्य, बल और रथमें नियोज्यमान अश्व भी इन्द्रका सेवन करते हैं। नदियाँ जिस प्रकार समुद्रमें प्रविष्ट होती हैं, उसी प्रकार उपासना (उक्थ, शस्त्र) रूप बलवाली स्तुतियाँ विश्वव्यापी इन्द्रके साथ संगत होती हैं।

४ हे इन्द्र, स्तूयमान होनेपर तुम बहुतोंके अन्नदायक और गृहप्रदायक धनकी धाराको प्रवाहित करो। तुम सम्पूर्ण प्राणीके उत्कृष्ट अधिपति और सम्पूर्ण भूतजातके असाधारण अधीश्वर हो।

५ हे इन्द्र, तुम श्रोतव्य स्तोत्रोंको शीघ्र सुनो। हमलोगोंकी परिचर्याकी कामना करके सूर्यकी तरह शत्रुओंके धनको जीतो। तुम बलसम्पन्न हो। प्रत्येक कालमें स्तूयमान और हव्य रूप अन्न द्वारा भली भाँतिसे ज्ञायमान होकर हमारे निकट पहलेकी ही तरह (असाधारण) रहो।

* * *

३७ सूक्त

इन्द्र देवता। भरद्वाज ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रेन्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु ।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वानृधीमहि सधमादस्ते अद्य ॥१॥
प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्मन्पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन् ।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा ॥२॥
आसस्राणासः शवसानमच्छेन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः ।
अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुर्नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् ॥३॥
वरिष्ठा अस्य दक्षिणामियर्तीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः ।
यया वज्रिवः परियास्यंहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन् ॥४॥
इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्वर्द्धतां वृद्धमहाः ।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ता सूरिः पृणति तूतुजानः ॥५॥

१ हे उद्यतायुध इन्द्र, तुम्हारे रथमें युक्त अश्व हमारे सम्मुख तुम्हारे विश्ववन्दनीय रथको लावें। गुणवान् स्तोता भरद्वाज ऋषि तुम्हारा आह्वान करते हैं। अभी तुम्हारे साथ हृष्ट होकर हमलोग वर्द्धित हों।

२ हरितवर्ण सोमरस हमारे यज्ञमें प्रवाहित (गमन करता) होता है और पूयमान (पवित्र) होकर कलशमें ऋजुभावसे गमन करता है। पुरातन, दीप्तिसम्पन्न और मदकारक सोमरसके अधिपति इन्द्र हमारे सोमरसका पान कर।

३ चतुर्दिक् गमन करनेवाले, रथमें युक्त और सरलतापूर्वक गमन करनेवाले अश्वगण सुदृढ़चक्र रथपर अवस्थित बलशाली इन्द्रको हमारे अभिमुख लावें। अमृतमय सोमलक्षण हवि वायुसे नष्ट (शुष्क) नहीं हो। अर्थात् सोमरसके बिगड़नेके पहले ही इन्द्र सोमको पी जायँ।

४ निरतिशय बलशाली और बहुविध कार्य करनेवाले इन्द्र हविस्वरूप धनवाले व्यक्तियोंके मध्यमें यजमानको दक्षिणा प्रदान करते हैं। हे वज्रधर, तुम दक्षिणा द्वारा पाप नाश करो। हे शत्रुविजयी, तुम उनको दक्षिणा प्रेरित करो, जिससे धनराशि और स्तुतिकर्ता पुत्र हमें प्राप्त हो।

५ इन्द्र श्रेष्ठ अन्न अथवा बलके दाता हों। अत्यधिक तेजोयुक्त इन्द्र हम लोगोंकी स्तुति द्वारा वर्द्धित हों। शत्रुओंको सतानेवाले इन्द्र आवरक शत्रुका संहार करें। प्रेरक इन्द्र वेगवान् होकर हमलोगोंको समस्त धन प्रदान करें।

Digitization by Arya Samaj Foundation Chennai

३८ सूक्त

इन्द्र देवता। भरद्वाज ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

अपादित उदु नश्चित्रतमो महीं भर्षद्युमतीमिन्द्रहूतीम् ।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यामन् जनस्य रातिं वनते सुदानुः ॥१॥
दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः ।
एयमेनं देवहूतिर्ववृत्यान्मद्र्यगिन्द्रमियमृच्यमाना ॥२॥
तं वो धिया परमया पुराजामजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः ।
ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन्महाँश्च स्तोमो अधि वर्द्धदिन्द्रे ॥३॥
वर्धाद्यं यज्ञ उत सोमं इन्द्रं वर्धाद्ब्रह्म गिर उक्था च मन्म ।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोर्वर्धान्मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ॥४॥
एवा जज्ञानं सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय ।
महामुग्रमवसे विप्र नूनमा विवासेम वृत्रतूर्येषु ॥५॥

* * *

१ आश्चर्यतम इन्द्र हमलोगोंके पानपात्रसे सोमरस पान करें। वे महान् और दीप्तिमान् आह्वान (स्तुति) को स्वीकार करें। दानशील इन्द्र धार्मिक यजमानके यज्ञमें अतिशय स्तुत्य परिचरण और हव्य ग्रहण करें।

२ इन्द्रके कर्णयुगल दूरदेशसे भी स्तोत्र श्रवण करनेके लिये आते हैं। स्तोता उच्च स्वरसे स्तोत्र पाठ करते हैं। इन्द्रका आह्वान करनेवाली यह स्तुति स्वयं प्रेयमाण होकर इन्द्रको हमारे अभिमुख लावें।

३ हे इन्द्र, तुम प्राचीन और क्षयरहित हो। हम उत्कृष्टतम स्तुति और हव्य द्वारा तुम्हारा स्तवन करते हैं: इसी लिये इन्द्रमें हव्य रूप अन्न और स्तोत्र निहित है। महान् स्तोत्र अधिक वर्द्धमान होता है।

४ जिन इन्द्रको यज्ञ और सोमरस वर्द्धित करते हैं, जिन इन्द्रको हव्य, स्तुति, उपासना और पूजा वर्द्धित करती हैं, दिन और रात्रिकी गति जिन्हें वर्द्धित करती है एवम् जिन्हें मास, संवत्सर और दिन वर्द्धित करते हैं।

५ हे मेधावी इन्द्र, तुम इस प्रकारसे प्रादुर्भूत, समृद्ध, बलशाली और प्रचण्ड हो। हम लोग आज धन, कीर्ति रक्षा और शत्रु विनाशके लिये तुम्हारी परिचर्या करते हैं।

* * *

३९ सूक्त

इन्द्र देवता। भरद्वाज ऋषि त्रिष्टुप्। छन्द।

मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्नेर्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः ।
अपा नस्तस्य सचनस्य देवेषो युवस्व गृणते गो अग्राः ॥१॥
अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्युजानः ।
रुजदरुग्णं विवलस्य सानुं पणीऽँर्वचोभिरभि योधदिन्द्रः ॥२॥
अयं द्योतयदद्युतो व्यक्तून्दोषा वस्तोः शरद इन्दुरिन्द्र ।
इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिजन्मन उषसश्चकार ॥३॥
अयं रोचयदरुचो रुचानोय वासयद्व्यृतेन पूर्वीः ।
अयमीयत ऋतयुग्भिरश्वैः स्वर्विदा नाभिना चर्षणिप्राः ॥४॥
नू गृणानो गृणते प्रत्न राजन्निषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः ।
अप ओषधीरविषा वनानि गा अर्वतो नॄनृचसे रिरीहि ॥५॥

---

१ इन्द्र, तुम हमारे उस सोमको पियो, जो मदकारक, पराक्रमकर्ता, स्वर्गीय, विज्ञ-सम्मत फलदाता प्रसिद्ध और सेवनीय है। देव, तुम हमें गो-प्रमुख अन्न दो।

२ इन्हीं इन्द्रने पर्वतके बीच गुप्त रीतिसे रखी गायोंके उद्धारके लिये यज्ञ-कर्त्ता अङ्गिरा लोगोंके साथ होकर और उनके सत्य-रूप स्तोत्र द्वारा उत्तेजित होकर दुर्भेद्य पर्वतको भिन्न और ताड़ना द्वारा पणियोंको अभिभूत किया था।

३ इन्द्र, इस सोमने दीप्ति-शून्य रात्रि, दिन और वर्ष—सबको प्रदीप्त किया था। प्राचीन समयमें देवोंने इस सोमको दिनका केतु-स्वरूप स्थापित किया था। इसी सोमने अपनी दीप्तिसे उषाओंको प्रकाशित किया था।

४ इन्हीं इन्द्रने सूर्य-रूपसे प्रकाशित होकर प्रकाश-शून्य भुवनोंको प्रकाशित किया था और सर्वत्र गतिशील दीप्ति द्वारा उषाओंका अन्धकार नष्ट किया था मनुष्योंके अभीष्ट फल-दाता ये इन्द्र स्तोत्र द्वारा नियोजित होनेवाले अश्वों द्वारा आकृष्ट, और धनपूर्ण रथपर आरूढ़ होकर गये थे।

५ हे पुरातन और प्रकाशमान इन्द्र, तुम स्तुति किये जानेपर धन देने योग्य स्तोताको प्रचुर धन दो। तुम स्तोताको जल, औषधि, विष-शून्य वृक्षावली, धेनु अश्व और मनुष्य प्रदान करो।

Digitization by Arya Samaj Foundation, Chennai

४० सूक्त

इन्द्र देवता। भरद्वाज ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायाव स्य हरी वि मुचा सखाया।
उत प्र गाय गण आ निषद्याथा यज्ञाय गृणते वयो धाः ॥१॥
अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन्।
तमु ते गावो नर आपो अद्रिरिन्दुं समह्यन्पीतये समस्मै ॥२॥
समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः।
त्वायता मनसा जोहवीमीन्द्रा याहि सुविताय महे नः ॥३॥
आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम्।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नोऽथा ते यज्ञस्तन्वे वयो धात् ॥४॥
यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृधग्यद्वा स्वे सदने यत्र वासि।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान्त्सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ॥५॥

---

१ इन्द्र, तुम्हारे मद-वर्द्धनके लिये जो सोम अभिषुत हुआ है, उसे पान करो। अपने मित्र-भूत दोनों अश्वोंको रथमें जोतो और इसके पीछे रथसे उन्हें छोड़ दो। स्तोताओंके बीच बैठकर हमारे द्वारा किये गये स्तोत्रोंके उच्चारणमें योग दो। स्तोता यजमानको अन्न दो।

२ हे महेन्द्र, तुमने उल्लास और वीरता प्रकट करनेके लिये जन्म लेते ही जैसे सोम पान किया था, उसी तरह सोम पान करो। तुम्हारे लिये सोम तैयार करनेके लिये गायें, ऋत्विक्, जल और पाषाण इकट्ठे होते हैं।

३ इन्द्र, आग प्रज्वलित और सोमरस अभिषुत हुआ है। ढोनेमें शक्तिशाली तुम्हारे अश्व इस यज्ञमें तुम्हें ले आवें। हम तुम्हारी ओर चित्त लगाकर तुम्हें बुला रहे हैं। तुम हमारी विशाल समृद्धिके लिये आओ।

४ इन्द्र, तुम सोमपानके लिये कई वार यज्ञमें उपस्थित हुए हो। इसलिये इस समय सोमपानकी इच्छासे महान् अन्तःकरणके साथ इस यज्ञमें आओ। हमारे स्तोत्रोंको सुनो। तुम्हारी देहकी पुष्टिके लिये यजमान तुम्हें सोमरूप अन्न प्रदान करे।

५ इन्द्र, तुम दूरस्थित स्वर्ग किसी अन्य स्थान वा अपने गृहमें अथवा कहीं हो; स्तुति-पात्र और अश्वोंके अधिपति तुम मरुतोंके साथ प्रसन्न होकर हमारी रक्षा करनेके लिये हमारे यज्ञकी रक्षा करो।

४१ सूक्त

इन्द्र देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

अहेलमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्दवः सुतासः ।
गावो नवज्रन्त्स्वमोको अच्छेन्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम् ॥१॥
या ते काकुत्सुकृता या वरिष्ठा यया शश्वत्पिबसि मध्व ऊर्मिम् ।
तया पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात्सं ते वज्रो वर्ततामिन्द्र गव्युः ॥२॥
एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः ।
एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम् ॥३॥
सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्यानयं श्रेयान्चिकितुषे रणाय ।
एतं तितिर्व उप याहि यज्ञं तेन विश्वास्तविषीरा पृणस्व ॥४॥
ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वाङरं ते सोमस्तन्वे भवाति ।
शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु प्रास्माँ अव पृतनासु प्र विक्षु ॥५॥

---

१ इन्द्र, तुम क्रोध-शून्य होकर हमारे यज्ञमें आओ; क्योंकि तुम्हारे लिये पवित्र सोमरस अभिषुत हुआ है। वज्रधर, जैसे गायें गोशालामें जाती हैं, वैसे ही सोमरस कलशमें पैठ रहा है, इसलिये इन्द्र; तुम आओ। तुम यज्ञ-योग्य देवोंमें प्रधान हो।

२ इन्द्र, तुम जिस सुनिर्मित और सुविस्तृत जीभसे सदा सोम पान करते हो उसी जीभसे हमारे सोमरसका पान करो। सोमरस लेकर ऋत्विक्, तुम्हारे सामने खड़ा है इन्द्र, शत्रुओंकी गौओं-को आत्मसात् करनेके लिये अभिलाषी तुम्हारा वज्र शत्रुओंका संहार करे।

३ द्रवीभूत, अभीष्टवर्षी और विविध-मूर्ति यह सोम मनोरथवर्षक इन्द्रके लिये सुसंस्कृत हुआ है हे अश्वोंके अधिपति, सबके शासक और प्रचण्ड बलशाली इन्द्र, बहुत दिनोंसे, जिसके ऊपर तुमने प्रभुत्व किया है और जो तुम्हारे लिये अन्न रूप माना गया है, वही तुम इस सोमरसका पान करो

४ इन्द्र, अभिषुत सोम अनभिषुत सोमसे श्रेष्ठतर है और विचारशाली तुम्हारे लिये अधिक प्रसन्नताकारक है। शत्रु-विजयी इन्द्र, तुम यज्ञ-साधन इस सोमके पास आओ। और इसके द्वारा अपनी सारी शक्तियाँ सम्पूर्ण करो।

५ इन्द्र, हम तुम्हें बुलाते हैं। तुम हमारे सामने आओ। हमारा यह सोम तुम्हारे शरीरके लिये पर्याप्त हो शतक्रतु इन्द्र, अभिषुत सोम पानके द्वारा उल्लसित होओ और युद्धमें सब लोगोंसे हमें चारो ओरसे रक्षित करो।

४२ सूक्त

इन्द्र देवता । भरद्वाज ऋषि । अनुष्टुप् और बृहती छन्द ।

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चाद्दघ्वने नरे ॥१॥
एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्र सुतेभिरिन्दुभिः ॥२॥
यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥३॥
अस्मा अस्मा इदंधसेऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्परत् ॥४॥

४३ सूक्त

इन्द्र देवता भरद्वाज ऋषि । उष्णिक् छन्द ।

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥१॥

---

१ ऋत्विको, इन्द्रको सोमरस दो; क्योंकि वे पिपासु, सर्वज्ञाता, सर्वगामी, यज्ञमें अधिष्ठाता, यज्ञके नायक और सबके अग्रगामी हैं।

२ ऋत्विको. तुम सोमरसके साथ, अतिशय सोमरस-पान-कारी इन्द्रके पास उपस्थित होओ। अभिषुत सोमरससे भरे हुए पात्रके साथ बलशाली इन्द्रके सम्मुख आओ।

३ ऋत्विको अभिषुत और दीप्त सोमरसके साथ इन्द्रके पास उपस्थित होओ मेधावी इन्द्र तुम्हारा अभिप्राय जानते हैं और शत्रु संहारके साथ वह तुम्हारे मनोरथको पूर्ण करते हैं।

४ ऋत्विक् एकमात्र इन्द्रको ही सोम-रूप अन्नका अभिषुत रस दो। इन्द्र हमारे सारे उत्साही और जिते जानेवाले रिपुओंके द्वेषसे हमारी सदा रक्षा करे।

---

१ इन्द्र, जिस सोमरस-पानके उल्लासमें तुमने दिवोदासके लिये, शम्बरको वश किया था वही सोमरस तुम्हारे लिये अभिषुत हुआ है इसलिये इसे तुम पान करो।

यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमं तं च रक्षसे ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥२॥
यस्य गा अन्तरश्मनो मदे दृह्ला अवासृजः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥३॥
यस्य मन्दानो अन्धसो माघोनं दधिषे शवः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥४॥

४४ सूक्त

४ अनुवाक

इन्द्र देवता। बृहस्पतिके पुत्र शंयु ऋषि। अनष्टुप्, विराट् और त्रिष्टुप् छन्द ।

यो रयिवो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥१॥
यः शग्मस्तुविशग्म ते रायो दामा मतीनाम् ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥२॥

---

२ इन्द्र, जब सोमका मादक रस, प्रातः, मध्याह्न और सायंकी पूजामें अभिषुत होता है, तब तुम इसे धारण करते हो। यही सोमरस तुम्हारे लिये अभिषुत हुआ है। इसे पान करो।

३ इन्द्र, जिस सोमके मादक रसका पान करके तुमने पर्वतके बीच, अच्छी तरहसे बँधी हुई, गायोंको छुड़ाया था, वही सोमरस तुम्हारे लिये अभिषुत है। इसे पान करो।

४ इन्द्र, जिस सोमरूप अन्नके रस-पानसे उल्लसित होकर तुम असाधारण बलको धारण करते हो, वही सोमरस तुम्हार लिये अभिषुत हुआ है। इसे पान करो।

१ हे धनशाली और सोमरूप अन्नके रक्षक इन्द्र, जो सोम अतिशय धनशाली है और जो दीप्त यशके द्वारा समुज्ज्वल है, वही सोम अभिषुत होकर तुम्हें उल्लसित करता है।

२ हे विपुल-सुख-कारी और सोमरूप अन्नके रक्षाकारी इन्द्र, जो सोम तुम्हारा प्रसन्नता-कारक और तुम्हारे स्तोताओंका ऐश्वर्य-विधायक है, वही सोम अभिषुत होकर तुम्हें उल्लसित करता है।

येन वृद्धो न शवसा तुरो न स्वाभिरूतिभिः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥३॥
त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
इन्द्र विश्वासहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम् ॥४॥
यं वर्धयन्तीद्गिरः पतिं तुरस्य राधसः ।
तमिन्न्वस्य रोदसी देवी शुष्णं सपर्यतः ॥५॥
तद्व उक्थस्य बर्हणेन्द्रायोपस्तृणीषणि ।
विपो न यस्योतयो वि यद्रोहन्ति सक्षितः ॥६॥
अविदद्दक्षं मित्रो नवीयान्पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत् ।
ससवान्स्तौलाभिर्धौतरीभिरुरुष्या पायुरभवत्सखिभ्यः ॥७॥
ऋतस्य पथि वेधा अपायि श्रिये मनांसि देवासो अक्रन् ।
दधानो नाममहो वचोभिर्वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ॥८॥

---

३ हे सोमरूप अन्नके रक्षक, इन्द्र, जिस सोमके पानसे प्रवृद्ध-बल होकर, अपने रक्षक मरुतोंके साथ, रिपु-विनाश करते हो, वही सोम अभिषुत होकर तुम्हें उल्लसित करता है ।

४ यजमानो, हम तुम्हारे लिये उन इन्द्रकी स्तुति करते हैं, जो भक्तोंके कृपालु, बलके स्वामी, विश्वजेता, यागादि क्रियाओंके नायक और श्रेष्ठ दाता तथा सर्व-दर्शक हैं ।

५ हमारी स्तुतियों द्वारा इन्द्रका जो शत्रु-धन-हरण करने वाला बल वर्द्धित होता है, उसी बलकी परिचर्या स्वर्ग देव और पृथिवी-देवी करती हैं ।

६ स्तोताओ, इन्द्रके लिये अपना स्तोत्र विस्तृत करो; क्योंकि मेधावी व्यक्तिकी भाँति तुम्हारी रक्षा इन्द्रके साथ है ।

७ जो यजमान यज्ञादि कार्यमें दक्ष है, उसकी बातें इन्द्र जानते हैं । मित्र और नवीनतर सोमका पान करनेवाले इन्द्र स्तोताओंको श्रेष्ठ धन प्रदान करते हैं । हव्य-रूपी अन्न भोजन करनेवाले वह इन्द्र प्रवृद्ध और पृथिवीको कँपानेवाले अश्वोंके साथ स्तोताओंकी रक्षाकी इच्छासे आकर उनकी रक्षा करते हैं ।

८ यज्ञ मार्गमें सर्वदर्शी सोम पिया गया है । ऋत्विक् लोग उसी सोमको, इन्द्रका चित्त आकृष्ट करनेके लिये, प्रदर्शित करते हैं शत्रु जेता और विशाल देह धारण करनेवाले वही इन्द्र हमारे स्तवसे प्रसन्न होकर हमारे सामने प्रकट हों ।

द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः ।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिर्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि ॥९॥
इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः ।
नकिरापिर्ददृशे मर्त्यत्रा किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः ॥१०॥
मा जस्वने वृषभ नो ररीथा मा ते रेवतः सख्ये रिषाम ।
पूर्वीष्ट इन्द्र निष्षिधो जनेषु जह्यसुष्वीन्प्र वृहापृणतः ॥११॥
उदभ्राणीव स्तनयन्नियर्तीन्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या ।
त्वमसि प्रदिवः कारुधाया मा त्वादामान आ दभन्मघोनः ॥१२॥
अध्वर्यो वीर प्र महे सुतानामिन्द्राय भर स ह्यस्य राजा ।
यः पूर्व्याभिरुत नूतनाभिर्गीर्भिर्वावृधे गृणतामृषीणाम् ॥१३॥

---

९ इन्द्र, तुम हमें अत्यन्त दीप्तिसे युक्त बल दो। अपने उपासकोंके असंख्य शत्रुओंको दूर करो। अपनी बुद्धिसे हमें यथेष्ट अन्न दो। धनका भोग करनेके लिये हमारी रक्षा करो।

१० धनशाली इन्द्र, तुम्हारे लिये ही हम हव्य दे रहे हैं। अश्वोंके स्वामी इन्द्र, हमारे प्रतिकूल नहीं होना। मनुष्योंके बीच हम तुम्हारे सिवा किसीको अपना मित्र नहीं देखते। इन्द्र, यदि तुम्हारे अन्दर यह गुण नहीं रहता, तो तुम्हें प्राचीन लोग "धनद" क्यों कहते?

११ अभीष्ट-वर्षी इन्द्र, तुम हमें कार्य-विनाशक राक्षसादिकोंके पास नहीं छोड़ना। तुम धनयुक्त हो। तुम्हारे बन्धुत्वके ऊपर अवलम्बित होकर हम कोई विघ्न न पावें। मनुष्योंके बीच तुम्हारे लिये अनेक प्रकारके विघ्न उत्पन्न किये जाते हैं। जो अभिषव-कर्ता नहीं हैं, उनका संहार करो और जो तुम्हें हव्य नहीं देते, उनका विनाश करो।

१२ गर्जन करनेवाले पर्जन्य जैसे मेघ उत्पन्न करते हैं, वैसे ही इन्द्र स्तोताओंको देनेके लिये अश्व और गायें उत्पन्न करते हैं। इन्द्र, तुम स्तोताओंके प्राचीन रक्षक हो। तुम्हें हव्य न देकर धनी लोग तुम्हारे प्रति अयथा आचरण न करें।

१३ ऋत्विको, तुम इन्हीं महेन्द्रको अभिषुत सोम अर्पित करो; क्योंकि ये ही सोमके स्वामी हैं। यही इन्द्र स्तोता ऋषियोंके प्राचीन और नवीन स्तोत्रोंके द्वारा परिवर्द्धित हुए हैं।

अस्य मदे पुरु वर्पांसि विद्वानिन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान ।
तमु प्र होषि मधुमन्तमस्मै सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै ॥१४॥
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता वृत्रं वज्रेण मन्दसानः ।
गन्ता यज्ञं परावतश्चिदच्छा वसुर्धीनामविता कारुधायाः ॥१५॥
इदं त्यत्पात्रमिन्द्रपानमिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ।
मत्सद्यथा सौमनसाय देवं व्यस्मद्द्वेषो युयवद्व्यंहः ॥१६॥
एना मन्दानो जहि शूर शत्रूञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान् ।
अभिषेणाँ अभ्या देदिशानान्पराच इन्द्र प्र मृणा जही च ॥१७॥
आसु ष्मा णो मघवन्निन्द्र पृत्स्व स्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सूरीन्कृणुहि स्मा नो अर्धम् ॥१८॥

---

१४ ज्ञानी और अबाध प्रभाव इन्द्रने इसी सोमका पान कर और उत्फुल्लित होकर असंख्य प्रतिकूल आचरण करनेवाले शत्रुओंका विनाश किया है ।

१५ इन्द्र इस अभिषुत सोमका पान करें और इससे उत्फुल्लित होकर वज्र द्वारा वृत्रका संहार करें। गृहदाता, स्तोतृ-रक्षक और यजमान-पालक वह इन्द्र दूर देशसे भी हमारे यज्ञमें आवें ।

१६ इन्द्रके पीनेके योग्य और प्रिय यह सोम-रूप अमृत इन्द्रके द्वारा इस प्रकार पिया जाय कि, वह उत्फुल्लित होकर हमारे ऊपर अनुग्रह करें और हमारे शत्रुओं तथा पापको हमसे दूर करें ।

१७ शौर्यशाली इन्द्र, इस सोमके पानसे प्रसन्न होकर हमारे आत्मीय और अनात्मीय प्रतिकूलाचरण-कर्ता शत्रुओंका विनाश करो। इन्द्र, हमारे सामने आये हुए अस्त्र छोड़नेवाले शत्रु-सैन्योंको पराङ्मुख और उच्छिन्न करो ।

१८ इन्द्र, हमारे इस सारे संग्राममें अतुल धन हमें सुलभ करो। जय-प्राप्तिमें हमें समर्थ बनाओ। वर्षा, पुत्र और पौत्रके द्वारा हमें समृद्ध करो ।

आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः ।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु ॥१९॥
आते वृषन्वृषणो द्रोणमस्थुर्घृतप्रुषो नोर्मयो मदन्तः ।
इन्द्र प्र तुभ्यं वृषभिः सुतानां वृष्णो भरन्ति वृषभाय सोमम् ॥२०॥
वृषासि दिवो वृषभः पृथिव्या वृषा सिन्धूनां वृषभ स्तियानाम् ।
वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय स्वादू रसो मधुपेयो वराय ॥२१॥
अयं देवः सहसा जायमान इन्द्रेण युजा पणिमस्तभायत् ।
अयं स्वस्य पितुरायुधानीन्दुरमुष्णादशिवस्य मायाः ॥२२॥
अयमकृणोदुषसः सुपत्नीरयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः ।
अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगुह्लम् ॥२३॥

---

१९ इन्द्र, तुम्हारे अभीष्ट-वर्षक, स्वेच्छाके अनुसार रथमें नियुक्त, अभीष्ट-दाता रथके ढोनेवाले, वारिवर्षक, किरणों द्वारा संयुक्त, द्रुतगामी, हमारे सामने आनेवाले, नित्य तरुण, वज्र-वाहक और शोभन रूपसे योजित अश्व बहुत नशा करनेवाले सोमको पीनेके लिये तुम्हें ले आवें।

२० अभीष्ट-वर्षी इन्द्र, तुम्हारे जल-वर्षक और तरुण अश्व जलका सेवन करनेवाली समुद्र-तरङ्गों-के समान उल्लसित होकर तुम्हारे रथमें जुते हैं। तुम तरुण और काम-वर्षक हो। ऋत्विक् लोग तुम्हें पाषाण द्वारा अभिषुत सोमरस अर्पण करते हैं।

२१ इन्द्र, तुम स्वर्गके सेवन-कर्त्ता, पृथिवीके वर्षण-कर्त्ता, नदियोंके पूरण-कर्त्ता और एकत्र समवेत स्थावर और जङ्गम विश्व-भूतोंके अभीष्ट-कर्त्ता हो। अभीष्ट-प्रदायक इन्द्र, तुम श्रेष्ठ सेचन-कारी हो। तुम्हारे लिये मधुकी तरह पीने योग्य मीठा सोमरस बह रहा है।

२२ इस दीप्तिमान् सोमने मित्र इन्द्रके साथ जल लेकर बल-पूर्वक पणिकी स्तुति की थी। इसी सोमने गो रूप धनको चुरानेवाले द्वेषियोंकी माया और अस्त्रोंको व्यर्थ किया था।

२३ इसी सोमने उषाओंके पति-स्वरूप सूर्यको शोभा-सम्पन्न किया था। इसी सोमने सूर्य-मण्डलमें दीप्ति स्थापित की थी। इसी सोमने दीप्ति-संयुक्त तीनों भुवनोंके बीच स्वर्गमें गूढ़ भावसे अवस्थित त्रिविध अमृतोंको प्राप्त किया था।

अयं द्यावा पृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक्सप्तरश्मिम् ।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ॥२४

* * *

४५ सूक्त

दस मन्त्रोंके इन्द्र और अवशिष्टके बृहस्पति देवता। बृहस्पतिके पुत्र शंयु ऋषि।
अनुष्टुप् और गायत्री छन्द।

य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् ।
इन्द्रः स नो युवा सखा ॥१॥
अविप्रे चिद्वयो दधदनाशुना चिदर्वता ।
इन्द्रो जेता हितं धनम् ॥२॥
महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः ।
नास्य क्षीयन्त ऊतयः ।३॥
सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चते प्र च गायत ।
स हि नः प्रमतिर्मही ॥४॥

---

२४ इसी सोमने स्वर्ग और पृथिवीको अपने-अपने स्थानोंपर संस्थापित किया था। इसी सोमने सप्तरश्मि रथको योजित किया था। इसी सोमने स्वेच्छानुसार गौओंके बीच परिणत दुग्धके दस यन्त्रोंके कूपको या बहुधारा-विशिष्ट प्रस्रवणको स्थापित किया था।

* * *

१ जो उत्कृष्ट नीति द्वारा तुर्वश और यदुको दूर देशसे लाये थे, वही तरुण इन्द्र हमारे मित्र बनें।

२ जो व्यक्ति इन्द्रकी स्तुति नहीं करता, उसे भी इन्द्र अन्न प्रदान करते हैं। इन्द्र मन्थर-गति अश्व पर चढ़कर शत्रुओंके बीच निहित सम्पत्तिको जीतते हैं।

३ इन्द्रकी नीतियाँ उत्कृष्ट और महान् हैं। उनकी स्तुतियाँ भी नाना प्रकारकी हैं। उनकी रक्षाका कथन कभी क्षीण नहीं होता।

४ बन्धुओ, मन्त्र द्वारा आवाहनके योग्य उन्हीं इन्द्रकी पूजा करो और उन्हींकी स्तुति करो; क्योंकि वही हमें वस्तुतः प्रकृष्ट बुद्धि प्रदान करते हैं।

त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता द्वयोरसि ।
उतेदृशे यथा वयम् ॥५॥
नयसीद्वति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः ।
नृभिः सुवीर उच्यसे ॥६॥
ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखाय मृग्मियं । गां न दोहसे हुवे ॥७॥
यस्य विश्वानि हस्तयोरूचुर्वसूनि नि द्विता । वीरस्य पृतनासहः ॥८॥
वि दृह्लानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते । वृह माया अनानत ॥९॥
तमु त्वा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते । अहूमहि श्रवस्यवः ॥१०॥
तमु त्वा यः पुरासिथ यो वा नूनं हिते धने । हव्यः स श्रुधी हवम् ११
धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान् । त्वया जेष्म हितं धनम् ॥१२॥

५ वृत्र-विनाशक इन्द्र, तुम एक वा दो स्तोताओंके रक्षक हो। तुम्हीं हमारे जैसे लोगोंके रक्षक हो ।

६ इन्द्र, हमारे पाससे विद्वेषियोंको दूर करो और स्तोताओंको समृद्धि दो। इन्द्र, तुम शोभन पुत्र-पौत्र आदि देनेवाले हो; इसलिये मनुष्य तुम्हारी स्तुति करते हैं।

७ मैं स्तोत्रके बलसे मित्र, महान्, मन्त्र द्वारा आह्वानके योग्य और स्तुति-पात्र इन्द्रको, धेनुका तरह अभीष्ट दूहनेके लिये, बुलाता हूं ।

८ वीर्यवान् और शत्रु-सेनाको पराजित करनेवाले इन्द्रके दोनों हाथोंमें दिव्य और पार्थिव धन है—ऐसा ऋषि लोग बराबर कहा करते हैं ।

९ हे वज्रधारक और यज्ञपति इन्द्र, तुम शत्रुओंके दृढ़ नगरोंको निर्मूल करते हो। हे सर्वोन्नत इन्द्र, तुम शत्रुओंको मायाओंको विनष्ट करते हो ।

१० हे सत्यस्वभाव, सोमपायी और अन्नरक्षक इन्द्र, हम, अन्नाभिलाषी होकर, ऐसे गुणोंसे संयुक्त तुम्हें ही बुलाते हैं ।

११ इन्द्र, तुम पहले आह्वानके योग्य थे और इस समय शत्रुओंके बीच रखे हुए धनकी प्राप्तिके लिये आहूत होते हो। हम तुम्हें बुलाते हैं। तुम हमारा आह्वान सुनो ।

१२ इन्द्र, हमारे स्तोत्रको सुनकर तुम्हारे प्रसन्न होनेपर तुम्हारी कृपासे हम अश्वोंके द्वारा शत्रुओंके अश्व, उत्कृष्ट अन्न और गूढ़ धनको जीतनेमें समर्थ हों ।

अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते । भरे वितन्तसाय्यः ।१३।
या त ऊतिरमित्रमहन्मक्षूजवस्तमासति । तया नो हिनुहि रथम् ॥१४॥
स रथेन रथीतमोऽस्माकेनाभियुग्वना । जेषि जिष्णो हितं धनम् ॥१५॥
य एक इत्तमुष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः । पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥१६॥
यो गृणतामिदासिथापिरूती शिवः सखा । स त्वं न इन्द्र मृलय ।१७॥
धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः । सासहीष्ठा अभि स्पृधः ॥१८॥
प्रत्नं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम् । ब्रह्मवाहस्तमं हुवे ॥१९॥
स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको वसूनि पत्यते । गिर्वणस्तमो अध्रिगुः ॥२०॥
स नो नियुद्भिरा पृण कामं वाजेभिरश्विभिः । गोमद्भिर्गोपते धृषत् ।२१॥

---

१३ वीर और स्तुति-पात्र इन्द्र, तुम शत्रुओंके बीच निहित धनकी प्राप्तिके लिये युद्ध शत्रुओंको जीतनेमें समर्थ हुए हो।

१४ रिपुञ्जय इन्द्र, तुम्हारी गति अतिशय वेगसे संयुक्त है। उसी गतिके द्वारा शत्रुकी जय करनेके लिये हमारा रथ चलाओ।

१५ जयशील और रथि-श्रेष्ठ इन्द्र, तुम हमारे शत्रु-विजयी रथके द्वारा शत्रुओंके द्वारा निहित धनको जीतो।

१६ जो सर्वदर्शी और वर्षणशील हैं, जिन्होंने एक-एक मनुष्योंके अधिपति-रूपसे जन्म धारण किया है, उन्हीं इन्द्रको स्तुति करो।

१७ इन्द्र, तुम रक्षाके कारण सुखदाता और मित्र हो। हमारी स्तुतिपर तुमने प्राचीन समयमें बन्धुता प्रकट की थी। इस समय हमें सुखी करो।

१८ वज्रधर इन्द्र, तुम राक्षसोंके नाशके लिये अपने हाथोंमें वज्रधारण करते हो और स्पर्द्धावालोंको भली भाँति पराजित करते हो।

१९ जो धनद, मित्र, स्तोताओंके उत्साहदाता और मन्त्रोंके द्वारा आह्वानके योग्य हैं, उन्हीं प्राचीन इन्द्रका मैं आह्वान करता हूँ।

२० जो स्तुति द्वारा वन्दनीय और अप्रतिहत-गति हैं, वही एक मात्र इन्द्र ही सारे पार्थिव धनोंके ऊपर एकाधिपत्य करते हैं।

२१ हे गौओंके अधिपति, तुम वड़वा लोगोंके साथ आकर अन्न, असंख्य अश्वों और धेनुओं से भली भाँति हमारे मनोरथको पूरा करो।

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥२२॥
न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत्सीमुप श्रवद्गिरः ॥२३॥
कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥२४॥
इमा उ त्वा शतक्रतोऽभि प्र णोनुवुर्गिरः । इन्द्र वत्सं न मातरः ॥२५॥
दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते । अश्वो अश्वायते भव ॥२६॥
स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥२७॥
इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः । वत्सं गावो न धेनवः ॥२८॥
पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि । वाजेभिर्वाजयताम् ॥२९॥
अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः । अस्मान्राये महे हिनु ॥३०॥

२२ स्तोताओं, जैसे घास गौके लिये सुखावह होती है, वैसे ही सोमरसके तैयार होनेपर इन्द्रका सुख-दायक स्तोत्र भी बहुसंख्यक लोगोंके द्वारा वन्दनीय होता है। रिपुञ्जय इन्द्रके पास एकत्र होकर गान करो।

२३ गृह-प्रदाता इन्द्र जिस समय हमारा स्तोत्र सुनते हैं, उस समय वह धेनुओंके साथ अन्न प्रदान करनेमें विरत नहीं होते।

२४ दस्युओंके वध-कर्ता इन्द्र कुवित्सकी असंख्य धेनुओंवाली गोशालामें गये और उन्होंने अपने बुद्धि-बलसे हमारे लिये उस निगूढ़ गो-वृन्दको प्रकट किया।

२५ बहु-विध कर्मोंके अनुष्ठाता इन्द्र, जैसे गायें बार-बार बछड़ोंके सामने जाती हैं, वैसे ही हमारी ये सारी स्तुतियाँ बार-बार तुम्हारी ओर जाती हैं।

२६ इन्द्र, तुम्हारे बन्धुत्वका विनाश नहीं होता। वीर, तुम गौ चाहनेवालेको गौ और घोड़ा चाहनेवालेको घोड़ा देते हो।

२७ इन्द्र महाधनके लिये प्रदत्त सोमरसका पान करके अपनेको परितृप्त करो। तुम अपने उपासकको निन्दकके हाथ नहीं सौंपते।

२८ स्तुति द्वारा वन्दनीय इन्द्र, जैसे दूध देनेवाली गायें बछड़ोंके पास जाती हैं, वैसे ही बार-बार सोमरसके अभिषुत होनेपर हमारी ये स्तुतियाँ, बड़े वेगसे, तुम्हारी ओर जाती हैं।

२९ यज्ञ-मण्डपमें हव्य रूप अन्नके साथ दिये गये असंख्य स्तोताओंके स्तोत्र, असंख्य शत्रुओंके नाशक तुम्हें, बलशाली करें।

३० इन्द्र, अतीव उन्नति-कारक हमारे स्तोत्र तुम्हारे पास जायँ। हमें, महाधनकी प्राप्तिके लिये, प्रेरित करो।

अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात् । उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः ॥३१॥
यस्य वायोरिव द्रवद्भद्रा रातिः सहस्रिणी । सद्यो दानाय मंहते ॥३२॥
तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः ।
बृबुं सहस्रदातमं सूरिं सहस्रसातमम् ॥३३॥

४६ सूक्त

इन्द्र देवता । शंयु ऋषि । बृहती और सतोबृहती छन्द ।

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥१॥
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महस्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥२॥

---

३१ गङ्गाके ऊँचे तटोंकी तरह प्राणियोंके बीच ऊँचे स्थानपर बृबुने अधिष्ठान किया था।❀

३२ मैं धनार्थी हूँ। बृबुने मुझे वायु-वेगके समान वदान्यताके साथ एक हजार गायें तुरत दी थीं।

३३ हम सब लोग स्तुति करके हजार गायें देनेवाले, विद्वान् और हजारों स्तोत्रोंके पात्र उन्हीं बृबुकी सदा प्रशंसा करते हैं।

* * *

१ हम स्तोता हैं। अन्न-प्राप्तिके लिये तुम्हें बुलाते हैं। तुम साधुओंके रक्षक हो; इसलिये अश्वोंसे युक्त संग्राममें शत्रुओंको जीतनेके लिये वे तुम्हें ही बुलाते हैं।

२ विचित्र-वज्र-पाणि वज्री, जैसे तुम युद्धमें विजयी पुरुषको यथेष्ट अन्न देते हो, वैसे ही तुम हमारे स्तवसे प्रसन्न होकर हमें यथेष्ट गौ और रथ वहन करनेमें पटु अश्व दो; तुम शत्रु-नाशक और प्रतापी हो।

❀ इस मन्त्रमें गङ्गाका स्पष्ट उल्लेख है। वृबु शिल्पकलाचार्य थे। ऋग्वेद १ २० १ देखिये। 'नीतिमञ्जरी" और "मनुस्मृति" (१०.१०७) में भी वृबु की कथा है।

यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥३॥
बाधसे जनान्वृषभेव मन्युना घृषौ मीळ्ह ऋचीषम ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये ॥४॥
इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥५॥
त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन्देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोमित्रान्त्सुषहान्कृधि ॥६॥
यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद्वा पञ्चक्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥७॥
यद्वा तृक्षौ मघवन्द्रुह्यावा जने यत्पुरौ कच्च वृष्ण्यम् ।
अस्मभ्यं तद्रिरीहि सं नृषाह्येऽमित्रान्पृत्सु तुर्वणे ॥८॥

---

३ जो प्रबल शत्रुओंके निधन-कर्त्ता और सर्वदर्शी हैं, उन्हीं इन्द्रको हम बुलाते हैं। सहस्र शेफ, अतुलधन-सम्पन्न और सत्पालक इन्द्र, रण-स्थलमें तुम हमें समृद्धि दो।

४ इन्द्र, जैसा ऋचामें वर्णन मिलता है, वैसा ही तुम्हारा रूप है। तुम तुमुल युद्धमें, वृषभकी तरह, अत्यन्त क्रोधके साथ हमारे शत्रुओंपर आक्रमण करो। जिससे हम सन्तति, जल और सूर्यका दर्शन (अथवा बहुत समय तक भोग) कर सकें, उसके लिये तुम रण-भूमिमें हमारे रक्षक बनो।

५ शोभन हनु (केहुँनी) वाले और अद्भुत-वज्रपाणि इन्द्र, जिस अन्नसे तुम स्वर्ग और पृथिवीका पोषण करते हो, हमारे पास वही प्रकृष्टतम, अत्यन्त बलवर्द्धक और पुष्टिसाधक अन्न ले आओ।

६ दीप्ति-शाली इन्द्र, तुम हमारी रक्षा करोगे; इसलिये तुम्हें हम बुलाते हैं। तुम देवोंमें सबसे बली और शत्रु-जयी हो। गृहदाता इन्द्र, तुम समस्त राक्षसोंको अलग करो और हमें शत्रुओंके ऊपर विजय दो।

७ इन्द्र, मनुष्योंमें जो कुछ बल और धन हैं और पाँचों वर्णोंमें जो अन्न हैं, सो सब सारे महान् बलके साथ, हमें दो।

८ ऐश्वर्यशाली इन्द्र, शत्रुओंके साथ युद्ध प्रारम्भ होनेपर हम उन्हें युद्धमें जीत सकें, इसके लिये तुम हमें तक्षु, द्राह्य और पुरुका सारा बल दे देना।

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥९॥
ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥१०॥
अध स्मा नो वृधे भवेन्द्र नायमवा युधि ।
यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिनो दिद्यवस्तिग्ममूर्धानः ॥११॥
यत्र शूरासस्तन्वो वितन्वते प्रिया शर्म पितॄणाम् ।
अध स्मा यच्छ तन्वे तने च छर्दिरचित्तं यावय द्वेषः ॥१२॥
यदिन्द्र सर्गे अर्वतश्चोदयासे महाधने ।
असमने अध्वनि वृजिने पथि श्येनाँ इव श्रवस्यतः ॥१३॥
सिन्धूँरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोशमनु ष्वणि ।
आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि गृभीता बाह्वोर्गवि ॥१४॥

---

९ इन्द्र, हव्य रूप धनसे युक्त मनुष्योंको और मुझे एक ऐसा घर दो, जो लकड़ी, ईंट और पत्थरका बना हुआ हो और जिसमें शीत, ताप और ग्रीष्म न सतावें तथा जो घर समृद्ध और आच्छादक हो। शत्रुओंके सारे दीप्तियुक्त आयुधोंको दूर करो।

१० ऐश्वर्यशाली इन्द्र, जिन्होंने हमारी गायें अपहरण करनेके लिये हमारे ऊपर शत्रुवत् आक्रमण किया था अथवा जिन्होंने धृष्टताके साथ हमें उत्पाड़ित किया था, उनसे (हमारे स्तोत्रोंसे प्रसन्न होकर) हमारी रक्षा करनेके लिये हमारे पास आओ।

११ इन्द्र, इस समय हमें धन दो। जिस समय पक्ष-युक्त, तिक्ष्णाग्र और दीप्त-शत्रुओंके वाण आकाशसे गिरते हैं, उस समय जो हमारी रक्षा करते हैं, उनकी रक्षा तुम समर-भूमिमें करना।

१२ शत्रुओंके सामने जिस समय वीर लोग अपनी देहको दिखाते और पैतृक स्थानोंका परित्याग करते हैं, उस समय तुम हमें और हमारी सन्तानोंको शरीर-रक्षाके लिये, गुप्त रूपसे, कवच देना और शत्रुओंको दूर करना।

१३ महायुद्धका समारोह होनेपर तुम विकट मार्गसे हमारे अश्वोंको, कुटिल प्रान्तसे जानेवाले, द्रुत-गति और आमिषार्थी श्येनकी तरह, भेजना।

१४ यद्यपि डरके मारे घोड़े जोरसे हिनहिनाते हैं, तथापि निम्नगामिनी नदियोंकी तरह, वे ही वेग-गामी और दृढ़संयत घोड़े, आमिषार्थी पक्षियोंकी तरह, धेनु-प्राप्तिके लिये, प्रवृत्त सग्राममें, बार-बार दौड़ते हैं।

४७ सूक्त

पाँच मन्त्रोंके सोम, बीसवेंके प्रथम पादके देवगण, द्वितीयकी पृथिवी. तृतीयके बृहस्पति और चतुर्थ पादके इन्द्र देवता हैं। बीससे चौबीस तक सृञ्जय-पुत्र प्रस्तोक छबीससे तीन मन्त्रोंके देवता रथ, उनतीससे एकतीसके दुन्दुभि और शेष मन्त्रोंके देवता इन्द्र हैं। भरद्वाजके पुत्र गर्ग ऋषि हैं। त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, गायत्री, बृहती और जगती छन्द हैं।

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्र न कश्चन सहत आहवेषु ॥१॥
अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद ।
पुरूणि यश्च्योत्ना शम्बरस्य वि नवतिं नव च देह्योऽहन् ॥२॥
अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः ।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥३॥
अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः ।
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ॥४॥
अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।
अयं महान्महता स्कम्भनेनोद्द्यामस्तभ्नाद्वृषभो मरुत्वान् ॥५॥

---

१ यह अभिषुत सोम सुस्वादु, मधुर, तीव्र और सारवान है। इसका इन्द्र पान कर लेते हैं, तब संग्राममें उनके सामने कोई नहीं ठहर सकता।

२ इस यज्ञमें पीनेपर ऐसे ही सोमने अत्यन्त हर्ष प्रदान किया था। वृत्रके विनाशके समय इन्द्रने इसे पीकर प्रसन्नता प्राप्त की थी। इसने शम्बरकी निन्यानबे पुरियोंका विनाश किया था।

३ पीनेपर यह सोमरस मेरे वाक्यकी स्फूर्तिको बढ़ाता है। यह अभिलषित बुद्धिको प्रदान करता है। इसी सुबुद्धि सोमने स्वर्ग पृथिवी, दिन रात्रि, जल और औषधि आदि छ अवस्थाओंकी सृष्टि की है। भुवनमें कोई भी इससे दूर नहीं ठहर सकता।

४ फलतः इसी सोमरसने पृथिवीका विस्तार और स्वर्गको दृढता की है। इसी सोमरसने औषधि, जल और धेनु नामक तीन उत्कृष्ट आधारोंमें रस दिया था। यही विस्तृत अन्तरीक्षको धारण किये हुए है।

५ निर्मल आकाशमें स्थित उषाके पहले यही सोम विचित्र दर्शन सूर्य-ज्योतिको प्रकट करता है, वारिवर्षी और बलशाली यह सोमरस ही मरुतोंके साथ सुदृढ़ स्तम्भ द्वारा स्वर्गको धारण किये हुए है।

धृषत्पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि ॥६॥
इन्द्र प्र णः पुर एतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ ।
भवा सुपारो अतिपारयो नो भवा सुनोतिरुत वामनीतिः ॥७॥
उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥८॥
वरिष्ठे न इन्द्र बन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा ।
इषमा वक्षोषांवर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन्रायो अर्य्यः ॥९॥
इन्द्र मृल मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम् ।
यत्किञ्चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् ॥१०॥
त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥११॥

---

६ वीर इन्द्र धन-प्राप्तिके लिये आरम्भ किये गये संग्राममें तुम शत्रु संहार करो। साहसके साथ कलस-स्थित सोमरसका पान करो। मध्यान्हके यज्ञमें तुम बहुत सोम पान करो। हे धन-पात्र हमें धन दो।

७ इन्द्र, मार्ग रक्षककी तरह तुम अग्रगामी होकर हमारे प्रति दृष्टि रखना और हमारे सामने श्रेष्ठ धन ले आना। तुम भली भाँति हमें दुःख और शत्रुसे बचाओ और उत्कृष्ट नेता होकर हमें अभिलषित धनमें ले जाओ।

८ इन्द्र, तुम ज्ञानी हो। हमें विस्तीर्ण लोकमें —सुखमय और भय शून्य आलोकमें भी—निर्विघ्न ले जाना। तुम प्राचीन हो। हम तुम्हारे मनोज्ञ और बृहत् बाहुओंके ऊपर रक्षाके लिये आश्रित हैं।

९ धनाढ्य इन्द्र, तुम हमें अपने पराक्रमी अश्वोंके पीछे विस्तृत रथपर चढ़ाओ। त्रिविध अन्नोंके बीच तुम हमारे लिये प्रकृष्टतम अन्न ले आओ। मघवन्, कोई भी धनी धनमें हमें न लाँघ सके।

१० इन्द्र, तुम मुझे सुखी करो। मेरी जीवन-वृद्धि करनेमें प्रसन्न होओ। लौहमय खड्गकी धारकी तरह मेरी बुद्धिको तेज करो। तुम्हें प्रसन्न करनेके लिये इस समय जो कुछ मैं कह रहा हूँ, सो सब ग्रहण करो। देवगण मेरी रक्षा करें।

११ जो शत्रुओंसे रक्षा करते और मनोरथ पूर्ण करते हैं, जो अनायास आह्वान-योग्य, शौर्यशाली और सभी कामोंमें समर्थ हैं, मैं उन्हीं बहु-लोक-वन्दनीय इन्द्रको, प्रत्येक यज्ञमें, बुलाता हूँ। धनवान् इन्द्र हमें समृद्धि दें।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभि सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१२॥
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद्द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥१३॥
अव त्वे इन्द्र प्रवता नोर्मिर्गिरो ब्रह्माणि नियुतो धवन्ते ।
उरू न राधः सवना पुरूण्यपो गा वज्रिन्युवसे समिन्दून् ॥१४॥
क ईं स्तवत्कः पृणात्को यजाते यदुग्रमिन्मघवा विश्वहावेत् ।
पादाविव प्रहरन्नन्यमन्यं कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः ॥१५॥
शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमन्यमतिनेनीयमानः ।
एधमानद्विळुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥१६॥
परा पूर्वेषां सख्य वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥१७॥

---

१२ शोभन रक्षा करनेवाले और धनशाली इन्द्र रक्षा द्वारा हमें सुख देते हैं। वही सर्वज्ञ इन्द्र हमारे शत्रुओंका बध करके हम निर्भय करते हैं। उनकी प्रसन्नतासे हम अतीव वीर्य-शाली बनें।

१३ हम उन्हीं यागार्ह इन्द्रके अनुग्रह, बुद्धि और कल्याणवाही प्रीतिके पात्र बनें। रक्षक और धनी वही इन्द्र विद्वेषियोंको बहुत दूर ले जायँ।

१४ इन्द्र, स्तोताओंकी स्तुति,, उपासना, विशाल धन और प्रचुर अभिषुत सोमरस, निम्न-देश-प्रवण जलराशिकी तरह, तुम्हारी ओर जाते हैं। वज्रधर इन्द्र, तुम जल, दूध और सोमरस भली भाँति मिलाते हो।

१५ भली भाँति कौन मनुष्य इन्द्रकी स्तुति, प्रसन्नता और यज्ञ करनेमें समर्थ है? धनशाली इन्द्र प्रतिदिन अपनी उग्र शक्तिको जानते हैं। जैसे पथिक अपने पैरोंको कभी आगे और कभी पीछे करता है, वैसे ही इन्द्र अपने बुद्धि-बलसे स्तोताको कभी परवर्त्ती और कभी अग्रवर्त्ती करते हैं।

१६ प्रबल शत्रुका दमन करके और स्तोताओंका स्थान सदा परिवर्त्तन करके इन्द्र, अपनी वीरताके लिये, प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। उद्धत व्यक्तियोंके द्वेषी और स्वर्गीय तथा पार्थिव धनोंके अधिपति इन्द्र अपने सेवकोंको, रक्षाके लिये, बार-बार बुलाते हैं।

१७ इन्द्र पूर्वतन प्रशस्त कर्मोंके अनुष्ठाताओंकी मित्रता त्याग देते हैं और उनसे द्वेष करके उनकी अपेक्षा निकृष्ट व्यक्तियोंके साथ मित्रता करते हैं। अथवा अपनी उपासनासे रहित व्यक्तियोंको छोड़कर परिचारकोंके साथ अनेक वर्ष रहते हैं।

Digitization by Arya Samaj Foundation, Chennai

रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥१८॥
युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति ।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥१९॥
अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत् ।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम् ॥२०॥
दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्द्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः ।
अहन्दासा वृषभो वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च ॥२१॥
प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दशकोशयीर्दश वाजिनोदात् ।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥२२॥
दशाश्वान्दशकोशान्दश वस्त्राधिभोजना ।
दशो हिरण्यपिण्डान्दिवोदासादसानिषम् ॥२३॥

१८ सारे देवोंके प्रतिनिधि इन्द्र तीन प्रकारकी मूर्त्तियाँ धारण करते हैं और इन रूपोंको धारण कर वह अलग-अलग प्रकट होते हैं। वह माया द्वारा अनेक रूप धारण करके यजमानोंके पास उपस्थित होते हैं; क्योंकि इन्द्रके रथमें हजार घोड़े जोते जाते हैं।

१९ रथमें इन्द्र ही घोड़े जोतकर त्रिभुवनोंके अनेक स्थानोंमें प्रकट होते हैं दूसरा कौन व्यक्ति प्रतिदिन उपस्थित स्तोताओंके बीच जाकर शत्रुओंसे उनकी रक्षा करता है ?

२० देवो हम गायें घूमते-घूमते उस देशमें आ पहुँचे हैं, जहाँ गायें नहीं हैं। विस्तृत पृथिवी दस्युओंको आश्रय देती है। वृहस्पति, तुम धेनुओंके अनुसन्धानमें हमें परिचालित करो। इन्द्र, इस तरहसे पथ-भ्रष्ट अपने उपासकको मार्ग दो। ❀

२१ इन्द्र अन्तरिक्ष स्थित गृहसे सूर्य-रूपमें प्रकट होकर दिनका अपरार्द्ध प्रकाशित करनेके लिये प्रतिदिन, समान रीतिसे, रात्रिको दूर करते हैं। "उदव्रज" नामक देशमें शम्बर और वर्ची नामके दो धनार्थी दासोंका वर्षक इन्द्रने संहार किया था।

२२ इन्द्र, प्रस्तोकने तुम्हारे स्तोताओंको (हमें) सोनेसे भरे दस कोश और दस घोड़े प्रदान किये थे। अतिथिग्वने शम्बरको जीत कर जो धन प्राप्त किया था, उसी धनको हमने दिवोदाससे पाया है।

२३ मैंने दिवोदासके पाससे दस घोड़े, दस सोनेके कोश, कपड़े यथेष्ट अन्न और दस हिरण्य-पिण्ड पाये हैं।

❀ इससे गो-रहित अनार्य-देशमें आर्योंका जाना सूचित होता है।

दशरथान्प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः । अश्वथः पायवेऽदात् ॥२४॥
महि राधो विश्वजन्यं दधानान्भरद्वाजान्त्सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट ॥२५॥
वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धो असि वीलयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥२६॥
दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥२७॥
इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमान्नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥२८॥
उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अपसेध शत्रून् ॥२९॥

२४ मेरे भाई अश्वत्थने पायुको घोड़ोंके साथ दस रथ और अथर्व-गोत्रीय ऋषियोंको एक सौ गायें प्रदान कीं ।

२५ भरद्वाजके पुत्रने सबकी भलाईके लिये जो ये सब ऐश्वर्य ग्रहण किये थे, सृञ्जय-पुत्रने उनकी पूजा की थी।

२६ वनस्पति-निर्मित रथ, तुम्हारे सब अवयव दृढ़ हों। तुम हमारे रक्षक और मित्र बनो। तुम प्रतापी वीरोंसे युक्त होओ। तुम गोचर्म द्वारा बाँधे गये हो। हमें सुदृढ़ करो। तुम्हारे ऊपर आरूढ़ रथी अनायास ही संग्राममें शत्रुओंको जीतनेमें समर्थ हो।

२७ ऋत्विको, तुम हव्यसे रथका यज्ञ करो । यह रथ स्वर्ग और पृथिवीके सारांशसे बना है, वनस्पतियोंके स्थिरांशसे घटित है; जलके वेगकी तरह वेगवान् है, गोचर्म द्वारा ढका हुआ तथा वज्रकी तरह है ।

२८ हे दिव्य रथ, हमारे यज्ञमें प्रसन्न होकर हव्य ग्रहण करो; क्योंकि तुम इन्द्रके वज्र-स्वरूप, मरुतोंके अग्रवर्त्ती, मित्रके गर्भ और वरुणकी नाभि हो ।

२९ हे युद्ध-दुन्दुभि, अपने शब्दसे स्वर्ग और धरणीको परिपूर्ण करो—स्थावर और जङ्गम इस बातको जानें। तुम इन्द्र और अन्य देवोंके साथ होकर हमारे रिपुओंको दूर फेंक दो।

आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा नि ष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इतइन्द्रस्य मुष्टिरसि वीलयस्व ॥३०॥
आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥३१॥

३० दुन्दुभि, हमारे शत्रुओंको रुलाओ हमें बल दो। इतने जोरसे बजो कि, दुर्द्धर्ष शत्रुओंको दुःख मिले। दुन्दुभि, जो हमारा अनिष्ट करके आनन्दित होते हैं, उन्हें दूर हटाओ तुम इन्द्रकी मुष्टिकासी हो; इसलिये हमें दृढ़ता दो ।

३ इन्द्र, हमारी सारी गायोंको रोक कर हमारे पास ले आओ। सबके पास घोषणा करनेके लिये दुन्दुभि नियत उच्च रव करता है। हमारे सेनानी घोड़ोंपर चढ़कर इकट्ठे हुए हैं इन्द्र, हमारे रथारूढ़ सैनिक और सेनाएँ युद्धमें विजयी बनें ।

सप्तम अध्याय समाप्त

अष्टम अध्याय

४८ सूक्त

प्रथम दस ऋकोंके देवता अग्नि, ग्यारहसे पन्द्रह तक मरुद्गण, सोलहसे उनीस तक पूषन, बीससे इक्कीस तक पृश्नि और बाईसवें मन्त्रके देवता पृश्नि, गर्ग अथवा पृथिवी हैं। बृहस्पतिके पुत्र शंयु ऋषि हैं। बृहती, महाबृहती, अनुष्टुप्, सतोबृहती, जगती, ककुप्, उष्णिक्, गायत्री, पुर उष्णिक्, अनुष्टुप् आदि छन्द हैं।

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥१॥
ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥२॥
वृषा ह्यग्ने अजरो महान्विभास्यर्चिषा ।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि ॥३॥
महो देवान्यजसि यद्यानुषक्तव क्रत्वोत दन्सना ।
अर्वाचः सीं कृणुह्यग्नेवसे रास्व वाजोत वंस्व ॥४॥
यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥५॥

---

१ स्तोताओ, तुम प्रत्येक यज्ञमें स्तोत्र द्वारा शक्तिमान् अग्निकी बार-बार स्तुति करो। हम उन अमर, सर्व-द्रष्टा और मित्रकी तरह अनुकूल अग्निदेवकी प्रशंसा करते हैं।

२ हम शक्ति-पुत्रकी प्रशंसा करते हैं; क्योंकि वह वस्तुतः हमसे प्रसन्न हैं। हव्य वहन करनेवाले अग्निको हम हव्य प्रदान करते हैं। वह संग्राममें हमारे रक्षक और समृद्धि-विधायक हों। वह हमारे पुत्रोंकी रक्षा करें।

४ अग्नि, तुम महान् देवोंका यज्ञ किया करते हो; इसलिये हमारे यज्ञमें सदा देवोंका यज्ञ करो। हमारी रक्षाके लिये अपनी बुद्धि और कायसे देवोंको हमारे सामने ले आओ। तुम हमें हव्य-रूप अन्न दो और स्वयं इसे स्वीकार करो।

५ तुम यज्ञके गर्भ हो; तुम्हें सोममें मिलानेके लिये जल (वसतीवरी), अभिषव-पाषाण और अरणि-काष्ठ पुष्ट करते हैं। तुम ऋत्विकों द्वारा बल-पूर्वक मथे जाकर पृथिवीके अत्युन्नत स्थानमें (देव-यजन-देशमें) प्रादुर्भूत होओ।

आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि ।
तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा ॥६॥
बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥७॥
विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ।
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारन्शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति ॥८॥
त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥९॥
पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥१०॥
आ सखायः सबर्दुघां धेनुमजध्वमुप नव्यसा वचः ।
सृजध्वमनपस्फुराम् ॥११॥

---

६ जो अग्नि दीप्ति द्वारा स्वर्ग और पृथिवीको पूर्ण करते हैं, जो धूएँके साथ आकाशमें उठते हैं, वही दीप्तिमान् और अभीष्ट-वर्षी अग्नि अंधेरी रातका तम नष्ट करते देखे जाते हैं। दीप्तिमान् और अभीष्ट-वर्षी वही अग्नि रात्रियोंके ऊपर अधिष्ठान करते हैं।

७ देव, देवोंमें कनिष्ठ और प्रदीप्त अग्नि, तुम हमारे भ्राता भारद्वाज द्वारा समिध्यमान होकर हमें धन देते हुए निर्मल और प्रबल दीप्तिके साथ प्रज्वलित होओ। प्रदीप्त अग्नि, तुम प्रज्वलित होओ।

८ अग्नि, तुम सारे मनुष्योंके गृहपति हो। मैं तुम्हें सौ हेमन्तों तक प्रज्वलित करता हूँ। तुम मुझे सैकड़ों रक्षाओं द्वारा पापसे बचाओ। जो तुम्हारे स्तोताओंको अन्न देते हैं, उन्हें भी बचाओ।

९ गृहदाता विचित्र अग्नि, तुम हमारे पास रक्षाके साथ धन भेजो; क्योंकि तुम्हीं सारे धनोंके प्रेरक हो। शीघ्र ही हमारी सन्तानोंको प्रतिष्ठित करो।

१० अग्नि, समवेत और हिंसा-रहित रक्षाके द्वारा हमारे पुत्र-पौत्रका पालन करो। हमारे यहाँसे तुम देवोंका क्रोध और मनुष्योंका विद्वेष हटाओ।

११ बन्धुगण, नये स्तोत्रोंके साथ तुम दूध देनेवाली गायके पास आओ। इसके पश्चात् उसे इस प्रकार छुड़ाओ, ताकि उसकी कोई हानि न होने पावे।

या शर्धाय मारुताय स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत ।
या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरेवयावरी ॥१२॥
भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता ।
धेनुं च विश्वदोहसमिषं च विश्वभोजसम् ॥१३॥
तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम् ।
अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसं विष्णुं न स्तुष आदिशे ॥१४॥
त्वेषं शर्धो न मारुतं तुविष्वण्यनर्वाणं पूषणं सं यथा शता।
सं सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आँ आविर्गूळ्हा वसूकरत्सुवेदा नो वसू करत् ॥१५॥
आ मा पूषन्नुपद्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे ।
अघा अर्यो अरातयः ॥१६॥
मा काकम्बीरमुद्वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः ।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः ॥१७॥

---

१२ जो सहिष्णु, स्वाधीन-तेजा, मरुतोंका अमरण-हेतु पयोरूप अन्न देती है, जो वेग मरुतोंके सुख-साधनमें तत्पर है और जो वृष्टि-जलके साथ सुख वर्षण करके अन्तरीक्ष मार्गमें घूमती है, उस धेनुके पास आओ।

१३ मरुतो, भरद्वाजके लिये विशेष दूध देनेवाली गाय और सभीके खानेके लिये यथेष्ट अन्न-इन दो सुखोंका दोहन करो।

१४ मरुतो, तुम इन्द्रके महान् कर्मोंके अनुष्ठाता हो, वरुणकी तरह बुद्धिमान् हो, अर्यमाके समान स्तुति-पात्र हो, विष्णुके समान दानशील हो। धनके लिये मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ।

१५ मरुद्गण सैकड़ों-हजारों तरहके धन हमें एक ही समय दें, इनके लिये मैं उत्साहकारी हूं अप्रतिहत-प्रभाव और पुष्टिकारक मरुतोंके दीप्त बलकी स्तुति करता हूं। वे ही मरुद्गण हमारे पास गूढ़ धन प्रकट करें और समस्त धन सुलभ करें।

१६ हे पूषन्, तुम शीघ्र मेरे पास आओ। दीप्तिमान देव, भीषण आक्रमण करनेवाले शत्रुओंको पीड़ा पहुँचाओ। मैं भी तुम्हारे कानके पास आकर गुण-गान करता हूं।

१७ पूषन्, तुम कौओं (सन्तानों) के आश्रय-भूत वनस्पतिको (मुझे) नष्ट नहीं करना। मेरे निन्दकोंको पूर्णतः नष्ट कर दो। जैसे व्याध चिड़ियोंको फँसानेके लिये जाल फैलाता है, वैसे शत्रु लोग, किसी तरह भी, मुझे नहीं बाँध सकें।

दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम् ।
अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥१८॥
पुरो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया ।
अभि ख्यः पूषन्पृतनासु नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा ॥१९॥
वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता ।
देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वेजानस्य प्रयज्यवः ॥२०॥
सद्यश्चिद्यस्य चर्कृतिः परि द्यां देवो नैति सूर्यः ।
त्वेषं शवो दधिरे नाम यज्ञियं मरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः ॥२१॥
सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत ।
पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते ॥२२॥

---

१८ पूषन्, दध पूर्ण और निश्छिद्र चर्मकी तरह तुम्हारी मित्रता सदा अविच्छिन्न रहे ।

१९ पूषन्, तुम मनुष्योंको अतिक्रम करके अवस्थित हो। धनमें देवोंके बराबर हो। इसलिये संग्राममें हमारी ओर अनुकूल दृष्टि रखना। प्राचीन समयमें तुमने मनुष्योंकी जैसे रक्षा की थी, वैसे ही इस समय हमारी रक्षा करो।

२० कम्पनकरी और भली भाँति स्तुति पात्र मरुतो, तुम्हारी जो प्रशस्त वाणी देवों और यजमानोंको वाञ्छित धन देती है, वही सत्य और सूनृत वाणी हमारी पथ-प्रदर्शिका बने।

२१ जिन मरुतोंके सारे कार्य दीप्तिमान् सूर्यकी तरह सहसा आकाशमें व्याप्त होते हैं, वे ही मरुद्गण दीप्त, शत्रु-विजयी, पूजनीय और शत्रु-नाशक बल धारण करते हैं। शत्रु-नाशक बल सर्वापेक्षा प्रशस्त होता है।

२२ एक ही बार स्वर्ग उत्पन्न हुआ और एक ही बार पृथिवी। एक ही बार पृष्णि (पृश्नि) या मरुतोंकी माता गायसे दूध दूहा गया है। इनके समय और कुछ उत्पन्न नहीं हुआ।

४९ सूक्त

विश्वदेवगण देवता। भरद्वाजके पुत्र ऋजिश्वा ऋषि। शक्करी और त्रिष्टुप् छन्द।

स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ॥१॥
विशोविश ईड्य मध्वरेष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः ।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै ॥२॥
अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या ।
मिथस्तरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥३॥
प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥४॥
स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान्मनसा युजानः ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥५॥

---

१ मैं नये स्तोत्रोंके द्वारा देवों और स्तोताओंके सुखाभिलाषी मित्र और वरुणकी स्तुति करता हूँ। अतीव बली मित्र, वरुण और अग्नि इस यज्ञमें आवें और हमारे स्तोत्र सुनें।

२ जो अग्नि प्रत्येक व्यक्तिके यज्ञमें पूजा-पात्र हैं, जो कार्य करके अहंकार नहीं करते, जो स्वर्ग और पृथिवी नामक दो कन्याओंके स्वामी हैं, जो स्तोताके पुत्र-भूत शक्ति-पुत्र हैं और जो यज्ञके प्रदीप्त केतु-रूप हैं, मैं उन्हीं अग्निका यज्ञ करनेके लिये यजमानको उत्तेजित करता हूँ।

३ दीप्तिमान् सूर्यकी विभिन्न-रूपिणी दो कन्याएँ (दिन और रात्रि) हैं। इनमें एक नक्षत्र-समूह और एक सूर्यके द्वारा समुज्ज्वल है। परस्पर-विरोधी, पृथक् रूपसे संचरण-शील, पवित्रता-विधायक और हमारे स्तुति-भाजन ये दोनों हमारा स्तोत्र सुनकर प्रसन्न हों।

४ हमारी महती स्तुति महाधन-सम्पन्न, अखिल लोकोंके वन्दनीय और रथके पूरक वायुके सामने उपस्थित हो। हे सम्यक् यज्ञ-पात्र, समुज्ज्वल रथपर आरूढ़, जुते हुए अश्वोंके अधिपति और दूरदर्शी मरुत्, तुम मेधावी स्तोताको धनके द्वारा संवर्द्धित करो।

५ जो रथ सोचनेके साथ अश्वसे जुत जाता है, अश्विनी-कुमारोंका वही समुज्ज्वल रथ दीप्ति द्वारा मेरी देहको आच्छादित करे। नेता अश्विनीकुमारो, रथपर चढ़कर, अपने स्तोताका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये उसके घर जाना।

पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि ।
सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम् ॥६॥
पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥७॥
पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियन्धियं सीषधाति प्र पूषा ॥८॥
प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम् ।
होता यक्षद्यजतं पस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ॥९॥
भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥१०॥
आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम् ।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत् ॥११॥

६ वर्षा करनेवाले पर्जन्य और वायु, अन्तरिक्षसे तुम प्राप्य जल भेजो। ज्ञान-सम्पन्न, स्तोत्र सुननेवाले और संसार-स्थापक मरुतो, जिसके स्तोत्रसे तुम प्रसन्न होते हो, उसके सारे प्राणियोंको समृद्ध करते हो।

७ पवित्रता-कारिणी, मनोहरा, विचित्र-गमना और वीर-पत्नी सरस्वती हमारे यागादि कर्मोंका निर्वाह करें। वह देव-पत्नियोंके साथ प्रसन्न होकर स्तोताको छेद-रहित, शीत और वायुके लिये दुर्द्धर्ष गृह और सुख प्रदान करें।

८ स्तोता, वाञ्छित फलके वशमें आकर सारे मार्गके अधिपति पूजनीय पूषाके पास, स्तोत्रके साथ, उपस्थित होओ। वह हमें सोनेकी सींगवाली गायें दें। पूषा हमारे सारे कार्य पूर्ण करें।

९ देवोंको बुलानेवाले और दीप्तिमान् अग्नि त्वष्टाका यज्ञ करें। त्वष्टा सबके आदि विभाजक, प्रसिद्ध अन्नदाता, शोभन-पाणि, दानशील, महान्, गृहस्थोंके यजनीय और अनायास आह्वानके योग्य हैं।

१० स्तोता, दिनमें इन सारे स्तोत्रोंके द्वारा भुवन-पालक रुद्रको वर्द्धित करो और रात्रिमें रुद्रकी संवर्द्धना करो।

११ नित्य तरुण, ज्ञान-सम्पन्न और पूजनीय मरुद्गण, जहाँ यजमान स्तोत्र करता है, वहाँ आओ। नेताओ, तुम इसी प्रकार समृद्ध होकर और चलनेवाली रश्मियोंकी तरह व्याप्त होकर वृष्टि द्वारा विरल-पादप वनोंको तृप्त करो।

प्र वीराय प्र तवसे तुरायाजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम् ।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः ॥१२॥
यो रजाँसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुर्मनवे बाधिताय ।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा तना च ॥१३॥
तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कैस्तत्पर्वतस्तत्सविता चनो धात् ।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरन्धिर्जिन्वतु प्र राये ॥१४॥
नू नो रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं मह ऋतस्य गोपाम् ।
क्षयं दाताजरं येन जनान्त्स्पृधो
अदेवीरभि च क्रमाम विश आदेवीरभ्यश्नवाम ॥१५॥

५० सूक्त

पञ्चम अनुवाक । नाना देवता । ऋजिश्वा ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

हुवे वो देवीमदितिं नमोभिर्मृळीकाय वरुणं मित्रमग्निम् ।
अभिक्षदामर्यमणं सुशेवं त्रातॄन्देवान्त्सवितारं भगं च ॥१॥

---

१२ जैसे पशु-पालक गोयूथको शीघ्र परिचालित करता है, वैसे ही पराक्रान्त, बली और द्रुतगामी मरुतोंके पास शीघ्र स्तोत्र प्रेरित करो। जैसे अन्तरीक्ष नक्षत्र-मण्डल द्वारा संश्लिष्ट है, वैसे ही वे ही मरुद्गण मेधावी स्तोताके सुश्राव्य स्तोत्र द्वारा अपनी देहको संश्लिष्ट करें ।

१३ जिन विष्णुने उपद्रुत मनुके लिये त्रिपाद पराक्रमके द्वारा पार्थिव लोकोंको नाप डाला था, वही तुम्हारे द्वारा प्रदत्त गृहमें निवास करें और हम धन, देह और पुत्र द्वारा अनुभव करें ।

१४ हमारे मन्त्रों द्वारा स्तूयमान अहिर्बुध्न, पर्वत और सविता हमें जलके साथ अन्न दें । दानशील विश्वदेवगण हमें औषधिके साथ वही अन्न दें । सुबुद्धिदेव भग हमें धनके लिये प्रेरित करें ।

१५ विश्वदेवगण, तुम हमें रथ-युक्त और असङ्ख्य अनुचरोंके साथ अनेक पुत्रोंसे युक्त यज्ञका साधन-भूत गृह और अक्षय्य अन्न प्रदान करो, जिसके द्वारा हम स्पर्द्धा करके शत्रुओं और देव-शून्य सेन्योंको पराजित केरेंगे और देव-भक्तोंको आश्रय प्रदान करनेमें समर्थ होंगे ।

१ देवो, मैं सुखके लिये स्तोत्रके साथ अदिति, वरुण, मित्र, अग्नि, शत्रु-हन्ता और सेव्य अर्यमा, सविता, भग और समस्त रक्षक देवोंको बुलाते हैं ।

सुज्योतिषः सूर्य दक्षपितॄननागास्त्वे सुमहो वीहि देवान् ।
द्विजन्मानो य ऋतसापः सत्याः स्ववन्तो यजता अग्निजिह्वाः ॥२॥
उत द्यावापृथिवी क्षत्रमुरु बृहद्रोदसी शरणं सुषुम्ने ।
महस्करथो वरिवो यथा नोऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः ॥३॥
आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवोधृऽष्टाः ।
यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान् ॥४॥
मिम्यक्ष येषु रोदसी देवी सिषक्ति पूषा अभ्यर्द्धयज्वा ।
श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते ॥५॥
अभि त्यं वीरं गिर्वणसमर्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन ।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद्वाजाँ उप महो गृणानः ॥६॥

---

२ दीप्ति-सम्पन्न सूर्य, दक्षसे सम्भूत शोभन-दीप्ति-शाली देवोंका हमारे अनुकूल करो। द्विजन्मा (स्वर्ग और पृथिवीसे उत्पन्न) देवगण यज्ञ-प्रिय, सत्यवादी, धन सम्पन्न, यागार्ह और अग्नि-जिह्व होते हैं।

३ स्वर्ग और पृथिवी, तुम अधिक बल दो। स्वर्ग और पृथिवी, हमारी स्वतन्त्रताके लिये विशाल गृह हमें दो। ऐसा उपाय करो कि, हमारे पास अतुल ऐश्वर्य हो जाय। सदय देव-द्वय, हमारे घरसे पापको हटाओ।

४ गृह-दाता और अजेय रुद्रपुत्रगण इस समय बुलाये जाकर हमारे पास आवें। ये महान् और क्षुद्र क्लेशके समय हमें सहायता देंगे; इसलिये हम मरुतोंको बुलाते हैं।

५ जिन मरुतोंके साथ दीप्तिमान् स्वर्ग और पृथिवी संश्लिष्ट हैं, जिन मरुतोंकी सेवा, धनके द्वारा, स्तोताओंको समृद्ध करनेवाले पूषा करते हैं, ऐसे तुम, मरुतो, जिस समय हमारा आह्वान सुनकर आते हो, उस समय तुम्हारे विभिन्न मार्गोंमें अवस्थित प्राणी काँप जाते हैं।

६ स्तोता, अभिनव स्तुति द्वारा स्तुति-पात्र वीर इन्द्रकी स्तुति करो। इस प्रकार स्तुति किये जानेपर इन्द्र हमारा आह्वान सुनें; हमें प्रभूत अन्न दें।

ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं योः ।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ॥७॥
आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजतो जगम्यात् ।
यो दत्रवाँ उषसो न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ॥८॥
उत त्वं सूनो सहसो नो अद्य देवाँ अस्मिन्नध्वरे ववृत्याः ।
स्यामहं ते सदमिद्रातौ तव स्यामग्नेवसा सुवीरः ॥९॥
उत त्या मे हवमा जग्म्यातं नासत्या धीभिर्युवमङ्ग विप्रा ।
अत्रिं न महस्तमसोऽमुमुक्तं तूर्वतं नरा दुरितादभीके ॥१०॥
ते नो रायो द्युमतो वाजवतो दातारो भूत नृवतः पुरुक्षोः ।
दशस्यन्तो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या मृलता च देवाः ॥११॥
ते नो रुद्रः सरस्वती सजोषा मीहूलुष्मन्तो विष्णुर्मृलन्तु वायुः ।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्यावाता पिप्यतामिषं नः ॥१२॥

---

७ वारि-राशि तुम मानव-हितैषी हो; इसलिये हमारे पुत्र-पौत्रोंके लिये अनिष्ट-घातक और रक्षक अन्न प्रदान करो। तुम सारे उपद्रवोंका शान्त और विदूरित करो। तुम माताओंको अपेक्षा श्रेष्ठ चिकित्सक हो। तुम स्थावर-जङ्गम-रूप संसारके उत्पादक हो।

८ जो उषा-मुखकी तरह यजमानके पास अभिलषित धन प्रकट करते हैं, वे ही रक्षक, हिरण्य-पाणि और पूजनीय सविता हमारे पास आवें।

९ शक्ति-पुत्र अग्नि, हमारे यज्ञमें आज देवोंको ले आओ। मैं सदा तुम्हारी उदारताका अनुभव करूँ। देव, तुम्हारी रक्ष के कारण मैं शोभन पुत्र-पौत्र आदिसे युक्त बनूँ।

१० हे प्राज्ञ अश्विनी-कुमारो, तुम शीघ्र परिचर्यावाले मेरे स्तोत्रके पास आओ। जैसे अन्धकारसे तुमने अत्रि ऋषिको छुड़ाया था, वैसे ही हमें भी छुड़ाओ। नेतृ द्वय तुम हमें युद्ध-दुःखसे बचाओ।

११ देवो, तुम हमें दीप्ति-युक्त, बलकारी, पुत्रादि-सम्पन्न और सुप्रसिद्ध धन प्रदान करो। स्वर्गीय (आदित्यगण), पार्थिव (वसुगण), गोजात (पृश्नि-पुत्र मरुद्गण) और जल जात (रुद्रगण), हमारे मनोरथको पूर्ण कर सुखी करो।

१२ रुद्र, सरस्वती, विष्णु, वायु, ऋभुक्षा, वाज और विधाता समान-रूपसे प्रसन्न होकर हमें सुखी करें। पर्जन्य और वायु हमारे अन्नको बढ़ावें।

उत स्य देवः सविता भगो नोऽपां नपादवतु दानु पप्रिः ।
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सजोषा द्यौर्देवेभिः पृथिवी समुद्रैः ॥१३॥
उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः ।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥१४॥
एवा नपातो मम तस्य धीभिर्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
ग्ना हुतासो वसवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः ॥१५॥

५१ सूक्त

नाना देवता । ऋजिश्वा ऋषि । उष्णिक्, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द ।

उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोराँ एति प्रियं वरुणयोरदब्धम् ।
ऋतस्य शुचि दर्शतमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥१॥
वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः ।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान् ॥२॥

---

१३ प्रसिद्ध देव सविता, भग और वारि-राशिके पौत्र दानशील अग्नि हमारी रक्षा करें। देवों और देव-स्त्रियोंके साथ समान-रूपसे प्रसन्न हुए त्वष्टा, देवोंके साथ समान-प्रसन्न स्वर्ग तथा समुद्रोंके साथ समान-प्रसन्न पृथिवी हमारी रक्षा करें।

१४ अहिर्बुध्न, अज-एक-पाद, पृथिवी और समुद्र हमारे स्तोत्र सुनें। यज्ञके समृद्धिकर्त्ता, हमारे द्वारा, आहूत और स्तुत, मन्त्र-प्रतिपाद्य और मेधावी ऋषियों द्वारा स्तूयमान विश्वदेवगण हमारी रक्षा करें।

१५ भरद्वाज-गोत्रीय मेरे पुत्र इसी प्रकारके पूजा-साधक स्तोत्र द्वारा देवोंकी स्तुति करते हैं। यज्ञार्ह देवों, तुम हव्य द्वारा हुत, गृहदाता और अजेय हो। तुम देव-पत्नियोंके साथ नियत पूजित होते हो।

* * *

१ सूर्यकी प्रसिद्ध, प्रकाशक, विस्तृत तथा मित्र और वरुणकी प्रिय, अप्रतिहत, निर्मल और मनोहर दीप्ति प्रकाशित होकर अन्तरीक्षमें भूषणकी तरह शोभा पा रही है।

२ जो तीनों ज्ञातव्य भुवनोंको जानते हैं, जो ज्ञानशाली हैं और देवोंके दुर्ज्ञेय जन्मको जानते हैं, वही सूर्य मनुष्योंके सत और असत् कर्मोंका परिदर्शन करते हैं और स्वामी होकर मानवोंके अनुकूल मनोरथको पूर्ण करते है।

स्तुष उ वो मह ऋतस्य गोपिनदितिं मित्रं वरुणं सुजातान् ।
अर्यमणं भगमदब्धधीतीनच्छा वोचे सधन्यः पावकान् ॥३॥
रिशादसः सत्पतीँरदब्धान्महो राज्ञः सुवसनस्य दातॄन् ।
यूनः सुक्षत्रान्क्षयतो दिवो नॄनादित्यान्याम्यदितिं दुवोयु ॥४॥
द्यौ ष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृलता नः ।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्त ॥५॥
मा नो वृकाय वृक्ये समस्मा अघायते रीरधता यजत्राः ।
यूयं हि ष्ठा रथ्यो नस्तनूनां यूयं दक्षस्य वचसो बभूव ॥६॥
मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ।
विश्वस्य हि क्षयथ विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्वं रीरिषीष्ट ॥७॥
नम इदुग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
नमो देवेभ्यो नम ईश एषां कृतं चिदेनो नमसा विवासे ॥८॥

---

३ मैं यज्ञ-रक्षक और शोभन-जन्मा अदिति, मित्र, वरुण, अर्यमा और भगकी स्तुति करता हूँ। जिनके कार्य अप्रतिहत हैं, जो धन-शाली और संसारको पवित्र करने वाले हैं, उनके यशका मैं कीर्त्तन करता हूँ।

४ हे हिंसकोंको फेंकनेवाले, साधुओंके पालक, अबाध-प्रभाव, शक्तिमान् अधीश्वर, शोभन-गृह-दाता, नित्य तरुण, अतीव ऐश्वर्य-शाली और स्वर्गके नेता अदिति-पुत्रो, मैं अदितिको शरण लेता हूँ; क्योंकि वह मेरी परिचर्या चाहती हैं।

५ हे पिता स्वर्ग, माता पृथिवी, भ्राता अग्नि और वसुओ, तुम हमें सुखी करो। हे अदितिके पुत्रो और अदिति, इकट्ठे होकर तुम हमें अधिक सुख दो।

६ यागयोग्य देवो, तुम हमें वृक और वृकी (अरण्य-कुक्कुर और कुक्कुरी अथवा दस्यु और उसकी पत्नी) के हाथमें नहीं जाने देना। तुम हमारी देह बल और वाक्यके संचालक हो।

७ देवो, हम तुम्हारे ही हैं। हम दूसरेके पापों क्लेशका अनुभव न करें। वसुओ, जिसका तुम निषेध करते हो, उसका अनुष्ठान हम न करें। विश्वदेवगण, तुम विश्वके अधिपति हो; इसलिये ऐसा उपाय करो कि शत्रु अपनी देहका अनिष्ट कर डाले।

८ नमस्कार सबसे बड़ी वस्तु है; इसलिये मैं नमस्कार करता हूँ। नमस्कार ही स्वर्ग और पृथिवी-को धारण करता है; इसलिये मैं देवोंको नमस्कार करता हूँ। देवता लोग नमस्कारके वशीभूत हैं; इसलिये मैं नमस्कार द्वारा किये हुए पापोंका प्रायश्चित्त करता हूँ।

ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षानृतस्य पस्त्यसदो अदब्धान् ।
ताँ आ नमोभिरुरुचक्षसो नॄन्विश्वान्व आ नमे महो यजत्राः ॥९॥
ते हि श्रेष्ठ वर्चसस्त उ नस्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति ।
सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निर्ऋतधीतयो वक्मराजसत्याः ॥१०॥
ते न इन्द्रः पृथिवी क्षाम वर्धन्पूषा भगो अदितिः पञ्चजनाः ।
सुशर्माणः स्ववसः सुनीथा भवन्तु नः सुत्रात्रासः सुगोपाः ॥११॥
नू सद्मानं दिव्यं नंशि देवा भारद्वाजः सुमति याति होता ।
आसानेभिर्यजमानो मियेधैर्देवानां जन्म वसूयुर्ववन्द ॥१२॥
अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् ।
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥१३॥
ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वनाय वावशुः ।
जही न्यत्रिणं पणिं वृको हि षः ॥१४॥

---

९ यज्ञ-पाल देवो, मैं नमस्कारके साथ तुम लोगोंके पास प्रणत हो रहा हूँ; क्योंकि तुम यज्ञके नेता, विशुद्ध बलसे युक्त, देव-यजन-गृहके निवासी, अजेय, बहुदर्शी, अधिनायक और महान् हो।

१० वे अच्छा तरहसे दीप्ति-सम्पन्न हैं। वे ही हमारे सारे पापोंका नाश करें। वरुण, मित्र और अग्नि शोभन बलवाले, सत्यकर्मा और स्तोत्र-निरत व्यक्तियोंके एकान्त पक्षपाती हैं।

११ इन्द्र, पृथिवी, पूषा, भग, अदिति और पञ्चजन (देव, गन्धर्व आदि) हमारी वास-भूमिको वर्द्धित करें वे हमारे सुखदाता, अन्नदाता, सत्पथ-प्रदर्शक, शोभन रक्षा करनेवाले और आश्रयदाता हों।

१२ देवो, भरद्वाज-गोत्रीय यह स्तोता शीघ्र ही एक स्वर्गीय निवास (वा दीप्तिमान् गृह) प्राप्त करें; क्योंकि वह तुम्हारी कृपा चाहता है। हव्यदाता ऋषि, अन्य यजमानोंके साथ, धनार्थी होकर देवोंका स्तुति करते ।

१३ अग्नि, तुम कुटिल, पापी और दुष्ट शत्रुको दूर करो। हे साधुओंके रक्षक, हमें सुख दो।

१४ हे सोम, हमारे ये अभिषव-पाषाण तुम्हारी मित्रता चाहते हैं। तुम भोजन-निपुण पणिका संहार करो; क्योंकि वह वास्तविक दस्यु है।

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।
कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा ॥१५॥
अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥१६॥

५२ सूक्त

नाना देवता। ऋजिश्वा ऋषि। त्रिष्टुप्, गायत्री और जगती छन्द।

न तद्दिवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत शमीभिराभिः ।
उब्जन्तु तं सुभ्वः पर्वतासो नि हीयतामतियाजस्य यष्टा ॥१॥
अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निनित्सात् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः ॥२॥
किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः सोम गोपां किमङ्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः ।
किमङ्ग नः पश्यसि निद्यमानान्ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥३॥

---

१५ इन्द्रादि देवो, तुम दान-शील और दीप्ति-शाली हो। मार्गमें तुम हमारे रक्षक और सुख-दाता बनो।

१६ हम उस पवित्र और सरल मार्गमें आ गये हैं, जिसमें जानेपर शत्रुका परिहार और धनका लाभ होता है।

* * *

१ मैं इसे (ऋजिश्वा के यज्ञको) स्वर्गीय अथवा देवोंके उपयुक्त नहीं समझता। यह मेरे द्वारा अनुष्ठित यज्ञ अथवा दूसरों द्वारा सम्पादित यज्ञकी तुलना करेगा, यह भी नहीं समझता। इसलिये सारे महान् पर्वत उसको (अतियाज ऋषिको) पीड़ित करें। अतियाजके ऋत्विक् भी अत्यन्त दीनता प्राप्त करें।

२ मरुतो, जो व्यक्ति तुमको हमारी अपेक्षा श्रेष्ठ समझता है और मेरे किये स्तोत्रकी निन्दा करता है, सारी शक्तियाँ उसकी अनिष्टकारिणी बनें और स्वर्ग उस ब्राह्मण-द्वेषीको दग्ध करे।

३ सोम, लोग तुम्हें क्यों मन्त्र-रक्षक कहते हैं? और, क्यों तुम्हें निन्दासे हमें उद्धार करनेवाला बताया जाता है? शत्रुओं द्वारा हमारे निन्दित होनेपर तुम क्यों निरपेक्ष भावसे देखते रहते हो? ब्रह्मण-विद्वेषीके प्रति अपना सन्तापक आयुध फेंको।

Digitization by Arya Samaj Foundation, Chennai

अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः ।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥४॥
विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
तथा करद्वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥५॥
इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना ।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्निः सुशंसः सुहवः पितेव ॥६॥
विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् । एदं बर्हिर्निषीदत ॥७॥
यो वो देवा घृतस्नुना हव्येन प्रतिभूषति । तं विश्व उप गच्छथ ॥८॥
उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृलीका भवन्तु नः ॥९॥
विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पयः ॥१०॥
स्तोत्रमिन्द्रो मरुद्गणस्त्वष्टृमान्मित्रो अर्यमा । इमा हव्या जुषन्त नः ॥११॥
इमं नो अग्ने अध्वरं होतर्वयुनशो यज चिकित्वान्दैव्यं जनम् ॥१२॥

---

४ आविर्भूत उषाएँ मेरी रक्षा करें। सारी स्फीत नदियाँ मेरी रक्षा करें। निश्चल पर्वत मेरी रक्षा करें। देव-यजन-कालमें यज्ञमें उपस्थित पितर और देवता मेरी रक्षा करें।

५ हम सदा स्वतन्त्र-चित्त हों। हम सदा उदयान्मुख सूर्यके दर्शन करें। देवोंके पास हमारा हव्य ढोनेवाले, यज्ञके अधिष्ठाता और महैश्वर्य-शाली अग्नि हमें उक्त प्रकारसे बनावें।

६ इन्द्र और वारि-राशिके द्वारा स्फीत सरस्वती नदी; रक्षाके साथ, हमारे पास आवें। ओषधियोंके साथ पर्जन्य हमारे लिये सुख-दाता हों। पिताकी तरह अग्नि अनायास स्तुत्य और आह्वान-योग्य हों।

७ विश्वदेवगण, आओ, मेरे आह्वानको सुनो और बिछे हुए कुशोंपर बैठो।

८ देवो, जो व्यक्ति घृतमें मिले हव्यके द्वारा तुम्हारी सेवा करता है, उसके पास तुम सब आओ।

९ जो अमरके पुत्र हैं, वही विश्वदेवगण हमारा स्तोत्र सुनें और हमें सुख दें।

१० यज्ञके समृद्धि-कारी और यथासमय स्तोत्र-श्रवण-कारी विश्वदेवगण, अच्छी तरहसे अपने-अपने उपयुक्त दुग्ध ग्रहण करो।

११ मरुतोंके साथ इन्द्र, त्वष्टाके साथ मित्र और अर्यमा हमारे स्तोत्र और समस्त हव्यको ग्रहण करें।

१२ देवोंको बुलानेवाले अग्नि, देवोंमें जो महायोग्य हैं, उन्हें जानकर उनकी मर्यादाके अनुसार हमारी इस यज्ञ-क्रियाका सम्पादन करो।

विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यविष्ठ ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥१३॥
विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञिया उभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥१४॥
ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे ।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्रा वरिवस्यन्तु देवाः ॥१५॥
अग्नीपर्जन्याववतं धियं मेऽस्मिन्हवे सुहवा सुष्टुतिं नः ।
इळामन्यो जनयद्गर्भमन्यः प्रजावतीरिष आ धत्तमस्मे ॥१६॥
स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे ।
अस्मिन्नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् ॥१७॥

* * *

१३ विश्वदेवगण, तुम अन्तरीक्ष, भूलोक वा स्वर्गमें रहते हो। हमारा आह्वान सुनो। अग्नि-रूप जिह्वाद्वारा वा किसी भी प्रकारसे हमारे इस यज्ञको ग्रहण करो। सब लोग इन बिछे कुशोंपर बैठकर और सोम-रस पानकर उल्लसित होओ ।

१४ यज्ञार्ह विश्वदेवगण, स्वर्ग, पृथिवी और जल-राशिके पौत्र अग्नि हमारे स्तोत्रको सुनें। देवो, जो स्तोत्र तुम्हें अग्राह्य है, उसका हम उच्चारण न करें। हम तुम्हारे निकटस्थ होकर और सुख प्राप्त कर उल्लसित हों।

१५ पृथिवी, स्वर्ग अथवा अन्तरीक्षमें प्रादुर्भूत, महान् और संहारक शक्तिसे युक्त देवगण दिनरात हमें और हमारी सन्ततियोंको अन्न दें ।

१६ अग्नि और पर्जन्य, हमारे यज्ञ-कार्यकी रक्षा करो। तुम अनायास आह्वानके योग्य हो; इसलिये इस यज्ञमें हमारा स्तोत्र सुनो। तुममेंसे एक व्यक्ति अन्न देते हैं और दूसरे गर्भ उत्पन्न करते हैं। इसलिये तुम हमें सन्ततिके साथ अन्न दो।

१७ पूजनीय विश्वदेवगण, आज हमारे इस यज्ञमें, कुश बिछनेपर, अग्नि प्रज्वलित होनेपर और मेरे स्तोत्रोच्चारण और नमस्कारके साथ तुम्हारी सेवा करनेपर हव्य द्वारा तुम तृप्ति प्राप्त करो।

* * *

५३ सूक्त

पूषा देवता। भरद्वाज ऋषि। अनुष्टुप् और गायत्री छन्द।

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये। धिये पूषन्नयुज्महि ॥१॥
अभि नो नर्यं वसुवीरं प्रयतदक्षिणम्। वामं गृहपतिं नय ॥२॥
अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय। पणेश्चिद्वि म्रदा मनः ॥३॥
वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि। साधन्तामुग्र नो धियः ॥४॥
परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे। अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥५॥
वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम्। अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥६॥
आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे। अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥७॥
यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे।
तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥८॥
या ते अष्ट्रा गो ओपशाघृणे पशुसाधनी। तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥९॥

---

१ मार्ग-पति पूषन्, कर्मानुष्ठान और अन्न-लाभके लिये रण-स्थलमें रथकी तरह हम तुम्हें अपने अभिमुख करते हैं।

२ पूषन्, हमारे यहाँ मानव-हितैषी, धन-दानमें मुक्त हस्त और विशुद्ध दानवाला एक गृहस्थ भेजो।

३ दीप्ति-सम्पन्न पूषन्, कृपणको दान देनेके लिये उत्तेजित करो और उसके हृदयको कोमल करो।

४ प्रचण्ड-बल-शाली पूषन्, अन्न-लाभके लिये सारे पथ परिष्कृत करो। विघ्नकारी चोर आदिका संहार करो और हमारे अनुष्ठानोंको सफल करो।

५ ज्ञानी पूषन्, सूक्ष्म लोहाग्रदण्ड (आरा) से पणियों या लुब्धकोंका हृदय विद्ध करो और उन्हें हमारे वशमें करो।

६ पूषन्, सूक्ष्म लोहाग्रदण्ड (प्रतोद या आरा) से पणि या चोरका हृदय चीरो। उसके हृदयमें सद्भावना भरो और उसे मेरे वशमें करो।

७ ज्ञानी पूषन्, चोरोंके हृदयोंको रेखाङ्कित करो। उनके हृदयोंकी कठोरताको भली भाँति कम करो और उन्हें हमारे वशमें करो।

८ दीप्ति-सम्पन्न पूषन्, तुम अन्न-प्रेरक प्रतोद धारण करो और उसके द्वारा सारे लोभी व्यक्तियोंका हृदय रेखाङ्कित करो एवम् उसकी कठोरता शिथिल करो।

९ दीप्तिशाली पूषन्, तुम जिस अस्त्रसे धेनुओं और पशुओंको परिचालित करते हो, तुम्हारे उसी अस्त्रसे हम उपकारकी प्रार्थना करते हैं।

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत । नृवत्कृणुहि वीतये ॥१०॥

५४ सूक्त

पूषा देवता । भरद्वाज ऋषि । गायत्री छन्द ।

सम्पूषन्विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति । य एवेदमिति ब्रवत् ॥१॥
समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति । इम एवेति च ब्रवत् ॥२॥
पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते । नो अस्य व्यथते पविः ॥३॥
यो अस्मै हविषा विधन्न तं पूषापि मृष्यते । प्रथमो विन्दते वसु ॥४॥
पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजं सनोतु नः ॥५॥
पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः । अस्माकं स्तुवतामुत ॥६॥
माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं संशारि केवटे । अथारिष्टाभिरागहि ॥७॥

---

१० पूषन्, हमारे उपभोगके लिये हमारे याग-कर्मको गौ, अश्व, अन्न और परिचारकोंका उत्पादक करो।

१पूषन्, तुम हमें एक ऐसे विलक्षण व्यक्तिसे मिलाओ, जो हमें वस्तुतः पथ-प्रदर्शन करावेगा और जो हमारे अपहृत द्रव्यको मिला देगा।

२ हम पूषाकी कृपासे ऐसे व्यक्तिसे मिलें, जो सारे गृहमें दिखावेगा और कहेगा कि, ये ही तुम्हारे खोये हुए पशु हैं।

३ पूषाका आयुध - चक्र विनष्ट नहीं होता। इस चक्रका कोश हीन नहीं होता और इसकी धार कुण्ठित नहीं होती।

४ जो व्यक्ति हव्य द्वारा पूषाकी सेवा करता है, उसका पूषा ज़रा भी अपकार नहीं करते और प्रधानतः वही व्यक्ति धन पाता भी है।

५ रक्षाके लिये हमारी गायोंका पूषा अनुसरण करें। वह हमारे अश्वोंकी रक्षा करें। वह हमें अन्न दें।

६ पूषन्, रक्षाके लिये सोमका अभिषव करनेवाले यजमानकी गायोंका अनुसरण करो, और स्तोत्र उच्चारण करनेवाले हमारी गायोंका भी अनुसरण करो।

७ पूषन्, हमारा गोधन नष्ट न करने पावे। यह व्याघ्रादि द्वारा निहत न होने पावे। यह कूपमें न गिरे। इसलिये तुम अहिंसित धेनुओंके साथ सायंकाल आओ।

शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम् । ईशानं राय ईमहे ॥८॥
पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥९॥
परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् । पुनर्नो नष्टमाजतु ॥१०॥

५५ सूक्त

पूषा देवता । भरद्वाज ऋषि । गायत्री छन्द ।

एहि वां विमुचो नपादाघृणे सं सचावहै । रथीर्ऋतस्य नो भव ॥१॥
रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः । रायः सखायमीमहे ॥२॥
रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व । धीवतोऽधीवतः सखा ॥३॥
पूषणं न्व१जाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम् । स्वसुर्यो जार उच्यते ॥४॥

---

८ हमारे स्तोत्रोंको सुननेवाले, दारिद्र्य-नाशक, अविनष्ट-धन और सारे संसारके अधिपति पूषाके पास हम धनकी प्रार्थना करते हैं।

९ पूषन्, जबतक हम तुम्हारी उपासनामें लगे रहते हैं, तबतक हम कभी मारे न जायँ। इस समय हम तुम्हारी स्तुति करके वैसे ही हों।

१० पूषा अपने दाहिने हाथसे हमारे गोधनको विपथगामी होनेसे बचावें। वह हमारे नष्ट गोधनको फिर ले आवें।

१ हे दीप्ति-सम्पन्न प्रजापति-पुत्र पूषन्, तुम्हारा स्तोता मेरे पास आवे। हम दोनों मिलें। तुम हमारे यज्ञके नेता बनो।

२ हम अपने रथि-श्रेष्ठ, चूड़ावान् (कपर्दी), अतुल ऐश्वर्योंके अधिपति और अपने मित्र पूषाके पास धनकी प्रार्थना करते हैं।

३ दीप्ति-शाली पूषन्, तुम धनके प्रवाह हो, धनकी राशि हो और छाग ही तुम्हारे अश्वका कार्य करता है। तुम प्रत्येक स्तोताके मित्र हो।

४ आज हम उन्हीं छाग-वाहन और अन्नयुक्त सूर्य वा पूषाकी स्तुति करते हैं, जिन्हें लोग भगिनी या उषाका प्रणयी अथवा जार कहते हैं।

मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः । भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ॥५॥
आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम् । देवं वहन्तु बिभ्रतः ॥६॥

५६ सूक्त

पूषा देवता । भरद्वाज ऋषि । गायत्री और अनुष्टुप् छन्द ।

य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम् । न तेन देव आदिशे ॥१॥
उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥२॥
उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम् । न्यैरयद्रथीतमः ॥३॥
यदद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः । तत्सु नो मन्म साधय ॥४॥
इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम् । आरात्पूषन्नसि श्रुतः ॥५॥
आ ते स्वस्तिमीमह आरे अघामुपावसुम् ।
अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ॥६॥

---

५ रात्रि-रूपिणी माताके पति पूषाकी हम स्तुति करते हैं । अपनी भगिनी (उषा) के जार पूषा (सूर्य) हमारा स्तोत्र सुनें । इन्द्रके सहोदर पूषा हमारे मित्र हों ।

६ रथमें नियुक्त छागगण स्तोताओंके आश्रय पूषाका रथ ढोते हुए उन्हें यहाँ ले आव ।

१ जो पूषाको घी-मिले जौके सत्तूका भोगी कहकर उनकी स्तुति करता है, उसे अन्य देवोंकी स्तुति नहीं करनी पड़ती ।

२ रथि-श्रेष्ठ, साधुओंके रक्षक और सुप्रसिद्ध देव इन्द्र अपने मित्र पूषाकी सहायतासे शत्रु-संहार करते हैं ।

३ चालक और रथि-श्रेष्ठ पूषा सूर्यके हिरणमय रथका चक्र नियत परिचालित करते हैं ।

४ हे बहुलोक-वन्दनीय, मनोहर-मूर्ति और ज्ञानी पूषन्, आज हम जिस धनको लक्ष्य करके तुम्हारी स्तुति करते हैं, उसी वांच्छित धनको हमें प्रदान करो ।

५ गोकामी इन समस्त मनुष्योंको गोलाभ कराओ । पूषन्, तुमने दूर देशमें भी प्रसिद्धि पायी है ।

६ पूषन्, हम आज और कलके यज्ञोंके सम्पादनके लिये तुम्हारी उसी रक्षाको चाहते हैं । वह रक्षा पापसे दूर और धनके पास है ।

५७ सूक्त

इन्द्र और पूषा देवता। भरद्वाज ऋषि। गायत्री छन्द।

इन्द्रा नु पूषणा वयं सखाय स्वस्तये। हुवेम वाजसातये ॥१॥
सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वाः सुतम्। करम्भमन्य इच्छति ॥२॥
अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य सम्भृता। ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥३॥
यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः। तत्र पूषा भवत्सचा ॥४॥
तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव। इन्द्रस्य चा रभामहे ॥५॥
उत्पूषणं युवामहेऽभीशूँरिव सारथिः। मह्या इन्द्रं स्वस्तये ॥६॥

* * *

५८ सूक्त

पूषा देवता। भरद्वाज ऋषि। जगती और त्रिष्टुप् छन्द।

शुक्रन्ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥१॥

---

१ हे इन्द्र और पूषन्, अपने मङ्गलके लिये आज हम तुम्हारी मित्रता और अन्नकी प्राप्तिके लिये तुम्हें बुलाते हैं।

२ तुममेंसे एक (इन्द्र) पात्र-स्थित अभिसुत सोमका पान करनेके लिये जाते हैं और दूसरे (पूषा) जौका सत्तू खानेकी इच्छा करते हैं।

३ एकके वाहन छाग हैं और दूसरेके वाहन स्थूल-काय दो अश्व हैं। दूसरे (इन्द्र) इन्हीं दोनों अश्वोंके साथ वृत्रासुरका संहार करते हैं।

४ जिस समय अतिशय वर्षक इन्द्र महावृष्टि करते हैं उस समय इनके सहायक पूषा होते हैं।

५ हम वृक्षकी सुदृढ़ शाखाकी तरह पूषा और इन्द्रकी कृपा-वृद्धिके ऊपर निर्भर रहते हैं।

६ जैसे सारथि रश्मि (लगाम) खींचता है, वैसे ही हम भी, अपने प्रहृष्ट कल्याणके लिये, पूषा और इन्द्रको अपने पास खींचते हैं।

१ पूषन्, तुम्हारा यह रूप (दिन) शुक्लवर्ण है और अन्य रूप (रात्रि) केवल यजनीय है। इस प्रकार दिन और रात्रिके रूप विभिन्न प्रकारके हैं। तुम सूर्यकी तरह प्रकाशमान हो; क्योंकि तुम अभी दाता हो और सब प्रकारके ज्ञान धारण करते हो। इस समय तुम्हारा कल्याणवाही दान प्रकाशित हो।

अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियं जिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः ।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत्संचक्षाणो भुवना देव ईयते ॥२॥
यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ॥३॥
पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इलस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः ।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ॥४॥

५९ सूक्त

इन्द्र और अग्नि देवता। भरद्वाज ऋषि। अनुष्टुप् और बृहती छन्द ।

प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्या यानि चक्रथुः ।
हतासो वां पितरो देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम् ॥१॥
बलित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा ॥२॥

---

२ जो छाग-वाहन और पशु-पालक हैं, जिनका गृह अन्नसे परिपूर्ण है, जो स्तोताओंके प्रीति-दाता हैं, जो अखिल भुवनोंके ऊपर स्थापित हैं, वही देव (पूषा) सूर्य-रूपसे सारे प्राणियोंका प्रकाशित करके और अपने हाथसे आरा उठाकर नभोमण्डलमें जाते हैं ।

३ पूषन्, तुम्हारी जो सारी हिरण्मयी नौकाएँ समुद्र-मध्यस्थित अन्तरीक्षमें चलती हैं, उनके द्वारा तुम सूर्यका दूत-कार्य करते हो । तुम हव्यरूप अन्न चाहते हो । स्तोता लोग तुम्हें स्वेच्छासे दिये पशु आदिके द्वारा वशीभूत करते हैं ।

४ पूषा स्वर्ग और पृथिवीके शोभन बन्धु हैं, अन्नके अधिपति हैं, ऐश्वर्यशाली हैं, मनोहर-मूर्त्ति हैं । वह बलशाली, स्वेच्छासे दिये पशु आदिके द्वारा प्रसन्नताके योग्य और शोभन गमन-कर्त्ता हैं । उन्हें देवोंने सूर्यकी स्त्रीके पास भेजा था ।

१ इन्द्र और अग्नि, तुमने जो वीरता प्रकट की है, उसी वीरताका बखान हम, सोमरसके अभिषुत होनेपर, बड़े आग्रहके साथ करते हैं । देवद्वेष्टा असुर तुम्हारे द्वारा मारे गये हैं और तुम लोग अक्षत हो ।

२ इन्द्र और अग्नि, तुम लोगोंका जो जन्म-माहात्म्य प्रतिपादित होता है, वह सब यथार्थ और अतीव प्रशस्य है । तुम दोनोंके एक ही पिता हैं । तुम यमज भाई हो और तुम्हारी माता सर्वत्र विद्यमान हैं ।

ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्तीइवादने ।
इन्द्रान्वग्नी अवसेह वज्रिणा वयं हवामहे ॥३॥
य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत्तेष्वृतावृधा ।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसथश्चन ॥४॥
इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तश्चिकेतति ।
विषूचो अश्वान्युयुजान ईयत एकः समान आ रथे ॥५॥
इद्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥६॥
इन्द्राग्नी आहि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वोः ।
मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्क्तं गविष्टिषु ॥७॥
इन्द्राग्नी तपन्ति माघा अर्यो अरातयः ।
अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥८॥

---

३ इन्द्र और अग्नि, जैसे द्रुतगामी दोनों अश्व भक्षणीय घासकी ओर जाते हैं, तुम भी उसी तरह, सोम-रसके अभिषुत होनेपर, एक साथ जाते हो। अपनी रक्षाके लिये आज हम वज्रधर और दानादि गुणसे युक्त इन्द्र और अग्निको इस यज्ञमें बुलाते हैं।

४ यज्ञके समृद्धिदाता इन्द्र और अग्नि, तुम्हारा स्तोत्र प्रसिद्ध है। जो व्यक्ति सोम-रसके अभिषुत होनेपर प्रेम-रहित स्तोत्र द्वारा, कुत्सित रूपसे, तुम्हारी स्तुति करता है, उसका दिया सोम तुम नहीं छूते।

५ दीप्ति-सम्पन्न इन्द्र और अग्नि, जिस समय तुममेंसे सूर्यात्मक इन्द्र नाना प्रकारका गमन करनेवाले अश्वोंको जोतकर, अग्निके साथ एक रथपर चढ़कर, जाते हैं, उस समय कौन मनुष्य तुम्हारे इस कार्यका विचार करेगा या जानेगा? (कोई भी नहीं)

६ हे इन्द्र और अग्नि, पाद-रहित यही उषा प्राणियोंके शिरादेशको उत्तेजित करके और उनकी जिह्वाओंसे उच्च शब्द कराकर पाद सम्पन्न और निद्रित जीवोंकी अभिमुख-वर्त्तिनी हो रही हैं और इसी प्रकार तीस पद (मुहूर्त्त) अतिक्रम करती हैं।

७ इन्द्र और अग्नि, योद्धा लोग दोनों हाथोंसे धनुष फैलाते हैं। इस महासंग्राममें, गौओंके अनुसन्धानके समय, हमें नहीं छोड़ना।

८ इन्द्र और अग्नि, हनन-परायण और आक्रमण-कर्त्ता शत्रु हमें पीड़ित कर रहे हैं। उन्हें तुम दूर करो और उन्हें सूर्य-दर्शनसे भी वञ्चित करो (विनष्ट करो)।

इन्द्राग्नो युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा ।
आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम् ॥९॥
इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।
विश्वाभिर्गीर्भिरा गतमस्य सोमस्य पीतये ॥१०॥

६० सूक्त

इन्द्र और अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप्, गायत्री, बृहती और अनुष्टुप् छन्द ।

श्नथद्वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात् ।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥१॥
ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नूनमपः स्वरुषसो अग्न ऊह्ळाः ।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥२॥
आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक् ।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥३॥

---

९ इन्द्र और अग्नि, तुमलोग दिव्य और पार्थिव—सारे धनोंके अधिपति हो; इसलिये इस यज्ञमें हमें जीवन-पोषक सारे धन दो ।

१० स्तोत्र द्वारा आकर्षणीय इन्द्र और अग्नि, हमारे इस सोमरसका पान करनेके लिये आओ; क्योंकि तुमलोग स्तोत्रों और उपासनाओंसे युक्त आह्वान सुनते हो ।

१ जो विशाल धनके स्वामी हैं, जो बलात् शत्रुहन्ता हैं और जो अन्नाभिलाषी इन्द्र और अग्निकी सेवा करते हैं, वह शत्रु-संहार और अन्न-लाभ करते हैं ।

२ इन्द्र और अग्नि, तुमने अपहृत धेनुओं, वारि-राशि, सूर्य और उषाके लिये युद्ध किया था। इन्द्र, तुमने दिशाओं, सूर्य, उषाओं, विचित्र जल और गौओंको संसारके साथ योजित किया है। हे अश्वोंके अधिपति अग्नि, तुमने भी ऐसे कार्य किये हैं ।

३ हे वृत्र-हन्ता इन्द्र और अग्नि, तुम हमारे हव्यान्न द्वारा परिपुष्ट होनेके लिये शत्रु-नाशक बलके साथ हमारे सामने आओ। इन्द्र और अग्नि, तुम लोग अनिन्द्य और अत्युत्कृष्ट धनके साथ हमारे पास आविर्भूत होओ ।

ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम्। इन्द्राग्नी न मर्धत ॥४॥
उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृलात ईदृशे ॥५॥
हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती । हतो विश्वा अप द्विषः ॥६॥
इन्द्राग्नी युवामिमेऽभि स्तोमा अनूषत । पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥७॥
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥८॥
ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥९॥
तमीलिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥१०॥
य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः ॥११॥
ता नो वाजवतीरिष आशून्पिपृतमर्वतः । इन्द्रमग्निं च वोह्लवे ॥१२॥

---

४ प्राचीन समयमें ऋषियों द्वारा जिनके सारे वीर-कार्य कीर्त्तित हुए हैं, मैं उन्हीं इन्द्र और अग्निको बुलाता हूँ । वे स्तोताओंकी हिंसा नहीं करते ।

५ हम प्रचण्ड-बल शाली, शत्रुहन्ता इन्द्र और अग्निको बुलाते हैं । वे हमें ऐसे युद्धमें कृत-कार्य करके सुखी बनावें ।

६ साधुओंके रक्षक इन्द्र और अग्नि, धार्मिकों और अधार्मिकों द्वारा कृत समस्त उपद्रवोंका निवारण करते हैं । उन्होंने सारे विद्वेषियोंका संहार किया है ।

७ इन्द्र और अग्नि, ये स्तोता तुम्हारी स्तुति करते हैं । हे सुखदाता इन्द्र और अग्नि, तुम इस अभिषुत सोमको पियो ।

८ नेता इन्द्र और अग्नि, बहु-लोक-वाञ्छनीय और हव्यदाताके लिये उत्पन्न जो तुम्हारे घोड़े हैं, उन सबपर चढ़कर आओ ।

९ नेता इन्द्र और अग्नि, इस सवनमें अभिषुत सोमरसका पान करनेके लिये आओ ।

१० स्तोता, जो अग्नि अपनी शिखा द्वारा समस्त वनोंको ढक लेते हैं और ज्वाला-रूप जिह्वा द्वारा उन्हें काले कर देते हैं, तुम उन्हीं अग्निकी स्तुति करो ।

११ जो मनुष्य प्रज्वलित अग्निमें इन्द्रके लिये सुखकर हव्य प्रदान करते हैं, इन्द्र उन्हीं व्यक्तिके दीप्ति-सम्पन्न अन्नके लिये कल्याणकर वारि-वर्षण करते हैं ।

१२ इन्द्र और अग्नि, हमें बलकर अन्न दो और हमारे हव्यको बलवान् करनेके लिये हमें वेगवान् अश्व दो ।

उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै ।
उभा दाताराविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥१३॥
आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यैरुप गच्छतम् ।
सखायौ देवौ सख्याय शम्भुवेन्द्राग्नी ता हवामहे ॥१४॥
इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः ।
वीतं हव्यान्या गतं पिबतं सोम्यं मधु ॥१५॥

६१ सूक्त

सरस्वती देवता । भरद्वाज ऋषि । जगती, त्रिष्टुप् और गायत्री छन्द ।

इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥१॥
इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वती मा विवासेम धीतिभिः ॥२॥

---

१३ हे इन्द्र और अग्नि, होम द्वारा तुम्हें अनुकूल करनेके लिये मैं तुम दोनोंको बुलाता हूँ । हव्य द्वारा तुरत तृप्ति करनेके लिये मैं तुम दोनोंको बुलाता हूँ । तुम दोनों अन्न और धनको देनेवाले हो; इसलिये मैं अन्न-लाभके लिये दोनोंको बुलाता हूँ ।

१४ इन्द्र और अग्नि, तुम गौओं, अश्वों और विपुल धनके साथ हमारे सामने आओ । हम मित्रताके लिये मित्र-भूत, दानादि गुणोंसे युक्त और सुख-प्रदाता इन्द्र और अग्निका आह्वान करते हैं ।

१५ इन्द्र और अग्नि, तुम सोमका अभिषव करनेवाले यजमानका आह्वान सुनो । हव्यकी इच्छा करो, आओ और मधुर सोमरसका पान करो ।

१ इन्हीं सरस्वती देवीने हव्यदाता बध्र्यश्वको वेगवान् तथा ऋण-मोचक दिवोदास नामका एक पुत्र दिया है । उन्होंने बहुल आत्म-तर्पक तथा दान-विमुख पणिका संहार किया । सरस्वति, तुम्हारे ये दान बहुत महान् हैं ।

२ यह सरस्वती (नदी) मृणाल-खनन-कारीकी तरह प्रबल और वेगवान् तरङ्गोंके साथ पर्वत-तटोंको भग्न करती हैं । रक्षाके लिये हम स्तुति और यज्ञ द्वारा दोनों तटोंका विनाश करनेवाली सरस्वतीकी परिचर्या करते हैं ।

सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य वृसयस्य मायिनः ।
उत क्षितिभ्यो वनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्त्रवो वाजिनीवति ॥३॥
प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
धीनामवित्र्यवतु॥४॥
यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते । इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥५॥
त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि । रदा पूषेव नः सनिम् ॥६॥
उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः । वृत्रघ्नीवष्टि सुष्टुतिम् ॥७॥
यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्च रिष्णुरर्णवः । अमश्चरति रोरुवत् ॥८॥
सा नो विश्वा अति द्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी । अतन्नहेव सूर्यः ॥९॥
उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥१०॥

---

३ सरस्वति, तुमने देव-निन्दकोंका बध किया है और सर्वव्यापी वृसय वा त्वष्टाके पुत्रका संहार किया है अथवा तुम्हारी सहायतासे इन्द्रने संहार किया है। अन्न-सम्पन्ना सरस्वति, तुमने मनुष्योंको भूमि-प्रदान किया है और उनके लिये वारि-वर्षण भी किया है।

४ दानशालिनी, अन्न-युक्ता और स्तोताओंकी रक्षाकारिणी सरस्वती अन्न द्वारा भली भाँति हमारी तृप्ति करें।

५ देवी सरस्वति, जो व्यक्ति इन्द्रकी तरह तुम्हारी स्तुति करता है, वही व्यक्ति जिस समय धन-प्राप्तिके लिये युद्धमें प्रवृत्त होता है, उस समय उसकी तुम रक्षा करना।

६ अन्न-शालिनी सरस्वति, संग्राममें हमारी रक्षा करना और पूषाकी तरह हमारे भोग्यके लिये धन प्रदान करना।

७ भीषणा, हिरण्मय रथपर आरूढ़ और शत्रुघातिनी वही सरस्वती हमारे मनोहर स्तोत्रकी इच्छा करें।

८ सरस्वतीका अपरिमित, अकुटिल, दीप्त और अप्रतिहत-गति जलवर्षक वेग, प्रचण्ड शब्द करता, विचरण करता है।

९ नियत भ्रमणकारी सूर्य जैसे दिनको ले आते हैं, वैसे ही वह सरस्वती हमारे सारे शत्रुओंको पराजित करें और अपनी अन्यान्य जलमयी भगिनियोंको हमारे पास ले आवें।

१० सप्तनदी-रूपिणी, सप्त भगिनी-संयुता, प्राचीन ऋषियों द्वारा सेविता और हमारी प्रियतमा सरस्वती देवी सदा हमारा स्तुति-पात्रा हों

आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् । सरस्वती निदस्पातु ॥११॥
त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती । वाजेवाजे हव्या भूत् ॥१२॥
प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।
रथ इव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥१३॥
सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा मा न आ धक् ।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥१४॥

११ पृथिवी और स्वर्गके विस्तीर्ण प्रदेशोंका जिन्होंने अपनी दीप्तिसे पूर्ण किया है, वही सरस्वती देवी निन्दकोंसे हमारी रक्षा करें।

१२ त्रिलोक-व्यापिनी, गङ्गा आदि सप्त नदियोंसे युक्ता, चारों वर्णों और निषादको समृद्धि-विधायिनी सरस्वती देवी प्रतियुद्धमें लोगोंके आह्वानयोग्य होती हैं।

१३ जो माहात्म्य और कीर्ति द्वारा देवोंमें प्रसिद्ध हैं, जो नदियोंमें सबसे वेगवती हैं और श्रेष्ठताके कारण जो अतीव गुण-शालिनी हैं, वही सरस्वती देवी ज्ञानी स्तोताकी स्तुति-पात्रा होती हैं।

१४ सरस्वती, हमें प्रशस्त धनमें ले जाओ। हमें हीन नहीं करो। अधिक जल द्वारा हमें उत्पीड़ित नहीं करना। तुम हमारा बन्धुत्व और गृह स्वीकार करो। हम तुम्हारे पाससे निकृष्ट स्थानमें न जायँ।

* * *

अष्टम अध्याय समाप्त

चतुर्थ अष्टक समाप्त

क्या आप "गंगा" के ग्राहक नहीं हैं ?

तो, आज ही ५) रु० का मनीआर्डर भेजकर ग्राहक बन जाइये। १९९१ के फाल्गुनसे ५) रु० भेजकर ग्राहक बननेवालोंको "चरितांक" नामका

शानदार और ज्ञानदार विशेषांक

मुफ्त मिलेगा। इसमें महात्मा गान्धी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, पूज्य मालवीयजी, कार्ल मार्क्स, टालस्टाय, लेनिन, ट्राटस्की, स्टालिन, कागवा, गोर्की, नीट्शे, डार्विन, कनफुसियेस, मिल्टन, चार्ली चेपलिन, गुरुगोविन्द सिंह, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, शङ्कराचार्य, भास्कराचार्य महाराजा विक्रमादित्य, भगवान् बुद्ध, भगवान् महावीर, स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द, महामति रानाडे, कबीर, मीराबाई, लो० तिलक, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, मल्लराज गामा, क्राइस्ट, महम्मद, हिटलर, मुसोलिनी, कपालपाशा, नेपोलियन, सिकन्दर, आइनस्टीन, कारनेगी, जगदीशचन्द्र बोस, सी० वी० रमण, पी० सी० राय, रामावतार शर्मा, चंगेज खाँ, नादिरशाह, आलकोपोनो, ग्राहमबेल, हेनरी परकिन आदि आदिके, प्राणोंमें बिजली फूँकनेवाले, जीवन-चरित छपे हैं। इसे पढ़कर आप अवश्य अपना

जीवन दिव्य और भव्य बनाइये

"गङ्गा" हिन्दीकी अतीव प्रतिष्ठित पत्रिका है। इसमें जिस कोटिके विद्वानोंने लिखा है, उस श्रेणीके एक भी विद्वान्ने हिन्दीकी किसी भी पत्रिकामें नहीं लिखा है। इसके जो अबतक "गङ्गाङ्क", "वेदाङ्क", "पुरातत्त्वाङ्क" और "विज्ञानाङ्क" नामके अद्वितीय विशेषाङ्क निकले हैं, उनको श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल, जोसेफ तुसी, एल० डी० बर्नेट, सुनीतिकुमार चटर्जी, ओटो स्टीन, नारायण भवानराव पावगी, सर जे० सी० बोस, सर सी० वी० रमण आदि विश्व-प्रसिद्ध विद्वानोंने

अनुपम विशेषाङ्क माना है

इन विशेषाङ्कोंको पढ़ते ही आप फड़क उठेंगे। सारे कामोंमें किफायत कर आज ही इन विशेषाङ्कोंको मँगाइये। "गंगाङ्क"का मूल्य ॥) (पृष्ठ ११२, चित्र २२), "वेदाङ्क"का मूल्य २॥) (पृष्ठ ३०७, रंगीन और सादे चित्र ३१), "पुरातत्त्वाङ्क"का मूल्य ३) (पृष्ठ ३३७, रंगीन और सादे चित्र १८१), "विज्ञानाङ्क"का मूल्य ३॥) (पृष्ठ ४१६, रंगीन और सादे चित्र २१५)

—साहित्याचार्य "मग"

सम्पादक और व्यवस्थापक, "गङ्गा", सुलतानगंज (ई० आई० आर०)

क्या आप हिन्दू हैं ?

तो, हिन्दू-संस्कृति और संसारके सबसे प्राचीन ग्रन्थ "ऋग्वेद-संहिता"को आज ही खरीद कर प्रतिदिन उसका पाठ कीजिये। "ऋग्वेद-संहिता"का अबतक एक संस्कृत-भाष्य था और एक आर्यसामाजिक टीका; परन्तु व्यापक हिन्दूधर्मके अनुसार राष्ट्रभाषा हिन्दीमें एक भी सरल, सरस और सस्ता अनुवाद नहीं था। इन्हीं त्रुटियोंको दूर करके हमने

ऋग्वेदका अत्यन्त सरल और सस्ता अनुवाद छपाया है

और, इसके साथ ही, खूबी यह है कि, ऋग्वेदके मन्त्रोंके साथ, सरल हिन्दी-अनुवादके साथ, हमने अनेकानेक महत्त्व-पूर्ण टिप्पनियां और कई उपयोगिनी सूचियाँ भी दी हैं। इन सब बढ़कर बात यह है कि, समस्त ऋग्वेदका मूल्य केवल १६) रु० लागत भर रखा है; ऋग्वेदमें सब आठ अष्टक हैं और प्रत्येक अष्टकका मूल्य २) रु० है। अबतक आधा ऋग्वे अर्थात् चार अष्टक छपे हैं। इन चारोंका मूल्य ८) रु० है। ॥) पेशगी भेजकर "वैदिक-पुस्तकमाला" के स्थायी ग्राहक बननेवालोंसे

डाक खर्च नहीं लिया जाता

इस कार्यके लिये संसार भरकी भाषाओंमें ऋग्वेदके सम्बन्धमें जितने ग्रन्थ, निबन्ध-प्रबन्ध और आलोचना-ग्रन्थ छपे हैं, सबका संग्रह कर लिया गया है। वेद और हिन्दीके अनेक धुरन्धर विद्वान् इस अनुवाद-यज्ञमें लगे हुए हैं। वेदोंकी ज्ञान-गङ्गामें स्नान कर पवित्र होनेका ऐसा सुयोग फिर नहीं मिलेगा। इस दावेके साथ कहते हैं कि,

ऐसा ग्रन्थ आपने नहीं देखा होगा

संचालक, "वैदिक-पुस्तकमाला," सुलतानगंज (ई० आई० आर०)